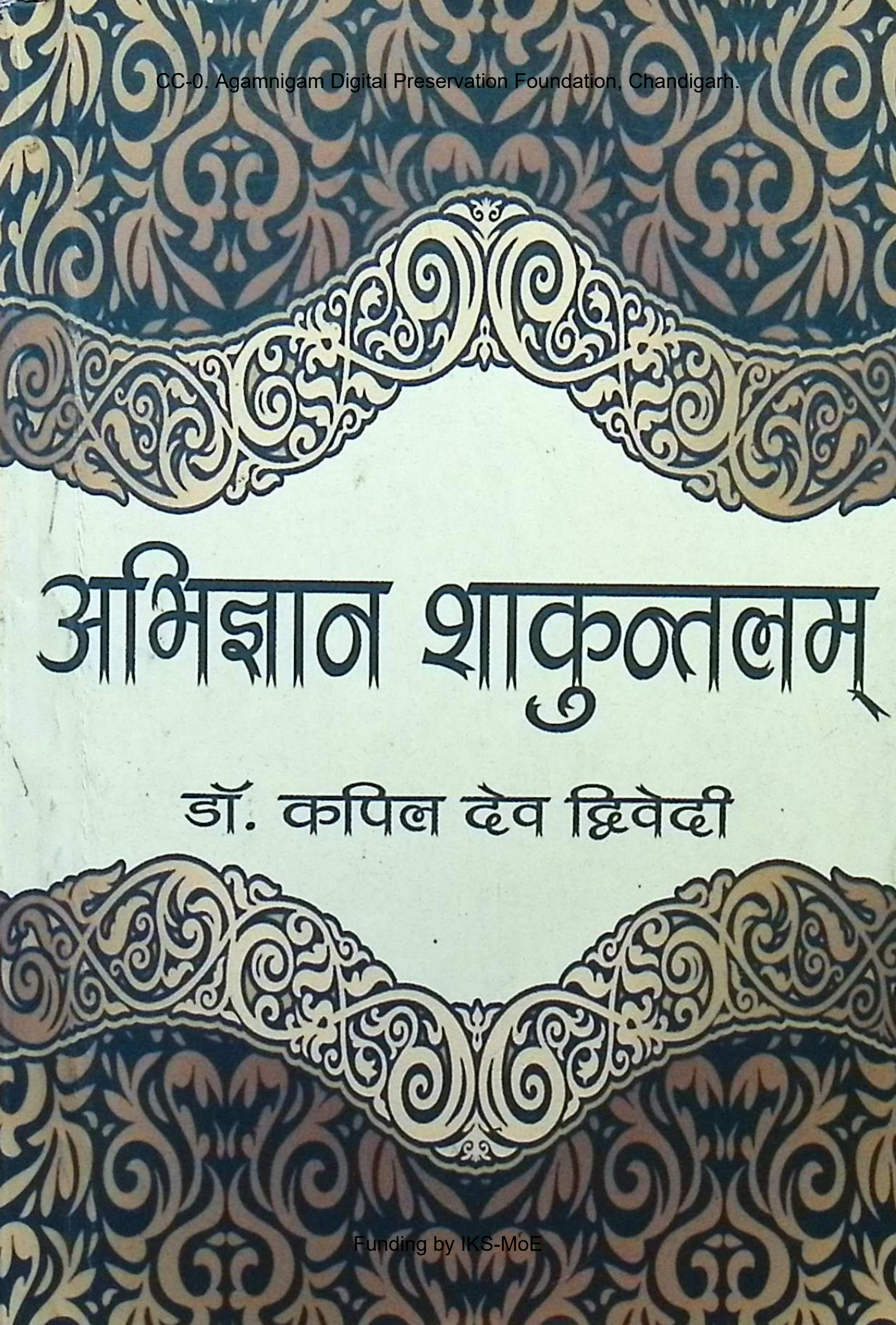

# अभिज्ञान शाकुन्तलम्

डॉ. कपिल देव द्विवेदी

Funding by IKS-MoE

महाकवि-श्री कालिदास प्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(भारती नामक संस्कृत टीका, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत टिप्पणी,
सर्वांगपूर्ण भूमिका तथा 7 आवश्यक परिशिष्टों से युक्त)
(संशोधित और परिवर्धित संस्करण)

प्रणेता
**पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य**
*निदेशक*
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
**शांति-निकेतन, ज्ञानपुर ( भदोही ) उ० प्र०**

1335

Bharatiya Vidya Bhavan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
1335

प्रकाशक
रामनारायणलाल विजयकुमार
२, कटरा रोड, इलाहाबाद - २११००२

र्ष : 2017 मूल्य : ₹ 230

Mahavidyalaya
1335

Funding by IKS-MoE

# प्राक्कथन

अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रस्तुत आलोचनात्मक संस्करण बी० ए०, एम० ए० तथा तत्समकक्ष विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है। अभी तक अभिज्ञानशाकुन्तल का ऐसा कोई संस्करण उपलब्ध नहीं था, जो हिन्दी के माध्यम से उनकी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। इस संस्करण में उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। यह आलोचनात्मक संस्करण है, यह इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता है। इसमें शाकुन्तल का मूल पाठ वहां रखा गया है, जो आलोचनात्मक दृष्टि से प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। अतएव अन्य प्रचलित संस्करणों से इसमें कुछ पाठभेद मिलेंगे। निर्णय-सागर संस्करण और प्रो० एम० आर० काले के संस्करणों के पाठों को मुख्यतः अपनाया गया है। इसमें दाक्षिणात्य मूलपाठ को ही स्वीकार किया गया है, गौडीय मूलपाठ को नहीं। पाठकों की सुविधा के लिए प्राकृत वाले स्थलों पर संस्कृत-छाया पहले दी गई है और उसका मूल प्राकृत रूप बाद में कोष्ठ में दिया गया है। मैंने पूर्ण प्रयत्न किया है कि ग्रन्थ में कहीं भी अनावश्यक विस्तार न हो, परन्तु केवल संक्षेप के लिए कहीं भी आवश्यक विवरण का परित्याग नहीं किया है। अतएव ग्रन्थ का रूप कुछ बृहद् हो गया है। टीका में पहले मूलपाठ का हिन्दी अर्थ दिया गया है, बाद में श्लोकों की संस्कृत-टीका और उसके पश्चात् हिन्दी में विस्तृत टिप्पणी। प्रत्येक स्थान पर टिप्पणी में सभी आवश्यक बातों का संग्रह किया गया है। टिप्पणी में व्याकरण-संबन्धी बातों का स्पष्टीकरण, समासादि का निर्देशन, अलंकारों और छन्दों का स्पष्टीकरण, ग्रन्थान्तरों में समान उक्तियाँ, अन्तर्गत कथाएँ आदि तथा नाटकीय विशेषताओं अर्थ-प्रकृतियों अवस्थाओं और सन्धियों आदि का मुख्यतः समावेश किया है। संस्कृत-टीका में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि व्याख्या अत्यन्त सरल, सुबोध और स्पष्ट हो। ग्रन्थ को अत्युपयोगी बनाने के लिए सुविस्तृत भूमिका दी गई है। इसमें कालिदास और शाकुन्तल से संबद्ध सभी आवश्यक विषयों का पूर्णरूप से विवेचन है। इसमें इन विषयों का मुख्य रूप से विवेचन है—नाटक की रूपरेखा, कालिदास का समय, मूलकथा में परिवर्तन, कालिदास का शास्त्रीय ज्ञान और विविध कला-ज्ञान, उसकी नाट्य-कला उसका नाट्यशास्त्रीय पाण्डित्य, कालिद

का काव्यसौन्दर्य, रस-निरूपण और उसकी शैली, कालिदास और भवभूति की तुलना। ग्रन्थ के अन्त में सात अत्युपयोगी परिशिष्ट दिए गए हैं। जिनमें पारिभाषिक शब्दों के लक्षण, छन्दः-परिचय, शाकुन्तल की सूक्तियाँ, संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में प्रायः सभी संस्करणों का पूरा उपयोग किया गया है। पाठनिर्णय और आवश्यक विवेचन में इन संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है--निर्णयसागर संस्करण, प्रो० काले, प्रो० शारदारंजन राय, प्रो० आर०एम० बोस के संस्करण। इनके अतिरिक्त इन ग्रन्थों से भी सहायता मिली है—चौखम्बा संस्करण, गुरुप्रसाद शास्त्री का शाकुन्तल, प्रो० मिराशीकृत कालिदास, प्रो० जी० सी० झल कृत 'कालिदास', चन्द्रशेखर पांडेय-कृत 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा', कालिदास-ग्रन्थावली, प्रो० तारापद चौधरी का कालिदास विषयक लेख। इन ग्रन्थों से जो सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ इनके लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ।

परम माननीय श्री० डा० सम्पूर्णानन्द जी, मुख्यमन्त्री, उत्तर प्रदेश ने इस ग्रन्थ को देखने की जो कृपा की है, उसके लिए उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। डा० वलवीर (नैनीताल), डा० हरिदत्त शास्त्री (कानपुर), डा० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित (रांची) ने इस ग्रन्थ के विषय में जो उपयोगी सुझाव आदि समय-समय पर दिए हैं, तदर्थ उनको विशेष धन्यवाद है। श्री रूपनारायण शास्त्री (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग), चि० प्रेमनाथ और श्रीमती ओम् शान्ति द्विवेदी ने प्रूफ-संशोधन में विशेष सहायता दी है। उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। चि० भारती और चि० भारतेन्दु ने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्त होने देने में विशेष सहायता की है, तदर्थ उन्हें आशीर्वाद है। प्रकाशक ने जिस परिश्रम और तत्परता से ग्रन्थ को प्रकाशित किया है, तदर्थ उन्हें विशेष धन्यवाद है।

इस ग्रन्थ के विषय में जो भी विद्वान् उचित संशोधनादि के विचार भेजेंगे, उनका विशेष अनुगृहीत होऊँगा। यदि संस्कृत-प्रेमी जनता और विद्यार्थियों का इससे कुछ भी लाभ हो सकेगा तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल
मकर संक्रान्ति, २०१४ वि०
१४-१-५८

**कपिलदेव द्विवेदी**

# षष्ठ संस्करण की भूमिका

संस्कृत-प्रेमी विद्वानों, विद्यार्थियों और जनता ने इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत किया है, तदर्थ मैं उन सबका हार्दिक कृतज्ञ हूँ। कतिपय विद्वानों ने इस पुस्तक में आवश्यक संशोधनादि के विचार भेजे हैं, उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। उनके संशोधनादि के विचारों का यथासंभव पूर्णतया पालन किया गया है।

पुस्तक को अधिक उपयोगी और सुन्दर बनाने के लिए इस संस्करण में निम्नलिखित विशेषताएँ की गई हैं :—

१. पुस्तक में निर्णयसागर और प्रो० काले के संस्करणों से जहाँ पर जो कुछ भी पाठभेद है, वह उसी पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी में दिया गया है और उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही दिया गया है। संस्कृत पाठ्य में जहाँ पर उपर्युक्त दोनों संस्करणों से कुछ भी पाठभेद है, वहाँ पर संकेत के लिए पाठ्य अंश के नीचे पतली लकीर दी गई है। पतली लकीर का अभिप्राय यह है कि उतने अंश में किसी संस्करण से कुछ पाठभेद है। तदर्थ पाद-टिप्पणी में पाठभेद देखें। निर्णयसागर संस्करण और प्रो० काले के संस्करण अधिक प्रचलित हैं, अतः उन दोनों संस्करणों से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप के लिए पाद-टिप्पणी में निर्णयसागर के लिए नि० है और काले के लिए का०।

२. सम्पूर्ण पुस्तक मोनो टाइप में छापी गई है। संस्कृत पाठ्य को प्रमुख रूप देने के लिए १६ प्वाइन्ट काले में छापा गया है। जहाँ पर प्राकृत अंश है, उसे १६ प्वाइन्ट सफेद में दिया गया है। अन्य अंशों में भी छपाई की दृष्टि से सुधार किया गया है।

३. पुस्तक का विशेष सावधानी से संशोधन और परिवर्धन किया गया है।

गवर्नमेंट कालेज,
ज्ञानपुर (वाराणसी)
ता० १-१-७२ ई०

कपिलदेव द्विवेदी

Funding by IKS-MoE

# विषय-सूची

## (क) भूमिका

विषय ... पृष्ठ

१—नाटक का महत्त्व ... ...
२—संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति ... ...
३—नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा ... ...
४—कालिदास का जीवन-वृत्त तथा उसकी कृतियाँ ... १
५—कालिदास का समय ... ... १
६—शाकुन्तल की संक्षिप्त कथा ... ... ३
७—मूलकथा और उसमें परिवर्तन ... ... ४
८—कालिदास का शास्त्रीय पाण्डित्य ... ... ४
९—कालिदास का विविधकला-ज्ञान ... ... ४
१०—कालिदास की नाट्यकला ... ... ४६
११—शाकुन्तल में रस-निरूपण ... ... ६
१२—कालिदास का काव्य-सौन्दर्य ... ... ६
१३—कालिदास की शैली ... ... ७६
१४—प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण ... ... ८६
१५—कालिदास और भवभूति ... ... ९४

## (ख) मूलग्रन्थ और अनुवाद

१—प्रथमोऽङ्कः ... ... १
२—द्वितीयोऽङ्कः ... ... ९०
३—तृतीयोऽङ्कः ... ... १३३
४—चतुर्थोऽङ्कः ... ... १८०
५—पञ्चमोऽङ्कः ... ... २४१

विषय … पृष्ठ
६—षष्ठोऽङ्कः … … ३०५
७—सप्तमोऽङ्कः … … ३८८

## (ग) परिशिष्ट

१—श्लोकानुक्रमणिका … … ४५५
२—पारिभाषिक शब्दों के लक्षण … … ४५९
३—छन्दःपरिचय … … ४६४
४—शाकुन्तलनाटकान्तर्गत सुभाषित … … ४६९
५—शाकुन्तल से साम्य वाले अन्य कालिदास के श्लोक … ४७४
६—कालिदास-विषयक सूक्तियाँ … … ४७७
७—संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण … … ४८०

# भूमिका

## (१) नाटक का महत्त्व

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।। नाट्यशास्त्र १—११६

संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य ।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ।। साहित्यदर्पण ६—१

दृश्य काव्य में नाटकों या रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है । ये जनता के द्वारा दृश्य होते हैं । नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द 'रूपक' है । अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है, अतः नाटक को रूपक कहा गया है । रूपक के ही १० भेदों में से एक भेद नाटक है । रूपक के १० भेद हैं और उपरूपक के १८ । दस रूपकों के नाम हैं—(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी, (१०) प्रहसन ।

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।। साहित्यदर्पण ६—३

(रूपकों और उपरूपकों के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए साहित्यदर्पण परिच्छेद ६ तथा दशरूपक प्रकाश १ और ३) । श्रव्य काव्यों में रघुवंश आदि का ग्रहण होता है, जो केवल पठन या श्रवण के विषय हैं । ये अभिनेय नहीं हैं । नाटकों में श्रव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक जनप्रिय होता है । अतएव कहा गया है कि—काव्येषु नाटकं रम्यम् । काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय होता है । भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है कि—नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, नवीन योजना, क्रिया-कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है, अतएव नाटकों का महत्त्व श्रव्य काव्य की अपेक्षा बहुत अधिक है । न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं····(नाट्यशास्त्र १—११६)

Funding by IKS-MoE

## (२) संस्कृत-नाटकों की उत्पत्ति

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचावे। इसके लिए मनुष्य साधारणतया शब्दों का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त कभी इंगित से तथा कभी नृत्य-गीत आदि के द्वारा वह अपने भाव प्रकट करता है। मनोरंजनार्थ दूसरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। अतएव धनंजय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाट्य का मूल माना है और दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका रूपक नाम माना है।

**अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। रूपकं तत्समारोपात्।** **(दशरूपक १—७)**

इस अनुकरण को जब कथनोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भावभंगी आदि से समन्वित कर देते हैं तथा उसे नाट्य का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पाँचवें वेद (नाट्यवेद) की सृष्टि की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथनोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

**एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।**
**नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम्।।**
**जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।**
**यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। नाट्यशास्त्र १—१६, १७**

भरत मुनि के कथन को यदि स्थूल रूप में भी लिया जाय तो यह स्पष्ट है कि नाटक के लिए चार तत्त्वों की विशेष आवश्यकता है, अर्थात् संवाद, संगीत, अभिनय और रस। ये चारों तत्त्व चारों वेदों में प्राप्य हैं, अतः चारों वेदों से नाटकों की उत्पत्ति मानना सर्वथा बुद्धिगम्य है। ऋग्वेद में संवादसूक्त कई हैं, यथा—यम-यमी सूक्त (ऋग्० १०-१०), पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त (ऋग्० १०—९५), सरमा-पणि-संवाद (१०—१०८), इन्द्र-मरुत्-संवाद (१—१६५; १—१७०), विश्वामित्र-नदी-संवाद (३-३३), इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद

(१०–८६), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (१–१७९) आदि। इन सूक्तों में नाटकोपयोगी संवाद का तत्त्व बहुत सुन्दर रूप से प्राप्य है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत् आदि देवताओं के महत्त्वबोधक सूक्तों में नाटकोपयोगी पाठ्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सामवेद संगीतमय वेद है ही। यजुर्वेद के यज्ञिय क्रिया-कलाप में अभिनय का अंश विद्यमान है तथा अथर्ववेद में प्रायः सभी रसों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चारों वेदों से आवश्यक तत्त्वों का संग्रह करके नाटकों का प्रारम्भ हुआ, यह मानना उचित है। यही नाटक शनैः-शनैः परिष्कृत होते हुए उच्च कोटि के नाटकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

कुछ पाश्चात्त्य विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, जो कि केवल एकांगी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत किए गए हैं। इनम विभिन्न तथ्यों की ओर पूर्ण ध्यान नहीं दिया गया है, अतः ये मत सर्वांगीण रूप में ग्राह्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ कुछ मत निम्नलिखित हैं—(१) प्रो० रिजवे (Ridgeway)—नाटकों का उद्भव मृतात्माओं को प्रसन्न करने तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हुआ। (२) पर्ववाद—विभिन्न पर्वों पर खेले जाने वाले छोटे नाटकों का जन्म हुआ। (३) रासलीला आदि से नाटकों का जन्म हुआ। (४) प्रो० हिलब्रैंड (Hillebrandt) और प्रो० स्टेन कोनो (Sten Konow)—नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वांगों से हुआ। (५) प्रो० पिशेल (Pischel)—नाटकों का जन्म कठपुतलियों के नाच से हुआ। (६) प्रो० ल्यूडर्स (Lüders)—नाटकों का जन्म छायानाटकों अर्थात् छाया द्वारा दिखाए जाने वाले नाटकों से हुआ। (७) प्रो० मैक्स म्यूलर (Max Müller), प्रो० सिलवन लेवी (Sylvain Levi), प्रो० फॉन श्रोएडर (Von Schroeder) और डा० हर्टल (Hertel)—भारतीय नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद के संवाद सूक्तों से हुई है। (८) प्रो० वेबर (Weber) और प्रो० विंडिश (Windisch) ने भारतीय नाटकों के उद्गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु प्रो० सिलवन लेवी आदि विद्वानों ने इस मत का समूल खण्डन किया है। विस्तार के भय से यहाँ पर इन मतों की विस्तृत विवेचना नहीं की जा रही है।

पाश्चात्त्य विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही हुआ है। प्रो० मैक्स म्यूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानल (Macdonell) और कीथ (Keith) आदि ने इसी मन्तव्य को स्थिर

किया है । राभायण और महाभारत में स्पष्ट रूप से नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है । वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है । नाटकों में रस-परिपाक होता है, इसका भी निर्देश किया गया है ।

(क) रसैश्शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ।। रामायण १—४—९
(ख) नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः । रामायण २—६७—१५
(ग) वादयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ।। रामायण २—६९—४
(घ) शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति० । रामायण २—८३—१५

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।

(क) इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा । महा० १—५१—१५
(ख) नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः ।। महा० २—१२—३६
(ग) आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः । महा० २—१५—१३

महाभारत के विराट् पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख मिलता है । महाभारत के हरिवंश पर्व (९१ से ९७ अध्याय) में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण और कौवेररम्भाभिसार नामक नाटक खेले गए थे ।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व माना जाता है । पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है । एक नाट्यशास्त्र के रचयिता शिलालिन् थे और दूसरे के कृशाश्व ।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः । अष्टा० ४—३—११०
कर्मन्दकृशाश्वादिनिः । अष्टा० ४—३—१११

इससे ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था । पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की, अपि तु 'जाम्बवतीजय' नामक नाटक[1] भी लिखा था । जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

---

[1] 'जाम्बवतीजय' नाटक के कुछ प्रसिद्ध श्लोक ये हैं—
गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत् प्रावृषि कालमेघाः ।

**स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः ।**
**आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम् ॥**

महर्षि पतंजलि (१५० ई० पू०) ने अपने महाभाष्य (३–२–१११) में 'कंसवध' और 'वलिबन्धन' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतंजलि का कथन है—

**ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति। (महाभाष्य ३—२—१११)**

भारतीय नाटचशास्त्र के प्रधान आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाटचसम्बन्धी 'नाटचशास्त्र' नामक श्लोकबद्ध विशाल ग्रन्थ उपलब्ध हो चुका है। इसमें ३६ अध्याय हैं। लगभग ५०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाटचसम्बन्धी सभी विषयों का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसका भी समय २०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई० पू० तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाटचकला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों और वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई०) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक दिखावें और दूसरे दिन अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लें। अगले दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा करें :—

**कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। (कामसूत्र १.४.२८—३१)**

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएँ महाकवि भास की प्राप्त होती हैं। तत्पश्चात् शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक हैं।

## (३) नाटक की संक्षिप्त-रूपरेखा

किसी भी नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है

---

अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ॥१॥
उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ॥२॥
विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया ॥३॥

Funding by IKS-MoE

कि उसके मूल-तत्त्वों को ठीक समझ लिया जाय। नाटचशास्त्र के मूलतत्त्वों का विस्तृत वर्णन धनंजय-कृत दशरूपक और विश्वनाथ-कृत साहित्यदर्पण (परिच्छेद ६) में है। यहाँ पर विद्यार्थियों के लाभार्थ उसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। विस्तृत विवेचन के लिए उक्त दोनों ग्रन्थों को देखें।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः' (दशरूपक १—११)। इसमें वस्तु का वर्णन विशेष महत्त्व रखता है। वस्तु को कथा, कथावस्तु (Plot), इतिवृत्त आदि नाम से पुकारा जाता है।

**वस्तु के दो भेद**—वस्तु या कथावस्तु को दो भागों में[1] विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक, (२) प्रासंगिक। (१) आधिकारिक—वह कथा-वस्तु है जो मुख्य कथा होती है। अधिकार का अर्थ है—फल का स्वामित्व। अतः जो फल का स्वामी होता है अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे—रामायण में रामचन्द्र की कथा। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे—रामायण में सुग्रीव या शबरी की कथा।[2] प्रासंगिक कथा के भी दो भेद हैं—(१) पताका, (२) प्रकरी। (१) पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती जाती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र फल नहीं होता है। जैसे—रामायण में सुग्रीव की कथा। (२) प्रकरी—छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को प्रकरी कहते हैं। जैसे—रामायण में शबरी आदि की कथाएँ।[3]

सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास आदि पर अवलम्बित हो। जैसे—शाकुन्तल की कथा महाभारत और पद्मपुराण पर अवलम्बित है। (२) उत्पाद्य—कवि द्वारा कल्पित होता है। जैसे—शूद्रक का मृच्छकटिक, भवभूति का मालतीमाधव। (३) मिश्र—

---

[1] दशरूपक १—११, साहित्यदर्पण ६—४२।

[2] दश० १—१२, सा० दर्पण ६—४२, ४३।

[3] दश० १—१३, सा० द० ६—६७, ६८।

Funding by IKS-MoE

इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कविकल्पित होता है।[1]

**पाँच अर्थप्रकृतियाँ**—अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथावस्तु के पाँच तत्त्व हैं। धनंजय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है—प्रयोजनसिद्धिहेतवः—जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हों। अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं—(१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका (४) प्रकरी, (५) कार्य। (१) बीज—वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है।[2] (२) बिन्दु—अवान्तर कथा से मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे बिन्दु कहते हैं।[3] (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है। (५) कार्य—कार्य का अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है, जो साध्य होता है, वह कार्य है। जैसे—रामायण में रावण का वध। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है। इसको ही मुख्य प्रयोजन, लक्ष्य आदि कहते हैं।[4]

**पाँच अवस्थाएँ**—नाटक म ज़ो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये अवस्थाएँ उसकी गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पाँच अवस्थाएँ हैं—(१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति, (५) फलागम[5]। (१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं।[6] (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक बड़े वेग से जो प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं।[7] (३) प्राप्त्याशा—जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण फल-

---

१. दश० १—१५, १६।
२. दश० १—१७, सा० द० ६–६५, ६६।
३. दश० १—१७, सा० द० ६–६६।
४. दश० १—१६, सा० द० ६–६९, ७०।
५. दश० १—१९, सा० द० ६–७०, ७१।
६. दश० १—२०, सा० द० ६—७१।
७. दश० १—२०, सा० द० ६–७२।

Funding by IKS-MoE

प्राप्ति की सम्भावना होती है और विघ्नों के कारण वह असम्भव दीखती है, उस सन्दिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं[1]। (४) नियताप्ति—जब विघ्नों के हट जाने के कारण फल की प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है, उस अवस्था को नियताप्ति कहते हैं।[2] (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, उस अवस्था को फलागम कहते हैं।[3]

**पाँच सन्धियाँ**—पाँचों अर्थप्रकृतियों को पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का सम्बन्ध करती हैं। सन्धियाँ पाँच हैं—(१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) विमर्श, (५) उपसंहृति या निर्वहण।[4] (१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख—बिन्दु और यत्न को मिलाकर प्रतिमुख-सन्धि। (३) गर्भ—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर गर्भ-सन्धि। जहाँ पताका न हो, वहाँ पर प्राप्त्याशा पर ही अवलम्बित रहती है। (४) विमर्श—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर विमर्श-सन्धि। इसको ही विमर्ष और अवमर्श भी कहते हैं। जहाँ प्रकरी न हो वहाँ नियताप्ति पर ही निर्भर रहती है। (५) उपसंहृति—कार्य और फलागम को मिलाकर उपसंहृति-सन्धि। इसको ही निर्वहण-सन्धि भी कहते हैं। सन्धियों को कथा का स्थूल भाग कहा जा सकता है। इनके आधार पर ही नाटक का विभाजन किया जाता है।[5]

मुख-सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है। प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है। उपसंहृति में विखरे हुए अर्थों को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है।[6]

अर्थप्रकृतियों आदि को निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा

---

१. दश० १—२१, सा० द० ६–७२।
२. दश० १—२१, सा० द० ६–७३।
३. दश० १—२२, सा० द०६—७३।
४. दश० १—२४, सा० द० ६–७५।
५. दश० १—२२, २३, सा० द० ६–७४।
६. दश० १—२४, २५, २६, ४९, ५०, सा० द० ६.७५–८१।

Funding by IKS-MoE

सकता है। प्रथम से प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है :—

| अर्थप्रकृतियाँ | अवस्थाएँ | सन्धियाँ |
|---|---|---|
| १. बीज | आरम्भ | मुख |
| २. बिन्दु | यत्न | प्रतिमुख |
| ३. पताका | प्राप्त्याशा | गर्भ |
| ४. प्रकरी | नियताप्ति | विमर्श |
| ५. कार्य | फलागम | उपसंहृति |

**कथावस्तु के दो विभाग**—रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथावस्तु के दो विभाग किए गए हैं—(१) सूच्य, (२) दृश्यश्रव्य। (१) सूच्य—कुछ वस्तुएँ नीरस होती हैं या रंगमंच पर उनका प्रदर्शन उचित नहीं है। ऐसी वस्तुओं की केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्यश्रव्य—जो वस्तुएँ वस्तुतः दर्शनीय और श्रवणीय हैं, उनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक (अर्थ—वस्तु, उपक्षेपक-सूचक) कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा संस्कृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा प्राकृत होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों के द्वारा वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक में आने वाली घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।[1]

**कथावस्तु के तीन विभाग**—कथावस्तु को सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से तीन विभाग किए गए हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने के योग्य है। इसको ही प्रकाश भी कहते हैं। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन ही मन कही जाए। (३) नियतश्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) अपवारित—मुँह फेर कर किसी दूसरे पात्र की गुप्त

---

[1] दश० १.५६—६३, सा० द० ६.५४–६०।

बात कहना। इसके अतिरिक्त एक और भेद आकाशभाषित है। ऊपर मुंह करके स्वयं ही अकेले बात करना।[1]

## (४) कालिदास का जीवनवृत्त तथा उसकी कृतियाँ

यह अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि महाकवि कालिदास के जीवन-चरित के विषय में कुछ भी निश्चित और प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं होती है। उसका मुख्य कारण यह है कि कालिदास ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने जीवन से संबद्ध किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है। अतः उनके विषय में जो कुछ भी कहा जाता है और माना जाता है, वह अधिकांश रूप में आनुमानिक ही है। कालिदास ने अपने विषय में स्वयं कुछ नहीं लिखा है, अतः उनके विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ चल पड़ीं। जिसमें एक किंवदन्ती के अनुसार वह महामूर्ख थे। उनका विवाह एक सुयोग्य और कला-प्रवीण राजकुमारी से हुआ। पत्नी द्वारा अपमानित होने पर उन्होंने देवी काली की उपासना की और उसके वरदान से उन्हें कवित्व-शक्ति प्राप्त हुई। घर लौटने पर उन्होंने पत्नी से कहा—अनावृत-कपाटं द्वारं देहि। पत्नी ने उत्तर दिया—अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः। कालिदास ने इसमें से तीन शब्दों को लेकर तीन काव्यग्रन्थ बनाए। अस्ति से कुमारसम्भव, अस्त्युत्तरस्यां दिशि० (१–१), कश्चित् से मेघदूत, कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा० (१–१), वाग् से रघुवंश, वागर्थाविव सम्पृक्तौ० (१–१)। अन्य कथा के अनुसार उनका सम्बन्ध लंका के राजा कुमारदास (५०० ई०) से बताया जाता है। वहाँ पर एक वेश्या ने धन के लोभ में उनकी मृत्यु कराई। इसके अनुसार उनका देहान्त लंका में हुआ। तीसरी कथा के अनुसार वह विक्रम-संवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में माने जाते हैं। चौथी कथा के अनुसार वह राजा भोज (१००५-१०५४ ई०) के आश्रित कवि माने जाते हैं। वस्तुतः धारा के राजा भोज का आश्रित कवि परिमल था। इसका दूसरा नाम पद्मगुप्त था। उसकी सुन्दर शैली कालिदास से मिलती-जुलती थी, अतः उसे कालिदास या परिमल कालिदास उपाधि दी गई थी। भ्रमवश परिमल को वास्तविक कालिदास समझ लिया गया।

कालिदास के जन्मस्थान के विषय में भी पर्याप्त विवाद है। काश्मीर के विद्वान् उनको काश्मीरी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, बंगाल के विद्वान् बंगाली

---

[1] दश० १. ६४–६७, सा० द० ६.१३७–१४०।

और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी-निवासी। कालिदास ने मेघदूत में जो उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह और आदरभाव प्रदर्शित किया है, उससे यह स्पष्ट है कि वह उज्जायेनी के निवासी थे। उन्होंने मेघदूत में उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य का, शिप्रा नदी का और महाकाल के मन्दिर का विशेष भावुकता के साथ वर्णन किया है।

कालिदास के ग्रन्थों के देखने से यह भी ज्ञात होता है कि वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिव-भक्त थे। अन्य देवताओं के प्रति भी उनका आदरभाव था। मेघदूत और रघुवंश के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारतवर्ष की विस्तृत यात्रा की थी। अतएव उनके भौगोलिक वर्णन सत्य, स्वाभाविक और मनोरम हुए हैं। उनका जीवन भौतिक दृष्टि से सुखमय था। उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं था। अतएव उन्होंने धनहीनता, दारिद्र्य आदि के कष्टों का वर्णन नहीं किया है। उनका राज-परिवारों से सम्बन्ध था, अतः उन्हें राजद्वारों, राजकीय जीवन आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। उन्हें अपने जीवनकाल में भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। उन्होंने स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया है, परन्तु वे कामुकता और विषय-वासनामय जीवन को श्रेयस्कर नहीं मानते। अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (शाकु० अंक ५ वाक्य ३६)।

उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था।

काव्य-जगत् में कालिदास की असाधारण प्रसिद्धि के कारण बाद में उनका नाम एक उपाधि के रूप में हो गया। जिस प्रकार आजकल शंकराचार्य नाम उपाधि के रूप में है और चारों मठों के अध्यक्ष शंकराचार्य कहे जाते हैं, उसी प्रकार बाद में जो सुयोग्य राजकवि हुए, उन्हें राजा के द्वारा कालिदास की उपाधि प्राप्त हुई या उन्होंने अपना उपनाम ही कालिदास रख लिया। परिणामस्वरूप अनेक कालिदास हो गए और उनकी रचनाएँ भी कालिदासकृत कही जाने लगीं। राजशेखर को ऐसे तीन कालिदासों का ज्ञान था। अतएव उसने कहा है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

कालिदास के नाम से ४१ रचनाएँ प्रचलित हैं। परन्तु इनमें से निम्नलिखित सात रचनाएँ ही कालिदास की वास्तविक रचनाएँ मानी जाती हैं। नाटचग्रन्थ

Funding by IKS-MoE

—(१) अभिज्ञान-शाकुन्तल, (२) विक्रमोर्वशीय, (३) मालविकाग्निमित्र। काव्यग्रन्थ—(४) रघुवंश, (५) कुमारसंभव। गीतिकाव्य—(६) मेघदूत, (७) ऋतुसंहार। प्रथम ६ ग्रन्थों को सभी विद्वान् कालिदास की कृति मानते हैं। सातवें ग्रन्थ ऋतुसंहार के विषय में विद्वानों में विवाद है। कुछ इसको कालिदास की कृति मानते हैं, कुछ नहीं। मेरे विचार से ऋतुसंहार को कालिदास की कृति मानना उचित है। यह उनकी अप्रौढ़ावस्था की कृति होगी, अतः इसमें उतनी प्रौढ़ता और भावों का उत्कर्ष नहीं है। इन सात के अतिरिक्त कालिदास के नाम से प्रचलित अन्य कृतियाँ अन्य विद्वानों की ही समझनी चाहिए। अन्य रचनाओं में उल्लेखनीय कृतियाँ ये हैं—(१) कालीस्तोत्र, (२) गङ्गाष्टक, (३) ज्योतिर्विदाभरण, (४) राक्षसकाव्य, (५) श्रुतबोध। कालिदास की रचनाओं को कालक्रम के अनुसार इस क्रम से रखा जा सकता है :— नाटक—(१) मालविका०, (२) विक्रमोर्वशीय, (३) शाकुन्तल,। काव्य-ग्रन्थ—(४) ऋतुसंहार, (५) कुमार०, (६) मेघदूत, (७) रघुवंश। मिश्रित रूप से रखने पर इनका क्रम यह होगा—(१) ऋतु०, (२) कुमार०, (३) मालविका०, (४) विक्रमो०, (५) मेघदूत, (६) रघुवंश, (७) शाकुन्तल।

## (५) कालिदास का समय

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में अपने विषय में किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है, अतः उनके समय का निर्णय भी विद्वानों के लिए विवाद का विषय बना हुआ है। अतिपुष्ट और असन्दिग्ध प्रमाणों के अभाव के कारण कालिदास के समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किए गए हैं, वे पूर्णरूप से निर्णायक नहीं हैं। प्रस्तुत किए गए मत अधिकांशतः अनुमान, कल्पना और जनश्रुतियों पर आश्रित हैं। अतः नीचे विभिन्न मतों पर विचार करके जो मन्तव्य पक्ष बताया गया है, उससे यह ही समझना चाहिए कि यह मत अधिक युक्ति-संगत और प्रामाणिक प्रतीत होता है।

कालिदास के समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें से दो मत मुख्य रूप से प्रचलित हैं—(१) प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत, (२) चतुर्थ शताब्दी ई० या गुप्तकालीन मत। प्रथम मत के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। द्वितीय मत के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य उपाधिधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१३ ई०) के आश्रित कवि थे। प्रथम मत को अधिकांश भारतीय विद्वान् मानते

हैं और द्वितीय मत को अधिकांश विदेशीय विद्वान् मानते हैं। इन दोनों मतों पर विचार करने से पूर्व कालिदास की पूर्वसीमा और अपरसीमा को समझ लेना आवश्यक है।

**कालिदास के समय की पूर्व-सीमा और अपरसीमा**—कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को नाटक का नायक बनाया है। वह मौर्यवंश का उच्छेद करके साम्राज्य को छीन लेने वाले सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था। उसका समय लगभग १५० ई० पू० माना जाता है। अतः कालिदास का समय १५० ई० पू० से पूर्व नहीं माना जा सकता है। कालिदास की अपरसीमा का निर्धारण वाणकृत हर्षचरित की भूमिका में प्राप्त उसकी प्रशस्ति से होता है। वाण ने भूमिका के श्लोक १६ में लिखा है—

**निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।**
**प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।**

वाण सम्राट् हर्ष (६०६-६४७ ई०) का आश्रित कवि था। वाण के द्वारा कालिदास का उल्लेख होने से वह ६०६ ई० से पूर्व होना चाहिए। पुलकेशी द्वितीय के आश्रित कवि रविकीर्ति के दक्षिणभारत के 'ऐहोल' नामक ग्राम में प्राप्त शिलालेख में कालिदास का उल्लेख है। यह शिलालेख शक संवत् ५५६ अर्थात् ६३४ ई० का है। इसमें रविकीर्ति अपने आपको कालिदास और भारवि जैसा महाकवि बताता है।

**येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।**
**स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।**

यह भी कालिदास की अपरसीमा छठी शताब्दी से पूर्व सिद्ध करता है। मन्दसोर के शिलालेख पर ध्यान देने से कालिदास की अपरसीमा ४७३ ई० से पूर्व सिद्ध होती है। यह शिलालेख कवि वत्सभट्टि-कृत है। जुलाहों के संघ ने दशपुर (वर्तमान दसोर या मन्दसोर) में स्थित सूर्य-मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था। उसी की प्रशस्ति में यह शिलालेख है। यह शिलालेख ४७३ ई० का है। इसके निम्न लिखित पद्यों में मेघदूत और ऋतुसंहार की छाया दृष्टिगोचर होती है :—

(१) **चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।**
**तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र।। वत्सभट्टि–१०**
**विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः**
**संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।**

Funding by IKS-MoE

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।। मेघदूत—६६

( २ ) स्मरवशगततरुणजनवल्लभाङ्गनाविपुलकान्तपीनोरु–
स्तनजघनघनालिङ्गननिर्भर्त्सिततुहिनहिमपाते ।। वत्सभट्टि—३३
पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः ।
विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ।।
ऋतुसंहार—५-९

पूर्वोक्त श्लोकों में कालिदास का अनुकरण स्पष्ट है। अतः वह ४७२ ई० से पूर्व हुआ है।

**विक्रमादित्य का आश्रित कवि**—पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं कि कालिदास विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। इसके मुख्य कारण ये हैं—(१) भारतीय अनुश्रुति कि वह विक्रमादित्य के नवरत्नों में था। (२) ज्योतिर्विदाभरण (२२-१०) का श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

(३) विक्रमादित्य के स्मृत्यर्थ विक्रमोर्वशीय में नाटक के नायक पुरूरवा के स्थान पर विक्रम नाम। (४) विक्रमोर्वशीय में दो स्थलों पर सहेतुक विक्रम शब्द का प्रयोग। (क) दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्। (अंक १)। (ख) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः। (अंक १)

विवाद इस विषय पर है कि यह विक्रमादित्य कौन-सा व्यक्ति है। चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य मानकर कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी जो माना जाता है, उसका यहाँ पहले विवेचन है।

## चतुर्थ शताब्दी या गुप्तकालीन मत

इस मत के समर्थन में जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनका यहाँ पर संक्षिप्त विवेचन है।

**(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य**—(क) पाश्चात्य तथा कतिपय भारतीयों ने, यह स्वीकार करने पर कि कालिदास विक्रमादित्य का आश्रित कवि था, विक्रमादित्य का अन्वेषण प्रारम्भ किया। उनके अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की। वही प्रथम विक्रमादित्य है। चन्द्रगुप्त

द्वितीय का राज्यकाल ३७५ से ४१३ ई० है। (ख) उसने अपने से पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को अपना नाम विक्रम लगाकर विक्रम सम्वत् नाम से प्रचलित किया। (ग) उसने मालवा, गुजरात और काठियावाड़ के शकवंशी क्षत्रपों पर ३९० ई० में विजय प्राप्त की। अतः उसे शकारि कह सकते हैं।

(क) चन्द्रगुप्त ही प्रथम विक्रमादित्य है, यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में भी विक्रमादित्य का होना साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध है। वह शकारि था; उसका व्यक्तिगत नाम विक्रमादित्य था। वह उज्जैन का राजा था। उसने ही शकों पर विजय के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् चलाया था। इसके विषय में आगे विवेचन किया गया है।

(ख) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मालव सम्वत् को विक्रम् सम्वत् नाम दिया और चलाया। इस विषय में मुख्य आक्षेप ये हैं :—(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकवंशी क्षत्रपों पर विजय के उपलक्ष्य में यह कार्य किया होता तो वह एक सम्राट् होने के कारण स्वयं अपना एक नया सम्वत् चलाता। नया सम्वत् चलाने से ही उसका महत्त्व प्रकट होता। (२) दूसरे के चलाए हुए सम्वत् को अपने नाम से चलाना उसकी हीनता का द्योतक है और स्वाभिमानी के लिए अपमानजनक भी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वह नया सम्वत् चलाने का साहस नहीं कर सका था। दूसरे के सम्वत् की चोरी करके अपना नाम चलाना चाहता था। (३) चन्द्रगुप्त द्वितीय के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर ३२० ई० में 'गुप्त सम्वत्' प्रचारित किया था। क्या उसके पौत्र के लिए यह उचित था कि वह पितामह के सम्वत् को छोड़कर नया सम्वत् और वह भी दूसरे का चुराया हुआ सम्वत् चलावे ? (४) क्या वह अपने पितामह के प्रति कृतघ्न था कि ऐसा कार्य करे जो पितामह के लिए अनादरसूचक हो ? ( ५ ) यदि उसने यह सम्वत् चलाया होता तो उसके पुत्र-पौत्रादि इसी सम्वत् को अपनाते। परन्तु बाद में किसी गुप्त राजा ने विक्रम संवत् को नहीं अपनाया है। स्कन्दगुप्त के गिरनार वाले शिलालेख में गुप्त सम्वत् का ही उल्लेख है, विक्रम सम्वत् का नहीं। (गुप्तप्रकाले गणनां विधाय)। विक्रम सम्वत् का सर्व प्रथम उल्लेख नवम शताब्दी में मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय किसी भी अवस्था में विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक नहीं है।

(ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय ही शकारि हो, ऐसी बात नहीं है। शक ई० पू० प्रथम शताब्दी में भारतवर्ष में घोर आक्रमणकारी के रूप में आ चुके थे। प्रथम

Funding by IKS-MoE

शताब्दी ई० पू० में पश्चिमी पंजाब में प्रथम शक राजा मवेज था। उसके सिक्कों और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वह प्रथम शताब्दी ई० पू० में वहाँ शासन करता था। गर्गसंहिता के युगपुराण के वर्णन से ज्ञात होता है कि ई० पू० प्रथम शताब्दी में शक बड़ी ही निर्दयता से अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। उसका कथन है कि अम्लात नामक शक राजा ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया और नगर पर पूरा अधिकार कर लिया, वहाँ के लोगों का सर्वनाश किया और शकों को वहाँ लाकर बसाया। शकों के भीषण आक्रमण का हृदयविदारक वर्णन गर्गाचार्य ने किया है कि—"इस भयंकर युद्ध में राष्ट्र के सब पुरुष मारे गए, इस कारण स्त्रियों को ही सब काम करने पड़े। उन्होंने भूमि जोती और धनुष-बाण लेकर खेतों की रक्षा की। जहाँ-तहाँ स्त्रियों ने संगठन करके संघ स्थापित किए। पुरुष इतने दुर्लभ हो गए कि एक पुरुष को दस-दस बीस-बीस स्त्रियाँ वरण करने लगीं। ग्रामों और नगरों में स्त्रियाँ ही सब व्यवस्था देखने लगीं। चातुर्वर्ण्य मर्यादा भंग हो चुकी थी।" उपर्युक्त वर्णन की सत्यता का अनुमान गत महायुद्ध के वर्णनों से किया जा सकता है। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि शकों को हराना ई० पू० प्रथम शताब्दी में कितना महत्त्वपूर्ण कार्य समझा गया होगा। ५७ ई० पू० प्रथम शताब्दी में शक-विजय के उपलक्ष्य में जो सम्वत् चलाया गया, वह उस समय की अति महत्त्वपूर्ण घटना होगी। गर्गाचार्य के शब्दों में जो संघ स्थापित किए गए, उनमें मालवों का भी संघ होगा। यह सम्भव है कि शक मालवा में पराजित होने के कारण पीछे हटे और अन्ततः भारत के पश्चिमोत्तर भाग में मवेज के राज्य में रहे। इससे सिद्ध होता है कि शक-विजय का महत्त्व ई० पू० प्रथम शताब्दी में अधिक था और उसी की स्मृति में सम्वत् चलाया गया, जो कि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के नाम पर विक्रम सम्वत् हुआ।

(घ) चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक मानने में कुछ और आपत्तियाँ ये हैं—(१) किसी भी गुप्त राजा का नाम विक्रमादित्य नहीं है, अपितु यह चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त की उपाधिमात्र रही है। (२) सम्वत् जैसे मुख्य कार्य अपने नाम पर चलाये जाते हैं, न कि उपाधि पर। जैसे चन्द्रगुप्त प्रथम का गुप्त सम्वत्, ईसा का ईसवीय सन् आदि। (३) उपाधि के लिए आवश्यक है कि उस नाम का कोई व्यक्ति हुआ हो। तत्समता के सूचनार्थ वह नाम अपनाया जाता है। जैसे रोम के राजा सीज़र के आधार पर अन्य सीज़र राजा कैसर, ज़ार आदि। इस बात की पुष्टि इस कारण से

भी होती है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त ने अपनी उपाधि महेन्द्रादित्य रखी। ई० पू० प्रथम शताब्दी वाले विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। कुमारगुप्त ने अपने महत्त्व को अधिक सूचित करने के लिए महेन्द्रादित्य उपाधि धारण की। स्कन्दगुप्त ने पुनः विक्रमादित्य उपाधि धारण की और प्रथम ई० पू० के पिता-पुत्र के सम्बन्ध को उसी रूप में स्वीकार किया। विक्रमादित्य उपाधि को यौगिक मानकर 'विक्रम' अर्थात् पराक्रम का सूर्य अर्थ मान सकते हैं; पर महेन्द्रादित्य का कोई ऐसा उचित और सुन्दर अर्थ नहीं निकलता है। उसका अर्थ हो सकता है—महेन्द्रों अर्थात् महाराजों में सूर्य या महाराजा होते हुए सूर्य। महेन्द्रादित्य उपाधि के लिए उचित शब्द नहीं है। यह सिद्ध करता है कि यह किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम था, वह अपनाया गया है।

गुप्तकाल के समर्थक विद्वानों ने उपर्युक्त मौलिक प्रश्न पर पूर्णरूप से विचार नहीं किया है और चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य मानकर अन्य मन्तव्य प्रस्तुत किए हैं। पूर्वोक्त कथन से सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय को किसी भी अवस्था में विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक नहीं मान सकते हैं। अन्य जो युक्तियाँ दी गई हैं, वे इसी आधार पर स्थित हैं। जब आधार ही निराधार है तो अन्य युक्तियों का महत्त्व स्वयं समाप्त हो जाता है।

( २ ) **गुप्तकाल वैभव का समय**—कालिदास ने अपने ग्रन्थों में सुख-समृद्धि और वैभव का वर्णन किया है। ऐसा समय गुप्तकाल ही था।

यह कथन भी सत्य नहीं है। ई० पू० प्रथम शताब्दी में शकों के उच्छेद के पश्चात् भारत की स्थिति अच्छी हो चुकी थी। प्राचीन धर्म-कर्म की सुप्रतिष्ठा भी उस समय हो गई थी।

( ३ ) **गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान**—कतिपय विद्वानों ने यह भ्रमपूर्ण मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान हुआ। गुप्तराजा संस्कृत के कवियों आदि के आश्रयदाता थे। प्रथम शताब्दी ई० पू० के बाद और ६ठीं शताब्दी ई० से पूर्व संस्कृत में रचनाएँ नहीं हुईं।

यह मत पूर्णतया भ्रान्त है। संस्कृत-साहित्य के निर्माण का कार्य इन शताब्दियों में भी बन्द नहीं हुआ। काव्य आदि का निर्माण पूर्ववत् चालू रहा। प्रथम शताब्दी ई० पू० में स्वयं कालिदास हैं। प्रथम शताब्दी ई० में अश्वघोष का समय है। स्मृतियों, पुराणों आदि की रचना इस काल में होती रही है।

जहाँ तक संस्कृत-कवियों के आश्रय देने का सम्बन्ध है, उस विषय में संस्कृत साहित्य में दो ही राजाओं का मुख्यतया उल्लेख मिलता है। एक प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य और बाद में परमारवंशी धारा के राजा भोज (१००५–१०५४ ई०) संस्कृत की अभिवृद्धि में गुप्त राजाओं का यशोगान कहीं भी नहीं मिलता।

(४) **कालिदास के ग्रन्थों में गुप् धातु का प्रयोग**—कालिदास ने रघुवंश आदि में गुप् धातु का बार-बार प्रयोग किया है, जैसे रघु० १-२१, १-५५, २-३, २-२४,४-२०,४-२६ आदि। गुप् धातु का प्रयोग गुप्त राजाओं के स्मृत्यर्थ किया गया है। अतः ज्ञात होता है कि वह किसी गुप्त राजा के आश्रित था।

यह तर्क असंगत है। (क) किसी कवि के कुछ शब्दों या धातुओं को लेकर कुछ निष्कर्ष निकालना तभी सम्भव है, जब वह प्रयोग किसी विशेष अर्थ को लेकर हुआ हो या कुछ विशेष संकेत करता हो। एक सामान्य प्रयोग वाली धातु को लेकर इस प्रकार का अर्थ निकालना मरुमरीचिका में जलप्राप्ति की अभिलाषा है। (ख) कालिदास ने सुरक्षा करने के अर्थ में गुप् धातु का प्रयोग किया है और सामान्य रक्षा के अर्थ में पा, रक्ष् और त्रै धातुओं का प्रयोग किया है। गुप् धातु का बार-बार प्रयोग रामायण, महाभारत आदि में भी मिलता है। इसका पारिभाषिक और राजनीतिक सुरक्षा अर्थ में कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में बार-बार प्रयोग मिलता है। जैसे मनु० ७-१४, ५६, ७६; ८-३७४ से ३७८, याज्ञवल्क्य० १-३११ से ३२१। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गुप्त गुप्ति आदि शब्दों का कितनी ही बार प्रयोग है। रघुवंश में जो गुप् के प्रयोग हैं, वे इसी प्रकार के हैं। (ग) यदि गुप् धातु को गुप्तराजाओं का सूचक मान सकते हैं तो उसके ग्रन्थों में प्राप्त शक् धातु के प्रयोगों को लेकर उसे शक राजाओं का आश्रित कह सकते हैं। इस प्रकार के तर्क बुद्धिसंगत न होने के कारण हास्यास्पद हैं।

(५) **कुमारसम्भव में कुमार शब्द**—पूर्व युक्ति के सदृश ही दूसरी हास्यास्पद युक्ति है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के जन्म के स्मृत्यर्थ कालिदास ने कुमारसम्भव में कुमार शब्द रखा है तथा रघुवंश आदि में भी इसका प्रयोग किया है।

यह युक्ति भी उचित नहीं है। (क) संस्कृत में पुत्रार्थक शब्दों में कुमार शब्द सबसे अधिक प्रचलित है। कादम्बरी, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस आदि ग्रन्थों

Funding by IKS-MoE

में भी इस शब्द का सामान्य रूप से बार-बार प्रयोग है। पुत्र, सुत, तनय, ग्रात्मज ग्रादि के तुल्य इसका भी प्रयोग कालिदास ने किया है। पुत्रार्थक शब्दों में केवल कुमार का ही प्रयोग किया हो, ऐसी बात नहीं है। (ख) शिव के पुत्र स्कन्द के लिए कुमार शब्द भी विशेष प्रचलित शब्दों में है, ग्रतः कुमार शब्द का प्रयोग कुमारसम्भव नाम में है। (ग) यदि कालिदास कुमारगुप्त या गुप्त राजाग्रों के स्मृत्यर्थ कुमारसम्भव लिखता है तो उसके लिए यह ग्रधिक उचित ग्रौर सम्भव था कि वह रघुवंश के तुल्य 'गुप्तवंश' नामक महाकाव्य लिखता।

( ६ ) **चन्द्र शब्द का प्रयोग**—कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती-स्वयंवर के श्लोकों में तथा ग्रन्य स्थलों पर चन्द्र ग्रौर इन्दु ग्रादि चन्द्रवाची शब्दों के प्रयोग किए हैं। जैसे—'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः', 'इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै' ग्रादि। ये प्रयोग चन्द्रगुप्त के सूचक हैं। इसी प्रकार कुछ श्लोकों में समुद्र शब्द समुद्रगुप्त का सूचक है।

यह युक्ति भी ग्रसंगत है। संस्कृत के सभी काव्यग्रन्थों में चन्द्र या चन्द्रमा-वाची शब्दों का प्रयोग है। काव्यों में चन्द्रवर्णन एक सामान्य वर्णन है। कहीं पर भी चन्द्र नाम ग्राते ही चन्द्रगुप्त समझने लगना ग्रपनी बुद्धि को धोखा देना है। इसी प्रकार समुद्र के लिए समुद्र शब्द ग्रति प्रचलित शब्दों में है। इन शब्दों के प्रयोग के ग्राधार पर कोई मन्तव्य उपस्थित करना सर्वथा भ्रमात्मक है।

( ७ ) **विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द**—विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लिए है।

यह युक्ति भी ठीक नहीं है। विक्रम शब्द पराक्रमवाची है, यह पुरूरवा के पराक्रम का सूचक है। पुरूरवा के स्थान पर विक्रम शब्द विक्रमादित्य का सूचक है। यह विक्रमादित्य नाम को सूचित करता है, न कि विक्रमादित्य उपाधि को। इतिहास में भी चन्द्रगुप्त ग्रपने नाम से प्रसिद्ध है, न कि विक्रमादित्य नाम से। यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि किसी व्यक्तिविशेष के उल्लेख के लिए उसका नाम दिया जाता है, न कि उपाधि का।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इतिहास में कम से कम चार व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जो विक्रमादित्य नाम या उपाधि वाले हैं। (१) उज्जैन के राजा विक्रमादित्य, जिसने ५६ ई० पू० में विक्रम सम्वत् चलाया। (२) चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१३ ई०)। (३) स्कन्दगुप्त (४५५-४६७ ई०)। (४) काश्मीर

Funding by IKS-MoE

का राजा विक्रमादित्य (५०० ई०)। अतः विक्रम शब्द उसी विक्रमादित्य का संकेत कर सकता है, जिसका यह नाम हो।

(८) **मालविकाग्निमित्र की रचना**—मालविकाग्निमित्र नाटक कालिदास ने चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त के वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय के साथ हुए विवाहोत्सव पर लिखा होगा या उस अवसर पर उसका अभिनय किया गया होगा।

यह युक्ति अत्यन्त निःसार है। (क) गुप्तराजा की पुत्री के विवाहोत्सव पर कालिदास को अग्निमित्र राजा स्मरण आया, यह आश्चर्य की बात है। इसका अभिप्राय है कि उसके सम्मुख कोई उल्लेखनीय प्रतापी गुप्तराजा नहीं था, जिसके नाम पर नाटक लिखता। (ख) मालविकाग्निमित्र की रचना यह सिद्ध करती है कि उसके मस्तिष्क में अग्निमित्र का नाम गूंज रहा था। वह उसका नाम अमर करना चाहता था। उसमें उसने अग्निमित्र के पराक्रम का वर्णन किया है और भरतवाक्य में भी अग्निमित्र की प्रशंसा की है। मालविकाग्निमित्र की रचना गुप्तकाल के मत को सर्वथा त्रुटिपूर्ण सिद्ध करती है। इस नाटक से यह सिद्ध होता है कि वह अग्निमित्र के समय के आसपास ही हुआ है और अग्निमित्र के पराक्रम से वहुत प्रभावित था। अग्निमित्र पुष्यमित्र का पुत्र था। पुष्यमित्र १८४ ई० पू० में मौर्यवंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर गद्दी पर बैठा। शुंगवंश का राज्य ७३ ई० पू० तक रहा है। अग्निमित्र का समय १५० ई० पू० के लगभग होगा। कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० पू० में उसके जीवन की घटनाएँ विशेष रूप से ज्ञात होंगी, अतः उसने उनका उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों ने इस विषय में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि वाण ने हर्षचरित में उल्लेख किया है कि "सेना का निरीक्षण करने के वहाने मूर्ख बृहद्रथ राजा को बुलाकर सेनापति पुष्यमित्र ने उसे मार डाला।" यह वर्णन पुराणों आदि में अप्राप्त है। इस विषय में कथन है कि घटना का उल्लेख कोई भी कवि कर सकता है, परन्तु अपने ग्रन्थ का या नाटक का नायक किसी विशेष व्यक्ति को ही वनाया जाता है। अग्निमित्र को किसी विशेष कारण से ही नायक वनाया गया है। यदि चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त के स्मृत्यर्थ विक्रमो० और कुमारसंभव लिखे जा सकते थे तो मालविकाग्निमित्र के लिए भी कोई गुप्तराजा नायक ढूंढ़ा जा सकता था।

Funding by IKS-MoE

(९) **रघु-दिग्विजय और समुद्रगुप्त-दिग्विजय में साम्य**—गुप्तकाल के

समर्थक रघुवंश में रघु के दिग्विजय में समुद्रगुप्त (३३५-३७५ ई०) के दिग्विजय का प्रभाव देखते हैं। उनका कथन है कि हरिषेण-लिखित प्रयागवाली प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के दिग्विजय को देखकर कालिदास ने रघु के दिग्वजय का वर्णन किया होगा। दोनों में साम्य भी पर्याप्त है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त के द्वारा किए गए अश्वमेध को ध्यान में रखकर मालविकाग्निमित्र में पुष्यमित्र के अश्वमेध का वर्णन है।

ये युक्तियाँ निम्नलिखित कारणों से असंगत हैं—(क) दिग्विजयों का वर्णन रामायण, महाभारत, पुराणों आदि में भी मिलता है। उसके लिए समुद्रगुप्त के दिग्विजय को आधार मानना अनावश्यक है। (ख) समुद्रगुप्त को दिग्विजय के समय कावेरी नदी के तट पर पाण्ड्य राजा ने पीछे हटा दिया था, अतः उसका दिग्विजय आदर्श नहीं हो सकता। कालिदास के अनुसार रघु ने कावेरी के नीचे भी प्रायः सम्पूर्ण दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। अतएव कालिदास ने कहा है—दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि। तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥ (रघु० ४–४९)। उसने पाण्ड्य राजाओं को भी जीता था। (ग) पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध किये थे। यह इतिहास से सिद्ध है। अयोध्या के शिलालेख से भी यह सिद्ध होता है। एक अश्वमेध यज्ञ में महाभाष्यकार पतंजलि ही संभवतः पुरोहित थे। पुष्यमित्र ने यवनों को भी पराजित किया था। ये ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। इनके लिए समुद्रगुप्त के अश्वमेध को स्मरण करना सर्वथा अनावश्यक है।

(१०) **हूणों का उल्लेख**—कालिदास ने निम्नलिखित श्लोकों में हूणों का उल्लेख किया है और उनका निवासस्थान वङ्क्षु नदी माना है :—

विनीताध्वश्रमास्तस्य वङ्क्षुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धान् लग्नकुङ्कुमकेसरान्॥
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥ रघु० ४. ६७-६८

यह वंक्षु नदी बाल्हीक (वर्तमान बलख) देश में वहने वाली आक्सस (oxus) नदी है। ४५० ई० के लगभग हूण वहाँ पर थे। ४५० के लगभग कुमारगुप्त के राज्यकाल में उन्होंने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। युवराज स्कन्दगुप्त ने उनसे युद्ध किया। ४५५-४५६ ई० के गिरनार शिलालेख से यह ज्ञात होता है—

Funding by IKS-MoE

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे० इत्यादि । अतः कालिदास का समय ४५० ई० के बाद में मानना चाहिए ।

यह कथन भी निम्नलिखित कारणों से ठीक नहीं है--(क) हूणों का उल्लेख महाभारत तथा पुराणों के भुवनविन्यास प्रकरण में है । कालिदास ने दिग्विजय के प्रकरण में पारसीक, यवन, हूण, काम्बोज आदि जिन जातियों का उल्लेख किया है, वे सब नाम महाभारत और पुराणों में मिलते हैं । महाभारत (१-५५-१ से ३) में हूणों आदि के नाम हैं--

**चीनान् शकांस्तथा चोड्रान् बर्बरान् वनवासिनः ।**
**वार्ष्णेयान् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा ॥**

महाभारत आदि के आधार पर कालिदास ने हूणों का वर्णन किया है । (ख) कालिदास का दिग्विजय का वर्णन कवित्व-प्रधान है । अतः उसने महाभारतादि में वर्णित सभी जातियों का उल्लेख कर दिया है । अतएव डॉ० ब्यूलर का कथन है कि इन सभी जातियों का उल्लेख महाभारत और पुराणों में है । वस्तुतः इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं बता सकते हैं, जिस समय ये सभी जातियाँ एक समय में रही हों । (ग) पारसियों के धर्मग्रन्थ अवस्ता में हूणों का उल्लेख है । कनिष्क (७८ ई० के लगभग) के समय में लिखित 'ललितविस्तर' में बुद्ध ने वचपन में जिन लिपियों को सीखा, उनमें हूणों का भी उल्लेख है । य निर्देश ई० पू० में हूणों की स्थिति प्रकट करते हैं । (घ) प्रो० आर० एन० आप्टे ने सिद्ध किया है कि लगभग २५० ई० पू० में हूण बैक्ट्रिया में थे । मध्य एशिया के इतिहास से भी ज्ञात होता है कि हूण द्वितीय शताब्दी ई० पू० में भारत के पश्चिमी भाग में विद्यमान थे । गर्गसंहिता ने ई० पू० प्रथम शताब्दी में शकों और हूणों के घोर आक्रमण का वर्णन किया है । इस हूण जाति का मूल नाम ह्यूंगनू जाति था । इसने यूची जाति को मध्य एशिया से भगाया था । यूची जाति ऑक्सस नदी (आमू नदी) पर आ बसी । यही जाति आगे चलकर कुशान नाम से प्रसिद्ध हुई । कनिष्क इसी जाति का राजा था । उधर हूण भी अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे । वे द्वितीय शताब्दी ई० पू० में भारत के पश्चिमी भाग पर आ चुके थे, अतएव महाभारत आदि में उनका उल्लेख है । (ङ) कुछ विद्वानों ने वङ्क्षु नदी का अर्थ ऑक्सस (आमू) नदी लिया है, परन्तु उक्त वर्णन में उसके तट पर कुंकुम और केशर का वर्णन किया गया है । केसर काश्मीर में ही प्रधानतः होता है, अतः काश्मीर में बहने वाली सिन्धु नदी वंक्षु का अर्थ समझना

Funding by IKS-MoE

अधिक उचित है। प्रो० राय ने विष्णुपुराण आदि के उद्धरणों से सिद्ध किया है कि वंक्षु और सिन्धु नदी पर्यायवाची हैं। (राय, शाकुन्तल की भूमिका, पृ० ८)

(११) **दिङ्नाग का उल्लेख**—मेघदूत (पूर्वमेघ श्लोक १४) में कालिदास ने दिङ्नाग और निचुल का नामोल्लेख किया है—

**स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं**
**दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥**

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में कहा है कि निचुल और दिङ्नाग ये दोनों कवि कालिदास के सहपाठी थे। कालिदास ने उनका उल्लेख किया है। निचुल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। दिङ्नाग के विषय में पर्याप्त विवाद है। इस नाम का एक बौद्ध दार्शनिक था, जो वसुबन्धु का शिष्य था। इसका समय प्रो० कीथ ४०० ई० मानते हैं, कुछ ४५० ई० और कुछ छठी शताब्दी ई० मानते हैं।

कालिदास के इस कथन में दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक का उल्लेख इन कारणों से नहीं माना जा सकता है। (क) कालिदास सामान्यतया श्लेष का प्रयोग बहुत कम करते हैं। (ख) यदि ध्वनि द्वारा दिङ्नाग माना भी जाय तो उसका साथी कवि था। उक्त दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक है, कवि नहीं। (ग) बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग उसका प्रतिस्पर्धी था, इसका कोई आधार नहीं है। (घ) कालिदास अपने विरोधी का नाम स्थायी बनाता, यह सर्वथा असंगत प्रतीत होता है। विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि उसने 'दिङ्नागानाम्' में आदरसूचक बहुवचन दिया है। ऐसा प्रयोग विरोधी के लिए संभव नहीं है। (ङ) बौद्ध दिङ्नाग उज्जैन या मालवा का निवासी नहीं था और न विक्रमादित्य का आश्रित कवि। (च) एक कुन्दमाला नाटक प्राप्त हुआ है। इसका लेखक दिङ्नाग है। उसके नान्दीपाठ में हेरम्ब (गणेश) और शिव की स्तुति से ज्ञात होता है कि वह हिन्दू कवि था। कुछ पाण्डुलिपियों के आधार पर इसका नाम 'धीरनाग' माना जाता है। कवि होने के कारण इसे कालिदास का प्रतिस्पर्धी माना जा सकता है। परन्तु यह कालिदास का समकालीन था, यह सर्वथा सन्दिग्ध है। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग कवि माना है, वह कोई अन्य ही कवि था। (छ) दिङ्नागानाम् में दिङ्नाग शब्द मुख्यतः दिग्गज के लिए है।

(१२) **ज्योतिष के शब्दों का प्रयोग**—कालिदास ने अपने ग्रन्थों में कुछ ज्योतिष के शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे राशियों के नाम, जामित्र शब्द आदि। राशियों के नाम, जामित्र आदि शब्द मूलतः यूनानी हैं, इनका सर्वप्रथम प्रयोग

आर्यभट (जन्म सन् ४७६ ई०) ने किया है, अतः कालिदास का समय इसके बाद का होना चाहिए। कालिदास के प्रयोग हैं—(१) तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम् (कुमार० ७-१)। जन्मपत्री में लग्न से सातवें स्थान को जामित्र कहते हैं। मल्लिनाथ का कथन है—जामित्रं लग्नात् सप्तमं स्थानम्। इस सातवें स्थान पर स्त्री के सौभाग्य आदि का विचार होता है। यह जामित्र शब्द यूनानी शब्द 'डाएमेट्रन' (Diametron) का परिवर्तित रूप है। (२) ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैः० (रघु० ३-१३) रघु के जन्म के समय पाँच ग्रह उच्च स्थानों पर थे। पाँच ग्रहों का उच्च स्थानों पर होना महाराजत्व या अतियशस्विता का सूचक है।

कालिदास और वराहमिहिर के ग्रन्थों में भी समता पाई जाती है। वराहमिहिर (५०५–५८७ ई०) ने 'अयनबिन्दु' निश्चित किया था। उसने वर्षाऋतु का प्रारम्भ आषाढ़ से माना है। उससे पूर्व दक्षिणायन का अर्थात् वर्षा ऋतु का प्रारम्भ श्रावण में माना जाता था। कालिदास ने आषाढ़ में वर्षा ऋतु मानी है। मेघदूत (१-२) में उसने कहा है—आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्। (२) भूमि की छाया पड़ने से चन्द्रग्रहण। वराहमिहिर—भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः। बृहत्संहिता, राहुचार। कालिदास—छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः। (रघुवंश १४-४०)। (३) सूर्य की किरणों से चन्द्रमा का प्रकाशित होना। वराहमिहिर—सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम्। बृहत्संहिता, चन्द्रचार। कालिदास—पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः। (रघुवंश ३-२२)। वराहमिहिर विक्रमादित्य के नवरत्नों में था, अतः कालिदास वराहमिहिर का समकालीन होना चाहिए।

उपर्युक्त युक्तियाँ निम्नलिखित कारणों से कालिदास के गुप्तकालीन होने की समर्थक नहीं मानी जा सकती हैं। (क) यहाँ पर विशेष विचारणीय यह है कि भारतीयों ने यूनानियों से ज्योतिष सीखा या यूनानियों ने भारतीयों से। पाश्चात्य विद्वानों ने जानबूझकर प्रयत्न किया है कि भारतीय साहित्य में विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ भी उल्लेख हैं, उन्हें यूनान की या रोम की देन सिद्ध करें। इस प्रयत्न का मूल कारण शास्त्रीय या साहित्यिक न होकर पूर्णतया राजनीतिक था। पाश्चात्य विद्वान् यह सहन नहीं कर सकते थे कि भारतीयों को किसी भी विज्ञान का जन्मदाता माना जाए, क्योंकि इससे भारतीयों का महत्त्व बढ़ेगा और उनमें स्वाभिमान जागृत होगा। साथ ही यह सिद्धान्त खण्डित हो जाएगा

Funding by IKS-MoE

कि पश्चिम ने संसार को विज्ञान की देन दी है। वस्तु-स्थिति यह है कि सिकन्दर ने ३२६ ई० पू० में भारत पर आक्रमण किया था। उस समय से भारतीयों और यूनानियों का संबन्ध स्थापित हो गया था। उस समय तक भारत ज्योतिष आदि में पर्याप्त उन्नति कर चुका था। यूनानियों ने भारतीयों बहुत कुछ विज्ञान आदि की बातें सीखीं। यूनानियों ने ईसा से कई शताब्दी पूर्व बेबीलोनिया के लोगों से ज्योतिष सीखा था और बेबीलोनियावालों ने भारत से। बेबीलोनिया के साथ भारत का सम्बन्ध चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में हो चुका था। इस परम्परा से अनेकों ज्योतिष आदि के पारस्परिक भारतीय शब्द यूनानियों आदि तक पहुँचे।

(ख) ईसा से ५०० ई० पू० के बोधायन के गृह्यसूत्रों में राशियों के नाम आदि मिलते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीतारहस्य (भूमिका पृ० ५६७) में उसका उद्धरण दिया है कि—'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः'। इसमें मीन, मेष, वृष राशियों का उल्लेख है। रामायण, महाभारत आदि में भी राशियों के नाम आदि मिलते हैं। अतः कालिदास ने भारतीय परम्परा से ये शब्द लिये हैं। (ग) जामित्र शब्द को यूनानी शब्द डाएमेट्रन का परिवर्तित रूप मानना भयंकर भूल है। इसके कारण हैं—(१) ई० पू० में भारत में ज्योतिष का प्रचार था और ये शब्द प्रचलित थे। (२) जामित्र शब्द शुद्ध भारतीय शब्द है। जामिं त्रायते इति जामित्रम्। जामि शब्द का प्रयोग वेदों में स्त्री के लिए अति प्रचलित है। जन्मपत्री के सप्तम स्थान पर स्त्री की सुरक्षा, उसके सौभाग्य आदि का विचार होता है, अतः जामित्र नाम अत्यन्त उचित है। 'जायामित्र' शब्द से जामित्र मानना सन्दिग्ध है। (३) यह अधिक संभव है कि जामित्र शब्द को लेकर यूनानियों ने Diametron शब्द को जन्म दिया हो। (४) यदि जामित्र शब्द को 'तुष्यतु दुर्जनः' न्याय से यूनानी देन मान भी लें तो भी गुप्तकालीन होना सिद्ध नहीं होता। सिकन्दर के समय से भारत और यूनान का संबंध होने से लगभग तीन शताब्दियों के अन्दर प्रथम शती ई० पू० में यह शब्द भारत में प्रचलित हो चुका होगा। (५) यहाँ यह भी स्मरण रखना उचित है कि ऐसे शब्द अश्वघोष के ग्रन्थों में भी मिलते हैं। परन्तु अश्वघोष को चतुर्थ या पंचम शताब्दी ई० में लाने का पाश्चात्त्य विद्वान् प्रयत्न नहीं करते। इससे ज्ञात होता है कि उनका प्रयत्न कितना पक्षपातपूर्ण और राजनीतिक है। (घ) ग्रहों की उच्चता नीचता आदि का विवेचन भी प्राचीन ज्योतिष के साथ संबद्ध है। यह ई० पू० में विद्यमान था।

(ङ) वराहमिहिर के ग्रन्थों से समता भी कालिदास के ऋणी होने को सूचित नहीं करती है । उसके कारण हैं—(१) आषाढ़ में वर्षा का आरम्भ देखकर कालिदास ने मेघदूत में यह वर्णन किया है । (२) कालिदास के 'छाया हि भूमेः' श्लोक में चन्द्रग्रहण का वर्णन नहीं है, अपितु चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक का उल्लेख है, जिसके कारण चन्द्रमा को मृगांक या शशांक आदि कहते हैं । (३) सूर्य की किरणों से चन्द्रमा का प्रकाशित होना, यह तथ्य वराहमिहिर की देन नहीं है । स्वयं यजुर्वेद में इस वैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख है—सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो० (यजुर्वेद १८-४०) । सुषुम्ण नामक सूर्य की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । इसी तथ्य को ईसा से पूर्व ८वीं शताब्दी में हुए यास्काचार्य ने निरुक्त में कहा है—अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, तदेतेनोपेक्षितव्यम् । आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति । (निरुक्त २-६) ।

यजुर्वेद और निरुक्त के उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि भारतीय ऋषि और विद्वान् वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसन्धान और ज्ञान से रहित थे, ऐसा पाश्चात्त्यों का विचार सर्वथा भ्रान्त और प्रमादपूर्ण है । प्रत्येक वैज्ञानिक तथ्य के लिए यूनानियों का ऋणी बताना, यह उनकी राजनीतिक चाल है । खेद है कि कुछ अन्धविश्वासी एवं दास-मनोवृत्ति-प्रधान भारतीय विद्वान् भी उनके वक्तव्यों को आप्तवाक्य मानकर औचित्य-अनौचित्य का विचार किए बिना ही प्रामाणिक मान बैठते हैं ।

**(१३) कालिदास पर अश्वघोष का प्रभाव**—अश्वघोष कनिष्क (७८ ई०) का आश्रित कवि था । अतः उसका समय ७८ ई० के लगभग माना जाता है । उसके ग्रन्थ बुद्धचरित और सौन्दरनन्द तथा कालिदास के ग्रन्थों में कई स्थानों पर बहुत समता प्राप्त होती है, अतः गुप्तकाल के समर्थक विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास ने ये विचार अश्वघोष से लिए हैं, अतः वह अश्वघोष से परकालीन है । कुछ प्रसंग की समताएँ हैं और कुछ शब्दार्थोक्ति की । जैसे—(१) कुमारसंभव में मदनदाह पर रति-विलाप और सौन्दरनन्द में नन्द के बौद्ध भिक्षुक होने पर उसकी पत्नी सुन्दरी का विलाप, (२) सौन्दर० में नन्द-विलाप और रघुवंश में अजविलाप; (३) बुद्धचरित सर्ग ३ में गौतम के दर्शनार्थ स्त्रियों की भीड़ और कुमारसंभव सर्ग ७ में विवाहार्थ हिमालय के ओषधिप्रस्थ नामक नगर में शिव के प्रवेश के समय तथा रघुवंश सर्ग ७ में इन्दुमती के स्वयंवर के बाद कुण्डिनपुर में अज के प्रवेश के समय उनके दर्शनार्थ नगर की

स्त्रियों की भीड़ का वर्णन। बुद्धचरित और रघुवंश के इस वर्णन में बहुत साम्य है। बुद्धचरित में इसका वर्णन सर्ग ३ के श्लोक १३-२४ में है और रघुवंश में सर्ग ७ श्लोक ५-१५ तथा कुमारसंभव सर्ग ७ श्लोक ५६-६२। दोनों के साम्य वाले कुछ विशेष श्लोक नीचे दिए जाते हैं।

(१) वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि, परस्परोपासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि, सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि।
अश्वघोष, बुद्ध० ३-१९

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम्।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः, सहस्रपत्राभरणा इवासन्॥
कालिदास, रघु० ७-११, कुमार० ७-६२

(२) वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा, दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे, जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः॥
अश्वघोष, बुद्ध० १-४१

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः, प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं, भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥
रघुवंश ३-१४

(३) तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ, तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः॥
सौन्दर० ४-४२

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः, शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥
कुमार० ५-८५

(४) आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते, नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च। बुद्ध० १०-४
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं, नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च। रघु० २-४७

(५) अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम्।
बुद्ध० ११-४३

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥ मेघदूत ११४

उपर्युक्त साम्य के आधार पर दोनों पक्षों के समर्थकों ने दूसरे को ऋणी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। गुप्तकाल के समर्थक कालिदास को ऋणी मानते हैं और ई० पू० काल के समर्थक अश्वघोष को ऋणी मानते हैं।

निम्नलिखित कारणों से अश्वघोष का ही ऋणी होना सिद्ध होता है—(क) अश्वघोष और कालिदास दोनों ने ही वहुत से भाव रामायण आदि से लिये हैं। वे दोनों ही रामायण के ऋणी हैं। अतएव दोनों के कई साम्य वाले स्थल रामायण में भी मिलते हैं। जैसे—'वाता ववुः०' और 'दिशः प्रसेदुः०' के भाव के श्लोक रामायण में हैं। 'ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा' (बालकाण्ड २२-४)। परन्तु कालिदास और अश्वघोष के साम्य वाले स्थलों को परस्पर निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में कौन ऋणी है, यह विचारणीय है। अश्वघोष मुख्यतः एक दार्शनिक था, कवि नहीं। उसने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ संस्कृत में काव्य लिखे। कालिदास मुख्यतः कवि है। वह महाकवि से भाव ले सकता था, एक दार्शनिक से नहीं। (ख) यदि कालिदास अश्वघोष को अनुकरणीय या आदरास्पद समझता होता तो मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य०' में भास आदि के साथ अश्वघोष का नाम अवश्य देता। कालिदास का अश्वघोष के विषय में मौन इस बात को स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि अश्वघोष उससे पूर्व नहीं था। (ग) अश्वघोष संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवियों तक में स्थान नहीं पा सका है। उसके काव्यग्रन्थ न बृहत्त्रयी में लिये गए हैं और न लघुत्रयी में। अतः एक सामान्य कवि का अनुकरण कालिदास नहीं करता। (घ) अश्वघोष के काव्यों को इतना हीन माना गया है कि किसी भी प्राचीन साहित्यशास्त्री ने उसके ग्रन्थों से कोई भी उद्धरण या उदाहरण नहीं दिए हैं और न सुभाषित ग्रन्थों में ही उसके श्लोक उद्धृत हैं। अतः कालिदास उसका अनुकरण करने वाला नहीं हो सकता। (ङ) अश्वघोष की काव्यक्षेत्र में अप्रौढ़ता इस बात से सिद्ध होती है कि उसके काव्यों में एक नहीं सहस्रों उदाहरण ऐसे हैं, जहाँ पर उसने केवल पादपूर्त्यर्थ 'नु, खलु, किल, तु, हि, च' आदि पादपूरक शब्द दिए हैं। एक सामान्य पाठक भी उसके ग्रन्थ पढ़ते ही इन पादपूरक अव्ययों को देखता है। पादपूरक अव्ययों का प्रयोग अप्रौढ़ता का सूचक है। (च) अश्वघोष की रचना शिथिल है। वाक्य-विन्यास आदि भी शिथिल हैं। उसकी गणना महाकवियों में नहीं है। अतएव वाण, राजशेखर आदि किसी ने भी उसका उल्लेख नहीं किया है। (छ) बुद्धचरित सर्ग ३ में गौतम के दर्शनार्थ स्त्रियों की भीड़ का वर्णन अप्रासंगिक है। तरुण राजकुमार गौतम पिता की आज्ञा से नगर के बाहर दिन में विहार के लिए जा रहे थे। ऐसे अवसर पर अश्वघोष ने लिखा है कि स्त्रियाँ

Funding by IKS-MoE

नींद से उठीं और केशादि-प्रसाधन की ओर ध्यान न देकर बुद्ध के दर्शनार्थ खिड़कियों पर पहुँची। इस प्रसंग में निद्रा, शृंगार और बुद्ध-दर्शन की इच्छा इस बात को प्रकट करती है कि यह वर्णन अप्रासंगिक है और किसी अन्य के ग्रन्थ से लिया गया है। रघुवंश और कुमारसंभव में प्रासंगिक है। वर-वधू को देखने के लिए सर्वत्र ही स्त्रियों की भीड़ लग जाती है। अश्वघोष ने विवाह का कोई वर्णन नहीं किया है, अतः उसने अप्रासंगिक स्थल पर यह भाव उपस्थित किया है। दूसरी बात यह है कि कालिदास साधारणतया किसी वर्णन को दुहराता नहीं है। उसने रघुवंश और कुमारसंभव दोनों में उन्हीं श्लोकों को दुहराया है। यदि उसने ये भाव कहीं और से लिये होते तो उनको दुहराकर अपनी चोरी का प्रदर्शन न करता। (ज) कतिपय अप्रचलित व्याकरण-सम्बन्धी प्रयोग जो कालिदास के ग्रन्थों में आए हैं, उनका प्रयोग अश्वघोष ने बार-बार किया है। इसलिए अश्वघोष का ऋणी होना ज्ञात होता है। (झ) यह कथन असंगत है कि कालिदास ने अनुकरण करके अश्वघोष के भावों को परिष्कृत किया है। अनुभव-सिद्ध यह है कि किसी आदर्श वस्तु को लेकर अनुकरण किया जाता है। अनुकरण सामान्यतया अपूर्ण ही होता है। जैसे—मेघदूत के आधार पर कितने ही दूत-ग्रन्थ बने, पर कोई भी मेघदूत के सौन्दर्य को प्राप्त नहीं कर सका। इसी प्रकार हिन्दी में बिहारी-सतसई के अनुकरण पर लिखे गए कितने ही सतसई ग्रन्थ उसके समक्ष तुच्छ ही रहे हैं। यह आवश्यक नहीं कि परकालीन कवि उससे बढ़ जाये। अतएव अनुकरण करने पर भी अश्वघोष कालिदास से न्यून ही रहा है। (ञ) शैली की तुलना करने से ज्ञात होता है कि अश्वघोष के काव्यों में कृत्रिमता अधिक है। कई स्थानों पर वह पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए ही रचना करता है। जैसे—सौन्दरनन्द के प्रथम दो सर्गों में और बुद्धचरित के द्वितीय सर्ग में लुङ् लकार का प्रयोग और व्याकरण-ज्ञान का प्रदर्शन किया है कि उसको पढ़कर भट्टि के व्याकरण-प्रधान भट्टिकाव्य का स्मरण हो आता है। जैसे—

**(१) शमेऽभिरेमे विरराम पापाद् भेजे दमं संविबभाज साधून्। बुद्ध० २-३३**
**(२) नाध्यैष्ट दुःखाय परस्य विद्यां ज्ञानं शिवं यत्तु तदध्यगीष्ट। बुद्ध० २-३५**
**(३) यत्र स्म मीयते ब्रह्म कैश्चित् कैश्चिन्न मीयते।**
**काले निमीयते सोमो न चाकाले प्रमीयते। सौन्दर० १-१५**

अन्तिम श्लोक में 'मीयते' का चार विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। मा—देखना, मी—हिंसा करना, नि+मा—निचोड़ना, प्र+मा—मरना। इसी प्रकार

अवीवपत् और अमीमपत् का चार विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। बुद्धचरित ११-७० में अव् धातु का विभिन्न ९ अर्थों में प्रयोग करके व्याकरण का पाण्डित्य-प्रदर्शन किया गया है। कालिदास में ऐसी कृत्रिमता नहीं है और न ऐसा पाण्डित्यप्रदर्शन। (ट) कालिदास के ग्रन्थों में कितने ही अपाणिनीय और वैदिक प्रयोग मिलते हैं, जिससे उसका प्रथम शताब्दी ई० पू० का होना सिद्ध होता है। अश्वघोष में ऐसे अपाणिनीय और वैदिक प्रयोग नहीं हैं।

## प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत

प्राचीन भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में था। इस मत के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप हैं—

(क) **विक्रमादित्य ऐतिहासिक नहीं**—प्रथम शताब्दी ई० पू० में कोई राजा विक्रमादित्य था, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य राजा था। (१) सोमदेव-कृत 'कथासरित्सागर' में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख है। यह ग्रन्थ गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' पर आश्रित है। गुणाढ्य का समय लगभग ७८ ई० माना जाता है। गुणाढ्य प्रथम शताब्दी ई० में था, अतः विक्रमादित्य के विषय में उसका उल्लेख प्रामाणिक समझना चाहिए। उस पर आश्रित होने के कारण कथासरित्सागर का वर्णन भी ऐतिहासिक और प्रामाणिक समझना चाहिए। इसके अनुसार यह विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा परमारवंशी महेन्द्रादित्य का पुत्र था। इसने शकों का समूल उच्छेदन किया और इस महत्त्वपूर्ण घटना के उपलक्ष्य में उसने संवत् चलाया, जो 'मालवगणस्थिति' नाम से चला और बाद में विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने म्लेच्छों का नाश किया, नास्तिकों का उच्छेदन किया और वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। पिता और पुत्र दोनों ही शैव थे। विक्रमादित्य ने उज्जैन के महाकाल-मन्दिर को बनवाया था। कथासरित्सागर में विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का वर्णन है कि—

ततश्च यौवनस्थं तं विलोक्य प्राज्यविक्रमम्।
अभिषिच्य सुतं राज्ये यथाविधि जनप्रियम्॥
महेन्द्रादित्यनृपतिः सभार्यः सचिवोऽपि सः।
वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिश्रिये शिवम्॥

BVBSSMV

**सोऽपि तद् विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पैतृकम् ।**
**नभो भास्वानिवारेभे राजा प्रतपितुं क्रमात् ।।** कथा० २८-५६, ६०, ६१ ।

उपर्युक्त श्लोकों में विक्रमादित्य, उसके पिता महेन्द्रादित्य तथा उनके शैव होने का स्पष्ट निर्देश है। यह विक्रमादित्य ही अपनी न्यायप्रियता, पराक्रम आदि के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। (२) सातवाहन राजा हाल (प्रथम शताब्दी ई०) ने अपने ग्रन्थ 'गाथा-सप्तशती' में एक विक्रमादित्य राजा का उल्लेख किया है। संवाहण सुहरस…………चलणेन विक्कमाइत्तचरिअं (गाथा० ५–६४)। टीकाकार गदाधर ने लिखा है कि —विक्रमादित्योऽपि…..भृत्यस्य करे लक्षं ददाति इत्यर्थः। अर्थात् उस दानी और पराक्रमी विक्रमादित्य ने अपने नौकर के पराक्रम पर प्रसन्न होकर उसे एक लाख रुपए पुरस्कार में दिए। हाल प्रथम शताब्दी ई० का है। अतः उसका उल्लेख प्रामाणिक समझना चाहिए। (३) साहित्यिक प्रमाणों को भी शिलालेख आदि के तुल्य प्रामाणिक समझना चाहिए। इतिहासज्ञों ने विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य की ही ऐतिहासिकता पर सन्देह नहीं किया है, अपितु शक-संवत् के प्रवर्तक पर भी सन्देह उपस्थित किया है। यही नहीं, इतिहासज्ञों ने ईसवीय सन् के प्रवर्तक ईसा की ऐतिहासिकता को भी सन्दिग्ध माना है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ H. G. Wells के शब्दों में ईसा की ऐतिहासिक सत्यता यह है—

"To assume that he never lived, that the accounts of his life are inventions, is more difficult and raises far more problems for the historians than to accept the essential elements of the Gospel stories as fact." (The three greatest men in history लेख से)।

इतिहासज्ञों के लिए विशेष विचारणीय यह है कि क्या संसार के किसी भाग में भी यह संभव है या हुआ है कि कोई व्यक्ति न रहा हो और उसके नाम से संवत् चल पड़े और परकालीन व्यक्ति बिना सन्देह के उसकी ऐतिहासिकता को मान लें। ईसा का भी कोई शिलालेख नहीं है। इसी प्रकार सैकड़ों राजा आदि हुए हैं, जिनके शिलालेख आदि नहीं हैं। इतने से उनकी ऐतिहासिकता समाप्त नहीं हो जाती। (४) यह विक्रमादित्य उज्जयिनी का राजा था, गुप्त-राजा पाटलिपुत्र के राजा थे। कालिदास उज्जयिनी के विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। यद्यपि गुप्त-राज्य में उज्जैन भी था, परन्तु उनकी राजधानी पाटलिपुत्र ही थी। उज्जैन केवल प्रान्तीय राजधानी थी। (५) विन्सेन्ट स्मिथ

1335

(Vincent Smith) और एडगर्टन (Edgerton) इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य की सत्ता संभव है। (६) मेरुतुंगाचार्य की जैन-चरित-पद्यावली में भी विक्रमादित्य का उल्लेख है। उसके अनुसार यह घटना महावीर के निर्वाण के ४७० वें वर्ष में हुई। महावीर का निर्वाण ५२७ ई०पू० में हुआ। अतः ५२७–४७०=५७ ई० पू० समय विक्रमादित्य का सिद्ध होता है।

निम्नलिखित कारणों से कालिदास को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का आश्रित कवि मानना उचित है। (१) उज्जयिनी के राजा शैव थे। कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह शिवभक्त था। उसने शाकुन्तल, रघुवंश, कुमारसंभव आदि में शिव की ही स्तुति की है। गुप्त राजा वैष्णव थे, अतः वह उनका आश्रित नहीं हो सकता है। (२) उज्जयिनी के राजा सूर्यवंशी थे। रघुवंश में सूर्यवंशी राजाओं का ही वर्णन है। गुप्तराजा चन्द्रवंशी थे। (३) विक्रमोर्वशीय में कालिदास ने नायक पुरूरवा के स्थान पर विक्रम नाम विक्रमादित्य के स्मरणार्थ रखा है। साथ ही उसके पिता महेन्द्रादित्य के स्मृत्यर्थ उसने इन्द्र शब्द के लिए महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है। साधारणतया कालिदास उसी शब्द की पुनरावृत्ति नहीं करता है। उसने प्रथम अंक में ६ बार महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है। तृतीय अंक के विष्कम्भक में ४ बार महेन्द्र का प्रयोग है, यद्यपि विष्कम्भक दो ही पृष्ठ का है। इसी प्रकार अन्तिम अंक में भी ४ बार महेन्द्र का प्रयोग है। इनमें से कुछ विशेष संकेत करते हैं। विक्रमोर्वशीय संभवतः विक्रमादित्य के राज्याभिषेक के समय खेला गया था। निम्नलिखित स्थल उसी का संकेत करते हैं।

(क) दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्। अंक १
(ख) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः। अंक १
(ग) सदृशं पुरुषान्तरविदो महेन्द्रस्य। अंक ३
(घ) प्रथमं पुत्रदर्शनेन विस्मृतास्मि। इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति। अंक ५
(ङ) रम्भे उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः। अंक ५

(४) विक्रमादित्य संस्कृत भाषा का संरक्षक और उद्धारक था। वह कवियों का आश्रयदाता था। अतः वह कालिदास का आश्रयदाता रहा होगा। (५) रघुवंश ६–३२ में उसने अवन्ति के राजा (विक्रमादित्य) का उल्लेख

किया है और उसके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की है । अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुः …. यन्त्रोल्लिखितो विभाति ।

**(ख) विक्रमादित्य उपाधिमात्र**––कुछ विद्वानों ने यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में जिस विक्रमादित्य को मानते हैं, संभवतः विक्रमादित्य उसकी उपाधि रही होगी ।

यह वक्तव्य ठीक नहीं है । प्रथम शताब्दी ई० पू० वाले व्यक्ति का नाम ही विक्रमादित्य था । उसकी न्यायप्रियता आदि गुणों के कारण उसके नाम से सैंकड़ों कथाएँ प्रचलित हो गईं । उसके आदर्श को मानकर ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की । महापुरुषों के नाम बाद में उपाधि के रूप में प्रचलित हो जाते हैं, यह सामान्य प्रथा है । यह प्रथा संसार के प्रायः सभी देशों में है । कुमारगुप्त ने विक्रमादित्य के पिता का नाम अर्थात् 'महेन्द्रादित्य' उपाधि धारण की और स्कन्दगुप्त ने पुनः महेन्द्रादित्य के पुत्र का नाम अर्थात् 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की ।

**(ग) नवरत्नों की अप्रामाणिकता**—ज्योतिर्विदाभरण (२२-१०) के श्लोक धन्वन्तरिक्षपणका० में जिन नवरत्नों का वर्णन है, उनकी ऐतिहासिकता को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है ।

इस श्लोक में धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि—ये ९ विक्रमादित्य के नवरत्न माने गए हैं । इनमें से क्षपणक, शंकु और वेतालभट्ट के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । धन्वन्तरि, वररुचि और घटकर्पर कौन हैं, यह अभी तक निश्चय नहीं हुआ है । अमरसिंह अमरकोष के रचियता के रूप में प्रसिद्ध है । इसका समय भी निश्चित नहीं है । वह ४१४ ई० और ६४२ ई० के मध्य में माना जाता है । वराहमिहिर एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् था । उसका देहान्त ५८७ ई० में हुआ है । इस श्लोक के आधार पर यह सिद्ध करना संभव नहीं है कि ये ९ व्यक्ति कभी भी समकालीन रहे हैं । अतः इन नवों की समकालीनता सन्दिग्ध ही है । इसमें केवल इतना ही प्रामाणिक है कि कोई विक्रमादित्य राजा था और कालिदास उसके नवरत्नों में से था ।

**(घ) विक्रम संवत् के विषय में सन्देह**—इस विषय में यह सन्देह उपस्थित किया गया है कि यदि प्रथम शताब्दी ई० पू० में कोई विक्रमादित्य राजा हुआ होता तो उसी समय से संवत् के साथ 'विक्रम' नाम जुड़ा होता । यह संवत् मालव

संवत्, मालवगणस्थिति आदि नामों से चलता रहा। नवम शताब्दी से यह विक्रम संवत् नाम से चला है। उसमें 'विक्रमकाल' ऐसा निर्देश है। अमितगति का 'सुभाषितरत्नसन्दोह' विक्रम संवत् १०५० में लिखा गया है। इसमें ही सर्वप्रथम निःसन्दिग्ध रूप से विक्रम संवत् का उल्लेख है और विक्रम शब्द विक्रमादित्य राजा के लिए आया है। संवत् ४८०, ४९३, ५२९ और ५८९ के शिलालेखों में इस संवत् का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। इनमें यह संवत् 'मालवानां गणस्थित्या', 'श्रीमालवगणाम्नाते', 'मालवगणस्थितिवशात्' इस रूप में उल्लिखित है। मालवगण के सैकड़ों सिक्के राजस्थान के 'नगर' नामक ग्राम में मिले हैं, जिनमें 'मालवानां जय', 'मालवगणस्य जय' आदि शब्द मिलते हैं।

प्रो० के० एम० शेंबवनेकर ने इस विषय पर विस्तृत विचार किया है और प्रकट किया है कि 'गणस्थिति' का वस्तुतः क्या अर्थ है। (१) 'गण' शब्द का अर्थ है—गणना। गण का यह अर्थ शब्दार्णवकोश ने भी दिया है। 'गणस्थिति' का अर्थ है गणना की पद्धति। उपर्युक्त शिलालेखों के उद्धरणों का अर्थ है—(क) मालवों की गणना की पद्धति से, (ख) मालवों की गणना के अनुसार, (ग) मालवों की गणना-पद्धति के कारण। मालवगणस्थितिवशात् से स्पष्ट है कि यहाँ पर गण का अर्थ गणना है और गणस्थिति का अर्थ गणना-पद्धति है। (२) इस संवत् के साथ विक्रम नाम बाद में जुड़ने का कारण यह ज्ञात होता है कि वह संवत् प्रारम्भ में मालवों की समृद्धि का सूचक रहा। विक्रमादित्य ने अपना व्यक्तिगत नाम जोड़ने की अपेक्षा इसको राष्ट्रीय रूप देने के लिए मालव नाम जोड़ा, परन्तु इस सम्वत् के साथ उसका नाम सम्बद्ध रहा। उसी को बाद में मालव संवत् न कहकर विक्रम संवत् कहने लगे। इससे ज्ञात होता है कि मालव संवत् और विक्रम संवत् पर्यायवाची की तरह प्रयुक्त होते थे। यह भी सम्भव है कि साहित्य आदि के ग्रन्थों में विक्रम संवत् नाम चलता रहा हो और उसी आधार पर यह नाम बाद में रखा गया। (३) यह सम्भव नहीं है कि दूसरे के सम्वत् को दूसरे नाम से चालू कर दिया जाय और लोग उसे मान लें। (४) चन्द्रगुप्त द्वितीय का इस संवत् से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, यह पहले लिखा जा चुका है। (५) यह विक्रमादित्य परमारवंशी उज्जैन का राजा ही है। राजपूतों की वंशावलि में भी उसका उल्लेख है।

## कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० पू० में मानने के कारण

निम्नलिखित कारणों से कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० पू० में मानना

उचित है। (१) कालिदास की भाषा और शैली की गुप्तकालीन शिलालेखों से तुलना करने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि कालिदास की भाषा और शैली उन शिलालेखों से वहुत प्राचीन है। शिलालेखों में कृत्रिमता, लम्बे समासों का होना, पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रभाव इस वात को सिद्ध करता है कि उनमें और कालिदास में कई शताब्दियों का अन्तर है। समुद्रगुप्त की प्रयाग वाली प्रशस्ति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। एक ही समस्त पद लगभग ३० पंक्तियों का है और उस एक वाक्य में ही उसके सारे दिग्विजय का वर्णन है। ऐसी कृत्रिमता कालिदास में सर्वथा नहीं है और न ऐसे समासयुक्त पद। कालिदास की भाषा और शैली रामायण तथा महाभारत की भाषा और शैली के वहुत समीप है। (२) कालिदास ने कितने ही अपाणिनीय प्रयोग किए हैं। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय हुआ था, जब पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित नहीं हुआ था, या अन्य संस्कृत व्याकरण भी पाणिनीय व्याकरण के साथ ही साथ प्रचलित थे। उनके आधार पर ही कालिदास ने ऐसे प्रयोग किए। गुप्तकाल में पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। कोई भी कवि उसके नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। शाकुन्तल के अपाणिनीय प्रयोगों का संग्रह 'कालिदास की शैली' शीर्षक में है। कुछ ऐसे प्रयोग ये हैं—(क) पातयामास को पृथक् करके प्रयोग—तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्। (रघु० ९.६१), (ख) प्रभ्रंशयांचकार को पृथक् करना—प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार। (रघु० १३–३६), (ग) वभूव के स्थान पर वैदिक रूप 'आस' का प्रयोग (रघु० १४-२३, कुमार० १-३५), (घ) कामयमान के स्थान पर कामयान प्रयोग (शाकुन्तल अंक ३), (ङ) दत्तवान् के स्थान पर वैदिक दाश्वान् का प्रयोग (रघु० १४-७१), (च) त्र्यम्बक के स्थान पर वैदिक रूप त्रियम्बक का प्रयोग (कुमार० ३-४४) (३) उन्होंने अप्रचलित एवं वैदिक शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—पेलव, परमेष्ठी, धिष्ण्य आदि शब्द। यही नहीं, उन्होंने शाकुन्तल में 'अमी वेदिं परितः०' (अंक ४ श्लो० ८) यह वैदिक छन्द प्रस्तुत किया है। इससे ज्ञात होता है कि वह वैदिक काल के वहुत समीप थे। रामायण और महाभारत के कितने ही आर्ष प्रयोग और अप्रचलित प्रयोग उसकी रचनाओं में मिलते हैं। (४) उनकी शैली से ज्ञात होता है कि उनके समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। पतंजलि (१५० ई० पू०) के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, यह महाभाष्य के सूत और वैयाकरण के शास्त्रार्थ से सिद्ध होता है।

Funding by IKS-MoE

कालिदास का समय उसके समीप ही होना चाहिए। (५) मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र को नायक बनाना, उसका भरतवाक्य और उस समय के कुछ विशेष उल्लेखनीय तथ्यों पर प्रकाश डालना, उनका अग्निमित्र (१५० ई० पू० के लगभग) के समय के समीप होना सिद्ध करता है। (६) मेघदूत (१-३०) में उल्लेख है कि उज्जैन के वृद्ध उदयन की कथा सुनाएँगे--प्राप्यावन्तीनुदयनकथा-कोविदग्रामवृद्धान्०। इससे ज्ञात होता है कि उनके समय तक उज्जैन में उदयन की कथा अतिप्रचलित थी। उदयन बुद्ध और महावीर का समकालीन था। उदयन की यह प्रसिद्धि ई० पू० में ही सम्भव है। (७) उन्होंने परशुराम को ऋषि माना है, अवतार नहीं। यह ई० पू०में ही था। ई० पू० के बाद में उन्हें अवतार माना गया है। (८) अश्वघोष पर प्रभाव का उल्लेख किया जा चुका है। यह भी ई० पू० में स्थिति को सिद्ध करता है। (९) उन्होंने मेघदूत में विदिशा को एक समृद्ध प्रदेश माना है। अग्निमित्र विदिशा का राजा था। इससे भी ई० पू० सिद्ध होता है। (१०) उन्होंने रघुवंश (६-६०) में पाण्ड्यदेश के राजा का वर्णन किया है—

**पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।**
**आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥**

आगे रघुवंश (६-६३) में उसे दक्षिण का सर्वश्रेष्ठ राजा माना है। अतः इन्दुमती से उसकी सखी सुनन्दा कहती है--'रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।' अर्थात् तू दक्षिण की महारानी बनना। रघुवंश (४-४९) में कालिदास ने पाण्ड्य राजा पर रघु की विजय का वर्णन किया है। 'तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।' इससे सिद्ध होता है कि उसके समय में पाण्ड्य राजा थे। पाण्ड्यों का राज्य चतुर्थ शताब्दी ई० में समाप्त हो चुका था। प्रथम शताब्दी ई० पू० में पाण्ड्यराजा थे। यह ऐतिहासिक प्रमाण स्पष्ट रूप से कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० सिद्ध करता है। (११) भीटा की मुद्रा को प्रो० राय ने ई० पू० का निर्णायक माना है। परन्तु इस युक्ति को उचित आधार नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि इससे यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता कि इसमें शाकुन्तल के अंक १ की ही घटना है अर्थात् राजा रथ पर बैठकर मृग का शिकार कर रहा है। दूसरा कारण यह भी है कि यह सिद्ध नहीं है कि साहित्यिक ग्रन्थों के वर्णन मुद्राओं पर चलते थे। (१२) शाकुन्तल के 'सहजं किल यद् विनिन्दितं०' (६-१) से ज्ञात होता है कि उसके समय में बौद्ध

धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। यह ई० पू० के समय का ही संकेत करता है। (१३) कालिदास के ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य से भी ज्ञात होता है कि उसका समय ई० पू० में था। उसने उत्तराधिकार के नियम और चोरी के दण्ड का जो वर्णन किया है, वह ई० पू० में ही प्रचलित था। शाकुन्तल अंक ६ में धनमित्र वणिक् की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी के विषय में जो वर्णन है, उससे ज्ञात होता है कि उस समय विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। यह स्थिति ई० पू० में ही थी। उस समय मनु, आपस्तम्ब और वसिष्ठ की स्मृतियाँ थीं, उनके अनुसार विधवा स्त्री को अधिकार नहीं था। बाद में लिखे गए याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, शंख और लिखित की स्मृतियों में स्त्री को उत्तराधिकार दिया गया है। इसी प्रकार शाकुन्तल अंक ६ में अँगूठी चुराने का मृत्यु-दण्ड बताया गया है। विक्रमोर्वशीय में भी रत्न चुराने का ऐसा दण्ड बताया गया है, (आत्मनो वधमाहर्ता० अंक ५-१)। मनु और आपस्तम्ब के अनुसार रत्न की चोरी के लिए मृत्यु-दण्ड ही है। बाद की बृहस्पति आदि की स्मृति में आर्थिक दण्ड आदि भी मृत्यु-दण्ड के साथ वैकल्पिक हैं।

उपर्युक्त कारणों से यह सिद्ध होता है कि कालिदास प्रथम शताब्दी ई० पू० में ही हुआ था।

## (६) शाकुन्तल की संक्षिप्त कथा

### अंक १

नान्दी-पाठ के पश्चात् सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करता है और दुष्यन्त का उल्लेख करता है। तत्पश्चात् आश्रम के मृग का अनुसरण करते हुए, रथ पर बैठे हुए धनुर्धारी दुष्यन्त का सारथि के साथ प्रवेश। राजा मृग को मारना ही चाहता है कि इतने में एक तपस्वी का प्रवेश। तपस्वी राजा को सूचित करता है कि यह आश्रम का मृग है, अतः उसे न मारें। राजा कहना मान लेता है। तपस्वी उसे आशीर्वाद देता है कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो और राजा से प्रार्थना करता है कि आश्रम में जाकर अतिथि-सत्कार स्वीकार करें। कुलपति कण्व सोमतीर्थ गये हैं और शकुन्तला अतिथि-सत्कार का काम करती है। राजा सारथि को आश्रम के बाहर छोड़कर साधारण वेष में आश्रम में जाता है। वहाँ वह वृक्षों में जल डालती हुई तीन अतिसुन्दर कन्याओं को देखता है। उनमें से एक शकुन्तला है। राजा उस पर आसक्त हो जाता है। एक भौंरा शकुन्तला को तंग करता है और वह रक्षा की प्रार्थना करती है। राजा जो आड़ में

वृक्ष की ओट में छिपा हुआ था, सामने आता है और उन तीनों से वार्तालाप करता है। बातचीत से उसे ज्ञात होता है कि शकुन्तला विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा इस परित्यक्ता को ऋषि कण्व ने पाला है। वह क्षत्रिय कन्या है, अतः राजा उससे विवाह का विचार दृढ़ करता है। राजा अपने राजत्व को प्रकट नहीं करता है। इसी बीच आश्रम में विक्षुब्ध हाथी का प्रवेश। राजा का अपने सैनिकों को रोकने के लिए प्रस्थान। राजा पर आसक्त शकुन्तला का प्रियंवदा और अनसूया नामक अपनी दोनों सखियों के साथ प्रस्थान।

### अंक २

शकुन्तला पर आसक्त राजा का कामी की अवस्था में प्रवेश। शिकार खेलने से तंग आये हुए विदूषक का अपने विचार प्रकट करना। राजा शिकार खेलने का विचार छोड़ता है और सेनापति को भी मना करता है तथा सैनिकों को आदेश देता है कि वे आश्रमवासियों को कोई दुःख न दें। वह विदूषक को सूचित करता है कि वह शकुन्तला पर आसक्त है। वह विदूषक से कहता है कि कोई बहाना बताओ, जिससे फिर आश्रम में कुछ समय रुकना हो सके। भाग्यवश दो ऋषि-कुमारों का प्रवेश और उनकी राजा से प्रार्थना कि राक्षसों से यज्ञ के रक्षार्थ वे कुछ समय आश्रम में रुकें। राजा की स्वीकृति। राजधानी से दूत का आगमन और माता द्वारा राजा को बुलाया जाना। राजा का अपनी जगह विदूषक को सेना के साथ राजधानी भेजना। विदूषक राजधानी में रानियों को यह घटना न बतावे, अतः राजा का उसको कथन कि यह शकुन्तला से प्रेम की सब बातें केवल हँसी-मात्र है, वास्तविक नहीं।

### अंक ३

शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ है और फूलों की शय्या पर लेटी हुई है। काम-पीड़ित अवस्था में राजा का प्रवेश। पेड़ों की ओट में छिपकर उसका शकुन्तला और उसकी सखियों की बात को सुनना। शकुन्तला का स्वीकार करना कि वह दुष्यन्त पर आसक्त है और उससे विवाह के बिना जीवित न रह सकेगी। अवसर पाकर राजा का सामने आना और शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की घोषणा करना। राजा और शकुन्तला को एकान्त में छोड़कर दोनों सखियों का प्रस्थान। राजा के द्वारा गान्धर्व-विवाह का प्रस्ताव। शकुन्तला की आनाकानी। शान्ति-जल लेकर आश्रम की स्वामिनी गौतमी का प्रवेश। राजा का वृक्ष की ओट में छिपना। गौतमी का शकुन्तला को लेकर जाना। यज्ञ में राक्षसों के विघ्न को दूर करने के लिए राजा का प्रस्थान।

## अंक ४

इस बीच में राजा का शकुन्तला से गान्धर्व-विवाह। राजा का अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान के समय शीघ्र ही शकुन्तला को लिवा जाने के लिए योग्य व्यक्ति को भेजने का आश्वासन। राजा का प्रस्थान। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है। दुर्वासा ऋषि का अतिथि के रूप में आगमन। उनका आतिथ्य न करने पर क्रुद्ध ऋषि का शकुन्तला को शाप कि 'जिसको स्मरण करती हुई तू मुझ आए हुए तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही है, वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचानेगा।" प्रियंवदा का ऋषि को मनाना और दुर्वासा का आश्वासन कि पहचान का कोई आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। प्रियंवदा और अनसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती हैं और न अन्य किसी को। वे समझती हैं कि राजा की अँगूठी शकुन्तला के पास है, इसलिए राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा। यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त होता है।

तीर्थ-यात्रा से लौटने पर ऋषि कण्व को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होता है है कि शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह दुष्यन्त से हुआ है और वह गर्भिणी है। ऋषि इस विवाह का समर्थन करते हैं। दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला को सर्वथा भूल जाता है और उसे लिवाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता। शकुन्तला के गर्भ-चिह्न प्रकट हैं, अतः उसे राजा के पास भेजने का प्रवन्ध किया जाता है। शकुन्तला की विदाई की तैयारी होती है। वनवृक्षों द्वारा आभूषण और रेशमी वस्त्रादि प्राप्त होते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वन-मृगों आदि से विदाई लेती है। वियोग का प्रभावोत्पादक वर्णन हुआ है। ऋषि कण्व द्वारा शकुन्तला को कर्तव्य-शिक्षा और राजा के लिए सन्देश। शकुन्तला का ऋषि से करुणापूर्ण मिलन और विदाई। शकुन्तला के साथ गौतमी और दो तपस्वियों का प्रस्थान। शकुन्तला को पति के पास भेजकर ऋषि को हार्दिक शान्ति प्राप्त होती है।

## अंक ५

शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी शकुन्तला को लेकर राजद्वार पर पहुँचे हैं। राजा के आदेशानुसार वे महल में प्रवेश करते हैं। दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला से विवाह की सारी बात भूला हुआ है। पारस्परिक अभिनन्दन के पश्चात् शार्ङ्गरव ने निवेदन किया की आप दोनों के गान्धर्व-विवाह का ऋषि कण्व ने समर्थन किया है और इसको आपके पास भेजा है।

Funding by IKS-MoE

आप इसे स्वीकार करें। राजा यह सुनकर आश्चर्यान्वित हो जाता है और शकुन्तला से विवाह की घटना को असत्य बताता है। गौतमी शकुन्तला का घूंघट हटाती है, परन्तु राजा उसे नहीं पहचानता। शकुन्तला ने राजा की दी हुई अँगूठी को दिखाकर उसे विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह अँगूठी रास्ते ही में शकुन्तला के हाथ से गिर गई थी, अतः उसका वह उपाय भी निरर्थक रहा। शार्ङ्गरव और राजा में आवेशपूर्ण वार्तालाप होता है। राजा शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता। पुरोहित ने शकुन्तला को पुत्र जन्म तक अपने घर रखने का प्रस्ताव किया। शकुन्तला को छोड़कर उसके साथी चले जाते हैं। शकुन्तला अपने आपको कोसती हुई रोती है। उसी समय एक अप्सरा (मेनका) आकर उसे उड़ा ले जाती है। यह सुनकर सभी आश्चर्य-मग्न हो जाते हैं। राजा खिन्न-हृदय और चिन्ता-मग्न है।

### अंक ६

शकुन्तला के हाथ से शचीतीर्थ के जल में गिरी हुई अँगूठी एक धीवर को मिलती है। वह उसे बेचने के लिए बाजार में आया। पुलिस वालों ने उसे चोर समझकर पकड़ लिया और निर्णय के लिए राजा के पास ले गए। राजा ने धीवर को पुरस्कार देकर छोड़ दिया। उस अँगूठी को देखते ही राजा पर शाप का प्रभाव समाप्त हो गया और उसे शकुन्तला से विवाह की सारी घटना स्मरण हो आई। वह अत्यधिक दुःखित रहने लगा। मेनका की एक सखी सानुमती अदृश्य रूप में राजा के पास आकर उसकी अवस्था को देखती है। राजा विदूषक से वार्तालाप करता है और शकुन्तला के अधूरे चित्र को मँगाकर पूरा करने का प्रवन्ध करता है। इसके पश्चात् प्रतीहारी मन्त्री का एक पत्र लाती है कि धनमित्र नामक एक व्यापारी नौका टूट जाने से समुद्र में मर गया। उसके सन्तान नहीं है, अतः उसका धन राजकोष में जाएगा। राजा यह पढ़कर अत्यन्त दुःखित होता है कि सन्तानहीन होने के कारण उसका धन भी दूसरे के हाथ पड़ेगा। वह मूर्छित हो जाता है। इसी समय इन्द्र के सारथि मातलि का आगमन होता है। वह इन्द्र का सन्देश राजा को सुनाता है कि दैत्यों के नाश के लिए इन्द्र ने आपको तुरन्त बुलाया है। राजा इन्द्र के रथ पर चढ़कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

### अंक ७

राजा ने दानवों पर विजय पाई। इन्द्र ने बड़े समारोह के साथ राजा को विदाई दी। स्वर्ग से लौटते समय राजा ने हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि का

Funding by IKS-MoE

आश्रम देखा। वह ऋषि को प्रणाम करने के लिए उतर पड़ा। मातलि ऋषि से मिलने गया, उसी समय राजा को एक अद्भुत बालक दिखाई पड़ा, जो शेर के बच्चे के दाँत गिनने का प्रयत्न कर रहा था और उसे खेल-खेल में तंग कर रहा था। बालक की आकृति राजा से बिल्कुल मिलती हुई थी। राजा उस पर पुत्रवत् प्रेम करने लगा। बालक भी राजा का कहना मानने लगा। बालक के साथ की तपस्विनी से उसे ज्ञात हुआ कि बालक की माता का नाम शकुन्तला है। बालक पुरुवंशी है। उसकी माता को उसके पिता ने छोड़ दिया है। अपराजिता नाम की ओषधि की घटना से उसे निश्चय होता है कि वह बालक उसका ही पुत्र है। शकुन्तला सामने आती है और राजा को प्रणाम करती है। राजा शकुन्तला के पैरों में पड़कर अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना करता है। राजा और शकुन्तला मारीच ऋषि के दर्शनार्थ जाते हैं। मारीच ने बताया कि दुर्वासा के शाप के कारण राजा ने शकुन्तला को नहीं पहचाना। अँगूठी देखते ही शाप समाप्त होने से उसे शकुन्तला की स्मृति आई। उसने राजा को निर्दोष बताया : उसने दोनों को आशीर्वाद दिया और इन्द्र के रथ पर उन्हें राजधानी भेजा। वहाँ वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

## (७) मूलकथा और उसमें परिवर्तन

### (क) कथा का मूल

दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा महाभारत के आदिपर्व अध्याय (६७ से ७४) में प्राप्त होती है। यह कथा साधारण नीरस कथा के रूप में है। कालिदास ने इसमें पर्याप्त परिवर्तन करके इसे नाटकोपयोगी कथा का रूप दिया। पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में भी यह कथा प्राप्त होती है। परन्तु पद्मपुराण की कथा महाभारत और शाकुन्तल की कथा पर निर्भर है, अतः उसे शाकुन्तल की कथा का मूल नहीं माना जा सकता है। पद्मपुराण में वर्णित कथा का अधिकांश भाग शाकुन्तल के वर्णन का अनुवाद मात्र प्रतीत होता है। पद्मपुराण में राम की कथा भी है। वह कथा भी रामायण पर अधिक निर्भर न हो कर रघुवंश पर अधिक निर्भर है। भाषा आदि की दृष्टि से भी पद्मपुराण कालिदास के बाद की रचना प्रतीत होती है। अतः शाकुन्तल की कथा का मूल महाभारत ही है। कालिदास ने शाकुन्तल में अँगूठी के रूप में अभिज्ञान का जो समन्वय किया है, उसका मूल वाल्मीकीय रामायण का निम्नलिखित श्लोक ज्ञात होता है। इसमें नामांकित अंगूठी को अभिज्ञान के रूप में देने का वर्णन है।

Funding by IKS-MoE

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः ।।
(वा० रामायण, किष्किन्धा कांड ४४-१२)

## (ख) महाभारत में शकुन्तला की कथा

महाभारत में वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—एक बार चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त शिकार खेलता हुआ महर्षि कण्व के आश्रम के पास पहुँचा । अपनी सेना को आश्रम के बाहर रोककर वह महर्षि कण्व के दर्शनार्थ आश्रम में गया । ऋषि फल लाने के लिए वन में गये हुए थे । राजा का स्वागत ऋषि की धर्म-पुत्री शकुन्तला ने किया । राजा उसे देखते ही उस पर आसक्त हो गया । राजा ने उससे उसका जन्म-विवरण पूछा । उसने विश्वामित्र और मेनका से अपनी उत्पत्ति का विवरण बताया । क्षत्रिय-कन्या ज्ञात होने पर राजा ने उससे गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव किया । शकुन्तला ने इस शर्त पर विवाह की स्वीकृति दी कि मेरा पुत्र ही युवराज होगा और राज्य का उत्तराधिकारी होगा । राजा ने उसे वचन दिया और गान्धर्व-विवाह किया । कुछ समय वहाँ रह कर तथा उसे बुलाने के लिए शीघ्र ही सेना को भेजने का वचन देकर अपनी राजधानी को चला गया । राजा को मार्ग में यह भय हुआ कि बिना ऋषि के पूछे उनकी पुत्री से गान्धर्व-विवाह करने के कारण ऋषि मुझ पर क्रुद्ध होंगे और शाप देंगे, अतः उसने शकुन्तला को लिवा जाने के लिए सेना नहीं भेजी ।

जब ऋषि आश्रम में आए तो उन्होंने तपोबल से सारी घटना जान ली । उन्होंने इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी और शकुन्तला को आशीर्वाद दिया कि तेरा पुत्र महात्मा, महाबली और सम्राट् होगा । उसके बाद शकुन्तला के पुत्र हुआ । ६ वर्ष की आयु में ही वह महाबली हो गया । ऋषि ने उसका नाम सर्वदमन रक्खा । अधिक समय शकुन्तला को आश्रम में रखना उचित न समझ कर ऋषि ने उसे तपस्वियों के साथ राजा के पास भेजा । तपस्वी लोग शकुन्तला को वहाँ पहुँचा कर लौट आये । जब शकुन्तला राजा के सामने आई तो राजा न स्मरण होते हुए भी यह कहा कि मैं तुझे नहीं पहचानता । यह पुत्र मेरा नहीं है । तुझे जहाँ जाना हो, जा । शकुन्तला ने सत्य और धर्म की दुहाई देकर राजा को समझाने की चेष्टा की, पर राजा ने एक न मानी । निराश होकर शकुन्तला जाने लगी । इसी समय आकाशवाणी हुई और उस वाणी ने कहा कि शकुन्तला

का कथन सत्य है। शकुन्तला तेरी भार्या है, यह बालक तेरा पुत्र है, तू इसकी रक्षा कर। इस बालक का नाम भरत होगा। पुरोहित और मन्त्रियों आदि की सम्मति से उसने शकुन्तला और सर्वदमन को स्वीकार किया। उसने शकुन्तला को महारानी और सर्वदमन को युवराज बनाया। पुत्र का नाम भरत रखा। राजा ने लोगों से कहा कि मुझे यह सब वृत्तान्त स्मरण था, परन्तु शकुन्तला की शुद्धि के लिए मैंने ऐसा किया था। ऐसा न करता तो आप लोगों को शंका होती। अब आकाशवाणी से यह शुद्ध हुई है।

## (ग) पद्मपुराण में शकुन्तला की कथा

पद्मपुराण में शकुन्तला की कथा महाभारत और शाकुन्तल की कथा का मिश्रित रूप है। कुछ अंशों में महाभारत की कथा को अपनाया है और अधिकांश में शाकुन्तल की कथा को। पद्मपुराण की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—पुरुवंशी राजा दुष्यन्त का मृगया के लिए जाना, आश्रम के मृग को मारने के लिए उद्यत होना, कण्व के शिष्यों का उसे रोकना, राजा का मृगवध से रुकना, जल पीने की इच्छा से आश्रम में जाना, शकुन्तला और उसकी सखियों को वृक्षों में जल देते हुए देखना, राजा का शकुन्तला से जन्म-वृत्तान्त पूछना, प्रियंवदा द्वारा शकुन्तला की उत्पत्ति का वर्णन, राजा द्वारा गान्धर्व-विवाह का प्रस्ताव, शकुन्तला की इस शर्त पर स्वीकृति कि मेरा पुत्र युवराज और राज्य का उत्तराधिकारी होगा, राजा का शकुन्तला को स्मृति-चिह्न अँगूठी देना, शीघ्र ही बुलाने का वचन देकर राजा का प्रस्थान, फल लाने के लिए गये हुए ऋषि कण्व का आश्रम में आगमन, तपोबल से उसे सभी घटना का ज्ञान और विवाह की स्वीकृति, चिन्तामग्न शकुन्तला को दुर्वासा का शाप कि वह राजा तुझे भूल जाएगा, प्रियंवदा का दुर्वासा को मनाना और दुर्वासा का कथन कि अभिज्ञानदर्शन तक शाप का प्रभाव रहेगा, शकुन्तला को गर्भ रहे सातवाँ मास होते ही कण्व का उसे राजा के पास भेजना, साथ में शार्ङ्गरव, शारद्वत, गौतमी और प्रियंवदा का जाना, प्रियंवदा के हाथ में अँगूठी देकर शकुन्तला का नदी में स्नान करनां, प्रियंवदा के हाथ से नदी में अँगूठी का गिर जाना, प्रियंवदा का शकुन्तला से इस बात को छिपाना, शाप के प्रभाव के कारण दुष्यन्त का शकुन्तला को न पहचानना, शकुन्तला का प्रियंवदा से अँगूठी माँगना, प्रियंवदा का उसे बताना कि अँगूठी नदी में गिर गई है, पुरोहित का कथन कि पुत्र-जन्म तक यह मेरे घर रहे और अपने घर की ओर ले चलना, शकुन्तला का करुण-क्रन्दन, मेनका का उसे लेकर अन्तर्धान होना, धीवर को अँगूठी का

मिलना, पुलिस वालों का उसे पीटना और राजा के पास ले जाना, राजा को अँगूठी की प्राप्ति और शाप की समाप्ति तथा शकुन्तला की स्मृति, राजा का अति दुःखित होना, समुद्र में नौका टूटने से धनवृद्धि नामक वैश्य की मृत्यु, उसका धन उसकी गर्भिणी स्त्री को देना, राजा का दुःखित होना कि पुत्रहीनता के कारण उसके राज्य की यही दशा होगी, मातलि के साथ राजा का राक्षसवधार्थ स्वर्ग जाना, स्वर्ग से लौटते समय मारीच के आश्रम में आना, वहाँ पर पुत्र-दर्शन, मारीच का राजा को वताना कि यह वालक तुम्हारा ही पुत्र है, इसका नाम सर्वदमन है किन्तु आगे इसका नाम भरत होगा, दुर्वासा के शाप के कारण तुमने शकुन्तला को नहीं पहचाना था, मेनका उसे यहाँ लाई है, शकुन्तला का राजा के सामने आना और दोनों का राजधानी को प्रस्थान।

## (घ) मूलकथा में परिवर्तन

कालिदास ने महाभारत की कथा को सरस और नाटकोपयोगी वनाने के लिए उसमें वहुत अधिक परिवर्तन किए हैं। कतिपय मुख्य परिवर्तनों के अतिरिक्त विवरण में आमूलचूल परिवर्तन है।

(१) कथा का प्रारम्भ। कालिदास ने कथा के प्रारम्भिक भाग में ये परिवर्तन किये हैं—(क) राजा अकेला ही सारथि के साथ मृग का पीछा करता हुआ आश्रम के पास पहुँचा, सेना पीछे छूट गई थी। मूल कथा में सेनासहित आश्रम के पास पहुँचा और सेना को वाहर रोककर आश्रम में गया। (ख) आश्रम के मृग का पीछा करना, तपस्वियों का उसे रोकना, राजा का रुकना, तपस्वियों का आशीर्वाद देना कि चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा और आश्रम में जाने के लिए निमन्त्रित करना। मूलकथा में यह कुछ नहीं है। राजा ऋषि के दर्शनार्थ स्वयं जाता है। (ग) राजा का शकुन्तला और उसकी सखियाँ अनसूया, प्रियंवदा को वृक्ष सींचते हुए देखना, पेड़ की ओट में छिपकर उनकी वातें सुनना, शकुन्तला पर आसक्त होना, भ्रमर का शकुन्तला को तंग करना और शकुन्तला द्वारा रक्षा की याचना, राजा का प्रकट होना और उसे वचाना। मूलकथा में वह सीधे आश्रम में पहुँचता है। उसकी आवाज सुनकर शकुन्तला वाहर आती है और उसका स्वागत करती है (घ) ऋषि कण्व सोमतीर्थ की यात्रा करने गए हैं। यात्रा का उद्देश्य है शकुन्तला के दुर्भाग्य को शान्त करना। इस यात्रा में कई मास लग जाएँगे। मूलकथा में ऋषि फल लाने के लिए वन में गये हैं। मूलकथा में यह अंश आपत्तिजनक है। इतने समय में राजा का शकुन्तला से विवाह विहार,

गर्भाधान आदि सब कुछ होना असंभव है। सोमतीर्थ की यात्रा के लम्बे समय में राजा के ये सब कार्य स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। (ङ) पीछे छूटी हुई सेना आगमन और आश्रम में विघ्न करना। राजा का उसे रोकने के लिए जाना। मूलकथा में सेना का आश्रम के बाहर इतने लम्बे समय तक रुका रहना अनुचित प्रतीत होता है। शाकुन्तल का प्रारम्भ स्वाभाविक ढंग से है।

(२) गान्धर्व-विवाह। कालिदास ने इसमें ये परिवर्तन किये हैं—(क) शकुन्तला के जन्म-विषयक बातों का उत्तर अनसूया और प्रियंवदा देती हैं। मूलकथा में स्वयं शकुन्तला इन बातों का उत्तर देती है। इससे उसका चरित्र निर्लज्ज का सा प्रतीत होता है। कालिदास ने उसे मुग्धा तपस्वि-कन्या चित्रित किया है। वह लज्जाशील, मितभाषी और मनोहर है। (ख) प्रथम अंक में दोनों के प्रेम का प्रारम्भ है और तृतीय अंक में स्वाभाविक रूप से गान्धर्व-विवाह। मूलकथा में राजा तुरन्त विवाह का प्रस्ताव करता है और ऋषि के आने तक भी प्रतीक्षा नहीं करना चाहता। कालिदास ने शकुन्तला के विवाह का निर्णय ऋषि पर छोड़ा है। शकुन्तला की अवस्था वहुत विगड़ी हुई दिखाकर गान्धर्व-विवाह कराया है। (ग) विवाह में कोई शर्त नहीं है। मूलकथा में पुत्र को राज्य देने की शर्त है। किसी शर्त पर विवाह होना कथा की सुन्दरता को नष्ट करता है, इसे हटाया गया है। (घ) राजा जाने से पूर्व शकुन्तला को स्मृति-चिह्न-स्वरूप अँगूठी देता है। मूलकथा में अँगूठी की कथा का पूर्णतया अभाव है। इस प्रसंग में राजा का शकुन्तला को अँगूठी देना कालिदास की नूतन देन है।

(३) द्वितीय अंक। पूरा द्वितीय अंक कालिदास की मौलिक रचना है। विदूषक को शकुन्तला से प्रेम की सूचना देना, तपस्वियों की प्रार्थना कि आश्रम में रुककर यज्ञ की रक्षा करें, राजा का आश्रम में रुकना, विदूषक का शकुन्तला को बिना देखे प्रस्थान।

(४) चतुर्थ अंक। इस अंक में ये मुख्य परिवर्तन हैं—(क) दुर्वासा का आगमन और शकुन्तला को शाप देना। यह कालिदास की मौलिक देन है। इससे राजा का चरित्र दूषित नहीं होने पाता। मूलकथा में शाप की कथा का अभाव है। (ख) कण्व ऋषि के आने पर यह ज्ञात होते ही कि शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व-विवाह हुआ है और वह गर्भिणी है, उसे तुरन्त राजा के पास भेजते हैं। मूलकथा में जब पुत्र ६ वर्ष का हो जाता है, तब ऋषि शकुन्तला को दुष्यन्त के पास इसलिए भेजते हैं कि अधिक समय तक कन्या का पिता के घर

रहना उचित नहीं है। इसमें दोष यह है कि पुत्र-जन्म के ६ वर्ष तक ऋषि को यह ध्यान नहीं आया कि कन्या को पिता के घर रहने देने में लोकापवाद होगा। (ग) शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला को लिवा जाने के लिए किसी को नहीं भेजता। मूलकथा में ऋषि के भय के कारण किसी को नहीं भेजता। (घ) शकुन्तला के साथ शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी जाते हैं। शकुन्तला को अस्वीकार करने की सारी घटना उनके सामने होती है। मूलकथा में गौतमी नहीं जाती। शिष्य शकुन्तला को पहुँचा कर तुरन्त लौट आते हैं। राजा और शकुन्तला की वात उनके सामने नहीं होती।

( ५ ) पंचम अंक। इसमें मुख्य परिवर्तन ये हैं :—(क) राजा शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला को नहीं पहचानता। अतएव हंसपदिका के उलाहने को भी ठीक नहीं समझ पाता। कालिदास ने यहाँ राजा का चरित्र बहुत उत्तम चित्रित किया है। मूलकथा में राजा विवाह की सारी वात स्मरण होते हुए भी शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता। जब आकाशवाणी शकुन्तला का समर्थन करती है, तव उसे स्वीकार करता है। मूलकथा में राजा का चरित्र बहुत दूषित चित्रित किया गया है। (ख) शार्ङ्गरव का राजा को दोषी सिद्ध करना, शकुन्तला का अपने आपको सच्चा बताना, अँगूठी दिखाने का प्रसंग और उसके नदी में गिर जाने का ज्ञान, शार्ङ्गरव का शकुन्तला को डाँटना, पुरोहित का शकुन्तला को अपने घर रखने का प्रस्ताव, रोती हुई शकुन्तला को मेनका का उड़ा ले जाना। मूलकथा में य सव बातें नहीं हैं।

( ६ ) षष्ठ और सप्तम अंक। षष्ठ और सप्तम अंक दोनों ही कालिदास की मौलिक रचना है। इसका कुछ भी अंश मूलकथा में नहीं है। दोनों अंकों की मुख्य घटनाएँ हैं—धीवर को अँगूठी का मिलना, धीवर से राजा को अँगूठी प्राप्त होना, अँगूठी मिलते ही शाप की निवृत्ति, राजा का दुःखित होना, शकुन्तला के चित्र से मनोविनोद, नौका टूटने से धनमित्र व्यापारी के मरने का समाचार और अपुत्रता के कारण राजा का चिन्ताग्रस्त होना, मातलि का आगमन, राजा का इन्द्रलोक को जाना और राक्षसवध, इन्द्रलोक से लौटते समय पुत्र का दर्शन और शकुन्तला से मिलन, मारीच ऋषि द्वारा यह ज्ञात होना कि दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला का परित्याग हुआ था।

## (८) कालिदास का शास्त्रीय पाण्डित्य

कालिदास की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उसका शास्त्रीय ज्ञान

अगाध था। उसने वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, व्याकरण, काव्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र और ज्योतिष आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। अतएव स्थान-स्थान पर उसके शास्त्रीय पाण्डित्य के सूचक पद्य आदि मिलते हैं। शाकुन्तल में शास्त्रीय पाण्डित्य के सूचक जो स्थल हैं उनका संकेतमात्र यहाँ दिया गया है :—(क) **वेदज्ञान**—उसने निम्नलिखित स्थलों पर वेदज्ञान प्रकट किया है—(१) अमी वेदिं परितः० (४-८) से उसने प्रकट किया है कि वह वैदिक छन्द में भी पद्य बना सकता है। (२) तव भवतु विडौजाः० (७-३४) के द्वारा वह यज्ञ का समर्थन करता है, जैसा कि गीता में देवान् भावयतानेन० (गीता ३-११) के द्वारा यज्ञ का समर्थन है। (३) दिष्टया धूमाकुलित० (अंक ४ वा० ३८) के द्वारा भी यज्ञविधि का समर्थन है। (४) श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति० (७-२९) से यज्ञ की सफलता के लिए उपयोगी बातों का संग्रह है। (५) या सृष्टिः स्रष्टु० (१-१) से शिव की अनेकरूपता का वर्णन, जैसा कि वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्० १-१६४-४६) के द्वारा ईश्वर को अनेकरूप माना है। (६) रघुवंश में अश्वमेधादि यज्ञों का वर्णन किया है। तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः० (रघु० १२-६१)। (७) सुशिष्य-परिदत्ता विद्येव० (अंक ४ वा० ३८) के द्वारा निरुक्त के कथन "विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम०" (अध्याय २-४) का भाव दिया है। (ख) **दार्शनिक ज्ञान**—निम्नलिखित स्थलों पर अपना दार्शनिक ज्ञान प्रकट किया है :—(१) सतां हि सन्देहपदेषु० (१-२२) के द्वारा अन्तःकरण का दार्शनिक स्वरूप अभिव्यक्त किया है। (२) रम्याणि वीक्ष्य० (५-२) के द्वारा संस्कारों का दार्शनिक महत्त्व व्यक्त किया है। (३) अव्यक्तमिव स्नातः० (५-११) के द्वारा बद्ध और मुक्त में अन्तर दिखाया है। (४) स्मृतिभिन्नमोहतमसो० (७-२२) के द्वारा स्मृति और अज्ञानावरण को स्पष्ट किया है। (५) रघुवंश के बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति (रघु० १३-६०) के द्वारा सांख्य-दर्शन के सिद्धान्त को स्पष्ट किया है। (ग) **धर्मशास्त्र-ज्ञान**—(१) अर्थो हि कन्या० (४-२२) के द्वारा स्मृतियों का ज्ञान प्रकट किया है कि कन्या एक धरोहर है। उसका विवाह कर देने पर मनुष्य उऋण होता है। (२) गान्धर्वेण विवाहेन० (३-२०) के द्वारा स्मृतियों में समर्थित गान्धर्व-विवाह का वर्णन करता है। (३) शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८) के द्वारा स्मृति-प्रतिपादित सुगृहिणी के कर्तव्यों का वर्णन है। (घ) **गीता का ज्ञान**—(१) सहजं किल यद् विनिन्दितं० (६-१) के द्वारा गीता के इस कथन

को ही पुष्ट किया है कि सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् (गीता १८-४८), श्रेयान् स्वधर्मो० (गीता ३-३५)। (२) यज्ञ के महत्त्व का समर्थन (श्रद्धा वित्तं० अंक ७)। (३) राजा के कर्तव्य का निर्देश—आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं० (१-११) (ङ) **नीति-शास्त्र का ज्ञान**—(१) यात्येकतोऽस्तशिखरं० (४-२) से स्पष्ट किया है कि सुख-दुःख का परिवर्तन होता रहता है। (२) अतः परीक्ष्य कर्तव्यं० (५-२४) से बताया है कि प्रेम किससे करना चाहिए। (च) **राजनीति-शास्त्र का ज्ञान**—(१) राजा के कर्तव्यों का वर्णन—नैतच्चित्रं यदयम्० (२-१५)। (२) राजर्षि कौन हो सकता है—अध्याक्रान्ता वसति० (२-१४)।(३) राजा का धर्म कि प्रजा की रक्षा करे—राजरक्षितव्यानि तपोवनानि० (अंक १वा० ७०), आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्य० (अंक ३ वा० ५२)। (४) राजा का कर्तव्य है कि प्रजा के हितार्थ कष्ट भी सहे—स्वसुखनिरभिलाषः० (५-७), दुष्टों को दण्ड दे और शान्ति स्थापित करे—नियमयसि विमार्ग० (५-८), प्रजा को अपनी सन्तान के तुल्य समझे—प्रजाः प्रजाः स्वा इव०(५-५), शासन-प्रबन्ध में शिथिलता न करे—षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः (५-४)। (५) राजा को शान्ति नहीं मिलती—अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः (अंक ५ वा० ११)। (६) जनतन्त्र शासनपद्धति का उल्लेख—लोकतन्त्राधिकारः (अंक ५ वा० ११)। (७) शासन-प्रबन्ध के कष्टों का वर्णन—औत्सुक्यमात्रमवसाययति० (५-६) (८) प्रजा से षष्ठांश कररूप में लेना—षष्ठांशवृत्तेरपि० (५-४), तपःषड्भाग० (२-१३)। (९) गर्भस्थ बालक को भी पिता की सम्पत्ति का अधिकार—गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति (अंक ६वा०१६४)। (१०) मृगया के गुणों का वर्णन—मेदच्छेदकृशोदरं० (२-५)। (११) राजा का कर्तव्य कि प्रजा की क्षति से रक्षा करे—क्षतात् किल त्रायत० (रघुवंश २-५३), प्रजा को सदा सुखी रखे—राजा प्रकृतिरंजनात् (रघु० ४-१२) (छ) **धनुर्वेद का ज्ञान**—अनवरतधनुर्ज्या० (२-४), का कथा बाणसन्धाने० (३-१), लक्ष्यवेधी बाण का वर्णन—यो हनिष्यति वध्यं० (६-२८), बाण का स्वरूप—तव शरैरधुना नतपर्वभिः० (७-३)। (ज) **आयुर्वेद का ज्ञान**—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य (३ वा० ९) निदान करके ही चिकित्सा करनी चाहिए। (झ) **कामशास्त्र का ज्ञान**—(१) स्त्री के कर्तव्यों का कामसूत्र के अनुसार उपदेश—शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८)। (२) विरहिणी की दशा का वर्णन—क्षामक्षामकपोल० (३-७)। (३) विरही का वर्णन—इदमशिशिरै० (३-१०) (४) वियोगी के लिए कामदेव और

चन्द्रमा का दुःखद होना—तव कुसुमशरत्वम्० (३-३)। **(ञ) व्याकरण का ज्ञान**—सउन्दलावण्णं पेक्ख (७ वा० ६५) के द्वारा दो अर्थों को प्रकट करके प्राकृत व्याकरण की विद्वत्ता प्रकट की है। **(ट) ज्योतिष का ज्ञान**—(१) रोहिणी और चन्द्रमा का संयोग—उपरागान्ते शशिनः० (७-२२)। (२) दोनों विशाखा नक्षत्र चन्द्रमा का अनुसरण करते हैं—किमत्र चित्रं यदि विशाखे० (३ वा० २६)। (३) आकाश का सात भागों में विभाजन—त्रिस्रोतसं वहति० (७-६)। (४) पृथ्वी की छाया से चन्द्रग्रहण—छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपितः० (रघुवंश १४-४०)।

## (९) कालिदास का विविध कला-ज्ञान

कालिदास की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उसे विविध कलाओं का भी ज्ञान था। संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि के ज्ञान का यथास्थान उपयोग किया है। तवास्मि गीतरागेण० (१-५) के द्वारा उसने संगीत के माधुर्य का सुन्दर वर्णन किया है। पंचम अंक के प्रारम्भ में हंसपदिका संगीत सीख रही है। वह मधुर गान करती है—अभिनवमधुलोलुपः० (५-१)। चलापाङ्गां दृष्टिं० (१-२४) और यतो यतः षट्चरणो० (१-२३) द्वारा नृत्य की क्रियाओं की ओर संकेत है। षष्ठ अंक में उसने अपना चित्रकला के प्रति प्रेम प्रकट किया है। दुष्यन्त ने शकुन्तला का चित्र स्वयं बनाया है। उसमें शकुन्तला साक्षात् सामने खड़ी प्रतीत होती है। जाने सख्यग्रतो मे वर्तते० (६वा० ११५)। राजा उसमें आवश्यक सुधार करना चाहता है। यद्यत् साधु न चित्रे० (६-१४)। वह चित्र में शकुन्तला की प्रिय वस्तुओं को और बनाना चाहता है तथा शकुन्तला के आभूषणों को भी उसमें स्थान देना चाहता है। कार्या सैकतलीनहंसमिथुना० (६-१७) और कृतं न कर्णार्पितबन्धनं० (६-१८)।

## (१०) कालिदास की नाट्यकला

कालिदास संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जाता है। उसके मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल इन तीन नाटकों में से शाकुन्तल ही उसकी नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम परिचायक है। कालिदास के नाटकों में जो विशेषताएँ सर्वप्रथम लक्षित होती हैं, वे हैं—घटना-संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, रचना-कौशल, वर्णनों और घटनाओं की संक्षिप्तता, चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता,

कवित्व और रस-परिपाक । संस्कृत के अधिकांश नाटकों में यह त्रुटि प्राप्त होती है कि वे अभिनय के लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं होते हैं । परन्तु कालिदास के नाटकों में यह विशेषता है कि वे अभिनय के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं ।

**घटना-संयोजन में सौष्ठव**—घटना-संयोजन की दृष्टि से शाकुन्तल पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कालिदास ने शाकुन्तल के घटना-संयोजन में असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है । घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया गया है कि उनमें पूर्णरूप से स्वाभाविकता ज्ञात होती है । प्रत्येक घटना सार्थक है । प्रत्येक घटना सार्थक होने के कारण कथानक के विकास में पूर्ण योग देती है । सम्पूर्ण नाटक की प्रत्येक घटनाएँ बहुत विचारपूर्वक यथास्थान रखी गई हैं । इसका परिणाम यह होता है कि नाटक की गति स्वाभाविक और अविच्छिन्न रहती है, जैसे—प्रथम अंक में मृग का पीछा करते हुए राजा के संमुख तपस्वी स्वाभाविक ढंग से आते हैं । उनके आदेशानुसार राजा मृग पर बाण नहीं चलाता । फलस्वरूप वे उसे आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा । वे राजा से निवेदन करते हैं कि आश्रम में जाकर आतिथ्य स्वीकार करे और वे स्वयं समिधा लाने चले जाते हैं । ऋषि कण्व सोमतीर्थ गये हुए हैं । राजा विनीत वेष में प्रवेश करता है । तीन कन्याओं का वार्तालाप सुनता है । वे स्वाभाविक ढंग से परस्पर हँसी कर रही हैं । शकुन्तला को भौंरा तंग करता है । रक्षार्थ सहायता की माँग होने पर वह सहसा उनके सामने आता है । राजा का प्रवेश उचित अवसर पर हुआ है । वह शकुन्तला को भौंरे से बचाता है । शकुन्तला और दुष्यन्त का परस्पर प्रेम स्वाभाविक रूप से होता है । इस प्रकार प्रत्येक घटना आगे स्वाभाविक रूप से आती जाती है । घटना-संयोजन में विशेष सौष्ठव के स्थल उदाहरणार्थ ये हैं—सखियों का परस्पर विवाह-विषयक वार्तालाप, शकुन्तला का भ्रमर से पीड़ित होना, अनसूया के द्वारा शकुन्तला की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन, द्वितीय अंक में राजा का शिकार खेलने न जाना, शकुन्तला को देखने के लिए आश्रम में जाने का बहाना सोचते ही दो ऋषिकुमारों का प्रवेश और राक्षसवधार्थ आश्रम में रुकने की प्रार्थना, शकुन्तला को बिना देखे विदूषक का प्रस्थान, तृतीय अंक में गान्धर्व-विवाह के पश्चात् गौतमी का प्रवेश, चतुर्थ अंक में दुर्वासा का शाप, अँगूठी दिखाने से शाप-मुक्ति का आश्वासन, पंचम अंक में हंसपदिका का गीत, प्रत्याख्यान के बाद मेनका-द्वारा शकुन्तला को मारीच के आश्रम में ले जाना, षष्ठ अंक में अँगूठी का मिलना

और राजा का दुःखित होना, सप्तम अंक में राजा का पुत्रदर्शन और शकुन्तला से मिलना। सप्तम अंक में राजा भरत की माता का नाम जानना चाहता है। उसी समय 'शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व' के द्वारा उसका नाम जान लेता है।

## घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता

प्रत्येक घटना सार्थक है और किसी विशेष उद्देश्य से रखी गई है। जैसे—प्रथम अंक में तपस्वियों के आगमन से राजा को चक्रवर्ती पुत्र का आशीर्वाद प्राप्त होता है। वह उनके आदेशानुसार आश्रम में जाता है। फलस्वरूप शकुन्तला से प्रेम होता है। ऋषि कण्व सोमतीर्थ गये हैं, अतः राजा को अवसर मिलता है कि वह शकुन्तला से गान्धर्व-विवाह कर सके। द्वितीय अंक में दो ऋषि-कुमार आकर राजा को आश्रम में रोक लेते हैं। फलस्वरूप शकुन्तला-विषयक उसका प्रेम पुष्ट होता है। शकुन्तला को बिना देखे विदूषक के चले जाने से पंचम अंक में शकुन्तला का प्रत्याख्यान निर्बाध होता है, अन्यथा विदूषक राजा को स्मरण दिला सकता था। अतएव पंचम अंक में उसे हंसपदिका को समझाने के लिए भेज दिया गया है। चतुर्थ अंक में दुर्वासा का आगमन, शाप देना, अँगूठी से शाप-निवृत्ति का आश्वासन महत्त्वपूर्ण घटना है। अँगूठी के खो जाने से राजा शकुन्तला को नहीं पहचान पाता। फिर अँगूठी मिलने पर स्मरण करता है। सप्तम अंक में इन्द्रलोक से लौटते समय मारीच के आश्रम में जाने से पुत्र और पत्नी से उसका मिलन होता है।

**वर्णनों में स्वाभाविकता**—कालिदास की मुख्य विशेषता है कि उसका प्रत्येक वर्णन स्वाभाविक होता है, जैसे—प्रथम अंक में मृग के दौड़ने का वर्णन (१-७)। रथ की गति का वर्णन (१-८,९)। तीनों सखियों का परस्पर वार्तालाप, द्वितीय अंक में राजा और विदूषक का वार्तालाप, तृतीय अंक में प्रेम-दर्शन और गान्धर्व-विवाह, चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई का दृश्य, पंचम अंक में शकुन्तला का प्रत्याख्यान, षष्ठ में विरही दुष्यन्त का शोकातुर होना, सप्तम में पुत्रदर्शन और पत्नी से मिलन।

**रचना-कौशल**—कालिदास कथानक के संचयन और उसके निर्माण में असाधारण कुशल है। उसने महाभारत के एक साधारण और नीरस कथानक को अपनी रचना-कुशलता के कारण अनुपम और अति-सरस बना दिया है। उसके रचना-कौशल में उर्वरता, नवीनता और कल्पना-बाहुल्य है। उसने

मूलकथा में क्या परिवर्तन किये हैं और उनका क्या महत्त्व है, इसका विस्तृत विवेचन 'मूलकथा में परिवर्तन' शीर्षक (पृष्ठ ४४) के अन्दर देखें।

**वर्णनों और घटनाओं की संकेतात्मकता**—कालिदास के काव्यों और नाटकों में ध्वनि या व्यंजना का मुख्य स्थान है। अतएव उसके वर्णन और घटनाएँ संकेतात्मक होती हैं। वे भावी घटनाओं की ओर संकेत करती हैं। नाटक के प्रारम्भिक वर्णनों के द्वारा नाटक के कथानक की ओर संकेत किया गया है। या सृष्टिः० (१-१) में नाटक की घटनाओं के सांकेतिक विवरण के लिए देखो पृष्ठ २ पर श्लोक की संस्कृत-व्याख्या। नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन—दिवसाः परिणामरमणीयाः (१-३) यह संकेत करता है कि इस नाटक का अन्त सुखद होगा। नटी का कथन—ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः (१-४) यह संकेत करता है कि भ्रमर-तुल्य राजा दुष्यन्त शकुन्तला से कुछ समय प्रेम करेगा। सूत्रधार का कथन—आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया (१वा० १२) यह संकेत करता है कि इस नाटक में 'भूलना' महत्त्वपूर्ण घटना है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाएगा और अँगूठी उसे शकुन्तला का स्मरण कराएगी। इसी प्रकार दुष्यन्त के ध्यान में मग्न होने के कारण शकुन्तला दुर्वासा का आतिथ्य-सत्कार भूल जाती है। फलस्वरूप शापग्रस्त होती है। इसी प्रकार नाटक की घटनाएँ भावी घटनाओं की ओर संकेत करती हैं, जैसे—प्रथम अंक में भ्रमर वाली घटना सूचित करती है कि शकुन्तला को दुष्यन्तरूपी भ्रमर पीड़ित करेगा। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में कण्व के शिष्य का प्रभात-वर्णन करते हुए कथन—यात्येकतोऽस्तशिखरं० (४-२) और अन्तर्हिते शशिनि० (४-३) यह संकेत करता है कि सुख-दुःख का क्रम अनिवार्य है, अतः शकुन्तला पर विपत्ति आएगी, उसका पति से वियोग होगा और उसकी स्थिति दयनीय होगी। पंचम अंक के प्रारम्भ में हंसपदिका का गीत—अभिनवमधुलोलुपः० (५-१) यह संकेत करता है कि दुष्यन्त शकुन्तला को भूल चुका है और उसका प्रत्याख्यान करेगा। साथ ही यह भी संकेत करता है कि राजा की कई प्रेमिकाएँ हैं और वह उन्हें भुला देता है, यह उसका स्वभाव है। सप्तम अंक के प्रारम्भ में इन्द्र के द्वारा दुष्यन्त का विशेष सत्कार यह संकेत करता है कि दुष्यन्त की मनःकामना शीघ्र पूर्ण होगी और उसका शकुन्तला से मिलन होगा।

Funding by IKS-MoE

**चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता**—कालिदास चरित्र-चित्रण में बहुत कुशल

है। उसके प्रत्येक पात्र में अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्रत्येक पात्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनका विकास बहुत व्यवस्थित रूप में हुआ है। शाकुन्तल के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं, अतः उनके द्वारा उनका सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चित्रण उत्तम रूप से हुआ है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि कालिदास को समाज के विभिन्न वर्गों की गति-विधि का कैसा सूक्ष्म ज्ञान था और उसका मानव-प्रवृत्ति-निरीक्षण कितना गम्भीर था। पात्रों के चरित्र-चित्रण का विस्तृत वर्णन 'प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण' शीर्षक के अन्दर हुआ है। राजा दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है। वह वीर और प्रतापी है। वह अपने कर्तव्य-पालन का विशेष ध्यान रखता है। शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है और उसकी स्मृति आने पर उसे पुनः स्वीकार करता है। कालिदास ने तीन वृद्ध ऋषियों का वर्णन किया है और तीनों में अन्तर किया है :—(१) कण्व—अत्यन्त सज्जन महर्षि हैं। उन्होंने शकुन्तला को पुत्री के तुल्य पाला है। उसके अनिष्ट-निवारणार्थ वे सोमतीर्थ जाते हैं। गान्धर्व-विवाह के लिए स्वीकृति देते हैं और शकुन्तला की विदाई के समय सच्चे पिता के तुल्य करुण-भाव से द्रवित हो जाते हैं। (२) मारीच—वीतराग ऋषि हैं। निर्लेपभाव से संसार की गति-विधि को देखते हैं और संसार को कर्तव्योपदेश देते हैं। (३) दुर्वासा—ये अत्यन्त क्रोधी ऋषि हैं। छोटी सी त्रुटि पर शकुन्तला को शाप दे देते हैं। दो ऋषि-शिष्य हैं। (१) शार्ङ्गरव—अभिमानी, क्रोधी और अधिक बोलने वाला है। (२) शारद्वत—विनीत, शान्त और मितभाषी है। तीन सखियाँ हैं। (१) शकुन्तला—बहुत सुशील, विनीत, लज्जाशील, मितभाषी, मधुरभाषी, पतिव्रता और सरल हृदय वाली है। (२) अनसूया—शान्त, गम्भीर, मितभाषी और विचारशील है। (३) प्रियंवदा—हास्यप्रिय, वाक्चतुर और अधिक बोलने वाली है।

चरित्र-चित्रण के प्रसंग में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) कालिदास ने अपने अन्य नाटकों में मुख्य नायिका के साथ अन्य गौण नायिकाओं को भी प्रस्तुत किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि मुख्य नायिका का चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा नहीं हो पाया है। उसने शाकुन्तल में इस त्रुटि का परिमार्जन किया है। अतएव शकुन्तला का चित्रण बहुत सुन्दर हो पाया है। मालविकाग्निमित्र में एक मुख्य नायिका मालविका है और दो गौण नायिकाएँ (उपनायिकाएँ) हैं—धारिणी और इरावती। विक्रमोर्वशीय में एक मुख्य नायिका उर्वशी है

Funding by IKS-MoE

और दूसरी उपनायिका औशीनरी। शाकुन्तल में केवल एक नायिका शकुन्तला है। कालिदास ने बहुत सोच-विचार कर षष्ठ अंक में रानी वसुमती को रंगमंच पर नहीं आने दिया है और प्रधानमन्त्री का पत्र लेकर प्रतीहारी का प्रवेश दिखाया है। (२) कालिदास ने अपने अन्य नाटकों में विदूषक को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। शाकुन्तल में विदूषक का महत्त्व बहुत कम कर दिया है। कालिदास ने अनुभव किया कि विदूषक जैसे साधारण पात्र को इतना महत्त्व नहीं देना चाहिए। अतएव शाकुन्तल में उसे केवल तीन अंकों में ही रंगमंच पर लाया गया है। वह भी साधारण पात्र के रूप में। मातलि के प्रहार के लिए उसका अच्छा उपयोग किया गया है। मालविकाग्निमित्र में विदूषक का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी सहायता से ही अग्निमित्र मालविका से विवाह कर पाता है। विक्रमोर्वशीय में यद्यपि विदूषक का महत्त्व कुछ कम हुआ है, फिर भी वह मुख्य पात्रों में है।

यहाँ पर यह उल्लेख भी उचित है कि कालिदास ने अपने नाटकों और काव्यों में पुरुष-पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्रों का चरित्र-चित्रण विशेष अच्छा किया है। अतएव उसके स्त्री-पात्र दर्शकों और पाठकों को विशेष आकृष्ट करते हैं। जैसे—शकुन्तला, उर्वशी, यक्ष-पत्नी, पार्वती, सीता, इन्दुमती आदि का चित्रण पुरुष की अपेक्षा अधिक सुन्दर हुआ है।

**पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग**—कालिदास ने पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है। जो पात्र जिस कोटि का या जिस स्थिति का है, वह वैसी ही भाषा का प्रयोग करता है। प्रियंवदा और अनसूया शकुन्तला से सखियों के अनुरूप हास्य आदि करती हैं। प्रियंवदा शकुन्तला को पयोधरों के विस्तार का कारण युवावस्था बताती है—अत्र पयोधरविस्तारयितृ० (१ वा० ५२)। प्रियंवदा का कथन कि शकुन्तला का वनज्योत्स्ना को देखना प्रिय-मिलन की उत्सुकता को प्रकट करता है—यथा वनज्योत्स्ना० (१ वा० ६४)। शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेमभाव को देखकर प्रियंवदा और अनसूया कहती हैं कि यदि ऋषि आज यहाँ होते तो शकुन्तला को राजा को समर्पित कर देते—इमं जीवितसर्वस्वेन० (१ वा० ९०)। प्रियंवदा कहती है कि तपस्वियों से कोई भी बात पूछी जा सकती है—अनियन्त्रणानुयोगः० (१ वा० १०८)। शकुन्तला के विवाह के विषय में प्रियंवदा कहती है कि यह पिता कण्व की इच्छा पर निर्भर है—धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः (१ वा० ११०)। यह जानकर प्रियंवदा और अनसूया प्रसन्न हैं कि शकुन्तला राजा को चाहती है—सागरमुज्झित्वा कुत्र० (३ वा० २५)। वे दोनों

शकुन्तला से कहती हैं कि कौन मूर्ख होगा जो तुझे स्वीकार नहीं करेगा—क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं० (३ वा० ३८)। प्रियंवदा को राजा की सच्चरित्रता पर विश्वास है। वह कहती है—न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति (४ वा० ४)। अनसूया कहती है कि दुर्वासा ही ऐसा शाप दे सकते हैं—कोऽन्यो हुतावहाद् दग्धुं प्रभवति (४ वा० १७)। प्रियंवदा दुर्वासा को मनाती है कि बच्चों का अपराध क्षमा करें—दुहितृजनस्य भगवता० (४ वा० २२)। वे दोनों प्रतिज्ञा करती हैं कि शाप का समाचार शकुन्तला को नहीं बताएँगी—को नामोष्णोदकेन० (४ वा० २६)। दुष्यन्त से वियुक्त होते समय शकुन्तला पुनर्मिलन के लिए निवेदन करती है—आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय (३ वा० ८१)। कण्व दुष्यन्त से शकुन्तला के विवाह का अभिनन्दन करते हुए कहते हैं—भाग्य से यजमान की आहुति अग्नि में ही पड़ी है। तू सुशिष्य को दी गई विद्या के तुल्य अशोचनीय हो गई है—दिष्ट्या धूमाकुलित० (४ वा० ३८)। ऋषि कण्व ऋषि-जनोचित ही बात कहते हैं। वे पिता के तुल्य पुत्री शकुन्तला को उपदेश देते हैं—शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८)। पुरोहित दार्शनिक विद्वान् के तुल्य भाषा का प्रयोग करता है—कुत इदमुच्यत इति चेत् (५ वा० १०२)। विदूषक पेटू की सी बात करता है। क्या लड्डू खाना है? किं मोदकखादिकायाम् (२ वा० १६)। राजा राजाओं के दुःख का वर्णन करता है कि उन्हें कभी शान्ति नहीं मिलती—राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (५ वा० १८)। बालक सर्वदमन की बातें बच्चों की सी हैं। हे शेर जंभाई ले, तेरे दाँत गिनूंगा। दन्तांस्ते गणयिष्ये (७ वा० ३८)। मुझे खिलौना दो। कुत्र, देहि एतत् (७ वा० ४५)।

**नाट्यशास्त्रीय पाण्डित्य**—कालिदास ने अपने नाटकों में नाटकीय कुशलता के साथ कवित्व का समन्वय करके नाटकों को चिरस्थायी बना दिया है। एक ओर वह इन नाटकों में अपने शास्त्रीय पाण्डित्य का समावेश करता है और दूसरी ओर अपनी उर्वर कल्पना-शक्ति के द्वारा उसमें अलौकिक चमत्कार भर देता है। इसका विशेष विस्तृत वणंन अगले 'काव्य-सौन्दर्य' शीर्षक में किया गया है। कालिदास ने शाकुन्तल में ५ अर्थप्रकृतियों, ५ अवस्थाओं और ५ सन्धियों को सुन्दर रूप में रखा है। अर्थप्रकृतियों आदि के विशेष विवरण के लिए देखो—'नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा' शीर्षक (पृष्ठ ५)।

कालिदास ने यद्यपि नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन नहीं किया है, तथापि मूलरूप में उनका पालन अवश्य किया है। इसका कारण यह हो सकता

है कि उस समय तक नाटचशास्त्र के नियम पूर्ण कठोरता को प्राप्त न हुए हों। नाटकीय नियमानुसार कालिदास ने शाकुन्तल के प्रारम्भ में या सृष्टिः० (१-१) नान्दी-पाठ और अन्त में भरतवाक्य प्रवर्तितां प्रकृति० (७-३५) दिया है। शाकुन्तल में अर्थप्रकृतियों आदि का निरूपण निम्नलिखित रूप से समझना चाहिए :—

**पाँच अर्थप्रकृतियाँ**—(१) बीज—राघवभट्ट के अनुसार 'इदानीमेव' से लेकर 'सोमतीर्थं गतः' (१वा० ३०) तक वैखानस की उक्ति कथा का बीज है। हमारे विचार से 'जन्म यस्य०' (१वा० २५) से लेकर 'भवतु।····महर्षेः कथयिष्यति' (१वा० ३१) तक कथा का बीज है। वैखानस का राजा को चक्रवर्ती पुत्र का आशीर्वाद और राजा का शकुन्तला के समीप आश्रम में जाने के लिए उद्यत होना कथा का बीज है। (२) बिन्दु—माधव्य, अनवाप्त० (२वा० ३८) से लेकर सर्वः कान्तम्······शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि (२वा० ४०) तक बिन्दु है। यह मृगया-वृत्तान्त के कारण विच्छिन्न मूलकथा को पुनः जोड़ता है। (३) पताका—साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार शाकुन्तल में विदूषक का वृत्तान्त पताका है। वह द्वितीय अंक से लेकर षष्ठ अंक तक दिखाई देता है। हमारे विचार से दुर्वासा के शाप वाला प्रसंग और अँगूठी का वृत्तान्त इस नाटक में पताका मानना अधिक उपयुक्त है। शाप का प्रभाव और अँगूठी का वृत्तान्त पूरे नाटक में व्याप्त है। (४) प्रकरी—नाटक में प्रकरी एक से अधिक भी हो सकती है। शाकुन्तल में तीन प्रसंगों को प्रकरी कह सकते हैं—(क) मातलि का वृत्तान्त, (ख) सानुमती अप्सरा वाला प्रसंग, (ग) षष्ठ अंक के प्रारम्भ में दो चेटियों के द्वारा वसन्त-ऋतु का वर्णन। (५) कार्य—दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन कार्य है।

**पाँच अवस्थाएँ**—(१) आरम्भ—राजा की उत्सुकता अंक १ वक्तव्य संख्या ३१ 'भवतु तामेव द्रक्ष्यामि' (१वा० ३१) से प्रारम्भ होती है और शकुन्तला की उत्सुकता अंक १ वक्तव्य सं० ८१ 'किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य०' (१वा० ८१) से प्रकट होती है। अतः भवतु तामेव० से लेकर प्रथम अंक की समाप्ति तक नाटकीय कार्य का आरम्भ कह सकते हैं। (२) यत्न—राघवभट्ट के अनुसार 'तपस्विभिः कैश्चित्० (२वा० ५६) से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक यत्न है। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला का एक दूसरे की प्राप्ति के लिए प्रबल प्रयत्न है। (३) प्राप्त्याशा—चतुर्थ और पंचम अंक में प्राप्त्याशा है। इसमें फल

प्राप्ति की संभावना और शापरूपी विघ्न के कारण फलप्राप्ति की असम्भावना है। (४) नियताप्ति—षष्ठ अंक में नियताप्ति है। अँगूठी मिलने के कारण विघ्न दूर हो गया है। (५) फलागम—सप्तम अंक में फलागम है। दुष्यन्त और शकुन्तला का स्थायी मिलन होता है।

**पाँच सन्धियाँ**—राघवभट्ट ने शाकुन्तल में सन्धियों का विभाजन इस प्रकार किया है—(१) मुखसन्धि—ततः प्रविशति० (१वा० १३) से लेकर द्वितीय अंक में उभौ परिक्रम्योपविष्टौ (२वा० ३७) तक। (२) प्रतिमुख सन्धि—राजा—माधव्य, अनवाप्त० (२वा० ३८) से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक। (३) गर्भसन्धि—चतुर्थ अंक में प्रारम्भ से लेकर पंचम अंक में 'इति यथोक्तं करोति' (५वा० ६०) तक। (४) विमर्शसन्धि—राजा—शकुन्तलां निर्वर्ण्य० (५वा० ६१) से लेकर षष्ठ अंक की समाप्ति तक। (५) उपसंहृति या निर्वहण सन्धि—सप्तम अंक के प्रारम्भ से लेकर अंक की समाप्ति तक।

हमारे विचार से सन्धियों को सरल रूप में इस प्रकार समझना चाहिए। (१) प्रस्तावना के बाद से लेकर संपूर्ण प्रथम अंक में मुख-सन्धि, (२) द्वितीय और तृतीय अंक में प्रतिमुख-सन्धि, (३) चतुर्थ और पंचम अंक में गर्भ-सन्धि, (४) षष्ठ अंक में विमर्श-सन्धि, (५) सप्तम अंक में निर्वहण-सन्धि।

कालिदास ने पाँचों सन्धियों के विभिन्न अंगों का, नाटकीय लक्षणों और अलंकारों का भी बहुत सुन्दरता से शाकुन्तल में समन्वय किया है। सन्धियों के अंगों आदि का यथास्थान टिप्पणी में निर्देश किया गया है। सन्धियों के अंगों आदि के लिए देखो, साहित्यदर्पण परि० ६ श्लोक ८१ से १२१ तक। कालिदास ने 'पताकास्थानकों' (नाटकीय व्यंग्यों) का भी सुन्दर समावेश किया है। जैसे—(१) अंक ३ में वाक्य ७४ पर 'चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।' दुष्यन्त और शकुन्तला प्रेमालाप में मग्न हैं। उन्हें आर्या गौतमी के आगमन की सूचना कितनी नाटकीय कुशलता से श्लिष्ट पदों के द्वारा दी गई है। (२) अंक ३ वाक्य ८१ पर शकुन्तला की उक्ति—'लतावलय सन्तापहारक, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय' में श्लेष के द्वारा राजा और लता दोनों से पुनर्मिलन के लिए संकेत है। शकुन्तला के कथन का वास्तविक अभिप्राय राजा ही समझता है। (३) अंक ७ वाक्य ६५ पर तापसी का कथन—'सउन्दलावण्णं पेक्ख' दो अर्थों को प्रकट करता है। शकुन्त-लावण्यं प्रेक्षस्व, मोरपक्षी की सुन्दरता को देख। परन्तु कवि दुष्यन्त को बताना चाहता है कि

Funding by IKS-MoE

ालक की माता का नाम शकुन्तला है और तदनुसार भरत इसका अर्थ समझता है—शकुन्तला-वर्णं प्रेक्षस्व, शकुन्तला के सौन्दर्य को देख। इसी प्रकार कालिदास ने अंक ३ और ४ में विष्कम्भक तथा अंक ६ में प्रवेशक का समावेश किया है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास का नाट्यशास्त्र पर असाधारण अधिकार था।

कालिदास के तीनों नाटकों में प्रेमाख्यान है। प्रेमाख्यानों के घटना-संकलन में इस बात का साधारणतया ध्यान रखा जाता है कि उसमें ये तीन विशेषताएँ हों—(१) प्रथम मिलन, (२) वियोग, (३) पुनर्मिलन। इस दृष्टि से शाकुन्तल को देखते हैं तो अंक १ से ३ में प्रथम मिलन है, अंक ४ से ६ तक वियोग है और अंक ७ में पुनर्मिलन है। प्रथम मिलन का अंक १ से ३ तक चढ़ाव है, फिर अंक ४ से ६ तक वियोग के कारण उतार है और अंक ७ में पुनर्मिलन के कारण फिर चढ़ाव है। इस प्रकार नाटक में चढ़ाव और उतार सुन्दर रूप में हैं।

## शाकुन्तल की कथा का समय

सम्पूर्ण शाकुन्तल की कथा में लगभग ६ वर्ष की घटनाओं का वर्णन है।

**अंक १**—इसका प्रारम्भ ग्रीष्म ऋतु से होता है। ग्रीष्म ऋतु शीघ्र ही प्रारम्भ हुई थी। अतः ज्येष्ठमास अर्थात् मई-जून का मास समझना चाहिए। अचिरप्रवृत्तम्·····ग्रीष्मसमयमधिकृत्य० (१वा० ८)। दोनों तपस्वी समिधा लेने जा रहे हैं, (समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्, १वा० २८) और शकुन्तला आदि वृक्षों को जल दे रही हैं, (बालपादपेभ्यः पयो दातुम्०, १वा० ४५)। अतः राजा के आश्रम में पहुँचने का समय प्रातः ९ बजे के लगभग समझना चाहिए। जब वह शकुन्तला आदि से मिलता है, तब धूप तेज हो गई थी, अतः लगभग १० बजे का समय समझना चाहिए। (अस्यां प्रच्छायशीतलायाम्०, १वा० ७८)। लगभग १ घंटे वह वार्तालाप में लगा रहा होगा। हाथी का विघ्न ११ बजे के लगभग समझना चाहिए। उस समय तक वस्त्र पूरे सूखे नहीं थे। जलार्द्रवल्कलेषु०, (१–३२)। ११ बजे के लगभग राजा विदाई लेता है।

**अंक २**—अंक २ की घटना अगले दिन प्रातःकाल की है। (ह्यः किलास्मासु०, २वा० १)। ग्रीष्म ऋतु का पुनः वर्णन है। (ग्रीष्मविरलपादपछायासु, २वा० १)। अंक २ की घटना केवल १ दिन की है।

**अंक ३**—अंक ३ की घटना लगभग १५ दिन बाद की है, क्योंकि इस बीच में विरह-दुःख से राजा और शकुन्तला दोनों ही अतिकृश हो गए हैं। अतः अंक २

और ३ में १५ दिन का अन्तर समझना चाहिए। अनुदिवसं परिहीयसे अङ्गैः (३वा० १२), निशि-निशि भुज० (३-१०), प्रजागरकृशो लक्ष्यते (३वा० ३०)। ग्रीष्म ऋतु ही है। आतपलङ्घनाद्० (३वा० १), आतपदोषः स्यात् (३वा० ५), न तु ग्रीष्मस्यैवं० (३–६), दिवस इवाभ्रश्यामः० (३–९)। इस अंक की घटना का प्रारम्भ तीसरे पहर होता है। आतपलङ्घनाद् (३वा० १), अनिर्वाणो दिवसः (३वा० ६७), कथमातपे गमिष्यसि (३–१९)। गौतमी सायंकाल के समय पहुँचती है, रात्रि प्रारम्भ होने वाली है। परिणतो दिवसः (३वा० ८०), उपस्थिता रजनी (३वा० ७४), सायन्तने सवन० (३–२४)। इस अंक की घटना तीसरे पहर से लेकर उसी दिन सायंकाल तक चलती है।

**अंक ४**—इस अंक की घटना तृतीय अंक के बाद लगभग १५ दिन बाद की समझनी चाहिए। राजा इष्टि समाप्त करके जाता है। यह इष्टि ज्येष्ठ मास की पौर्णमासेष्टि समझनी चाहिए। अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य० (४वा० ३)। अतः विष्कम्भक का प्रारम्भ आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को हुआ। इसी बीच में उसका शकुन्तला से गान्धर्व-विवाह हुआ। अंक का प्रारम्भ प्रातःकाल से होता है। शिष्य प्रातःकाल का वर्णन करता है। यात्येकतो० (४-२)। सूर्योदय और चन्द्रास्त एक ही समय बदी १ को ही होगा। इस अंक में १ दिन की की घटना है। प्रातःकाल से विदाई की तैयारी होती है। दोपहर से पूर्व विदाई हो जाती है। युगान्तरमारूढः० (४वा० १२२)। शकुन्तला के गर्भ-चिह्न प्रकट हैं, आपसन्नत्त्वा (४वा० ३३), पतझड़ का समय है, अपसृतपाण्डुपत्राः (४-१२) से ज्ञात होता है कि वर्षा बीत चुकी है। पतझड़ का समय है। अतः शिशिर का समय समझना चाहिए। गान्धर्व-विवाह को लगभग ६ मास हो चुके होंगे।

**अंक ५**—अंक ५ की घटना ३ या ४ दिन बाद की घटना समझनी चाहिए। आश्रम से हस्तिनापुर जाने में ३, ४ दिन लगे होंगे। मार्ग ३,४ दिन का होगा, अतः राजा ने कहा है—नामाक्षरं गणय (६–१२)। इस अंक की घटना तीसरे पहर से प्रारम्भ होती है और लगभग २ घंटे में समाप्त हो जाती है। राजा भोजन के बाद विश्राम कर रहा था। अंक की समाप्ति पर वह विश्राम के लिए जाता है। शयनभूमिमार्गमादेशय (५वा० ११५)।

**अंक ६**—यह अंक प्रातःकाल आरम्भ होता है और इसमें एक दिन की घटना है। सानुमती प्रातःकाल घाट पर स्नान के समय ड्यूटी देने आई थी। वसन्त ऋतु है। अँगूठी मिलने के लगभग १५ दिन बाद की घटना है। अंक ५

और ६ में लगभग ५ साल का अन्तर है। (१) शकुन्तला के पुत्र हो चुका है। सति खलु दीपे० (६वा० १८०)। (२) अचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताऽभिनन्दिष्यति (६वा० १८०) सूचित करता है कि दोनों का मिलन शीघ्र होगा। (३) पुत्र लगभग ६ वर्ष का हो चुका है।

**अंक ७**—एक दिन की घटना है। अंक ६ और ७ में लगभग १५ दिन का अन्तर होगा। इन्द्रलोक जाना, राक्षसों से युद्ध, इन्द्रलोक में स्वागत और विदाई में १५ दिन लगा होगा। इस प्रकार लगभग ६ वर्ष की घटना शाकुन्तल में है।

## (११) शाकुन्तल में रस-निरूपण

शाकुन्तल शृंगार-रस-प्रधान नाटक है। इसमें संभोग (संयोग) शृंगार अंगी है और विप्रलम्भ (वियोग) शृंगार, करुण, वीर, अद्‌भुत, हास्य, भयानक, वत्सल और शान्त ये अंग (गौण) रस हैं। यद्यपि शाकुन्तल में विप्रलम्भ शृंगार का पर्याप्ति विस्तार है, परन्तु नाटक की समाप्ति दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन के साथ होती है, नाटक सुखान्त है, अतः इसमें संभोग शृंगार को ही मुख्य रस मानना उचित है।

**संभोग-शृंगार**—कालिदास ने शाकुन्तल में विभिन्न रसों का बहुत कुशलता के साथ समावेश किया है। प्रथम तीन अंकों में संभोग शृंगार ही मुख्य है। प्रथम अंक में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के हृदय में अनुराग की उत्पत्ति होती है। वह कहता है—अहो मधुरमासां दर्शनम्। शुद्धान्तदुर्लभमिदं० (१–१७)। वह शकुतला की ओर आकृष्ट होकर कहता है—इदं किलाव्याजमनोहरं० (१–१८)। वह वल्कल पहनी हुई शकुन्तला को भी अतिसुन्दरी के रूप में देखता है और उसकी प्रशंसा में कहता है—सरसिजमनुविद्धं (१–२०)। वह शकुन्तला के लावण्य पर मुग्ध है और उसे पुष्पित लता के रूप में देखता है। अधर किसलय के तुल्य लाल है, भुजाएँ कोमल शाखाओं के तुल्य हैं और शरीर में फूल की तरह यौवन व्याप्त है। अधरः किसलयरागः० (१–२१)। वह मन से शकुन्तला को पत्नी के रूप में वरण करता है और और यह सहन नहीं कर सकता कि भ्रमर शकुन्तला के अधरों का स्पर्श करे। चलापाङ्गां दृष्टिं० (१–२४)। सन्मुख आने पर वह अपने प्रेम को अभिव्यक्त करता है। शकुन्तला भी उस पर मुग्ध होती है और अपने भावों से ही अपना प्रेम प्रकट करती है। शकुन्तला अतएव कहती है—किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य०(१वा० ८१)। राजा शकुन्तला के भावों को ठीक समझता है, अतएव कहता है कि—वाचं न मिश्रयति० (१–३१)। तृतीय

अंक में शकुन्तला की दयनीय अवस्था को देखकर तथा पारस्परिक प्रेम का निर्णय हो जाने पर राजा प्रवेश करता है और गान्धर्व-विवाह के लिए अपनी स्वीकृति देता है। राजा शकुन्तला को विश्वास दिलाता है कि वह उससे ही हार्दिक प्रेम करता है—इदमनन्यपरायणम्० (३–१६)। पृथ्वी और शकुन्तला दो को ही अपने कुल की प्रतिष्ठा मानता है—द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे० (३–१७)। वह अपने प्रेमाधिक्य को प्रस्तुत करता हुआ शकुन्तला के पैर दबाने को भी उद्यत होता है—किं शीतलैः० (३–१८)। राजा शकुन्तला से गान्धर्व-विवाह का प्रस्ताव करता है और शकुन्तला की स्वीकृति प्राप्त करता है—गान्धर्वेण विवाहेन० (३-२०)। इसके पश्चात् वह शकुन्तला के अधरपान का प्रयत्न करता है—अपरिक्षतकोमलस्य० (३–२१)। सप्तम अंक के अन्त में दुष्यन्त और शकुन्तला के पुनर्मिलन के अवसर पर भी संभोग शृंगार का सुन्दर वर्णन हुआ है। विरह-पीडिता शकुन्तला को देखकर राजा खेद प्रकट करता है और कहता है—वसने परिधूसरे वसाना० (७–२१)। शकुन्तला उसे पहचान लेती है तो वह दोनों के मिलन को चन्द्र और रोहिणी के मिलन के तुल्य मानता है। उपरागान्ते शशिनः० (७–२२)। राजा शकुन्तला के पैरों पर गिरकर अपनी भूल के लिए क्षमा माँगता है—सुतनु हृदयात्० (७–२४)।

**विप्रलम्भ शृंगार**—पूरे शाकुन्तल में विप्रलम्भ शृंगार का कवि ने बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। द्वितीय अंक में, तृतीय अंक के प्रारम्भ और अन्त में तथा पूरे षष्ठ अंक में विप्रलम्भ शृंगार का ही मुख्य रूप से वर्णन हुआ है। इसके कुछ विशिष्ट मनोरम स्थलों की ओर ही ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है। द्वितीय अंक में शकुन्तला के विरह में राजा खिन्न है। वह शकुन्तला को सुलभ न मानने के कारण खेद प्रकट करता है। कामं प्रिया न सुलभा० (२–१)। शकुन्तला की चेष्टाओं को स्मरण करता है और कामी व्यक्ति के तुल्य शकुन्तला की चेष्टाओं को अपने लिए समझता है। स्निग्धं वीक्षितम्० (२–२)। वह शकुन्तला के सौन्दर्य पर मुग्ध है और उसे अलौकिक स्त्री समझता है। चित्रे निवेश्य० (२–९)। वह चिन्तित है कि शकुन्तला का पति हो सकेगा या नहीं। अनाघ्रातं पुष्पं० (२–१०)। वह शकुन्तला की काम-चेष्टाओं को स्मरण करता है और स्वयं उसका पति होने की आशा करता है। अभिमुखे मयि० (२-११), दर्भाङ्कुरेण चरणः० (२–१२)। तृतीय अंक में राजा कामपीडित अवस्था में है। वह शकुन्तला से वियुक्त होकर नहीं रह सकता।

Funding by IKS-MoE

जाने तपसो वीर्यं० (३–२)। उसके लिए कामदेव और चाँदनी अत्यन्त उद्दीपक और दुःखद हो रही हैं। तव कुसुमशरत्वं० (३–३)। उधर शकुन्तला राजा के वियोग से पीड़ित है। चन्दन आदि का लेप किए हुए शय्या पर पड़ी है। स्तनन्यस्तोशीरं० (३-६)। शकुन्तला की दशा अत्यन्त दयनीय हो रही है। क्षामक्षामकपोलम्० (३-७)। यदि राजा नहीं मिलेगा तो वह जीवित न रह सकेगी। तद् यदि वामनुमतं० (३वा० २१)। शकुन्तला के वियोग में राजा भी अत्यन्त कृश हो चुका है। इदमशिशिरैः० (३-१०)। वह शकुन्तला से मिलने के लिए अधीर है और कहता है—अयं स ते तिष्ठति० (३–११)। शकुन्तला पत्र के द्वारा अपना अनुराग अभिव्यक्त करती है। तव न जाने हृदयं० (३–१३)। राजा भी अपनी दयनीय विरहावस्था को व्यक्त करता हुआ कहता है—तपति तनुगात्रि० (३-१४)। तृतीय अंक के अन्त में शकुन्तला के चले जाने पर वह खेद प्रकट करता है और किंकर्तव्यविमूढ़ भाव को प्रकट करता है। अहो विघ्नवत्यः० (३वा० ८२ क), क्व नु खलु० (३वा० ८२ ख)। षष्ठ अंक में अँगूठी मिलने के बाद राजा को शकुन्तला का स्मरण होता है। तभी से वह पश्चात्ताप-ग्रस्त है। कंचुकी उसकी अवस्था का वर्णन करता है कि—रम्यं द्वेष्टि० (६-५)। राजा को दुःख के कारण नींद नहीं आती है और वह सदा चिन्तित रहता है। प्रत्यादिष्टविशेष० (६-६)। उसने वसन्तोत्सव रोक दिया है। आम्रमंजरी को देखकर उसका दुःख उद्दीप्त हो जाता है। मुनिसुता-प्रणय० (६-८)। शकुन्तला के प्रत्याख्यान की घटना को स्मरण करके बार-बार अधीर हो जाता है। इतः प्रत्यादेशात्० (६-९))। अब उसे आशा नहीं है कि शकुन्तला के फिर दर्शन होंगे। स्वनो नु माया नु० (६–१०)। चित्र में शकुन्तला की प्रतिकृति बनाकर अपना मनोरंजन करना चाहता है। यद्यत् साधु न चित्रे० (६-१४)। चित्र में शकुन्तला की प्रिय वस्तुओं का भी समावेश करना चाहता है। कार्या सैकत० (६–१७), कृतं न कर्णार्पित० (६–१८)। शकुन्तला का चित्र देखते ही राजा की आँखों में आँसू आ जाते हैं, अतः चित्रगत शकुन्तला को भी न देखने से बहुत दुःखित है। प्रजागरात् (६-२२))। धनमित्र के स्वर्गवास का समाचार सुनकर अपनी सन्तान-हीनता पर बहुत दुःखित होता है और वंशोच्छेदन का विचार आते ही मूर्च्छित हो जाता है। अस्मात्परं बत० (६–२५)। इससे ज्ञात होता है कि विप्रलम्भ शृंगार के सभी पक्षों पर कालिदास का ध्यान गया है और उसने बहुत सुन्दरता से उसका वर्णन किया है।

**करुण विप्रलम्भ**—पंचम अंक में प्रत्याख्यान के बाद रोती हुई शकुन्तला के गमन के दृश्य में करुण विप्रलम्भ है। वसुधे देहि मे विवरम् (५वा० १०५)।

**वात्सल्य विप्रलम्भ**—शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में विदाई के प्रसंग को कतिपय विद्वानों ने करुण रस के अन्तर्गत माना है। इसमें भवभूति की मान्यता एको रसः करुण एव० (उत्तरराम० ३-४७) काम कर रही है। यहाँ पर करुण का अर्थ हृदय का विगलित और द्रवित होना है। परन्तु इसमें शास्त्रीय दृष्टि से यह आपत्ति है कि करुण रस का स्थायिभाव शोक होता है और उसका यहाँ पर अभाव है।

सामान्यतया वात्सल्य-भाव में पिता-पुत्रादि के ही चित्त का द्रवीभाव लक्षित होता है, परन्तु यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय यह है कि इस प्रसंग में न केवल पिता और सखी आदि ही द्रवित होते हैं, अपितु प्रकृति, पशु-पक्षी आदि भी शकुन्तला से अतिशय तादात्म्य-मूलक अनुराग के कारण वियोगजन्य दुःख का अनुभव करते हैं।

कालिदास ने यहाँ पर वात्सल्य-विप्रलम्भ का जो चित्रण किया है, वह अत्यन्त हृदयस्पर्शी और अनुपम है। यह चित्रण कालिदास की प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है। अतएव चतुर्थ अंक शाकुन्तल का प्राण समझा जाता है।

ऋषि कण्व शकुन्तला की विदाई के अवसर पर उतने ही दुःखित हैं, जितना कि एक गृहस्थ अपनी पुत्री की विदाई के समय होता है। उनका हृदय दुःख से भरा हुआ है, आँखों में आँसू हैं, गला अवरुद्ध हो रहा है। यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं० (४-६)। ऋषि कण्व वृक्षों को संबोधित करके कहते हैं कि शकुन्तला वृक्षों को सींचे बिना जलपान भी नहीं करती थी। प्रेम के कारण उनके किसलय भी नहीं तोड़ती थी और नये फूलों के उद्गम के समय आनन्द-विभोर होती थी। वह शकुन्तला आज जा रही है, उसको सभी वृक्ष विदाई दें। पातुं न प्रथमं० (४–९)। शकुन्तला विदा हो रही है, अतः सारा तपोवन दुःखी है। मृगियों ने तृण खाना छोड़ दिया है, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है, लताएँ पत्तों के रूप में आँसू डाल रही हैं। उद्गलितदर्भकवला० (४–१२)। शकुन्तला अपनी प्रियलता वनज्योत्स्ना से विदाई लेती है और उसे गले लगाती है। वनज्योत्स्ने० (४वा० ८८)। जिस मृग को शकुन्तला ने बचपन से पाला था, वह मृग शकुन्तला का वस्त्र पकड़ लेता है और उसे नहीं छोड़ता। यस्य त्वया व्रण० (४–१४)। शकुन्तला उसे धैर्य बँधाती है और रोती हुई चल पड़ती है। वत्स, किं सहवास०

(४वा० ६७)। विकल शकुन्तला कहती है कि पिता से वियुक्त होकर मैं कैसे जीवित रह सकूँगी। कथमिदानीं० (४वा० ११५)। ऋषि उसे सान्त्वना देते हैं। ऋषि से विदा होते समय शकुन्तला उनसे प्रार्थना करती है कि वे तपस्या के कारण अतिकृश हैं, अतः उसके लिए दुःख न करें। ऋषि उत्तर देते हैं कि तेरे द्वारा पूजा के रूप में डाले हुए और अब कुटी के द्वार पर उगे हुए नीवार को देखते हुए मेरा शोक भला कसे कम हो सकेगा? शममेष्यति मम शोकः० (४-२१)। उसकी सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा भी उसके वियोग से व्याकुल हैं और वे उसके बिना आश्रम में नहीं लौटना चाहती हैं। शकुन्तलाविरहितं० (४वा० १३१)।

**वीर-रस**—शाकुन्तल में वीर-रस का वर्णन न्यून है। द्वितीय अंक में दो ऋषिकुमार प्रविष्ट होकर उसकी युद्धवीरता की प्रशंसा करते हैं। राजा की वीरता के कारण उसका यश स्वर्ग तक पहुँचा हुआ है। वह पराक्रम और वीरता में इन्द्र के समकक्ष है। अध्याक्रान्ता वसति० (२-१४), नैतच्चित्रं यदयम्० (२–१५)। तृतीय अंक के प्रारम्भ में राजा की वीरता का फल दिखाई देता है कि उसने सब राक्षसों को भगा दिया है। का कथा बाण० (३–१)। पंचम अंक में राजा और शार्ङ्गरव का जो वाग्युद्ध हुआ है, उसमें राजा और शार्ङ्गरव दोनों ही धर्मवीर के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। दोनों ही अपने धर्म और कर्तव्य की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। राजा जब शकुन्तला से विवाह को स्वीकार नहीं करता तो शार्ङ्गरव कहता है कि क्या आप धर्म से विमुख हो रहे हैं या कृतघ्न हो रहे हैं। ऐश्वर्य से प्रमत्त व्यक्तियों में ऐसे ही विकार होते हैं। किं कृतकार्यद्वेषो० (५–१८)। जब वह शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता तो शार्ङ्गरव यहाँ तक कह जाता है कि तुम चोर के तुल्य हो। कृताभिमर्शाम्० (५–२०)। जब शकुन्तला उसे विश्वास दिलाने को आश्रम की एक घटना सुनाती है तो वह अपने आपको धर्मवीर के रूप में प्रस्तुत करता है और शकुन्तला को दुश्चरित्रा बताता है। व्यपदेशमाविलयितुं० (५-२१), एवमादिभिः० (५वा० ८०)। वह शकुन्तला पर आरोप लगाता है कि स्त्रियाँ जन्म से ही धूर्त होती हैं। स्त्रीणामशिक्षित० (५-२२)। शार्ङ्गरव क्रुद्ध होकर राजा को झूठा और छली बताता है और कहता है कि इस धोखे के फलस्वरूप उसका पतन होगा। आजन्मनः० (५-२५)। राजा पुनः अपने आपको धर्मात्मा और संयमी बताता है। कुमुदान्येव शशाङ्कः (५–२८)। षष्ठ अंक के अन्त में मातलि पर क्रोध करना और राक्षसों से युद्धार्थ जाने में भी वीररस है!

**अद्भुत रस**—कथानक के बीच में ही कुछ स्थलों पर अद्भुत रस का वर्णन हुआ है। जैसे—अंक ४ में आकाशवाणी कि शकुन्तला दुष्यन्त के द्वारा गर्भिणी है। दुष्यन्तेनाहितं० (४–४)। शकुन्तला की विदाई के समय वृक्षों का रेशमी वस्त्र देना और वनदेवता का आभूषण देना। क्षौमं केनचिदिन्दु० (४–५)। पंचम अंक के अन्त में प्रत्याख्यान के बाद शकुन्तला को मेनका के द्वारा उठा ले जाना। स्त्रीसंस्थानं० (५–३०)। इन्द्रलोक से पृथ्वी पर आते समय पृथ्वी का वर्णन। शैलानामवरोहतीव० (७-८)। मारीच के आश्रम में तपस्या करते हुए असाधारण ऋषियों का वर्णन। वल्मीकाग्र० (७-११), प्राणानामनिलेन० (७–१२)।

**हास्य रस**—शाकुन्तल में शिष्ट और परिष्कृत हास्य का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। हास्यरस के प्रसंगों का अधिकांश श्रेय विदूषक को है। शकुन्तला अनसूया से प्रियंवदा की शिकायत करती है कि उसने उसकी चोली कसकर बाँध दी है। प्रियंवदा उत्तर देती है कि तुम अपने यौवन को दोष दो, जिसने तुम्हारे उरोज इतने विस्तृत कर दिए। अत्र पयोधरविस्तारयितृ० (१ वा० ५२)। विदूषक राजा के साथ मृगया खेलने के कारण बहुत श्रान्त है। वह कहता है कि बड़े दुःख की बात है कि हमारे दुर्भाग्य से राजा ने शकुन्तला को देख लिया है। तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता (२ वा० १)। राजा ने विदूषक से कहा कि तुम एक काम में मेरी सहायता करना। विदूषक ने उत्तर दिया कि क्या लड्डू खाने में? किं मोदकखादिकायाम् (२ वा० १९)। सेनापति ने जब फिर राजा से शिकार खेलने का प्रस्ताव किया तो विदूषक ने सेनापति से कहा—जा शिकार खेल, तुझे कोई भालू वहाँ खा जाएगा। जीर्णऋक्षस्य कस्यापि० (२ वा० २७)। राजा ने जब विदूषक से शकुन्तला की प्रशंसा की तो उसने उत्तर दिया कि आपकी इच्छा ऐसी ही है जैसे खजूर से छके हुए व्यक्ति को इमली की इच्छा हो। यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरै० (२ वा० ४३)। जब राजा शकुन्तला के भावप्रदर्शन की चर्चा करता है तो विदूषक कहता है कि—नहीं तो क्या वह आपको देखते ही आपकी गोद में आ बैठती? न खलु दृष्टमात्रस्य० (२ वा० ५३)। राजा के प्रणयप्रसंग को सुनकर विदूषक कहता है कि—मुझे तो ऐसा दीखता है कि आप इस तपोवन को भी प्रमोद-उद्यान बना देंगे। कृतं त्वयोपवनं० (२ वा० ५५)। राजा ने जब विदूषक से कहा कि मेरे साथ तपोवन में चलो तो वह कहता है कि—राक्षसों का नाम सुनते ही मेरा तो सारा खून ही सूख गया है। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन० (२ वा० ८३)। राजा ने जब उससे कहा कि इधर

आश्रम में मेरी माँग है, उधर माता जी ने बुलाया है, क्या करूँ ? उसने उत्तर दिया कि—त्रिशंकु की तरह बीच में ही लटके रहिए। त्रिशंकुरिवान्तरा तिष्ठ (२ वा० ९३)। पंचम अंक में प्रारम्भ में जब राजा विदूषक को भेजता है कि वह जाकर हंसपदिका को समझा दे तो वह उत्तर देता है कि—वह मेरी चोटी पकड़कर मुझे बहुत पिटवाएगी और त्रिया-जाल में मुझे ऐसा फँसाएगी कि मैं छूट नहीं पाऊँगा। गृहीतस्य तया० (५ वा० ७)। षष्ठ अंक में जब काम-पीड़ित राजा यह कहता है कि कामदेव आम्रमंजरीरूपी बाण मेरे ऊपर छोड़ना चाहता है तो विदूषक डंडा लेकर दौड़ता है कि इस काम-बाण को अभी तोड़े देता हूँ। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं० (६ वा० ७४)। विदूषक पेटू है। वह सदा खाने-पीने की बात करता है। राजा शकुन्तला के वियोग में उन्मत्त-सा हो रहा है तो विदूषक कहता है कि मुझे तो भूख खाए जा रही है, मैं मरा जा रहा हूँ। कथं बुभुक्षया० (६ वा० १११)। जब राजा चित्र में मृग आदि बनाना चाहता है तो वह कहता है कि—यह दाढ़ी वाले स्वामियों का चित्र बनाकर इस चित्र को ही बिगाड़ देगा। यथाहं पश्यामि० (६ वा० १२९)। विदूषक को प्रच्छन्नरूप में मातलि ने पकड़ रखा है। वह विपत्ति-ग्रस्त की अवस्था में भी हास्य को नहीं छोड़ता। वह कहता है कि—यह मुझे ऐसे ही मरोड़े दे रहा है जैसे ईख के तीन टुकड़े कर रहा हो। एष मां कोऽपि० (६ वा० १८९)। विदूषक कहता है कि—इसने मुझे ऐसे ही पकड़ रखा है, जैसे बिलाव ने चूहे को पकड़ा हुआ हो। बिडालगृहीतो० (६ वा० १९६)। वह मातलि के स्वागत को बुरा मानता है और कहता है कि—इसने तो मुझे बलि के पशु की तरह मारा है और आप इसका स्वागत करते हैं। अहं येनेष्टिपशुमारं० (६ वा० २००)। षष्ठ अंक के प्रारम्भ में कोतवाल और धीवर के वार्तालाप में धीवर ने छूटने पर बहुत सुन्दर व्यंग्य कोतवाल पर कसा है कि—अब बताइए मेरी आजीविका कैसी है ? अथ कीदृशो मे० (६ वा० २५)।

**भयानक रस**—इस रस का शाकुन्तल में केवल तीन स्थानों पर प्रयोग दिखाई देता है। भयभीत मृग के भागने का वर्णन। ग्रीवाभङ्गा० (१–७)। रथ को देखकर भयभीत हाथी के आश्रम में प्रवेश का वर्णन। तीव्राघात० (१–३३)। राक्षसों का भयानक स्वरूप बनाकर आश्रम पर मँडराना। सायन्तने सवनं० (३–२४)।

**रौद्र रस**—शाकुन्तल में रौद्ररस की निष्पत्ति किसी भी स्थान पर नहीं होती

है। एक स्थान पर क्रोधभाव और दूसरे स्थान पर आक्रोशभाव की व्यंजना हुई है। क्रुद्ध दुर्वासा का शकुन्तला को शाप देना कि राजा तुझे स्मरण नहीं करेगा। आः, अतिथिपरिभाविनि, विचिन्तयन्ती० (४–१)। यह प्रसंग क्रोधभाव को व्यक्त करता है। राजा के प्रत्याख्यान से अपमानित और क्रुद्ध शकुन्तला का राजा को उत्तर कि—नीच, तू अपनी तरह ही सबको समझता है, तुझ जैसा और कौन ढोंगी होगा जो धर्म का चोगा पहन कर औरों को इस प्रकार धोखा देगा। अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन० (५ वा० ८३)। यह प्रसंग क्षोभ और आक्रोश भाव को व्यक्त करता है।

**वात्सल्य रस**—सप्तम अंक में सर्वदमन के वर्णन में वात्सल्य का सुन्दर चित्रण हुआ है। राजा सर्वदमन को देखकर उसको प्यार करने के लिए अत्यन्त उत्सुक है। वह बालक की अकारण हँसी और उसकी गोद में बैठने की इच्छा पर मुग्ध है। वह यह सौभाग्य का चिह्न समझता है कि बालक को गोदी में खिलाया जाए और उसके अंगस्पर्श से वस्त्र मैले हों। आलक्ष्यदन्तमुकुलान् (७–१७)। वह सर्वदमन का स्पर्श करके आह्लाद का अनुभव करता है। अनेन कस्यापि० (७–१६)।

**शान्त रस**—सप्तम अंक में मारीच ऋषि और उनके आश्रम के वर्णन में शान्तरस का प्रवाह है। राजा वहाँ पहुँचकर कहता है कि यह स्थान स्वर्ग से भी अधिक शान्त और सुखद है। मैं मानो अमृत के तालाब में स्नान कर रहा हूँ। स्वर्गादधिकतरं० (७ वा० २५)। आश्रम में संयमी और तपस्वी ही व्यक्ति हैं। उनकी तपस्या अनुपम है। प्राणानाम्० (७–१२)। राजा मारीच को देखकर मन्त्र-मुग्ध है। वह ऋषि की प्रशंसा में कहता है—प्राहुर्द्वादशधा० (७-२७)।

शाकुन्तल शृंगार-प्रधान नाटक है, परन्तु उसमें गौण रसों और भावों की भी सफलता के साथ व्यंजना हुई है।

## (१२) कालिदास का काव्य-सौन्दर्य

**शाकुन्तल के मार्मिक प्रसंग**—शाकुन्तल के मार्मिक प्रसंगों में निम्नलिखित स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें कालिदास की प्रतिभा, उसकी कल्पना-शक्ति, उसके कवित्व तथा उसकी नाटयकुशलता का विशेष परिचय प्राप्त होता है। प्रथम अंक में भ्रमर-वृत्तान्त और शकुन्तला की सखियों से राजा का वार्तालाप, द्वितीय अंक में शकुन्तला के लावण्य का वर्णन, तृतीय अंक में राजा और शकुन्तला के विरह-दुःख का वर्णन और दोनों के मिलन का वर्णन, चतुर्थ

अंक में शकुन्तला की विदाई का वर्णन, पंचम अंक में राजा और शार्ङ्गरव का विवाद, षष्ठ अंक में राजा के शोक का वर्णन, सप्तम अंक में पुत्र-दर्शन और शकुन्तला से मिलन का वर्णन।

**शाकुन्तल के ४ श्लोक**—अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक के प्रसिद्ध चार श्लोक ये माने जाते हैं—यास्यत्यद्य० (४-६), शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८), अस्मान् साधु० (४-१७) या—अभिजनवतो भर्तुः० (४-१९)), भूत्वा चिराय० (४-२०)। हमारे विचार से चतुर्थ अंक के अति प्रसिद्ध चार श्लोक निम्नलिखित हैं—यास्यत्यद्य० (४-६), शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८), पातुं न प्रथमं० (४-९), अस्मान् साधु० (४-१७)। चतुर्थ अंक को शाकुन्तल में सर्वोत्तम इसलिए माना गया है कि इसमें करुण भाव का सर्वोत्तम चित्रण हुआ है। दृश्य अत्यन्त मार्मिक है। अतिप्रसिद्ध चार श्लोक भी वही हो सकते हैं, जिनमें करुणभाव की छटा सर्वोत्तम है या जो भावादि की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। यास्यत्यद्य० और शुश्रूषस्व० के विषय में किसी का मतभेद नहीं है। यास्यत्यद्य० में करुणभाव का सर्वोत्तम प्रवाह है, अतः वह चारों में भी सर्वोत्तम है। शुश्रूषस्व० में विदा होती हुई पुत्री को सर्वोत्तम उपदेश है। यह चार श्लोकों में दूसरे स्थान पर है। पातुं न प्रथमं० में करुणभाव का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। बाह्य-प्रकृति से ऐकात्म्य का अनुभव किया गया है। अतः यह तृतीय श्लोक मानना उचित है। अस्मान् साधु० में कन्यापक्ष की ओर से कन्या के पिता का वर के लिए सन्देश है। यह श्लोक कन्या के पिता की हार्दिक कामना को सुन्दर रूप में प्रकट करता है। अभिजनवतो भर्तुः० और भूत्वा चिराय० में शकुन्तला को आश्वासन दिया गया है। मार्मिकता और भाव आदि की दृष्टि से उक्त चार श्लोकों की अपेक्षा इनका भाव कुछ न्यून है।

**अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का समन्वय**—कालिदास ने अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का सुन्दर समन्वय किया है। जो घटना मानव के हृदय में हो रही है, वैसी ही घटना बाह्य-प्रकृति में भी हो रही है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला से प्रेम करके उसे भूल जाता है, उधर प्रस्तावना के श्लोक में भ्रमर शिरीष के फूलों का स्वाद लेकर उन्हें भुला देते हैं। ईषदीषत्० (१-४)। चतुर्थ अंक में यह समन्वय विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। शकुन्तला पति के वियोग में खिन्न है। उधर चन्द्रमा के छिपने से कुमुदिनी की अवस्था दयनीय हो गई है। अन्तर्हिते शशिनि० (४-३)। शकुन्तला की विदाई का अवसर है। आश्रम के

सभी व्यक्ति खिन्न हैं। वृक्ष और वनदेवता भी उनसे सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। वे रेशमी वस्त्र, अलक्तक तथा आभूषण देकर शकुन्तला के प्रति अपना घनिष्ट प्रेम प्रकट करते हैं। क्षौमं केनचित्० (४-५)। ऋषि कण्व वृक्षों से कहते हैं कि वे शकुन्तला को विदाई दें। पातुं न प्रथमं० (४-९)। वे कोयल की ध्वनि के द्वारा विदाई की स्वीकृति देते हैं। अनुमतगमना० (४-१०)। आश्रमवासियों के साथ ही आश्रम के पशु-पक्षी भी विदाई के कारण दुःखित हैं। मृगियाँ दर्भ नहीं खा रही हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है। उद्गलितदर्भ० (४-१२)। शकुन्तला के द्वारा पुत्रवत् पाला हुआ मृग शकुन्तला को आगे बढ़ने से रोकता है। यस्य त्वया० (४-१४)। यदि शकुन्तला प्रिय-मिलन के लिए आतुर है तो चकवी भी चकवा से क्षण भर के लिए भी पृथक् नहीं रहना चाहती। नलिनीपत्रान्तरित० (४ वा० १०२)। षष्ठ अंक में राजा दुःखित है। वसन्त ऋतु का समय है, परन्तु वृक्षों के पुष्पादि विकसित नहीं हो रहे हैं, कोयलों की ध्वनि बन्द है। चूतानां चिरनिर्गतापि० (६-४)।

**कालिदास का प्रकृति-प्रेम**—कालिदास प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत मानते हैं। मनुष्य के तुल्य वह भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। वह मनुष्य के सुख-दुःख में सहानुभूति प्रकट करती है। मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का दोनों से आदान-प्रदान सदा चलता रहता है। शकुन्तला वृक्षों को सगा भाई और लताओं को अपनी बहन समझती है और उसी प्रकार उनकी सेवा करती है। अस्ति मे सोदरस्नेहो० (१ वा० ४८)। प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा में जो रस और आनन्द है, वह कृत्रिम में नहीं। अतएव निसर्ग-सुन्दरी शकुन्तला असाधारण मनोरम है। शुद्धान्तदुर्लभम्० (१-१७)। केसरवृक्ष के पास खड़ी हुई शकुन्तला उसकी प्रिया लता के तुल्य सुन्दर दीखती है। लतासनाथ इवायं० (१ वा० ५७)। शकुन्तला के लिए आम्र और वनज्योत्स्ना का विवाह पति-पत्नी के विवाह के तुल्य मनोरम है। इयं स्वयंवरवधूः० (१ वा० ६०)। दुष्यन्त मृगों की दृष्टि में शकुन्तला की दृष्टि की सुन्दरता देखता है, अतएव उनका वध नहीं कर सकता। न नमयितुम्० (२-३)। सूर्योदय और चन्द्रमा का अस्त होना मनुष्य को शिक्षा देता है कि सुख-दुःख परिवर्तनशील हैं। यात्येकतोऽस्त० (४-२)। जो विरहिणी स्त्री की दशा होती है, वही चन्द्रमा के विना कुमुदिनी की है। अन्तर्हिते० (४-३)। ऊपर वर्णन किया जा

Funding by IKS-MoE

चुका है कि किस प्रकार शकुन्तला की विदाई के समय वृक्ष वस्त्र और आभूषण देते हैं तथा सगे सम्बन्धियों का सा प्रेम-प्रदर्शन करते हैं । मृगियाँ तृण नहीं खातीं और न मोर नाचते हैं । यह प्रकृति की सहृदयता का ही परिचय है ।

प्रकृति न केवल मनुष्य के लिए मनोरंजन का साधन है, अपि तु वह मनुष्य को जीवन की उच्च शिक्षाएँ भी देती है । जिस प्रकार सूर्य, वायु और शेषनाग सदा अपने कर्तव्य में लगे हुए हैं, उसी प्रकार राजा को भी सदा कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए । भानुः सकृद्० (५-४) । जिस प्रकार वृक्ष स्वयं धूप सहन करके दूसरों को छाया प्रदान करता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा के हित के लिए कष्ट सहन करना चाहिए । स्वसुखनिरभिलाषः० (५–७) ।

यहाँ पर केवल शाकुन्तल से ही उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं । कालिदास के प्रकृति-प्रेम को प्रकट करने वाले कितने ही श्लोक मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, रघुवंश, कुमारसंभव आदि में हैं । उदाहरणार्थ देखो—मेघदूत में मेघ के मार्ग का वर्णन, रघुवंश सर्ग १३ श्लोक ५४-५७ में संगम का वर्णन, मालविकाग्निमित्र ३-४, ३-५, कुमारसंभव १-४१, ३-५४,८-६३ इत्यादि ।

**सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण**—कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम के विषय में कुछ अपने मौलिक मन्तव्यों को स्थान दिया है, अतएव उनका सौन्दर्य और प्रेम का वर्णन असाधारण हो गया है । सौन्दर्य बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं करता है । सुन्दर वस्तुएँ सभी अवस्थाओं में सुन्दर होती हैं । अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् (६ वा० ६२) । वल्कल पहनने पर भी शकुन्तला की शोभा कुछ निखर ही रही है । सरसिजमनुविद्धं० (१-२०) । कालिदास के लिए अकृत्रिम सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य है । इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः० (१-१८) । शकुन्तला का सौन्दर्य अव्याज-मनोहर है । अतएव वह अक्लिष्टकान्ति है । उसका सौन्दर्य निर्दोष है । इदमुपनतमेवं० ( ५-१९ ) । प्राकृतिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है, अतएव वे शकुन्तला की तुलना एक पुष्पित लता से करते हैं । अधरः किसलय० (१-२१) । वे सौन्दर्य को पापवृत्ति का साधन नहीं मानते, अपितु सौन्दर्य को शील और सदाचार का साधन मानते हैं । यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये, न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः (कुमार० ५-२६) । उनका मन्तव्य है कि 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' । अतएव दुष्यन्त से आशा नहीं है कि वह शकुन्तला को भुला देगा । न तादृशा आकृतिविशेषा० (४ वा० ४) । उन्होंने स्त्री-सौन्दर्य के साथ ही पुरुष के सौन्दर्य का

Funding by IKS-MoE

भी वर्णन किया है। स्त्री के सौन्दर्य में सुकोमलता आदि गुण आवश्यक हैं तो पुरुष के सौन्दर्य में हृष्टता, पुष्टता, व्यायामशीलता आदि गुण आवश्यक हैं। अतएव दुष्यन्त का वर्णन किया है कि—अनवरतधनुर्ज्या० (२-४)। मानव ही नहीं मृगादि के सौन्दर्य का भी उन्होंने वर्णन किया है। ग्रीवाभङ्गाभिरामं० (१-७)। स्त्री के सौन्दर्य में लज्जाशीलता आदि गुणों का होना अनिवार्य है। अतएव शकुन्तला राजा से स्वयं बात नहीं करती है। वाचं न मिश्रयति० (१-३१)। वह न राजा से आँख मिलाती है और न उसके सामने हँसती है। अभिमुखे मयि० (२-११)। वे स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु नहीं मानते, अपितु उसे गृहिणी, सचिव, सखा आदि के रूप में मानते हैं। वह पति के लिए गृहस्वामिनी, सन्मन्त्रणादात्री और मित्र के रूप में है। गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। (रघुवंश ८-६७)। अतएव कण्व शकुन्तला को उपदेश देते हैं कि तुम सद्गृहिणी बनना। शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८)। स्त्री का वास्तविक सौन्दर्य सच्चरित्रता है। अतएव पार्वती ने तपस्या के द्वारा अपने सौन्दर्य को सफल बनाना चाहा। इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः। (कुमार० ५-२)। ऐसे सौन्दर्य का फल प्रेम और सौभाग्य है। प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कुमार० ५-१)।

कालिदास ने प्रेम का चित्रण करते हुए यह सिद्ध किया है कि विषय-वासना से युक्त प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं है। तपस्या से निखरा हुआ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। अतएव पार्वती अपने शारीरिक सौन्दर्य से शिव को नहीं जीत सकी, परन्तु तपस्या के बाद उसके आगे शिव आत्मसमर्पण करते हैं और अपने आपको उसका दास मानते हैं। अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभि० (कुमार० ५-८६)। दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम प्रेम बाह्य सौन्दर्य पर आश्रित था और विषय-वासना-प्रधान था, अतः वह प्रेम सफल नहीं हुआ। वियोग के बाद जब दोनों का प्रेम तपस्या की अग्नि में निखरा, तब वह सफल हुआ। अतएव दुष्यन्त नियमक्षाममुखी मलिनवस्त्रधारिणी शकुन्तला को प्रेम की मूर्ति मानता है और उसके पैरों पर गिरता है। वसने परिधूसरे० (७-२१)। कालिदास का मन्तव्य है कि पारस्परिक प्रेम का कारण पूर्वजन्म के संस्कार हैं। भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (५-२)। वियोगी के लिए प्रिय-वियोग सबसे अधिक दुःख का कारण है। पति-वियुक्त स्त्री की स्थिति दयनीय होती है। अन्तर्हिते शशिनि० (४-३)। विरही के लिए चन्द्रमा दुःखद

हो जाता है, कामदेव अग्निबाण-वर्षक हो जाता है। तव कुसुमशरत्वं० (३-३)। कालिदास भ्रमर-वृत्ति का समर्थक नहीं है। वह अनियन्त्रित प्रेम को प्रेम नहीं मानता। अतएव उसने दाम्पत्य-प्रेम को महत्त्व दिया है। दुष्यन्त के शब्दों में उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया है कि दाम्पत्य-प्रेम ही उचित प्रेम है। परस्त्री-सम्पर्क हेय है। कुमुदान्येव शशाङ्कः० (५-२८)। भारतीय मर्यादा के अनुसार उसने आदरणीय उसी व्यक्ति को माना है जो संयमी है। विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। (कुमार० १-५९)।

**अलौकिक तत्त्व**—कालिदास के नाटकों में अलौकिक तत्त्वों का भी समावेश है। विक्रमोर्वशीय में ऐसे तत्त्व अधिक मात्रा में हैं। शाकुन्तल में कम मात्रा में हैं। पाश्चात्त्य विद्वानों को ये तत्त्व असाधारण प्रतीत होते हैं, परन्तु ये तत्त्व भारतीय भावनाओं के अनुकूल हैं। अतः भारतीय विद्वानों को अनुचित या असंगत प्रतीत नहीं होते हैं। कालिदास ने इनके समावेश के द्वारा नाटक को अधिक रोचक और आकर्षक बना दिया है। मर्त्यलोक और स्वर्गलोक दोनों के वर्णन के द्वारा उसने दोनों का सुन्दर समन्वय कर दिया है। कालिदास ने शाकुन्तल में जिन अलौकिक तत्त्वों का समावेश किया है, उनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(क) जो कथानक के विकास पर कुछ प्रभाव नहीं डालते, (ख) जो कथानक के विकास पर प्रभाव डालते हैं। अलौकिक तत्त्वों की नाटकीय उपयोगिता को संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं। (क) जो कथानक के विकास पर प्रभाव नहीं डालते हैं। जैसे—(१) कण्व की दिव्य शक्ति। स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः (५वा० ४६), तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः (७वा० १४०)। कण्व को तपस्या के कारण सभी सिद्धियाँ प्राप्त हैं। वे सभी भविष्य की घटनाओं को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अतः शकुन्तला की भावी विपत्ति के निराकरण के लिए सोमतीर्थ गए थे। यह प्राचीन ऋषियों की तपस्या की सिद्धि को प्रदर्शित करता है। (२) वनदेवता का आभूषण देना और वृक्षों का वस्त्रादि देना। क्षौमं केनचिद्० (४–५)। कालिदास इसके द्वारा प्रकृति के साथ तादात्म्य प्रदर्शित करना चाहता है। प्रकृति भी मानव के सुख-दुःख में हाथ बटाती है। आवश्यकता पड़ने पर मानव की आवश्यकताओं को प्रकृति पूर्ण कर सकती है। चर-अचर में समवेदना समान है। (३) सानुमती का कथन कि प्रणिधान से सब कुछ जान सकती हूँ। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन० (६वा० ३६)। उसका अन्तर्हित होकर रहना। इसके द्वारा कालिदास अप्सराओं को प्राप्त

Funding by IKS-MoE

सिद्धि का वर्णन किया है। यह गुप्त रूप में रहकर राजा की शोकाकुलता को देखती है और उसका समाचार शकुन्तला तक पहुँचाती है। प्रकट होने पर यह संभव नहीं था। (४) राक्षसों का आकाश में उड़ना और यज्ञ में विघ्न करना। सायन्तने सवन० (३-२४)। इसके द्वारा कालिदास सूचित करता है कि राक्षस यज्ञों में विघ्न करते थे और राजा ने उनका वध किया। राक्षसों को भी शक्ति प्राप्त थी कि वे आकाश में विचरण कर सकें। (५) इन्द्रलोक से लौटते समय सात वायुओं में से होकर लौटना। त्रिस्रोतसं वहति० (७-६)। यह कालिदास के समय की ज्योतिष की मान्यता को प्रकट करता है। (६) मातलि के रथ से इन्द्रलोक की यात्रा। यह सूचित करता है कि कालिदास के समय में वायुयान या विमान जैसी कुछ वस्तुएँ थीं, जिनके द्वारा आकाश में विचरण किया जा सकता था और इन्द्रलोक तक जाना हो सकता था। (७) गालव की आकाशयात्रा। इदानीमेव विहायसा गत्वा० (७वा० १४४)। यह सूचित करता है कि मारीच के आश्रम में सभी सिद्धि-प्राप्त व्यक्ति थे। वे सशरीर उड़ सकते थे। यह मारीच के प्रभाव को भी प्रकट करता है।

(ख) जो कथानक के विकास पर प्रभाव डालते हैं। जैसे—(१) अशरीरिणी वाक् या आकाशवाणी। दुष्यन्तेनाहितं तेजो० (४–४)। ऋषि को आकाशवाणी से ज्ञात होता है कि संसार के कल्याणार्थ शकुन्तला गर्भिणी है। यह ऋषि की सिद्धि को द्योतित करता है। यदि कोई पात्र यह घटना ऋषि को बताता तो संभव था कि वे उस पर क्रुद्ध हो जाते। आकाश-वाणी से घटना का ज्ञान और शकुन्तला की निर्दोषता दोनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। (२) मेनका का शकुन्तला को ले जाना। स्त्रीसंस्थानं० (५-३०)। मेनका अप्सरा थी, अतः वह अदृष्टरूप में शकुन्तला को ले गई। माता अपनी पुत्री को घोर दुःख में नहीं देख सकती है। मेनका का अदृष्टरूप में शकुन्तला को ले जाना दर्शकों को आश्चर्य में डालता है और उनकी उत्सुकता को बढ़ाता है। (३) मातलि का विदूषक को मारना। मातलि को भी दिव्य व्यक्ति होने के कारण शक्ति प्राप्त थी कि वह अदृष्टरूप से रह सके। उसका विदूषक को पीटना राजा को क्रुद्ध करने में सहायक है। (४) राजा का इन्द्रलोक को जाना, यह सूचित करता है कि वीर राजा आदि सशरीर इन्द्रलोक को जा सकते थे और देवताओं तक की सहायता कर सकते थे। इन्द्र की सहायता का फल होता है कि वह अपनी पत्नी और अपने पुत्र का दर्शन करता है। देव-कृपा से उसकी इष्टसिद्धि होती है।

Funding by IKS-MoE

(७) अपराजिता ओषधि। कालिदास ने इसका उल्लेख महर्षि मारीच के आश्रम की विभूति के प्रदर्शन के लिए किया है। मारीच के आश्रम में ऐसी भी ओषधियाँ संभव थीं, जिनका प्रभाव अत्यन्त विलक्षण हो। इससे राजा पहचान सका कि भरत उसका ही पुत्र है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि अलौकिक तत्त्वों का समावेश नाटक को अधिक मनोरम बनाने में सहायक हुआ है।

**कालिदास के नाटकों में समान घटनाएँ**—कालिदास के अन्य नाटकों से शाकुन्तल की तुलना करने से ज्ञात होता है कि कालिदास को कुछ घटनाएँ अधिक प्रिय थीं। अतएव उसने उनकी आवृत्ति शाकुन्तल में भी की है। यह सत्य है कि शाकुन्तल में उसने उन घटनाओं को अधिक सुन्दर रूप में रखा है। जैसे—(१) तीनों नाटकों की कथा प्रेममूलक है। तीनों नाटक श्रृंगार रस के हैं। तीनों नाटक सुखान्त हैं। विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल की कथा का आधार पौराणिक कथाएँ हैं। (२) तीनों नाटकों में नायक नायिका पर कुछ उपकार करता है। उसे किसी प्रकार के कष्ट से बचाता है। दुष्यन्त भ्रमर-पीड़ित शकुन्तला को बचाता है, पुरूरवा उर्वशी को दानवों से छुड़ाता है। नायक के उपकार के फलस्वरूप नायिका उस पर आकृष्ट होती है। नायक-नायिका का प्रथम मिलन होता है। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी पहले पुरूरवा पर आकृष्ट होती है, परन्तु शाकुन्तल में पहले दुष्यन्त शकुन्तला पर मोहित होता है। (३) प्रथम मिलन के पश्चात् विदाई के समय नायिका कुछ बहाना बनाकर थोड़ी देर रुकती है और नायक के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करती है। दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत० (२—१२), सव्याजं विलम्ब्य० (१वा० १३१)। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी का हार लता में फँसता है और वह मुड़कर राजा को देखती है। (४) विक्रमो० और शाकुन्तल में द्वितीय अंक में विदूषक का प्रवेश। विदूषक को अपने प्रणय का विवरण देना। (५) नायक छिपकर नायिका के गुप्त प्रेमालाप को सुनता है और उसकी चेष्टाओं को देखता है। शाकुन्तल में अंक १ और ३ में दुष्यन्त तथा मालविका० में अंक ३ में राजा। (६) नायिका अपने प्रिय को प्रेम-पत्र लिखती है। शाकुन्तल (३-१३) में शकुन्तला और विक्रमो० (२-१२) में उर्वशी। (७) विक्रमो० में संगमनीय मणि को गीध चुरा ले जाता है। शाकुन्तल में विदूषक को मातलि उड़ा ले जाता है। (८) नायिका को नायक से किसी बहाने अलग किया गया है। विक्रमो० में देवदूत उर्वशी को स्वर्ग में ले जाता है। शाकुन्तल में गौतमी के आने से वियोग हुआ है। (९) प्रणय का फल पुत्रोत्पत्ति है।

Funding by IKS-MoE

विक्रमो० में आयुष् और शाकुन्तल में भरत। दोनों का पिता की दृष्टि से दूर पालन होता है। आयुष् मोर से खेलता है, भरत शेर के बच्चे से। (१०) नायक-नायिका का मिलन आश्चर्यजनक रूप से होता है। किसी प्रत्यभिज्ञान की सहायता से मिलन होता है—विक्रमो० में संगमनीय मणि से और शाकुन्तल में अँगूठी से।

यद्यपि कालिदास से पूर्व भास और शूद्रक सफल नाटककार हो चुके हैं, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि कालिदास ही संस्कृत साहित्य का सर्वोत्तम नाटककार है। उसका भाव और भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह प्रत्येक बात को बहुत सुन्दर, सरस और सरल रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी प्रत्येक घटना सार्थक है। प्रत्येक पात्र अपनी स्थिति के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करता है। प्रत्येक वर्णन में स्वाभाविकता और सौन्दर्य है। प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र बहुत सुन्दर ढंग से विकसित हुआ है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में उनकी वैयक्तिकता का विकास भी प्रशंसनीय ढंग से हुआ है। कालिदास ने अनावश्यक विस्तार का परित्याग करके सदा संकेतात्मक शैली का ही आश्रय लिया है। नाटक के प्रवाह के साथ रस-परिपाक भी पुष्ट रूप में हुआ है। साथ ही कवित्व और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर संमिश्रण हुआ है।

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कालिदास के नाटक अभिनय की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं। इनका अभिनय अनेक स्थलों पर पूर्ण सफलता के साथ हो चुका है। एक साधारण आख्यानक को इतना अधिक रोचक बना देना कालिदास का ही कला-कौशल है। प्रत्येक स्थान पर उसने अपनी मौलिकता और कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। शृंगार के दोनों पक्षों के वर्णन में वह अनुपम है। शिष्ट और परिष्कृत हास्य एवं व्यंग्य का भी उसने यथास्थान सुन्दर समावेश किया है। उसके नाटकों में प्रवाह, सजीवता और सबलता है। उसके नाटक महाविद्वानों और साधारण जनों सभी को आनन्दामृत का पान कराकर आह्लादित करते हैं। उसने नाटकों में जीवन की विभिन्न समस्याओं पर संक्षिप्त किन्तु प्रबल और स्पष्ट विचार प्रस्तुत करके उनको व्यावहारिक रूप भी दिया है। जीवन का लक्ष्य सदा उन्नत होना चाहिए, विश्व-बन्धुत्व का भाव प्रत्येक में जागृत होना चाहिए, परदुःखकातरता से ही मनुष्य मनुष्य है; इत्यादि अनेक उत्तम विचारों का उसने नाटकों में प्रतिपादन किया है।

Funding by IKS-MoE

## (१३) कालिदास की शैली

कालिदास संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसकी सर्वप्रियता का कारण उसकी सरल, परिष्कृत और प्रसाद-गुणयुक्त शैली है। ये सभी गुण वैदर्भी रीति में हैं। वह वैदर्भी रीति का सर्वश्रेष्ठ कवि है। वैदर्भी रीति की मुख्य विशेषताएँ हैं :—मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या थोड़े समासयुक्त पदों का होना। माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥ (साहित्यदर्पण ९. २-३)। कालिदास की शैली पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उसकी शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—(१) उसकी शैली में शैली के तीनों गुण प्रसाद, माधुर्य और ओज, इन तीनों गुणों की सत्ता है। इनमें से प्रसाद और माधुर्य गुण बहुत अधिक मात्रा में हैं। ओज गुण कुछ कम मात्रा में है। (२) उसकी भाषा सरल, सरस और मनोरम है। उसने लम्बे समासों का प्रयोग सर्वथा नहीं किया है। जहाँ पर समास हैं, वहाँ पर भी थोड़े ही पदों का समास है। उसने पाण्डित्य-प्रदर्शन का परित्याग किया है। अतएव क्लिष्ट रचना, क्लिष्ट कल्पना और दुरूह प्रयोगों का अभाव है। (३) उसका भाषा पर पूर्ण अधिकार है। अतएव उसकी भाषा परिष्कृत और सुसंस्कृत है। उसका शब्दकोष अगाध है। वह प्रत्येक स्थान पर ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करता है, जो उस स्थान पर अत्यन्त उचित और सार्थक प्रतीत होते हैं। भाषा और शब्दकोष पर अधिकार होने से उसकी भाषा में असाधारण मनोरमता और प्रवाह है। (४) उसकी शैली संक्षिप्त और ध्वन्यात्मक है। वह किसी भी बात का लम्बा-चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप में उसकी व्यंजना कर देता है। अतएव उसकी कृतियों में ध्वन्यात्मकता मुख्य है। विषय को मार्मिक ढंग से जिस रूप में जितना रखना अत्यावश्यक है, उतना ही वह प्रस्तुत करता है, अधिक नहीं। उसकी व्यंजना को पूर्ण रूप से समझना सहृदय की सहृदयता पर निर्भर है। (५) उसके कथनोपकथन और उनकी भाषा सर्वथा पात्रों के अनुकूल है। जो व्यक्ति जिस कोटि का है, वह वैसी ही भाषा का प्रयोग करता है। पुरोहित पंडिताऊ भाषा का प्रयोग करता है, कण्व ऋषि-जनोचित भाषा बोलते हैं और स्त्रियाँ स्त्रियों के अनुकूल भाषा बोलती हैं। (६) वह वर्णन में असाधारण कुशल है। वह प्रत्येक वस्तु का सजीव-सा वर्णन करता है। जहाँ पर जैसा भाव है, वहाँ पर उसकी भाषा उसी प्रकार की है। वह प्रकृति के वर्णन में बहुत पटु है। उसने वृक्षों, वनस्पतियों,

Funding by IKS-MoE

पशु-पक्षियों, पर्वत, नदी, तालाब सभी का सुन्दर वर्णन किया है। (७) उसके नाटकों में संवाद संक्षिप्त, सरल और रोचक हैं। उसने संवादों में अनावश्यक विस्तार का सर्वत्र परित्याग किया है। संवादों की भाषा इतनी चुस्त और मुहावरेदार है कि वह विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है। (८) उसने अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। प्रायः सभी अलंकार उसकी कृतियों में मिलते हैं। उपमा के प्रयोग में वह अद्वितीय निपुण है। उसकी उपमाएँ बलात् मन को हर लेती हैं। वह अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में भी बहुत सिद्धहस्त है। उसके सैकड़ों अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं। (९) वह छन्दों के प्रयोग में भी कुशल है। उसने आर्या श्लोक आदि छोटे छन्दों को विशेष रूप से अपनाया है। बड़े छन्दों का प्रयोग उसने कम किया है। (१०) उसने अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। उसके प्रत्येक शब्द चुने हुए और उपयुक्त होते हैं।

कालिदास की शैली की जो विशेषताएँ ऊपर लिखी गई हैं, उनके उदाहरण दिग्दर्शन रूप में शाकुन्तल से प्रस्तुत किए जाते हैं :—

**प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण**—कालिदास की विशेषता है कि वह प्रसंग के अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है। साधारणतया उसकी भाषा में सर्वत्र प्रसाद और माधुर्य गुण प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोकों में प्रसाद गुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ते ही श्लोक का भाव प्रकट हो जाता है:—भव हृदय साभिलाषम् (१–२८), क्व वयं क्व परोक्ष० (२–१८), जाने तपसो वीर्यं० (३–२), अयं स ते तिष्ठति० (३–११) इदमनन्यपरायण० (३–१६), गान्धर्वेण विवाहेन० (३–२०), ययातेरिव शर्मिष्ठा० (४–७), अर्थो हि कन्या० (४–२२), भानुः सकृद्० (५–४), भवन्ति नम्रास्तरवः ० (५–१२), तदेषा भवतः कान्ता० (५–२६)। निम्नलिखित श्लोकों में माधुर्य गुण विशेष रूप से है। इनको पढ़ते ही हृदय आनन्द का अनुभव करता है। शुद्धान्तदुर्लभमिदं० (१–१७), इदं किलाव्याजमनोहरं० (१–१८), सरसिजमनुविद्धं० (१–२०), अधरः किसलयरागः० (१–२१), तव कुसुमशरत्वं० (३–३), अभिनवमधुलोलुपस्त्वं० (५–१), का स्विदवगुण्ठनवती० (५–१३), स्वप्नो नु माया नु० (६–१०)। निम्नलिखित श्लोकों में ओज गुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ने से हृदय में उत्साह का संचार होता है और वीरत्व की अनुभूति होती है। तीव्राघातप्रतिहत० (१–३३), अनवरतधनुर्ज्या० (२–४), मेदश्छेदकृशोदरं०

(२–५), गाहन्तां महिषा० (२–६), अध्याक्रान्ता वसति० (२–१४), नैतच्चित्रं यदय० (२–१५), का कथा बाणसन्धाने० (३–१), नियमयसि कुमार्गं० (५–८), किं कृतकार्यद्वेषो० (५–१८), कृताभिमर्शामनुमन्यमानः० (५–२०)।

**भाषा सरल, सरस और मनोरम**—सारा शाकुन्तल ही इन विशेषताओं का उदाहरण है। ऊपर प्रसाद और माधुर्य के जो उदाहरण दिए गए हैं, वे इसके भी उदाहरण हैं। तत्साधुकृतसन्धानं० (१–११), जन्म यस्य पुरोवंशे० (१–१२), गच्छति पुरः शरीरं० (१–३४), स्निग्धं वीक्षित० (२–२), अनाघ्रातं पुष्पं० (२–१०), किं शीतलैः० (३–१८), तव सुचरितमङ्गुलीय० (६–११), यो हनिष्यति वध्यं त्वां० (६–२८), मनोरथाय नाशंसे० (७–१३)। उसने लम्बे समासों का प्रयोग नहीं किया है, यह उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट है।

**भाषा पर अधिकार**—कालिदास का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह सुन्दर भावों को सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त करता है। उसके शब्द बहुत छँटे हुए और सारगर्भित होते हैं। जैसे—इदं किलाव्याजमनोहरं० (१–१८), अनवरतधनुर्ज्या० (२–४), अनाघ्रातं पुष्पम्० (२–१०), कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद्० (२–१७), अमी वेदिं परितः० (४–८), अस्मान् साधु० (४–१७), शुश्रूषस्व गुरून्० (४–१८), त्रिस्रोतसं वहति० (७–६)।

**भाषा में संक्षेप और ध्वन्यात्मकता**—भातों की संक्षिप्त और मार्मिक व्यंजना करना कालिदास की मुख्य विशेषता है। राजा अपनी प्रिय शकुन्तला को देखकर केवल एक वाक्य में अपने हर्षातिरेक को प्रकट करता है—अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (३वा० २घ)। शकुन्तला एक ही श्लोक में अपने प्रणय को पत्र द्वारा प्रकट करती है—तव न जाने हृदयं० (३–१३)। उसने शकुन्तला और दुष्यन्त के मिलन का वर्णन तथा उनके एकान्त प्रेम का वर्णन अति संक्षिप्त रूप में किया है। केवल एक दो बातों की ओर संकेतमात्र है—किं शीतलैः० (३—१८), अपरिक्षतकोमलस्य० (३–२१)। दुर्वासा के शाप का प्रसंग केवल एक श्लोक में समाप्त किया है—विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा० (४–१)। शकुन्तला को उपदेश और राजा को सन्देश केवल एक-एक श्लोक में हैं—शुश्रूषस्व गुरून्० (४–१८), अस्मान् साधु० (४–१७)। प्रियंवदा और अनसूया शकुन्तला से वियोग को कुछ वाक्यों में ही व्यक्त करती हैं—अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः (४वा० ६१), तात, शकुन्तलाविरहितं० (४वा० १३१)। उसने राजा की इन्द्रलोक की यात्रा को अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है। भरत की बालक्रीड़ा का

संक्षिप्त ही वर्णन है । मारीच के आश्रम का वर्णन केवल दो श्लोकों में है । कालिदास चाहता तो इनमें से प्रत्येक भाव को वहुत विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर सकता था ।

**वर्णन-कुशलता**—कालिदास वर्णन में असाधारण कुशल है । वह प्रत्येक वस्तु का सजीव-सा वर्णन करता है । वह वस्तु या घटना को आँखों के सन्मुख चित्रित-सा कर देता है । कुछ विशेष वर्णनों का यहाँ केवल संकेतमात्र किया जाता है । भय से भागते हुए मृग का वर्णन—ग्रीवाभङ्गाभिरामं० (१–७), तेज भागते हुए घोड़ों का वर्णन—मुक्तेषु रश्मिषु० (१-८), रथ के वेग से चलने का वर्णन—यदालोके सूक्ष्मं० (१-९), आश्रम की सीमा का वर्णन—नीवाराः शुकगर्भ० (१–१४) और कुल्याम्भोभिः ० (१–१५), थकी हुई शकुन्तला का वर्णन—स्रस्तांसा० (१-३०), कामी दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला की चेष्टाओं का वर्णन—स्निग्धं वीक्षित० (२-२), ऋषिबालकों के द्वारा दुष्यन्त का वर्णन—अध्याक्रान्ता० (२–१४) और नैतच्चित्रं० (२–१५), कामपीडित शकुन्तला का वर्णन—स्तनन्यस्तोशीरं० (३–६) और क्षामक्षामकपोल० (३–७), विरहपीडित दुष्यन्त का वर्णन—इदमशिशिरै० (३–१०), शकुन्तला से रहित लताकुंज का वर्णन—तस्याः पुष्पमयी० (३–२३), कण्व के दुःख का वर्णन—यास्यत्यद्य० (४–६), शोकातुर दुष्यन्त का वर्णन—रम्यं द्वेष्टि० (६–५) और प्रत्यादिष्टविशेष० (६–६), प्रत्याख्यान के पश्चात् शकुन्तला की अवस्था का वर्णन—इतः प्रत्यादेशात्० (६–९), पुत्रहीन दुष्यन्त का वर्णन—अस्मात्परं बत० (६–२५), मारीच के आश्रम में समाधिस्थ ऋषि का वर्णन—वल्मीकाग्रनिमग्न० (७–११) और प्राणानामनिलेन० (७–१२), विरहिणी शकुन्तला का वर्णन—वसने परिधूसरे० (७–२१), मारीच का वर्णन—प्राहुर्द्वादशधा० (७–२७) । इसके अतिरिक्त प्रकृति आदि का भी सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है । ग्रीष्म ऋतु का वर्णन—सुभगसलिला० (१-३) और ईषदीषत्० (१-४), सूर्योदय और चन्द्रास्त का वर्णन—यात्येकतोऽस्त० (४–२), कुमुदिनी का वर्णन—अन्तर्हिते शशिनि० (४–३), वसन्त का वर्णन—चूतानां चिर० (६–४), इन्द्रलोक से उतरते समय पृथ्वी का वर्णन—शैलानामवरोहतीव० (७–८) । बालक सर्वदमन की चेष्टाओं आदि का भी बहुत सुन्दर वर्णन है । शेर के बच्चे को खींचना—अर्धपीतस्तनं० (७–१४), उसके हाथ का वर्णन—प्रलोभ्यवस्तु० (७–१६), बालक की हँसी आदि का वर्णन—आलक्ष्यदन्त० (७–१७), पुत्रवात्सल्य का वर्णन—अनेन कस्यापि० (७–१९) ।

**संवादों में संक्षेप और रोचकता**—इसके लिए देखें प्रथम अंक में राजा का प्रियंवदा आदि से वार्तालाप, द्वितीय अंक में राजा का विदूषक से वार्तालाप, तृतीय अंक में शकुन्तला का सखियों से और दुष्यन्त से वार्तालाप, चतुर्थ अंक में ऋषि कण्व और शकुन्तला का संवाद, पंचम अंक में दुष्यन्त और शार्ङ्गरव का विवाद, षष्ठ अंक में राजा और विदूषक की बातचीत, सप्तम अंक में राजा की बालक सर्वदमन से बातचीत।

**अलंकारों का प्रयोग**—कालिदास की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उसने प्रायः सभी प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। शाकुन्तल में जिन अलंकारों का प्रयोग हुआ है, उनका ही यहाँ पर निर्देश किया गया है। उल्लिखित अलंकारों की व्याख्या के लिए उन-उन श्लोकों की संस्कृत-व्याख्या और टिप्पणी देखें। टिप्पणी में अलंकारों का विशदीकरण है। यहाँ पर उपमा और अर्थान्तरन्यास का पृथक् वर्णन किया जाएगा। शेष अलंकारों का संकेतमात्र दिया जाता है। शब्दालंकार प्रायः सभी श्लोकों में हैं, अतः उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। (१) यमक—५-५। (२) श्लेष—२-४, २-७, २-१४, ३-१३, ३-१८, ४-१, ५-६, ७-३। (३) रूपक—४-१८, ५-२५। (४) उत्प्रेक्षा—१-८, १-१८, १-२३, १-२९, १-३३, २-२, २-३, ३-१, ४-२, ४-१२, ४-२२, ५-१५, ५-२३, ५-३१, ६-४, ६-२१, ६-२५। (५) अतिशयोक्ति—१-३४, २-६, २-९, ५-१२, ६-१९। (६) स्वभावोक्ति—१-३, १-७, १-९, १-१४, १-१५, १-३०, २-२, २-६, ३-५, ३-१०, ३-२२, ४-१४, ६-६, ६-१७। (७) दृष्टान्त—१-२६, ३-१४, ५-७, ५-१४, ६-२८, ६-३०, ६-३१। (८) निदर्शना—१-१७, १-१८, ६-१६, ७-२९, ७-३१। (९) अप्रस्तुतप्रशंसा—१-१७, १-२२, १-२५, १-२६, १-३३, ३-२, ३-३, ३-६, ४-१७, ५-२, ५-४, ५-१२, ५-१७, ५-२२, ५-२४, ५-२५, ५-२८, ६-१, ६-२६, ६-२९। (१०) तुल्ययोगिता—३-१७, ४-२, ४-११, ४-१३, ४-२८, ६-१७। (११) दीपक—१-३०, २-१५, ४-२०, ५-८, ७-३। (१२) विभावना—१-१८, १-२३, ३-६, ३-२३, ५-२, ५-१०, ५-३१, ६-७, ६-१३, ७-१। (१३) विशेषोक्ति—३-६, ३-२३, ५-१०, ६-४, ६-७, ७-१। (१४) व्यतिरेक—१-२४, २-१३, २-१४, ३-६, ४-६, ५-८। (१५) समासोक्ति—१-२४, ३-४, ३-१४, ३-१७, ४-२, ४-३, ४-९, ४-१३, ५-७, ६-११, ६-१३, ६-१९। (१६) विरोधाभास—१-९, १-२९, २-१, २-११, ३-३, ३-७,

३-६, ३-१४। (१७) काव्यलिंग—१-४, १-७, १-११, १-२८, १-२६, २-५, २-६, २-२४, ४-१६, ५-२, ५-२७, ६-५। (१८) अर्थापत्ति—३-१३, ५-१४, ५-१६, ६-२६। (१६) सन्देह—२-६, ६-१०। (२०) भ्रान्तिमान्—१-२४। (२१) प्रतिवस्तूपमा—१-२०, ५-४, ५-१२। (२२) परिकर—१-३, १-१३, २-४, २-१०, ३-१८, ४-८, ४-११, ७-२। (२३) पर्यायोक्त—१-२, २-१५, ३-५, ६-५, ६-१२। (२४) समुच्चय—१-३०, २-५, २-६, ४-१६, ६-५, ६-८। (२५) अनुमान—१-३०, २-७, ३-५, ३-१२, ३-१३, ५-३१, ६-११, ६-१५। (२६) विषम—१-१०, १-१८, २-१८, ५-२०, ६-१। (२७) पुनरुक्तवदाभास—१-१३, ३-१४। (२८) परिणाम—३-३, ३-१८, ४-१०, ७-५। (२६) यथासंख्य—४-२, ७-२६। (३०) विशेष—५-३। (३१) समाधि—५-३। (३२) आक्षेप—५-७। (३३) सम—४-१३, ५-१५। (३४) हेतु—४-१८। (३५) उदात्त—७-६, ७-२७। (३६) भाविक—७-३३। (३७) परिवृत्ति—७-३४।

**उपमा कालिदासस्य**—कालिदास उपमाओं के लिए सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी उपमाएँ बहुत मनोरम होती हैं। वे उपमाओं में लिंग-साम्य, औचित्य आदि का सदा ध्यान रखते हैं। उनकी उपमाओं में रम्यता, यथार्थता, विविधता, औचित्य, पूर्णत्व आदि गुण हैं। तपस्वी हरिण की उपमा पुष्पराशि से देता है और बाण को अग्नि बताता है—न खलु न खलु बाणः० (१-१०)। यहाँ पर सचेतन की उपमा अचेतन से है। वल्कलधारिणी शकुन्तला पीले पत्ते से ढके फूल के तुल्य है—इदमुपहितसूक्ष्म० (१-१६)। शकुन्तला पुष्पित लता के तुल्य है—अधरः किसलयरागः० (१-२१)। यहाँ पर भी सचेतन की उपमा अचेतन से है। शकुन्तला की ओर लगा हुआ दुष्यन्त का मन हवा के प्रतिकूल जाती हुई ध्वजा के तुल्य है—गच्छति पुरः शरीरम्० (१-३४)। तपस्वियों की सुन्दर उपमा सूर्यकान्त मणि से दी है। जो शान्त हैं, पर अभिभूत होने पर उग्र हो जाते हैं—शमप्रधानेषु० (२-७)। ऋषि कण्व को प्राप्त हुई शकुन्तला ऐसी ही है, जैसे भाग्य से आक के पेड़ पर चमेली का फूल आ पड़े—सुरयुवतिसंभवं० (२-८)। शकुन्तला अनाघ्रात फूल है, अक्षत किसलय है, अनाविद्ध रत्न है, अनास्वादित मधु है, अखण्ड पुण्यों का फल है। शकुन्तला का मालोपमा के द्वारा अतिसुन्दर वर्णन है—अनाघ्रातं पुष्पं० (२-१०)। राजा इसी प्रकार द्विविधा में है, जैसे पहाड़ से रुकी हुई नदी—कृत्ययोर्भिन्न० (२-१७)। विरहक्षाम

शकुन्तला ऐसी ही है, जैसे लू से सुखाई हुई माधवी लता—क्षामक्षाम० (३-७) । उपर्युक्त पाँच उदाहरणों में प्राकृतिक वस्तुओं से उपमा दी गई है। कामदेव वर्षा ऋतु के तुल्य सुखद हो गया है—स्मर एव ताप० (३-९)। राक्षस सांयकालीन बादल के तुल्य लाल वर्ण के हैं—सायन्तने० (३-२४)। गर्भवती शकुन्तला अग्नि-युक्त शमी वृक्ष के तुल्य है—दुष्यन्तेनाहितं० (४-४)। शकुन्तला को कण्व ने उत्तम आशीर्वाद दिया है कि तू शर्मिष्ठा के तुल्य वंशप्रवर्तक पुत्र को जन्म देना—ययातेरिव० (४-७) । ऋषि का पुनः आशीर्वाद कि तेरा पुत्र सूर्यवत् तेजस्वी हो—प्राचीवार्कं० (४-१९) । राजा दुष्यन्त की उपमा पराक्रमी गजेन्द्र से दी गई है—प्रजाः प्रजाः स्वा० (५-५) । शार्ङ्गरव को राजगृह आग की लपटों में जलते हुए गृह के तुल्य अशान्त प्रतीत होता है—जनाकीर्णं मन्ये० (५-१०) । शारद्वत को सुखासक्त व्यक्ति अपवित्र, सुप्त और बद्ध के तुल्य प्रतीत होते हैं—अव्यक्तमिव० (५-११) । ऋषियों के मध्य में शकुन्तला जीर्ण पत्तों के मध्य में किसलय के तुल्य दीखती है—मध्ये तपोधनानां० (५-१३)। यह शकुन्तला के लिए सुन्दर उपमा है । राजा शकुन्तला को देखकर भ्रमर के तुल्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है—भ्रमर इव विभाते० (५-१९) । पश्चात्ताप से खिन्न राजा बहुमूल्य मणि के तुल्य फिर भी तेजोमय है—संस्कारोल्लिखितो० (६-६) । शकुन्तला का रोते हुए जाना राजा के लिए विष में बुझे बाण के तुल्य दुःखद हो गया है—सविषमिव शल्यं० (६-९) । गर्भिणी शकुन्तला का चला जाना ऐसा ही दुःखद है, जैसे जुती हुई भूमि का हाथ से निकल जाना—वसुन्धरा काल० (६-२४) । राजा और शकुन्तला का मिलन ऐसा ही है, जैसे ग्रहण के बाद चन्द्रमा और रोहिणी का मिलन—उपरागान्ते शशिनः० (७-२२)। राजा का शकुन्तला को अस्वीकार करना ऐसी ही मूर्खता थी, जैसे अन्धे का सिर पर पड़ी माला को फेंक देना—स्रजमपि० (७-२४) । राजा शकुन्तला को लता मानकर अँगूठी रूपी फूल उसको देना चाहता है—तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं० (७ वा० १०४) । ऋषि मारीच ने राजा, शकुन्तला और पुत्र भरत की बहुत सुन्दर उपमा क्रमशः विधि, श्रद्धा और वित्त से दी है—दिष्टया शकुन्तला० (७-२९) । यहाँ पर उपमाओं का केवल संकेतमात्र है । विस्तार के भय से उनके सौन्दर्य, औचित्य आदि का विशदीकरण नहीं किया गया है ।

**अर्थान्तरन्यास का प्रयोग**—कुछ विद्वानों का मत है कि कालिदास ने उपमाओं का इतना उत्तम प्रयोग नहीं किया है जितना अर्थान्तरन्यास का । वे

अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में सर्वोत्कृष्ट हैं । कालिदास के अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं । किसी कवि का कथन है कि—उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम । अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते ।। यहाँ पर कुछ अर्थान्तरन्यासों का संकेतमात्र है—वलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (१-२), क्व बत हरिणकानां० (१-१०), आर्तत्राणाय वः शस्त्रं० (१-११), अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (१-१६), किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (१-२०), सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः (१-२२), अकृतार्थेऽपि मनसिजे० (२-१), कामी स्वतां पश्यति (२-२), आपन्नाभयसत्रेषु० (२-१६), लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् (३-११), इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य० (४-३), गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति (४-१६), यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः (४-१८), भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः····स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् (५-१२), मूर्च्छन्त्यमी विकाराः० (५-१८), स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु० (५-२२), अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः (५-२४), उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी (५-२६), वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः (५-२८), सहजं किल यद् विनिन्दितं० (६-१), अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्० (६-१३), हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः (६-२८), प्रसादसोम्यानि सतां सुहृज्जने० (६-२९), प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः (६-३१), सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि० (७-४), पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते (७-१३), स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया (७-२४) । अन्य अर्थान्तरन्यासों और सुभाषितों का संग्रह परिशिष्ट (४) में है । विस्तृत अध्ययन के लिए वहाँ देखें ।

**छन्दों का प्रयोग**—कालिदास ने शाकुन्तल में २४ छन्दों का प्रयोग किया है । छन्दों के प्रयोग पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उसने छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक किया है और बड़े छन्दों का कम । निम्नलिखित छन्दों का शाकुन्तल में इतनी वार प्रयोग हुआ है । श्लोकों की संख्या की दृष्टि से इनका क्रम यहाँ पर दिया गया है । (१) आर्या—३९, (२) वसन्ततिलका—३०, (३) अनुष्टुप् या श्लोक—२७, (४) शार्दूलविक्रीडित—२२, (५) वंशस्थ—१३, (६) उपजाति—११, (७) मालिनी—९, (८) शिखरिणी—७, (९) मन्दाक्रान्ता—५, (१०) द्रुतविलम्बित—५, (११) मालभारिणी—४, (१२) हरिणी

—३, (१३) पुष्पिताग्रा—३, (१४) सुन्दरी—३, (१५) पथ्यावक्त्र—२, (१६) इन्द्रवज्रा—२, (१७) प्रहर्षिणी—२, (१८) स्रग्धरा—२, (१९) अपरवक्त्र—२, (२०) गीति—२, (२१) त्रिष्टुप्—१, (२२) शालिनी—१, (२३) रथोद्धता—१, (२४) रुचिरा—१। उन्होंने अमी वेदिं परितः० (४-८) के द्वारा एक वैदिक त्रिष्टुप् छन्द भी बनाया है। इन छन्दों के लक्षण आदि परिशिष्ट सं० ३ में दिए गए हैं।

कालिदास के अन्य नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि आर्या और श्लोक छन्द उनको अत्यन्त प्रिय हैं। उन्होंने सबसे अधिक आर्या का प्रयोग किया है और उससे कम श्लोक का। मालविकाग्निमित्र में आर्या ३५ और श्लोक १७ हैं। विक्रमोर्वशीय में आर्या २९, श्लोक ३०, वसन्ततिलका १२ और शार्दूलविक्रीडित ११ हैं। शाकुन्तल को देखने से ज्ञात होता है कि आर्या प्रथम स्थान पर ही है। वसन्ततिलका द्वितीय स्थान पर आ गया है। श्लोक तृतीय स्थान पर और शार्दूलविक्रीडित चतुर्थ पर। इससे ज्ञात होता है कि शाकुन्तल के समय तक वे बड़े छन्दों के प्रयोग में भी सिद्धहस्त हो गए थे।

शाकुन्तल को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने भावों के अनुसार छन्दों को अपनाया है। छन्द भावों को ध्वनित करते हैं। इस प्रकार भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय किया गया है। उन्होंने करुण भाव को व्यक्त करने के लिए मन्दाक्रान्ता, हरिणी और वसन्ततिलका का प्रयोग किया है। सम्पूर्ण मेघदूत में मन्दाक्रान्ता है। गम्भीर विचारों को व्यक्त करने के लिए शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा का प्रयोग किया है। हृद्भावों को व्यक्त करने के लिए मालिनी और वंशस्थ का तथा कोमल भावों और सुभाषितों आदि के लिए आर्या का प्रयोग किया है।

**प्राकृत-भाषाओं का प्रयोग**—कालिदास ने शाकुन्तल में साधारणतया गद्य के लिए शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है और पद्यों के लिए माहाराष्ट्री प्राकृत का। षष्ठ अंक में दोनों सिपाही और धीवर मागधी बोलते हैं। राजा का साला कोतवाल शौरसेनी प्राकृत ही बोलता है, वह मागधी आदि नहीं बोलता। साधारणतया सभी उच्च श्रेणी के पुरुष पात्र संस्कृत में बोलते हैं और सभी स्त्री पात्र तथा निम्न श्रेणी के पुरुष पात्र प्राकृत में बोलते हैं। प्राकृतों के अन्तर आदि के लिए देखो परिशिष्ट सं० ७ में संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण।

**शाकुन्तल में अपाणिनीय प्रयोग**—शाकुन्तल में कुछ ऐसे प्रयोग उपलब्ध

होते हैं, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं कहे जा सकते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि उनके समय तक पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया बद्धमूल न हुआ हो या पाणिनीय व्याकरण के साथ ही अन्य व्याकरण भी प्रचलित हों। अपाणिनीय प्रयोगों का संकेतमात्र यहाँ है। उनका विस्तृत विवेचन यथास्थान टिप्पणी में किया गया है। (१) कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ० (अंक ४ वा० १) में अवचाय शब्द के स्थान पर अवचय शब्द का प्रयोग। (२) विश्रामं लभताम्० (२-६) में शुद्ध विश्रम शब्द के स्थान पर विश्राम का प्रयोग। विश्राम शब्द भी प्रचलित है और शुद्ध माना गया है। कालिदास ने अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः (५ वा० ११ ख) में विश्रम को ठीक मानकर अविश्रम प्रयोग किया है। (३) युष्मास्वपीतेषु० (४-९) में सकर्मक पा धातु से कर्तृवाच्य में क्त प्रत्यय। नियमानुसार यहाँ कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय होना चाहिए। (४) कामयमानावस्थः० (३ वा० २ क) का पाठभेद कामयानावस्थः। कामयमान ही शुद्ध प्रयोग है, कामयान नहीं। (५) नातिभिन्ने राजनि० (२ वा० ६४) नञ् समास करने पर अनतिभिन्ने होगा। यहाँ पर निषेधार्थक न शब्द समझना चाहिए। (६) ते तापसकन्यका० (२ वा० ४१) वाक्य का आदि है, अतः अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८-१-१८) नियम से 'तव' प्रयोग होना चाहिए, 'ते' नहीं। (७) ऊढपूर्वा मे० (६ वा० ५५) यहाँ पर मया के स्थान पर मे प्रयोग ठीक नहीं है। मे को निपात मानने पर शुद्ध मान सकते हैं। (८) अङ्गुल्या तर्जयति (१ वा० १०६) में तर्जयते के स्थान पर तर्जयति प्रयोग। तर्ज् धातु चुरादि० आत्मनेपदी है। (९) अप्सरस्तीर्थम् आरात् (५-३०) में आरात् के साथ पंचमी होनी चाहिए। द्वितीया का प्रयोग है। (१०) जगाम (५-३०) में सामान्य भूत के स्थान पर परोक्ष भूत लिट् का प्रयोग है। (११) शक्यम् (३-४) में 'पवनः' कर्म है, अतः शक्यः होना चाहिए। कर्म की अविवक्षा के कारण यह नपुं० एक प्रयोग है। महाभाष्य में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं—शक्यं चानेन क्षुत् प्रतिहन्तुम् (आह्निक १)। (१२) मा कस्यापि⋯पतिष्यति (२ वा० ४९)। मा के साथ लुङ का प्रयोग होना चाहिए, लृट् का प्रयोग है। यहाँ पर निषेधार्थक मा अव्यय समझना चाहिए, माङ नहीं। अतः लृट् का प्रयोग ठीक है। (१३) मा ⋯⋯उत्कण्ठस्व (४ वा० १२७)। यहाँ पर भी मा अव्यय समझें, माङ नहीं। अतः लोट् ठीक है। (१४) मा⋯अवलम्ब्य (७वा० ७३)। मा के साथ ल्यप् का प्रयोग। यहाँ पर भी मा का प्रयोग मानकर इस प्रयोग को शुद्ध समझें।

Funding by IKS-MoE

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि कालिदास में सर्वतोमुखी प्रतिभा है। उनमें असाधारण कवित्व-शक्ति का नवनवोन्मेष विद्यमान है। उसकी शैली में प्राञ्जलता, मनोरमता, अकृत्रिमता, संकेतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, आदर्शरूपता और संगीतात्मकता का सुन्दर समन्वय है। उनके वर्णन सजीव होते हैं। उनमें न पुराणों आदि के तुल्य अनावश्यक विस्तार और शैथिल्य है और न परकालीन कवियों के तुल्य पाण्डित्य-प्रदर्शन, लम्बे समासों का प्रयोग, अलंकारों का भार और कृत्रिम कवित्व है। उनकी कृतियों में कवित्व का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कल्पना की ऊँची उड़ान, हृद्भावों को मूर्तरूप में प्रकट करना, मानव-हृदय की सूक्ष्मतम क्रियाओं का तात्त्विक वर्णन, प्रकृति का मानवहृदय पर प्रभाव, कोमल विचारों को कोमल भाषा में अभिव्यक्त करना आदि गुण कालिदास में ही मिलते हैं। उन्होंने संस्कृत-काव्य-साहित्य को अत्युन्नत किया है। उपर्युक्त गुणों के कारण ही उन्हें संस्कृत-साहित्य का सर्वोत्तम कवि माना जाता है।

कालिदास वस्तुतः संस्कृत-साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनकी कविता साक्षात् त्रिवेणी है। उसमें कवित्व की निर्मल और प्रबल धारा पवित्र मन्दाकिनी की धारा है; भावों और कल्पनाओं की तीव्र धारा मनोज्ञ यमुना की धारा है; विविध कला, ज्ञान और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा सरस्वती की शुभ्र धारा है। उसके काव्य में स्वर्गीय आनन्द है, भौतिक विलास है, दैवी दिव्यता है, मानवीय मनोज्ञता है और सात्त्विक संमोहन है।

## (१४) प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

### (क) दुष्यन्त

राजा दुष्यन्त इस नाटक का नायक है। शास्त्रीय दृष्टि से वह धीरोदात्त नायक है। दशरूपक (२–४, ५) के अनुसार धीरोदात्त नायक में ये गुण होने चाहिए—वह महाबली, अतिगम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन, स्थिर-प्रकृति, अहंकारहीन और दृढ़निश्चयी हो। दुष्यन्त में ये सब गुण प्राप्त होते हैं। वह पुरुवंशी क्षत्रिय राजा है।

वह सुन्दर हृष्ट-पुष्ट और युवा है। उसकी आयु लगभग ३०, ३५ वर्ष की प्रतीत होती है। उसके शारीरिक गठन और सौन्दर्य से सभी प्रभावित होते हैं। उसको देखते ही शकुन्तला आदि प्रभावित हो जाती हैं—चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते (१ वा० ८३), नगरपरिघप्रांशुबाहुः० (२–१५), संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः (७ वा० ११३)। वह कठिन से कठिन

परिश्रम को कर सकता है। वह मृगया का प्रेमी है। वह धनुष की टंकार से ही यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों को भगा देता है। वह इतना पराक्रमी और शूरवीर है कि इन्द्र भी उसकी सहायता चाहता है। दानवों के वधार्थ इन्द्र उसे स्वर्ग में बुलाता है।

वह मधुरभाषी है। प्रियंवदा उसके मधुरभाषण की प्रशंसा करती है। उसके विचार उत्तम और सन्तुलित हैं। उसे जब तक यह निश्चय नहीं हो जाता कि शकुन्तला क्षत्रिय-कन्या है, तब तक वह अपना विवाह का विचार प्रकट नहीं करता। वह उत्तम पति और उच्चकोटि का प्रेमी है। तृतीय अंक में शकुन्तला की अवस्था बिगड़ी हुई देखकर वह उसके पाणिग्रहण और रक्षा की स्वीकृति देता है। वह रुग्ण शकुन्तला को धूप में जाने से रोकता है और उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है।

वह मातृभक्त तथा आज्ञाकारी पुत्र है। द्वितीय अंक में माता की आज्ञा पाते ही ऋषि-कार्य की विवशता के कारण विदूषक को माता के पास भेजता है। वह कला-प्रेमी और गुणग्राही है। वह (पंचम अंक के प्रारम्भ में) सानुमती के संगीत को सुनकर मन्त्रमुग्ध हो जाता है। वह कुशल चित्रकार है। शकुन्तला के अपूर्ण चित्र को पूर्ण करता है। वह युद्ध-कला में पारंगत है।

उसके हृदय में ऋषियों के प्रति बहुत आदरभाव है। वह तपस्वी के कहने मात्र से मृग पर बाण नहीं चलाता। विनीत वेष में आश्रम में प्रवेश करता है। हाथी के आश्रम में विघ्न करने पर वह तुरन्त अपने सैनिकों को रोकने के लिए जाता है। यज्ञ की रक्षा के लिए ऋषियों की प्रार्थना सादर स्वीकार करता है। पंचम अंक में शार्ङ्गरव आदि के आक्षेपों का उत्तर शान्ति से ही देता है। मारीच ऋषि के दर्शनार्थ उनके आश्रम में जाता है।

वह सहृदय तथा संयमी है। वह धनमित्र नामक व्यापारी की मृत्यु पर शोक प्रकट करता है। सन्तानहीनता का उसे बहुत दुःख है। वह धनमित्र के गर्भस्थ पुत्र को उसका धन दिलाता है। उसे धन का लोभ नहीं है। वह प्रजा की रक्षा को परम धर्म समझता है। दुःखितों का दुःख दूर करने को सदा उद्यत रहता है। परस्त्री की ओर देखना पाप समझता है। शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला को न पहचानने से उसकी ओर ध्यानपूर्वक नहीं देखता—अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् (५ वा० ३६)।

वह उच्चकोटि का शासक है। सफल शासक के सभी गुण उसमें हैं। वह

Funding by IKS-MoE

कर्तव्यपरायण, प्रजाप्रेमी, निर्लोभ, सहृदय, संयमी, निर्भीक, पराक्रमी, विनीत और अविकत्थन है। आश्रम में राक्षसों को भगाकर यज्ञ की रक्षा के द्वारा और स्वर्ग में दानवों के वध के द्वारा कर्तव्यपरायणता का परिचय देता है। वह अपने मन्त्री आर्यपिशुन को आदेश भेजता है कि आवश्यक राजकीय विवरण उसके पास भेजे। प्रजा के लिए घोषणा कराता है कि बन्धुहीनों का वह बन्धु है। धनमित्र के धन को राजकीय धन नहीं बनाता। पंचम अंक में शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला को न पहचानने पर अपने पूर्ण संयम का परिचय देता है। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं होता। शाप का प्रभाव समाप्त होने पर शकुन्तला के लिए अत्यन्त दुःखित होता है और अपनी सहृदयता का परिचय देता है।

कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को बहुत उन्नत चित्रित किया है। उसे आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत किया है। मूलकथा में दुष्यन्त के चरित्र में जो त्रुटियाँ दिखाई देती थीं, उनका बहुत सावधानी से निराकरण किया है।

### (ख) शकुन्तला

कालिदास ने शकुन्तला को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। मूलकथा में शकुन्तला के चरित्र में जो दोष दिखाई पड़ते थे, उनका उसने परिहार किया है।

शकुन्तला इस नाटक की नायिका है। उसके पिता विश्वामित्र और माता मेनका हैं। विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए इन्द्र ने मेनका नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा था। मेनका के द्वारा उनका तप भंग हुआ और दोनों के सम्पर्क से शकुन्तला का जन्म हुआ। दोनों ने उसको छोड़ दिया। कुछ समय शकुन्तों (पक्षियों) ने उसका पालन किया, अतः उसका नाम शकुन्तला पड़ा। ऋषि कण्व ने उस परित्यक्ता का पालन किया, अतः वे उसके धर्म-पिता हुए।

शकुन्तला लगभग १८ वर्ष की कन्या है। वह अनुपम सुन्दरी है। राजा उसके सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाता है—मानुषीषु कथं वा स्यात्० (१-२६)। उसका सौन्दर्य नैसर्गिक है—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः० (१-१८)। उसके अंगों में असाधारण लावण्य है—अधरः किसलयरागः० (१-२१)। उसमें यौवन के चिह्न प्रकट होने लगे हैं—अत्र पयोधरविस्तारयितृ० (१वा० ५२)। वह गौरवर्ण की है। आश्रम में उसका पालन-पोषण हुआ है, अतः उसमें स्वाभाविक सरलता, सुशीलता और मुग्धता है।

वह अत्यन्त सुशील और लज्जाशीला है। राजा को देखते ही उसके हृदय

में कामभाव जागृत होता है, परन्तु वह उसे व्यक्त नहीं करती--किं नु खलु इमं जनं प्रेक्ष्य० (१ वा० ८१)। तृतीय अंक में उसकी अवस्था बिगड़ जाती है, परन्तु वह अपनी सखियों को भी यह बात बताने में संकोच करती है--यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः० (३ वा० १७)। इससे उसकी संकोचशीलता व्यक्त होती है। प्रथम अंक में जब राजा उसकी प्रशंसा करता है तो वह लज्जा से शिर नीचा कर लेती है, (१ वा० १०४)। वह मधुर-भाषिणी है। जब अनसूया और प्रियंवदा उससे विवाह की बात छेड़ती हैं तो वह उन्हें कटु उत्तर न देकर कहती है--युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। (१ वा० ९१)।

तपोवन में पालन-पोषण होने के कारण उसका प्रकृति से घनिष्ट प्रेम है। वह वृक्ष, वनस्पतियों और मृगादि से ममता का अनुभव करती है—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (१ वा० ४८)। आश्रम के वृक्षों को जल देकर ही वह जलपान करती है। प्रियमण्डना होने पर भी वृक्षों के पत्ते आदि नहीं तोड़ती—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति० (४-९)। आश्रम से विदाई के समय वृक्षों और मृगादि से भी विदाई लेती है।

वह पतिव्रता है। वह विवाह के बाद पति के चिन्तन में ही व्यस्त रहती है। वह राजा के विरह में व्याकुल और अन्यमनस्क है। उसी समय दुर्वासा आते हैं। उसे उनका कुछ ज्ञान नहीं है। उन्होंने शाप दिया, यह भी उसे ज्ञात नहीं हुआ। पंचम अंक में राजा ने जब उसका परित्याग कर दिया, तब भी वह पतिव्रता रही। वह मारीच के आश्रम में तपस्विनी के तुल्य रही। वह अपने आपको ही दोष देती है, राजा को नहीं। विरहिणी के तुल्य उसके वस्त्रादि हैं। राजा से मिलते ही अपने को भाग्यशालिनी समझती है।

वह अपने पूज्य जनों का विशेष आदर करती है। राजा से अपने पैर नहीं दबवाती, (३ वा० ६६)। शार्ङ्गरव के डाँटने पर उसे प्रत्युत्तर नहीं देती, (५ वा० ९५)। ऋषि कण्व के प्रति उसकी श्रद्धा अगाध है। उसे डर है कि उनके वियोग को सह सकेगी या नहीं। राजा के साथ ऋषि मारीच के सामने जाने में लज्जा अनुभव करती है। इस प्रकार शकुन्तला एक आदर्श नारी है।

### (ग) कण्व

ऋषि कण्व आश्रम के कुलपति हैं। उनका दूसरा नाम काश्यप है। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, (१ वा० ९४)। उनके आश्रम में यज्ञशाला है, (४ वा० ४०)। वे श्रौत विधि से अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण हैं। उनका तपोबल असाधारण

है । वे वर्तमान, भूत और भविष्य को जानने वाले हैं—तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः (७ वा० १४०)। उनके तप के प्रभाव के कारण राक्षस यज्ञ में विघ्न नहीं करते । उनकी अनुपस्थिति में ही वे विघ्न करते हैं । उन्हें ज्ञात है कि शकुन्तला पर विपत्ति आएगी, अतः उसके निवारणार्थ वे सोमतीर्थ जाते हैं । आकाशवाणी उन्हें बताती है कि शकुन्तला को दुष्यन्त से गर्भ रहा है, (४-४) । उनके तप के प्रभाव के कारण शकुन्तला की विदाई के समय वृक्ष आभूषण और रेशमी वस्त्र आदि देते हैं ।

शकुन्तला उनकी धर्मपुत्री है । परित्यक्ता शकुन्तला का वे अपनी पुत्री के तुल्य पालन करते हैं । उनका प्रेम निःस्वार्थ है । वे शकुन्तला को अपने जीवन का सर्वस्व-सा समझते हैं । शकुन्तला की विदाई के समय वे सगे माता-पिता के तुल्य व्याकुल होते हैं । उनका गला रुकने लगता है—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति० (४-६) । शममेष्यति मम शोकः० (४-२१) कहते हुए वे अपने हार्दिक प्रेम को प्रकट करते हैं । शकुन्तला के जाने पर वे खिन्न हैं—गतवती वां सहचारिणी (४ वा० १३०)। शकुन्तला पर उनका निःस्वार्थ प्रेम आदर्श प्रेम का मूर्तरूप है ।

वे ऋषि होते हुए भी लौकिक व्यवहार को अच्छी तरह जानते हैं—वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम् (४ वा० १०८) । उन्होंने शकुन्तला को जो उपदेश दिया है, वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है—शुश्रूषस्व गुरून्० (४-१८) । उन्होंने राजा को जो सन्देश दिया है, वह भी उनकी लोकव्यवहारज्ञता का परिचायक है—अस्मान् साधु० (४-१७) । वे शकुन्तला के साथ अनसूया और प्रियंवदा को नहीं भेजते, क्योंकि उनका भी विवाह करना है । कुमारी युवतियों को विवाहिता के साथ ससुराल भेजना वे अनुचित समझते हैं ।

वे मानव-स्वभाव को भी अच्छे प्रकार से जानते हैं । वे जानते हैं कि अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाने पर व्यक्ति अपने दुःख को भूल जाता है । अतः वे शकुन्तला से कहते हैं कि राजा के यहाँ पहुँचने पर वहाँ के कार्यों में मग्न होकर तुम इस दुःख को भूल जाओगी—अभिजनवतो भर्तुः० (४-१९) । वे कन्या को धरोहर समझते हैं । वे उसे उपेक्षणीय नहीं समझते । कन्या का पालन-पोषण वहुत सावधानी से होना चाहिए । वे उसे पति के पास भेजकर आन्तरिक सुख का अनुभव करते हैं—अर्थो हि कन्या परकीय एव० (४-२२) ।

### (घ) विदूषक

यह हास्यरस का पात्र होता है । इसका नाम माधव्य है । साधारणतया

नाटक में विदूषक का उपयोग केवल मजाक के लिए होता है, परन्तु शाकुन्तल में इसका उपयोग कथा के विकास में भी पर्याप्त हुआ है। यह ब्राह्मण है। सदा खाने-पीने की बात करता है और पेटू है—किं मोदकखादिकायाम्० (२ वा० १६)। वह डरपोक है। राक्षसों की बात सुनकर डर जाता है (२ वा० ८३)। वह राजा का मित्र है और राजा से खुलकर हँसी-मजाक करता है।

राजा जब इस दुविधा में पड़ा है कि ऋषियों का काम करूँ या माता की आज्ञा मानूँ, तब विदूषक ही उसके लिए मार्ग निकालता है और शकुन्तला से उसके प्रेम-संबन्ध को बढ़ने देने में सहायक होता है, (२ वा० ९२ से ९६)। वह सरल हृदय का व्यक्ति है। राजा को सन्देह हुआ कि यह राजधानी में जाकर कहीं शकुन्तला से प्रेम की बात न बता दे, अतः राजा ने उससे कहा कि यह सब मजाक की बातें हैं—परिहासविजल्पितं सखे०. (२-१८)। विदूषक राजा के कथन को सत्य मान लेता है, अतएव वह राजा से शकुन्तला के बारे में फिर चर्चा नहीं करता। यदि वह राजा को स्मरण दिला देता तो शकुन्तला का परित्याग नहीं हो सकता था। पंचम अंक के प्रारम्भ में राजा उसे हंसपदिका के पास भेजता है। हंसपदिका उसे वहीं फँसा लेती है, अतः शकुन्तला के परित्याग के समय वह राजा के साथ नहीं था। नहीं तो वह राजा को शकुन्तला के बारे में कुछ स्मरण दिलाता। षष्ठ अंक में मातलि उसे ही पीटता है और उससे राजा का क्रोध प्रस्फुरित होता है। तभी राजा दानवों के वधार्थ स्वर्ग को जाता है। जब रानी वसुमती आने को होती है, तब वह शकुन्तला का चित्र लेकर भाग जाता है और राजा को वसुमती के क्रोध से बचाता है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास ने कथानक के विकास में इसका उचित उपयोग किया है। वह देखने में मूर्ख-सा है, परन्तु वैसे बहुत चतुर है। वह राजा को समय-समय पर सान्त्वना देता है, उसका मनोरंजन करता है और उचित परामर्श भी देता है, (अंक ६)।

### (ङ) अनसूया और प्रियंवदा

अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला की सखियाँ हैं। तीनों ही सुन्दर हैं और तीनों की आयु भी लगभग बराबर है—अहो मधुरमासां दर्शनम् (१ वा० ४५), अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम् (१ वा० ८२)। रूप में शकुन्तला सबसे अधिक सुन्दर है, परन्तु आयु में अनसूया सबसे बड़ी ज्ञात होती है। तीनों में घनिष्ट प्रेम है। तीनों ही एक दूसरे को सदा सुखी देखना चाहती हैं।

अनसूया और प्रियंवदा के चरित्र में कुछ समानताएँ और कुछ विषमताएँ

है । दोनों के चरित्र में ये समताएँ हैं—( १ ) दोनों शकुन्तला से निःस्वार्थ प्रेम करती हैं । उसे सगी बहिन के तुल्य मानती हैं । उसे सब प्रकार से सुखी और प्रसन्न रखना अपने जीवन का लक्ष्य-सा समझती हैं । तृतीय अंक में शकुन्तला को अस्वस्थ देखकर चिन्तित हो जाती हैं और राजा से मिलाने का प्रयत्न करती हैं । (२) दोनों ही शिष्ट, विनीत, मधुरभाषिणी और वाक्चतुर हैं । वे राजा से मिलने पर अपनी योग्यता का परिचय देती हैं । (३) दोनों कर्मठ, कार्यदक्ष और बुद्धिमती हैं । दोनों आश्रम के वृक्षों को उत्साहपूर्वक सींचती हैं। दोनों विदाई के समय शकुन्तला का सुन्दर शृंगार करती हैं । दोनों तृतीय अंक में अपनी बुद्धिमत्ता से राजा से वचन लेती हैं कि वह शकुन्तला को सदा सुखी रखेगा—परिग्रहबहुत्वेऽपि० (३-१७) ।

दोनों के चरित्र में कुछ विषमताएँ भी हैं । ( १ ) अनसूया गम्भीर-प्रकृति की है । उसमें प्रौढ़ता अधिक है । प्रियंवदा हास्यप्रिय है । उसमें प्रौढ़ता कम है । अनसूया बहुत शर्माती नहीं है । जब राजा आश्रम में आया तो वह ही आगे बढ़कर राजा से बात करती है । उसने ही राजा को विश्वामित्र और मेनका से शकुन्तला की उत्पत्ति का विवरण बताया । प्रियंवदा शकुन्तला से विवाह-विषयक हँसी करती है । जब शकुन्तला क्रुद्ध होकर जाने लगती है तो उसे यह कहकर रोकती है कि तुझे मेरे हिस्से के दो घड़े पानी डालना अभी शेष है। वह मधुरभाषिणी है, अतः उसकी बात को कोई बुरा नहीं मानता । मधुर बोलने के कारण ही उसका नाम प्रियंवदा पड़ा है । ( २ ) अनसूया विचारशील और मितभाषिणी है । वह हँसी-मजाक की बातों में विशेष भाग नहीं लेती । वह बातों का निर्णय शीघ्र नहीं करती । उस पर विचार करके तब उत्तर देती है। तृतीय अंक में शकुन्तला की अस्वस्थता का ठीक कारण जानकर ही आगे राजा से मिलाने का प्रबन्ध करती है । राजा से हँसी वाली बातें नहीं करती । प्रियंवदा वाक्चतुर है और अधिक बोलती है । तृतीय अंक में राजा से वही अधिक बात करती है । ( ३ ) अनसूया सशङ्कवृत्ति की है । वह सहसा किसी बात पर विश्वास नहीं करती । वह राजा से कहती है कि राजाओं की कई स्त्रियाँ होती हैं । हमारी सखी को कोई दुःख न मिले, ऐसा करना, (३ वा० ५८)। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में अनसूया को शंका है कि राजा उसे स्मरण करेगा या नहीं, (४ वा० ३) । प्रियंवदा शीघ्र विश्वास कर लेती है । वह कहती है कि वैसी आकृति वाले गुणों से युक्त ही होते हैं । अतः राजा अवश्य स्मरण करेगा, (४ वा० ४) । (४)

अनसूया भविष्य के सुख की विशेष चिन्ता करती है। प्रियंवदा वर्तमान को विशेष महत्त्व देती है। अनसूया शकुन्तला के भावी सुख की चिन्ता करती है। प्रियंवदा शकुन्तला और राजा के मिलने से ही प्रसन्न है। ( ५ ) अनसूया धीर और परिपक्व बुद्धि की है। प्रियंवदा शीघ्र घबड़ा जाती है। दुर्वासा के शाप को सुनकर अनसूया विशेष नहीं घबड़ाई और प्रियंवदा को भेजा कि दुर्वासा को मनावे। प्रियंवदा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई थी। ( ६ ) अनसूया अधिक व्यावहारिक है। प्रियंवदा भावुक अधिक है। प्रियंवदा भयभीत है कि ऋषि इस समाचार को सुनकर क्या कहेंगे ? अनसूया कहती है कि ऋषि इसका समर्थन करेंगे, क्योंकि गुणवान् को कन्या देनी थी और वह भाग्य से गुणवान् को प्राप्त हुई है, (४ वा० ४ से ७)।

## (च) शार्ङ्गरव और शारद्वत

शार्ङ्गरव और शारद्वत दोनों कण्व ऋषि के शिष्य हैं। कण्व ऋषि इनके नाम के साथ आदरसूचक 'मिश्र' शब्द लगाते हैं, आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः० (४ वा० ४७), इससे ज्ञात होता है कि ये ३५ वर्ष से अधिक आयु के तपस्वी हैं। इन दोनों में शार्ङ्गरव अधिक आयु का है। ऋषि को उस पर अधिक विश्वास है, अतः राजा के लिए सन्देश उसी को देते हैं। वही शकुन्तला के अंगरक्षकों में प्रमुख है और दल का नेता है। शारद्वत उससे छोटा है। ये लोकाचार को जानते हैं। अतएव शार्ङ्गरव कहता है—ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते (४ वा० ९९)। दोनों एक दूसरे का आदर करते हैं। शारद्वत जब शार्ङ्गरव को रोकता है तो वह चुप हो जाता है—शार्ङ्गरव, किमुत्तरेण। (५ वा० ९२)। दोनों को आश्रम के जीवन से प्रेम है और नगर के जीवन से घृणा।

दोनों के चरित्र में कई अन्तर हैं। ( १ ) शार्ङ्गरव तपोवन के जीवन को सर्वोत्तम समझता है और नगर के जीवन से अधिक घृणा करता है। राजा के महल को आग की लपटों में जलता हुआ घर समझता है—जनकीर्णं मन्ये० (५–१०)। शारद्वत के विचार दार्शनिक हैं। उसमें दूसरों के प्रति सहानुभूति है। उसे दूसरों से घृणा नहीं है—अभ्यक्तमिव स्नातः० (५–११)। ( २ ) शार्ङ्गरव बहुत बोलने वाला, क्रोधी, असहिष्णु और अशान्तप्रकृति का है। वह राजा से डरता नहीं है। जब राजा शकुन्तला को पहचानता नहीं है और विवाह को अस्वीकार करता है, तो वह उसे धर्मविमुख प्रमत्त आदि कहता है—कि कृतकार्यद्वेषो० (५-१८), मूर्च्छन्त्यमी विकाराः० (५-१८)। राजा जब अपने

आपको शकुन्तला का पति नहीं मानता, तो वह उसे 'चोर' तक कहता है—पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन (५-२०)। शारद्वत मितभाषी, अक्रोधी, सहि और शान्तप्रकृति का है। वह अनावश्यक बात नहीं करता। बातों का संक्षि और उचित उत्तर देता है। वह क्रोध नहीं करता। जब राजा और शार्ङ्गरव क विवाद उग्र रूप धारण करता है, तब वही उसे शान्त करता है। शार्ङ्ग शारद्वत की बात मानकर चुप हो जाता है—शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानी (५ वा० ६७)। शकुन्तला से कहता है कि तुम राजा को विश्वास दिलाओ (५ वा० ६७)। राजा से अन्त में कहता है कि शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है, तु इसे रखो या छोड़ो। हम लोग जाते हैं—तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहा वा, (५-२६)। (३) शार्ङ्गरव व्यवहार-चतुर नहीं है। वह झगड़े को बढ़ात है। शारद्वत व्यवहार-चतुर है। वह झगड़े को निबटाता है। शारद्वत कारण ही विवाद शान्त हुआ। शार्ङ्गरव विद्वान् होते हुए भी शान्ति-स्थाप नहीं है। दोनों में शारद्वत का चरित्र ही दर्शकों को प्रभावित करता है।

## (१५) कालिदास और भवभूति

संस्कृत-साहित्य में कालिदास के समान ही गौरवास्पद एवं सफल नाटकका होने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त हुआ है तो महाकवि भवभूति को। संस्कृत के विद्वानों में यह एक विवादास्पद विषय रहा है कि दोनों महाकवियों में कौन-स महाकवि श्रेष्ठ है। कालिदास के समर्थक कालिदास को श्रेष्ठ मानते हैं औ भवभूति के समर्थक भवभूति को। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो य निःसंकोच कहा जा सकता है कि जहाँ तक कवित्व और काव्य का संबन्ध है, व तक कालिदास सर्वोपरि है। किन्तु नाटककार के रूप में भवभूति कालिदास क प्रतिद्वन्द्वी है। कुछ अंशों में वह बढ़ भी गया है। अतएव कहा गया है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से बढ़कर है। 'उत्तरे रामचरिते भवभूति विशिष्यते।'

कालिदास और भवभूति के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभू की कृतियों पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। नाटकों के कथान के आयोजन में भी उसने कालिदास से प्रेरणा प्राप्त की है। उत्तररामचरित क चित्रदर्शन का दृश्य संभवतः रघुवंश (१४–२५) के चित्रदर्शन से लिया गय है। कालिदास ने वर्णन किया है कि चित्रशाला में बैठे हुए राम और सीत

दण्डकारण्य की दुःखद घटनाओं के चित्रों को देखकर अब सुख का अनुभव करते थे।

**तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।**
**प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्॥**

इसी प्रकार उत्तररामचरित में अदृश्यरूप में रहती हुई सीता का राम को विरह-विकल-रूप में देखने का संकेत शाकुन्तल के षष्ठ अंक से संभवतः प्राप्त हुआ है, जहाँ पर सानुमती नामक अप्सरा अदृश्यरूप में रहती हुई विरह-विकल दुष्यन्त की अवस्था को देखती है। मालतीमाधव में विरही माधव का अपनी विरहिणी प्रिया मालती के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजना भाव भाषा आदि सभी दृष्टि से मेघदूत के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना उचित है कि भवभूति ने अपने पूर्ववर्ती महाकवियों से भाव आदि लिए हैं, परन्तु उसने उन भावों और विचारों पर अपनी प्रतिभा से ऐसी अनुपम छाप लगाई है कि उसको एक नवीन और चमत्कृत रूप दे दिया है। अधिकांश स्थलों पर वह उन भावों के वर्णन में पूर्वकवियों से आगे बढ़ गया है।

कालिदास और भवभूति में कतिपय समानताएँ हैं और कुछ विभिन्नताएँ। दोनों की समानताओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि—(१) दोनों संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के सफल नाटककार हैं, (२) दोनों सफल महाकवि हैं, (३) दोनों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, (४) दोनों अपने अभीष्ट रस के वर्णन में अनुपम हैं, (५) दोनों में असाधारण प्रतिभा और मौलिकता है, (६) दोनों के वर्णन में वह शक्ति है कि वह पाठकों और दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर लेती है।

दोनों कवियों की विभिन्नताओं पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि उनमें बहुत अन्तर भी है। (१) कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वह सफल नाटककार, सफल महाकाव्य-रचयिता और सफल गीतिकाव्य-प्रणेता भी है। भवभूति केवल सफल नाटककार है। उसकी प्रतिभा नाटकों में ही प्रकट हो पाई है। (२) कालिदास की कृतियों में प्रसाद और माधुर्य गुण अधिक हैं। वह इन गुणों के द्वारा पाठक को बलात् आकृष्ट कर लेता है। उसकी रचनाओं में लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट-कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन का दोष नहीं है। इसके विपरीत भवभूति की रचनाओं में ओज गुण बहुत अधिक है। वह लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट-

कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन में संकोच नहीं करता। यथा—(क) प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिंगगुरुरुत्तालतुमुललेलिहानोज्ज्वलज्वालासंभारभैरवो भगवानुषर्बुधः। (उत्तरराम० अंक ६ श्लोक ४ के बाद), (ख) यत्प्रलयवातोत्क्षोभगम्भीरगुलगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धमिव एकवारविश्वग्रसनविकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव......भूतं विपद्यते। (उत्तरराम० अंक ६ श्लोक ५ के वाद)। (ग) कण्डूलद्विपगण्डपिण्ड० (उत्तर० २-९), (घ) गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (उत्तर० २-२९), (ङ) पातालोदरकुञ्ज० (उत्तर० ५-१४)

(३) कालिदास शृंगाररस का सर्वोत्तम कवि है। उसने शृंगार के दोनों पक्षों संभोग और विप्रलम्भ का सर्वोत्तम वर्णन किया है। भवभूति करुणरस का सर्वोत्तम कवि है। वह वीररस के वर्णन में भी कालिदास से बढ़कर है। भवभूति का मन्तव्य है कि करुण रस ही एकमात्र मुख्य रस है। अन्य रस करुण के ही रूपान्तर हैं।

**एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्**
**भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।** उत्तर० ३-४७

(४) कालिदास की कृतियों में लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों की प्रधानता है। वह लक्ष्य और व्यंग्य अर्थों के द्वारा अपने अभीष्ट रस को अभिव्यक्त करता है। इसके विपरीत भवभूति की कृतियों में अभिधा वृत्ति की प्रधानता है। वह वाच्य अर्थ के द्वारा रस की अभिव्यक्ति करता है। कालिदास थोड़े से शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक अर्थ को व्यंजना के द्वारा अभिव्यक्त करता है। वह थोड़ी वात कहकर अधिकांश पाठक की कल्पना पर छोड़ देता है। भवभूति उस भाव को प्रवल एवं विस्तृत वाग्विन्यास के द्वारा प्रकट करता है। जितनी जो कुछ वात उस विषय में कहनी है, वह पूरी वात स्वयं कह देता है। पाठक की कल्पना के लिए वहुत कम छोड़ता है। जैसे—शाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर केवल इतना ही कहता है—अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (३ वा० २ घ) (ओह, मेरी आँखों का आनन्द मिल गया)। किन्तु मालती-मावव में माधव मालती को देखकर कहता है—

**अविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण नद्धः**
**स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्भरेण।**

कवलित इव कृत्स्नश्चक्षुषा स्फारितेन
प्रसभममृतमेघेनेव सान्द्रेण सिक्तः ।। मालती० ३-१६

कालिदास जहाँ संक्षेप में या संकेतरूप में वर्णन करता है, वहाँ भवभूति उनका विस्तृत वर्णन करता है।

( ५ ) कालिदास की कृतियों में कल्पना की ऊँची उड़ान है तो भवभूति की कृतियों में भावों का गाम्भीर्य। कालिदास में सरलता और सरसता है तो भवभूति में ओज और प्रौढ़ता। कालिदास में कोमलता और प्रांजलता है तो भवभूति में प्रगल्भता और उदात्तता। कालिदास में नैसर्गिकता है तो भवभूति में आदर्शरूपता। कालिदास में सजीवता है तो भवभूति में गम्भीरता।

( ६ ) कालिदास और भवभूति के उपमा-प्रयोगों में भी अन्तर है। कालिदास उपमाओं के प्रयोग में सर्वोत्तम है। वह प्रायः मूर्त वस्तु की उपमा मूर्त वस्तु से देता है। वल्कलधारिणी शकुन्तला की उपमा शैवाल से लिपटे हुए कमल से देता है। सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्० (शाकुन्तल १-२०)। किन्तु भवभूति मूर्त वस्तु की उपमा प्रायः अमूर्त से देता है। वह विरहिणी सीता की तुलना मूर्तिमती करुणा या विरह-व्यथा से देता है।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।। उत्तर० ३-४

( ७ ) दोनों ने प्रकृति का वर्णन किया है। परन्तु कालिदास ने प्रकृति के कोमल और ललित अंश को ही मुख्यतः अपनाया है। भवभूति ने प्रकृति के घोर और प्रचण्ड अंश को अपनाया है। वह भयंकर वनों, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न की तीव्र धूप आदि का वर्णन करता है। यथा—कण्डूलद्विपगण्ड० (उत्तर० २-९), स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो० (उत्तर० २-१४), निष्कूजस्तिमिताः० (उत्तर० २-१६), दधति कुहरभाजाम्० (उत्तर० २-२१), गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (उत्तर० २-२९)।

( ८ ) कालिदास ने नारी के वाह्य सौन्दर्य का मनोहर वर्णन किया है, किन्तु भवभूति ने उसके अन्तःसौन्दर्य को प्रकट किया है। यथा—अधरः किसलयरागः० (शाकुन्तल १-२१), स्रस्तांसौ० (शाकुन्तल १-३०)। कालिदास के के लिए स्त्री 'श्रोणीभारादलसगमना' 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' है। भवभूति के लिए वह गृहलक्ष्मी और आँखों के लिए अमृतशलाका है। इयं गेहे लक्ष्मी० (उत्तर० १-३८)।

( ९ ) कालिदास ने अपने नाटकों में विदूषक को स्थान दिया है और हास्य रस का भी सम्मिश्रण किया है। भवभूति ने विदूषक का परित्याग करके हास्य रस को बहुत कम स्थान दिया है।

(१०) कालिदास के नाटकों में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होता है। भवभूति के नाटकों में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण विस्तृतरूप से प्राप्त होता है।

स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय ने उत्तररामचरित और शाकुन्तल की तुलना करते हुए लिखा है :—"विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भाव की तरंग-क्रीडा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में 'उत्तररामचरित' श्रेष्ठ है और घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना की कोमलता में, मानवचरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' श्रेष्ठ है। संस्कृत साहित्य में ये दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल शरद् ऋतु की पूर्ण चाँदनी है, उत्तररामचरित नक्षत्रखचित नील आकाश है। एक व्यंजन है, दूसरा हविष्य अन्न है; एक वसन्त है, दूसरा वर्षा है; एक नृत्य है, दूसरा अश्रु है; एक उपभोग है, दूसरा पूजन है।"

# नाटकीय-पात्र

| क्रम संख्या | नाम | परिचय |
|---|---|---|
| | **पुरुष-पात्र** | |
| १ | सूत्रधार | नाटक का प्रारम्भकर्ता और रंगमंच का अध्यक्ष । |
| २ | दुष्यन्त | हस्तिनापुर का राजा । नाटक का नायक । |
| ३ | सूत | दुष्यन्त का सारथि । |
| ४ | सेनापति (भद्रसेन) | राजा का सेनापति । |
| ५ | विदूषक (माधव्य) | राजा का मित्र और हास्यकारी । |
| ६ | कण्व (काश्यप) | शकुन्तला के पालक और धर्म-पिता । |
| ७ | मारीच (कश्यप) | एक महर्षि । देवों और राक्षसों के पिता । एक प्रजापति । |
| ८ | भरत (सर्वदमन) | राजा दुष्यन्त का पुत्र । |
| ९ | सोमरात | दुष्यन्त का पुरोहित । |
| १० | मातलि | इन्द्र का सारथि । |
| ११से | वैखानस, शार्ङ्गरव, | कण्व के शिष्य । |
| १६ | शारद्वत, गौतम, हारीत, शिष्य | ,, ,, |
| १७ | रैवतक (दौवारिक) | राजा का भृत्य । |
| १८ | करभक | राजा का भृत्य । |
| १९ | कंचुकी (वातायन) | राजा का भृत्य । |
| २० | वैतालिक | स्तुतिपाठक, भाट । |
| २१ | श्याल | राजा का साला । नगर का कोतवाल । |
| २२ | धीवर | मछली पकड़ने वाला । |
| २३ | सूचक, | दो पुलिस वाले । |
| २४ | जानुक | |
| २५ | गालव | ऋषि मारीच का शिष्य |
| | **स्त्री-पात्र** | |
| २६ | नटी | सूत्रधार की स्त्री । |
| २७ | शकुन्तला | कण्व की धर्मपुत्री । नाटक की नायिका । दुष्यन्त की पत्नी । |

Funding by IKS-MoE

| क्रम संख्या | नाम | परिचय |
|---|---|---|
| २८ | अनसूया | शकुन्तला की सखी। |
| २९ | प्रियंवदा | शकुन्तला की सखी। |
| ३० | गौतमी | कण्व के आश्रम की अध्यक्षा। |
| ३१ | अदिति (दाक्षायणी) | महर्षि मारीच की पत्नी। |
| ३२ | सानुमती | मेनका की सखी अप्सरा। |
| ३३ | चतुरिका | राजा की सेविकाएँ। |
| ३४ | परभृतिका | |
| ३५ | मधुकरिका | |
| ३६ | वेत्रवती (प्रतीहारी) | द्वारपालिका। |
| ३७ | यवनी | राजा की सेविका। |
| ३८ | तापसी (सुव्रता) | मारीच के आश्रम की एक तपस्विनी स्त्री। |
| | **अन्य-पात्र** | (जिनका केवल उल्लेख-मात्र है।) |
| | मघवा (इन्द्र) | देवताओं का राजा। |
| | जयन्त | इन्द्र का पुत्र। |
| | कौशिक (विश्वामित्र) | ऋषि विश्वामित्र। शकुन्तला के जन्मदाता पिता। |
| | मेनका | शकुन्तला की माता। एक अप्सरा। |
| | दुर्वासा | एक ऋषि। शकुन्तला को शाप देने वाले। |

### महाकविश्रीकालिदासप्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

## प्रथमोऽङ्कः

**१. या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,**
**ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।**
**यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः**
**प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।।१।।**

**अन्वय**—या स्रष्टुः आद्या सृष्टिः, या विधिहुतं हविः वहति, या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता, यां सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः, यया प्राणिनः प्राणवन्तः, ताभिः प्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु ।।

**हिन्दी**—जो विधाता की सर्वप्रथम सृष्टि है (अर्थात् जलरूप मूर्ति), जो विधिपूर्वक हवन की गई हवि को ( देवताओं के पास ) ले जाती है ( अर्थात् अग्निरूप मूर्ति), जो होता है (अर्थात् यजमानरूप मूर्ति), जो दो समय का निर्माण करती हैं (अर्थात् सूर्य और चन्द्ररूपी मूर्तियाँ, जो दिन और रात्रि को बनाती हैं), शब्द जिसका गुण है और जो विश्व में व्याप्त होकर विद्यमान है (अर्थात् आकाशरूप मूर्ति), जिसको (विद्वान्) समस्त बीजों का कारण कहते हैं (अर्थात् पृथ्वी रूप मूर्ति) और जिससे सभी प्राणी जीवित रहते हैं (अर्थात् वायुरूप मूर्ति), उन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से युक्त ईश्वर (शिव) आप लोगों की रक्षा करें ।।१।।

**संस्कृत-व्याख्या**—या—जलरूपा तनुः, स्रष्टुः—विधातुः, आद्या—प्रथमा, सृष्टिः—रचना । या—अग्निरूपा तनुः, विधिहुतम्—विधिना शास्त्रानुकूलं हुतं वह्नौ क्षिप्तम्, हविः—हव्यं घृतादिकम्, वहति—देवान् प्रापयति । या—तनुः, होत्री—हवनकर्त्री यजमानरूपा अस्ति । ये द्वे—सूर्यचन्द्ररूपे तनू, कालम्—अहोरात्ररूपं समयविभागम्, विधत्तः—कुरुतः । श्रुतिविषयगुणा—श्रुतेः कर्णस्य विषयः शब्दो गुणो यस्याः सा, शब्दगुणेत्यर्थः, या—आकाशरूपा तनुः, विश्वम्—निखिलं जगत्, व्याप्य—व्याप्तं कृत्वा, स्थिता—वर्तमाना वर्तते । याम्—पृथ्वीरूपां तनुम्, सर्वबीजप्रकृतिः—सर्वेषां समस्तानां बीजानां धान्यादिशस्यानां

Funding by IKS-MoE

प्रकृतिः कारणम्, इति आहुः—इति वदन्ति, विद्वांस इति शेषः। यया—वायुरूपमूर्त्या, प्राणिनः—जीवधारिणः, प्राणवन्तः—प्राणयुक्ताः, सन्तीति शेषः। ताभिः—पूर्वोक्ताभिः, प्रत्यक्षाभिः—दृष्टिगोचराभिः, अष्टाभिः—अष्टसंख्याकाभिः, तनुभिः—मूर्तिभिः, प्रपन्नः—समन्वितः, ईशः—ईश्वरः, शिव इत्यर्थः, वः—युष्मान्, अवतु—रक्षतु। अत्र स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षणम्—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्॥

दशरूपककारस्य मतमिदं यत् 'अर्थतः शब्दतो वापि मनाक् काव्यार्थसूचनम्' कविर्नान्दीपाठे काव्यार्थमपि सूचयेदिति। एवम् 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' इत्यनेन शकुन्तला सूच्यते। तादृशसुन्दरमूर्त्याः तत्कालपर्यन्तम् अजातत्वाद् आद्यत्वम्। 'या विधिहुतं हविर्वहति' या सुरतविधिना प्रदत्तं वीर्यरूपं हविः धारयतीति शकुन्तलाया गर्भिणीत्वं सूच्यते। 'या च होत्री' इत्यनेन कण्वः सूच्यते। 'ये द्वे कालं विधत्तः' इत्यनेन अनसूयाप्रियंवदे सख्यौ सूच्येते। ते कालं शापावसानसमयं विधत्तः बोधयतः। 'श्रुतिविषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता' इत्यनेन शकुन्तलायाः प्रत्याख्यानं सूच्यते। तस्याः दुष्यन्तकर्तृकं प्रत्याख्यानं शब्दात्मकं सत् लोकोक्तिपरम्परया सर्वस्मिन्नपि जगति प्रथितमस्ति। 'यां सर्वबीजप्रकृतिरित्याहुः' इत्यनेन भरतोत्पत्तिः सूच्यते। शकुन्तला बीजरूपभरतस्य प्रकृतिः जन्मदात्री अस्ति। 'यया प्राणिनः प्राणवन्तः' इत्यनेन दुष्यन्तशकुन्तलयोः पुनः संयोगः, नाटकस्य च सुखान्तत्वं सूच्यते। दुष्यन्तशकुन्तलयोः पुनः संयोगेन सर्वेऽपि प्राणिनः सहृदया निरीक्षकाः प्राणवन्तः प्रसन्नचेतसो भवन्ति। नाटकस्य च सुखान्तत्वेन सहृदयानां प्रसन्नता संपद्यते। अत्र पत्रावली-संज्ञिका नान्दी। तदुक्तं नाटचदर्पणे—"यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः। श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥"

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) सृष्टिः—सृज्+क्तिन् (ति)। (२) स्रष्टुः—सृज्+तृच् (तृ)+षष्ठी एकवचन। (३) आद्या—आदौ भवा इति, आदि+यत् (य)+टाप् (आ)। (४) विधिहुतम्—विधिना हुतम् (तृतीया तत्पुरुष)। हुतम्—हु+क्त (त)। (५) होत्री—हु+तृच् (तृ)+ ङीप् (ई)। (६) श्रुतिविषयगुणा—श्रुतेः विषयः गुणः यस्याः सा (तत्पुरुषगर्भ वहुव्रीहि)। श्रुति—श्रु+क्तिन् (ति)। विषय—वि+सि+अच् (अ)। (७) स्थिता—स्था+क्त (त) + टाप् (आ)। (८) व्याप्य—वि+आप्+ल्यप् (य)। (९) आहुः—ब्रू+लट्, प्रथम पुरुष बहुवचन। 'ब्रुवः पञ्चानामादित

Funding by IKS-MoE

आहो ब्रुवः ( पा०३-४-८४ ) से ब्रू को आह् और उस् । ( १० ) सर्वबीजप्रकृतिः—सर्वेषां बीजानां प्रकृतिः (षष्ठी तत्पुरुष) । (११) प्राणिनः—प्राण+इनि ( इन् )+प्रथमा बहु० । (१२) प्रत्यक्षाभिः—(१) अक्ष्णः प्रति (सम्मुखम् इति) ( अव्ययीभाव ) । प्रति+अक्षि+टच् ( अ )+अच् ( अ ) । 'प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः' वार्तिक से टच् प्रत्यय, तदनन्तर 'अर्श आदिभ्योऽच्' से अच् प्रत्यय । (२) अथवा अक्षम् इन्द्रियं प्रति गताः इति प्रत्यक्षाः, अत्यादयः० इत्यादि वार्तिक से प्रादिसमास । (१३) प्रपन्नः—प्र+पद्+क्त (त) ।

( १ ) **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**—इस नाटक के दो नाम प्रचलित हैं—( क ) अभिज्ञानशाकुन्तलम् और ( ख ) अभिज्ञानशकुन्तलम् । इसका अधिक प्रचलित नाम अभिज्ञानशाकुन्तलम् है । इन दोनों नामों की सिद्धि कई प्रकार से की गई है—( क ) अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम् । अभि+ज्ञा+ल्युट् ( अन ) । 'करणाधिकरणयोश्च' ( पा० ३-३-११७ ) सूत्र से करण अर्थ में ल्युट् । अभिज्ञान अर्थात् जिसके द्वारा पहचाना जाता है । यहाँ पर अभिज्ञान से भाव है दुष्यन्त के द्वारा पहचान के लिए शकुन्तला को दी गई अँगूठी । शकुन्तलाम् अधिकृत्य कृतं नाटकं शाकुन्तलम् । शकुन्तला+अण् ( अ ), 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र से अण् प्रत्यय । शकुन्तला-विषयक नाटक । अभिज्ञान-प्रधानं शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् । 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' वार्तिक से उत्तरपद 'प्रधान' का लोप । शकुन्तला-विषयक नाटक, जिसमें अभिज्ञान (अँगूठी) मुख्य रूप से वर्णित है ( ख ) अथवा—अभिज्ञानसहितं शाकुन्तलम् । उत्तरपद 'सहित' का लोप । अभिज्ञान ( अँगूठी ) के वर्णन से युक्त शकुन्तला-विषयक नाटक । ( ग ) अभिज्ञायते अनेन इत्यभिज्ञानम्, करणे ल्युट् । जिसके द्वारा पहचाना जाता है, अर्थात् अँगूठी । शकुन्तलाया इदं शाकुन्तलम्, अर्थात् शकुन्तला का विवाह । अभिज्ञानस्मृतं शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् । अभिज्ञान ( अँगूठी ) के द्वारा स्मृत शकुन्तला का विवाह । अभेदोपचार से नाटक भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् । 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' भी ग्रन्थ का नाम माना जा सकता है । प्रो० काले, प्रो० राय, प्रो० गोस्वामी, प्रो० बोस आदि 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' नाटक का नाम स्वीकार करते हैं । उनके मतानुसार इसकी व्याख्या इस प्रकार है—अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम् । अभिज्ञानस्मृता शकुन्तला अभिज्ञानशकुन्तला । शाकपार्थिवादि समास, उत्तरपद 'स्मृता' का लोप । अभिज्ञान ( अँगूठी ) से स्मरण की गई शकुन्तला । अभेदोपचार से नाटक का नाम भी अभिज्ञानशकुन्तलम् । नाटक का नाम होने पर शब्द नपुंसकलिंग होगा और 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' (पा० १. २. ४७) सूत्र से अन्तिम आ को ह्रस्व अ हो जाएगा । नाटक का अधिक प्रचलित नाम 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, अतः वही यहाँ अपनाया गया है । (२) **या स्रष्टुः०**—जो परमात्मा की सर्वप्रथम सृष्टि है, अर्थात् जलरूप सृष्टि ।

मनुस्मृति आदि के अनुसार जल को सर्वप्रथम सृष्टि कहा गया है। 'सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ (मनु० १.८)। शतपथ ब्राह्मण (११. १. ६. १) और तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' जल को प्रथम सृष्टि कहा गया है। इसी आधार पर कालिदास ने यह वर्णन किया है। जल की उत्पत्ति आकाश, वायु, अग्नि के पश्चात् ही होती है। अतएव मनु० (१.७८) में अग्नि से जल की उत्पत्ति कही गई है। उत्पत्ति की प्रक्रिया का अधिक वैज्ञानिक रूप तैत्तिरीय उपनिषद् में दिया है कि—'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी' इत्यादि। (३) **वहति०**—जो विधिपूर्वक हवन की गई हवि को देवताओं के पास पहुँचाती है अर्थात् अग्नि। अग्नि हुत द्रव्यों को देवों तक पहुँचाती है। अतएव कहा गया है—'अग्निमुखा वै देवाः।' 'जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु'। विधिपूर्वक हुत को ही अग्नि देवों तक पहुँचाता है, अतः 'विधिहुतम्' कहा गया है। (४) **या च होत्री**—होता (यजमान) यज्ञ करते समय शिव का अंश माना जाता है। (देखो—रघुवंश ३. ६६—त्रिलोचनैकांशतया दुरासदः)। (५) **ये द्वे०**—जो दो काल का निर्माण करती हैं अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा। ये दोनों अपनी सत्ता से दिन और रात्रि का विभाजन करते हैं और इस प्रकार समय का निर्धारण होता है। काल अविभाज्य है, तथापि व्यावहारिक दृष्टि से उसका विभाजन किया जाता है। अतएव सूर्य को दिवाकर, दिनकर आदि तथा चन्द्र को निशाकर, रजनीकर आदि कहते हैं। (६) **श्रुति०**—श्रुतेः विषयः शब्दः गुणः यस्याः सा—श्रुतिविषयगुणा (तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि)। कान का विषय शब्द जिसका गुण है अर्थात् आकाश। आकाश सर्वत्र व्यापक भी है। (७) **सर्वबीज०**—जिसको सम्पूर्ण बीजों का कारण कहते हैं अर्थात् पृथ्वी। पृथ्वी से ही समस्त प्रकार के बीजों का जन्म होता है। पाठान्तर—सर्वभूत० मानने पर भूत शब्द का अर्थ पंचभूत लेने पर यह वाक्य अशुद्ध होगा, पृथ्वी पंचभूतों का कारण नहीं है। भूत शब्द का अर्थ जीव मानने पर अर्थ की संगति हो सकती है। जीव चार प्रकार के हैं—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। अतएव कहा गया है—'इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते।' (मनु० ९-३७)। (८) **प्राणिनः०**—जिसके द्वारा प्राणी अर्थात् जीव प्राणयुक्त हैं। 'प्राणिनः प्राणवन्तः' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। इसमें पुनरुक्ति प्रतीत होती है। परन्तु वास्तविक अर्थ है—प्राणिनः अर्थात् जीव, प्राणवन्तः—जीवन से युक्त हैं। (९) **प्रत्यक्षाभिः**—प्रत्यक्ष। उपर्युक्त आठ रूपों में से आकाश और वायु प्रत्यक्ष नहीं, अपितु अनुमेय हैं। वायु का स्पर्श के द्वारा प्रत्यक्ष माना जा सकता है और आकाश का शब्द के द्वारा। (१०) **प्रपन्नः**—समन्वित। प्रसन्नः (प्रसन्न) पाठ रखने पर प्रत्यक्षाभिः का महत्त्व नष्ट हो जाता है, अतः 'प्रपन्नः' पाठ अधिक उपयुक्त है। (११) **अष्टाभिः०**—आठ मूर्तियों से समन्वित शिव रक्षा करें। शिव के आठ रूप माने गये हैं (क) "सर्वो

जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः।।" (विष्णुपुराण)। (ख) 'जलं वह्निर्तथा यष्टा सूर्याचन्द्रमसौ तथा। आकाशं वायुरवनी मूर्तयोऽष्टौ पिनाकिनः।।' (ग) 'भूतार्कचन्द्रयज्वानो मूर्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः'। (घ) 'पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च। सूर्याचन्द्रमसौ सोमयाजी चेत्यष्टमूर्तयः'। (१२) इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द है: उसका लक्षण है—'म्रभ्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्'। (१३) इस श्लोक में कथानक का भी संकेत प्राप्त होता है। अतः यहाँ पर पत्रावली नान्दी है। (विवरण के लिए देखो संस्कृत टीका)।

---

## ( नान्द्यन्ते )

**२. सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितम्, इतस्तावदागम्यताम्।**

**(नान्दी-पाठ के बाद) सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये, यदि नेपथ्य-कार्य (अभिनेताओं द्वारा वस्त्रादि-धारण का कार्य) समाप्त हो गया हो तो इधर आओ।**

## ( प्रविश्य )

**३. नटी—आर्यपुत्र, इयमस्मि।** [अज्जउत्त, इयं ह्मि।]

**(प्रविष्ट होकर) नटी—आर्यपुत्र, यह (उपथित) हूँ।**

### टिप्पणी

(१) **नान्द्यन्ते**—नान्द्या अन्ते। षष्ठी तत्पुरुषसमास। नान्दी-पाठ के पश्चात्। (२) **नान्दी**—(क) नन्द्+घञ्+ङीप्। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि' से धातु के अ को वृद्धि। नन्दन्ति देवा अत्र इति नान्दी। जहाँ पर देवता आनन्दित होते हैं, वह नान्दी है। (ख) नन्दयतीति नन्दः, पचाद्यच्। नन्द्+अच्। नन्द एव नान्दः। 'प्रज्ञादिभ्यश्च' से अण्। नन्द+अण्+ङीप्। नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी अर्थात् मंगलाचरण का पाठ होता है। (३) **नान्दी का लक्षण**—(क) 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता'।। सा० दर्पण ६-२४। देवगण, ब्राह्मणों और राजादि की आशीर्वादयुक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती

---

पाठभेद—३. निर्णयसागर-संस्करणम्—(प्रविश्य), इति नास्ति। (सूचना—आगे निर्णयसागर-संस्करण के लिए पाद-टिप्पणी में संकेत नि० है और काले के संस्करण के लिए का० संकेत है।)

Funding by IKS-MoE

है, अतः इसे नान्दी कहते हैं। ( ख ) 'आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दीति कथ्यते'। ( आदिभरत )। आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है। उसमें काव्य के कथानक का संकेत भी हो। (ग) 'देवद्विजनृपादीनामाशीर्वचनपूर्विका। नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता।' (घ) 'नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः। यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी, तस्मादियं सा कथितेह नान्दी।' ( नाट्यप्रदीप )। ( ङ ) नान्दी के विस्तार आदि के विषय में कहा गया है—'अष्टाभिर्दशभिर्वापि नान्दी द्वादशभिः पदैः। आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्'।। नान्दी में आठ, दस या बारह पद होने चाहिएँ। इसमें आशीर्वाद, नमस्कार या कथा-वस्तु का निर्देश होना चाहिए। श्लोक के चतुर्थांश को पद मानने पर प्रथम श्लोक चार पद वाली नान्दी है। जहाँ पर कथा-वस्तु का निर्देश होता है, उसे पत्रावली नान्दी कहते हैं। अतः यहाँ पर पत्रावली नान्दी है। ( ४ ) **सूत्रधारः**—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति। सूत्र+धृ+णिच्+अण्। कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय। सूत्रधार उसको कहते हैं जो 'सूत्र' अर्थात् रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को 'धारयति' नियमित रूप से चलाता है। वह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। वह प्रस्तावना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है। यहाँ पर नान्दी-पाठ करने वाला भी सूत्रधार ही है। 'सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्' अर्थात् सूत्रधार नान्दी-पाठ करे। नान्दी का पाठकर्ता अन्य पात्र नहीं है। अतएव सूत्रधार से पूर्व 'प्रविश्य' ( प्रविष्ट होकर ) नहीं कहा गया है। सूत्रधार मंगलाचरणकर्ता के रूप में नान्दी-पाठ करता है और अभिनेता सूत्रधार के रूप में नाटक का प्रारम्भ करता है। ( ५ ) **सूत्रधार का लक्षण**—(क) 'नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम्। रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः'।। बीज के साथ नाट्य के अनुष्ठान को 'सूत्र' कहते हैं। उसको धारण करने वाले तथा रंग-मंच के देवता की पूजा करने वाले को सूत्रधार कहते हैं। (ख) संगीतसर्वस्व के लेखक ने सूत्रधार का लक्षण किया है—'वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते। रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।' नाटक में होने वाली घटना को सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर जो सूचित करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं। (ग) 'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते'।। नाटक के उपकरणों आदि को 'सूत्र' कहते हैं, उसको धारण करने वाला सूत्रधार होता है। ( ६ ) **नेपथ्य का लक्षण**—'कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते'। अभिनेता जहाँ पर नाटकोचित रूप धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं। उसी को आजकल 'ग्रीन हाउस' कहते हैं। नेपथ्य शब्द के तीन अर्थ हैं—वेष धारण करना, वेष धारण का स्थान और पर्दा। 'आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यजयः। 'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम्' इत्यमरः। 'नेपथ्यं तु प्रसाधने रंगभूमौ वेषभेदे' इति हैमः। ( ७ ) **आर्य**—यह पत्नी के लिए संबोधन है। भरत मुनि

का कथन है कि नाटक में पत्नी को आर्या नाम से संबोधन करे। 'पत्नी चार्येति संभाष्या' नाट्यशास्त्र १९-२६। ( ८ ) **नेपथ्य०**—नेपथ्यस्य विधानं कार्यम्। षष्ठी तत्पुरुष। अवसितं समाप्तं तर्हि इत आगच्छ। नेपथ्य अर्थात् वेष-रचना का कार्य समाप्त हो गया हो तो इधर आओ। विधानम्—वि+धा+ल्युट् (अन)। अवसितम्—अव + सो ( सा ) + क्त ( त )। नेपथ्यम्—निन: नेत्रस्य पथ्यम्, ने: नेतु: वा पथ्यम्। नि+पथ्यम्। आँखों के लिए हितकारी या अभिनेताओं के लिए हितकारी। ( ९ ) **आर्यपुत्र**—स्वामी। भरतमुनि का कथन है कि स्त्री पति को आर्यपुत्र कहे। 'सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्य आर्यपुत्रेति यौवने'। आर्य—ऋ+ण्यत् (य)। अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते इति आर्यः। सेवा के योग्य या उपासनीय। आर्यपुत्र में आर्य का भाव है श्वशुर, उसका पुत्र आर्यपुत्र।

**४. सूत्रधारः—आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत् प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः।**

**सूत्रधार—आर्ये, इस सभा में विद्वान् अधिक संख्या में हैं। आज हमें कालिदास-विरचित अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नवीन नाटक का अभिनय करना है। अतः प्रत्येक पात्र पर ( विशेष ) ध्यान देना।**

**५. नटी—सुविहितप्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते।**
[सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं पि परिहाइस्सदि।]

**नटी—आपके सुव्यवस्थित अभिनय के कारण कोई न्यूनता नहीं रहेगी।**

### टिप्पणी

( १ ) **अभिरूप०**—अभिरूपाः विद्वांसः भूयिष्ठाः अधिकाः यस्यां सा। ( वहुव्रीहि )। अभिरूपाः—अभिलक्ष्यं दर्शनीयं रूपमेषामिति। जिनका रूप दर्शनीय है अर्थात् विद्वान्। 'अभिरूपो बुधे रम्ये' इति मेदिनी। भूयिष्ठा—अतिशयेन वह्वी, अधिक। वहु+इष्ठन् (इष्ठ)+टाप्। ( २ ) **परिषत्**—सभा। परितः सीदन्ति अस्याम् इति। परि+सद्+क्विप्। (३) **अभिज्ञान०**—अभिज्ञानशाकुन्तलं नामधेयं नाम यस्य तेन। वहुव्रीहि। अभिज्ञानशाकुन्तल नामक। कुछ विद्वान् ग्रन्थ का नाम अभिज्ञानशकुन्तलम् मानते हैं, वे यहाँ पर 'अभिज्ञानशकुन्तलनामधेयेन' पाठ मानते हैं। नाटक के नाम के विषय में देखो पीछे प्रथमश्लोक का विवरण। नामधेय—नाम+धेय, स्वार्थ में धय प्रत्यय। ( ४ ) **नाटकेन**—रूपक का एक भेद नाटक है। नट् (चुरादिगणी)+ण्वुल्—

---

पाठभेद—४. काले—नवेनाभिज्ञानशकुन्तलाख्येन (नए अभिज्ञानशकुन्तल-नामक )

नाटकम्। नाटक का लक्षण है—'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्। पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥' इत्यादि (साहित्यदर्पण ६.७-१०)। नाटक का कथानक प्रसिद्ध होता है, उसमें पाँच सन्धियाँ मुख प्रतिमुख आदि होती हैं। कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होते हैं, इत्यादि। (५) **प्रतिपात्रम्**—पात्रं पात्रं प्रति। अव्ययीभाव। (६) **आधीयताम्**—आ+धा+यक्+लोट् प्र० १। (७) **सुविहित०**—सुष्ठु विहितः कृतः सुविहितः। सु+वि+धा+क्त। आपके अभिनय की व्यवस्था बहुत सुन्दर है, अतः कोई न्यूनता नहीं रहने पाएगी। नटी सूत्रधार के अनुभव की प्रशंसा करती है। ( ८ ) यहाँ पर प्ररोचना नामक भारतीवृत्ति का अंग है। जहाँ पर प्रशंसा के द्वारा दर्शकों को आकृष्ट किया जाता है, वहाँ प्ररोचना होती है। 'उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना।' दशरूपक। ( ९ ) **परिहास्यते**—परि+हा+लृट् प्र० १। कर्मवाच्य में लृट्।

**६. सूत्रधारः—आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम्।**

**आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।**
**बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥२॥**

**अन्वय**—विदुषाम् आ परितोषात् प्रयोगविज्ञानं साधु न मन्ये।
बलवद् अपि शिक्षितानां चेतः आत्मनि अप्रत्ययम्।

**सूत्रधार—आर्ये, मैं तुमसे सच कहता हूँ।**

**जब तक विद्वान् सन्तुष्ट न हो जाएँ, तब तक मैं अपने अभिनय-कौशल को सफल नहीं समझता। विशेष रूप से शिक्षितों का भी चित्त अपने विषय में अविश्वासयुक्त ही होता है॥२॥**

**७. नटी—आर्य, एवमेतत्। अनन्तरकरणीयमार्य आज्ञापयतु।**

[अज्ज, एवं एदम्। अणन्तरकरणिज्जं अज्जो आणवेदु।]

**नटी—आर्य, ऐसा ही है। अब जो करना है, उसका आप आदेश दें।**

**संस्कृत-व्याख्या**—विदुषां—प्राज्ञानाम्, आ परितोषात्—प्रीतिं यावत्, प्रयोगविज्ञानम्—अभिनयविशेषज्ञताम्, साधु—शोभनं सफलमित्यर्थः, न मन्ये—न गणयामि। बलवदपि—सुदृढमपि, शिक्षितानां—विदुषाम्, चेतः—हृदयम्, आत्मनि—स्वविषये, अप्रत्ययम्—अविश्वस्तम्, भवतीति शेषः। यदा विद्वांसः परितुष्टा भविष्यन्ति, तदैव मम कौशलं सफलं ज्ञेयम्। इत्यर्थस्यैव प्रकारान्तरेण

---

पाठभेद—७. नि०—एवमेव तत् ( यह ऐसा ही है )।

प्रतिपादनात् पूर्वार्धे पर्यायोक्तिरलंकारः । तल्लक्षणम्—'पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते' । उत्तरार्धे सामान्येन विशेषस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । तल्लक्षणं च—'सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ।। साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा मतः' ।। अत्र आर्या छन्दः । तल्लक्षणम्—'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश सार्या' ।।

### टिप्पणी

( १ ) **भूतार्थम्**—भूतं सत्यम् अर्थं तत्त्वम् । सत्य । भूत शब्द का अर्थ सत्य भी है । 'भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ न्याय्ये सत्योपमानयोः' इति विश्वः । ( २ ) **आ परितोषात्**—सन्तोष तक । आ के साथ पंचमी होती है । 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' ( पा० १-४-८९ ) । परितोष—परि+तुष्+घञ् ( अ ) । ( ३ ) **प्रयोगविज्ञानम्**—प्रयोगस्य अभिनयस्य विज्ञानं कुशलताम् । षष्ठी तत्पुरुष । अभिनय की निपुणता । प्रयोग—प्र+युज्+घञ् (अ) । विज्ञान—वि+ज्ञा+ल्युट् ( अन ) । ( ४ ) **बलवदपि०**—बलवत् का संबन्ध शिक्षितानाम् के साथ अधिक उपयुक्त है । विशेष रूप से शिक्षितों का भी मन । कालिदास को यही अर्थ अभीष्ट प्रतीत होता है । अतएव 'शिक्षितानाम्' से पूर्व बलवदपि दिया है । कुछ विद्वान् बलवत् का सम्बन्ध चेतः ( चित्त ) के साथ मानते हैं, अर्थात् शिक्षितों का बलवान् चित्त भी । परन्तु यह अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है । ( ५ ) इस श्लोक के पूर्वार्ध में पर्यायोक्त अलंकार है और उत्तरार्ध में अर्थान्तरन्यास । विद्वानों के सन्तुष्ट होने पर ही मेरा कौशल सफल समझना, यह अर्थ प्रकारान्तर से कहा गया है, अतः पर्यायोक्त अलंकार है । उत्तरार्ध में सामान्य वाक्य के द्वारा पूर्वार्ध के विशेष वाक्य का समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है । ( ६ ) यहाँ पर आर्या छन्द है । आर्या के लक्षण के लिए संस्कृत-व्याख्या देखो । ( ७ ) इस श्लोक के उत्तरार्ध में 'अविमृष्टविधेयांश' दोष है अर्थात् विधेय का ठीक ढंग से प्रयोग नहीं हुआ है । 'अप्रत्ययम्' से क्रियांश अस्पष्ट है । 'स्वस्मिन् प्रत्येति नो चेतः' रखने से दोष दूर हो सकता है । ( ८ ) **अनन्तरकरणीयम्**—न अन्तरं यस्मिन् कर्मणि तत् अनन्तरम् । अनन्तरं करणीयम् अनन्तरकरणीयम् । सुप्सुपा समास । अविलम्ब करने योग्य ।

**८. सूत्रधारः—किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः । तदिदमेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम् । संप्रति हि—**

**सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।**
**प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ।।३।।**

**अन्वय**—सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः प्रच्छायसुलभनिद्राः दिवसाः परिणामरमणीयाः ( भवन्ति )।

**सूत्रधार**—इस सभा के कानों को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और क्या ? अतः शीघ्र ही प्रारम्भ हुए, ( जल-स्नानादि ) सुखों के योग्य इस ग्रीष्म ऋतु के विषय में ही गाओ। इस समय ( दिन में ) :—

जल में स्नान सुखकर ज्ञात होता है, गुलाबों के संपर्क से वन की वायुएँ सुगन्ध-युक्त होती हैं, घनी छाया में नींद सरलता से आती है और दिन सायंकाल के समय मनोहर होते हैं ॥३॥

**संस्कृत-व्याख्या**—सुभगसलिलावगाहाः—सुभगः सुखकरः सलिले जले अवगाहः स्नानं येषु तादृशः, पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः—पाटलानां स्थलपद्मानां संसर्गेण सम्पर्कात् सुरभयः सुगन्धयुक्ताः वनवाताः वनवायवः येषु तादृशाः, प्रच्छायसुलभनिद्राः—प्रच्छायेषु घनच्छायायुक्तस्थलेषु सुलभाः सुखेन लभ्याः निद्राः स्वापाः येषु तादृशाः, दिवसाः—ग्रीष्मसमयवासराः, परिणामरमणीयाः—परिणामे दिवसावसाने रमणीयाः मनोहराः, भवन्तीति शेषः। अत्र श्लोके विशेषणानां साभिप्रायत्वात् परिकरालंकारः, यथावद्वस्तुवर्णनाच्च स्वभावोक्तिरलंकारः। परिकरलक्षणम्—'उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः। स्वभावोक्तिलक्षणम्—'स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद् वस्तुवर्णनम्'। अत्र श्लोके श्रुत्यनुप्रासो वृत्त्यनुप्रासश्च स्तः। आर्या छन्दः।

## टिप्पणी

( १ ) **श्रुति०**—श्रुतेः प्रसादनतः। षष्ठी तत्तपुरुष। श्रुति—श्रु+क्तिन् ( ति )। प्रसादन—प्र+सद्+णिच्+ल्युट् ( अन )। पंचमी के अर्थ में तसिल् ( तः )। ( २ ) **अचिर०**—अचिरं प्रवृत्तम्। द्वितीया तत्पुरुष। 'अत्यन्तसंयोगे च' से समास। प्रवृत्त—प्र+वृत्+क्त ( त )। ( ३ ) **उपभोग०**—उपभोगस्य क्षमम्। षष्ठी तत्पुरुष। उपभोग—उप+भुज्+घञ् (अ)। (४) **अधिकृत्य**—अधि+कृ+ल्यप् ( य )। ( ५ ) **सुभग०**—सुभगः सलिले अवगाहः येषु ते, तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। अवगाह—अव+गाह्+घञ् ( अ )। ( ६ ) **पाटल०**—पाटलानां संसर्गेण सुरभयः वनवाताः येषु ते। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। संसर्ग—सम्+सृज्+घञ् (अ)। ( ७ ) **प्रच्छाय०**—प्रच्छायेषु सुलभाः निद्राः येषु ते। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। प्रच्छायेषु—प्रकृष्टा छाया प्रच्छायं तेषु। तत्पुरुष। सुलभ—सु+लभ्+खल् ( अ )। ( ८ ) **परिणाम०**—परिणामे रमणीयाः। तत्पुरुष। परिणाम—परि+नम्+घञ् ( अ )। रमणीय—रम्+अनीयर् (अनीय)। ( ९ ) अवगाह और वगाह दोनों शब्द हैं। भागुरि

आचार्य के मतानुसार अव और अपि उपसर्गों के प्रारम्भिक अ का लोप हो जाता है। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः'। अतएव अवगाह—वगाह, अपिधान—पिधान, अवतंस—वतंस आदि दोनों रूप होते हैं। (१०) **परिणामरमणीयाः**—इसके द्वारा संकेत प्राप्त होता है कि नाटक का परिणाम अर्थात् अन्त सुखद होगा। (११) इस श्लोक में परिकर और स्वभावोक्ति अलंकार हैं। आर्या छन्द है।

**९. नटी—तथा। (इति गायति)**

**ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि ।**
**अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥४॥**

[तह]—[ईसीसिचुम्बिआइं भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअन्ति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइं ॥४॥]

**अन्वय**—प्रमदाः दयमानाः भ्रमरैः ईषदीषत् चुम्बितानि सुकुमारकेसरशिखानि शिरीषकुसुमानि अवतंसयन्ति।

**नटी—वैसा ही होगा। (गाती है।)**

**युवतियाँ दयाभाव से भौरों के द्वारा कुछ-कुछ आस्वादित कोमल केसरशिखा-युक्त शिरीष के फूलों को कान का आभूषण बना रही हैं ॥४॥**

**१०. सूत्रधारः—आर्ये, साधु गीतम्। अहो, रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत् प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः।**

**सूत्रधार—आर्ये, तुमने बहुत अच्छा गाया। ओह, तुम्हारे राग ने सबके मन को आकृष्ट कर लिया है और सभी ओर दर्शक चित्रित से प्रतीत होते हैं। अतः इस समय किस नाटक का प्रदर्शन करके इनको प्रसन्न करें।**

**११. नटी—नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।** [णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउन्दलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अधिकरीअदु त्ति।]

**नटी—आपने पहले ही आदेश दिया था कि अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक का अभिनय किया जाय।**

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रमदाः—मदविह्वला युवतयः, दयमानाः—दयाभाव-

भरिताः, सुकुमारकेसरशिखानि—सुकुमाराः सुकोमलाः केसराणां किंजल्कानां शिखाः अग्रभागाः येषां तानि, भ्रमरैः—अलिभिः, ईषदीषत्—किंचित्-किंचित्, चुम्बितानि—आस्वादितानि, शिरीषकुसुमानि—शिरीषवृक्षपुष्पाणि, अवतंसयन्ति—कर्णाभूषणतां प्रापयन्ति। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। तल्लक्षणम्—हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते। अत्र उद्गाथा छन्दः।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **प्रमदाः**—प्रकृष्टो मदो यासु ताः, युवतयः। ( २ ) **ईषदीषत्**—'प्रकारे गुणवचनस्य' से प्रकार अर्थ में द्विरुक्ति। ( ३ ) **सुकुमार०**—सुकुमाराः केसराणां शिखाः येषां तानि। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। ( ४ ) **शिरीषकुसुमानि**—शिरीषाणां कुसुमानि। षष्ठी तत्पुरुष। ( ५ ) **दयमानाः**—दय्+शानच्। ( ६ ) **अवतंसयन्ति**—अवतंसं कुर्वन्ति। अवतंस+णिच्+लट्। 'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्।

( १ ) **प्रमदाः**—सौन्दर्य आदि के कारण अधिक मद वाली स्त्रियाँ। श्लोक में 'दयमानाः' अर्थात् दयाभाव से युक्त शब्द साभिप्राय रक्खा गया है। मदयुक्त होते हुए भी दयाभाव के कारण वे शिरीष के फूलों को बहुत सावधानी के साथ तोड़कर कनफूल बना रही हैं। जिस प्रकार भ्रमर बहुत सावधानी से पुष्प का आस्वाद लेता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ सावधानी से पुष्पों को छू रही हैं। ( २) इस श्लोक में कवि नाटक की कथा की ओर भी संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। शिरीष कुसुम से शकुन्तला को लक्ष्य किया है और भ्रमररूपी दुष्यन्त के द्वारा उसके अस्थायी मिलन और आस्वादन का संकेत है। ( ३ ) सूत्रधार और नटी के द्वारा किये गये ग्रीष्म-ऋतु के वर्णन के अन्तर पर ध्यान दें। सूत्रधार के वर्णन में केवल बाह्य तथ्यों का वर्णनमात्र है, परन्तु नटी के वर्णन में स्त्रीसुलभ कोमलता, मृदुता और सरसता है। नटी के गान में प्रेमिका का हृदय बोल रहा है। नटी ने कवि की कोमल कल्पना को अभिव्यक्त किया है। ( ४ ) कालिदास ने शिरीष के पुष्प का कई स्थानों पर वर्णन किया है। शाकुन्तल १—२७, ६—१८; मेघदूत २—२, रघुवंश १६—४८, १६—६१ इत्यादि। (५) इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है और उद्गाथा छन्द है। ( ६ ) **राग०**—रागेण बद्धा चित्तवृत्तिः यस्य सः। बहुव्रीहि। राग—रञ्ज्+घञ्। बद्ध—बन्ध्+क्त ( त )। वृत्ति—वृत्+क्तिन् ( ति)। ( ७ ) **रङ्गः**—रञ्ज्+घञ्। 'घञि च भावकरणयोः' से भाव और करण में ही रञ्ज् के न् का लोप होता है। रज्यति अस्मिन् इति रङ्ग। (८) **कतमत्**—किम्+डतमच् ( अतम )। 'अदड्डतरादिभ्यः०' से द्वितीया एकवचन को अदट् (अत्) हो गया है। (९) **एनम्**—अन्वादेश अर्थात् पुनरावृत्ति अर्थ में 'एनम्' को 'एन' हो गया है, 'इदमोऽन्वादेशे०' से। (१०) रङ्ग शब्द का अर्थ है नाट्यशाला। यहाँ पर लक्षणा से

नाट्यशालागत व्यक्ति अर्थात् दर्शक वर्ग है। (११) प्रकरणम्—प्रकरण रूपक के १० भेदों में से एक भेद है। प्रकरण कवि-कल्पित होता है। इसमें नायिका वेश्या आदि भी हो सकती हैं। इसमें साधारणतया १० अंक होते हैं। शूद्रक का मृच्छकटिक प्रकरणरूपक है। यहाँ पर सूत्रधार को प्रकरण के स्थान पर नाटक शब्द का प्रयोग करना चाहिए था, परन्तु जिस प्रकार सभी दर्शक नटी के गान से मन्त्रमुग्ध हो गए थे, उसी प्रकार सूत्रधार भी मन्त्रमुग्ध हो गया था। अतएव वह सब कुछ भूल गया कि उसे नाटक करना है या प्रकरण। वह यह भी भूल गया कि किस नाटक का अभिनय करना है। नटी उसे स्मरण दिलाती है कि अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का अभिनय करना है। नाटककार ने नटी के गान के माधुर्य को प्रकट करने के लिए जान-बूझकर सूत्रधार के द्वारा ऐसा कहवाया है। अगले वक्तव्य ( वक्तव्य संख्या १२ ) में सूत्रधार इस तथ्य को स्वयं स्वीकार करता है। (१२) **आर्यमिश्रैः**—पूजनीय। आर्याश्च ते मिश्राः, तैः। कर्मधारय। **'मिश्र'** शब्द आदरसूचक शब्द है। यह शब्द के अन्त में लगता है और बहुवचन होता है। 'पूज्ये मिश्रवचनं नित्यं बहुवचनान्तम्' इति रङ्गनाथः। 'स्यादुत्तरपदे मिश्रस्त्रिषु श्रेष्ठार्थगोचरः'। भरत ने आर्य का लक्षण किया है—'कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता। अद्रोह इति यष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते'। व्यास ने कहा है—'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया'।

**१२. सूत्रधारः—आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया। कुतः।**

**तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।**
**एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥५॥**
**( इति निष्क्रान्तौ ॥)**

## प्रस्तावना

**अन्वय**—हारिणा तव गीतरागेण अतिरंहसा सारंगेण एष राजा दुष्यन्तः इव प्रसभं हृतः अस्मि।

**सूत्रधार**—आर्ये, ( तुमने ) ठीक स्मरण दिलाया है। इस समय मैं यह भूल गया था। क्योंकि—

तुम्हारे मनोहर संगीत के राग से मैं उसी प्रकार बलात् हर लिया गया हूँ, जिस प्रकार अतिवेगवाले मृग के द्वारा यह राजा दुष्यन्त हर लिये गये हैं ॥५॥

(दोनों का प्रस्थान) [प्रस्तावना-समाप्त]

**संस्कृत-व्याख्या**—हारिणा—मनोहारिणा, तव गीतरागेण—तव गीतमाधुर्येण,

---

पाठभेद—१२. का० मया तत् ( मैं वह )

अतिरंहसा—अतिवेगवता, सारंगेण—मृगेण, एषः—पुरो दृश्यमानः, राजा—नृपः, दुष्यन्त इव, प्रसभं—बलात्, हृतः अस्मि—दूरं नीतोऽस्मि विषयान्तरं प्रापितोऽस्मीत्यर्थः। यथा राजा दुष्यन्तो मनोहरेण वेगवता च मृगेण बलात् सुदूरं नीतोऽस्ति, तथाऽहमपि मनोहरेण तव संगीतेन बलात् आकृष्टचित्तोऽस्मि, स्वकर्तव्यं च विस्मृतवानस्मि। अत्र काव्यलिङ्गमुपमा चालंकारौ। श्रुत्यनुप्रासो वृत्त्यनुप्रासश्च। अनुष्टुप् छन्दः।

## टिप्पणी

(१) **अनुबोधिताः**—अनु+वुध्+णिच्+क्त (त)। (२) **विस्मृतम्**—वि+स्मृ+क्त (त)। (३) **गीतरागेण**—गीतस्य रागः तेन। षष्ठी तत्पुरुष। (४) **हारिणा**—हृ+णिनि (इन्)—हारिन्, तृतीया एक०। साधु हरति चित्तमिति—हारी। यहाँ पर तीन प्रकार से णिनि प्रत्यय करके यह रूप बनाया जा सकता है—(क) 'साधुकारिण्युपसंख्यानम्' वार्तिक से साधु अर्थ में णिनि। (ख) 'आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः (पा० ३–३–१७०) से अवश्य अर्थ में णिनि। (ग) नन्दिग्रहि० (पा० ३–१–१३४) से णिनि। इसी प्रकार कामी, वादी आदि की सिद्धि समझें। (५) **प्रसभम्**—प्रगता सभा विचारः अस्मात्। वहुव्रीहि। यहाँ अर्थ है बलात्। (६) **सारङ्गः**—सारम् अङ्गमस्य, सार+अङ्ग। शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्, वार्तिक से पररूप।

(१) **अस्मिन् क्षणे०**—इस वाक्य से स्पष्ट किया गया है कि क्यों सूत्रधार ने नाटक के स्थान पर भूल से प्रकरण कहा। (२) **तवास्मि**—'अस्मि' अव्यय भी है, उसका अर्थ है 'मैं'। यहाँ पर 'अहम्' अर्थ वाला अस्मि भी माना जा सकता है। उस स्थिति में क्रिया 'अस्मि' का अध्याहार करना होगा। (३) **एव राजेव०**—तुम्हारे मनोहर संगीत ने मुझे इस प्रकार मन्त्रमुग्ध कर दिया है कि मैं अपने कार्य को भी भूल गया। जैसे द्रुतगति वाला हरिण राजा दुष्यन्त को अपनी सेना से दूर भगा ले गया। (४) वंगला संस्करण में राजा का नाम 'दुष्मन्त' दिया है, परन्तु शुद्ध नाम दुष्यन्त ही समझना चाहिए। (५) **निष्क्रान्तौ**—नटी और सूत्रधार रंगमंच से वाहर जाते हैं। 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १-२-६७) नियम से जहाँ पर स्त्री और पुरुष दो को संकेत करना हो, वहाँ पर पुंलिग के द्विवचन का प्रयोग होता है। अतः यहाँ निष्क्रान्तौ कहा गया है। (६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। (७) **प्रस्तावना**—यहाँ पर प्रस्तावना समाप्त होती है। प्रस्तावना का लक्षण है—(क) नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा। सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥ चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः। आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥ (सा० दर्पण ६.३२)। (ख) सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्। स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम्॥ (दशरूपक)। प्रस्तावना को ही 'आमुख' और 'स्थापना'

भी कहते हैं। ( ८ ) विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसको अवगलित-नामक प्रस्तावना माना है। उसका लक्षण है—यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत् प्रसाध्यते। प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावगलितं बुधैः ।। धनिक ने दशरूपक ( प्रकाश ३ ) में इसको प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना माना है। उसका कथन है—एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः। पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः ।। राघवभट्ट ने इसको प्रयोगातिशय प्रस्तावना ही माना है।

**विशेष**—इस विस्मरण के प्रसंग के द्वारा कवि यह संकेत करना चाहता है कि जिस प्रकार सूत्रधार संगीत में मग्न होने के कारण अपने कार्य और कथावस्तु को भूल जाता है, इसी प्रकार शकुन्तला दुष्यन्त के ध्यान में मग्न होने के कारण दुर्वासा ऋषि के आतिथ्यरूपी कार्य को भूल जाती है। इस भूल का दुष्परिणाम यह होता है कि उधर शापग्रस्त राजा शकुन्तला को भूल जाता है और उसका परित्याग करता है। इस नाटक में 'भूलना' महत्त्वपूर्ण घटना है। जिस प्रकार नटी स्मरण दिलाकर सूत्रधार को अपना कर्तव्य बताती है और सूत्रधार अपना कार्य प्रारम्भ करता है, उसी प्रकार अँगूठी राजा को शकुन्तला का स्मरण दिलाती है और अपने कर्तव्य को पूर्ण करने की प्रेरणा देती है। सूत्रधार के तुल्य ही राजा अपने कर्तव्य को पूर्ण करता है।

**(ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च)**

**१३. सूतः—(राजानं मृगं चावलोक्य) आयुष्मन्,**
**कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।**
**मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ।।६।।**

**अन्वय**—कृष्णसारे अधिज्यकार्मुके त्वयि च चक्षुः ददत् मृगानुसारिणं साक्षात् पिनाकिनम् पश्यामि इव।

**( तदनन्तर रथ पर बैठे हुए, मृग का पीछा करते हुए, बाण और धनुष हाथ में लिये हुए, राजा का सारथि के साथ प्रवेश )**

**सारथि**—( राजा और मृग को देखकर ) चिरंजीविन्,

मैं इस कृष्णसार (मृग) और धनुष चढ़ाए हुए आप पर दृष्टिपात करके मृग का पीछा करते हुए साक्षात् शिव को मानों देख रहा हूँ ।।६।।

**संस्कृत-व्याख्या**—कृष्णसारे—मृगविशेषे, अधिज्यकार्मुके—अधिज्यम् आरोपितगुणं कार्मुकं धनुः यस्य तस्मिन्, त्वयि—राजनि च, चक्षुः ददत्—दृष्टिपातं कुर्वन्, मृगानुसारिणम्—दक्षप्रजापतियज्ञं मृगरूपधरं वधार्थमनुगच्छन्तम्, साक्षात्—प्रत्यक्षम्, पिनाकिनम्—पिनाकनामकधनुर्धारिणं शिवम्, पश्यामि इव—अवलोकयामि इव। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारो विशेषालंकारश्च। न तूपमाऽलंकारः,

'नोपमानं तिङन्तेन' इति भामहोक्तेः। श्रुतिवृत्त्यनुप्रासौ। अनुष्टुप छन्दः। 'ततः प्रविशति०' इत्यारभ्य प्रथमाङ्कसमाप्ति यावत् मुखसन्धिः।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **मृगानुसारी**—मृगम् अनुसरतीति। मृग+अनु+सृ+णिनि ( इन् )। साधु अर्थ में णिनि। ( २ ) **सशर०**—शरेण सहितः सशरः। बहु०। सशरः चापः हस्तयोः यस्य सः। बहु०। ( ३ ) **रथेन**—सह अर्थ में तृतीया। सह शब्द के प्रयोग के बिना भी 'वृद्धो यूना०' ( पा० १-२-६५ ) निर्देश से तृतीया होती है। ( ४ ) **सूतः**—सुवति प्रेरयति अश्वान्। सू+क्त ( त )। ( ५ ) **आयुष्मन्**—आयुष्+मतुप् ( मत् )। ( ६ ) **कृष्णसारः**—कृष्णश्चासौ सारः शवलः, तस्मिन्। 'वर्णो वर्णेन' (पा० २-१-६९) से कर्मधारय समास। ( ७ ) **ददत्**—दा+शतृ (अत्)। 'नाभ्यस्ताच्छतुः' ( पा० ७-१-७८ ) से नुम् का अभाव। ( ८ ) **अधिज्य०**—अधिगतं ज्याम् अधिज्यम्। 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे०' वार्तिक से प्रादि-तत्पुरुष समास। अधिज्यं कार्मुकं यस्य, तस्मिन्। बहुव्रीहि। कार्मुक—कर्मणे प्रभवति। कर्मन्+उकञ् (उक) तद्धित प्रत्यय, कर्मण उकञ् (पा० ५-१-१०३) से। (९) **पिनाकी**—पिनाक+इनि (इन्)।

( १ ) नाटक में ५ अर्थप्रकृतियाँ, ५ कार्य की अवस्थाएँ और ५ सन्धियां होती हैं। उनके नाम ये हैं—(क) ५ अर्थप्रकृतियाँ—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। (ख) ५ कार्यावस्थाएँ—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। (ग) ५ सन्धियाँ—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण। 'ततः प्रविशति०' से लेकर प्रथम अंक की समाप्ति तक मुखसन्धि है। राघवभट्ट के अनुसार यहाँ से लेकर द्वितीय अंक में 'उभौ परिक्रम्योपविष्टौ' तक मुखसन्धि है। मुखसन्धि का लक्षण है—

**यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।**
**प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम्॥** (सा० दर्पण ६-७६)

आरम्भ का लक्षण है—भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये। (सा० दर्पण ६-७१)। राजा की उत्सुकता अंक १ वक्तव्य सं० ३१ 'भवतु तामेव पश्यामि' से प्रारम्भ होती है और शकुन्तला की उत्सुकता 'किं न खल्विमं प्रेक्ष्य' (अंक १ वक्तव्य सं० ८१) से प्रकट होती है। बीज का लक्षण है—

**अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति।**
**फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते॥** (सा० दर्पण ६-६५)

यहाँ पर बीज अंक १ के वक्तव्य २५ (पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि) और वक्तव्य ३० ( इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलां···सोमतीर्थं गतः ) हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर प्रेम इस नाटक का बीज है। उपर्युक्त वक्तव्य सं० २५ और ३० से उसका प्रारम्भ है। (२) **सूतः**—मनु का कथन है कि क्षत्रिय

द्वारा ब्राह्मण कन्या से उत्पन्न सन्तान सूत कहाती है। ये सारथि का काम करते हैं। 'क्षत्रियाद् विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। सूतानामश्वसारथ्यम्०'। मनु० १०–११, ४७। सूत संस्कृत में ही बोलता है। मातृगुप्ताचार्य का कथन है कि ये व्यक्ति संस्कृत में बोलते हैं—'संमतानां देवतानां राजन्यामात्यसैनिके। वणिङ्मागधसूतानां पाठ्यं योज्यं तु संस्कृतम्।' ( ३ ) **आयुष्मान्**—आयुः अस्यास्तीति। भरत का कथन है कि सूत रथी को आयुष्मान् कहे। 'आयुष्मन्निति वाच्यस्तु रथी सूतेन सर्वदा' ( नाट्यशास्त्र )। अतः सारथि ने राजा को आयुष्मन् कहा है। इसके दो कारण हो सकते हैं–(क) सारथि प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता था और बड़ी आयु का होता था। आयु में बड़ा होने के कारण राजा को आयुष्मन् कहता है। (ख) वह युद्धों में राजा के साथ जाता था। युद्ध में राजा विजयी हों और दीर्घायु हों। इस भाव का सूचक शब्द आयुष्मन् कहता था। ( ४ ) **कृष्णसारे**—चितकबरा मृग जिसपर काले धब्बे अधिक होते हैं। मृगों का एक भेद है। कृष्ण–काला, सार—चितकबरा। ( ५ ) **पिनाकिनम्**—यहाँ पर पौराणिक कथा का संकेत है। शिव के श्वशुर दक्ष प्रजापति ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसमें उन्होंने सभी देवताओं को आमन्त्रित किया, किन्तु अपने जामाता शिव को आमन्त्रित नहीं किया। उस यज्ञ में पार्वती विद्यमान थीं। उनके सामने ही दक्ष ने शिव के लिए अपमानजनक शब्द कहे। पति की निन्दा को सहन न कर सकने के कारण पार्वती ने वहीं योग से अपना शरीर-त्याग कर दिया। शिव यह समाचार पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने दक्ष का वध किया और अतिथियों को भगा दिया। यज्ञ मृग का रूप बना कर भागा। शिव अपना पिनाक धनुष लिए हुए उसके पीछे भागे और उसका वध किया। महाभारत (सौप्तिक पर्व १८) के अनुसार कथा का रूप है कि देवताओं ने यज्ञ किया और उसमें उन्होंने शिव का भाग नहीं निकाला। अतः क्रुद्ध शिव ने मृगरूपधारी यज्ञ का वध किया। वायुपुराण के अनुसार कथा है कि शिव ने स्वयं मृगरूपधारी यज्ञ का वध नहीं किया, अपितु उन्होंने वीरभद्र राक्षस को जन्म देकर यज्ञ के वधार्थ भेजा। ( देखो रघुवंश ११-१४ )। ( ६ ) इस श्लोक में उत्प्रेक्षा और विशेष अलंकार हैं। यहाँ पर प्रस्तुत राजा की अप्रस्तुत शिव से एकत्व की संभावना की गई है। उसका लक्षण है—'संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।' यहाँ पर उपमा अलंकार नहीं है। भामह का कथन है कि तिङन्त के साथ उपमा नहीं होती। उपमा में एक क्रिया होती है, यहाँ पर 'ददत् चक्षुः' और 'पश्यामि' दो क्रियाएँ हैं। उपमा मानने पर 'साक्षात्' शब्द व्यर्थ हो जायगा। यदि 'पिनाकिनमिव साक्षात् पश्यामि' ऐसा अन्वय कर लें, तो भी 'ददत् चक्षुः' के द्वारा पुनरुक्ति होगी। एक ही चक्षु के एक साथ दो स्थान पर होने से विशेषालंकार है। श्रुति और वृत्ति अनुप्रास भी हैं। यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

Funding by IKS-MoE

१४. **राजा**—सूत, दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः । अयं पुनरिदानीमपि—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।७।।

(सविस्मयम्) तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः ।

**अन्वय**—पश्य, अनुपतति स्यन्दने मुहुः ग्रीवाभङ्गाभिरामं दत्तदृष्टिः, शरपतनभयाद् भूयसा पश्चार्धेन पूर्वकायं प्रविष्टः, श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः अर्धावलीढैः दर्भैः कीर्णवर्त्मा, उदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरम् उर्व्यां स्तोकं प्रयाति ।

**राजा**—सारथि, यह मृग हम लोगों को बहुत दूर ले आया।

देखो, यह अब भी पीछा करते हुए (हमारे) रथ पर बार-बार गर्दन मोड़कर मनोहर दृष्टिपात करता हुआ, बाण लगने के भय से अपने अधिकांश पिछले भाग (पीठ) को पूर्वभाग (ग्रीवा) की ओर समेटे हुए, परिश्रम के कारण खुले हुए मुंह से गिरते हुए अर्ध-चर्वित कुशों से मार्ग को व्याप्त करता हुआ, ऊंची कूद के कारण आकाश में अधिक और पृथ्वी पर कम चल रहा है ।।७।।

(आश्चर्य से) तो क्या कारण है कि पीछा करते हुए मुझको यह कठिनाई से दृष्टिगोचर होने लगा है।

**संस्कृत-व्याख्या**—पश्य—अवलोकय, अयं—मृगः, पुनः, इदानीमपि—अधुनाऽपि, अनुपतति—पश्चादागच्छति, स्यन्दने—रथे, मुहुः—वारंवारम्, ग्रीवाभंगाभिरामम्—ग्रीवायाः कन्धरायाः भङ्गेन परावर्तनेन अभिरामं मनोहरं यथा स्यात्तथा, दत्तदृष्टिः—न्यस्तचक्षुः, शरपतनभयाद्—शरस्य वाणस्य पतनभयाद् स्वशरीरे पातशंकया, भूयसा—बहुतरेण, पश्चार्धेन—शरीरस्योत्तरार्धभागेन, पूर्वकायम्—शरीरस्य पूर्वभागम्, प्रविष्टः—प्रवेशं प्राप्तः, श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः—श्रमेण धावनपरिश्रमेण विवृतम् उद्घाटितं यत् मुखम् आननं तस्माद् भ्रंशिभिः पतद्भिः, अर्धावलीढैः—अर्धचर्वितैः, दर्भैः—कुशैः, कीर्णवर्त्मा—व्याप्तमार्गः, उदग्रप्लुतत्वात्—उन्नतप्लवनात्, वियति—आकाशे,

---

पाठभेद—१४. नि० बद्धदृष्टिः (टकटकी लगाए हुए) । नि० सविस्मयम् इति नास्ति ।

बहुतरम्—अधिकम्, उर्व्यां—पृथिव्याम्, स्तोकम्—न्यूनम्, प्रयाति—गच्छति। अत्र रसनाकाव्यलिङ्गं स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। स्रग्धरा छन्दः।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **ग्रीवा०**—ग्रीवायाः भङ्गेन अभिरामम्। तत्पुरुष। अभिराम—अभि+रम्+घञ् (अ)। (२) **अनुपतति**—अनु+पत्+शतृ (अत्)+सप्तमी एक०। (३) **स्यन्दने**—स्यन्द्+ल्युट् (अन)। (४) **दत्तदृष्टिः**—दत्ता दृष्टिः येन। बहुव्रीहि। दत्त—दा+क्त (त)। दृष्टि—दृश्+क्तिन् (ति)। (५) **पश्चार्धेन**—अपरः चासौ अर्धः पश्चार्धः। 'अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः' वार्तिक से अपर को पश्च आदेश। कर्मधारय। (६) **प्रविष्टः**—प्र+विश्+क्त (त)। (७) **शर०**—शरस्य पतनभयात्। तत्पुरुष। हेतु अर्थ में 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' (२-३-२५) सूत्र से पंचमी। (८) **भूयसा**—बहु+ईयस्+तृतीया एक०। बहु को भू आदेश और ईयस् के ई का लोप 'वहोर्लोपो भू च वहोः' (६-४-१५८) सूत्र से। (९) **पूर्वकायम्**—पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। पूर्वापर० (२-२-१) सूत्र से एकदेशि-समास। यह तत्पुरुष समास का एक भेद है। (१०) **अर्धावलीढैः**—अर्धम् अवलीढैः। तत्पुरुष। अवलीढ—अव+लिह्+क्त (त)। (११) **श्रमविवृत०**—श्रमेण विवृतात् मुखात् भ्रंशिभिः। तत्पुरुष। श्रम०+भ्रंश्+णिनि। (१२) **कीर्णवर्त्मा**—कीर्णं वर्त्म यस्य सः। बहुव्रीहि। कीर्ण—कॄ+क्त (त)। (१३) **उदग्र०**—उदग्रं प्लुतं यस्य सः उदग्रप्लुतः, तस्य भावः तस्मात्। (१४) **प्रयत्न०**—प्रयत्नेन प्रेक्षणीयः।

(१) **दत्तदृष्टिः**—कुछ संस्करणों में इसके स्थान पर 'बद्धदृष्टिः' पाठ है अर्थात् रथ पर दृष्टि बाँधे हुए या लगाए हुए। यह पाठ त्याज्य है, क्योंकि मुहुः (बारबार) शब्द से इसका विरोध पड़ता है। दृष्टि बाँधकर देखने वाला बार-बार नहीं देखता। दूसरा कारण यह है कि भयभीत होकर भागने वाला मृग पीछे आते हुए रथ पर टकटकी लगाकर नहीं देख सकता है। (२) **पश्चार्धेन**—मृग बाण लगने के डर से अपने पिछले भाग को आगे की ओर समेटे हुए था। अतः कवि का कथन है कि पश्चार्ध को पूर्वभाग में मानो प्रविष्ट किए हुए है। यहाँ पर उत्प्रेक्षासूचक 'इव' आदि शब्द के अभाव के कारण गूढोत्प्रेक्षा अलंकार है। उसका लक्षण है—इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षां प्रचक्षते। पश्चार्धेन में अभेद करण में तृतीया है। मृग और मृग का पश्चार्ध अभिन्न हैं। (३) **दर्भैः कीर्णवर्त्मा**—यहाँ पर कीर्णवर्त्मा (कीर्णं वर्त्म यस्य सः) में समास नहीं होना चाहिए, क्योंकि इसमें 'दर्भैः' का अर्थ छट गया है, अतः अर्थ अपूर्ण रहता है। यहाँ पर 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस नियम से समास हो गया है, क्योंकि सापेक्ष होने पर भी दर्भं का अर्थ सरलता से प्राप्त हो जाता है। (४) **पश्य**—इसके द्वारा राजा संकेत करता है कि इतना थकने पर भी मृग पूरे वेग से

दौड़ रहा है। (५) **उदग्र०**—बहुत ऊँची और लम्बी छलांग मार रहा है, अत वह पृथ्वी पर बहुत कम चल रहा है, अधिकांश में आकाश में ही चल रहा है। ( ६ ) काव्यप्रकाशकार ने इस श्लोक को भयानक रस का उदाहरण उद्धृ किया है। ( ७ ) इस श्लोक में गूढोत्प्रेक्षा के अतिरिक्त रसनाकाव्यलिङ्ग औ स्वभावोक्ति अलंकार हैं। उनके लक्षण हैं—( क ) प्रत्युत्तरोत्तरार्थं यत् पूर्व· पूर्वार्थहेतुता। रसनाकाव्यलिङ्गं तत्॥ (ख) स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रिया· रूपवर्णनम्। ( साहित्यदर्पण १०-९२ )। ( ८ ) इस श्लोक में स्रग्धरा छन है। उसका लक्षण है—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

**१५. सूतः—आयुष्मन्, उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मि· संयमनाद् रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। सम्प्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति।**

**सारथि—आयुष्मन्! भूमि ऊँची-नीची थी, अतः मैंने लगाम खींचकर रथ का वेग मन्द कर दिया था। अतएव यह मृग अतिदूरवर्ती हो गया है। अब आप समतल भूमि पर हैं, आपके लिए यह दुर्लभ नहीं होगा।**

**१६. राजा—तेन हि मुच्यन्तामभीषवः।**

**राजा—तो लगाम ढीली कर दो।**

### टिप्पणी

( १ ) **उद्घातिनी**—ऊँची नीची, ऊबड़-खाबड़। 'उद्घातः कथ्यते पादस्खलने समुपक्रमे' इति विश्वः। उद्घातिनी शब्द दो प्रकार से बन सकता है—( क ) उद्घाताः सन्त्यस्याम्, उद्घात+मत्वर्थक इनि। ( ख ) उत् ऊर्ध्वं हन्तुं शीलमस्याः सा। उत्+हन्+णिनि+ङीप्। सारथि का कथन है कि यहाँ पर भूमि ऊँची-नीची थी। घोड़े ठोकर खाकर गिर सकते थे, अतः मैंने लगाम खींचकर रथ का वेग कम कर दिया था। ( २ ) **रश्मि०**—रश्मीनां संयमनात्। षष्ठी तत्पुरुष। ( ३) **मन्दीकृतः**—अमन्दः मन्दः कृतः इति मन्दीकृतः। यहाँ पर च्वि प्रत्यय हुआ है, अतः मन्द के अ को ई हुआ है। ( ४) **विप्रकृष्टा०**—विप्रकृष्टम् अन्तरं यस्य सः। बहुव्रीहि। ( ५ ) **समदेश०**—समे देशे वर्तते इति समदेशवर्ती, तस्य। समदेश+वृत्+णिनि। साधु अर्थ में णिनि। सारथि का कथन है कि अब आप समतल भूमि पर हैं, अतः अब मृग को पकड़ना कठिन नहीं होगा। यहाँ पर 'समदेशवर्ती न ते' यह पाठ उचित नहीं है। उसका अर्थ होगा कि अब मृग समतल भूमि पर जा रहा है, उसको पकड़ना कठिन नहीं होगा। इस अर्थ में मृग समतल भूमि पर है, न कि राजा। समदेशवर्ती

---

**पाठभेद—१५. नि० संवृत्तः, इति नास्ति।**

को राजा का विशेषण मानना संभव नहीं है, उस अवस्था में 'ते' का विशेषण होने से यहाँ षष्ठी होनी चाहिए। (६) ते—इसमें शेष में षष्ठी है। यहाँ पर कर्ता में षष्ठी नहीं हो सकती—'न लोकाव्यय०' (पा० २—३—६९) इस सूत्र से खल् प्रत्ययान्त के साथ कर्ता में षष्ठी नहीं हो सकती। (७) **दुरासदः**— दुःखेन आसाद्यते इति। दुर्+आ+सद्+खल् (अ)। (८) **अभीषवः**— लगाम। 'अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ' इत्यमरः। अभीषु और रश्मि इन दोनों शब्दों के दो अर्थ हैं—लगाम और किरण। अभीषु को अभीशु भी लिखा जाता है।

**१७. सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, पश्य पश्य—**

**मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया**
**निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।**
**आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया**
**धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ।।८।।**

**अन्वय**—रश्मिषु मुक्तेषु अमी रथ्याः मृगजवाक्षमया इव निरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः (सन्तः) धावन्ति।

**सारथि—जो आपकी आज्ञा। (रथ के वेग का अभिनय करके) आयुष्मन्, देखिए, देखिए—**

**लगाम ढीली करने पर ये घोड़े मानो मृग के वेग को न सहन करने के कारण अपने शरीर के अग्र-भाग को फैलाए हुए, (शिर पर विद्यमान) चमर (कलँगी) के निश्चल अग्रभाग से युक्त, निश्चेष्ट कानों को ऊपर की ओर उठाए हुए, स्वयं (अपने पैरों से) उठाई हुई धूल से भी अलंघनीय होकर दौड़ रहे हैं ।।८।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—रश्मिषु—प्रग्रहेषु, मुक्तेषु—शिथिलीकृतेषु, अमी रथ्याः—एतेऽश्वाः, मृगजवाक्षमया इव—हरिणवेगासहिष्णुतया इव, निरायतपूर्वकायाः—नितराम् आयतः विस्तृतः पूर्वकायः शरीराग्रभागः येषां ते तादृशाः सुविस्तृतशरीराग्रभागाः, निष्कम्पचामरशिखाः—निष्कम्पाः निश्चलाः चामराणां चमरमृगपुच्छनिर्मितशिरोभूषणानां शिखाः अग्रभागाः येषां तादृशाः, आत्मोद्धतैः—आत्मना स्वयम् उद्धतैः उत्थापितैः अपि, रजोभिः—धूलिभिः, अलङ्घनीयाः—अनतिक्रमणीयाः सन्तः, धावन्ति—वेगेन गच्छन्ति। अस्मिन् श्लोके स्वभावोक्तिः उत्प्रेक्षा वृत्त्यनुप्रासश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

Funding by IKS-MoE

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **मुक्तेषु**—मुच्+क्त ( त )। ( २ ) **निरायत०**—नितराम् आयतः पूर्वकायः येषां ते। बहुव्रीहि। निरायत—निर्+आ+यम्+क्त। (३) **निष्कम्प०**—निष्कम्पाः चामराणां शिखाः येषां ते। बहुव्रीहि। चामर—चमर+अण्। स्वार्थ में अण्, 'प्रज्ञादिभ्यश्च' ( ५.४.३८ ) से। ( ४ ) **निभृतोर्ध्व०**—निभृतौ ऊर्ध्वौ कर्णौ येषां ते। बहुव्रीहि। निभृत—नि+भृ+क्त। ( ५ ) **आत्मोद्धतैः**—आत्मना उद्धतैः। तत्पुरुष। उद्धत—उत्+हन्+क्त। ( ६ ) **मृगजवा०**—मृगस्य जवे अक्षमा, तया। तत्पुरुष। ( ७ ) **रथ्याः**—रथं वहतीति रथ्यः। रथ+यत्। 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' (४.४.७६) से यत्।

( १ ) **निरूप्य**—का अर्थ है नाटच करके या अभिनय द्वारा प्रदर्शित करके। यहाँ पर इसका अर्थ 'देखकर' नहीं है। नि+रूप्+णिच्+ल्यप्। इसी धातु से रूपक (नाटक) शब्द बनता है। आगे भी इस प्रकार के प्रयोग आए हैं। जैसे-भ्रमरबाधां रूपयति, शृंगारलज्जां रूपयति। ( २ ) **निरायत०**—निरायत० आदि चार विशेषण घोड़ों की तीव्र गति का संकेत करते हैं। घोड़े बहुत तीव्रता से दौड़ रहे हैं, अतः उनके शरीर का अगला भाग फैलकर लम्बा हो रहा है। ( ३ ) **निष्कम्पचामर०**—'चामर' चमरनामक हरिण की पूँछ के सफेद बालों से बनता है और मक्खियाँ आदि उड़ाने के काम में आता है। यह राजचिह्नों में एक है। यह घोड़ों के सिर पर कलँगी के रूप में भी लगाया जाता था। उसी का यहाँ पर वर्णन है। घोड़ों की तीव्र गति के कारण कलँगी निश्चल सी हो रही थी। ( ४ ) **निभृत०**—घोड़ों के कान भी निश्चल थे और वे अपने कानों को ऊपर उठाए हुए थे। निभृत के अर्थ हैं—शान्त, निर्जन, निश्चेष्ट, विनीत। मोनियर विलियम ने निभृत का अर्थ किया है—पीछे की ओर मुड़े हुए। यह अर्थ अशुद्ध है। श्लोक में आये हुए निष्कम्प शब्द से भी निभृत का निश्चेष्ट अर्थ पुष्ट होता है। मोनियर विलियम का अर्थ मानने पर इस पद के ऊर्ध्व शब्द के साथ संगति नहीं बैठती है। (५) **रजोभिः०**—घोड़े इतने वेग से जा रहे थे कि उनके पैरों से उठी हुई धूल उनके शरीर पर नहीं आने पाती थी। जब तक धूल ऊपर उठती थी तब तक वे आगे निकल जाते थे। भास ने प्रतिमानाटक ( ३.२ ) में इसी प्रकार का वर्णन किया है—रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति। शिशुपालवध ( १२.१६ ) में भी ऐसा ही वर्णन है। ( ६ ) **रथ्याः**—घोड़े, क्योंकि वे रथ को ढोते हैं। आकारान्त रथ्या का अर्थ है—मार्ग, रास्ता। ( ७ ) इस श्लोक में स्वभावोक्ति, हेतूत्प्रेक्षा और वृत्त्यनुप्रास अलंकार हैं। प्रथम तीन पंक्तियों में स्वभावोक्ति है। अन्तिम पद में हेतूत्प्रेक्षा है। वसन्ततिलका छन्द है। उसका लक्षण है—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

**१८. राजा—सत्यम्। अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि—**

**यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां**
**यदर्द्धा विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत् ।**
**प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-**
**र्न मे दूरे किंचित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ।।९।।**
**सूत, पश्यैनं व्यापाद्यमानम् । (इति शरसन्धानं नाटयति)**

**अन्वय**—रथजवात् यत् आलोके सूक्ष्मं तत् सहसा विपुलतां व्रजति, यत् अद्धा विच्छिन्नं तत् कृतसन्धानमिव भवति, यत् प्रकृत्या वक्रं तत् अपि नयनयोः समरेखम्, क्षणम् अपि किंचित् न मे दूरे न पार्श्वे ( अस्ति ) ।

**राजा—सच है। मेरे ये घोड़े सूर्य और इन्द्र के घोड़ों को भी (वेग में) अतिक्रमण कर रहे हैं। क्योंकि—**

**रथ के वेग के कारण जो वस्तु छोटी सी दिखाई पड़ती थी, वह सहसा विशाल हो जाती है। जो वस्तु (वृक्षादि) वस्तुतः विभक्त (टूटी हुई) है, वह जुड़ी हुई सी हो जाती है। जो (मार्ग) वस्तुतः टेढ़ा है, वह भी आँखों के लिए सीधा-सा हो जाता है। क्षण भर के लिए भी कोई वस्तु न मुझसे दूर है और न मेरे पास है।। ९।।**

**सारथि, इस मारे जाते हुए मृग को देखो। (बाण चढ़ाने का नाट्य करता है।)**

**संस्कृत-व्याख्या**—रथजवात्—रथवेगात्, यत्—यद् वस्तु, आलोके—दर्शने, सूक्ष्मम्—क्षुद्रतरं दृश्यते, तत्—तदेव वस्तु, सहसा—तत्क्षणमेव, विपुलताम्—स्थूलताम्, व्रजति—प्राप्नोति। यत्—यद्वस्तु, अद्धा—वस्तुतः, विच्छिन्नम्—विभक्तमस्ति, तत्—तद्वस्तु, कृतसन्धानमिव—संमिलितमिव, अविभक्त-मिवेत्यर्थः, भवति—संजायते। यत्—यद्वस्तु, प्रकृत्या—स्वभावेन, वक्रम्—कुटिलमस्ति, तदपि—तदपि वस्तु, नयनयोः—नेत्रयोः, समरेखम्—समा अकुटिला रेखा पंक्तिः यस्य तत्, अकुटिलमिव प्रतीयते इत्यर्थः। क्षणमपि—क्षणमात्रमपि, किंचिद्—किंचिद् वस्तु, न मे दूरे—न मत्तो दूरे तिष्ठति, न पार्श्वे—न च मम समीपे अस्ति। अत्र स्वभावोक्तिर्विरोधाभास उत्प्रेक्षा यथासंख्यं चार्थालंकाराः। छेकानुप्रासो वृत्त्यनुप्रासः श्रुत्यनुप्रासश्चेति शब्दालंकाराः। शिखरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) अतीत्य—अति+इ+ल्यप्। 'ह्रस्वस्य पिति कृति

---

पाठभेद—१८. नि० का०—यदर्धे ( जो बीच में ही )

तुक्' ( ६-१-७१ ) से तुक् ( त् ) । ( २ ) **वाजी**—वाजो वेगो बलं वाऽस्यास्तीति । वाज+इनि ( इन् ) । ( ३ ) **विच्छिन्नम्**—वि+छिद्+क्त । 'रदाभ्यां निष्ठातः०' से त को न । ( ४ ) कृत०—कृतं सन्धानं यस्य तत् । बहुव्रीहि । ( ५ ) **प्रकृत्या**—'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया । ( ६ ) **समरेखम्**—समा रेखा यस्य यत् । बहुव्रीहि । ( ७ ) मे—'दूरान्तिकार्थैः षष्ठी०' (२-३-३४) से षष्ठी । (८) **रथजवात्**—रथस्य जवः तस्मात् । तत्पुरुष । हेतु अर्थ में पंचमी (२-३-२५) । ( ९ ) **व्यापाद्यमानम्**—वि+आ+पद्+णिच्+शानच् ।

( १ ) **हरितः हरींश्च**—हरित् शब्द का अर्थ है सूर्य के घोड़े और हरि शब्द का अर्थ है इन्द्र के घोड़े । निरुक्त ( १-१५ ) में कहा है—( हरी इन्द्रस्य हरित आदित्यस्य ), अतएव सूर्य को हरिदश्व और इन्द्र को हरिहय कहा जाता है। ऋग्वेद ( १-१६-११; १-१०१-१० आदि ) में 'हरयः' इन्द्र के घोड़ों के लिए और ऋग्वेद ( १-५०-८; १-११५-४ ) में 'हरितः' सूर्य के घोड़ों के लिए आया है । अतएव सायण ने वहाँ हरितः का अर्थ 'सूर्यरश्मयः' किया है । ( २ ) **तथाहि**—पूर्वोक्त वक्तव्य के समर्थक कारणों का निर्देश करता है । ( ३ ) **यदालोके०**—यह श्लोक स्वभावोक्ति अलंकार का उदाहरण है । श्लोक में रथ की विशेष तीव्रता का स्वाभाविक वर्णन है । वायुयान या रेल द्वारा यात्रा करने वालों को इस प्रकार का अनुभव प्रत्यक्ष है । श्लोक में चार तथ्यों का वर्णन है—( क ) जो वृक्ष आदि वस्तुएँ दूर होने के कारण बहुत छोटी दिखाई देती थीं, वे शीघ्र ही रथ के समीप पहुँचने के कारण विशाल दिखाई देने लगती हैं । ( ख ) नदी या वृक्ष आदि जो वस्तुतः खण्डित हैं, वे दूर पहुँचने पर जुड़े हुए (अखण्डित) दिखाई देते हैं । ( ग ) जो मार्ग आदि वस्तुतः मुड़े होने के कारण टेढ़े हैं, वे भी रथ के समीप पहुँचने पर सीधे दिखाई देते हैं । ( घ ) रथ के वेग के कारण दूर-स्थित वस्तुएँ सहसा पास आ जाती हैं और समीप वाली वस्तुएँ दूर हो जाती हैं । अतः कोई भी वस्तु न दूर है और न पास है । ( ४ ) यदद्धा के स्थान पर पाठभेद 'यदर्धं' अनुचित है । अद्धा-शब्द को अस्पष्टार्थक समझकर ऐसा किया गया प्रतीत होता है । ( ५ ) इस श्लोक में चारों पादों में स्वभावोक्ति अलंकार है । प्रथम पाद में विरोधाभास अलंकार है, जो सूक्ष्म है वह विशाल हो जाता है। दूसरे और तीसरे पाद में उत्प्रेक्षा अलंकार है । दूसरे पाद में इव का प्रयोग होने से वाच्योत्प्रेक्षा है और तीसरे पाद में 'इव' का प्रयोग न होने से गम्योत्प्रेक्षा है। चतुर्थ पाद में यथासंख्य अलंकार है, क्योंकि प्रथम पाद में दूरस्थ का समीप आना वर्णित है और द्वितीय पाद में समीपस्थ का दूर होना, तदनुसार ही यहाँ न दूरे न पार्श्वे है । ( ६ ) श्लोक में शिखरिणी छन्द है । उसका लक्षण है—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

(नेपथ्ये)

**१९. भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।**

( नेपथ्य में )

हे राजन्, यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिए, न मारिए।

**२०. सूतः—(आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपथवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः ।**

सारथि—(सुनकर और देखकर) आयुष्मन्, बाण की पहुँच के अन्दर विद्यमान इस मृग के और आपके मध्य में तपस्वी उपस्थित हो गए हैं ।

**२१. राजा—(ससंभ्रमम्) तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः ।**

राजा—(घबड़ाहट के साथ) तो घोड़ों की लगाम रोको।

**२२. सूतः—तथा । (इति रथं स्थापयति)**

सारथि—अच्छी बात है। (रथ को रोकता है।)

### टिप्पणी

( १ ) **नेपथ्ये**—पर्दे के पीछे से जो बात कही जाती है, उसे 'नेपथ्य में' कहते हैं। यहाँ पर प्रासंगिक अर्थ की सूचना के कारण अन्तरसन्धि है। मातृगुप्ताचार्य का कथन है—'स्वप्नो दूतश्च लेखश्च नेपथ्योक्तिस्तथैव च। आकाशवचनं चेति ज्ञेया ह्यन्तरसन्धयः' ॥ ( २ ) **राजन्**—भरत का कथन है कि ऋषि राजा को राजन् कहें। 'राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः'। ( ३ ) **बाणपथः**—बाणस्य पन्थाः बाणपथः। 'ऋक्पूरब्धूः०' ( ५.४.७४ ) से समासान्त अ प्रत्यय। तस्मिन् वर्तते इति बाणपथवर्ती, तस्य। ( ४ ) **प्रगृह्यन्ताम्**—प्रग्रह अर्थात् लगाम को खींचकर रोको। राजा को घबड़ाहट इसलिए हुई कि कहीं घोड़ों से तपस्वियों को चोट न लग जावे।

**(ततः प्रविशत्यात्मनातृतीयो वैखानसः)**

**२३. वैखानसः—(हस्तमुद्यम्य) राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।**

**न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्**
**मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः ।**

---

पाठभेद—२०. नि० का० बाणपातवर्तिनः (बाण की पहुँच के अन्दर वर्तमान)

पाठभेद—२३. नि० न खलु० अयं श्लोको नास्ति ।

**क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं**
**क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥१०॥**
**तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् ।**
**आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥११॥**

**अन्वय**—अस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशौ अग्निरिव अयं बाणः न खलु न खलु संनिपात्यः। बत हरिणकानाम् अतिलोलं जीवितं च क्व, निशितनिपाताः वज्रसाराः ते शराः च क्व?

**(तदनन्तर दो शिष्यों के साथ तपस्वी का प्रवेश) तपस्वी—(हाथ उठाकर) राजन्, यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिए, न मारिए। इस सुकुमार मृग के शरीर पर पुष्पराशि पर अग्नि के तुल्य यह बाण न चलाइए, न चलाइए। खेद की बात है कि कहाँ तुच्छ हिरणों का अतिचंचल जीवन और कहाँ तीक्ष्ण प्रहार करने वाले वज्र के तुल्य कठोर आपके बाण? ॥१०॥**

**अन्वय**—तत् साधुकृतसन्धानं सायकं प्रतिसंहर। वः शस्त्रम् आर्तत्राणाय, अनागसि प्रहर्तुं न।

**अतएव अच्छे प्रकार से धनुष पर चढ़ाए हुए अपने बाण को उतार लीजिए। आपका शस्त्र दुःखितों की रक्षा के लिए है, निरपराधों पर प्रहार के लिए नहीं ॥११॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अस्मिन्—एतस्मिन्, मृदुनि—सुकोमले, मृगशरीरे—हरिणकाये, पुष्पराशौ—कुसुमसमूहे, अग्निरिव—वह्निरिव, अयं बाणः—एष शरः, न खलु न खलु—नैव नैव, संनिपात्यः—मोक्तव्यः। बत—खेदे। हरिणकानाम्—दयनीयमृगाणाम्, अतिलोलम्—अतिचञ्चलम्, जीवितं च क्व—जीवनं च कुत्रास्ति। निशितनिपाताः—तीक्ष्णप्रहाराः, वज्रसाराः—वज्रतुल्यकठोराः, ते—तव, शराः च—बाणाश्च, क्व—कुत्र। मृगाः पुष्पराशिवत् सुकुमारा दयनीयाश्च सन्ति, तव बाणाः वह्नितुल्या वज्रवत् कठोराश्च सन्ति, अतस्ते मृगे न मोक्तव्या इत्यर्थः। द्वौ क्वशब्दौ महद्वैषम्यं सूचयतः। अत्रार्थान्तरन्यास उपमा विषमश्चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

तदिति। तत्—तस्मात् कारणात्, साधुकृतसन्धानम्—साधु सम्यक्तया कृतं विहितं सन्धानं धनुष्यारोपणं यस्य तम्, सम्यक्तया धनुष्यारोपितम्, सायकं—बाणम्, प्रतिसंहर—प्रत्यावर्तय, तूणीरं प्रापयेत्यर्थः। वः—युष्माकं पुरुवंशिनां राज्ञाम्, शस्त्रम्—शरादिकम्, आर्तत्राणाय—दुःखितानां रक्षणाय

भवति। अनागसि—निरपराधे, प्रहर्तुम्—प्रहारं कर्तुम्, न—न भवति। अत्र काव्यलिङ्गमर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ छेकश्रुत्यनुप्रासौ च। अनुष्टुप् छन्दः।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **आत्मनातृतीयः**—'आत्मनश्च' (६-३-६) 'पूरण इति वक्तव्यम्' (वार्तिक) से तृतीया का अलुक्। (२) **उद्यम्य**—उत्+यम्+ल्यप्। (३) **आश्रममृगः**—आश्रमस्य मृगः। तत्पुरुष। (४) **सन्निपात्यः**—सम्+नि+पत्+णिच्+यत् (य)। (५) **मृगशरीरे**—मृगस्य शरीरे। तत्पुरुष। (६) **पुष्पराशौ**—पुष्पाणां राशौ। तत्पुरुष। (७) **हरिणकानाम्**—अनुकम्पनीयाः हरिणाः हरिणकाः। अनुकम्पा अर्थ में क प्रत्यय। (८) **निशितनिपाताः**—निशिताः निपाताः येषां ते। बहुव्रीहि। निशित—नि+शो+क्त। निपात—नि+पत्+घञ्। (९) **वज्रसाराः**—वज्रवत् सारो येषां ते। बहुव्रीहि। (१०) **साधुकृतसन्धानम्**—साधु कृतं सन्धानं यस्य तम्। बहुव्रीहि। (११) **सायकम्**—स्यतीति सायकः। सो+ण्वुल् (अक)। (१२) **आर्तत्राणाय**—आर्तानां त्राणाय। तत्पुरुष। आर्त—आ+ऋ+क्त। त्राण—त्रै+ल्युट् (अन)। (१३) **शस्त्रम्**—शस्+ष्ट्रन् ( त्र )। (१४) **अनागसि**—अविद्यमानम् आगः यस्य यस्मिन् वा अनागाः, तस्मिन्। बहुव्रीहि।

(१) **आत्मनातृतीयः**—स्वयं तीसरा अर्थात् दो अन्य और तीसरा स्वयं वह। (२) **वैखानसः**—वानप्रस्थ। 'वैखानसो वनेवासी वानप्रस्थश्च तापसः' इति वैजयन्ती। विखनस् मुनि-प्रोक्त-मार्गानुयायी होने से इन्हें वैखानस कहते हैं या ब्रह्म का दूसरा नाम विखनस् है, उसका भक्त होने के कारण ये वैखानस कहाते हैं। विखनसः इमे वैखानसाः। (३) **पुष्पराशौ**—के स्थान पर 'तूलराशौ' पाठ भी कई संस्करणों में है। अर्थ की दृष्टि से यह पाठ अधिक अच्छा प्रतीत होता है, क्योंकि आग रूई को शीघ्र जला देती है, परन्तु कालिदास जहाँ पर सुकुमारता, दयनीयता और सुन्दरता आदि का वर्णन करना चाहते हैं, वहाँ पर पुष्प से उसकी तुलना करते हैं। देखो—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति, शाकुन्तल अंक ४; यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं० (कुमारसंभव ५—५२)। तूलराशि कहने से मृग की सुकुमारता, दयनीयता, अवध्यता आदि का भाव स्पष्ट नहीं होता है। मृग पुष्पराशि के तुल्य सुकुमार, दयनीय और दर्शनीय है। उसका वध ऐसा ही घृणित है, जैसे फूलों को जलाना। (४) **निशितनिपाताः**—तीक्ष्ण चोट करने वाले। निपात का अग्रभाग अर्थ लेने पर अर्थ होगा—जिनके अग्रभाग तीक्ष्ण हैं। (५) **वज्रसाराः**—राजा को इन्द्र के तुल्य बलवान् मानकर उसके अस्त्र को वज्र-तुल्य कहा गया है। (६) **क्व···क्व**—दो क्व के द्वारा दोनों कार्यों के महान् अन्तर को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार के अन्य प्रयोगों के लिए देखो—(रघु० १—२, मेघदूत १—५, रत्नावली १ इत्यादि)। (७) इस श्लोक में अन्तिम दो चरणों के द्वारा प्रथम दो चरणों के विशेष अर्थ का समर्थन

करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। द्वितीय चरण में रूपक अलंकार है और चतुर्थ चरण में 'वज्रसाराः' में लुप्तोपमा है। दो क्व के द्वारा अतिविरुद्ध कार्यों के संघटन के कारण विषम अलंकार है। ( ८ ) इस श्लोक में मालिनी छन्द है। उसका लक्षण है—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। ( ९ ) साधु०—अच्छे प्रकार से धनुष पर रखे हुए। साधु को पृथक् करके क्रियाविशेषण मानने पर अर्थ होगा—बाण को अच्छे प्रकार से उतार लो। (१०) **आर्तत्राणाय**—तुमुन् के अर्थ में चतुर्थी। (११) वः—पुरुवंशी राजाओं की ओर संकेत करने के लिए यहाँ पर बहुवचन (वः—युष्माकम् ) का प्रयोग किया गया है। (१२) इस श्लोक में उत्तरार्ध पूर्वार्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। समर्थ्य-समर्थक-भाव के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

**२४. राजा—एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति।)**

राजा—यह उतार लिया। (कथनानुसार करता है।)

**२५. वैखानसः—सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः।**
**जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।**
**पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ॥१२॥**

**अन्वय**—यस्य पुरोः वंशे जन्म, तव इदं युक्तरूपम्। एवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनं पुत्रम् आप्नुहि।

**तपस्वी—पुरुवंश के प्रदीप आपके यह अनुकूल ही है।**

**पुरु के वंश में उत्पन्न आपके लिए यह अत्यन्त उचित है। ऐसे ही गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करें ॥१२॥**

**२६. इतरौ—(बाहूउद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि।**

**अन्य दोनों (तपस्वी)—(हाथ उठाकर) चक्रवर्ती पुत्र को अवश्य प्राप्त करें।**

**२७. राजा—(सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्।**

**राजा—(प्रणाम करते हुए) स्वीकार है।**

**संस्कृत-व्याख्या**—यस्य—यस्य भवतः, पुरोः—पुरुनृपस्य, वंशे—कुले, जन्म-उत्पत्तिः, तव—तस्य तव, इदम्—मुनिवचनपालनम्, युक्तरूपम्—अतिशयेन योग्यमस्ति। एवंगुणोपेतम्—एतादृशैर्गुणैर्युक्तम्, चक्रवर्तिनम्—सार्वभौमम्, पुत्रम्—सुतम्, आप्नुहि—लभस्व। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। अनुष्टुप् छन्दः।

---

**पाठभेद**—२७. का० प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम् (**ब्राह्मण का कथन स्वीकार है**)।

Funding by IKS-MoE

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **पुरुवंश०**—पुरोः वंशस्य प्रदीपः, तस्य। तत्पुरुष। ( २ ) **युक्तरूपम्**—अतिशयेन युक्तं युक्तरूपम्। प्रशंसा अर्थ में 'प्रशंसायां रूपप्', ( ५—३—६६ ) से रूपप् (रूप) प्रत्यय। ( ३ ) **पुत्रः**—पुत्+त्रै ( त्रा )+क ( अ )। ( ४ ) **एवंगुणो०**—एवं गुणाः एवंगुणाः ( कर्मधारय ), एवंगुणैः उपेतम्। तत्पुरुष ( ५ ) **चक्रवर्तिनम्**—चक्रे भूचक्रे वर्तितुं शीलमस्य तम्। चक्र+वृत्+णिनि। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। अथवा चक्रं भूचक्रं वर्तयति इति चक्रवर्ती।

( १ ) **एषः**—यहाँ पर एषः तुरन्त का अर्थ प्रकट करता है। इस वाक्य से राजा का तपस्वियों के प्रति अत्यधिक आदर का भाव भी प्रकट होता है। ( २ ) **पुरुवंश**—पुरुवंश की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन यह है—प्राचीन समय में भारतवर्ष में राजाओं के दो वंश थे—सूर्यवंश और चन्द्रवंश। विवस्वान् ( सूर्य ) के पुत्र इक्ष्वाकु सूर्यवंश के संस्थापक थे। इस वंश में ककुत्स्थ, दिलीप, रघु, राम आदि राजा हुए हैं। कालिदास ने इनका वर्णन रघुवंश में किया है। पुरु और दुष्यन्त चन्द्रवंशी राजा हैं। अत्रि के पुत्र सोम ( चन्द्र ) चन्द्रवंश के संस्थापक हैं। इस वंश में क्रमशः सोम, बुध, पुरूरवा, आयु और ययाति हुए। ययाति के पाँच पुत्रों में पुरु और यदु दो नये वंशों के संस्थापक हुए। पुरु से तंशु, अनिल, दुष्यन्त और भरत हुए। महाभारत में प्राप्य वंशावली के अनुसार भरत पुरु से २०वीं पीढ़ी में आते हैं। यदु से यदुवंश चला। इस वंश में वृष्णि, देवरात, अन्धक, शूर, वसुदेव, बलराम और कृष्ण हुए हैं। पुरु अपनी पितृभक्ति के लिए प्रसिद्ध है। शुक्राचार्य ने उसके पिता ययाति को शाप दिया था कि वह युवावस्था में ही वृद्ध हो जाएगा। प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने कहा कि अपनी वृद्धावस्था अपने किसी पुत्र को दे सकता है। पाँचों पुत्रों में से केवल पुरु पिता की वृद्धावस्था अपने ऊपर लेने को उद्यत हुआ। परिणामस्वरूप पितृभक्ति से प्रसन्न होकर ययाति ने पुरु को वरदान देकर युवा बनाया और नवीन वंश का संस्थापक बनाया। ( ३ ) **पुत्र**—पुत्+त्रै+क। पुत्र का अर्थ है—पुत् अर्थात् नरक से रक्षा करने वाला। पुत्र पिता को नरक से बचाता है। अतएव पद्म-पुराण में कहा है—"पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा"। यहाँ पर चक्रवर्ती पुत्र के आशीर्वाद से भरत की उत्पत्ति की ओर संकेत है। ( ४ ) इस श्लोक में प्रथम चरण द्वितीय चरण का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

**२८. वैखानसः—राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः।**

अपि च—

**रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।**
**ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ।।१३**

अन्वय—तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः रम्याः क्रियाः समवलोक्य मौर्वी किणाङ्कः मे भुजः क्रियत् रक्षति, इति ज्ञास्यसि ।

तपस्वी—राजन्, हम लोग समिधा लाने के लिये जा रहे हैं। य सामने मालिनी नदी के किनारे कुलपति कण्व का आश्रम दिखाई पड़ रह है। यदि (आपको अपने) अन्य कार्य में विलम्ब न हो तो वहाँ जाकर अतिथि जनोचित सत्कार स्वीकार कीजिए। और भी—

तपस्वियों की निर्विघ्न एवं मनोरम (यज्ञादि) क्रियाओं को देखकर आपको ज्ञात होगा कि धनुष की प्रत्यंचा के आघातचिह्नों से अलंकृत आपकी भुजा (जनता की) कितनी रक्षा कर रही है ।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या—तपोधनानाम्—तपस्विनाम्, प्रतिहतविघ्नाः—प्रतिहताः विनाशिताः विघ्नाः अन्तरायाः यासां ताः, विनाशितान्तरायाः, क्रियाः—यज्ञादि क्रियाः, समवलोक्य—निरीक्ष्य, मौर्वीकिणाङ्कः—मौर्व्याः ज्यायाः किणः घातचिह्नः अङ्कः भूषणं यस्य सः, ज्याघातचिह्नभूषितः, मे भुजः—मम बाहुः, कियत्—कियत्परिमाणम्, रक्षति—रक्षां करोति, इति ज्ञास्यसि—इति ज्ञानं प्राप्स्यसि। अस्मिन् श्लोके पूर्वार्धे परिकरालंकारः । किणाङ्केत्यत्र पुनरुक्तवदाभासः । काव्यलिङ्गमपि । वृत्त्यनुप्रासश्रुत्यनुप्रासौ । आर्या छन्दः । अत्र ज्ञप्तिर्नाम नाट्यलक्षणम् ।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **समिदा०**—समिधाम् आहरणाय । तत्पुरुष। समिध्—समिध्यते आभिः, सम्+इन्ध्+क्विप् । यहाँ पर 'क्रियार्थोपपदस्य च०' ( २-३-१४ ) से चतुर्थी या 'तादर्थ्ये चतुर्थी' से चतुर्थी । ( २ ) **प्रस्थिताः**—प्र+स्था+क्त । ( ३ ) **अनुमालिनी०**—मालिनीतीरस्य अनु । 'यस्य चायामः' (२-१-१६) से अव्ययीभाव समास। अथवा सप्तमी के अर्थ में अव्ययीभाव। (४) **अन्यकार्या०**—अन्यस्य कार्यस्य अतिपातः । तत्पुरुष । (५) **आतिथेयः**—अतिथिषु साधुः । अतिथि+ढञ् ( एय ) । 'पथ्यतिथिवसति०' ( ४-४-१०४ ) से ढञ् प्रत्यय। अतिथिः—अविद्यमाना तिथिर्यस्य। बहुव्रीहि। अथवा अतति गच्छति इति, अत्+इथि ( उणादि इथिन् प्रत्यय) । ( ६ ) **सत्कारः**—सत्+कृ+घञ् । सत् आदरार्थ में है । आदरार्थक सत् गति है, अतः गतिसमास। (७) **रम्याः**—रम्+यत् । 'पोरदुपधात्' (३—१—९८) से यत् प्रत्यय। रन्तुं

योग्या: । (८) **तपोधनानाम्**—तप एव धनं येषाम् । बहुव्रीहि । (९) **प्रतिहत०**—प्रतिहता: विघ्ना: यासां ता: । बहुव्रीहि । प्रतिहत—प्रति+हन्+क्त । विघ्न—वि+हन्+क (अ) । (१०) **मौर्वी०**—मौर्व्या: किण: अङ्क: यस्य स: । बहुव्रीहि । मौर्वी—मूर्वाया: तृणविशेषस्य विकार:' मूर्वा+अण्+ङीप् । 'अवयवे च' (४-३-१३५) से विकार अर्थ में अण् ।

(१) **कुलपते:**—दस सहस्र विद्यार्थियों और मुनियों के पालन-पोषण-कर्ता तथा शिक्षक को कुलपति कहते हैं । कुलपति का लक्षण है—(क) मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात् । अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपति: स्मृत: ।। (ख) पद्मपुराण का कथन है—आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु य: । व्रतयज्ञादिकर्माढ्य: स वै कुलपति: स्मृत: ।। उपर्युक्त लक्षण से ज्ञात होता है कि एक कुलपति के अधिष्ठातृत्व में १० हजार विद्यार्थी तक रहते थे । उनकी शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण का उत्तरदायित्व उस पर होता था । तक्षशिला और नालन्दा आदि प्राचीन विश्व-विद्यालयों के विवरण से ऐसा सत्य ज्ञात होता है । (२) **अनमालिनी०**—मालिनी नदी के किनारे-किनारे । मालिनी नदी गंगा की सहायक नदी है । यह कोटद्वार के पास बहती है । इसका दूसरा नाम मन्दाकिनी भी है । आजकल भी इसे मालिनी नदी कहते हैं । (३) **वैखानस**·····से लेकर सत्कार:, तक उल्लेख नामक नाट्यालंकार है । उल्लेख का लक्षण है—कार्य-ग्रहणम् उल्लेख: । (४) **रम्या:**—यहाँ पर धर्म्या: का भाव तपोधनानाम् से प्रकट हो जाता है, अत: रम्या: पाठ अधिक उपयुक्त है । आश्रम में ऋषियों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञादि कर्म राजा के लिए विशेष मनोरम थे, क्योंकि प्रतिदिन ऐसे दृश्य उसको दृष्टिगोचर नहीं होते थे । राजा की सुरक्षा के कारण वे कार्य निर्विघ्न थे, अत: उसके लिए विशेषतया रम्य थे । (५) **मौर्वी**—मूर्वा नाम की घास से धनुष की डोरी बनाई जाती थी । वह बहुत दृढ़ और स्थायी होती थी । क्षत्रिय मूर्वा मेखला भी पहनते थे । क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या (मनु० २–४२) । (६) **किणांक:**—दुष्यन्त मृगया का बहुत प्रेमी था, अत: उसके हाथ पर प्रत्यंचा की रगड़ के चिह्न थे । (७) यहाँ पर यज्ञादि की निर्विघ्नता के कारण राजा के महाप्रताप का अनुमान होता है, अत: ज्ञप्ति नामक नाटकीय लक्षण है । उसका लक्षण है—ज्ञप्ति: केनचिदंशेन किंचिद् यत्रानुमीयते । (सा० दर्पण) ।

**२९. राजा—अपि सन्निहितोऽत्र कुलपति: ।**

**राजा—क्या कुलपति जी यहाँ पर विद्यमान हैं ?**

**३०. वैखानस:—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथि-सत्काराय नियुज्य दैवमस्या: प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गत: ।**

**तपस्वी—अभी अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि-सत्कार के कार्य में नियुक्त करके उसके प्रतिकूल भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ गए हैं ।**

**३१. राजा**—भवतु । तामेव द्रक्ष्यामि । सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति ।

राजा—अच्छी बात है। मैं उसी के दर्शन करूँगा। वह मेरी (महर्षि-विषयक) भक्ति को जानकर मेरे विषय में महर्षि से कह देगी।

**३२. वैखानसः**—साधयामस्तावत् । (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः ।)

तपस्वी—अच्छा हम जाते हैं। (शिष्यों के साथ जाता है।)

**३३. राजा**—सूत, नोदयाश्वान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।

राजा—सारथि, घोड़ों को हाँको। पवित्र आश्रम के दर्शन से अपने आपको पवित्र करें।

**३४. सूतः**—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (इति भूयो रथवेगं रूपयति ।)

सारथि—जो आपकी आज्ञा। ( फिर वेग से रथ के चलने का नाट्य करता है। )

**३५. राजा**—(समन्तादवलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एवायमाभोगस्तपोवनस्येति ।

राजा—( चारों ओर देखकर ) सारथि, बिना बताए हुए भी ज्ञात होता है कि यह तपोवन की सीमा है।

**३६. सूतः**—कथमिव ।

सारथि—यह कैसे ?

### टिप्पणी

व्याकरणादिः—( १ ) सन्निहितः—सम्+नि+धा+क्त । 'दधातेर्हिः' ( ७-४-४२ ) से धा को हि। ( २ ) दुहितरम्—दुह्+तृच् । ( ३ ) अतिथि-

---

पाठभेद—३१. का० पश्यामि ( देखता हूँ ) । का० करिष्यति (करेगी)

पाठभेद—३३. नि० का० चोदय ( हाँको ) । ३५. नि० का० एव यथाय-माश्रमाभोगः ( कि यह आश्रम की सीमा है ) ।

सत्काराय—अतिथीनां सत्काराय। तत्पुरुष। (४) नियुज्य—नि+युज्+ल्यप्। (५) **शमयितुम्**—शम्+णिच्+तुम्। (६) **विदितभक्तिम्**—विदिता भक्तिः यस्य तम्। बहुव्रीहि। 'स्त्रियाः पुंवद्०' (६-३-३४) में प्रियादिगण में कर्मवाच्य क्तिन्-प्रत्ययान्त भक्ति शब्द का ग्रहण है, भाववाच्य क्तिन्-प्रत्ययान्त का नहीं। यहाँ भक्तिशब्द भावप्रत्ययान्त होने से पूर्वपद को पुंवद्भाव हो जाएगा। अथवा 'सामान्ये नपुंसकम्' नियम से विदित को नपुंसकलिंग मानकर विदितं भक्तिः यस्य तम्, समास होगा। (७) **महर्षेः०**—यहाँ शेष में षष्ठी है। साधारणतया कथ् धातु के साथ चतुर्थी होती है। (८) **साधयामः**—साध्+णिच्+लट्। (९) **नोदय**—नुद्+णिच्+लोट्। (१०) **पुण्याश्रम०**—पुण्यस्य आश्रमस्य दर्शनेन। तत्पुरुष। (११) **आभोगः**—आ+भुज्+घञ्।

(१) **दुहितरम्०**—इस कथन से ज्ञात होता है कि महर्षि कण्व शकुन्तला को अपनी पुत्री मानते थे। कोई अन्य सन्तान न होने के कारण उसको ही अतिथि-सत्कार का कार्य देकर वहाँ से गये थे। अन्य ऋषियों आदि के होते हुए भी शकुन्तला को ही यह कार्य देने का यह भी भाव है कि वह शकुन्तला को अपने जीवन का सर्वस्व समझते थे। (२) **अतिथि**—अतिथि इसलिए कहा जाता है कि उसके आगमन की कोई तिथि निश्चित नहीं है। अतिथि की दूसरी निरुक्ति है—अत्+इथि। जो निरन्तर भ्रमण करता है। अतिथि का लक्षण है—यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः। अकस्माद् गृहमायाति सोऽतिथिः कथ्यते बुधैः॥ मनु० (३.१०२) का कथन है—एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते। अतिथि और अभ्यागत का अन्तर यमपुराण में कहा है—तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे येन त्यक्ता महात्मना। सोऽतिथिः सर्वभूतानां शेषानभ्यागतान् विदुः॥ (३) **दैवमस्याः प्रतिकूलम्०**—इस कथन से सूचित होता है कि महर्षि को पहले से ज्ञात था कि शकुन्तला के ऊपर विपत्ति आएगी। भाग्य उसके प्रतिकूल है, अतः उसका दुर्वासा के शाप के कारण परित्याग होगा। 'शमयितुम्' से यह भी सूचित होता है कि महर्षि की तपस्या के कारण उसकी विपत्ति टल जाएगी और पुनः भाग्य के अनुकूल होने से उसका पति से पुनर्मिलन होगा। अतिथिसत्कार का कार्य उसको देने का यह भी भाव हो सकता है कि अतिथिसत्कार के पुण्य से उसका दुर्भाग्य कुछ न्यून हो जाए। (४) **सोमतीर्थम्**—कुछ विद्वान् इसको पानीपत के पास स्थित तीर्थ मानते हैं। उनका मत है कि कुरुक्षेत्र और गंगाह्रद के मध्य में यह स्थान है। अन्य विद्वानों का मत है कि प्रभासतीर्थ का ही दूसरा नाम सोमतीर्थ है। यह काठियावाड़ में सोमनाथ के मन्दिर के पास एक तीर्थस्थान है। भागवत पुराण में इस तीर्थ के विषय में एक कथा है कि दक्ष ने सोम (चन्द्रमा) को शाप दिया था कि उसे क्षय रोग हो जाए। सोम ने इस स्थान पर तपस्या की थी और उसका रोग दूर हो गया था। यहाँ पर प्रभासतीर्थ का अर्थ अधिक उचित है; क्योंकि महर्षि काफी समय के पश्चात् आते हैं। इस बीच में शकुन्तला और

रक्तता, भिन्नः—विकृतः, दृश्यते इति शेषः। एते च नष्टाशङ्काः—निर्भयाः, हरिणशिशवः—मृगशावकाः, छिन्नदर्भाङ्कुरायाम्—लूनकुशाग्रभागायाम्, उपवनभुवि—उद्यानभूमौ, अर्वाक्—समीप एव, मन्दमन्दम्—शनैः शनैः, चरन्ति—भ्रमन्ति। अत्र काव्यलिङ्गं क्रियासमुच्चयः स्वभावोक्तिश्चालंकाराः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। तल्लक्षणम्—मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्म्भौं नतौ ताद् गुरू चेत्।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **नीवाराः**—नि + वृ + घञ्। 'नौ वृ धान्ये' ( ३-३-४८ ) से घञ् प्रत्यय और 'उपसर्गस्य घञि॰ ( ६-३-१२२ ) से नि को दीर्घ। ( २ ) **शुकगर्भ॰**—शुकाः गर्भे येषां ते शुकगर्भाः, तेषां कोटराणां मुखेभ्यः भ्रष्टाः। बहुव्रीहिगर्भक तत्पुरुष। ( ३ ) **प्रस्निग्धाः**—प्र+स्निह्+क्त। ( ४ ) **इङ्गुदी॰**—इङ्गुद्याः फलानि भिन्दन्ति इति। इंगुदीफल+भिद्+क्विप्। ( ५ ) **विश्वासो॰**—विश्वासस्य उपगमात्। तत्पुरुष। विश्वास—वि+श्वस्+घञ्। ( ६ ) **अभिन्न॰**—अभिन्ना गतिः येषां ते। बहुव्रीहि। ( ७ ) **तोयाधार॰**—तोयानाम् आधाराः, तेषां पन्थानः। तत्पुरुष। 'ऋक्पूरब्धूः॰' ( ५-४-७४ ) से समासान्त अ प्रत्यय। अतः पथिन् को पथ हो जाता है। आधार—आध्रियन्ते एषु। आ+धृ+घञ्। ( ८ ) **वल्कल॰**—वल्कलानां शिखाभ्यः निष्यन्दः, तेषां रेखाभिः अङ्किताः। तत्पुरुष। निष्यन्द—नि+स्यन्द्+घञ्। 'अनुविपर्यभिभ्यः॰' ( ८-३-७२ ) से वैकल्पिक स् को ष्। ( ९ ) **कुल्या॰**—कुल्यायाः अम्भोभिः। तत्पुरुष। ( १० ) **पवन॰**—पवनेन चपलैः। तत्पुरुष। ( ११ ) **शाखिनः**—शाखा+इनि ( इन् )। ( १२ ) **धौत॰**—धौतानि मूलानि येषां ते। बहुव्रीहि। ( १३ ) **भिन्नः**—भिद्+क्त। (१४) **रागः**—रञ्ज्+घञ् ( १५ ) **किसलय॰**—किसलयानां रुचाम्। तत्पुरुष। ( १६ ) **आज्य॰**—आज्यस्य धूमस्य उद्गमेन। तत्पुरुष। ( १७ ) **उपवन॰**—उपवनस्य भुवि। तत्पुरुष। ( १८ ) **छिन्न॰**—छिन्नाः दर्भाणाम् अङ्कुरा यस्यां तस्याम्। बहुव्रीहि। छिन्नः—छिद्+क्त। ( १९ ) **नष्टा॰**—नष्टाः आशङ्काः येषां ते। बहुव्रीहि। ( २० ) **हरिण॰**—हरिणानां शिशवः। तत्पुरुष। ( २१ ) **मन्द॰**—मन्दं मन्दम्। वीप्सा अर्थ में द्विरुक्ति। 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' (८-१-११) से समस्तपद मानकर पूर्वपद की विभक्ति का लोप।

( १ ) **शुकगर्भ॰**—तोतों के बच्चे घोंसलों के अन्दर बैठे हैं। तोते नीवार लाकर बच्चों को देते हैं। बच्चों को नीवार देते समय शीघ्रता के कारण नीवार का कुछ भाग बच्चे ले पाते हैं और कुछ भाग नीचे भूमि पर गिर पड़ता है। इस प्रकार शुकयुक्त घोंसलों के अग्रभाग से नीवार भूमि पर गिरे हुए हैं। (२) **इङ्गुदी**—तपस्वी लोग इसके फल से तेल निकालकर उपयोग में लाते थे। इसके तापसतरु, पुत्रंजीव, जीवपुत्रका भी नाम है। इसको गूंदी भी कहते हैं। इन फलों को तोड़ने के कारण पत्थर भी अत्यन्त चिकने हो रहे थे। ( ३ ) **शब्दं**

सहन्ते—आश्रम की सीमा के अन्दर होने के कारण वे मृग निर्भीक थे और रथ को देखकर डर नहीं रहे थे। ( ४ ) **तोयाधार०**—तालाव में नहाकर जब तपस्वी लौटते थे, उस समय उनके वल्कलों से जल की बूंदें टपकती जाती थीं और उनसे मार्ग में चिह्न पड़ गए थे। उपर्युक्त कारणों से ज्ञात होता है कि आश्रम की सीमा प्रारम्भ हो गई है। ( ५ ) आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में यह श्लोक उद्धृत किया है। ( ६ ) इस श्लोक में काव्यलिंग, क्रियासमुच्चय और स्वाभावोक्ति अलंकार हैं। इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है। ( ७ ) **कुल्याम्भोभिः०**—इससे ज्ञात होता है कि आश्रम के पास एक नहर भी थी। यहाँ पर कुल्या शब्द से वृक्षों को सींचने के लिए वनाई गई नालियों का भाव भी लिया जा सकता है। ( ८ ) कतिपय संस्करणों में यह श्लोक प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया गया है। राजा आश्रम के और समीप पहुँच गया है और वहाँ का यह वर्णन है। अतः यह श्लोक मूल में रखा गया है। प्रथम दो पंक्तियों का भाव मौलिक है। अन्तिम दो पंक्तियों में मृगों के बच्चों का वर्णन है, पूर्व-श्लोक के तृतीय चरण में मृगों का वर्णन है, मृगों के बच्चों का नहीं, यही अन्तर है। अतः पूर्व श्लोक की पुनरुक्ति नहीं समझनी चाहिए।

**३८. सूतः—सर्वमुपपन्नम्।**

सारथि—सब ठीक ही है।

**३९. राजा—(स्तोकमन्तरं गत्वा) तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत्। एतावत्येव रथं स्थापय, यावदवतरामि।**

राजा—( थोड़ी दूर जाकर ) आश्रमवासियों को कोई विघ्न न होने पावे। अतः यहीं पर रथ रोको, जब तक मैं उतरता हूँ।

**४०. सूतः—धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्।**

सारथि—मैंने लगाम रोक ली है। आप उतरिए।

**४१. राजा—(अवतीर्य) सूत, विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। (इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीयार्पयति) सूत, यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठा क्रियन्तां वाजिनः।**

राजा—( उतरकर ) सारथि, तपोवन में सादे वेष में ही जाना चाहिए। तो यह लो। ( सारथि को आभूषण और धनुष देता है ) सारथि, जब तक मैं आश्रमवासियों को देखकर लौटता हूँ, तब तक घोड़ों को स्नान कराओ।

**४२. सूतः—तथा। (इति निष्क्रान्तः।)**

सारथि—वैसा ही होगा। ( जाता है )

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **उपपन्नम्**—उप+पद्++क्त । ( २ ) **तपोवन०**—तपोवने निवस्तुं शीलं येषाम् । तपोवन+नि+वस्+णिनि ( इन् ) । ताच्छील्य अर्थ में 'सुप्यजातौ०' ( ३-२-७८ ) से णिनि प्रत्यय । ( ३ ) **उपरोधः**—उप+रुध्+घञ् । ( ४ ) **मा भूत्**—'माङि लुङ' ( ३-३-१७५ ) सूत्र से मा के साथ लुङ लकार का ही प्रयोग होता है, अन्य लकार का नहीं । 'न माङ्योगे' ( ६-४-७४ ) से धातु के पूर्ववर्ती अ का अभाव । ( ५ ) **विनीत०**—विनीतश्चासौ वेषः, तेन । कर्मधारय । (६) **तपोवनानि**—तपसः वनम् । अश्वघास आदि के तुल्य षष्ठीतत्पुरुषसमास । अथवा तपःसाधनं वनम् । शाकपार्थिवादिवत् उत्तरपद साधन का लोप । (७) **सूतस्य**—दान देने के अर्थ में चतुर्थी होती है, अन्यत्र षष्ठी होती है । जैसे—रजकस्य वस्त्रं ददाति । (८) **प्रत्यवेक्ष्य**—प्रति+अव+ईक्ष्+ल्यप् । (९) **आर्द्रपृष्ठाः**—आर्द्राणि पृष्ठानि येषां ते । बहुव्रीहि ।

**विनीतवेषेण**—राजा का कर्तव्य है कि सादे वेष में ही तपोवन आदि में जाए। उनके कार्यों में विघ्न उपस्थित न करे । मनु० (८-२) का कथन है—विनीतवेषाभरणः पश्येत् कार्याणि कर्मिणाम् । यहाँ पर नीति-नामक नाटकीय अलंकार है ।

**४३. राजा—(परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारम् । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य, निमित्तं सूचयन्)**

**शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।**
**अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।।१६।।**

**अन्वय**—इदम् आश्रमपदं शान्तम्, बाहुः च स्फुरति, इह अस्य फलं कुतः । अथवा भवितव्यानां सर्वत्र द्वाराणि भवन्ति ।

**राजा—( चलकर और देखकर ) यह आश्रम का द्वार है । अन्दर जाता हूँ । ( प्रवेश करके और शकुन सूचित करता हुआ । )**

**यह आश्रम की भूमि शान्त है और मेरी ( दाहिनी ) भुजा फड़क रही है । यहाँ पर इसकी सफलता कहाँ ? अथवा भावी ( होनहार ) घटनाओं के लिए सर्वत्र ही द्वार ( मार्ग ) हो जाते हैं ।।१६।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—इदम्—एतत्, आश्रमपदम्—आश्रमस्थानम्, शान्तम्—शमप्रधानमस्ति । नात्र श्रृङ्गाररसावकाशः इत्यर्थः । बाहुः च—मम दक्षिणो भुजश्च, स्फुरति—स्पन्दते । वरस्त्रीलाभं सूचयतीत्यर्थः । इह—अस्मिन् आश्रमे, अस्य—दक्षिणभुजस्पन्दस्य, फलम्—सुन्दरस्त्रीलाभरूपं फलम्, कुतः—कथं संभवति । न कथमपि संभवतीत्यर्थः । अथवा भवितव्यानाम्—अवश्यंभाविनामर्थानाम्, सर्वत्र—सर्वत्रैव, द्वाराणि—साधनानि, भवन्ति । अत्र परिकरनामकं

मुखसन्धेर्द्वितीयमङ्गमस्ति । तल्लक्षणं दर्पणे ( ६-८३ )—'समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः' । अत्रार्थान्तरन्यास आक्षेपश्चालंकारौ । आर्या छन्दः ।

### टिप्पणी

( १ ) **शान्तम्**—शान्तरस-प्रधान । यहाँ पर लक्षणा के द्वारा आश्रमपद का अर्थ है आश्रमवासी व्यक्ति । वे शमगुण से युक्त हैं । आश्रम शान्त है, अतः आश्रमवासी भी शृंगाररस से दूर हैं । स्थान का प्रभाव वहाँ के निवासियों पर पड़ता ही है । ( २ ) **स्फुरति०**—दाहिनी भुजा फड़क रही है । दाहिनी भुजा का फड़कना सुन्दर स्त्री की प्राप्ति का सूचक माना गया है । अद्भुतसागर का कथन है—'वामेतरभुजस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचकः' । भुज-स्पन्दन का शकुनरूप में वर्णन इन स्थानों पर भी हुआ है—भट्टि० १-२७, विक्रमोर्वशीय ३-६, रघुवंश ६-६८, १२-६० । ( ३ ) **भवितव्यानाम्**—होनहार प्रबल होती है । इस भाव का वर्णन इन स्थानों पर भी हुआ है—मालतीमाधव १०-१३, गीता ११-३३, रत्नावली की प्रस्तावना । ( ४ ) इस श्लोक में परिकर नामक मुखसंधि का द्वितीय अंग है । पहले संक्षेप में कही गई बात की विशेष रूप से सूचना दी गई है । उत्सुकतारूपी बीज की वृद्धि है । ( ५ ) इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास और आक्षेप अलंकार हैं । आर्या छन्द है ।

**(नेपथ्ये)**

**४४. इत इतः सख्यौ । [इदो इदो सहीओ ।]**

( नेपथ्य में ) सखियो, इधर आओ, इधर आओ ।

**४५. राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये, दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते । यावदत्र गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते । (निपुणं निरूप्य) अहो, मधुरमासां दर्शनम् ।**

**शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।**
**दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥१७॥**

**यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ।**

**(इति विलोकयन् स्थितः ।)**

अन्वय—शुद्धान्तदुर्लभम् इदं वपुः यदि आश्रमवासिनः जनस्य ( अस्ति, तदा ) खलु उद्यानलताः वनलताभिः गुणैः दूरीकृताः ।

**राजा**—( ध्यान से सुनकर ) ओह, वृक्षों की वाटिका के दाहिनी ओर ( कुछ ) वार्तालाप सा सुनाई दे रहा है। तो वहाँ जाता हूँ। ( चलकर और देख कर ) ओह, ये तपस्वियों की बालिकाएँ अपनी शक्ति के अनुरूप ( छोटे ) घड़ों से छोटे वृक्षों ( पौधों ) को जल देने के लिए इधर ही आ रही हैं। ( ध्यान से देखकर ) इनका रूप ( बहुत ही ) मनोहर है।

अन्तःपुर में भी दुर्लभ यह ( अतिमनोहर ) शरीर यदि आश्रमवासी व्यक्ति का है तो अवश्य ही उपवन की लताएँ वन की लताओं से ( सुन्दरता, सुकुमारता आदि ) गुणों में तिरस्कृत हो गईं ॥१७॥ तो इस ( वृक्ष की ) छाया में खड़ा होकर प्रतीक्षा करता हूँ। (देखता हुआ खड़ा हो जाता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—शुद्धान्तदुर्लभम्—अन्तःपुरेऽपि दुष्प्रापम्, इदम्—एतादृशम्, वपुः—कमनीयं शरीरम्, यदि—चेत्, आश्रमवासिनः—तपोवननिवासिनः, जनस्य—सामान्यबालिकालोकस्य, अस्ति, तदा—तर्हि, खलु—निश्चयेन, उद्यानलताः—उपवनवीरुधः, वनलताभिः—काननवल्लीभिः, गुणैः—सौन्दर्यकोमलत्वादिगुणैः, दूरीकृताः—तिरस्कृताः। अत्र पूर्वार्धे विशेषे प्रस्तुते सामान्यस्योक्तेः अप्रस्तुतप्रशंसा। असंभवद्वस्तुसंवन्धरूपो निदर्शनाऽलंकारश्च। आर्या छन्दः।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **दक्षिणेन**—'एनपा द्वितीया' ( २-३-३१ ) से वृक्षवाटिकाम् में द्वितीया। इसी सूत्र से एनप्-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी भी होती है। ( २ ) **वृक्ष०**—वृक्षाणां वाटिका। तत्पुरुष। ( ३ ) **आलापः**—आ+लप्+घञ्। ( ४ ) **तपस्वि०**—तपस्विनां कन्यकाः। तत्पुरुष। कन्या एव कन्यकाः, स्वार्थ में क। तपस्वी—तपस्+विनि ( विन् )। तपः एषामस्तीति तपस्विनः। मत्वर्थ में विनि 'तपःसहस्राभ्याम्०' ( ५-२-१०२ ) से। ( ५ ) **स्वप्रमाणा०**—स्वस्य प्रमाणस्य अनुरूपैः। तत्पुरुष। ( ६ ) **सेचन०**—सेचनस्य घटैः। तत्पुरुष। अथवा सेचनार्थाः घटाः, तैः। उत्तरपदलोपी समास। सेचन—सिच्+ल्युट् (अन)। ( ७ ) **बालपादपेभ्यः**—बालाश्च ते पादपाः, तेभ्यः। कर्मधारय। ( ८ ) **मधुर**—मधु+र। 'ऊषसुषिमुष्कमधो रः (५-२-१०७) से मत्वर्थ में र प्रत्यय। अथवा मधु राति ददाति इति मधुरः। मधु+रा+क। (९) **दर्शनम्**—दृश्यते यत् तत्। दृश्+ल्युट् (अन)। (१०) **शुद्धान्त०**—शुद्धः अन्तः यस्य स शुद्धान्तः। बहुव्रीहि। शुद्धान्ते दुर्लभम्। तत्पुरुष। दुर्लभ—दुर्+लभ्+खल् ( अ )। (११) **आश्रम०**—आश्रमे वस्तुं शीलमस्य तस्य। आश्रम+वस्+णिनि। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (१२) **दूरीकृताः**—च्विप्रत्यय, अतः दूर के अ को ई। (१३) **उद्यान०**—

उद्यानस्य लताः। तत्पुरुष। (१४) **वन०**—वनस्य लताभिः। तत्पुरुष। (१५) **आश्रित्य**—आ+श्रि+ल्यप्।

(१) **मधुरमासाम्०**—यहाँ पर 'आसाम्' में बहुत्व से सूचित होता है कि दूर से देखने से राजा को तीनों ही कन्याएँ समान रूप से सुन्दर दिखाई पड़ीं। (२) **दर्शनम्**—यहाँ पर दर्शनम् का अर्थ रूप है। जो दिखाई पड़ता है। दृश्यते यत् तत्। (३) **शुद्धान्त०**—शुद्धान्त का अर्थ है अन्तःपुर। राजा का रनवास। उसको शुद्धान्त इसलिए कहा गया है कि उसका अन्दर का भाग शुद्ध रखा जाता था। राजा की ओर से प्रयत्न किया जाता था कि अन्तःपुर की स्त्रियाँ आचार-विचार, व्यवहार आदि में पवित्र रहे और उनके सौन्दर्य आदि की पूर्ण रूप से सुरक्षा हो। यहाँ पर 'शुद्धान्तेऽपि दुर्लभम्' अन्तःपुर में भी दुर्लभ अर्थ समझना चाहिए। अपि (भी) का अर्थ यहाँ पर प्रकट रूप में होना चाहिए था, उसके बिना भाव पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। अतएव इस पद में 'अनभिहितवाच्यता' दोष है। (४) **यदि**—यदि से सूचित होता है कि राजा को यह आशा नहीं थी कि उसके अन्तःपुर से भी सुन्दर स्त्रियाँ तपोवन में हो सकती हैं। अतः वह आश्चर्यान्वित है। (५) यहाँ पर पूर्वार्ध में विशेष के प्रस्तुत होने पर भी सामान्य के कथन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में कोई साक्षात् संबन्ध नहीं है, किन्तु दोनों की समाप्ति उपमा में होती है, अतः यहाँ पर निदर्शना अलंकार है। काव्यप्रकाशकार ने निदर्शना का लक्षण दिया है—'अभवन् वस्तुसंबन्ध उपमापरिकल्पकः'। यहाँ पर प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास अलंकार नहीं हैं। प्रतिवस्तूपमा में एक ही सामान्य-धर्म का दोनों वाक्यों में पृथक्रूप से निर्देश होता है। दृष्टान्त में दो स्वतन्त्र वाक्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव संबन्ध रहता है। दोनों वाक्य सामान्य होते हैं या दोनों ही विशेष। उनमें सादृश्यमूलक संबन्ध होता है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन होता है। यही इनमें अन्तर है।

**(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला।)**

**४६. शकुन्तला—इत इतः सख्यौ। [इदो इदो सहीओ।]**

(तदनन्तर पूर्वोक्त कार्य करती हुई शकुन्तला का दोनों सखियों के साथ प्रवेश।)

शकुन्तला—सखियो, इधर आओ, इधर आओ।

**४७. अनसूया—हला शकुन्तले, त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि। येन नवमालिकाकुसुमपेलवाऽपि त्वमेतेषामालवालपूरणे नियुक्ता। [हला**

---

पाठभेद—४७. नि० त्वमपि [तुमं वि] (तू भी)।

Funding by IKS-MoE

सउन्दले, तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि। जेण णोमालिआकुसुमपेलवा वि तुमं एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता।]

**अनसूया**—सखी शकुन्तला, पिता काश्यप ( कण्व ) को ( ये ) आश्र के वृक्ष तुझसे अधिक प्रिय हैं, ऐसा मैं समझती हूँ। अतएव नवमालिका फूल के तुल्य सुकुमार भी तुमको इनके आलवाल ( थाँवले ) भरने के का में नियुक्त किया है।

४८. **शकुन्तला**—न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु। [ण केवलं तादणिओओ एव्व। अत्थि मे सोदरसिणोहो वि एदेसु।] (इति वृक्षसेचनं रूपयति।)

**शकुन्तला**—केवल पिता की आज्ञा ही नहीं, मेरा भी इन ( वृक्षों ) प सगे भाई के तुल्य प्रेम है। ( पेड़ों में जल देने का नाट्य करती है।)

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **त्वत्तः**—युष्मद्+तसिल् ( तः )। पञ्चमी के अर्थ में तसिल् 'पंचम्यास्तसिल्' ( ५-३-७ ) से। ( २ ) **तात०**—तातः चासौ काश्यपः, तस्य। कर्मधारय। ( ३ ) **आश्रम०**—आश्रमस्य वृक्षकाः। तत्पुरुष। ह्रस्वाः वृक्षाः वृक्षकाः। ह्रस्व अर्थ में कन् ( क ) प्रत्यय। ( ४ ) **नवमालिका०**—नवमालिकायाः कुसुमम्। तत्पुरुष। तद्वत् पेलवा। उपमान समास, कर्मधारय। ( ५) **आलवाल०**—आलवालानां पूरणे। तत्पुरुष। ( ६ ) **तात०**—तातस्य नियोगः। तत्पुरुष। नियोग—नि+युज्+घञ्। ( ७ ) **सोदर०**—सोदरेषु स्नेहः। तत्पुरुष। सोदर—समानमुदरम् अस्य। बहुव्रीहि। 'समानस्य०' ( ६-३-८४ ) के योगविभाग से समान को स। अथवा सदृशम् उदरम् अस्य। बहुव्रीहि। सदृश अर्थ में सह को स 'वोपसर्जनस्य' ( ६-३-८२ ) से।

( १) शकुन्तला आदि की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। भरत का कथन है कि नायिकाओं और उनकी सखियों की भाषा शौरसेनी होती है। 'नायिकानां सखीनां च शौरसेनी प्रकीर्तिता'। (२) हला—सखियाँ परस्पर 'हला' कहकर संबोधित करती हैं। भरत का कथन है—'समानाभिस्तथा सख्यो हला भाष्याः परस्परम्।' अमरकोश का कथन है—'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति'। (३) **पेलव**—पेलव का अर्थ है कोमल। 'पेलवं कोमले तनौ' इति

---

पाठभेद—४८. नि० अपि [वि] इति नास्ति।

शाश्वतः। साहित्यशास्त्रियों (वामन, मम्मट आदि) ने पेलव शब्द को अश्लीलतासूचक मानकर इसके प्रयोग का निषेध किया है। कालिदास ने पेलव शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर किया है। इससे ज्ञात होता है कि उसके समय में यह शब्द अश्लीलतासूचक नहीं था। (४) **सोदरस्नेहः**—इससे शकुन्तला के हृदय की कोमलता सूचित होती है। उसके हृदय में एक ओर पितृभक्ति है, दूसरी ओर स्त्रीजनोचित प्रेम और सहृदयता पूर्ण रूप में है।

४६. **राजा**—कथमियं सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः, य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥१८॥

भवतु, पादपान्तर्हित एव विश्रब्धं तावदेनां पश्यामि। (इति तथा करोति।)

**अन्वय**—यः ऋषिः अव्याजमनोहरम् इदं वपुः किल तपःक्षमं साधयितुम् इच्छति, स ध्रुवं नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति।

**राजा**—क्या यही वह कण्व की पुत्री (शकुन्तला) है? अवश्य ही पूजनीय कण्व का कार्य अनुचित है कि उन्होंने इसको आश्रम के कार्यों में नियुक्त किया है।

जो ऋषि (कण्व) स्वभाव से ही सुन्दर इस (शकुन्तला के) शरीर को, खेद है कि, तपस्या के योग्य बनाना चाहता है, वह अवश्य ही नीलकमल के पत्ते की धार से शमी की लता को काटने का यत्न करता है ॥१८॥ अच्छा, पेड़ की ओट में ही रहकर निःसंकोच इसको देखता हूँ। (वैसा करता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—यः ऋषिः—कण्वः, अव्याजमनोहरम्—अव्याजं कृत्रिमशोभारहितं च तत् मनोहरं मनोज्ञम्, स्वभावसुन्दरमित्यर्थः। इदं वपुः—एतत् शकुन्तलायाः शरीरम्, किल—अरुचौ, तपःक्षमम्—तपोयोग्यम्, साधयितुं—विधातुम्, इच्छति—वाञ्छति, सः—ऋषिः कण्वः, ध्रुवम्—नूनम्, नीलोत्पलपत्रधारया—नीलकमलदलस्य तीक्ष्णपार्श्वभागेन, शमीलताम्—शमीवृक्षस्य

---

पाठभेद—४६. नि० (आत्मगतम्) कथम्० (मन में)। नि० समिल्लताम् (समिधारूपी लता को)।

शाखाम्, छेत्तुम्—छिन्नां कर्तुम्, व्यवस्यति—प्रयतते। अत्राभिप्रायनामकं नाटकलक्षणमस्ति। तल्लक्षणं दर्पणे—'अभिप्रायस्तु सादृश्याददद्भुतार्थस्य कल्पना' (६-१८२)। अस्मिन् श्लोके निदर्शनाऽलंकारः। ध्रुवमित्यनेनोत्प्रेक्षा, पूर्वार्धे विषमाऽलंकारः, अव्याजमनोहरमित्यत्र विभावना। वंशस्थं वृत्तम्।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **कण्व०**—कण्वस्य दुहिता। दुह्+तृच्। (२) **असाधुदर्शी**—साधु पश्यतीति साधुदर्शी, न साधुदर्शी असाधुदर्शी। असाधु+दृश्+णिनि। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (३) **तत्रभवान्**—स भवान् इति तत्रभवान्। सुप्सुपा समास। 'इतराभ्योऽपि दृश्यते' (५-३-१४) से प्रथमा के अर्थ में त्रल् (त्र)। (४) **काश्यपः**—कश्यपगोत्रोत्पन्नः। कश्यप+अण्। (५) **आश्रम०**—आश्रमस्य धर्मे। तत्पुरुष। (६) **अव्याज०**—न व्याजः यस्मिन् तत्, अव्याजम्। बहुव्रीहि। अव्याजं च तत् मनोहरम्। कर्मधारय। व्याज—वि+अज्+घञ्। मनोहर—मनस्+हृ+अच्। 'हरतेरनुद्यमनेऽच्' (३-२-९) से अच्। (७) **तपः०**—तपसः क्षमम्। तत्पुरुष (८) **नीलोत्पल०**—नीलं च तत् उत्पलम्। कर्म०। नीलोत्पलस्य पत्रस्य धारया। तत्पुरुष। (९) **शमी०**—शम्याः लताम्। तत्पुरुष। (१०) **व्यवस्यति**—वि+अव+सो+लट्। दिवादिगणी सो का लट् में स्यति बनता है। इसी धातु के अवसान, अवसीयते, अवसित आदि रूप बनते हैं। (११) **पादपा०**—पादपैः अन्तर्हितः। तत्पुरुष। (१२) **विश्रब्धम्**—वि+श्रम्भ्+क्त।

(१) **इयं सा**—अनसूया को दिए गये उत्तर से राजा शकुन्तला को पहचानता है। (२) **कथम्**—इसके द्वारा वह शकुन्तला के अनुपम सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य प्रकट करता है। (३) **असाधुदर्शी**—इसका अभिप्राय है कि ऋषि कण्व वस्तुओं को उचित दृष्टिकोण से नहीं देखते हैं। अतएव सुकुमार शकुन्तला से ऐसा कठोर कार्य ले रहे हैं। (४) **तत्रभवान्**—तत्रभवान् और अत्रभवान् का पूजनीय अर्थ में प्रयोग होता है। दूरस्थ या अनुपस्थित के लिए तत्रभवान् (पूजनीय वे) और समीपस्थ के लिए अत्रभवान् (पूजनीय ये) का प्रयोग होता है। पूजनीय स्त्री के लिए तत्रभवती और अत्रभवती प्रयोग होते हैं। (५) **काश्यपः**—काश्यप का अर्थ है कश्यप ऋषि के गोत्र में उत्पन्न। कश्यप सात प्रजापतियों में से एक मरीचि के पुत्र थे। (६) **नियुङ्क्ते**—नि+युज् धातु के साथ सप्तमी विभक्ति होती है। युज् धातु के इतने प्रकार से रूप चलते हैं—युज्यते, युङ्क्ते, युनक्ति, योजयति, योजयते। (७) **अव्याज०**—व्याज का अर्थ है कृत्रिमता। यहाँ अर्थ है विना किसी प्रकार की कृत्रिमता के ही जो सुन्दर है। राजा के अन्तःपुर की स्त्रियाँ कृत्रिम साधनों से सुन्दर प्रतीत होती थीं। (८) **किल**—यहाँ पर किल अरुचिसूचक है अर्थात् खेद की बात है कि। (९) **तपःक्षमम्**—

तपस्या जैसे कठोर कार्य के योग्य। क्षम का अर्थ है योग्य। (१०) **नीलोत्पल०**—नीलकमल (कुमुद) रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी से खिलता है। अतिकोमल होता है। अतः शकुन्तला के साम्य के लिए यहाँ रखा गया है। उसकी धार भी कोमल होती है, उससे शमीवृक्ष की शाखा कभी नहीं कट सकती है। उसी प्रकार सुकुमार शकुन्तला से कठोर तपस्या कराना असंभव कार्य है। (११) **शमीलता**—शमी कठोर वृक्ष होता है। यहाँ लता का अर्थ शाखा समझना चाहिए। अरणि वृक्ष के तुल्य शमी वृक्ष में भी अग्नि होती है। इसकी लकड़ियों को रगड़ने से आग उत्पन्न होती है। अतएव कालिदास ने कहा है—शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम् (रघु० ३-९)। मनु० (८-२४७) में भी ऐसा वर्णन है। (१२) जहाँ पर सादृश्य के आधार पर असंभव कार्य की कल्पना की जाती है, वहाँ अभिप्राय नामक नाटकीय लक्षण होता है। यहाँ पर नीलकमलपत्र की धारा से शमीलता का छेदनरूपी असंभव कार्य वर्णन किया गया है। अतएव विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (परि० ६) में इसको अभिप्राय का उदाहरण दिया है। (१३) विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (परि० १०) में इस श्लोक को अनेकवाक्या निदर्शना का उदाहरण लिखा है। पूरे श्लोक में निदर्शना अलंकार है। ध्रुवम् के कारण उत्प्रेक्षा है। पूर्वार्ध में विरूप कार्यों के संघटन के कारण विषम अलंकार है। अव्याजमनोहरम् में विभावना अलंकार है। (१४) इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है। उसका लक्षण है—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। (१५) **विश्रब्धम्**—इसका भाव है कि राजा निःसंकोचभाव से उसको देखता है।

**५०. शकुन्तला**—सखि अनसूये, अतिपिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि। शिथिलय तावदेतत्। [सहि अणसूए, अदिपिणद्धेण वक्कलेण पिअंवदए णिअन्तिद ह्मि। सिढिलेहि दाव णं।]

शकुन्तला—सखी अनसूया, प्रियंवदा के द्वारा दृढ़ बाँधे हुए इस वल्कल (चोली) के द्वारा बहुत कष्ट में हूँ। इसको ढीला कर दे।

**५१. अनसूया**—तथा। [तह।] (इति शिथिलयति।)

अनसूया—अच्छा। (ढीला कर देती है)

**५२. प्रियंवदा**—(सहासम्) अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व। मां किमुपालभसे। [एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह। मं किं उवालहसि।]

---

पाठभेद—५२. नि० मां किमुपालभसे (मं किं उवालहसि) इति नास्ति।

प्रियंवदा—( हँसती हुई ) इस विषय में तू ( अपने ) स्तनों के विस्तार कारण अपनी युवावस्था को उलाहना दे। मुझे क्यों उलाहना ( दोष ) देती है।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१)—**पिनद्धम्**—अपि+नह्+क्त। भागुरि आचार्य मतानुसार अपि के अ का ऐच्छिक लोप हो जाता है। 'वष्टि भागुरिरल्लो मवाप्योरुपसर्गयोः'। इस नियम के अन्य प्रसिद्ध उदाहरण हैं—पिधानम्, पिधे पिदधाति आदि।(२) **नियन्त्रिता**—नि+यन्त्र्+णिच्+क्त+टाप्। (३) **शिथिल** —शिथिलं कुरु। शिथिल+णिच्+लोट्, तत्करोति० वार्तिक से णिच्। नामधातु का प्रयोग है। (४) **पयोधर०**—पयोधरयोः विस्तारयितृ। तत्पुरुष पयोधर—धरतीति धरः, धृ+अच्। पयसः धरः—पयोधरः। तत्पुरुष विस्तारयितृ—विस्तारयतीति, वि+स्तृ+णिच्+तृच्। (५) **उपालभस्व**— +आ+लभ्+लोट्।

५३. राजा सम्यगियमाह।

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ॥१९॥

अथवा काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरलङ्कार श्रियं न पुष्यति। कुतः—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥२०॥

**अन्वय**—स्कन्धदेशे उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्तनयुगपरिणाहाच्छादि वल्कलेन अस्याः इदम् अभिनवं वपुः पाण्डुपत्रोदरेण पिनद्धं कुसुमम् इव शोभां न पुष्यति।

राजा—यह ठीक कह रही है। कन्धे पर जिसमें छोटी गाँठ लगाई

---

पाठभेद—-५३. नि० का०—सम्यगियमाह। इदमुपहित० अयं श्लो अथवा, इति सर्वं नास्ति। नि० वयसो (आयु के)।

है, जो दोनों पयोधरों के विस्तार को ढके हुए है, ऐसे वल्कल-वस्त्र से इसका यह मनोहर शरीर, पीले पत्ते के मध्यभाग से ढके हुए फूल की तरह, अपनी शोभा को नहीं धारण कर रहा है ।।१९।।

अन्वय—शैवलेन अपि अनुविद्धं सरसिजं रम्यं ( भवति ), मलिनम् अपि लक्ष्म हिमांशोः लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेन अपि इयं तन्वी अधिकमनोज्ञा ( अस्ति ), हि मधुराणाम् आकृतीनां किमिव मण्डनं न ( भवति )।

अथवा भले ही ( यह ) वल्कलवस्त्र इसके शरीर के योग्य नहीं है, तथापि ( यह इसके लिए ) अलंकार की शोभा नहीं कर रहा है, ऐसी बात नहीं है ( अर्थात् कर ही रहा है )। क्योंकि—

शेवाल ( सेवार, काई ) से घिरा हुआ भी कमल मनोहर लगता है। काला कलंक भी चन्द्रमा की शोभा को बढ़ाता है। यह कृशांगी ( शकुन्तला ) वल्कल वस्त्रों से भी अति सुन्दर प्रतीत होती है, क्योंकि सुन्दर आकृतियों के लिए क्या वस्तु अलंकार नहीं होती है ? ।।२०।।

**संस्कृत-व्याख्या**—स्कन्धदेशे—अंसप्रदेशे, उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना—उपहितः दत्तः सूक्ष्मः क्षुद्रः ग्रन्थिः वन्धनं यस्य तेन, स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना—स्तनयुगस्य पयोधरद्वयस्य परिणाहं विस्तारम् आच्छादयति पिदधाति इति तच्छीलेन, वल्कलेन—धृतवल्कलकञ्चुकेन, अस्याः—शकुन्तलायाः, इदम्—एतत्, अभिनवं—मनोज्ञतरम्, वपुः—शरीरम्, पाण्डुपत्रोदरेण पाण्डुपत्राणां परिणामवशात् पीतदलानाम् उदरेण मध्यभागेन, पिनद्धम्—आच्छादितम्, कुसुममिव—पुष्पमिव, स्वां—स्वीयाम्, शोभां—कान्तिम्, न पुष्यति—न धारयति। उपमाऽलंकारः। मालिनी वृत्तम्। तल्लक्षणम्—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

सरसिजमिति। शैवलेन अपि—शैवालेनापि, अनुविद्धम्—आवृतम्, सरसिजं—पद्मम्, रम्यं—मनोहरं भवति। मलिनमपि—कृष्णवर्णमपि, लक्ष्म—चिह्नं कलङ्क इत्यर्थः, हिमांशोः—चन्द्रस्य, लक्ष्मीं—कान्तिम्, तनोति—वर्धयति। वल्कलेनापि—वल्कलवस्त्रैरपि, इयं तन्वी—एषा कृशाङ्गी शकुन्तला, अधिकमनोज्ञा—अधिकं मनोहारिणी वर्तते। हि—यतो हि, मधुराणाम्—मनोज्ञानाम्, आकृतीनाम्—वपुषाम्, किमिव—किं वस्तु, मण्डनम्—अलङ्करणम्, न—नैव भवति। सर्वमेव शोभनानामाकृतीनां शोभां वर्धयतीत्यर्थः। अत्र प्रतिवस्तूपमाऽर्थान्तरन्यासश्चालङ्कारौ। अत्र माधुर्यं नाम सात्त्विकोऽलंकारः, प्रसिद्धिर्नाम नाट्यलक्षणं च स्तः। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **उपहित०**—उपहितः सूक्ष्मः ग्रन्थिः यस्य तेन। बहु० । ( २ ) **स्कन्ध०**—स्कन्धस्य देशे। तत्पुरुष। ( ३ ) **स्तन०**—स्तनयुगस्य परिणाहम् आच्छादयतीति। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। परिणाह—परि+नह्+घञ्। ( ४ ) **पिनद्धम्**—अपि+नह्+क्त। अपि के अ का लोप। ( ५ ) **पाण्डु०**—पाण्डूनां पत्राणाम् उदरेण। तत्पुरुष। ( ६ ) **अनतु०**—रूपम् अनुगतम् अनुरूपम्। अव्ययी०। न अनुरूपम्। नञ् तत्पुरुष। ( ७ ) **अलंकार०**—अलंकारस्य श्रियम्। तत्पुरुष। अलंकारः—अलंक्रियते अनेन, अलम्+कृ+घञ्। ( ८ ) **सरसिजम्**—सरसि जातम् इति। सरसि+जन्+ड ( अ )। 'सप्तम्यां जनेर्डः' (३-२-९७) से ड प्रत्यय। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (६-३-१४) से सप्तमी का अलुक्। सप्तमी का वैकल्पिक अलुक् होने से सरोज भी रूप बनता है। ( ९ ) **अनुविद्धम्**—अनु+व्यध्+क्त। (१०) **अधिक०**—अधिकं मनोज्ञा। सुप्सुपा समास। मनोज्ञ—मनो जानाति इति। मनस्+ज्ञा+क ( अ )।

( १ ) **इदमुपहित०**—इस श्लोक में राजा प्रियंवदा का समर्थन करता हुआ वल्कल से शकुन्तला की शोभा को क्षति पहुँचने का वर्णन करता है। परन्तु फिर विचार करके वह मानता है कि वल्कल से भी उसकी शोभा न्यून नहीं होती। इसी का अगले श्लोक में वर्णन है। कुछ संस्करणों में इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया गया है। ये दोनों श्लोक वल्कलों के विषय में राजा की दो प्रकार की विचारधारा का वर्णन करते हैं, अतः दोनों श्लोक यहाँ रखे गए हैं। शकुन्तला और उसके वल्कलों को देखकर दुष्यन्त के तर्क-वितर्क का सुन्दर चित्रण है। 'पुष्यति स्वां न शोभाम्' का खण्डन 'न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्यति' से करता है। ( २ ) **पाण्डु०**—इसमें उदर शब्द का प्रयोग निरर्थक है। ( ३ ) **कामम्**—का अर्थ है—भले ही अथवा मैं यह मानता हूँ या स्वीकार करता हूँ कि। ( ४ ) **पुनः**—इसका यहाँ पर अर्थ है फिर भी या तथापि। (५) **वपुषः**—इसका भाव है कि वल्कल उसके सुन्दर शरीर के लिए सर्वथा अयोग्य है। यहाँ पर पाठान्तर 'वयसः' है। पूर्व श्लोक में 'वपुः' का वर्णन है, अतः वपुषः पाठ अधिक उपयुक्त है। शकुन्तला की आयु की अपेक्षा उसके शरीर के लिए वल्कल अनुचित बताना अधिक संगत है। (६) **न…न**—दो न अव्यय अवश्य अर्थ को सूचित करते हैं। ( ७ ) **सरसिजम्**—यह योगरूढ़ शब्द है। इसी प्रकार पंकज आदि भी योगरूढ हैं। ये यौगिक होते हुए भी विशेष अर्थ में रूढ हो गए हैं, अतः इनका यौगिक अर्थ में प्रयोग नहीं होगा। ( ८ ) **किमिव०**—यह प्रसिद्ध सूक्ति है। इस प्रकार के भाववाली अन्य सूक्तियाँ ये हैं—( क ) न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते। (कुमारसंभव ५-९), (ख) न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् (किराता० ४-२३), ( ग ) रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति

( किराता० ७-२ ), ( घ ) अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य ( मालविका० २), (ङ) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् (शाकुन्तल अंक ६), ( च ) सर्वशोभनीयं सुन्दरं नाम ( प्रतिमा० १ ), ( छ ) अथवा सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम् ( अविमारक २ ), ( ज ) स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते ( दृष्टान्तशतक ४९ ) । ( ९ ) इस श्लोक में एक सामान्यधर्म का ही तीन चरणों में रम्य, लक्ष्मीविस्तार और मनोज्ञ शब्दों के द्वारा कथन से प्रतिवस्तूपमा अलंकार है । चतुर्थ चरण में सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है । (१०) विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण ( ३-९७ ) में नायिकाओं के सात्त्विक अलंकारों में से माधुर्य नामक अलंकार का उदाहरण यह श्लोक दिया है । उसका लक्षण है—'सर्वावस्थाविशेषेषु माधुर्यं रमणीयता' । सारी अवस्थाओं में रमणीयता का होना । इस श्लोक में प्रसिद्धि नामक नाटकीय लक्षण है । उसका लक्षण है—'प्रसिद्धिर्लोकसिद्धार्थैरुत्कृष्टैरर्थसाधनम्' । ( सा० दर्पण ६-१९१ )

५४. **शकुन्तला**——(अग्रतोऽवलोक्य) एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः । यावदेनं सभावयामि । [एसो वादेरिदपल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ । जाव णं संभावेमि ।] (इति परिक्रामति ।)

शकुन्तला——( आगे की ओर देखकर ) यह बकुल ( मौलश्री ) का वृक्ष वायु के द्वारा हिलाई हुई पत्तेरूपी अंगुलियों से मुझको ( अपने पास आने के लिए ) शीघ्रता सा करा रहा है । तो इसका ( सेचन द्वारा ) सत्कार करती हूँ । (घूमती है ।)

५५. **प्रियंवदा**——हला शकुन्तले, अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ । [हला सउन्दले, एत्थ एव्व दाव मुहुत्तअं चिट्ठ ।]

प्रियंवदा—सखी शकुन्तला, थोड़ी देर यहीं रुक ।

५६. **शकुन्तला**——किं निमित्तम् । [किं णिमित्तं ।]

शकुन्तला——किस लिए ?

५७. **प्रियंवदा**——यावत् त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति । [जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि ।]

---

पाठभेद—५६. नि० का० किं निमित्तम् [किं णिमित्तं ], इदं नास्ति ।

**प्रियंवदा**—तेरे समीप रहने से यह बकुल ( मौलश्री ) का वृक्ष लता ( रूपी स्त्री ) से युक्त सा प्रतीत होता है।

५८. **शकुन्तला**—अतः खलु प्रियंवदाऽसि त्वम् । [अदो क्खु पिअंवदा सि तुमं ।]

**शकुन्तला**—अतएव तुम्हारा नाम प्रियंवदा ( मधुरभाषिणी ) है।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **वातेरित०**—पल्लवा एव अङ्गुल्यः पल्लवाङ्गुल्यः। कर्म० । वातेन ईरिताः पल्लवाङ्गुल्यः, ताभिः । तत्पुरुष । ईरित—ईर्+क्त। ( २ ) **त्वरयति**—त्वर्+णिच्+लट् । ( ३ ) **केसरवृक्षकः**—केसरः चासौ वृक्षकः । कर्मधारय । वृक्षकः—ह्रस्व वृक्षः, ह्रस्व अर्थ में कन् ( क ) प्रत्यय। ( ४ ) **संभावयामि**—सम्+भू+णिच्+लट् । ( ५ ) **उपगतया**—उप+गम्+क्त+टाप् तृ० । ( ६ ) **लता०**—लतया सनाथः । तत्पुरुष । सनाथः—नाथेन सह । बहु० । ( ७ ) **प्रियंवदा**—प्रियं वदतीति । प्रिय+वद्+खच् (अ) +टाप् । 'प्रियवशे वदः खच्' ( ३-२-३८ ) से खच् प्रत्यय और 'अरुर्द्विषद०' ( ६-३-६७ ) से प्रिय के बाद म् का आगम ।

( १ ) **पल्लवाङ्गुलीभिः**—यहाँ पर रूपक अलंकार है । पत्ते रूपी अंगुलियों से। ( २ ) **त्वरयतीव**—में इव से उत्प्रेक्षा है। ( ३ ) **केसरवृक्षकः**—मौलश्री के वृक्ष को केसर भी कहते हैं। इस पर छोटे सफेद फूल होते हैं। संस्कृत साहित्य में इसका वहुत वर्णन आता है। केसरवृक्षकः में पुंलिग के द्वारा पुरुष ( पति ) का अर्थ सूचित होता है, अतः समासोक्ति अलंकार है। ( ४ ) **संभावयामि**—संभावयति का मुख्यार्थ है—विशेष रूप से सोचना या स्मरण करना। इससे ही इसका अर्थ आदर करना या सत्कार करना हुआ है। ( ५ ) **लतासनाथः**—सनाथ का मुख्यार्थ है—नाथ अर्थात् पति के साथ। इसका गौण अर्थ है—सहित या युक्त। यहाँ पर युक्त अर्थ है। यहाँ पर केसरवृक्ष को पति और शकुन्तला को लतारूप में उसकी पत्नी बताया गया है। ( ६ ) **प्रियंवदा**—प्रियंवदा का यह नाम सार्थक है, क्योंकि वह वस्तुतः प्रिय बोलने वाली है।

५९. **राजा**—प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु—

**अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।**
**कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥२१॥**

**अन्वय**—अस्याः खलु अधरः किसलयरागः ( अस्ति ), बाहू कोमलविटपानुकारिणौ (स्तः), अङ्गेषु कुसुमम् इव लोभनीयं यौवनं संनद्धम् (अस्ति)।

**राजा—प्रियंवदा ने शकुन्तला से प्रिय बात के साथ ही सच बात कही है। अवश्य ही इसका—**

**अधर नये पत्तों के तुल्य लाल है। (इसकी) दोनों भुजाएँ कोमल शाखाओं के सदृश हैं। (इसके) अंगों में फूल की तरह मनोहर यौवन व्याप्त है ।।२१।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—अस्याः—शकुन्तलायाः, खलु—निश्चयेन, अधरः—अधरोष्ठः, किसलयरागः—किसलयस्य नूतनपल्लवस्य रागः रक्तता इव रागः यस्य सः तादृशोऽस्ति। बाहू—भुजौ, कोमल०—कोमलयोः मृदुलयोः विटपयोः शाखयोः अनुकारिणौ सदृशौ स्तः। अङ्गेषु—अवयवेषु, कुसुममिव—पुष्पमिव, लोभनीयं—मनोहरम्, यौवनं—तारुण्यम्, सन्नद्धं—व्याप्तमस्ति। अत्र पदोच्चयो नाम नाटकलक्षणमस्ति। उपमाऽलंकारः। आर्या जातिः।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **किसलय०**—किसलयस्य रागः। तत्पुरुष। किसलयरागः इव रागो यस्य। उष्ट्रमुखादिवत् उत्तरपदलोपी वहुव्रीहि। रागः—रञ्ज्+घञ्। ( २ ) **कोमल०**—अनुकरोतीति अनुकारी। कोमलयोः विटपयोः अनुकारिणौ। तत्पुरुष। अनुकारी—अनु+कृ+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में। ( ३ ) **यौवनम्**—यूनः भावः। युवन्+अण्। 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' ( ५-१-१३० ) से अण्। ( ४ ) **सन्नद्धम्**—सम्+नह्+क्त।

( १ ) **प्रियमपि**—प्रिय और सत्य वचन को सूनृत कहा जाता है। 'प्रियं तथ्यं च सूनृतम्'। साधारणतया प्रिय और सत्य का संमिश्रण कठिनाई से मिलता है। अतएव भारवि ने कहा है—( क ) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। (ख ) नहि प्रियं, प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः। ( ग ) अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः। कालिदास के इस प्रकार के अन्य प्रयोगों के लिए देखो—रघुवंश ८-९२, १४-६। ( २ ) इस श्लोक में शकुन्तला की लता से तुलना की गई है। शकुन्तला का वर्णन अति सुन्दर है। अधर नवपल्लवतुल्य है, दोनों वाहु पतली शाखाओं के तुल्य हैं, अंगों में फूलों सा मनोहर यौवन का सौन्दर्य है। ( ३ ) इसमें उपमा अलंकार और आर्या छन्द है। ( ४ ) इस श्लोक में पदोच्चय नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—'संचयोऽर्थानुरूपो यः पदानां स पदोच्चयः' ( सा० दर्पण ६-१८० )। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में पदोच्चय का यह उदाहरण दिया है। यहाँ पर अर्थ के अनुकल पदों में भी सुकुमारता है।

**६०. अनसूया—हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि।** [हला सउन्दले, इअं सअंवरवहू सहआरस्स

---

पाठभेद—६०. नि० विस्मृतवत्यसि ( भूल गई हो )।

तुए किदणामहेआ वणजोसिणित्ति णोमालिआ । णं विसुमरिदा सि ।]

**अनसूया**—सखी शकुन्तला, यह आम की स्वयंवर-वधू नवमालिका है, जिसका तूने वनज्योत्स्ना नाम रखा है। क्या इसको भूल गई ?

६१. **शकुन्तला**—तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि । (लतामुपेत्यावलोक्य च) हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः । नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना, बद्धपल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः । [तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं । हला रमणीए क्खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो । णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी, बद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो सहआरो ।] (इति पश्यन्ती तिष्ठति ।)

**शकुन्तला**—तब अपने आपको भी भूल जाऊँगी। (लता के पास जाकर और उसको देखकर) सखी, सुन्दर समय में इस लता और वृक्ष के जोड़े का मेल हो गया है। वनज्योत्स्ना नवीन फूलरूपी यौवन से युक्त है और आम पत्तों से युक्त होने के कारण (इसके) उपभोग के योग्य है। (देखती हुई रुक जाती है।)

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **स्वयंवर०**—स्वयं वृणुते असौ स्वयंवरा । स्वयं+वृ+खच्(अ)+टाप् । 'संज्ञायां भृतॄवृजि०' (३-२-४६) से खच् प्रत्यय। स्वयंवरा चासौ वधूः । कर्मधारय। (२) **सहकारः**—सह कारयति इति । सह+कृ+णिच्+अण् । (३) **कृत०**—कृतं नामधेयं यस्याः सा। बहु०। (४) **ज्योत्स्ना**—ज्योतिः अस्ति अस्यामिति । ज्योतिस्+न । मत्वर्थ में न । निपातन से यह रूप बनता है। (५) **रमणीयः**—रम्+अनीयर् (अनीय) । (६) **लता०**—लता च पादपश्च लतापादपौ। द्वन्द्व। तयोः मिथुनम्, तस्य । तत्पुरुष । पादपः—पाद+पा+क (अ) । (७) **व्यतिकरः**—वि+अति+कृ+घ । 'पुंसि संज्ञायां घः०' (३-३-११८) से घ प्रत्यय। (८) **नव०**—नवं कुसुममेव यौवनं यस्याः सा। बहु०। (९) **उपभोग०**—उपभोगस्य क्षमः । तत्पुरुष । उपभोगः—उप+भुज्+घञ् । (१०) **बद्ध०**—बद्धाः पल्लवाः यस्य सः । बहु०। तस्य भावः तया ।

(१) **स्वयंवर**—स्वयंवर के विवरण तथा उल्लेख के लिए देखो—मनु०

---

**पाठभेद**—६१. नि० का. स्निग्ध० (सिणिद्ध०) (चिकने)।

९-९०, ऋग्वेद १०. ८५. १३-१५। प्राचीनसमय में क्षत्रिय राजाओं में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। कन्या स्वयं पति का वरण करती थी। ( २ ) सहकारः—प्रियजनों को मिलाने के कारण संभवतः आम का यह नाम पड़ा है। कालिदास को लता और वृक्ष के स्वयंवर-विवाह का वर्णन रुचिकर था; अतएव अन्यत्र भी ऐसे वर्णन किए हैं। देखो—शाकुन्तल ४-१२, रघुवंश ३-६१। (३) **विस्मृता**—स्मृ को गत्यर्थक ( स्मरति मनसा गच्छति ) मानकर कर्तृवाच्य में क्त प्रत्यय है। ( ४ ) **व्यतिकरः**—संयोग, संगम। यहाँ दोनों के विवाह का भाव है। ( ५ ) **नवकुसुम०**—यहाँ पर कुसुम शब्द के दो अर्थ हैं—पुष्प और मासिकधर्म। रजोदर्शन के कारण वनज्योत्स्ना विवाह-योग्य हो चुकी है। (६) **बद्धपल्लवतया**—यहाँ पर पल्लवों से युक्त होने का भाव है कि आम भी पति के लिए आवश्यक समृद्धि से युक्त है। ( ७ ) यहाँ पर लता और आम में पति-पत्नी के व्यवहार के कारण समासोक्ति अलंकार है।

६२. **प्रियंवदा**—अनसूये, जानासि किं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति। [अणसूए, जाणासि किं सउन्दला वनजोसिणिं अदिमेत्तं पेक्खदि त्ति।]

**प्रियंवदा**—अनसूया, तू जानती है कि शकुन्तला वनज्योत्स्ना को किस लिए बहुत अधिक देख रही है?

६३. **अनसूया**—न खलु विभावयामि। कथय। [ण क्खु विभावेमि। कहेहि।]

**अनसूया**—नहीं जानती हूँ। बताओ।

६४. **प्रियंवदा**—यथा वनज्योत्स्नाऽनुरूपेण पादपेन संगता, अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति। [जह वणजोसिणी अणुरूवेण पादवेण संगदा, अवि णाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअं त्ति।]

**प्रियंवदा**—( वह सोचती है ) "जिस प्रकार वनज्योत्स्ना अपने अनुरूप वृक्ष से मिल गई है, क्या मैं भी अपने अनुरूप वर को पाऊँगी"?

६५. **शकुन्तला**—एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः। [एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो।] (इति कलशमावर्जयति)

**शकुन्तला**—यह अवश्य ही तेरी अपनी इच्छा है। (घड़ा उलटती है।)

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **अतिमात्रम्**—अतिक्रान्ता मात्रा यस्मिन् तत्। बहु०। ( २ ) **विभावयामि**—वि+भू+णिच्+लट् उ० १। ( ३ ) **अनुरूपेण**—रूपस्य योग्यम्, तेन। अव्ययीभाव। ( ४ ) **आत्मगतः**—आत्मानं गतः तत्पुरुष। ( ५ ) **आवर्जयति**—आ+वृज्+णिच्+लट् प्र० १।

( १ ) **अतिमात्रम्**—मात्रा का अतिक्रमण करके, अर्थात् बहुत अधिक। ( २ ) **विभावयामि**—अनुमान द्वारा जानना या अनुमान करना। ( ३ ) **अपि नाम**—यहाँ पर अपि प्रश्न अर्थ में है और नाम संभावना अर्थ में। अतः इसका अर्थ है—क्या यह संभव है कि। 'अपि नाम' का प्रयोग केवल प्रश्न अर्थ में भी होता है। ( ४ ) प्रियंवदा ने शकुन्तला की वास्तविक मनोदशा का वर्णन किया है, अतएव राजा को अवसर प्राप्त हुआ है कि वह शकुन्तला से विवाह का विचार करे। ( ५ ) **मनोरथः**—मनसः रथः, मन का रथ। इच्छा मन के भावों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती है, जिस प्रकार रथ मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाता है। अतः इच्छा को मन का रथ कहा गया है। ( ६ ) **आवर्जयति**—इसका अर्थ है, झुकाना, उलटना या नीचे की ओर करना। यहाँ पर पेड़ों को सींचने के लिए घड़े को उलटना अर्थ है। इस धातु के अन्य प्रयोगों के लिए देखो—कुमारसंभव ५.३४, ७. १०, रघु० १३. २४, मेघदूत ४६।

**६६. राजा—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्। अथवा कृतं सन्देहेन।**

**असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा**
**यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।**
**सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु**
**प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥२२॥**

**तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये।**

**अन्वय**—( इयम् ) असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा ( अस्ति ), यत् मे आर्यं मनः अस्याम् अभिलाषि ( अस्ति )। हि सन्देहपदेषु वस्तुषु सताम् अन्तःकरणप्रवृत्तयः प्रमाणम्।

**राजा**—क्या यह संभव है कि यह ( शकुन्तला ) महर्षि कण्व की असवर्ण स्त्री ( ब्राह्मणेतर पत्नी ) से उत्पन्न हुई हो? अथवा सन्देह की आवश्यकता नहीं।

यह अवश्य ही क्षत्रिय के द्वारा पत्नी के रूप में स्वीकार करने योग्य है,

क्योंकि मेरा श्रेष्ठ मन इसको चाहता है। सन्देहास्पद विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं ॥२२॥

फिर भी वास्तविकरूप से इस ( शकुन्तला ) का पता चलाऊँगा।

६७. **शकुन्तला**—(ससंभ्रमम्) अम्मो, सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते। [अम्मो, सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ।] (इति भ्रमरबाधां रूपयति।)

**शकुन्तला**—( भय के साथ ) ओह, जल के सेचन से घबड़ा कर उठा हुआ वह भौंरा नवमालिका को छोड़कर मेरे मुँह की ओर आ रहा है।

( भौंरे से पीड़ा का नाटय करती हैं। )

**संस्कृत-व्याख्या**—इयं—शकुन्तला, असंशयम्—निःसन्देहम्, क्षत्रपरिग्रहक्षमा—क्षत्रस्य क्षत्रियस्य परिग्रहस्य पत्नीत्वेन ग्रहणस्य क्षमा योग्या अस्ति, यत्—यस्मात्, मे—मम कुलीनस्य, आर्यं—श्रेष्ठम्, मनः—हृदयम्, अस्यां—शकुन्तलायाम्, अभिलाषि—साभिलाषम् अस्ति। हि—यतो हि, सन्देहपदेषु—संशयास्पदेषु, वस्तुषु—विषयेषु, सतां—पवित्रात्मनाम्, अन्तःकरणप्रवृत्तयः—अन्तःकरणस्य चित्तस्य प्रवृत्तयः प्रकृष्टाः वृत्तयः, प्रमाणम्—निर्णायकम्। सन्देहपदेषु वस्तुषु इत्यत्र पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः। अत्राऽर्थान्तरन्यासाप्रस्तुतप्रशंसाकाव्यलिङ्गानि अलंकाराः। अत्र दुष्यन्तस्य शकुन्तलां प्रति प्रेमरूपस्य काव्यार्थस्य निश्चितत्वेनोपन्यासात् परिन्यासनामकं मुखसन्धेरङ्गमस्ति। तल्लक्षणं दर्पणे—"तन्निष्पत्तिः परिन्यासः"। वंशस्थं वृत्तम्।

## टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **असवर्ण०**—समानो वर्णो यस्य तत् सवर्णम्। बहु०। न सवर्णम् असवर्णम्। तत्पुरुष। असवर्णं क्षेत्रम् असवर्णक्षेत्रम्। कर्मधारय। असवर्णक्षेत्रात् संभवः उत्पत्तिः यस्याः सा। बहु०। सवर्ण में समान को स, 'ज्योतिर्जनपद०' ( ६-३-८५ ) सूत्र से। अथवा असवर्णक्षेत्रं संभवः उत्पत्तिस्थानं यस्याः सा। बहुव्रीहि। संभव—सम्+भू+अप् ( अ )। ( २ ) **कृतं सन्देहेन**—'गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' वार्तिक के नियम से तृतीया। निषेधार्थक अलम्, कृतम् के साथ तृतीया होती है। ( ३ ) **असंशयम्**—अविद्यमानः संशयः यस्मिन् तत्। बहु०। संशय—सम्+शी+अच् (अ)। ( ४ ) **क्षत्र०**—क्षत्रस्य परिग्रहस्य क्षमा। तत्पुरुष। ( ५ ) **अभिलाषि**—अभि+लष्+ णिनि ( इन् )। ताच्छील्य अर्थ में णिनि 'सुप्यजातौ णिनिः०'

( ३-२-७८ ) से। नपुंसकलिंग मनोहारिन् के तुल्य इसके रूप चलेंगे। ( ६ ) **सताम्**—अस्+शतृ++षष्ठी बहु०। ( ७ ) **सन्देह०**—सन्देहस्य पदेषु। तत्पुरुष। सन्देह—सम्+दिह्+घञ्। ( ८ ) **अन्तःकरण०**—अन्तःकरणस्य प्रवृत्तयः। तत्पुरुष। करण—कृ+ल्युट् (अन), क्रियते अनेन अति। अन्तःस्थं करणम् अन्तःकरणम्। शाकपार्थिव आदि के तुल्य उत्तरपदलोप। प्रवृत्ति—प्र+वृत्+क्तिन् ( ति )। ( ९ ) **प्रमाणम्**—प्र+मा+ल्युट् ( अन )। प्रमाण शब्द नपुंसकलिंग एकवचन रहता है, अतः बहुवचन के साथ भी नपुं० एक० है। (१०) **सलिल०**—सलिलस्य सेकेन संभ्रमः, तेन उद्गतः। तत्पुरुष। सेक—सिच्+घञ्। 'चजोः कु०' ( ७-३-५२ ) से च् को क्। उद्गत—उद्+गम्+क्त। (११) **उज्झित्वा**—उज्झ्+क्त्वा। (१२) **अभिवर्तते**—'अभिरभागे' ( १-४-९१ ) सूत्र से अभि के कर्मप्रवचनीय होने से वदनम् में द्वितीया 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' ( २-३-८ ) सूत्र से।

( १ ) **असवर्णक्षेत्र०**—क्षेत्र का अर्थ पत्नी है। राजा के मन में सन्देह उत्पन्न होता है कि संभवतः शकुन्तला कण्व की ब्राह्मणेतर पत्नी से उत्पन्न हुई है। यदि ऐसा है तो उसका विवाह शकुन्तला से हो सकता है। मनु का कथन है कि—अपने वर्ण की कन्या से विवाह सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त अपने से निम्न वर्ण की कन्या से भी विवाह किया जा सकता है, परन्तु अपने से उत्तम वर्ण की कन्या से नहीं। जैसे ब्राह्मण सभी वर्णों की कन्या से, क्षत्रिय ब्राह्मणेतर कन्या से। जो निम्न वर्ण की कन्या से विवाह करता था, वह वर्णसंकर का दोषी होने से वर्णच्युत माना जाता था। "सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि। कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः॥ शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः" ॥ (मनु० ३-१२, १३)। ( २ ) **कृतं सन्देहेन**—राजा विश्वासपूर्वक कहता है कि उसका विवाह शकुन्तला से अवश्य होगा। ( ३ ) **क्षत्रपरिग्रह०**—शकुन्तला के माता-पिता में से एक अवश्य क्षत्रिय है, अतः उसका विवाह शकुन्तला से हो सकता है। ( ४ ) **आर्यं मनः**—मेरा मन पवित्र है, अतः विवाह के अयोग्य कन्या की ओर नहीं जा सकता है। ( ५ ) **सतां हि०**—सन्देहास्पद स्थलों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ प्रमाण होती हैं। तदनुसार कार्य करना चाहिए। अतएव मनु का कथन है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च' ( मनु० २—६ )। ( ६ ) **प्रमाणम्**—प्रमाण शब्द नपुंसकलिंग एकवचन रहता है, अतः बहुवचन के साथ भी प्रमाणम् का प्रयोग है। ( ७ ) यह श्लोक दशरूपक ( प्रकाश ४ ) में अभिलाष का उदाहरण दिया गया है। अभिलाषा शृंगार रस के भेद अयोग की १० अवस्थाओं में से एक है। कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक में इस श्लोक का उत्तरार्ध उद्धृत किया है। ( ८ ) इस श्लोक में परिन्यास नामक मुखसंधि का अंग है। उसका लक्षण है—तन्निष्पत्तिः परिन्यासः ( सा० दर्पण ६-८४ )। यहाँ पर दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति प्रेमरूपी

काव्यार्थ का निश्चितरूप से उल्लेख है। (९) इस श्लोक में 'सन्देहपदेषु वस्तुषु' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार है, पद का अर्थ वस्तु भी है। उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्ध विशेष का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। क्षत्रपरिग्रह० में अप्रस्तुतप्रशंसा है, मेरे विवाह के योग्य न कहकर क्षत्रिय के विवाह-योग्य ऐसा सामान्यरूप से वर्णन है। द्वितीय चरण प्रथम चरण का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। वंशस्थ छन्द है। (१०) तत्त्वतः—तथापि वास्तविक स्थिति का ठीक-ठीक पता चलाऊँगा। (११) मधुकरः—शकुन्तला के मुख को कमल समझकर भ्रमर उसकी ओर आ रहा है और उसे काटने का प्रयत्न कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि वह पद्मिनी स्त्री थी। पद्मिनी का लक्षण है—भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा, अविरलकुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशाङ्गी। मृदुवचनसुशीला नृत्यगीतानुरक्ता, सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा॥ (रतिमंजरी)

**६८. राजा—(सस्पृहं विलोक्य) साधु, बाधनमपि रमणीयमस्याः।**

**यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते**
**ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।**
**विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते**
**भयादकामाऽपि हि दृष्टिविभ्रमम्॥२३॥**

**अपि च। (सासूयमिव)**

**चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं**
**रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।**
**करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं**
**वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥२४॥**

अन्वय—हि यतः यतः षट्चरणः अभिवर्तते, ततः ततः प्रेरितवामलोचना विवर्तितभ्रूः इयं भयात् अकामा अपि अद्य दृष्टिविभ्रमं शिक्षते।

राजा—(चाव से देखकर) धन्य हो, इसका खिन्न होना भी सुन्दर है। क्योंकि जिधर-जिधर भौंरा जाता है, उधर-उधर सुन्दर नेत्रों को घुमाकर और भौंहों को तानकर यह भय के कारण, कामभावना के बिना भी, आज कटाक्षपात सीख सी रही है॥२३॥

---

पाठभेद—६८. नि० का० (विलोक्य)…यतो यतः० अयं श्लोकः।…सासूयमिव, इति सर्वं नास्ति।

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—हि—यस्मात् कारणात्, यतो यतः—यस्यां यस्यां दिशि, षट्चरणः—भ्रमरः, अभिवर्तते—अनुधावति, ततस्ततः—तस्यां तस्यां दिशि, प्रेरितवामलोचना—निक्षिप्तसुन्दरनेत्रा, विवर्तितभ्रूः—परिवर्तितभृकुटिः, इयं—शकुन्तला, भयात्—भीत्या, अकामाऽपि—कामभावरहिताऽपि, अनिच्छन्ती अपि वा, अद्य—अधुना, दृष्टिविभ्रमं—कटाक्षनिक्षेपम्, शिक्षते—अभ्यस्यतीव। अत्र कारणस्य सकामत्वस्याभावेऽपि कार्योत्पत्तेर्विभावनाऽलंकारः। भयादित्युक्तेः उक्तनिमित्तः सः। शिक्षते इत्यत्र शिक्षते इवेत्यर्थात् प्रतीयमानोत्प्रेक्षा। वंशस्थं वृत्तम्।

**अन्वय**—( हे ) मधुकर, ( त्वं ) चलापाङ्गां वेपथुमतीं दृष्टि बहुशः स्पृशसि, रहस्याख्यायी इव कर्णान्तिकचरः ( सन् ) मृदु स्वनसि, करौ व्याधुन्वत्याः रतिसर्वस्वम् अधरं पिबसि, वयं तत्त्वान्वेषात् हताः, त्वं खलु कृती।

**और भी। (ईर्ष्याभाव से मानो)**

**हे भ्रमर, तू चंचल-नेत्रान्त वाले तथा काँपते हुए नेत्रों का बार-बार स्पर्श ( चुम्बन ) कर रहा है। रहस्य की बात कहने वाले के तुल्य तू कान के पास जाकर मधुर गुंजन कर रहा है। हाथों को हिलाती हुई ( शकुन्तला ) के काम के सर्वस्व-स्वरूप अधर का पान (चुम्बन) कर रहा है। हम तथ्य के अनुसन्धान में (ही) मारे गए, तू वस्तुतः कृतकृत्य है ॥२४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे मधुकर—हे मधुप, त्वं चलापांगां—चलौ चपलौ अपांगौ नेत्रान्तभागौ यस्याः ताम्, वेपथुमतीं—कम्पमानाम्, दृष्टिं—नेत्रम्, बहुशः—बहुवारम्, स्पृशसि—स्पर्शं करोषि चुम्बसीत्याशयः। रहस्याख्यायी इव—रहस्यं गोप्यम् आख्यातुं वक्तुं शीलमस्य स इव, कर्णान्तिकचरः—श्रवणसमीपगः सन्, मृदु—मधुरम्, स्वनसि—गुञ्जसि। करौ—हस्तौ, व्याधुन्वत्याः—विशेषेण चालयन्त्याः, रतिसर्वस्वं—कामसाररूपम्, अधरम्—अधरोष्ठम्, पिबसि—आस्वादयसि चुम्बसीत्यर्थः। वयम्—अहम्, तत्त्वान्वेषात्—तथ्यजिज्ञासयैव, हताः—भग्नमनोरथाः जाताः, त्वं खलु—त्वं निश्चयेन, कृती—सफलमनोरथः। अत्र नीलोत्पलादिभ्रान्त्या भ्रान्तिमान् अलंकारः, 'वयं हताः त्वं कृती' इति व्यतिरेकः, मधुकरे नायकत्वारोपात् समासोक्तिः, द्वितीयचरणे स्वभावोक्तिः, 'त्वं कृती' इत्यत्र चरणत्रयस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गम्। शिखरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—(१) **सस्पृहम्**—स्पृहया सहितम्। अव्ययीभाव। 'अव्ययीभावे चाकाले' (६-३-८१) से सह को स। (२) **यतो यतः**—सप्तमी

के अर्थ में तसिल् (तः) 'इतराभ्योऽपि दृश्यते' (५-३-१४) से। (३) **षट्चरणः**—षट् चरणाः यस्य सः। बहुव्रीहि। (४) **प्रेरित०**—प्रेरिते वामे लोचने यया सा। बहु०। (५) **विवर्तितभ्रूः**—विवर्तिता भ्रूः यया सा। बहु०। (६) **भयात्**—हेत्वर्थ में पंचमी। (७) **अकामा**—न कामः यस्याः सा। बहु०। (८) **दृष्टि०**—दृष्टेः विभ्रमम्। तत्पुरुष। दृष्टि—दृश्+क्तिन् (ति)। (९) **सासूयम्**—असूयया सहितम्। अव्ययीभाव। (१०) **चला०**—चलौ अपाङ्गौ यस्याः ताम्। बहु०। (११) **वेपथु०**—वेपथुः अस्ति अस्याः ताम्। अस्त्यर्थ में मतुप्। वेपथु—वेप्+अथुच् (अथु) 'ट्वितोऽथुच्' (३-३-८९) से। (१२) **रहस्या०**—रहस्यम् आख्यातुं शीलमस्य सः। रहस्य+आ+चक्ष्+णिनि। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। चक्ष् धातु को ख्या आदेश 'चक्षिङः ख्याञ्' (२-४-५४) से। ख्या धातु का केवल सार्वधातुक में प्रयोग होता है, आर्धधातुक में नहीं। रहस्य—रहसि भवम्, रहस्+यत् (य)। (१३) **कर्णा०**—कर्णयोः अन्तिकम्। तत्पुरुष। तत्र चरतीति। कर्णान्तिक+चर्+ट (अ)। 'चरेष्टः' (३-२-१६) से ट। (१४) **व्याधुन्वत्याः**—वि+आ+धु+शतृ+ङीप्। धू धातु पाँच गणों में है। उनके प्रयोगों का उदाहरण कविरहस्य में है—'धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम्। वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून् यत्कानने धवति चन्दनमंजरीश्च॥' (१५) **रति०**—रत्याः सर्वस्वम्। तत्पुरुष। (१६) **तत्त्वा०**—तत्त्वस्य अन्वेषात्। तत्पुरुष। हेत्वर्थ में पंचमी। अन्वेष—अनु+इष्+घञ्। (१७) **वयम्**—अहम् के अर्थ में वहुवचन का प्रयोग 'अस्मदो द्वयोश्च' (१-२-५९) से। (१८) **कृती**—कृतम् अस्यास्तीति। मत्वर्थ में इनि 'अत इनिठनौ' (५-२-११५) से। कृत+इन्। मल्लिनाथ, माधव आदि ने 'इष्टादिभ्यश्च' (५-२-८८) से यहाँ पर इनि माना है। इष्टादिगण में कृत शब्द नहीं है, उसको आकृतिगण मानने पर ऐसा हो सकता है।

(१) **यतो यतः**—यह श्लोक कई संस्करणों में नहीं है। भाव और प्रसंग की दृष्टि से उचित समझकर यहाँ इसको रखा गया है। (२) **सस्पृहम्**—यह सूचित करता है कि राजा शकुन्तला पर आसक्त है। (३) **अकामा**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं। (क) कामभावना के बिना भी वह मानो कटाक्षपात सीख रही है। सकाम स्त्री ही कटाक्षपात सीखती है। उत्प्रेक्षा होने से यह अर्थ मानने में कोई आपत्ति नहीं है। (ख) बिना इच्छा के ही, न चाहती हुई भी। (४) **दृष्टिविभ्रमम्**—दृष्टि-संचार। यहाँ पर कटाक्षपात अर्थ है। (५) इस श्लोक में सकामतारूपी कारण के बिना ही कटाक्षपात-शिक्षणरूपी कार्य के होने से विभावना अलंकार है। शिक्षते में गम्यमाना उत्प्रेक्षा है। (६) **सासूयमिव**—यह राजा की शकुन्तला पर आसक्ति की अन्तिम कोटि को सूचित करता है। वह भौंरे के द्वारा भी शकुन्तला का अङ्गस्पर्श असह्य समझता है। जो एक प्रेमी प्रेममग्न होकर प्रेयसी के साथ करता है, वे ही कार्य भ्रमर

कर रहा है। यथा—कपोल-स्पर्श, प्रणयसंलाप, अधर-चुम्बन आदि। (७) **दृष्टिम्**—यहाँ दृष्टि का अर्थ नेत्र है, स्पर्श का अभिप्राय चुम्बन है। (८) **करौ**—भयभीत होकर आत्मरक्षा के लिए दोनों हाथों को हिलाना स्वाभाविक है, अतः द्विवचन वाला पाठ यहाँ रखा गया है। (९) **रतिसर्वस्वम्**—प्रेम का सर्वस्व। प्रेयसी के अधर-मधु का पान सौभाग्य का चिह्न माना गया है। अतः भारवि का कथन है—अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति (किराता०)। अधर-पान का अर्थ अधरचुम्बन है। (१०) **मधुकर**—यहाँ पर मधुपान का भाव होने से 'मधुप' पाठ अधिक उचित है। इसके लिए यह पाठ उचित है—'वयं तत्त्वान्वेषान्मधुप निहतास्त्वं खलु कृती'। (११) **हताः**—मारे गए अर्थात् हम असफल-मनोरथ रहे और तू सफलमनोरथ रहा। ऐसे प्रसंगों में भ्रमर जैसे अशिष्ट व्यक्ति सफल रहते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी अप्रतिष्ठा का भय नहीं होता है। शिष्ट व्यक्ति अप्रतिष्ठा के भय से ऐसा कार्य नहीं कर सकते। यही भ्रमर और राजा में अन्तर है। (१२) इस श्लोक में कमल के भ्रम से शकुन्तला से भ्रमर का यह व्यवहार होने से भ्रान्तिमान् अलंकार है। 'वयं हताः त्वं कृती' में उपमान राजा से उपमेय भ्रमर की विशेषता होने से व्यतिरेक अलंकार है। मधुकर में नायक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति है। 'त्वं कृती' के लिए पहले तीन चरण कारण हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है। शिखरिणी छन्द है। (१३) **लोलाम्०**—इस श्लोक में पूर्वोक्त भाव को ही प्रायः दुहराया गया है। अतः प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

**६९. शकुन्तला—नैष धृष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। (पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽप्यागच्छति। हला, परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेणाभिभूयमानाम्।** [ण एसो धिट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। कहं इदो वि आअच्छदि। हला, परित्ताअह मं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण अहिहूअमाणं।]

**शकुन्तला**—यह ढीठ (भौंरा) नहीं मान रहा है। मैं दूसरी जगह जाती हूँ। (थोड़ा चलकर रुककर दृष्टिपात करते हुए) क्यों, यह इधर भी आ रहा है। सखी, इस दुष्ट भ्रमर से तंग की जाती हुई मुझको बचाओ।

---

पाठभेद—६९. नि० दुष्टो [दुट्ठो] (दुष्ट)। का० (पदान्तरे०), इति नास्ति। नि० दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम्। [दुट्ठमहुअरेण पडिहूअमाणं।] (दुष्ट भौंरे से पीडित)

Funding by IKS-MoE

**७०. उभे--(सस्मितम्) के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षित्तव्यानि तपोवनानि नाम।** [का वअं परित्तादुं। दुस्सन्दं अक्कन्द। राअरक्खिदव्वाइं तवोवणाइं णाम।]

दोनों--( मुस्कराती हुई ) हम दोनों बचाने वाली कौन हैं ? दुष्यन्त को पुकारो। तपोवन राजा के द्वारा रक्षणीय होते हैं।

**७१. राजा--अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यं न भेतव्यम्--(इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु। एवं तावदभिधास्ये।**

राजा--अपने आपको प्रकट करने का यह ( उचित ) अवसर है। मत डरो, मत डरो। ( इतनी आधी बात कहकर, स्वगत ) किन्तु ( इससे मेरा ) राजत्व प्रकट हो जायगा। अच्छा, इस प्रकार कहूँगा।

**७२. शकुन्तला--(पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽपि मामनुसरति।** [कहं इदो वि मं अणुसरदि।]

शकुन्तला--( थोड़ा चलकर रुककर दृष्टिपात करते हुए ) क्यों, यह इधर भी मेरा पीछा कर रहा है।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**--(१) **घृष्टः**--धृष्+क्त। 'धृषिशसी वैयात्ये' (७-२-१९) से इट् का अभाव। (२) **विरमति**--'व्याङ्परिभ्यो रमः' (१-३-८३) से वि+रम् परस्मैपदी हो जाती है। (३) **अन्यतः**--सप्तमी के अर्थ में तसिल्। (४) **दुर्विनीतः**--दुष्टं विनीतः। सुप्सुपा समास। अथवा दुष्टं विनीतं यस्य। बहु०। (५) **राज०**--राज्ञा रक्षितव्यानि। तत्पुरुष। (६) **तपोवनानि**--तपोऽर्थं वनम्। तत्पुरुष। अथवा तपसः साधनं वनम्। शाकपार्थिवादिवत् उत्तरपदलोपी समास। (७) **प्रकाशयितुम्**--अवसर शब्द को कालार्थक मानकर 'कालसमयवेलासु तुमुन्' (३-३-१६७) से तुमुन्। (८) **भेतव्यम्**--भी+तव्यत्। (९) **राजभावः**--राज्ञः भावः। तत्पुरुष। (१०) **अभिधास्ये**--अभि+धा+लृट्।

(१) **दुष्यन्तमाक्रन्द**--नाटककार ने दुष्यन्त को प्रकट होने का अवसर देने के लिए यह वाक्य कहलाया है। भ्रमर का आक्रमण, शकुन्तला का भयभीत होना और इस प्रकार राजा का रक्षार्थ सहसा प्रवेश, सब स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह वाक्य नाटककार की नाटकीय दक्षता का द्योतक है। (२) **न भेतव्यम्**--राजा वृक्ष की ओट से ही यह कहता है। अतः यहाँ पर इससे पूर्व रंगमंचीय निर्देश नहीं है। (३) **स्वगत**--जो बात [illegible] नाटकीय पात्रों को न सुनानी

हो, उसे स्वगत कहते हैं। वह बात मन ही मन या गुनगुना कर कही जाती है। स्वगत का लक्षण है—'अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्' (सा० दर्पण ६-१३७)। साधारणतया स्वगत ऐसी ध्वनि में बोला जाता है कि दर्शक उसे सुन सकें। इसके विपरीत जो बात सबको सुनाने के योग्य होती है, उसे 'प्रकाशम्' (प्रकट) कहते हैं।

**७३. राजा—(सत्वरमुपसृत्य)**

**कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।**
**अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥२५॥**
**( सर्वा राजानं दृष्ट्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः )**

**अन्वय**—दुर्विनीतानां शासितरि पौरवे वसुमतीं शासति (सति) कः अयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु अविनयम् आचरति।

**राजा—( शीघ्रतापूर्वक पास जाकर )**

**दुष्टों के शासक पुरुवंशी राजा ( दुष्यन्त ) के पृथ्वी का शासन करते समय यह कौन है, जो भोली भाली तपस्वि-कन्याओं से अशिष्टता का व्यवहार कर रहा है ॥२५॥ ( राजा को देखकर सभी कुछ घबड़ा जाती हैं। )**

**संस्कृत-व्याख्या**—दुर्विनीतानां—दुष्टानाम्, शासितरि—शासके, पौरवे—पुरुवंशोत्पन्ने नृपे दुष्यन्ते, वसुमतीं—भूमिम्, शासति सति—रक्षति सति, कोऽयम्—कोऽसौ दुष्टः, मुग्धासु—सरलासु, तपस्विकन्यासु—मुनिबालिकासु, अविनयम्—अशिष्टव्यवहारम्, आचरति—समाचरति। अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः। दण्डनामकं मुखसन्ध्यङ्गं चास्ति। आर्या जातिः।

**व्याकरणादिः**—(१) **पौरवे**—पुरोः गोत्रापत्यं पुमान् पौरवः। पुरु+अण्। गोत्रोत्पन्न अपत्य अर्थ में अण् 'पुरोरण् वक्तव्यः' (४-१-१६८) वार्तिक से। (२) **शासितरि**—शास्+तृच्। तृच् प्रत्यय के कारण दुर्विनीतानाम् में 'कर्तृकर्मणोः कृति' (२-३-६५) से षष्ठी। यहाँ पर शासिता शब्द शास्+तृन् अर्थात् तृन् प्रत्यय से नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि तब 'न लोकाव्यय०' (२-३-६९) सूत्र से निषेध होने से दुर्विनीतानाम् में षष्ठी नहीं हो सकेगी। (३) **शासति**—'यस्य च भावेन०' (२-३-३७) से सप्तमी, अथवा 'षष्ठी चानादरे' (२-३-३८) से अनादर अर्थ में सप्तमी। (४) **तपस्वि०**—तपस्विनां कन्यासु। तत्पुरुष।

(१) **पौरवे**—पुरुवंश में उत्पन्न राजा। यहाँ ध्यान रखें कि राजा ने 'मयि' (मुझ पुरुराजा के०) न कहकर पुरुवंशी राजा दुष्यन्त और अपने में अन्तर

---

पाठभेद—७३. का० आः ( ओह ), इत्यधिकः पाठः।

प्रकट किया है, जिससे उसे ही दुष्यन्त न समझा जाय। (२) **दुर्विनीतानाम्०**—इससे स्पष्ट होता है कि राजा दुष्टों को कठोर दण्ड देता था और अनुशासन का पालन करता था। (३) **मुग्धासु**—भोली-भाली, सरल। अतएव भ्रमर का अपराध और भी अक्षम्य था। मुग्धा का लक्षण है—प्रथमावतीर्णयौवनमदविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।। (सा० दर्पण ३-५८)। (४) यहाँ पर प्रस्तुत दुष्यन्त और शकुन्तला का अप्रस्तुत पौरव और तपस्विकन्या के रूप में वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। (५) यहाँ पर दण्ड नामक मुखसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—'दण्डस्त्वविनयादीनां दृष्टचा श्रुत्या च तर्जनम्' (सुधाकर)।

**७४. अनसूया—आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता।** [अज्ज, ण क्खु किं वि अच्चाहिदं। इयं णो पिअसही महुअरेण अहिहूअमाणा कादरीभूदा।] **(इति शकुन्तलां दर्शयति)**

अनसूया—आर्य, कोई संकट नहीं है। यह हमारी प्रियसखी भ्रमर के द्वारा तंग की जाती हुई दुःखित हो गई थी। (शकुन्तला को दिखाती है।)

**७५. राजा—(शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) अपि तपो वर्धते। (शकुन्तला साध्वसादवचना तिष्ठति।)**

राजा—(शकुन्तला की ओर मुँह करके) क्या (आपका) तप बढ़ रहा है? (शकुन्तला भय से मौन खड़ी रहती है।)

**७६. अनसूया—इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले, गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।** [दाणिं अदिहिविसेसलाहेन। हला सउन्दले, गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि।]

अनसूया—(हाँ) इस समय विशेष अतिथि (आप) के शुभागमन से। सखी शकुन्तला, कुटी में जा और फलयुक्त अर्घ ला। यह (घड़े का जल) पादोदक (पैर धोने के लिए जल) हो जाएगा।

**७७. राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।**

राजा—आपके सत्य और प्रिय वचन से ही आतिथ्य-कार्य हो गया।

**७८. प्रियंवदा—तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्ण-**

वेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। [तेण हि इमस्सिं पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए मुहुत्तअं उववि‍सिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो।]

**प्रियंवदा**—तो घनी छाया के कारण शीतल इस सप्तवर्ण वृक्ष की वेदी ( चबूतरे ) पर थोड़ी देर बैठकर श्रीमान् अपनी थकान दूर कर लें।

### टिप्पणी

**व्याकरणादिः**—( १ ) **अत्याहितम्**—अतीव आधीयते स्म मनसि, जो मन पर बहुत गहरा प्रभाव पहुँचाता है, अतः महाभय या संकट। अति+आ+धा+क्त। धा को हि। ( २ ) **कातरीभूता**—अकातरा कातरा भूता इति। च्वि प्रत्यय 'कृभ्वस्तियोगे०' ( ५-४-५० ) से और 'अस्य च्वौ' ( ७-४-३२ ) से अ को ई। ( ३) **शकुन्तला०**—शकुन्तलाया अभिमुखः। तत्पुरुष। अभिमुखः—अभिगतं मुखमस्य सः। बहु०। 'प्रादिभ्यो धातुजस्य०' नियम से बहु० और उत्तरपद का लोप। ( ४ ) **साध्वसात्**—साधु सम्यक्तया अस्यति क्षिपति हृदयं यत् तत्। साधु+अस्+अच्। पचाद्यच्। हेत्वर्थ में पंचमी। ( ५ ) **अतिथि०**—अतिथीनां विशेषः, तस्य लाभेन। तत्पुरुष। अतिथिविशेषः में 'न निर्धारणे' ( २-२-१० ) से समास का निषेध नहीं होगा। इस सूत्र से वहीं निषेध होता है, जहाँ निर्धारण की तीनों चीजें हों—(क) जिसका निर्धारण किया जाय, (ख) जिससे निर्धारण हो, (ग) निर्धारक गुण। विशेष—वि+शिष्+घञ्। लाभ—लभ्+घञ्। (६) **फल०**—फलैः मिश्रम्। तत्पुरुष। (७) **पादोदकम्**—पादाय उदकम्। तत्पुरुष। (८) **सूनृतया**—सूनृत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए। सु+नृत्+घञ् (अ)। सुष्ठु नृत्यन्ति अनेन (जना हर्षात्)। हलश्च ( ३-३-१२१ ) से घञ्। 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' नियम से गुण का अभाव और 'अन्येषामपि दृश्यते' ( ६-३-१३७ ) से सु को दीर्घ। काले और बोस ने इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भी लिखी है—सुष्ठु ऊनयति प्रीणयति इति सून्। सु+ऊन्+क्विप्। सून् च ऋता च। ऊन् धातु ( चुरादि० ) परिहाण अर्थात् कम करना अर्थ में है, प्रसन्न करने अर्थ में कोई ऊन् धातु नहीं है, अतः यह व्युत्पत्ति सरल होने पर भी मान्य नहीं है। (९) **आतिथ्यम्**—अतिथये इदम्, अतिथि+ञ्य (य), 'अतिथेर्ञ्यः' (५-४-२६) से। (१०) **प्रच्छाय०**—प्रकृष्टा छाया प्रच्छायम्, 'विभाषा सेनासुरा०' (२-४-२५) से ह्रस्व। कर्म०। प्रच्छायेन शीतला, तस्याम्। तत्पुरुष (११) **सप्त०**—सप्तपर्णस्य वेदिकायाम्। तत्पुरुष। (१२) **परिश्रम०**—परिश्रमस्य विनोदम्। तत्पुरुष। विनोद—वि+नुद्+घञ्।

( १ ) **आर्य०**—इस वाक्य से ज्ञात होता है कि तीनों में से सर्वप्रथम अनसूया

ने ही राजा की बात का उत्तर देने का साहस किया । इससे तथा वाक्य सं० ७६ से अनसूया धीर, साहसी, प्रत्युत्पन्नमति और वाक्चतुर ज्ञात होती है। (२) **आर्य**—अनसूया ने राजा को उचित सम्बोधन किया है। आर्य का अर्थ है—अर्यते आश्रयत्वेवाभिगम्यते इति आर्यः, आश्रयार्थ जिसके पास जाते हैं। आर्य के लक्षण हैं—(क) कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य इति स्मृतः ।। (ख) कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता। अद्रोह इति येष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते ।। आर्य शब्द श्रेष्ठ, उदारहृदय और सच्चरित्र के लिए आता है। (३) **अपि तपः०**—अपि शब्द प्रश्नार्थक है। आश्रमस्थों से सामान्यतया यही प्रथम प्रश्न किया जाता था। देखो प्रतिमानाटक (अंक ५)—मैथिलि, अपि तपो वर्धते। अपि शब्द 'आशा है' इस अर्थ को भी द्योतित करता है, अतः यहाँ इसका अर्थ होगा—आशा है आपका तप बढ़ रहा है। (४) **साध्वसाद्**—यहाँ साध्वस का भाव है घबड़ा जाना। अपरिचित पुरुष को सामने प्रश्न करता देखकर शकुन्तला घबड़ा गई और उत्तर न दे सकी। उसके स्थान पर अनसूया उत्तर देती है। (५) **अर्घम्०**—कण्व ने अतिथि-सत्कार का कार्य शकुन्तला को दिया था, अतः अनसूया उसे अर्घ लाने को कहती है। अर्घ में ८ वस्तुएँ होती हैं—आपः क्षीरं कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतण्डुलम्। यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः ।। देवीपुराण के अनुसार अर्घ में ये वस्तुएँ होती हैं—रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैः दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः। सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः ।। (६) इस वाक्य में अनुवृत्ति नामक नाटकीय अलंकार है। उसका लक्षण है—प्रश्रयादनुवर्तनम् अनुवृत्तिः। (सा० दर्पण ६-२०८)। (७) **सप्तपर्ण०**—इस वृक्ष की प्रत्येक डाल में सात पत्ते होते हैं। इसे सतौना भी कहते हैं। यहाँ पर वेदी का अर्थ है सप्तपर्ण वृक्ष के चारों ओर बना हुआ चबूतरा या वृक्ष के नीचे बैठने के लिए बना हुआ पृथक् चौकोन चबूतरा।

**७९. राजा—नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः ।**

राजा—अवश्य ही आप भी इस कार्य से थक गई होंगी।

**८०. अनसूया—हला शकुन्तले, उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्। अत्रोपविशामः।** [हला सउन्दले, उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं। एत्थ उवविसह्म ।] **(इति सर्वा उपविशन्ति)**

अनसूया—सखी शकुन्तला, यह हमारे लिए उचित है कि अतिथि के पास बैठें। यहाँ बैठती हैं। (सब बैठती हैं।)

**८१. शकुन्तला—(आत्मगतम्) किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृत्ता।** [किं

Funding by IKS-MoE

**णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअह्मि संवुत्ता ।]**

शकुन्तला—( मन में ) क्या कारण है कि इस ( व्यक्ति ) को देखकर तपोवन के विरोधी विकार का पात्र हो गई हूँ ।

**८२. राजा—(सर्वा विलोक्य) अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम् ।**

राजा—( सबको देखकर ) ओह, आप लोगों की मित्रता समान आयु और रूप के कारण मनोहर है ।

**८३. प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते। [अणसूये, को णु क्खु एसो चउरगम्भीराकिदी महुरं पिअं-आलवन्तो पहाववन्तो विअ लक्खीअदि ।]**

प्रियंवदा—( हाथ की ओट में ) अनसूया, यह सुन्दर और गम्भीर आकृति वाला कौन व्यक्ति है, जो मधुर और प्रिय वार्तालाप करता हुआ प्रभावशाली सा प्रतीत होता है ।

### टिप्पणी

( १ ) **परिश्रान्तः**—परि+श्रम्+क्त । ( २ ) **पर्युपासनम्**—समीपे निषदनम्, पास में बैठना । परि+उप+आस्+ल्युट् ( अन ) । यहाँ पर इसका पूजा अर्थ नहीं है । ( ३ ) **आत्मगतम्**—इसको ही स्वगत भी कहते हैं । मन ही मन सोचना या कहना । जो बात दूसरे को सुनाने योग्य नहीं होती, उसे स्वगत कहते हैं । इसका लक्षण है—अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् । ( सा० दर्पण ६-१३७ ) । ( ४ ) **किं नु खलु**—क्या कारण है कि । ( ५ ) **विकारः**—विक्रियते अनेन इति विकारः । जिसके द्वारा चित्त में विकार उत्पन्न होता है । वि+कृ+घञ् ( अ ) । ( ६ ) **गमनीया**—स्थान या पात्र । ( ७ ) **समवयो०**—वयः रूपं च वयोरूपम् (द्वन्द्व), समं वयोरूपं तेन रमणीयम् ( तत्पुरुष ) । ( ८ ) **सौहार्दम्**—सौहार्द और सौहृद ये दो शब्द मित्रता अर्थ में आते हैं । इन दोनों की व्युत्पत्ति निम्नलिखित रूप से समझें—( क ) सौहार्द—शोभनं हृत् हृदयं यस्य सः सुहृद् । हृदय का पर्यायवाची हृत् शब्द भी

---

पाठभेद—८३. नि० चतुरं० [चउरं] ( चतुरतायुक्त ) ।

है, ('स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः), उससे यह सुहृत् शब्द है। 'हायनान्त०' ( ५-१-१३० ) से अण् और 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते०' ( ७-३-१९ ) से उभयपदवृद्धि। सुहृदो भावः, सुहृद्+अण् ( अ )=सौहार्द। ( ख ) सौहृद—शोभनं हृदयं यस्य सः सुहृदयः, हायनान्त० ( ५-१-१३० ) से अण्, हृदयस्य हृद्० (६-३-५० ) से हृदय को हृद्, तद्धितेष्वचाम्० से प्रथम स्वर को वृद्धि। सुहृदय+अण्=सौहृद। सुहृद्दुर्हृदौ० ( ५-४-१५० ) से सुहृदय को सुहृद् होता है, उसका भी सौहृद रूप होगा। ( ९ ) **जनान्तिकम्**—इसका लक्षण है—त्रिपताककरेणान्यान् अपवार्यान्तरा कथाम्। अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥ (सा० दर्पण ६-१३९)। कथा के बीच में हाथ की ओट में जो बात किसी विशेष व्यक्ति से ही कही जाती है, उसे जनान्तिक कहते हैं। रंगमंच पर विद्यमान अन्य पात्र उस बात को न सुन सकें, अतः हाथ की ओट करके बात कही जाती है। (१०) **चतुर०**—चतुरा गम्भीरा च आकृतिर्यस्य सः, बहु०। यहाँ पर चतुर का लाक्षणिक अर्थ सुन्दर है। (११) **प्रभावः**—प्रकृष्टः भावः प्रभावः। भू+घञ् ( अ )=भावः। णिश्रिभुवः० ( ३-३-२४ ) से घञ्। इस सूत्र से प्र+भू से घञ् नहीं हो सकता है, अतः उपर्युक्त प्रकार से ही रूप बनेगा।

**८४. अनसूया—सखि, ममाप्यस्ति कौतूहलम्। पृच्छामि तावदेनम्। (प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितो विस्रम्भो मां मन्त्रयते—कतम आर्येण राजर्षिवंशोऽलंक्रियते। कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः। किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः।**
[सहि, मम वि अत्थि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। अज्जस्स महुरालावजणिदो वीसम्भो मं मन्तावेदि—कदमो अज्जेण राएसिवंसो अलंकरीअदि। कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो। किंणिमित्तं वा सुउमारदरो वि तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो।]

**अनसूया**—सखी, मुझे भी कुतूहलता है। इनसे पूछती हूँ। ( प्रकट ) आपके मधुर भाषण से उत्पन्न विश्वास मुझे ( पूछने के लिए ) प्रेरित कर रहा है कि—आप किस राजर्षि-वंश को अलंकृत करते हैं? आपने किस देश के लोगों को (अपने) विरह से व्याकुल बनाया है और किसलिए (आपने) अपने अतिसुकुमार शरीर को (इस) तपोवन में आने के परिश्रम से युक्त किया है?

**८५. शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय मोत्ताम्य। एषा**

त्वया चिन्तितान्यनसूया मन्त्रयते। [ हिअअ, मा उत्तम्म। एसा तुए चिन्तिदाइं अणसूआ मन्तेदि।]

**शकुन्तला**––( मन में ) हृदय, अधीर न हो। यह अनसूया तेरे विचारों को पूछ रही है।

८६. **राजा**––(आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि, कथं वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये। (प्रकाशम्) भवति, यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः, सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

**राजा**––( मन में ) मैं किस रूप में अब अपने आपको प्रकट करूँ, अथवा किस प्रकार अपने आपको छिपाऊँ। अच्छा, इस प्रकार इससे कहता हूँ। ( प्रकट ) श्रीमती जी, मुझको पुरुवंशी राजा ने धर्माधिकारी नियुक्त किया है, मैं इस तपोवन में यह जानने के लिए आया हूँ कि यहाँ ( धार्मिक ) क्रियाएँ निर्विघ्न तो हो रही हैं।

### टिप्पणी

( १ ) **मन्त्रयते**—मुखरीकरोति। बोलने के लिए प्रेरित कर रहा है। यहाँ पर मन्त्र् धातु का प्रेरणार्थक प्रयोग है। ( २ ) **राजर्षिवंशः**—इससे ज्ञात होता है कि अनसूया ने राजा को पहचान लिया है। ( ३ ) **विरह०**—विरहेण पर्युत्सुका जना यस्मिन् सः, बहु०। विरह से व्याकुल है प्रजा जहाँ पर। इससे राजा की लोकप्रियता सूचित होती है। यह वाक्य अनसूया की वाग्विदग्धता को सूचित करता है। (४) **मा उत्ताम्य**—यहाँ पर निषेधार्थक मा शब्द है, माङ नहीं, अतः लुङ नहीं हुआ। उद्+तम् ( दिवादि ) +लोट्। ( ५ ) **आत्मापहारम्**––राजा अपने आपको राजा के रूप में प्रकट नहीं करना चाहता और असत्य भी बोलना नहीं चाहता, अतः दुविधा में है। राजा को अपने आपको छिपाना मनु के अनुसार असत्यभाषण और पाप है। 'योऽन्यथा सन्तमात्मानम् अन्यथा सत्सु भाषते। स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥' ( मनु० ४-२५५ )। महाभारत ने परिहास, स्त्रियों से वार्तालाप आदि में असत्यभाषण को पाप नहीं गिना है, अतः राजा का चरित्र दूषित नहीं होता है। 'न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले। प्राणात्यये सर्वधनापहारे पंचानृतान्याहुरपातकानि॥' ( महाभारत द्रोणपर्व ६९-३३ )। ( ६ ) **भवति**—यह अपरिचित स्त्रीमात्र के लिए संबोधन है। मनु० (२-१२९) का कथन है कि—परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः। तां ब्रूयाद् भवतीति···। ( ७ ) **यः पौरवेण राज्ञा०**—इस वाक्य के दो अर्थ हैं। एक के

Funding by IKS-MoE

अनुसार राज़ा अपने आपको छिपाता है और दूसरे के अनुसार वह सत्य बात कहता है। (क) पुरुवंशी राजा दुष्यन्त ने मुझको धर्माधिकारी ( धर्माध्यक्ष, धर्म-निरीक्षक ) नियुक्त किया है। (ख) पुरुवंशी राजा (अर्थात् मेरे पिता) ने मुझको धर्माधिकार में ( अर्थात् धर्मनिर्णय के स्थान, सिंहासन पर ) नियुक्त किया है। ( ८ ) **अविघ्न०**––अविघ्नानां क्रियाणाम् उपलम्भाय, तत्पुरुष। निर्विघ्न धर्मकार्यों को ठीक जानने के लिए। उपलम्भ––उप+लभ्+घञ् ( अ )। ( ९ ) **धर्मारण्यम्**––धर्मार्थम् धर्मप्रधानं वा अरण्यम्। शाकपार्थिवादिवत् अर्थ या प्रधान शब्द का लोप।

८७. **अनसूया––सनाथा इदानीं धर्मचारिणः।** [ सणाहा दाणिं धम्मआरिणो।] **(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति।)**

अनसूया––धर्माचरण करने वाले लोग अब सनाथ हो गए हैं। ( शकुन्तला शृंगार की लज्जा का नाट्य करती है। )

८८. **सख्यौ––(उभयोराकारं विदित्वा, जनान्तिकम्) हला शकुन्तले, यद्यत्राद्य तातः संनिहितो भवेत्।** [ हला सउन्दले, जइ एत्थ अज्ज तादो संणिहिदो भवे।]

दोनों सखियाँ––( दोनों के प्रेम-भाव को जानकर, हाथ की ओट में ) सखी शकुन्तला, यदि पिता जी आज यहाँ होते तो···।

८९. **शकुन्तला––ततः किं भवेत्** [ तदो किं भवे।]

शकुन्तला––तो क्या होता ?

९०. **सख्यौ––इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति।** [ इमं जीविदसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि। ]

दोनों सखियाँ––इस विशिष्ट अतिथि को अपने जीवन का सर्वस्व भी देकर कृतार्थ करते।

९१. **शकुन्तला––युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि।** [ तुम्हे अवेध। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअण सुणिस्सं।]

शकुन्तला––तुम दोनों हटो। तुम दोनों कुछ मन में रखकर ( ऐसा ) कह रही हो। तुम दोनों की बात नहीं सुनूंगी।

**९२. राजा—वयमपि तावद् भवत्योः सखीगतं किमपि पृच्छामः ।**

राजा—मैं भी आप दोनों की सखी के विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ।

**९३. सख्यौ—आर्य, अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना** [अज्ज, अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा ।]

दोनों सखियाँ—श्रीमान्, (आपकी) यह प्रार्थना (हम पर) अनुग्रह के तुल्य है।

### टिप्पणी

( १ ) **सनाथाः**—नाथेन सहिताः, बहु० । इसके यहाँ पर दो अर्थ हो सकते हैं। ( क ) रक्षक से युक्त, ( ख ) पति से युक्त । शकुन्तला द्वितीय अर्थ को लेकर कुमारीजनोचित लज्जा का भाव प्रदर्शित करती है। ( २ ) **धर्मचारिणः**—धर्मं चरन्तीति, ताच्छील्य अर्थ में णिनि । ( ३ ) **शृंगारलज्जाम्**—शृंगारनिमित्ता लज्जा, शाकपार्थिवादिवत् समास । प्रेम के भाव के कारण उत्पन्न लज्जा का अभिनय करती है। ( ४ ) **आकारं विदित्वा**—दोनों के आकार से परस्पर प्रेम का भाव जानकर। ( ५ ) **संनिहितः**—समीपस्थः । सम्+नि+धा+क्त । (६) **जीवितसर्वस्वेन**—जीवितस्य सर्वस्वम्, तेन । तत्पुरुष। अपने जीवन के सर्वस्व । यहाँ पर यह शकुन्तला के लिए है। ऋषि शकुन्तला को प्राण के तुल्य समझते थे। (७) **कृतार्थम्**—कृतः सम्पादितः अर्थः प्रयोजनं यस्य तम्, बहु० । सफल-मनोरथ । अपेतम्—हटो, दूर हो । यहाँ पर भाव है कि तुम दोनों ऐसी बात मत करो, चुप रहो । (८) **किमपि हृदये०**—कुछ बात मन में रखकर । भवत्योः सखीगतम्—'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' यहाँ सापेक्ष होते हुए भी सखीगत में एकदेशान्वय से द्वितीया तत्पुरुष समास है।

**९४. राजा—भगवान् कश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः । इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत् ।**

राजा—भगवान् काश्यप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, यह प्रसिद्ध है और यह आपकी सखी उनकी पुत्री है, यह कैसे?

**९५. अनसूया—शृणोत्वार्यः । अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः ।** [सुणादु अज्जो । अत्थि को वि कोसिओ त्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहाओ राएसी ।]

---

पाठभेद—९२. नि० किमपि, इति नास्ति ।

अनसूया—आप सुनिए । 'कौशिक' इस गोत्रनाम के महाप्रभावशाली राजर्षि हैं ।

**९६. राजा—अस्ति, श्रूयते ।**

राजा—सुना है कि हैं ।

**९७. अनसूया—तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ । उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता ।** [ तं णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ । उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा ।]

अनसूया—उनको हमारी प्रियसखी का जन्मदाता (पिता) समझें । (माता-पिता से) परित्यक्त इसके पालन-पोषण आदि के द्वारा पिता काश्यप इसके पिता हैं ।

**९८. राजा—उज्झितशब्देन जनितं मे कौतूहलम् । आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि ।**

राजा—परित्यक्त शब्द से मुझे कुतूहलता उत्पन्न हो गई है । मैं प्रारम्भ से (इस बात को) सुनना चाहता हूँ ।

**९९. अनसूया—शृणोत्वार्यः । गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी ।** [ सुणादु अज्जो । गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जादशंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घकारिणी । ]

अनसूया—आप सुनिए । पहले वह राजर्षि गौतमी नदी के किनारे उग्र तपस्या कर रहे थे । उस समय शंकित देवताओं ने ( उनकी ) तपस्या में विघ्न करने वाली मेनका नाम की अप्सरा भेजी ।

### टिप्पणी

( १ ) शाश्वते—शश्वत् भवम्, शश्वत्+अण् (अ) = शाश्वत । शश्वत् से ठञ् ( इक ) प्रत्यय करके शाश्वतिक रूप भी बनता है । सदा रहने वाला । ( २ ) ब्रह्मणि—ब्रह्मचर्ये । यहाँ ब्रह्मन् शब्द ब्रह्मचर्य अर्थ में है । ऋषि आजन्म ब्रह्मचारी हैं । ( ३ ) प्रकाशः—प्रसिद्धः । ( ४ ) आत्मजा—पुत्री ।

Funding by IKS-MoE

यहाँ आत्मजा शब्द का साभिप्राय प्रयोग है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी की अपनी लड़की कैसे ? ( ५ ) **कौशिकः**—कुशिकस्य गोत्रापत्यं पुमान्। रामायण ( बालकाण्ड ३–३२) के अनुसार विश्वामित्र कुशिक या कुश के प्रपौत्र थे। कुश>कुशनाभ>गाधि>विश्वामित्र। महाभारत (आदिपर्व १९१ ) के अनुसार वह कौशिक के पौत्र थे। कुशिक>गाधि>विश्वामित्र। गाधि गाधिपुर (प्राचीन कन्नौज ) का राजा था। ( ६ ) **महाप्रभावः**—वसिष्ठ की प्रतिस्पर्धा में विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षित्व की प्राप्ति के लिए उग्र तस्पया की थी। इन्होंने ही त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजा था। ये बाद में राजर्षि, ब्रह्मर्षि कहे गये। ( ७ ) **प्रभवम्**—उत्पत्तिस्थान, जन्मदाता, पिता : ( ८ ) **पिता**—महाभारत के अनुसार पालन-पोषणकर्ता भी पिता होता है—'शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते। क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने ॥' ( ९ ) **जातशंकैः**—यहाँ पर मुख्य-रूप से इन्द्र के शंकित होने का भाव है। इन्द्र को भय हुआ कि कहीं विश्वामित्र उसका स्थान न ले लें। (१०) **अप्सराः**—अद्भ्यः सरन्तीति, जल से उत्पन्न होती हैं। साधारणतया अप्सरस् शब्द बहुवचन में ही आता है। यहाँ एकवचन का प्रयोग है। (११) **नियम०**—नियमस्य विघ्नं करोतीति, णिनि।

**१००. राजा—अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्।**

**राजा—दूसरे की समाधि से भयभीत होना देवताओं में (देखा जाता) है।**

**१०१. अनसूया—ततो वसन्तावतारसमये तस्या उन्मादयितृ रूपं प्रेक्ष्य**··· [ तदो वसन्तोदारसमए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ···।] **(इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति)**

**अनसूया—तब वसन्त ऋतु के आगमन के समय उसके उन्मादक रूप को देखकर··· (आधी बात कहकर लज्जा के कारण रुक जाती है।)**

**१०२. राजा—परस्ताज्ज्ञायत एव। सर्वथाऽप्सरःसंभवैषा।**

**राजा—आगे ( का वृत्तान्त ) विदित ही है। वस्तुतः यह अप्सरा की पुत्री है।**

**१०३. अनसूया—अथ किम्।** [अह इं।]

**अनसूया—और क्या।**

---

पाठभेद—१०१. नि० का० वसन्तोदारसमये ( वसन्त ऋतु के उत्तम समय में )।

**१०४. राजा--उपपद्यते ।**

**मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।**
**न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।।२६।।**
**(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति)**

**अन्वय**--मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः कथं वा स्यात् । प्रभातरलं ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति ।

**राजा--ठीक है । मनुष्यलोक की स्त्रियों में इस सौन्दर्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? कान्ति से देदीप्यमान तेज ( विद्युत् ) भूतल से उत्पन्न नहीं होता है ।।२६।। (शकुन्तला नीचे को मुँह किए रहती है ।)**

**संस्कृत-व्याख्या**—मानुषीषु—मनुष्यलोकस्त्रीषु, अस्य—ईदृशस्य दिव्यस्य, रूपस्य—सौन्दर्यस्य, सम्भवः—उत्पत्तिः, कथं वा स्यात्—कथं नु संभवति, न संभवतीत्यर्थः । प्रभातरलम्—प्रभाभिः कान्तिभिः तरलम् उज्ज्वलम्, ज्योतिः—तेजः, विद्युदित्यर्थः, वसुधातलात्—भूतलात्, न उदेति—न उद्गच्छति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा दृष्टान्तश्चालंकारौ । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **अन्य०**—अन्यस्य समाधेः भीरुः, तस्य भावः । तत्पुरुष । दूसरे की तपस्या से भयभीत होना । यहाँ समाधि का तपस्या अर्थ है । ( २ ) **देवानाम्**—यह इन्द्र के लिए संकेत है । ( ३ ) **वसन्ता०**—वसन्तस्य अवतारस्य समयः, तत्पुरुष । ( ४ ) **उन्मादयितृ**—उत्+मद्+णिच्+तृन् ( तृ ) । ताच्छील्य अर्थ में तृन् । ( ५ ) **विरमति**—वि+रम् परस्मैपदी ही होती है । 'व्याङ्परिभ्यो रमः' से । ( ६ ) **परस्तात्०**—आगे की बात ज्ञात ही है । ( ७ ) **अथ किम्**—और क्या अर्थात् हाँ । यह मुहावरा है । ( ८ ) **मानुषीषु**—मनोः अपत्यं पुमान् मानुषः, स्त्री मानुषी । मनु+अञ्+ङीप् । मनोर्जातावञ्० (४-१-१६१ ) से बीच में षुक् ( ष् ) । मनुष्यलोक की स्त्रियों में । ( ९ ) **अस्य**—इस अलौकिक । (१०) **रूपस्य**—सौन्दर्य का, संभवः—उत्पत्ति । (११) **कथं वा स्यात्**—कैसे संभव है, अर्थात् नहीं संभव है । (१२) **ज्योतिः**—तेज । यह विद्युत् के लिए है । (१३) **अधोमुखी**—शकुन्तला का लज्जा के कारण मुँह नीचे किये रहना, उसकी लज्जाशीलता का द्योतक है । (१४) इस श्लोक के पूर्वार्ध में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है, विशेष का सामान्यरूप से वर्णन है । पूरे श्लोक में दृष्टान्त अलंकार है ।

**१०५. राजा--(आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः ।**

**किं तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधभावकातरं मे मनः।**

राजा—( मन में ) मेरे मनोरथ को ( अब ) अवसर प्राप्त हो गया है। किन्तु सखी के द्वारा हँसी में कही गई वर की प्रार्थना को सुनकर मेरा मन दुविधा में होने के कारण खिन्न हो रहा है।

**१०६. प्रियंवदा—(सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः। [पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो।] (शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति।)**

प्रियंवदा—(मुस्कराते हुए शकुन्तला की ओर देखकर फिर नायक की ओर मुंह करके) आप फिर कुछ कहना चाहते हैं। (शकुन्तला सखी को अंगुली से धमकाती है।)

**१०७. राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्।**

राजा—आपने ठीक समझा। ( इस ) सच्चरित के सुनने के लोभ से मैं कुछ और भी पूछना चाहता हूँ।

**१०८. प्रियंवदा—अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम। [अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम।]**

प्रियंवदा—( आप ) कुछ विचार न करें। तपस्विजनों से निःसंकोच ( कोई भी ) प्रश्न पूछा जा सकता है।

### टिप्पणी

( १ ) **लब्धावकाशः**—लब्धः अवकाशः येन सः, बहुवचन। जिसको अवसर प्राप्त हो गया है। शकुन्तला क्षत्रिय-कन्या है, अतः उसकी विवाह की इच्छा पूर्ण हो सकती है। ( २ ) **सख्याः**—प्रियंवदा के पहले कहे हुए वक्तव्य की ओर संकेत है। ( ३ ) **धृतद्वैध०**—यहाँ पर 'धृतद्वैधीभावकातरम्' पाठ प्रायः मिलता है। धृत शब्द रखने पर द्वैधीभाव में च्वि प्रत्यय अनावश्यक है, च्वि प्रत्यय का भाव धृत शब्द से पूरा हो जाता है। अतः धृतद्वैध० पाठ अपनाया गया है। धृतः

---

पाठभेद—१०५. नि० का० द्वैधीभाव० (दुविधा)।

Funding by IKS-MoE

द्वैधभाव: ( कर्मधारय ), तेन कातरम्, तत्पुरुष। द्वैध—द्विप्रकारम् द्विधा, द्वि+धा, तस्य भाव: द्वैधम्। राजा का मन दुविधा में इसलिए है कि कहीं ऐसा न हो कि शकुन्तला का विवाह किसी और से निश्चित हो चुका हो या शकुन्तला ने स्वयं किसी अन्य को वरण कर लिया हो। ( ४ ) **वक्तुकामः**—वक्तुं कामः यस्य सः, बहु०। 'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि' नियम से काम या मनस् शब्द बाद में हो तो तुम् के म् का लोप हो जाता है। यहाँ इस नियम से वक्तुम् के म् का लोप हो गया है। ( ५ ) **तर्जयति**—शकुन्तला प्रियंवदा को अँगुली के संकेत से डाँटती है कि वह ऐसी व्यर्थ की बातें न करे। यह धातु आत्मनेपदी है। आत्मनेपद को अनित्य मानकर यहाँ परस्मैपद में प्रयोग है। ( ६ ) **उपलक्षितम्**—ज्ञातम्। जाना, समझा। ( ७ ) **सच्चरित०**—सत् चरितम् ( कर्मधारय ), सच्चरितस्य श्रवणे लोभः, तस्मात्। तत्पुरुष। सुन्दर चरित के श्रवण के लोभ से। हेतु अर्थ में पंचमी। ( ८ ) **अलं विचार्य**—अलं निषेधार्थक है, अतः 'विचार्य' में अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः० ( ३-४-१८ ) से क्त्वा—ल्यप्। ( ९ ) **अनियन्त्रणा०**—अविद्यमानं नियन्त्रणं यस्मिन् सः अनियन्त्रणः, बहु०। अनियन्त्रणः अबाधः अनुयोगः प्रश्नः येषु सः, बहु०। सर्वविधप्रश्नार्हे इत्यर्थः। जिनसे कोई भी प्रश्न पूछा जा सकता है। अनुयोग—प्रश्न, अनु+युज्+घञ् (अ)। (१०) **नाम**—इसके यहाँ दो अर्थ हो सकते हैं—(क) अभ्युपगम, स्वीकृतिसूचक, अर्थात् वस्तुतः। (ख) प्रकाश्य अर्थात् ऐसा प्रसिद्ध है कि……।

**१०९. राजा—इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि।**
**वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदानाद्**
**व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।**
**अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभि-**
**राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ॥२७॥**

**अन्वय**—किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसं व्रतम् आ प्रदानात् निषेवितव्यम्। आहो सदृशेक्षणवल्लभाभिः हरिणाङ्गनाभिः, समम् अत्यन्तमेव निवत्स्यति।

**राजा**—आपकी सखी के विषय में यह जानना चाहता हूँ कि—क्या यह कामदेव के व्यापारों को रोकने वाले ब्रह्मचर्य व्रत को (किसी राजा के साथ) विवाह होने तक ही सेवन करेगी, या (किसी तपस्वी के साथ विवाह होने के कारण) समान नेत्र होने के कारण प्रिय मृगियों के साथ ही सदा रहेगी? ॥२७॥

---

पाठभेद—१०९. का० अत्यन्तमात्मसदृशे० (अपने समान नेत्रों के कारण)। नि० मदिरेक्षण० (मादक नेत्रों के कारण)।

**संस्कृत-व्याख्या**—किम्—किमिति, अनया—शकुन्तलया, मदनस्य—कामस्य, व्यापाररोधि—व्यापारं प्रसारं रोद्धुं निषेद्धुं शीलमस्य तत्, प्रसारनिरोधकम्, वैखानसं—तपस्विजनोचितम्, व्रतम्—ब्रह्मचर्यव्रतम्, आ प्रदानात्—प्रकृष्टाय राज्ञे विवाहविधिना प्रदानं यावत्, निषेवितव्यम्—पालनीयम् । आहो—अथवा, सदृशेक्षणवल्लभाभिः—समानलोचनहेतोः प्रियाभिः, हरिणाङ्गनाभिः—मृगीभिः, समं—सह, अत्यन्तमेव—सदैव, निवत्स्यति—स्थास्यति । आशयोऽयम्—( १ ) क्षत्रियनृपस्य कन्येति हेतोः किं कस्मैचिद् नृपाय दातव्येयम्, तदा विवाहपर्यन्तमेवास्याः ब्रह्मचर्यव्रतपालनम् आश्रमे स्थितिश्च भविष्यति । ( २ ) यदि तु कस्मैचित् तपस्विने दातव्याऽस्ति, तदा जीवनपर्यन्तमेवास्या आश्रमे स्थितिर्भविष्यति । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **वैखानसम्**—वैखानसस्य इदम्, वैखानस+अण् । वैखानस अर्थात् वानप्रस्थ या तपस्वी का । ( २ ) **व्रतम्**—यहाँ पर वैखानस व्रत का भाव ब्रह्मचर्य व्रत है । ( ३ ) **व्यापाररोधि**—व्यापारं रोद्धुं शीलमस्य तत्, ताच्छील्य अर्थ में णिनि, व्यापार+रुध्+णिनि ( इन् ) । यह नपुंसकलिंग प्र० एक० का रूप है । ( ४ ) **आ प्रदानात्**—प्र का अर्थ प्रकृष्ट या उत्कृष्ट है, प्रदान अर्थात् योग्यतम व्यक्ति राजा आदि को विवाहपूर्वक देने तक । आ के कारण पंचमी, पंचम्यपाङ्परिभिः ( २-३-१० ) से । ( ५ ) **अत्यन्तमेव**—सदा के लिए । ( ६ ) **सदृशेक्षण०**—सदृशाभ्याम् ईक्षणाभ्यां वल्लभाभिः, तत्पुरुष । समान नेत्र होने के कारण प्रिय मृगियों के साथ । पाठभेद—अत्यन्तमात्म०—सदा अपने सदृश नेत्र० । मदिरेक्षण०—मादक नेत्र० । ( ७ ) **निवत्स्यति**—रहेगी । नि+वस्+लृट् ।

**विशेष**—इस श्लोक के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) क्या यह किसी राजा के साथ विवाह होने तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करेगी और आश्रम में रहेगी या किसी तपस्वी के साथ विवाह होने से सदा ही इसी आश्रम में मृगियों के साथ रहेगी। ( २ ) यह विवाह होने तक ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण करेगी या जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हुई मृगियों के साथ रहेगी । यहाँ पर पहला अर्थ ही अपनाया गया है, क्योंकि अनसूया और प्रियंवदा के पूर्वोक्त वार्तालाप (१⋯एवमहमात्मनोऽनुरूपं वरं लभेय, २. इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति) से राजा को यह स्पष्ट हो चुका था कि उसका विवाह होना है । सन्देह केवल यही हो सकता था कि उसका विवाह किसी क्षत्रिय राजा से होना है या किसी तपस्वी से । अगले वाक्य में प्रियंवदा ने भी प्रश्न का उत्तर दिया है कि ऋषि इसका विवाह किसी सदृशगुणवाले व्यक्ति से ही करना चाहते हैं ।

**११०. प्रियंवदा**—आर्य, धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः । गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः । [ अज्ज, धम्मचरणे वि परवसो अयं जणो । गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो ।]

**प्रियंवदा**—श्रीमन्, यह व्यक्ति ( शकुन्तला ) धर्माचरण में भी पराधीन है। तथापि पिता जी का विचार इसको योग्य वर को देने का है।

**१११. राजा**—(आत्मगतम्) न दुरवापेयं खलु प्रार्थना ।

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः ।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।।२८।।

**अन्वय**—हृदय, साभिलाषं भव, सम्प्रति सन्देहनिर्णयः जातः । यत् अग्निम् आशङ्कसे, तत् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।

**राजा**—( मन में ) ( मेरा ) मनोरथ दुर्लभ नहीं है।

हे हृदय, तू ( अब ) अभिलाषा कर। अब सन्देह का निर्णय हो गया। तू जिसको अग्नि समझ रहा था, वह यह स्पर्श के योग्य रत्न है ।।२८।।

**संस्कृत-व्याख्या**—हे हृदय, साभिलाषं—कामनायुक्तम्, भव, सम्प्रति, सन्देहनिर्णयः—संशयनिवारणम्, जातः—अभूत् । यत्—यद् वस्तु, अग्निम्—वह्निम्, आशङ्कसे—विचारयसि, तदिदम्—तदेतत् शकुन्तलारूपं वस्तु, स्पर्शक्षमम्—स्पर्शयोग्यम्, रत्नं—मणिः, कन्यारत्नमेतदस्तीत्यर्थः । अत्र काव्यलिंगमलंकारः । आर्या छन्दः ।

### टिप्पणी

(१) **धर्मचरणे०**—शकुन्तला धार्मिक कृत्यों के आचरण में भी पराधीन है। उसका प्रत्येक कार्य पिता की इच्छा पर निर्भर है। अतः विवाह भी पिता की इच्छा के अनुसार ही होगा। ( २ ) **अनुरूप०**—अनुरूपाय वराय प्रदानम्, तस्मिन् । तत्पुरुष । ( ३ ) **दुरवापा**—दुर्+अव+आप्+खल् ( अ ) +टाप् । दुर्लभ । शकुन्तला क्षत्रिय-कन्या है, योग्य वर को दी जानी है, अतः राजा के लिए दुर्लभ नहीं है। ( ४ ) **साभिलाषम्**—अभिलाषेण सह, बहु० । हे हृदय, अब तू शकुन्तला को पाने की इच्छा कर सकता है। ( ५ ) **सन्देह०**—सन्देहस्य निर्णयः, तत्पुरुष । क्षत्रियकन्या है, या मुनिकन्या है, इसका विवाह किससे होगा, इत्यादि सन्देह का निराकरण हो गया है। (६) **अग्निम्**—शकुन्तला ब्राह्मण-कन्या होती तो राजा से विवाह के योग्य न होती और अग्नि के तुल्य अस्पृश्य होती। अब क्षत्रियकन्या होने से रत्नवत् उसके स्पर्श के योग्य है। अग्नि और रत्न शब्दों

के द्वारा शकुन्तला की स्वाभाविक तेजस्विता की ओर निर्देश है। (७) यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार है। साभिलाष होने का कारण सन्देह-निर्णय होना है। यहाँ पर समाधान नामक मुखसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—बीजस्यागमनं यत्तु तत् समाधानमुच्यते। (सा० द० ६—८५)। बीज की ठीक ढंग से स्थापना के कारण समाधान है।

**११२. शकुन्तला—(सरोषमिव) अनसूये, गमिष्याम्यहम्।** [अणसूए, गमिस्सं अहं।]

शकुन्तला—(क्रुद्ध-सी होकर) अनसूया, मैं चली जाऊँगी।

**११३. अनसूया—किंनिमित्तम्।** [किंणिमित्तं।]

अनसूया—क्यों?

**११४. शकुन्तला—इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयिष्यामि।** [इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं।]

शकुन्तला—इस अनुचित प्रलाप करने वाली प्रियंवदा की शिकायत आर्या गौतमी से करूँगी।

**११५. अनसूया—सखि, न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्।** [सहि, ण जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं।]

**(शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थितैव।)**

अनसूया—सखी, यह उचित नहीं है कि विशिष्ट अतिथि को, बिना सत्कार किए, छोड़कर स्वच्छन्दरूप से चली जाओ।

(शकुन्तला बिना कुछ कहे ही चल पड़ती है।)

**११६. राजा—(ग्रहीतुमिच्छन् निगृह्यात्मानम्। आत्मगतम्) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। अहं हि—**

**अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।**
**स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥२९॥**

अन्वय—अहं हि मुनितनयाम् अनुयास्यन्, सहसा विनयेन वारितप्रसरः, हि स्थानात् अनुच्चलन् अपि गत्वा पुनः प्रतिनिवृत्तः इव।

**राजा**—( उसको पकड़ने की इच्छा करके और अपने आपको रोककर। मन में ) अहो, कामिजनों की मनोवृत्ति उनकी चेष्टाओं के अनुकूल ही होती है।

मैं मुनिकन्या के पीछे जाना ही चाहता था, ( किन्तु ) सहसा विनय ( शिष्टता ) के कारण रुक गया। मैं अपने स्थान से चला नहीं, ( किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ) मानो जाकर फिर लौट आया हूँ ॥२९॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अहं हि, मुनितनयाम्—शकुन्तलाम्, अनुयास्यन्—अनुगमिष्यन्, सहसा—झटिति, विनयेन—शीलेन, वारितप्रसरः—निरुद्धगतिः, स्थानात्—स्वासनात्, अनुच्चलन् अपि—अनुत्तिष्ठन् अपि, गत्वा—शकुन्तलाम् अनुसृत्य, पुनः प्रतिनिवृत्त इव—प्रत्यागत इव। अत्रोत्प्रेक्षाविरोधाभासकाव्यलिंगालंकाराः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **असंबद्ध०**—असंवद्धं प्रलपतीति, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। सम्वद्ध—सम्+वन्ध्+क्त। न संवद्धम् असंवद्धम्। असंवद्ध+प्र+लप्+णिनि ( इन् )। व्यर्थ की बकवाद करने वाली। ( २ ) **गौतम्यै**—गौतमी आश्रम की अधिष्ठात्री थी। ( ३ ) **अकृत०**—न कृतः सत्कारः यस्य तम्, वहु०। बिना सत्कार किए। ( ४ ) **चेष्टा०**—चेष्टायाः प्रतिरूपिका, तत्पुरुष। प्रतिगतं रूपम् अस्यां सा प्रतिरूपा, वहुव्रीहि, स्वार्थ में कन् ( क )। चेष्टा के अनुरूप। ( ५ ) **कामि०**—कामिजनानां मनसः वृत्तिः, तत्पुरुष। कामी लोगों की चित्तवृत्ति। ( ६ ) **मुनि०**—मुनेः तनयाम्, तत्पुरुष। मुनि शव्द साभिप्राय है। मुनि की पुत्री है, अतः उसके साथ शिष्ट व्यवहार ही करना चाहिए। ( ७ ) **अनुयास्यन्**—अनु+या+लृट्+शतृ। पीछे जाने की इच्छा वाला। ( ८ ) **विनयेन०**—शीलभाव के कारण सहसा मेरी गति रुक गई। ( ९ ) **वारित०**—वारितः निरुद्धः प्रसरः गतिः यस्य सः, वहुव्रीहि। रुक गई है गति जिसकी। (१०) इस श्लोक में गत्वा प्रतिनिवृत्त इव में उत्प्रेक्षा है। अनुच्चलन् अपि गतः में विरोधाभास है। सहसा विनयेन० में काव्यलिंग है। यहाँ पर परिभावना नामक मुखसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना ( सा० दर्पण ६-८६ )। जहाँ पर कुतूहलतापूर्ण वाक्य होता है, वहाँ परिभावना होती है।

**११७. प्रियंवदा—(शकुन्तलां निरुध्य) हला, न ते युक्तं गन्तुम्।** [ हला, ण दे जुत्तं गन्तुं। ]

प्रियंवदा—(शकुन्तला को रोककर) सखी, तुम्हें जाना उचित नहीं है।

**११८. शकुन्तला—(सभ्रूभङ्गम्) किंनिमित्तम्।** [ किंणिमित्तं। ]

Funding by IKS-MoE

शकुन्तला—( भौंं चढ़ाकर ) क्यों ?

**११९. प्रियंवदा**—वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे । एहि तावत् । आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि । [ रुक्खसेअणे दुवे धारेसि मे । एहि दाव । अत्ताणं मोचिअ तदो गमिस्ससि । ]
(इति बलादेनां निवर्तयति ।)

**प्रियंवदा**—तू दो वृक्ष सींचने की मेरी ऋणी है । आ, अपने आपको (ऋण से) छुड़ाकर तब जा सकती है । (यह कहकर बलपूर्वक उसको लौटाती है ।)

**१२०. राजा**—भद्रे, वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये । तथा ह्यस्याः—

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥३०॥

तदहमेनामनृणां करोमि । (इत्यङ्गुलीयं दातुमिच्छति ।)
(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः ) ।

**अन्वय**—घटोत्क्षेपणात् अस्याः बाहू स्रस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ, प्रमाणाधिकः श्वासः अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति । वदने कर्णशिरीषरोधि घर्माम्भसां जालकं बद्धम्, बन्धे स्रंसिनि मूर्धजाः च एकहस्तयमिताः पर्याकुलाः ।

**राजा**—हे भद्रे, वृक्ष सींचने से ही मैं इनको थकी हुई देख रहा हूँ । क्योंकि—

घड़ा उठाने से इनके हाथ कन्धे पर से झुक गए हैं और हथेलियाँ अत्यधिक लाल हो गई हैं । बहुत लम्बे श्वास अब भी स्तनों को कम्पित कर रहे हैं । कान के शिरीष के फूल को रोकने वाला पसीने की बूँदों का समूह मुँह पर व्याप्त है । वेणी का बन्धन खुलने से बाल एक हाथ में पकड़े हुए हैं और बिखरे हुए हैं ॥३०॥ तो मैं इनको उऋण करता हूँ । (यह कहकर अपनी अँगूठी देना चाहता है । ) (दोनों नामांकित अँगूठी के अक्षरों को बाँचकर एक दूसरी की ओर देखती हैं ।)

---

पाठभेद—१२० नि० स्रस्तं० (वह रहा है) ।

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—घटोत्क्षेपणात्—कलशोत्थापनात्, अस्याः—शकुन्तलायाः, बाहू—भुजौ, स्रस्तांसौ—अवनतस्कन्धौ, अतिमात्रलोहिततलौ—अत्यधिकरक्तकरतलौ, स्तः। प्रमाणाधिकः—स्वमात्राधिकः, श्वासः—उच्छ्वासः, अद्यापि—इदानीमपि, स्तनवेपथुं—कुचयोः कम्पम्, जनयति—उत्पादयति। वदने—मुखे, कर्णशिरीषरोधि—श्रोत्रनिहितशिरीषपुष्पसंचाररोधकम्, घर्माम्भसां—स्वेदजलानाम्, जालकं—बिन्दुसमूहः, वद्धं—व्याप्तम्। वन्धे—वेणीवन्धने, स्रंसिनि—प्रशिथिले सति, मूर्धजाः च—केशाश्च, एकहस्तयमिताः—एकहस्तेन धृताः, पर्याकुलाः—विकीर्णाः सन्ति। अत्र स्वभावोक्तिर्दीपकं काव्यलिङ्गं समुच्चयोऽनुमानं चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **सभ्रूभङ्गम्**—भौं चढ़ाकर। क्रोध का भाव प्रदर्शित करने के लिए। ( २ ) **मे धारयसि**—यहाँ पर धारयसि का अर्थ है ऋणी होना। तुम दो वृक्षों में पानी देने की मेरी ऋणी हो। धारेरुत्तमर्णः ( १—४—३५ ) से 'मे' में चतुर्थी। ( ३ ) **मोचयित्वा**—अपने आपको ऋण से मुक्त कराकर। ( ४ ) **वृक्षसेचनादेव**—शकुन्तला अपने हिस्से के वृक्षों के सींचने से ही थकी हुई है, उससे और वृक्षों को सींचने के लिए आग्रह करना अनुचित है।(५) **परिश्रान्ताम्**—थकी हुई। परि+श्रम्+क्त। ( ६ ) **स्रस्तांसौ**—स्रस्तौ अंसौ ययोः तौ, बहु०। जिनके कन्धे झुके हुए हैं, ऐसे दोनों हाथ। स्त्री का कन्धा थोड़ा झुका होना उसके सौन्दर्य का सूचक है। यहाँ पर थकान के कारण कन्धे अधिक झुके हैं। अंस (कन्धा ) शब्द हाथ के सबसे ऊपरी भाग के लिए है, गर्दन के लिए नहीं। स्रस्त—स्रंस्+क्त। ( ७ ) **अतिमात्र०**—अतिमात्रं लोहितं तलं ययोः तौ, बहु०। जिनकी हथेलियाँ अत्यधिक लाल हो गई हैं, ऐसे हाथ। तल शब्द करतल ( हथेली ) के अर्थ में है। ( ८ ) **घटोत्क्षेपणात्**—घटस्य उत्क्षेपणात्, तत्पुरुष। घड़े के उठाने से। हेतु अर्थ में पंचमी। ( ९ ) **प्रमाणाधिकः**—प्रमाणात् अधिकः, तत्पुरुष। साधारण मात्रा से अधिक अर्थात् अधिक जोर से निकलता हुआ श्वास। (१०) **स्तनवेपथुम्**—स्तनों के कम्पन को कर रहा है। वेपथु—वेप्+अथुच्, ट्वितोऽथुच् ( ३-३-८९ ) से अथुच् ( अथु ) प्रत्यय। (११) **कर्ण०**—कर्णयोः शिरीषं रोद्धुं शीलमस्य तत्, ताच्छील्य अर्थ में णिनि ( इन् )। कर्णशिरीष+रुध्+णिनि। नपुंसक० एक० का रूप है, मनोहारिन् के तुल्य। कानों में लगाए हुए शिरीष के फूल के संचार को रोकने वाला। पसीने के कारण शिरीष का फूल मुख पर चिपक गया है, अतः हिल नहीं पाता। (१२) **घर्माम्भसाम्०**—पसीने के जल की बूंदों का समूह। जालकम्—जाल के तुल्य फैला हुआ। (१३) **बद्धम्**—व्याप्तम्। फैला हुआ है। बन्ध्

+क्त। पाठभेद—स्रस्तम् है अर्थात् टपक रहा है। स्रस्तम् रखने पर जालकम् का भाव नष्ट हो जाता है, अगले पद में स्रंसिनि के कारण पुनरुक्ति भी होती है, अतः वद्धम् पाठ अधिक उपयुक्त है। (१४) **बन्धे**—बन्ध केशपाश के बन्ध के लिए है। वह खुल गया है। (१५) **एकहस्त०**—एकेन हस्तेन यमिताः, तत्पुरुष। एक हाथ से पकड़े हुए वाल। (१६) **पर्याकुलाः**—विखरे हुए हैं। (१७) **अंगुलीयम्**—अंगुलौ भवम्, अंगुलि+छ ( ईय )। जिह्वामूलांगुलेश्छः ( ४-३-६२ ) से छ। अँगूठी। (१८) **नाममुद्रा०**—नाम्नः मुद्रा नाममुद्रा, नाममुद्रायाः अक्षराणि, तत्पुरुष। नामांकित मुद्रा अर्थात् अँगूठी पर लिखे नामाक्षरों को वाँचकर। अँगूठी के अर्थ में दो शब्द मुद्रिका और मुद्रा हैं। इनमें अन्तर यह है—अलंकार के लिए धारण की जाने वाली मुद्रिका होती है, नामाक्षरों से युक्त मुद्रा होती है। (१९) **अनुवाच्य**—अनु+वच्+णिच्+ल्यप्। वाँच कर। (२०) **परस्परम्**—राजा का नाम अँगूठी पर वाँचकर उसको राजा जानकर दोनों आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखती हैं। परां पराम्=परस्परम्। यहाँ पर कर्मव्यतिहार (एक दूसरे के प्रति कोई कार्य) अर्थ में द्वित्व ( कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे० से) और पहले पद के अम् को स् (असमासवद्भावे० से), दोनों पदों में आ का लोप। (२१) पूरे श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है। घटोत्क्षेपणात् का प्रत्येक पद के साथ संवन्ध होने से दीपक अलंकार है। घटोत्क्षेपणात् कारण की उक्ति से काव्यलिंग है। शकुन्तला की परिश्रान्तता के समर्थन के लिए वहुत से कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार है। स्तनवेपथु के उत्पादन के द्वारा श्वासों की प्रमाणाधिकता का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है।

**१२१. राजा—अलमस्मानन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयम्।**

राजा—हमें और कुछ ( राजा ) न समझें। यह राजा का उपहार है।

**१२२. प्रियंवदा—तेन हि नार्हत्येतदङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणेदानीमेषा। (किंचिद् विहस्य) हला शकुन्तले, मोचिताऽस्यनुकम्पिनार्येण, अथवा महाराजेन। गच्छेदानीम्। [ तेण हि णारिहदि एदं अगुलीअअं अंगुलीविओअं। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा। हला**

---

पाठभेद—१२१. नि० का० अयमिति राजपुरुषं मामवगच्छथ (अतः मुझे राजपुरुष समझो)।

सउन्दले, मोइदा सि अणुअम्पिणा अज्जेण, अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं। ]

प्रियंवदा—तो यह अँगूठी आपकी अँगुली के वियोग के योग्य नहीं है। आपके वचन से (ही) यह अब उऋण हो गई। (कुछ मुस्कराकर) सखी शकुन्तला, तुम इन सज्जन अथवा महाराज के द्वारा मुक्त की गई हो। अब जाओ।

१२३. शकुन्तला—(आत्मगतम्) यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विस्रष्टव्यस्य रोद्धव्यस्य वा। [जइ अत्तणो पहविस्सं। का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुन्धिदव्वस्स वा। ]

शकुन्तला—(मन में) यदि अपने वश में होऊँगी तो। (प्रकट) तुम (मुझको) छोड़ने या रोकने वाली कौन हो?

१२४. राजा—(शकुन्तलां विलोक्य। आत्मगतम्) किन्नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना।

कुतः—
वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥३१॥

अन्वय—यद्यपि मद्वचोभिः वाचं न मिश्रयति, मयि भाषमाणे अभिमुखं कर्णं ददाति। कामं मदाननसंमुखीना न तिष्ठति, अस्याः दृष्टिः तु भूयिष्ठम् अन्यविषया न।

राजा—(शकुन्तला को देखकर। मन में) क्या जिस प्रकार हम इस पर (अनुरक्त) हैं, उसी प्रकार यह भी हम पर (अनुरक्त) है? अथवा मेरी इच्छा को अवसर प्राप्त हो गया है। क्योंकि—यद्यपि यह मेरे वचनों से वचन नहीं मिलाती है, (किन्तु) मेरे बोलते समय मेरी ओर कान लगाए रखती है।

---

पाठभेद—१२३. नि० विसर्जितव्यस्य (छोड़ने की)।

Funding by IKS-MoE

**भले ही मेरे मुंह के सामने मुंह नहीं करती है, किन्तु इसकी दृष्टि प्रायः अन्य विषयों की ओर नहीं है ।।३१।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—यद्यपि, मद्वचोभिः—मम वचनैः सह, वाचं न मिश्रयति—स्वकीयं वचनं न योजयति, साक्षात् नाऽऽलपतीत्यर्थः । मयि भाषमाणे—मयि वदति सति, अभिमुखम्—मां प्रति, कर्णं ददाति—अवधानं ददाति, मद्वचनं सादरं शृणोतीत्यर्थः । कामं—मतमेतद् यद्, मदाननसंमुखीना—मन्मुखाभिमुखी, न तिष्ठति, अस्या दृष्टिः, भूयिष्ठम्—अतिशयेन, अन्यविषया न—मन्मुखातिरिक्त-विषयगता नास्ति । अतः सा मय्यनुरक्तेति मन्ये । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **अलम्०**—हमको कुछ और अर्थात् राजा न समझें । ( २ ) **परिग्रहः०**—राजा पुनः अपने आपको छिपाना चाहता है । इस वाक्य के दो अर्थ हैं—(क) यह राजा दुष्यन्त के द्वारा मुझे दिया हुआ उपहार है । (ख) यह राजा का उपहार तुम्हारे लिए है । कुछ संस्करणों में इसके बाद—'इति राजपुरुषं मामवगच्छथ' है । इसके भी दो अर्थ हैं—(क) मुझे राजकर्मचारी समझो, (ख) मुझे राजा समझो । राजा चासौ पुरुषः । यह अंश वाक्य की शोभा को नष्ट करता है, सबसे प्राचीन प्रतियों में नहीं है तथा राजा के प्रति सन्देह की वृद्धि करता है, अतः छोड़ दिया गया है । ( ३ ) **किञ्चिद् विहस्य**—सूचित करता है कि प्रियंवदा ठीक भाँप चुकी है कि अँगूठी वाले सज्जन राजा ही हैं । ( ४ ) **यद्यात्मनः**—यदि मेरा अपने आप पर वश होगा तो जाऊँगी । ( ५ ) **विसृष्टव्यस्य०**—तुम भेजने या रोकने वाली कौन हो । मेरी इच्छा पर है जाऊँ या न जाऊँ । (६) **न मिश्रयति**—मुझसे साक्षात् वात नहीं करती है । ( ७ ) **अभिमुखम्**—मेरी ओर । पाठभेद—'अवहिता' अर्थात् ध्यानपूर्वक है । ( ८ ) **कर्णं ददाति**—कान लगाकर सुनती है । ( ९ ) **कामम्**—भले ही । यह अव्यय है । (१०) **मदानन०**—मदाननस्य संमुखीना, तत्पुरुष । संमुख+ख (ईन)=संमुखीन । यथामुखसंमुखस्य० (५-२-६) से ख प्रत्यय । पाठभेद—'मदाननसंमुखीयम्' है । यह मेरे मुंह के सामने पूरा मुंह नहीं करती है । (११) **भूयिष्ठम्**—अतिशयेन । अधिकांश में । वहु+इष्ठन्=भूयिष्ठ । वहु को भू आदेश हो जाता है और इ को यि हो जाता है ।

**(नेपथ्ये)**

**१२५. भो भोस्तपस्विनः, सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः ।**

**( क ) तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु-**
**विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।**
**पतति परिणतारुणप्रकाशः**
**शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥३२॥**

**अन्वय**—तथाहि तुरगखुरहतः परिणतारुणप्रकाशः रेणुः शलभसमूहः इव विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमेषु पतति ।

**(नेपथ्य में) हे तपस्वियो, तपोवन के जीवों की रक्षा के लिए आप लोग एकत्र हो जाइए। शिकार के लिए विचरण करने वाला राजा दुष्यन्त पास में ही है। क्योंकि घोड़ों के खुरों से उठाई हुई और सायंकालीन सूर्य की कान्ति के तुल्य ( लाल ) कान्ति वाली धूल, टिड्डियों के समूह की तरह, गीले वल्कलों से युक्त शाखा वाले आश्रम के वृक्षों पर पड़ रही है ॥३२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—तथाहि—यतोहि, तुरगखुरहतः—अश्वानां खुरैः उत्थापितः, परिणतारुणप्रकाशः—परिणतस्य सान्ध्यस्य अरुणस्य सूर्यस्य प्रकाश इव प्रकाशः कान्तिर्यस्य सः, रेणुः—धूलिः, शलभसमूह इव—पतङ्गराशिरिव, विटप०—विटपेषु शाखासु विषक्तानि लम्बितानि जलार्द्राणि वारिसिक्तानि वल्कलानि येषां तेषु, आश्रमद्रुमेषु—तपोवनतरुषु, पतति । अत्र पुष्पिताग्रा वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **संनिहिताः**—समीपस्थाः । पास में आ जाओ अर्थात् एकत्र हो जाओ । सम्+नि+धा+क्त । ( २ ) **तपोवन०**—तपोवनस्य सत्त्वानां रक्षायै, तत्पुरुष । ( ३ ) **प्रत्यासन्नः**—समीपं गतः । पास में । प्रति+आ+सद्+क्त । ( ४ ) **मृगया०**—मृगयया विहरतीति, ताच्छील्य अर्थ में णिनि । मृगया—मृग्+णिच्+श । परिचर्यापरिसर्या० वार्तिक से निपातन । ( ५ ) **तुरग०**—तुरगाणां खुरैः हतः, तत्पुरुष । घोड़ों के खुर से उठाई हुई । ( ६ ) **विटप०**—विटपेषु विषक्तानि जलार्द्राणि वल्कलानि येषां तेषु, बहु० । जिनकी शाखाओं पर गीले वल्कल लटकाए गए हैं । विषक्त—वि+सञ्ज्+क्त । ( ७ ) **परिणता०**—परिणतस्य अरुणस्य प्रकाश इव प्रकाशो यस्य सः । बहुव्रीहि । सायंकालीन सूर्य के प्रकाश के तुल्य कान्ति वाली । परिणत—परि+नम्+क्त । ( ८ ) **शलभ०**—शलभानां समूहः, तत्पुरुष । टिड्डियों के समूह के तुल्य ।

**१२५. ( ख ) अपि च—**

**तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः**

---

पाठभेद—१२५. नि० तरुः (वृक्ष) ।

Funding by IKS-MoE

पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥३३॥
( सर्वाः कर्णं दत्त्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः )

**अन्वय**—स्यन्दनालोकभीतः तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः भिन्नसारङ्गयूथः गजः नः तपसः मूर्तः विघ्नः इव धर्मारण्यं प्रविशति।

**और भी—रथ को देखकर भयभीत, तीव्र प्रहार से तोड़े हुए वृक्ष की शाखा में जिसका एक दाँत फँसा हुआ है, पैर से खींची हुई लता-समूह के लिपटने से जिसके ( पैर में ) पाश ( बेड़ी ) सा पड़ गया है, मृगों के झुण्ड को छिन्न-भिन्न करता हुआ, हाथी हमारी तपस्या के लिए मानो शरीरधारी विघ्न के तुल्य तपोवन में प्रवेश कर रहा है ॥३३॥ (सभी स्त्रियाँ सुनकर कुछ घबड़ा गईं)**

**संस्कृत-व्याख्या**—स्यन्दना०—स्यन्दनस्य रथस्य आलोकाद् दर्शनाद् भीतः त्रस्तः, तीव्रा०—तीव्रेण उग्रेण आघातेन प्रहारेण प्रतिहतः त्रोटितः यः तरुः वृक्षः तस्य स्कन्धे शाखायां लग्नः संसक्तः एकः दन्तः यस्य सः, पादाकृष्ट०—पादाभ्यां चरणाभ्याम् आकृष्टं यद् व्रततिवलयं लताजालं तस्य आसङ्गेन सम्पर्केण संजातः उत्पन्नः पाशः बन्धः यस्य सः, भिन्न०—भिन्नानि विद्रावितानि सारङ्गाणां मृगाणां यूथानि येन सः, गजः—हस्ती, नः—अस्माकम्, तपसः—तपस्यायाः, मूर्तः—शरीरधारी, विघ्न इव—अन्तराय इव, धर्मारण्यं प्रविशति—तपोवनं प्रविशति। अत्रोत्प्रेक्षाऽप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **स्यन्दना०**—स्यन्दनस्य आलोकाद् भीतः, तत्पुरुष। रथ को देखने से भयभीत। ( २ ) **तीव्रा०**—तीव्रेण आघातेन प्रतिहतस्य तरोः स्कन्धे लग्नः एकः दन्तः यस्य सः। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। आघात—आ+हन्+घञ्। प्रतिहत—प्रति+हन्+क्त। यह आश्रम का हाथी था। रथ को देखकर भयभीत होकर भागते समय उसके मार्ग में वृक्ष पड़ा। उसने जोर से उस पर प्रहार किया, फलस्वरूप वृक्ष गिर गया और उसकी शाखा में उसका एक दाँत फँस गया। वह दाँत को बिना निकाले ही शाखा-सहित भागा जा रहा था। ( ३ ) **पादाकृष्ट०**—पादाभ्याम् आकृष्टस्य व्रततीनां वलयस्य आसङ्गेन संजातः पाशः यस्य सः। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। आसङ्ग—आ+सञ्ज्+घञ्। भागते समय पैर में लताएँ फँसती जाती थीं और वह उनको खींचता जाता था। परिणाम-

स्वरूप पैर में लताओं की बड़ी-सी पड़ गई थी। ( ४ ) भिन्न०—भिन्नानि सारङ्गाणां यूथानि येन सः, बहुव्रीहि। उसको देखकर मृगों के झुण्ड तितर-वितर हो रहे थे। ( ५ ) मूर्तः—शरीरधारी। मूर्त—मूर्च्छ् + क्त। ( ६ ) इस श्लोक में विघ्न इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है। कार्य के वर्णन से क़ारणरूपी राजा के आगमन का संकेत होने से अप्रस्तुतप्रशंसा है।

**१२६. राजा**––(आत्मगतम्) अहो धिक्। पौरा अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु। प्रतिगमिष्यामस्तावत्।

राजा—( मन में ) ओह, धिक्कार है। नगरवासी मुझे ढूँढ़ते हुए तपोवन को पीड़ित कर रहे हैं। अच्छा, मैं लौटकर जाता हूँ।

**१२७. सख्यौ**—आर्य, अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय। [अज्ज, इमिणा आरण्णअवुत्तन्तेण पज्जाउल म्ह। अणुजाणीहि णो उडअगमणस्स।]

दोनों सखियाँ––श्रीमन्, हम लोग इस जंगली हाथी के समाचार से बहुत घबड़ाई हुई हैं। हमें ( अपनी ) कुटी पर जाने की स्वीकृति दीजिए।

**१२८. राजा**––(ससंभ्रम्) गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।

(सर्व उत्तिष्ठन्ति।)

राजा—(घबड़ाहट के साथ) आप लोग जाइए। मैं भी ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे आश्रम को कोई कष्ट न हो। (सब उठते हैं। )

**१२९. सख्यौ**––आर्य, असंभावितातिथिसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जास्मह आर्यं विज्ञापयितुम्। [ अज्ज, असंभाविदादिहिसक्कारं भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमो अज्जं विण्णविदुं। ]

दोनों सखियाँ––श्रीमन् (इस समय) आपका अतिथि-सत्कार किये बिना, आपको पुनः दर्शन देने के लिए प्रार्थना करती हुई हम लोग लज्जित हो रही हैं।

**१३०. राजा**––मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि।

---

पाठभेद—१३०. नि० अत्रभवतीनां० (आदरणीय आप लोगों के)।

राजा—नहीं, ऐसा न कहिए। आप लोगों के दर्शन से ही मैं सत्कृत हो गया हूँ।

**१३१. शकुन्तला**—अनसूये, अभिनवकुशसूच्या परिक्षतं मे चरणं कुरबकशाखापरिलग्नं च वल्कलम्। तावत् परिपालयत मां यावदेतन्मोचयामि। [ अणसूये, अहिणअकुससूईए परिक्खदं मे चलणं कुरवअसाहापरिलग्गं अ वक्कलं। दाव परिपालेध मं जाव णं मोआवेमि। ]

( शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।)

शकुन्तला—अनसूया, नवीन कुश का अग्रभाग मेरे पैर में चुभ गया है और मेरा वल्कल कुरबक वृक्ष की डाल में फँस गया है। जब तक मैं इसको छुड़ाती हूँ तब तक मेरी प्रतीक्षा करो। (राजा को देखती हुई, बहाना बनाकर कुछ रुक कर, शकुन्तला दोनों सखियों के साथ निकल गई।)

### टिप्पणी

(१) **धिक्**—यह राजा अपने लिए कहता है। (२) **पौराः**—नागरिक। सैनिकों के साथ नागरिक विदूषक यवनियाँ आदि भी थीं। (३) **उपरुन्धन्ति**—पीडयन्ति। पीडित कर रहे हैं। (४) **आरण्यक०**—आरण्यकस्य वृत्तान्तेन, तत्पुरुष। आरण्यक—अरण्ये भवः, अरण्य+वुञ् (अक)। पथ्यध्याय० (४-२-१२९) वार्तिक से हाथी के अर्थ में वुञ् प्रत्यय। जंगली हाथी के समाचार से। (५) **पर्याकुलाः**—व्याकुल, घबड़ाए हुए। (६) **असंभावित०**—असंभावितः न कृतः अतिथेः सत्कारः यस्य तम्, बहु०। जिसका अतिथि-सत्कार नहीं किया है, ऐसे आपको। पाठभेद—सत्काराः, जिन्होंने अतिथिसत्कार नहीं किया है, ऐसी हम। अनसूया आदि राजा का उचित सत्कार नहीं कर सकी थीं। (७) **पुरस्कृतः**—सत्कृत। पुरस्+कृ+क्त। (८) **अभिनव०**—अभिनवा कुशसूचिः, कर्मधारय। कुशा की नोक पैर में चुभ गई है। (९) **कुरबक०**—कुरबक एक वृक्ष का नाम है। इसका फूल लाल होता है और इस पर काँटे होते हैं। (१०) **सव्याजम्**—व्याजेन सह, बहु०। व्याज—वि+अज्+घञ्। (अ)। देहलीदीपक-न्याय से इसका संवन्ध अवलोकयन्ती और विलम्ब्य दोनों के साथ हो जाएगा।

**१३२. राजा**—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति।

---

पाठभेद—१३१. नि० शकुन्तला—अनसूये···मोआवेमि, इति वाक्यं नास्ति।

Funding by IKS-MoE

**यावदनुयात्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेयम्। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि--**

**गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।**
**चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥३४॥**

**(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।) प्रथमोऽङ्कः ।**

**अन्वय**—हि मम शरीरं पुरः गच्छति, चेतः प्रतिवातं नीयमानस्य केतोः चीनांशुकम् इव असंस्तुतं पश्चात् धावति ।

**राजा—नगर को लौटने की ओर मेरी उत्सुकता मन्द पड़ गई है। मैं अपने अनुयायियों से मिलकर उनको आश्रम से कुछ दूरी पर ठहराता हूँ। मैं अपने आपको शकुन्तला की ओर प्रवृत्ति से नहीं रोक सकता हूँ। क्योंकि—मेरा शरीर आगे की ओर जा रहा है और मन हवा के विरुद्ध ले जाए जाते हुए ध्वजा के चीनी-वस्त्र (चीन-निर्मित रेशमी वस्त्र) के तुल्य अपरिचित सा होकर पीछे (शकुन्तला) की ओर दौड़ रहा है ॥३४॥ (सबका प्रस्थान।)**

**प्रथम अंक समाप्त ।**

**संस्कृत-व्याख्या**—मम शरीरं—देहः, पुरः—अग्रे, गच्छति—याति, चेतः—मनस्तु, प्रतिवातं—वायोः प्रतिकूलम्, नीयमानस्य—उह्यमानस्य, केतोः—ध्वजस्य, चीनांशुकम् इव—चीनदेशनिर्मितक्षौमवस्त्रमिव, असंस्तुतम्—अपरिचितमिव, पश्चात्—पृष्ठतः शकुन्तलाभिमुखमित्यर्थः, धावति—पलाय्य गच्छति। अत्रातिशयोक्तिरुत्प्रेक्षोपमा चालंकाराः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **मन्दौ०**—मन्दम् औत्सुक्यं यस्य सः, बहु०। उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम्। मन्द उत्सुकता वाला। (२) **अनुयात्रिकान्**—अनु पश्चात् यात्रा अस्ति एषाम्, अनुयात्रा+ठन् (इक)। मत्वर्थ में ठन्। पीछे चलने वालों को। (३) **नातिदूरे**—बहुत दूर नहीं। न अतिदूरे, सुप्सुपा से समास। (४) **व्यापारात्**—व्यापार अर्थात् प्रवृत्ति। शकुन्तला की ओर प्रवृत्ति से। (५) **गच्छति**—यहाँ पर गच्छति और धावति के अन्तर के द्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है कि शकुन्तला के वियोग के कारण शरीर मन्दगति से आगे बढ़ रहा है और मन बड़े वेग से शकुन्तला की ओर दौड़कर जा रहा है। (६) **पश्चात्**—पीछे, शकुन्तला की ओर। (७) **असंस्तुतम्**—अपरिचित-सा। मन मुझसे अपरिचित-सा और शकुन्तला से परिचित-सा हो गया है।

**पाठभेद**—असंस्थितम्—अस्थिर है। मन अस्थिर हो रहा है। (८) **चीनांशुकम्**—कालिदास के समय में चीन की रेशम यहाँ आती थी। कड़ी और चमकीली होने से उसे ध्वजा में लगाया जाता था। कुमारसंभव (७-३) और मालती-माधव (६-५) आदि में भी इसका वर्णन है। (९) **केतोः**—ध्वजा का। यहां पर यह ध्वजा के डंडे और वस्त्र दोनों के लिए है। (१०) **प्रतिवातम्**—वातस्य प्रतिकूलम्, अव्ययीभाव। जिस प्रकार हवा के सामने जाते हुए झंडे का वस्त्र पीछे की ओर उड़ता है और झंडे का डंडा आगे बढ़ता है, उसी प्रकार दुष्यन्त के शरीर और मन की अवस्था थी। (११) इस श्लोक में संबद्ध शरीर और मन में असंबन्ध बताने से अतिशयोक्ति अलंकार है। असंस्तुतम् में इव (मानो) का अर्थ होने से उत्प्रेक्षा है। चीनांशुकमिव में उपमा है। (१२) आश्रम का घेरना आदि नाटकीय नियमों के विरुद्ध होने के कारण यहां नहीं दिखाया गया है। विश्वनाथ ने कहा है—दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः। शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम्। स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः॥ (सा० दर्पण ६.१६-१८)। (१३) अंक का लक्षण है—(क) प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः। नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान्। अन्तर्निष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः॥ (सा० दर्पण ६-१२,१४,१९)। (ख) एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्। पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कः तेषामन्तेऽस्य निर्गमः। (दशरूपक)। (ग)—यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः। किंचिदवलग्नविन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः॥ (नाटचशास्त्र)।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां**
**'भारती' व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः समाप्तः।**

---

## द्वितीयोऽङ्कः।

( ततः प्रविशति विषण्णो विदूषकः )

१. विदूषकः—( निःश्वस्य ) भो दिष्टम्। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिण्डयतेऽटवीतोऽटवी। पत्रसंकरकषायाणि कटुष्णानि गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूभिष्ठ आहारो भुज्यते। तुरगानुधावनकण्डितसंधे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव

प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। इयतेदानीमपि पीडा न निष्क्रामति। ततो गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनाय मनः कथमपि न करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्। का गतिः। यावत्तं कृताचारपरिक्रमं पश्यामि। ( इति परिक्रम्यावलोक्य च ) एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु। अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रमं लभेय। ( इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः। )

[ भो दिट्ठं। एदस्स मअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो म्हि। अअं मओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झण्णे वि गिम्हविरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवी। पत्तसंकरकसाआइं कदुण्हाइं गिरिणईजलाइं पीअन्ति। अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्ठो आहारो अण्हीअदि। तुरगाणुधावणकण्डिदसन्धिणो रत्तिम्मि वि णिकामं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दासीएपुत्तेहिं सउणिलुद्धएहिं वणग्गहणकोहाहलेण पडिबोधिदो म्हि। एत्तएण दाणिं वि पीडा ण णिक्कमदि। तदो गण्डस्य उवरि पिण्डओ संवुत्तो। हिओ किल अह्मेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मआणुसारेण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला मम अधण्णदाए दंसिदा। संपदं

---

पाठभेद—१. नि० दृष्टम् (देखा)। नि० कटूनि [कडुआइं] (कड़वा)। नि० पिटकः [पिडओ] (फोड़ा)। नि० गमनस्य (जाने की)।

Funding by IKS-MoE

णअरगमणस्स मणं कहं वि ण करेदि। अज्ज वि से तं एव्व चिन्तअन्तस्स अच्छीसु पभादं आसि। का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं पेक्खामि। एसो बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं पडिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो। होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।)

(तदनन्तर खिन्न विदूषक का प्रवेश।)

**विदूषक**—(लम्बी साँस लेकर) हे दुर्भाग्य, मैं शिकार के व्यसनी इस राजा की मित्रता से खिन्न हो गया हूँ। 'यह हिरण जा रहा है' 'वह सूअर जा रहा है' 'वह चीता जा रहा है' इस प्रकार ( के शब्दों को सुनकर ) दोपहर के समय भी एक वन से दूसरे वन में गर्मी के कारण नाममात्र की वृक्षों की छाया वाले जंगल के कुंजों में घूमते हैं। पत्तों के पड़ने से कड़वा तथा कुछ गर्म पहाड़ी नदियों का जल पीते हैं। अनियत समय पर भुने हुए मांस से युक्त खाना खाते हैं। (मृग आदि के पीछे) घोड़ा दौड़ाने से मेरे जोड़ों में पीड़ा हो गई है और रात में भी पूरा सो नहीं पाता हूँ। फिर (आज) बहुत सबेरे ही नीच बहेलियों के जंगल को घेरने के हल्ले से जगा दिया गया हूँ। इतने पर भी अभी मेरा दुर्भाग्य शान्त नहीं होता है। यह और फोड़े पर फोड़ा हो गया है। कल हम लोगों के पीछे छूट जाने पर पूजनीय राजा जब मृग का पीछा करते हुए आश्रम में गए तब मेरे दुर्भाग्य से उनको एक तपस्विकन्या शकुन्तला दिखाई दी। अब वह नगर को लौटने की बात भी नहीं करते हैं। आज भी वह (रात भर) उसी (शकुन्तला) को सोचते रहे और जागते ही रात बीत गई। क्या करूँ? उनके (स्नानादि) दैनिक कार्य कर लेने पर उनसे मिलूँगा। (घूमकर और देखकर) यह मेरे प्रियमित्र धनुर्धारिणी और जंगली फूलों की माला पहनने वाली यवनियों (पारसी स्त्रियों) से घिरे हुए इधर ही आ रहे हैं। अच्छा, अंग-भंग से व्याकुल-सा होकर यहाँ रुकता हूँ। सम्भव है इस प्रकार ही मुझे कुछ विश्राम मिल जाय। (डंडे के सहारे खड़ा होता है।)

### टिप्पणी

(१) **विदूषक**—यह हास्यप्रिय पात्र होता है। अपने हाव-भाव, कार्य और

---

पाठभेद—१. नि० विश्रामं (विश्राम)।

व्यवहार आदि से दर्शकों को हँसाता है। इसका लक्षण है—(क) कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः।। (सा० दर्पण ३-४२)। (ख) विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः। (सुधाकर)। (२) **दिष्टम्**—भाग्य। यहाँ दुर्भाग्य अर्थ में है। पाठभेद—दृष्टम्—देखा। (३) **वयस्य०**—मित्र। वयसा तुल्यः, वयस्+यत् (य)। नौवयोधर्म० (४-४-९१) से यत्। (४) **निर्विण्णः**—खिन्न। निर्+विद्+क्त। (५) **मध्याह्ने**—अह्नः मध्यम्—मध्याह्नम्। (६) **ग्रीष्म०**—पादपानां छाया पादपच्छायम्, ग्रीष्मेण विरलं पादपच्छायं यासु, बहु०। (७) **पत्र०**—पत्राणां संकरेण कषायाणि, तत्पुरुष। पत्तों के मिलने से कड़वी। (८) **कदुष्णानि**—ईषत् उष्णानि। कुछ गर्म। कु+उष्ण=कदुष्ण। कोः कत्तत्पुरुषेऽचि (६-३-१०१) से कु को कत् आदेश। इसके ही कवं चोष्णे (६-३-१०७) सूत्र से कोष्ण और कवोष्ण रूप भी बनते हैं। (९) **अनियत०**—अनियता वेला यस्मिन् तत्, बहु०। नियत—नि+यम्++क्त। (१०) **शूल्य०**—शूले संस्कृतं शूल्यम्। शूल+यत्(य)। काँटे पर भुना हुआ। शूल्यं मांसं भूयिष्ठं यस्मिन् सः, बहु०। (११) **तुरगा०**—तुरगेण अनुधावनम्, तेन कण्डिताः सन्धयः यस्य तस्य, तत्पुरुषगर्भक बहु०। कण्डित०—जोड़ पीड़ायुक्त हैं। (१२) **रात्रावपि**—रात्रि में भी शान्ति से सोना नहीं मिलता। (१३) **प्रत्यूषे**—उषाकाल में। प्रति+ऊष्+क (अ)। प्रत्यूषति पीडयति कामुकान् इति प्रत्यूषः। (१४) **दास्याः पुत्रैः**—दासीपुत्र अर्थात् नीच। यह गाली है। पुत्रेऽन्यतरस्याम् (६-३-२२) से षष्ठी का अलुक्। (१५) **शकुनि०**—शकुनीनां लुब्धकाः, तत्पुरुष। पक्षियों को मारने वाले, बहेलिये। (१६) **वन०**—वनग्रहणस्य कोलाहलेन, तत्पुरुष। वन को घेरने के हल्ले से। (१७) **गण्डस्योपरि०**—यह मुहावरा है। इसका अर्थ है—गण्ड अर्थात् फोड़े पर पिण्डक फोड़ा। इस भाव के हिन्दी मुहावरे हैं—फोड़े पर फोड़ा, घाव पर घाव, जले पर नमक डालना। (१८) **अवहीनेषु**—पीछे छूटने पर। अव+हा (त्यागे)+क्त (त)। ओदितश्च (८-२-४५) से त को न, घुमास्था० (६-४-६६) से आ को ई। (१९) **अधन्यतया**—दुर्भाग्य से। धन्य—धनं लब्धा, धन को पाने वाला। धन+यत् (य)। धनगणं लब्धा (४-४-८४) से यत्। (२०) **ह्यः किल०**—इस वाक्य से ज्ञात होता है कि प्रथम और द्वितीय अंक की घटना में केवल एक दिन का ही अन्तर है। (२१) **अक्ष्णोः प्रभातम्**—जागते ही रात बीत गई। (२२) **कृताचार०**—कृतः आचारस्य स्नानादेः परितः क्रमः येन तम्, बहु०। आचारपरिक्रम अर्थात् दैनिक स्नानादिकार्य जिसने कर लिये हैं। (२३) **बाणासन०**—बाणासनं धनुः हस्ते यासां ताभिः, बहु०। धनुष जिनके हाथ में है। बाणासन—बाणा अस्यन्ते अनेन, जिससे बाण फेंके जाते हैं। बाण+अस्+ल्युट् (अन)। (२४) **यवनीभिः**—यवनी शब्द फारस की लड़कियों के लिए है। वे राजा के पास सेविका के रूप में रहती थीं। कालिदास ने फारस की स्त्रियों

के लिए यवनी शब्द का प्रयोग प्रायः किया है। जैसे—पारसीकांस्ततो जेतुं.... यवनीमुखपद्मानाम्। (रघुवंश ४-६०,६१)। भारतीयों ने यवन शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया है। प्रायः बहुत से विदेशियों के लिए इसका प्रयोग होता रहा है। जैसे—यूनानी, फारसी, बेक्ट्रियानिवासी, अरबनिवासी आदि। यवनी शब्द से मुसलमान लड़कियों या स्त्रियों से भाव नहीं है। कालिदास के समय में मुसलमान थे ही नहीं। यवन शब्द का अर्थ केवल यूनानी ही नहीं है। दण्डी ने अरबनिवासियों के लिये यवन शब्द का प्रयोग किया है।

**विशेष**—इस अंक के प्रारम्भ से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि है। कुछ विद्वान् इस अंक के वाक्य ( संख्या ३८ ) से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक प्रतिमुखसन्धि मानते हैं। विशेष विवरण देखो वाक्य संख्या ३८ पर।

**( ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा। )**

**२. राजा—(आत्मगतम्)**

**(क) कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।**
**अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥१॥**

**(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते।**

**अन्वय**—कामं प्रिया न सुलभा, तु मनः तद्भावदर्शनाश्वासि, मनसिजे अकृतार्थे अपि उभयप्रार्थना रतिं कुरुते।

**(तदनन्तर पूर्वनिर्दिष्ट परिवार के साथ राजा का प्रवेश)**

**राजा—(मन में) भले ही प्रिया (शकुन्तला) सुलभ न हो, किन्तु मेरा मन उसके ( प्रेमयुक्त ) भावों को देखकर सन्तुष्ट है। कामभाव के सफल न होने पर भी दोनों ओर की इच्छा प्रेम को उत्पन्न करती ही है ॥१॥**

**(मुस्कराकर)—इस प्रकार अपने भावों के अनुसार अपने प्रिय व्यक्ति के मनोभावों की सम्भावना करने वाला प्रेमी हँसी को प्राप्त होता है।**

**संस्कृत-व्याख्या**—कामं—मतमेतत्, प्रिया—शकुन्तला, न सुलभा—न सुखेन लभ्या, तु—किन्तु, मनः—मे चेतः, तद्भाव०—तस्याः शकुन्तलायाः भावदर्शनेन प्रेमभावनिरीक्षणेन आश्वासि सन्तुष्टमस्ति। मनसिजे—कामे, अकृतार्थेऽपि—

---

पाठभेद—२. का० आत्मगतम्, इति नास्ति। नि० दर्शनायासि (दर्शन के प्रयत्न वाला)।

Funding by IKS-MoE

असफलेऽपि, उभयप्रार्थना—द्वयोः परस्पराभिलाषः रतिं—प्रेम, कुरुते—उत्पादयत्येव। अत्रार्थान्तरन्यासो विरोधाभासश्चालंकारौ। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **कामम्**—भले ही, माना कि। यह अव्यय है। (२) **सुलभा**—मैं यह मानता हूँ कि शकुन्तला सुलभ नहीं है, क्योंकि उसका विवाह आदि सब कुछ ऋषि कण्व की इच्छा पर निर्भर है। सुलभ—सु+लभ्+खल् (अ)। (३) **तु**—किन्तु, तथापि। (४) **तद्भाव०**—मेरा मन उसके प्रेमपूर्ण हाव-भाव को देखकर सन्तुष्ट है। तस्याः भावस्य दर्शनेन आश्वसिति इति, आ+श्वस्+णिनि (इन्)। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। नपुं० एक० का रूप है। पाठभेद०—दर्शनायासि, मेरा मन शकुन्तला के प्रेम-भाव के दर्शन की लालसा वाला है। प्रकरण के अनुसार यह पाठ ठीक नहीं है, आगे के वक्तव्य से उसका विरोध पड़ता है, अतः यह पाठ नहीं अपनाया गया है। (५) **मनसिजे**—कामभाव के। मनसि+जन्+ड (अ)—मनसिज (कामदेव)। सप्तम्यां जनेर्डः (३-२-९७) से ड प्रत्यय और तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६-३-१४) से सप्तमी का अलुक्। (६) **अकृतार्थेऽपि**—सफल न होने पर भी। कृतार्थः—कृतः अर्थः येन सः, जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है। (७) **उभय०**—उभययोः प्रार्थना, तत्पुरुष। दोनों की परस्पर अभिलाषा। (८) **रतिम्०**—प्रेम या अनुराग को उत्पन्न करती है। (९) इस श्लोक में रतिमुभयप्रार्थना० में विशेष के द्वारा सामान्य अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। काम के अकृतार्थ होने पर रति (संभोग) की उत्पत्ति में विरोध है, रति का अर्थ प्रेम लेने पर परिहार है, अतः विरोधाभास है। (१०) **आत्माभि०**—आत्मनः अभिप्रायेण संभाविता इष्टजनस्य चित्तवृत्तिः येन सः, तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। अपने अभिप्राय के अनुसार इष्टजन की चित्तवत्ति की संभावना करने वाला। अभिप्राय—अभि+प्री+घञ्। (११) **प्रार्थयिता**—प्रार्थना करने वाला, इच्छुक, प्रेमी। (१२) **विडम्ब्यते**—उपहस्यते। हँसी को प्राप्त होता है। (१३) इस श्लोक में विलास नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण ( परि० ६ ) में यह श्लोक विलास का उदाहरण उद्धृत किया है। विलास का लक्षण है—समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते। (सा० दर्पण ६-८९)

**२. (ख) स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया**
**यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।**
**मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी**
**सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ॥२॥**

---

पाठभेद—२. नि० प्रेषयन्त्या (भेजती हुई ने)।

**अन्वय**—अन्यतः अपि नयने प्रेरयन्त्या तया यत् स्निग्धं वीक्षितम्, नितम्बयोः गुरुतया विलासात् इव यच्च मन्दं यातम्, मा गा इति उपरुद्धया सा सखी यदपि सासूयम् उक्ता, तत् सर्वं मत्परायणं किल, अहो कामी स्वतां पश्यति।

दूसरी ओर अपनी दृष्टि डालते हुए भी उसने (मेरी ओर) जो प्रेमपूर्वक देखा, कटिभाग के भारीपन के कारण मानो लीलापूर्वक जो धीरे-धीरे चली, 'मत जाओ' इस प्रकार रोके जाने पर उसने अपनी सखी (प्रियंवदा) को जो कुछ क्रोधपूर्वक कहा, वह सब कुछ मुझको लक्ष्य में रखकर ही था। ओह, कामी व्यक्ति ( सर्वत्र ) अपनी ही बात देखता है ॥२॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अन्यतोऽपि—अन्यस्यां दिशि अपि, नयने—लोचने, प्रेरयन्त्या—निक्षिपन्त्या, तया—शकुन्तलया, यत् स्निग्धं—प्रेमपूर्णम्, वीक्षितं—दृष्टम्। नितम्बयोः—कटिपृष्ठभागयोः, गुरुतया—भारवत्त्वात्, विलासादिव—लीलयेव, यच्च मन्दं—शनैः, यातं—गमनं कृतम्। मा गाः इति—न गच्छ इति प्रियंवदया निगदिते, उपरुद्धया—निवारितया तया शकुन्तलया, सा सखी—प्रियंवदा, यदपि—यत्किंचित्, सासूयं—सकोपम्, उक्ता—अभिहिता। तत् सर्वं-तत् सर्वं कृत्यम्, मत्परायणं—मामेव लक्ष्यीकृत्य आसीत्। अहो—आश्चर्यमेतत्, कामी—विषयी जनः, स्वताम्—सर्वत्र स्वाभिप्रायरूपताम्, पश्यति। अत्रार्थान्तरन्यास उत्प्रेक्षा स्वभावोक्तिश्चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **स्निग्धम्**—प्रेमपूर्वक। स्निह्+क्त (त)। स्निग्धदृष्टि का लक्षण है—"विकाशि स्निग्धमधुरा चतुरे विभ्रती भ्रुवौ। कटाक्षिणी साभिलाषा दृष्टिः स्निग्धाऽभिधीयते ॥' (२) **नितम्बयोः०**—नितम्बों (कटिभाग, चूतड़) का भारी होना स्त्रियों के सौन्दर्य का सूचक है। (३) **विलासात्**—इष्ट व्यक्ति को देखकर स्त्रियों के शृंगारिक भावविशेष को विलास कहते हैं। इसका लक्षण है—(क) यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना। (सा० दर्पण ३-९९,१००)। (ख) गमनासनपाणिपादचेष्टा सविशेषं नयनभ्रुवां च कर्म। दयितोपगमे यदप्रयत्नात् क्रियते नूनमयं विलास उक्तः ॥ (नाटचशास्त्र)। (ग) यो वल्लभासन्नगतो विकारो गत्यासनस्थानविलोकनादौ। नानाविधाकूतचमत्कृतिश्च पराङ्मुखं चास्यमयं विलासः। (४) **मा गाः**—मत जाओ। माङ के कारण लुङ, माङि लुङ (३-३-१७५) से। गाः—गत्यर्थक इण् ( इ ) धातु का लुङ म० पु० एक० का रूप है। माङ के कारण अडागम नहीं हुआ। इणो गा लुङि (२-४-४५) से इ को गा आदेश लुङ में होता है। (५) **सासूयम्**—कुछ क्रोध के साथ। असूया का

अर्थ है गुणों में दोष निकालना, छिद्रान्वेषण। यहाँ पर कुछ क्रोध का भाव है। (६) **सखी**—प्रियंवदा के लिए है। उसके प्रथम अंक के वार्तालाप की ओर संकेत है। (७) **मत्परायणम्**—अहमेव परम् अयनम् आश्रयः यस्य तम्। परायण—लक्ष्य, उद्देश्य। (८) **कामी स्वतां०**—कामी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु और कार्य को अपनी ही दृष्टि से देखता है और समझता है कि उसके इष्ट व्यक्ति के प्रत्येक कार्य उसको दिखाने के लिए ही किये जा रहे हैं। (९) कामी स्वताम्० आदि में विशेष से सामान्य अर्थ के समर्थन से अर्थान्तरन्यास है। विलासाद् इव में उत्प्रेक्षा है। पूरे श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है।

**३. विदूषकः—(तथास्थित एव) भो वयस्य, न मे हस्तपादं प्रसरति। तद् वाङ्मात्रेण जापयिष्यामि। जयतु जयतु भवान्।** [भो वअस्स, ण मे हत्थपाआ पसरन्ति। ता वाआमेत्तएण जीआवइस्सं। जेदु जेदु भवं।]

**विदूषक—(उसी प्रकार खड़ा हुआ) हे मित्र, मेरे हाथ-पाँव नहीं चलते हैं। अतः वाणीमात्र से (आपकी) जय कहता हूँ। जय हो, आप की जय हो।**

**४. राजा—कुतोऽयं गात्रोपघातः?**

**राजा—(तुम्हारा) यह अंग-भंग कैसे हुआ?**

**५. विदूषकः—कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।** [कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि।]

**विदूषक—क्यों, स्वयं (मेरी) आँखों में चोट मारकर (मेरे) आँसू का कारण पूछते हो।**

**६. राजा—न खल्ववगच्छामि।**

**राजा—मैं नहीं समझा।**

**७. विदूषकः—भो वयस्य, यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, ननु नदीवेगस्य।** [भो वअस्स, जं वेदसो कुज्जलीलं विडम्बेदि, तं किं अत्तणो पहावेण, णं णईवेअस्स?]

---

पाठभेद—३. नि० तद् [ता], इति नास्ति। नि० जयतु० [जेदु०], इति नास्ति। ४. नि० (सस्मितम्) (मुस्कराते हुए), इत्यधिकः पाठः।

विदूषक—हे मित्र, बेंत जो कुबड़े की चेष्टा का अनुकरण करता है, क्या वह अपने प्रभाव से ही (वैसा करता है) या नदी के वेग के प्रभाव से?

८. राजा—नदीवेगस्तत्र कारणम्।

राजा—उसमें नदी का वेग कारण है।

९. विदूषकः—ममापि भवान्। [मम वि भवं।]

विदूषक—मेरे भी आप (कारण हैं)।

१०. राजा—कथमिव।

राजा—कैसे?

११. विदूषकः—एवं राजकार्याण्युज्झिवैतादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत् प्रसीद मे। एकाहमपि तावद् विश्रम्यताम्। [एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ एआरिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसमुच्छारणेहिं संखोहिअसंधिबन्धाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसीद मे। एक्काहं वि दाव विस्समीअदु।]

विदूषक—इस प्रकार राजकार्यों को छोड़कर ऐसे (हिंसक पशुओं से) व्याप्त प्रदेश में जंगली लोगों के तुल्य आपका रहना उचित है? सच कहता हूँ कि प्रतिदिन हिंसक जन्तुओं का पीछा करने से मेरे जोड़ ढीले पड़ गए हैं और मैं अपने अंगों का स्वामी नहीं रह गया हूँ। अतः मुझसे प्रसन्न होइए। एक दिन तो विश्राम कीजिए।

## टिप्पणी

(१) वयस्य—विदूषक राजा को वयस्य (मित्र) संबोधन करता है। 'विदूषकेण वक्तव्यो वयस्येति च भूपतिः।' (२) हस्तपादम्—हस्तौ च पादौ

---

पाठभेद—११. नि० तादृशे [तारिसे] (वैसे)। नि० तत्प्रसादयिष्यामि विसर्जितुं मामेकाहमपि तावद् विश्रमितुम् [ता पसादइस्सं विसज्जिदुं मं एक्काहं वि दाव विस्समिदुं] (तो मैं आपको मनाऊँगा कि आप मुझे एक दिन विश्राम करने के लिए छोड़ दें)।

च, द्वन्द्व। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य० (२-४-२) से एकवचन और नपुंसक०। (३) **जापयिष्यामि**—जयशब्दम् उच्चारयिष्यामि। यह जि धातु का णिजन्त का रूप है। जि+णिच्+लृट्। कीङ्जीनां णौ (६-१-४८) से जि के इ को आ, अर्तिह्री० (७-३-३६) से पुक् (प्)। (४) **गात्रोप०**—अंगों में विकार। (५) **न खलु०**—मैं तुम्हारा भाव नहीं समझा। कुब्ज०—कुबड़े की तरह चेष्टा करना। (६) **विडम्बयति**—अनुकरण करता है। (७) **आकुल०**—हिंसक पशुओं से व्याप्त। (८) **वनचर०**—जंगली व्यक्तियों के तुल्य कार्य वाले। (९) **यत्सत्यम्**—इतने का अर्थ है सच कहता हूँ। (१०) **श्वापद०**—हिंसक पशुओं का पीछा करने से। श्वापद—हिंसक जन्तु। शुनः पदानि श्वापदानि, शुनो दन्त० वार्तिक से आ। श्वापदानि इव पदानि येषां ते श्वापदाः। (११) **गात्राणाम्**—अंगों का। अधीगर्थ० (२-३-५२) से षष्ठी। गात्र शब्द एकवचन का अर्थ शरीर होता है और वहुवचन का अर्थ अंग होता है।

**१२. राजा**—(स्वगतम्) अयं चैवमाह। ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कुतः—

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो
धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥३॥

**अन्वय**—अधिज्यम् आहितसायकम् इदं धनुः मृगेषु नमयितुं न शक्तः अस्मि। यैः प्रियायाः सहवसितम् उपेत्य मुग्धविलोकितोपदेशः कृतः इव।

**राजा**—(मन में) यह (विदूषक) इस प्रकार कह रहा है। मेरा भी मन शकुन्तला का स्मरण करके शिकार से उदासीन हो रहा है। क्योंकि—

प्रत्यंचा चढ़े हुए और बाण रखे हुए इस धनुष को मृगों पर चलाने में म समर्थ नहीं हूँ। जिन्होंने मेरी प्रिया के सहवास को प्राप्त करके मानो (उसे) मनोहर दृष्टिपात का उपदेश दिया है ॥३॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अधिज्यम्—आरूढमौर्वीकम्, आहितसायकं—धृतबाणम्, इदं धनुः—एतत् शरासनम्, मृगेषु—हरिणेषु, नमयितुं—व्यापारयितुं चालयितुं वा, न शक्तः अस्मि—न समर्थोऽस्मि। यैः—मृगैः, प्रियायाः—शकुन्तलायाः, सहवसतिं—सहवासम्, उपेत्य—प्राप्य, मुग्ध०—मनोहरदृष्टिपातस्योपदेशः, कृत इव—दत्त इव। अत्रोत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गं चालङ्कारौ। 'एवमात्माभिप्राय०' इत्यादिनैतदन्तेनानुस्मृतिनामिका तृतीया मदनावस्था सूचिता। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **अनुस्मृत्य**—शकुन्तला को स्मरण करके। अनु+स्मृ+ल्यप्। (२) **नमयितुम्**—चलाने में। नम्+णिच्+तुमुन्। (३) **अधिज्यम्**—अधिगता ज्या यस्मिन् तत्, बहु०। जिस पर डोरी चढ़ी हुई है। (४) **आहित०**—आहितः सायकः यस्मिन् तत्, बहु०। जिस पर बाण चढ़ाया हुआ है। आहित—आ+धा+क्त। धा को हि हो जाता है। (५) **सहवसतिम्**—सह एकत्र वसतिः ताम्। सुप्सुपा (२-१-४) से समास। एक साथ निवास को। (६) **उपेत्य**—प्राप्त करके। उप+इ+ल्यप्। (७) **प्रिया**—प्रीणातीति प्रिया, प्री+क (अ)। इगुपधज्ञा० (३-१-१३५) से क प्रत्यय। मन को प्रसन्न करने वाली। (८) **मुग्ध०**—मुग्धस्य विलोकितस्य उपदेशः, तत्पुरुष। मनोहर या अकृत्रिम दृष्टिपात का उपदेश। मुग्ध के मनोहर और अकृत्रिम, दोनों अर्थ हैं। मुग्ध—मुह्+क्त। इसका दूसरा रूप मूढ बनता है। मृगों ने शकुन्तला को सुन्दरतापूर्वक देखना सिखाया है, अतः उन पर बाण नहीं चला सकता हूँ। पाठभेद—लोचन-कान्ति-संविभागः, मृगों ने शकुन्तला के साथ मानो अपने नेत्रों की सुन्दरता का विभाजन कर लिया है। मृगों के साथ मुग्धविलोकन के आदान-प्रदान का भाव कालिदास ने कुमारसंभव (१-४६) में भी वर्णन किया है। (९) उत्तरार्ध पूर्वार्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग है। कृत इव में उत्प्रेक्षा है। अनुस्मृति नामक तीसरी मदनावस्था यहाँ पर है। उसका लक्षण है—अर्थानामनुभूतानां देशकालानुवर्तिनाम्। सातत्येन परामर्शो मानसः स्यादनुस्मृतिः॥

**१३. विदूषकः—(राज्ञो मुखं विलोक्य) अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्। [अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि।]**

विदूषक—(राजा के मुंह की ओर देखकर) आप कुछ बात मन में रख कर विचार कर रहे हैं। मैंने अरण्यरोदन (ही) किया।

**१४. राजा—(सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि।**

राजा—(मुस्कराते हुए) और क्या। मैं मित्र के वचन का उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ, इसलिए (मृगया से) रुक गया हूँ।

**१५. विदूषकः—चिरं जीव। [चिरं जीअ।] (इति गन्तुमिच्छति।)**

विदूषक—आप चिरंजीवी हों। (जाना चाहता है।)

**१६. राजा--वयस्य, तिष्ठ। सावशेषं मे वचः।**

राजा--मित्र, (थोड़ा) रुको। मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई है।

**१७. विदूषकः--आज्ञापयतु भवान्।** [ आणवेदु भवं। ]

विदूषक--आप आज्ञा दीजिए।

**१८. राजा--विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।**

राजा--विश्राम करके आप मेरे भी एक सरल काम में सहायक होना।

**१९. विदूषकः--किं मोदकखादिकायाम्। तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः।** [ किं मोदअखज्जिआए। तेण हि अअं सुगहीदो खणो।]

विदूषक--क्या लड्डू खाने में। तो यह निमन्त्रण सर्वथा स्वीकार है।

**२०. राजा--यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भोः।**

राजा--जिस काम में मैं कहूँगा। ओ, यहाँ कौन है?

**(प्रविश्य)**

**२१. दौवारिकः--(प्रणम्य) आज्ञापयतु भर्ता।** [आणवेदु भट्टा।]

(प्रवेश करके) द्वारपाल--(प्रणाम करके) महाराज आज्ञा दीजिए।

### टिप्पणी

( १ ) **मन्त्रयते**--आप मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। ( २ ) **अरण्ये रुदितम्०**--यह मुहावरा है। मैंने अरण्यरोदन किया। इसका भाव है--मैंने व्यर्थ ही कहा, कोई मेरी बात नहीं सुनता है। जिस प्रकार जंगल में रोने को कोई नहीं सुनता, वैसा ही यहाँ भी है। ( ३ ) **स्थितोऽस्मि**--शिकार खेलने से रुक गया हूँ। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि--मैं अतएव चुप हो गया हूँ। ( ४ ) **सावशेषम्**--अवशेषेण सह, वहु०। मेरी बात अभी अधूरी ही है। ( ५ ) **विश्रान्तेन**--विश्राम करके। विश्रान्त-वि+श्रम्+क्त। ( ६ ) **अनायासे**--सरल कार्य में। विदूषक के अनुसार खाना ही सबसे सरल काम है।

---

पाठभेद--१८. नि० एकस्मिन्, इति नास्ति। १९. नि० ०खण्डिकायाम्, [खंडिआए] (तोड़ने में)।

Funding by IKS-MoE

अन्य सभी कामों में परिश्रम है। (७) **मोदक०**—मोदयते इति मोदकः, मुद्+णिच्+ण्वुल् (अक)। मोदकानां खादनं मोदकखादिका। खाद्+ण्वुल् (अक)। धात्वर्थनिर्देशे (वार्तिक) से ण्वुल्। लड्डू खाना। (८) **सुगृहीतः क्षणः**—मैंने यह अवसर अच्छे प्रकार से पकड़ लिया है अर्थात् आपका निमन्त्रण सर्वथा स्वीकार है। ब्राह्मण को श्राद्ध के निमन्त्रण के लिए भी क्षण शब्द का प्रयोग होता है, अतः क्षण का निमन्त्रण अर्थ लिया जा सकता है। (९) **दौवारिकः**—द्वारे नियुक्तः। द्वार+ठक् (इक)। द्वारादीनां च (७-३-४) से बीच में औ का आगम। द्वारपाल।

**२२. राजा**—रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

राजा—रैवतक, सेनापति को बुलाओ।

**२३. दौवारिकः**—तथा। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य) एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्तेतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः। [तह। एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पद अज्जो।]

द्वारपाल—महाराज की जो आज्ञा। (बाहर निकलकर और सेनापति के साथ फिर प्रविष्ट होकर) महाराज इधर ही दृष्टि लगाए कुछ आज्ञा देने के लिए उत्कण्ठित बैठे हुए हैं। आप उनके समीप चलिए।

**२४. सेनापतिः**—(राजानमवलोक्य) दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता। तथा हि देवः—

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति ॥४॥

(उपेत्य) जयतु जयतु स्वामी। गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते।

अन्वय—गिरिचरः नागः इव देवः अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैः अभिन्नम् अपचितम् अपि व्यायतत्वात् अलक्ष्यं प्राणसारं गात्रं बिभर्ति।

---

पाठभेद—२४. नि० जयतु, इति नास्ति।

**सेनापति**—(राजा को देखकर) यद्यपि मृगया सदोष है, किन्तु महाराज के लिए वह केवल गुण ही हो गई है। क्योंकिः—

महाराज पहाड़ी हाथी के तुल्य शरीर को धारण करते हैं, जिसका अग्रभाग निरन्तर धनुष की प्रत्यंचा के खींचने से कठोर हो गया है, जो सूर्य की किरणों को सहन कर सकता है, जो पसीने की बूँदों से रहित है, कृश होने पर भी पुष्टता के कारण (कृश) दिखाई नहीं देता है और जो बलरूपी सारभाग से युक्त है ।।४।।

(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो। वन के हिंसक पशुओं को घेर लिया है। आप अब यहाँ क्यों बैठे हैं?

**संस्कृत-व्याख्या**—गिरिचरः—पर्वतविहारी, नाग इव—हस्ती इव, देवः—महाराजः, अनवरत०—अनवरतं सततं धनुषः कार्मुकस्य ज्यायाः गुणस्य आस्फालनेन समाकर्षणेन क्रूरः कठोरः पूर्वः पूर्वभागः यस्य तत्, रविकिरणसहिष्णु—सूर्यरश्मिसहनशीलम्, स्वेदलेशैः—स्वेदजलकणैः, अभिन्नं—विरहितम्, अपचितम् अपि—कृशमपि, व्यायतत्वात्—परिपुष्टत्वात्, अलक्ष्यं—कृशतया अप्रतीयमानम्, प्राणसारं—प्राणः बलं सारः सारभागः यस्मिन् तत्, बलसमन्वितम्, गात्रं—शरीरम्, बिभर्ति—धारयति। गजशरीरपक्षे—अनवरत०—अनवरतम् धनुषः प्रियालद्रुमस्य ज्यायां भूमौ आस्फालनं घर्षणं तेन कठिनः पूर्वभागः यस्य तत्, रवि०—सूर्यातपसहनशीलम्, स्वेद०—स्वेदजलरहितम्, अपचितमपि—कृशमपि, व्यायतत्वात्, अलक्ष्यम्—अज्ञेयम्, प्राणसारं—बलसमन्वितम्। अत्र परिकरः, श्लेष उपमाचालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **सेनापतिः**—सेनापति का लक्षण—कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः। हस्तिशिक्षाऽश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषणः ।। निमित्ते शकुनज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सिते। कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसह ऋजुः ।। व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्। राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ।। मत्स्यपुराण अध्याय १८९। ( २ ) **दृष्टदोषा**—दृष्टाः दोषा यस्यां सा, बहु०। जिसमें दोष देखे गये हैं। शिकार खेलना राजा के मुख्य दुर्व्यसनों में माना गया है। पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्। एतत् कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे ।। ( मनु० ७-५० ) पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनानि महीपतेः। ( कामन्दक० १४-६१ )। (३) **गुण एव**—मृगया राजा के लिए गुणरूप में हो गई है। (४) **अनवरत०**—इस श्लोक के दो अर्थ हैं—एक राजा के शरीर के पक्ष में और दूसरा हाथी के शरीर के पक्ष में। (क) राजा के पक्ष में—निरन्तर धनुष की डोरी की रगड़ से हाथ का अग्रभाग कठोर हो गया है।

(ख) हाथी के पक्ष में—निरन्तर प्रियाल वृक्ष की जड़ में रगड़ने से शरीर का अग्रभाग कठोर हो गया है। धनुष शब्द के दो अर्थ हैं—धनुष और प्रियाल (प्याल) वृक्ष। ज्या के भी दो अर्थ हैं—धनुष् की डोरी और भूमि। अनवरतं धनुषः ज्याया आस्फालनेन क्रूरं पूर्वं यस्य तत्। तत्पुरुषगर्भक बहु०। अन्य विशेषणों का अर्थ राजा और हाथी दोनों पक्षों में एक सा ही है। (५) **रवि०**—रवेः किरणानां सहिष्णु, तत्पुरुष। सूर्य की किरणों को सहन करने वाला। सहिष्णु—सह्+इष्णुच्। इससे राजा की दुःखसहिष्णुता सूचित होती है। (६) **स्वेद०**—पसीने की बूंदों से रहित। कठिन परिश्रम करने पर भी उसे पसीना नहीं आता था। इससे उसका श्रमजयित्व सूचित होता है। (७) **अपचितम्**—मोटापे की कमी से युक्त, अतः कृश। अप+चि+क्त। (८) **व्यायतत्वात्**—पुष्ट शरीर या विशाल होने से। व्यायत—वि+आ+यम्+क्त। (९) **अलक्ष्यम्**—शरीर पुष्ट होने से उसकी कृशता दिखाई नहीं पड़ती थी। (१०) **प्राणसारम्**—प्राण का अर्थ बल भी है। बलरूपी सारभाग से युक्त, अर्थात् बलिष्ठ। प्राणः सारः यस्मिन् तत्, बहु०। अथवा प्राणस्य सारम्, तत्पुरुष। बल के साररूपी। (११) इस श्लोक में साभिप्राय विशेषणों के कारण परिकर है, श्लेष होने से श्लेष है और गिरिचर इव में उपमा है। (१२) **गृहीत०**—जंगली जानवरों को घेर लिया है, अब आप यहाँ क्यों रुके हैं, चलिए उनको मारिए।

**२५. राजा—मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन।**

राजा—मृगया की निन्दा करने वाले माधव्य ने मेरा उत्साह मन्द कर दिया है।

**२६. सेनापतिः—(जनान्तिकम्) सखे, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।**

**मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः**
**सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।**
**उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले**
**मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ॥५॥**

अन्वय—वपुः मेदश्छेदकृशोदरं लघु उत्थानयोग्यं भवति। सत्त्वानां

---

पाठभेद—२५ नि० माढव्येन (माढव्य ने)। २६. नि० वैधवेयः (विधवा का पुत्र)।

भयक्रोधयोः विकृतिमत् चित्तम् अपि लक्ष्यते । स च धन्विनाम् उत्कर्षः यत् चले लक्ष्ये इषवः सिध्यन्ति, मृगयां मिथ्या एव व्यसनं वदन्ति, ईदृक् विनोदः कुतः ।

**सेनापति**—(हाथी की ओट में) मित्र, तुम अपने आग्रह पर दृढ़ रहना । मैं महाराज की इच्छा का अनुसरण करूँगा । (प्रकट) इस मूर्ख को बकने दीजिए । आप ही इस विषय में प्रमाण हैं ।

(मृगया से) शरीर, चर्बी कम होने से घटे हुए पेट वाला, चुस्त और उत्साह के योग्य हो जाता है । जीवों के भय और क्रोध की अवस्था में क्षुब्ध मन का भी ज्ञान होता है । यह धनुर्धारियों के लिए बड़े गौरव की बात है कि चंचल लक्ष्य पर (उनके) बाण सफल होते हैं । शिकार खेलने को व्यर्थ ही लोग व्यसन कहते हैं । इतना मनोरंजन और कहाँ ? ।।५।।

**संस्कृत-व्याख्या**—वपुः—मृगयाशीलस्य नरस्य शरीरम्, मेद०—मेदसः वसायाः छेदेन न्यूनतया कृशम् अस्थूलम् उदरं यस्य तत्, लघु—क्रियाशीलम्, उत्थानयोग्यम्—उद्यमयोग्यम्, भवति—संजायते । सत्त्वानां—जीवानाम्, भयक्रोधयोः—भयस्य क्रोधस्य चावस्थायाम्, विकृतिमत्—क्षुब्धम्, चित्तमपि—मनः अपि, लक्ष्यते—अवलोक्यते ज्ञायते इत्यर्थः । स च—एष च, धन्विनां—धनुष्मताम्, उत्कर्षः—गौरवविषयः, यत् चले—चंचले, लक्ष्ये—शरव्ये, इषवः—बाणाः, सिध्यन्ति—सफला भवन्ति । मृगयाम्—आखेटम्, मिथ्यैव—मुधैव व्यर्थमेव, व्यसनं वदन्ति—दुर्गुणं कथयन्ति । ईदृग्—एतादृशः, विनोदः—मनोरंजनम्, कुतः—कुत्रास्ति । मृगयायां बहवो गुणा वर्तन्ते, अतो न मृगया व्यसनमित्यर्थः । अत्र समुच्चयः काव्यलिङ्गं चालंकारौ । अत्र दाक्षिण्यं नाम नाट्यलक्षणं मृदवं नाम वीथ्यङ्गं चास्ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **मृगया०**—शिकार की निन्दा करने वाले । (२) **अपवाद**—निन्दा । (३) **माधव्य**—विदूषक का नाम है । (४) **स्थिर०**—शिकार खेलने से रोकने के अपने आग्रह पर दृढ़ रहना । इससे ज्ञात होता है कि सेनापति भी शिकार खेलने से थका हुआ था । (५) **चित्तवृत्तिम्**—मैं राजा की इच्छा के अनुसार बात करूँगा । जैसा राजा का झुकाव होगा, वैसी ही बात करूँगा । (६) **वैधेयः**—मूर्ख । विधेयं विधानम्, तस्य अयम् अधिकारी । विधेय+अण् (अ), तस्येदम् (४-३-१२०) से अण् । विधेय अर्थात् अनुशासन या शिक्षा, उसके योग्य । (७) **निदर्शनम्**—उदाहरण या प्रमाण । आप ही इस विषय में प्रमाण हैं कि मृगया लाभप्रद है । (८) **मेद०**—मेदसः छेदेन कृशम् उदरं यस्य तत्, बहु० । चर्बी के कम होने से पेट की स्थूलता कम हो जाती है । छेद—छिद्+घञ् । (९)

Funding by IKS-MoE

**लघु**—चुस्त, फुर्तीला, हलका। (१०) **उत्थान०**—उत्थानस्य योग्यम्, तत्पुरुष। उद्यम या उत्साह के कार्यों के योग्य। उत्थान—उत्+स्था+ल्युट् (अन)। (११) **विकृतिमत्**—विकारयुक्त, क्षुब्ध। (१२) **लक्ष्यते**—देखा जाता है अर्थात् उनके चित्त का ज्ञान होता है। इसके द्वारा पशुओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो जाता है। (१३) **उत्कर्षः**—गौरव की बात है, महत्त्व बढ़ता है। उत्+कृष्+घञ् (अ)। (१४) **धन्विनाम्**—धन्वं धन्व वा अस्यास्तीति, धन्व+इनि (इन्)= धन्विन्। व्रीह्यादिभ्यश्च (५-२-११६) से इनि या मत्वर्थ में इनि। धनुर्धारी। (१५) **सिध्यन्ति**—सिद्ध होते हैं अर्थात् सफल होते हैं। (१६) **व्यसनम्**—दुर्गुण। व्यसन का लक्षण कामन्दक ने दिया है—यस्माद् व्यस्यति श्रेयस्तस्माद् व्यसनमुच्यते। व्यसत्यधो वा व्रजति तस्मात् तत् परिवर्जयेत्।। कामन्दकनीति १४-१६। मनु ने मृगया को कामज व्यसन माना है—मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।। (मनु० ७-४७)। (१७) **विनोदः**—इतना मनोरंजन और किस काम से हो सकता है। कालिदास ने मृगया के इन गुणों का वर्णन रघुवंश (६-४६) में भी किया है—परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम्। श्रमजयात् प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ।। कामन्दक ने भी कहा है—जितश्रमत्वं व्यायाम आममेदकफक्षयः। चलस्थिरेषु लक्ष्येषु वाणसिद्धिरनुत्तमा।। (१८) इस श्लोक में 'उत्कर्षः स च' में च से क्रियाओं का संग्रह होने से समुच्चय अलंकार है। प्रथम तीन पंक्ति मृगया के व्यसनाभाव में कारण हैं, अतः काव्यलिंग है। यहाँ पर राजा के चित्तानुवर्तन के कारण दाक्षिण्य नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—दाक्षिण्यं चेष्टया वाचा परचित्तानुवर्तनम्। (सा० दर्पण ६-१८८)। दोष के गुणरूप से वर्णन के कारण मृदव नामक वीथिका अंग यहाँ पर है। उसका लक्षण है—दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत्।। (सा० दर्पण ६-२६३)।

**२७. विदूषकः—(सरोषम्) अपेहि रे उत्साहहेतुक। अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।**

[अवेहि रे उच्छाहहेतुअ। अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिण्डन्तो णरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि।]

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे उत्साह दिलाने वाले, दूर हो। महाराज

---

पाठभेद—२७. नि० (सरोषम्) अपेहि० [अवेहि०], इति नास्ति का० (सरोषम्), इति नास्ति।

(अपनी) स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। तू एक वन से दूसरे वन में घूमता हुआ मनुष्य की नाक के इच्छुक किसी बुड्ढे रीछ के मुँह में पड़ेगा।

**२८. राजा**——भद्र सेनापते, आश्रमसंनिकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्——

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहततिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः॥६॥

**अन्वय**——महिषाः शृङ्गैः मुहुः ताडितं निपानसलिलं गाहन्ताम्। छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थम् अभ्यस्यतु। वराहततिभिः विश्रब्धं पल्वले मुस्ताक्षतिः क्रियताम्। इदम् अस्मद्धनुः च शिथिलज्याबन्धं विश्रामं लभताम्।

**राजा**——भद्र सेनापति, हम लोग आश्रम के समीप रुके हुए हैं। अतः तुम्हारे कथन को स्वीकार नहीं करता हूँ। आज तो——

भैंसे सींगों से बारबार आलोडित तालाब के जल में स्नान करें। छाया में झुण्ड बांध कर बैठा हुआ मृग-समूह जुगाली का अभ्यास करे। सूअरों के झुण्ड निर्भय होकर छोटे तालाबों (बावड़ी) में नागरमोथा निकालें और हमारा यह धनुष (भी) शिथिल प्रत्यंचा वाला विश्राम करे॥६॥

**संस्कृत-व्याख्या**——महिषाः——लुलायाः, शृङ्गैः——विषाणैः, मुहुः——भूयोभूयः, ताडितम्——आलोडितम्, निपानसलिलं——जलाशयनीरम्, गाहन्ताम्——आलोडयन्तु, यथेष्टं स्नानं कुर्वन्तु। छाया०——छायासु बद्धं रचितं कदम्बकं समूहः येन तत्, मृगकुलं——हरिणयूथम्, रोमन्थं——चर्वितचर्वणम्, अभ्यस्यतु——पुनः पुनः करोतु। वराहततिभिः——सूकरवृन्दैः, विश्रब्धं——निर्भयम्, पल्वले——क्षुद्रजलाशये, मुस्ताक्षतिः——मुस्तामूलोत्पाटनम्, क्रियताम्——विधीयताम्। इदम्——एतत्, अस्मद्धनुः च——मम कार्मुकं च, शिथिल०——शिथिलः अवरोपितः ज्यायाः गुणस्य बन्धः यस्मिन् तत्, विश्रामं——शान्तिम्, लभतां——प्राप्नोतु। अत्र स्वभावोक्तिः समुच्चयोऽतिशयोक्तिश्चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी ८

(१) **प्रकृतिम्०**——स्वाभाविक अवस्था को। (२) **नरनासिका०**——कोई

---

पाठभेद——२८. नि० वराहपतिभिः (श्रेष्ठ सूअरों के द्वारा)।

रीछ तुम्हें खा जाएगा। ( ३ ) **नाभिनन्दामि**—समर्थन नहीं करता हूँ, स्वीकार नहीं करता हूँ। ( ४ ) **गाहन्ताम्०**—भैंसे तालाब के जल में विहार करें। ( ५ ) **निपान०**—निपान का अर्थ है हौज, कूएँ के पास स्नानादि के लिए बनाया हुआ टैंक। यहाँ पर इसका प्रयोग तालाब के अर्थ में है। ( ६ ) **शृंगै०**—जल में सींग बारबार मार कर। ऐसा भैंसों का स्वभाव है। ( ७ ) **छाया०**—छायासु बद्धं कदम्बकं येन तत्, बहु०। छाया में झुंड बांध कर बैठे हुए। कदम्ब—झुंड। ( ८ ) **रोमन्थम्**—जुगाली करना, चवाए हुए को चबाना। ( ९ ) **वराहततिभिः**—सूअरों के झुंड। पाठभेद—वराहपतिभिः—सूअरों के स्वामी। यह पाठ अधिक अच्छा नहीं है। पूर्व दो पदों में समूह अर्थ ही आया है। (१०) **मुस्ता०**—नागरमोथा खोद कर निकालें। (११) **विश्रामम्**—पाणिनि के अनुसार शुद्ध शब्द विश्रम है। वि+श्रम्+घञ् ( अ )। यहाँ पर नोदात्तोपदेशस्य० (७-३-३४) से वृद्धि नहीं होती। विश्राम को रूढ़ शब्द मानकर शुद्ध माना जा सकता है, या विश्रमः एव विश्रामः। प्रज्ञादिभ्यश्च (५-४-३८) से स्वार्थ में अण्। (१२) **शिथिल०**—शिथिलः ज्यायाः बन्धः यस्मिन् तत्, बहु०। जिसकी डोरी ढीली कर दी गई है। (१३) यहाँ पर क्रियाओं के संग्रह से समुच्चय अलंकार है। कार्य और कारण की एक साथ उक्ति से अतिशयोक्ति है। साथ ही स्वभावोक्ति भी है। (१४) काव्य-प्रकाशकार ने इसके तीसरे पद में प्रक्रमभंग दोष माना है। पूर्व दो पदों में कर्तृवाच्य है, तीसरे में कर्मवाच्य। अतः उद्योतकार ने यह पाठ प्रस्तुत किया है—विश्रब्धं कुरुतां वराहनिवहो मुस्ताक्षतिम्०।

**२९. सेनापतिः—यत् प्रभविष्णवे रोचते।**

**सेनापति—जो महाराज की इच्छा।**

**३०. राजा—तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य—**

**शमप्रधानेषु तपोधनेषु**
**गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।**
**स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-**
**स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥७॥**

अन्वयं—शमप्रधानेषु तपोधनेषु दाहात्मकं गूढं तेजः अस्ति। हि स्पर्शानुकूलाः सूर्यकान्ताः इव अन्यतेजोऽभिभवाद् तत् वमन्ति।

Funding by IKS-MoE

**राजा—तो आगे गये हुए वन घेरने वालों को लौटा लो। मेरे सैनिकों को इस प्रकार चेतावनी दे दो कि वे आश्रम में विघ्न न करें। देखो—**

**शान्तिप्रधान तपस्वियों में जला देने वाला गुप्त तेज रहता है। क्योंकि स्पर्श के योग्य सूर्यकान्त मणियों के तुल्य (वे) अन्य तेज से तिरस्कृत होने पर उस (तेज) को प्रकट करते हैं ।।७।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—शमप्रधानेषु—शान्तिसम्पन्नेषु, तपोघनेषु—तपस्विषु, दाहात्मकं—दाहकम्, गूढं—गुप्तम्, तेजः—वर्चः, अस्ति। हि—यतो हि, स्पर्शानुकूलाः—स्पर्शयोग्याः, सूर्यकान्ताः इव—सूर्यकान्तमणय इव, **अन्य०**—अन्यस्य तेजसा वर्चसा अभिभवात् पराभवात्, तत्—स्वकीयं तेजः, **वमन्ति**—प्रकटयन्ति। अत्र श्लेष उपमाऽनुमानं चालंकाराः। उपजातिर्वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **प्रभविष्णवे०**—महाराज को। प्रभविष्णु—प्रभवितुं शीलमस्य, प्र+भू+इष्णुच् (इष्णु)। भुवश्च (३-२-१३८) से इष्णुच्। रुच् धातु के कारण रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (१-४-३३) से चतुर्थी। (२) **वनग्राहिणः**—वन को घेरने के लिए गये हुए सैनिकों को। (३) **शमप्रधानेषु**—शमः प्रधानं येषु तेषु, बहु०। शान्ति जिनमें मुख्यरूप से है। शम का अर्थ संयम, इन्द्रियनिग्रह है। (४) **गूढम्**—गुप्त। गुप्तरूप से उनमें विद्यमान रहता है। (५) **दाहात्मकम्**—दाहः आत्मा स्वभावः यस्य तत्, बहु०। जलाना जिसका स्वभाव है, ऐसा। (६) **स्पर्शानुकूलाः**—स्पर्शस्य अनुकूलाः, तत्पुरुष। स्पर्श के योग्य। इसका तपस्वी और सूर्यकान्त मणि दोनों के साथ सम्बन्ध है। (७) **अन्य०**—अन्यस्य तेजसा अभिभवात्, तत्पुरुष। दूसरे के तेज से तिरस्कार होने पर। तपस्वियों के पक्ष में इसका अर्थ है कि दूसरे अर्थात् राजा आदि के तेज से तिरस्कृत होने पर उनका गुप्त तेज प्रकट हो जाता है। उस तेज से वे अपने शत्रु को भस्म कर देते हैं। सूर्यकान्त के पक्ष में अर्थ है कि सूर्य के तेज से तिरस्कृत होने पर सूर्यकान्त मणि अपने तेज ( किरणों ) को प्रकट करती है। सूर्य के सामने सूर्यकान्त मणि कों रखने से उसमें से तीक्ष्ण किरणें निकलती हैं। (८) **वमन्ति**—यहाँ पर इसका प्रकट करना अर्थ है, अतः अश्लीलता दोष नहीं है। (९) यहाँ पर अन्तिम दो पदों में श्लेष होने से श्लेष अलंकार है। इव के द्वारा उपमा है। सहेतुक साध्य गुप्त तेज का ज्ञान होने से अनुमान अलंकार है। (१०) भवभूति ने भी उत्तररामचरित (६-१४) में यह भाव दिया है—न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते।····· किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति।

**३१. सेनापतिः—यदाज्ञापयति स्वामी।**

**सेनापति—जो महाराज की आज्ञा।**

३२. **विदूषकः**—ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः। [धंसदु दे उच्छाहवुत्तन्तो।] (निष्क्रान्तः सेनापतिः।)

**विदूषक**—तेरी उत्साह की बात नष्ट हो। (सेनापति का प्रस्थान)

३३. **राजा**—(परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम्। रैवतक, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु।

**राजा**—(सेवकों की ओर देखकर) आप लोग (अपना) मृगया का वेष उतार दें। रैवतक, तुम अपने काम पर जाओ।

३४. **परिजनः**—यद् देव आज्ञापयति। [जं देवो आणवेदि।]
(इति निष्क्रान्तः।)

**सेवकवर्ग**—जो महाराज की आज्ञा। (सबका प्रस्थान)

३५. **विदूषकः**—कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतमेतस्मिन् पादपच्छायाविरचितवितानसनाथे शिलातले निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि। [किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं एदस्सिं पादवच्छाआविरइदविदाणसणाथे सिलाअले णिसीददु भवं, जाव अहं वि सुहासीणो होमि।]

**विदूषक**—आपने सब मक्खियाँ भगा दीं (अर्थात् आपने सबको हटाकर एकान्त कर दिया)। अब आप वृक्ष की छाया से बने शामियाने से युक्त इस शिला-पट्ट पर बैठिए, जिससे मैं भी सुख से बैठ सकूँ।

३६. **राजा**—गच्छाग्रतः।

**राजा**—आगे चलो।

३७. **विदूषकः**—एतु भवान्। [एदु भवं।]
(इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ।)

**विदूषक**—महाराज आप आइए। (दोनों चारों ओर घूमकर बैठते हैं।)

---

पाठभेद—३५. नि० एतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने [०च्छाआए विरइदलदाविदाणदंसणीआए आसणे] (इस वृक्ष की छाया में बने लतारूपी शामियाने से दर्शनीय आसन पर)

Funding by IKS-MoE

३८. राजा—माधव्य, अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि। येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

राजा—माधव्य, तेरी आँखें सफल नहीं हुई हैं, क्योंकि तूने देखने योग्य वस्तु नहीं देखी।

३९. विदूषकः—ननु भवानग्रतो मे वर्तते। [णं भवं अग्गदो मे वट्टदि।]

विदूषक—क्यों, आप (तो) मेरे सामने हैं (ही)।

### टिप्पणी

(१) **ध्वंसतां**—तेरी उत्साह बढ़ाने वाली बात नष्ट हो। गृहीतश्वापदमरण्यम् (वाक्य सं० २४) की ओर संकेत है। (२) **स्वं नियोगम्०**—यह वाक्य नाटकों में प्रायः आता है। इसका भाव है—आप जाइए, आप अपना काम कीजिए, अपनी ड्यूटी पर जाओ। (३) **कृतं भवता निर्मक्षिकम्**—यह मुहावरा है। आपने सब मक्खियाँ उड़ा दीं, अर्थात् सभी अनावश्यक व्यक्तियों को हटा दिया। निर्मक्षिकम्—मक्षिकाणाम् अभावः। अव्ययीभाव। (४) **पादप०**—पादपस्य छायया विरचितेन वितानेन सनाथे, तत्पुरुष। पेड़ की छाया से बने शामियाने से युक्त। (५) **अनवाप्त०**—न अवाप्तं चक्षुषः फलं येन सः, बहु०। तूने आँख होने का फल प्राप्त नहीं किया, अर्थात् तेरी आँखें असफल हैं। (६) **भवान्०**—विदूषक का कथन है कि सर्वोत्तम दर्शनीय आप हैं, वह मेरे सामने बैठे हैं।

**विशेष**—कुछ विद्वान् राजा—माधव्य, अनवाप्त० यहाँ से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि मानते हैं। प्रतिमुख सन्धि का लक्षण है—(क) फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः। लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत्॥ (सा० दर्पण ६-७७)। (ख) सुधाकर ने इसका लक्षण दिया है—बीजप्रकाशनं यत्र दृश्यादृश्यतया भवेत्। तत् स्यात् प्रतिमुखम्। जहाँ पर बीज का दृश्य और अदृश्यरूप से प्रकाशन होता है, वहाँ प्रतिमुख संधि होती है। यह बिन्दु और प्रयत्न की प्रगति में सहायक होती है। अतः धनंजय ने दशरूपक (१-३०) में कहा है—बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश। द्वितीय अंक के प्रारम्भ से ही प्रतिमुख संधि मानना उचित है।

४०. राजा—सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

---

Funding by IKS-MoE

पाठभेद—३८. नि० माढव्य (माढव्य)। ४०. नि० अहं तु, इति नास्ति।

राजा—सभी आत्मीय (जनों) को सुन्दर समझते हैं। मैं तो (इस) आश्रम की अलंकारस्वरूप उस शकुन्तला को (ही) लक्ष्य में रखकर कह रहा हूँ।

४१. विदूषकः—( स्वगतम् ) भवतु । अस्यावसरं न दास्ये । (प्रकाशम्) भो वयस्य, ते तापसकन्यकाऽभ्यर्थनीया दृश्यते । [होदु। से अवसरं ण दाइस्सं । भो वअस्स, ते तावसकण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि ।]

विदूषक—(मन में) अच्छा, इसको अवसर नहीं दूंगा। (प्रकट) हे मित्र, तुम तपस्वी की कन्या के इच्छुक दिखाई पड़ते हो।

४२. राजा—सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते ।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ॥८॥

अन्वय—शिथिलम् अर्कस्य उपरि च्युतं नवमालिकाकुसुमम् इव तत् मुनेः अपत्यं किल सुरयुवतिसंभवम् उज्झिताधिगतम् ।

राजा—मित्र, त्याज्य वस्तु की ओर पुरुवंशियों का मन प्रवृत्त नहीं होता है।

शिथिल होने से आक (धतूरा) के ऊपर गिरे हुए चमेली के फूल की तरह वह मुनि की सन्तान (शकुन्तला) वस्तुतः अप्सरा (मेनका) की पुत्री है और (माता के द्वारा) छोड़ी जाने पर (ऋषि को) प्राप्त हुई है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—शिथिलं—वृन्तात् निर्गतम्, अर्कस्य उपरि—मन्दारवृक्षस्योपरि, च्युतं—पतितम्, नवमालिकाकुसुमम् इव—नवमालिकाख्यपुष्पमिव, तत्—सा, मुनेः—कण्वस्य, अपत्यं—सन्ततिः शकुन्तलेत्यर्थः, सुरयुवतिसंभवम्—मेनकाख्याप्सरसः पुत्री अस्ति, उज्झिता०—उज्झितं सा मात्रा परित्यक्ता पश्चात् अधिगतं कण्वेन गृहीता। अत्रोपमाऽलंकारः। आर्या जातिः। अत्राख्यानं नाम नाट्यालंकारः।

### टिप्पणी

(१) आत्मीयम्०—स्वजनम्। सभी अपने व्यक्तियों को सुन्दर समझते हैं। प्रेम के कारण तुम मुझे सुन्दर मानते हो। (२) आश्रम०—आश्रमस्य ललामभूता, सुप्सुपा से समास। आश्रम की आभूषण-स्वरूप। (३) अवसरम्०—मैं राजा को मौका नहीं दूंगा कि वह शकुन्तला के विषय में कुछ अधिक बा

कर सकें। (४) **अभ्यर्थनीया**—प्रार्थना के योग्य। अर्थात् तुम तपस्वी ब्राह्मण की पुत्री से विवाह की प्रार्थना करना चाहते हो। (५) **न परिहार्य०**—दुष्यन्त विदूषक को उत्तर देता है कि वह ब्राह्मणकन्या नहीं है, अपितु क्षत्रिय-कन्या है। अतएव त्याज्य नहीं है। कण्व पालन-पोषण के द्वारा उसके पिता हैं। वह वस्तुतः मेनका और विश्वामित्र की पुत्री है। (६) **सुरयुवति०**—सुरयुवतिः संभवः उत्पत्तिस्थानं यस्य तत्, बहु०। अप्सरा जिसकी माता है। युवति—युवन्+ति। यूनस्तिः (४-१-७७) से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय। (७) **किल**—वस्तुतः, निश्चय से। (८) **अपत्यम्**—सन्तान। न पतन्ति पितरः येन जातेन, न+पत्+य। निरुक्त (३–१) में अपत्य की व्युत्पत्ति दी है—अपत्यं कस्मात्। अपततं भवति, पितुः सकाशादेत्य पृथगिव ततं भवति। अनेन जातेन सता पिता नरके न पततीति वा। अपंत्य शब्द सन्तान अर्थ में आता है, नपुंसकलिंग है। (९) **उज्झिता०**—उज्झितं च तत् अधिगतम्, कर्मधारय। माता से परित्यक्त और ऋषि के द्वारा गृहीत। (१०) **अर्कस्य**—अर्क आक, धतूरा अर्थ में है। कण्व धतूरे के वृक्ष के तुल्य हैं, शकुन्तला चमेली के फूल की तरह है, मेनका चमेली के वृक्ष के तुल्य है। (११) इस श्लोक में पूर्ववृत्त के वर्णन के कारण आख्यान नामक नाटकीय अलंकार है। उसका लक्षण है—आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः। (सा० दर्पण ६-२११)।

४३. **विदूषकः**—(विहस्य) यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना। [जह कस्स वि पिण्डखज्जूरेहि उव्वेजिदस्स तिन्तिणीए अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभोइणो भवदो इअं अब्भत्थणा।]

**विदूषक**—(हँस कर) जिस प्रकार पिण्ड-खजूर से अरुचि उपन्न हुए किसी व्यक्ति को इमली की इच्छा होती है, उसी प्रकार स्त्री-रत्नों का उपभोग करने वाले आपकी यह प्रार्थना है।

४४. **राजा**—न तावदेनां पश्यसि येनैवमवादीः।

**राजा**—तुमने उसको देखा नहीं है, अतः इस प्रकार कहते हो।

४५. **विदूषकः**—तत् खलु रमणीयं यद् भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति। [तं खु रमणिज्जं जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि।]

---

पाठभेद—४३. नि० परिभाविनो [परिभाविणो] (तिरस्कृत करने वाले)

**विदूषक**—वह अवश्य ही मनोहर होगी, जो आपको भी आश्चर्ययुक्त करती है।

**४६. राजा—वयस्य, किं बहुना—**

**चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा**
**रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।**
**स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे**
**धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥९॥**

**अन्वय**—धातुः विभुत्वं तस्याः वपुः च अनुचिन्त्य मे सा विधिना चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा मनसा नु रूपोच्चयेन कृता, अपरा स्त्रीरत्नसृष्टिः प्रतिभाति ।

**राजा—मित्र, अधिक क्या कहूँ—**

**विधाता की सर्वशक्तिमत्ता और उसके शरीर पर विचार करके मुझे वह विधाता के द्वारा चित्र बनाकर, उसमें जीवन-संचार करके, मन से ही मानो सौन्दर्य-समह से बनाई गई विलक्षण स्त्री-रत्न प्रतीत होती है ॥९॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—धातुः—ब्रह्मणः, विभुत्वं—सर्वशक्तिमत्त्वम्, तस्याः—शकुन्तलायाः, वपुः—शरीरम्, च, अनुचिन्त्य—विचार्य, मे—मम, सा—शकुन्तला, विधिना—प्रजापतिना, चित्रे निवेश्य—चित्रे आलिख्य, परिकल्पित०—परिकल्पितः दत्तः सत्त्वस्य जीवनस्य योगः संचारः यस्यां सा, मनसा नु—किं चित्तेनैव, रूपोच्चयेन—सौन्दर्यसमूहेन, कृता—निर्मिता, अपरा—अपूर्वा, स्त्रीरत्नसृष्टिः—रमणीरत्ननिर्माणम्, प्रतिभाति—प्रतीयते । अत्र संदेहोऽतिशयोक्तिः काव्यलिङ्गं चालंकाराः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **उद्वेजितस्य**—खिन्न, जिसको अरुचि उत्पन्न हो गई है या जिसका मन भर गया है। उत्+विज्+णिच्+क्त । (२) **स्त्रीरत्न०**—तुम्हारा भी मन अन्तःपुर की स्त्रियों से भर गया है, अतः तुम्हें अब तपस्वी की कन्या चाहिए। (३) **चित्रे निवेश्य०**—परमात्मा ने मानो सर्वोत्तम सुन्दरी का चित्र बनाया, उस चित्र में प्राण-संचार किया और हाथ से नहीं अपितु मन से सौन्दर्य-समूह के द्वारा उसको बनाया है। निवेश्य—नि+विश्+णिच्+ल्यप्। (४) **परिकल्पित०**—परिकल्पितः सत्त्वस्य योगः यस्यां सा, बहु० । जिसमें जीवन-संचार किया है। (५) **मनसा नु**—मानो मन से। हाथ से बनाने से उतनी सुन्दरता नहीं आ सकती थी। (६) **अपरा स्त्रीरत्न०**—अपूर्व या विलक्षण स्त्रीरत्न की सृष्टि की है। न विद्यते परा यस्याः सा, अपरा। अनुपम,

अद्वितीय। कुछ लोगों ने अपरा का अर्थ दूसरा स्त्री-रत्न लिया है और पहली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी लक्ष्मी या तिलोत्तमा को लिया है। कालि ने इसके स्थान पर उर्वशी का नाम प्रस्तुत किया है। यहाँ पर अपरा का अनुपम, अपूर्व, विलक्षण अर्थ ही उचित प्रतीत होता है। ( ७ ) यहाँ पर 'मनसा नु' के द्वारा सन्देह अलङ्कार है। 'अपरा सृष्टिः के द्वारा अभेद में भेदरूप अतिशयोक्ति है। चतुर्थ पद प्रथम तीन पदों का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**४७. विदूषकः——यद्येवं, प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्।**

[जइ एव्वं, पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं।]

**विदूषक—यदि ऐसा है तो अब (सभी) रूपवती स्त्रियाँ तिरस्कृत हुईं।**

**४८. राजा——इदं च मे मनसि वर्तते।**

**अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-**
**रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।**
**अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं**
**न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥१०॥**

**अन्वय**—अनघं तद्रूपम् अनाघ्रातं पुष्पम्, कररुहैः अलूनम् किसलयम्, अनाविद्धं रत्नम्, अनास्वादितरसम् नवं मधु, पुण्यानां च अखण्डं फलम् इव, विधिः इह कं भोक्तारं समुपस्थास्यति इति न जाने।

**राजा—और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि—**

**उसका निष्कलक सौन्दर्य (किसी के भी द्वारा अभी तक) न सूंघा गया फूल है, नाखूनों से न कटा हुआ कोमल-पत्ता (कोंपल) है, न बिंधा हुआ रत्न है, जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया ऐसा नया मधु है और पुण्यों का अखण्डित फल-सा है। पता नहीं, परमात्मा किसको उसका उपभोक्ता बनाएगा ॥१०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अनघं—निर्दोषं निष्कलङ्कमित्यर्थः, तद्रूपं—तस्याः शकुन्तलायाः सौन्दर्यम्, अनाघ्रातं—केनापि न आघ्रातम्, पुष्पं—कुसुमम् इवास्ति, कररुहैः—नखैः, अलूनम्—अच्छिन्नम्, किसलयमिव—नवपल्लवमिवास्ति, अनाविद्धम्—अक्षतम्, रत्नमिव——मणिरिवास्ति, अनास्वादितरसम्—अनास्वादितः अनुपभुक्तः रसो माधुर्यं यस्य तत्, नवं मधु इव—नवीनं क्षौद्रमिवास्ति, पुण्यानां—सुकृतानाम्, अखण्डम्—अखण्डितम्, . फलमिव—परिणाम इवास्ति। विधिः—परेशः, इह—जगति, कं—कं जनम्, भोक्तारम्—उपभोक्तारम्, समुपस्थास्यति—आनयिष्यति, इति न जाने—इति नाहं वेद्मि। मालोपमा परिकरश्चालंकारौ। अत्र गुणकीर्तनं नाम नाट्यलक्षणमस्ति। अत्र शिखरिणी वृत्तम्।

Funding by IKS-MoE

## टिप्पणी

(१) **प्रत्यादेशः**—खण्डन, निराकरण। अर्थात् शकुन्तला के सामने सभी रूपवती स्त्रियाँ व्यर्थ हुईं। (२) **इति मनसि०**—मैं ऐसा समझता हूँ। (३) **अनाघ्रातम्**—न आघ्रातम्, नञ् तत्पुरुष। जिसको अभी तक किसी ने नहीं सूंघा है ऐसे फूल की तरह है। इससे उसके शरीर का सुगन्धित होना प्रतीत होता है। आघ्रात—आ+घ्रा+क्त। (४) **अलूनम्**—अक्षत। लून—लू+क्त। ल्वादिभ्यश्च (८-२-४४) से त को न। (५) **अनाविद्धम्**—न विधा हुआ, जिसमें छेद नहीं किया गया है। आविद्ध—आ+व्यध्+क्त। पाठभेद-अनाभुक्तम्—न पहना गया। यह अधिक उपयुक्त पाठ नहीं है। कुमारी के लिए अनाविद्ध अधिक साभिप्राय है। (६) **अनास्वादित०**—न आस्वादितः रसः यस्य तत्, बहु०। जिसका रस नहीं चखा ऐसा शहद है। (७) **अखण्डम्**—अखण्डित। अर्थात् पूरा का पूरा। (८) **अनघम्**—निष्पाप, निर्दोष, निष्कलङ्क। जिसमें कोई दोष या कलंक नहीं है। (९) **समुपस्थास्यति**—लाएगा, वनाएगा। यहाँ पर प्रेरणा अर्थ गुप्त है। धातु अन्तर्भावितण्यर्थ है, अतः णिच् का अर्थ लिया जायगा। समुपस्थास्यति—उपस्थित करेगा, अर्थ है। (१०) इस श्लोक में कई उपमाएँ होने से मालोपमा अलङ्कार है। इव का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध समझना चाहिए। अनाघ्रात, अलून, अनाविद्ध आदि शब्द साभिप्राय हैं, अतः परिकर अलङ्कार है। यहाँ शोभा नामक नायिका का अलङ्कार भी है। दशरूपक में यह श्लोक शोभा के उदाहरणरूप में आया है। शोभा का लक्षण है—रूपयौवनलालित्यभोगाद्यैरङ्गभूषणम्। शोभा प्रोक्ता। (सा० दर्पण ३-९५)। यहाँ पर गुणों का उल्लेख होने से गुणकीर्तन नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—गुणानां कीर्तनं यत्तु तदेव गुणकीर्तनम्। (सा० दर्पण ६-१९२)।

४९. **विदूषकः**—तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति। [तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इंगुदीतेल्लचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि।]

**विदूषक**—तो आप उसको शीघ्र बचाइए, (जिससे वह) इंगुदी के तेल से चिकने सिर वाले किसी तपस्वी के हाथ में न पड़ जाए।

५०. **राजा**—परवती खलु तत्रभवती। न च संनिहितोऽत्र गुरुजनः।

---

पाठभेद—४९. नि० तैलमिश्र० [तेल्लमिस्स०] (तेल से मिश्रित होने के कारण)।

राजा—वह पराधीन है और उसके पिता यहाँ विद्यमान नहीं हैं।

५१. **विदूषकः**—अथ भवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः। [अध भवन्तं अन्तरेण कीदिसो से दिट्ठिराओ।]

विदूषक—आपकी ओर उसकी प्रेम-दृष्टि कैसी थी?

५२. **राजा**—निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं
हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥११॥

**अन्वय**—मयि अभिमुखे ईक्षितं संहृतम्, अन्यनिमित्तकृतोदयं हसितम्। अतः तया विनयवारितवृत्तिः मदनः न विवृतः, न च संवृतः।

**राजा**—तपस्वि-कन्याएँ स्वभाव से ही भोलीभाली होती हैं। तथापि—

मेरे सामने देखने पर (वह) दृष्टि हटा लेती थी और अन्य कारण को लेकर हँस पड़ती थी। अतः उसने शील के द्वारा नियंत्रित व्यापार वाले कामभाव को न प्रकट किया, न छिपाया ॥११॥

**संस्कृत-व्याख्या**—मयि अभिमुखे—मयि संमुखम् अवलोकयति सति, ईक्षितं—लोचनम्, संहृतम्—अन्यतः कृतम्। अन्य०—अन्येन निमित्तेन अन्येन कारणेन कृतः विहितः उदयः आविर्भावः यस्य तत्, हसितं—हासः कृतः। अतः तया—शकुन्तलया, विनयवारितवृत्तिः—शीलनिरुद्धव्यापारः, मदनः—कामभावः, न विवृतः—न प्रकटीकृतः, न च संवृतः—न च गोपितः। अत्र विरोधाभासोऽलंकारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **मा कस्यापि०**—ऐसा न हो कि कहीं वह किसी तपस्वी के हाथ पड़ जाए। प्रथम अंक में राजा के संदेह 'आहो निवत्स्यति०' को विदूषक ने प्रकट रूप में रखा है। (२) **परवती**—पराधीन। परः स्वामी अस्यास्तीति,

---

**पाठभेद**—५१. नि० अत्रभवन्तम् [अत्तभवन्तं] (पूज्य आपके)। ५२—नि० ईक्षणम् (दृष्टि)।

मतुप् । ( ३ ) **भवन्तम् अन्तरेण**—आपकी ओर या आपके विषय में । साधारणतया अन्तरान्तरेणयुक्ते (२-३-४) से निषेधार्थक अन्तरेण के साथ ही द्वितीया होती है, परन्तु कालिदास ने उपर्युक्त अर्थ में भी अन्तरेण के साथ द्वितीया का प्रयोग किया है। (४) **दृष्टिरागः**—आँखों का प्रेम अर्थात् प्रेम-दृष्टि । राग-रञ्ज्+घञ् । ( ५ ) **अप्रगल्भाः**—भोलीभाली, सीधी । ( ६ ) **मयि अभिमुखे**—मेरे सामने देखने पर वह आँखें मिलाती नहीं थी, अपितु हटा लेती थी । ( ७ ) **अन्य०**—अन्येन निमित्तेन कृतः उदयः यस्य तत्, बहु० । कोई और बहाना लेकर हँस पड़ती थी । अतः उसका प्रेम प्रकट होता था । ( ८ ) **विनय०**—विनयेन वारिता वृत्तिः यस्य सः, बहु० । शील के द्वारा जिसका व्यापार रोका हुआ था, ऐसे कामभाव को न स्पष्टरूप से प्रकट किया और न छिपाया । विवृत—प्रकट किया, संवृत—छिपाया । ( ९ ) इस श्लोक में 'न विवृतो न संवृतः' में विरोधाभास है। भोलेपन के द्वारा उसका परिहार होता है ।

**५३. विदूषकः—न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति । [ ण क्खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंकं समारोहदि । ]**

विदूषक—वस्तुतः देखते ही तुम्हारी गोद में नहीं बैठ जाती ।

**५४. राजा—मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतयाऽपि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या । तथा हि—**

**दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे**
**तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।**
**आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती**
**शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।।१२।।**

**अन्वय**—तन्वी कतिचिदेव पदानि गत्वा अकाण्डे दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इति स्थिता । द्रुमाणां शाखासु च असक्तम् अपि वल्कलं विमोचयन्ती विवृत्तवदना आसीत् ।

**राजा—(सखियों के) साथ प्रस्थान के समय उसने लज्जाशीलता के साथ ही भली भाँति अपना प्रेमभाव (मेरे प्रति) प्रकट किया । क्योंकि—**

**वह तन्वङ्गी कुछ ही कदम चलकर सहसा 'कुश का अंकुर पैर में चुभ गया है, यह कहकर रुक गई और वृक्षों की शाखा में न फँसे हुए भी वल्कल को छुड़ाती हुई मेरी ओर मुँह करके रुक गई ।।१२।।**

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—तन्वी—कृशाङ्गी, कतिचिदेव—कतिपयान्येव, पदानि—

चरणानि, गत्वा—चलित्वा, स्वल्पदूरमेव गत्वेत्यर्थः, अकाण्डे—अनवसरे, दर्भाङ्कुरेण—कुशसूच्या, चरणः—पादः, क्षतः—विद्धः, इति—इत्युक्त्वा, स्थिता—रुद्धा। द्रुमाणां—वृक्षाणाम्, शाखासु—स्कन्धेषु, असक्तमपि—अलग्नमपि, वल्कलं—चीरम्, विमोचयन्ती—विश्लेषयन्ती, विवृत्तवदना—विवृत्तं पराङ्मुखं वदनं मुखं यस्याः सा, आसीत्। अत्र विरोधाभासो हेतुश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **शालीनतया**—लज्जाशीलतया। लज्जाशीलता के होते हुए भी। शालीन—शालाप्रवेशमर्हतीति। शाला+खञ् (ईन)। शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः (५-२-२०) से अधृष्ट अर्थ में निपातन। (२) **कामम्**—प्रकामम्। अच्छे प्रकार से। (३) **अकाण्डे**—बिना अवसर के ही अर्थात् अकस्मात्। (४) **तन्वी**—कृश शरीर वाली। तनु+ङीष् (ई)। वोतो गुणवचनात् (४-१-४४) से स्त्रीलिंग में ङीष्। (५) **विवृत्त०**—विवृत्तं वदनं यस्याः सा, बहु०। पीछे की ओर मुँह करके अर्थात् मेरी ओर मुँह करके। (६) **विमोचयन्ती**—वि+मुच्+णिच्+शतृ++ङीप्। छुड़ाती हुई। (७) यहाँ पर असक्तमपि विमोचयन्ती में विरोधाभास है। व्याज (बहाना) होने से परिहार है। विवृत्तवदना भावाविष्करण का हेतु है, उसका कार्य के साथ अभेदरूप में वर्णन होने से हेतु अलंकार है।

**५५. विदूषकः—तेन हि गृहीतपाथेयो भव। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि। [तेण हि गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि।]**

विदूषक—तो आप पाथेय (मार्ग-भोजन) ग्रहण कीजिए। मैं देखता हूँ कि आपने तपोवन को क्रीडा-वाटिका बना दिया है।

**५६. राजा—सखे, तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः।**

राजा—मित्र, कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है। तो सोचो कि किस बहाने फिर आश्रम में जा सकते हैं।

**५७. विदूषकः—कोऽपरोऽपदेशो युष्माकं राज्ञाम्। नीवा-**

---

पाठभेद—५६. नि० सकृदप्याश्रमे वासाय (एक वार आश्रम में रह सकें)। ५७. नि० तव राज्ञः [तुमं] (तुज्झ राजा के लिए)।

रषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति। [ को अवरो अवदेसो तुम्हाणं राआणं। णीवारच्छट्ठभाअं अम्हाणं उवहरन्तु त्ति।]

विदूषक——आप राजाओं के लिए और दूसरे बहाने की क्या (आवश्यकता है)। (जाकर ऐसा कहिए कि तपस्वी लोग) नीवार का छठा भाग हमें लाकर दें।

**५८. राजा——मूर्ख, अन्यमेव भागधेयमेते तपस्विनो निर्वपन्ति, यो रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यते। पश्य——**

**यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद् धनम्।**
**तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ॥१३॥**

**अन्वय**——नृपाणां वर्णेभ्यः यत् धनम् उत्तिष्ठति तत् क्षयि। आरण्यकाः नः अक्षय्यं हि तपःषड्भागं ददति।

**राजा——मूर्ख, ये तपस्वी लोग और ही वस्तु कर-रूप में देते हैं, जो कि रत्न-समूहों को भी तिरस्कृत करके सत्कृत होता है। देखो——**

**राजाओं को (चारों) वर्णों से जो धन (कर) प्राप्त होता है, वह नश्वर है, (परन्तु) ये तपस्वी लोग अपनी तपस्या का षष्ठांश देते हैं, जो कि अक्षय है ॥१३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**——नृपाणां——राज्ञाम्, वर्णेभ्यः——ब्राह्मणादिभ्यः चतुर्भ्यः वर्णेभ्यः, यत् धनम्——यद् द्रव्यं कररूपेण, उत्तिष्ठति——प्राप्यते, तत् क्षयि——तत् नश्वरमस्ति। आरण्यकाः——तपस्विनः, नः——अस्मभ्यम्, अक्षय्यं हि——अविनश्वरमेव, तपःषड्भागं——तपस्यायाः षष्ठांशम्, ददति——प्रयच्छन्ति। अत्र व्यतिरेकालंकारः। विलासो नाम प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं चास्ति। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **गृहीतपाथेयः**——पाथेय का अर्थ है मार्ग के लिए ले जाया जाने वाला भोजन। तुम अब प्रेम-मार्ग के पथिक हो, शकुन्तला तुम्हारे लिए पाथेय होगी। पाथेय——पथि साधु पाथेयम्, पथिन्+ढञ् ( एय )। पथ्यतिथि० (४-४-१०४) से ढञ्। ( २ ) **तपोवनम्०**——विदूषक ने बहुत सुन्दर वाक्य कहा है। तुम तपोवन को भी उपवन अर्थात् क्रीडा-कानन या विहार-क्षेत्र बनाना चाहते हो। ( ३ ) **नीवारषष्ठ०**——राजा का अधिकार है कि राज्य-संचालनार्थ प्रजा से षष्ठांश कर रूप में लें। मनुस्मृति ( ७-१३०-१३३ ) में इसका विस्तृत वर्णन

---

पाठभेद——५८. नि० अन्यद् भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति, यद्……अभिनन्द्यम् (अन्य कर इनकी रक्षा पर पड़ता है, जो……सत्कार के योग्य है)। नि० का० फलम् (फल)।

है—धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा, इत्यादि। षष्ठांश लेने के बहाने तुम आश्रम में जाओ। (४) **भागधेयम्**—यहाँ इसका अर्थ कर, लगान, टैक्स है। यह शब्द कर अर्थ में पुं० है और भाग्य अर्थ में नपुंसक०। (५) **रत्नराशीन्**०—तपस्या का षष्ठांश रत्नराशियों से भी बढ़कर है। यह षष्ठांश कभी नष्ट नहीं होता है, अतः अविनश्वर रूप से राज्य की रक्षा करता है। (६) **उत्तिष्ठति**—लगान के रूप में प्राप्त होता है। (७) **तपः**०—षट् भागः षड्भागः, कर्मधारय। तपसः षड्भागः, तत्पुरुष। यहाँ पर षट् शब्द षष्ठ अर्थ में है, अतः दिक्संख्ये० (२-१-५०) से कर्मधारय का निषेध नहीं हुआ। 'वत्तिविषये संख्याशब्दस्य पूरणार्थत्वमिष्यते' नियम से षट् षष्ठ के अर्थ में है। (८) यहाँ पर अन्य धन की अपेक्षा तपस्या के षष्ठांश की उत्कृष्टता बताने से व्यतिरेक अलंकार है। चिन्तय (वाक्य सं० ५६) से लेकर यहाँ तक विलास नामक प्रतिमुखसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते। (सा० दर्पण ६-८९)।

**(नेपथ्ये)**

**५९. हन्त, सिद्धार्थौ स्वः।**

(नेपथ्य में) प्रसन्नता है कि हम कृतार्थ हो गये।

**६०. राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये, धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम्।**

राजा—(सुनकर) ओह, गंभीर और शान्त स्वर से (ज्ञात होता है कि) ये तपस्वी हैं।

**(प्रविश्य)**

**६१. दौवारिकः—जयतु जयतु भर्ता। एतौ द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ।** [जेदु जेदु भट्टा। एते दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा।]

(प्रविष्ट होकर) द्वारपाल—जय हो, महाराज की जय हो। ये दो ऋषिबालक द्वार पर उपस्थित हैं।

**६२. राजा—तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ।**

राजा—तो उनको शीघ्र ही अन्दर बुला लाओ।

**६३. दौवारिकः—एष प्रवेशयामि। (इति निष्क्रम्य,**

---

पाठभेद—६१: नि० जयतु (जेदु), इतिं नास्ति।

ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य ) इत इतो भवन्तौ। [एसो पवेसेमि। इदो इदो भवन्ता।]

**द्वारपाल**—अभी बुला लाता हूँ। (बाहर निकल कर और ऋषि-बालकों के साथ प्रविष्ट होकर) आप लोग इधर से आइए।

### टिप्पणी

( १ ) **हन्त**—यह हर्ष और शोक-सूचक अव्यय है। यहाँ पर हर्ष अर्थ में है। ( २ ) **धीर०**—धीराः प्रशान्ताः च ये स्वराः तैः, कर्मधारय। यहाँ पर इत्थंभूतलक्षणे ( २-३-२१ ) से तृतीया। गम्भीर और शान्त स्वर से ज्ञात होता है कि ये तपस्वी ही होंगे। दुष्यन्त आश्रम में जाने का कोई बहाना निकालना चाहता था और तपस्वियों की चर्चा कर रहा था। कालिदास ने उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो तपस्वियों का प्रवेश कराया है। ( ३ ) **प्रतीहार०**—प्रतीहार का अर्थ द्वार है। द्वार पर।

(उभौ राजानं विलोकयतः )

६४. **प्रथमः**—अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयताऽस्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः—

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥१४॥

**अन्वय**—अमुना अपि सर्वभोग्ये आश्रमे वसतिः अध्याक्रान्ता। रक्षायोगात् अयम् अपि प्रत्यहं तपः संचिनोति। वशिनः अस्य अपि केवलं राजपूर्वः पुण्यः मुनिः इति शब्दः चारणद्वन्द्वगीतः मुहुः द्यां स्पृशति।

(दोनों राजा की ओर देखते हैं)

**पहला**—अहा, इसका तेजस्वी शरीर भी विश्वास उत्पन्न करता है। अथवा ऋषियों के तुल्य इस राजा के विषय में यह उचित ही है। क्योंकि—

यह भी सबके द्वारा आश्रय के योग्य आश्रम (गृहस्थाश्रम) में निवास करता है। (अपनी प्रजा के) रक्षारूपी योग से यह भी प्रतिदिन तपस्या का संग्रह करता

---

पाठभेद—६४. नि० अस्मिन्; इति नास्ति।

है। इस जितेन्द्रिय का भी केवल 'राज' पूर्वक पवित्र मुनि शब्द (राजर्षि शब्द) चारणयुगल के द्वारा गाया हुआ बार-बार स्वर्ग का स्पर्श करता है ॥१४॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अमुना अपि—अनेन दुष्यन्तेनापि, सर्वभोग्ये—सर्वैः आश्रयणीये, आश्रमे—गृहस्थाश्रमे, वसतिः—निवासः, अध्याक्रान्ता—कृता। रक्षायोगात्—प्रजारक्षणरूपयोगानुष्ठानात्, अयमपि—नृपोऽपि, प्रत्यहं—प्रतिदिनम्, तपः—सुकृतम्, संचिनोति—उपार्जयति। वशिनः—जितेन्द्रियस्य, अस्यापि—नृपस्यापि, केवलं राजपूर्वः—केवलं राजशब्दविशिष्टः, पुण्यः—पवित्रः, मुनिरिति शब्दः—मुनिरित्येष शब्दः, राजर्षिशब्द इत्यर्थः, चारणद्वन्द्वगीतः—बन्दियुगलगीतः, मुहुः—भूयो भूयः, द्यां—स्वर्गम्, स्पृशति—आरोहति। ऋषिपक्षे—ऋषिः सर्वैः छात्रैः आश्रयणीये तपोवने निवसति, धर्मरक्षार्थं योगानुष्ठानात् प्रतिदिनं पुण्यसंचयं करोति, जितेन्द्रियस्य तस्य पावनः मुनिशब्दः स्वर्गं स्पृशति। अत्र श्लेषो व्यतिरेकश्चालंकारौ। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **दीप्तिमतः**—राजा तेजस्वी है। उसका तेज मुनियों के तुल्य होने से वह विश्वास को उत्पन्न करता है। कालिदास ने रघुवंश ( १-१६ ) में यह भाव "अधृष्यश्चाभिगम्यश्च' से कहा है। तेजस्वी होने से अधृष्य है और हिंसा-प्रकृति का न होने से विश्वसनीय है। कामन्दक ने अधृष्य के गुण कहे हैं—तेजो बलं सत्त्ववत्ता प्रभावः प्राप्तकालता। अधृष्यस्य गुणानेतान् नृपस्य मुनयो विदुः ॥ ( २ ) **अध्याक्रान्ता०**—इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक राजा के पक्ष में और दूसरा ऋषि या मुनि के पक्ष में। प्रथम पंक्ति का अर्थ (क) राजा के पक्ष में—यह सबके द्वारा आश्रय के योग्य गृहस्थ आश्रम में निवास करता है। (ख) मुनि-पक्ष में—सभी विद्यार्थियों के द्वारा आश्रय के योग्य तपोवन में रहता है। द्वितीय पंक्ति—(क) राजा के पक्ष में—यह प्रजा के रक्षारूपी योग से तप का संग्रह करता है। (ख) मुनि-पक्ष में—धर्म के रक्षार्थ अष्टांग योग से तप का संग्रह करता है। तृतीय और चतुर्थ पंक्ति—(क) राजा के पक्ष में—इस जितेन्द्रिय का पवित्र राजपूर्वक मुनि शब्द अर्थात् राजर्षि शब्द स्वर्ग तक पहुँचता है। (ख) मुनि-पक्ष में—जितेन्द्रिय मुनि का पवित्र मुनि शब्द स्वर्ग तक पहुँचता है। (३) **आश्रमे**—(क) गृहस्थाश्रम, (ख) तपोवन। (४) **सर्वभोग्ये**—सभी आश्रम गृहस्थ के सहारे जीवित रहते हैं। मनु० (३-७१) ने कहा है—यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ अन्यत्र भी कहा है—गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि। (मनु० ६-३६)। ऋषि के आश्रम में सारे विद्यार्थी आश्रय लेते हैं। (५) **रक्षायोगात्**—(क) प्रजा के रक्षारूपी योग से। योग का अर्थ 'कारण' लेने पर—रक्षा करने के

कारण। (ख) धर्मरक्षार्थ योग-समाधि लगाने से। (६) **राजपूर्वः**—दोनों में अन्तर यह है कि एक ऋषि है, दूसरा राजर्षि। (७) यहाँ पर श्लिष्ट अर्थ के कारण श्लेष है। उपमान ऋषि से उपमेय राजर्षि का महत्त्व बताने से व्यतिरेक अलंकार है।

**६५. द्वितीयः—गौतम, अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः?**

दूसरा—गौतम, क्या यही इन्द्र के मित्र दुष्यन्त हैं?

**६६. प्रथमः—अथ किम्।**

**पहला**—और क्या।

**६७. द्वितीयः—तेन हि—**

**नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-**
**मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।**
**आशंसन्ते समितिषु सुरा बद्धवैरा हि दैत्यै-**
**रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥१५॥**

**अन्वय**—तेन हि नगरपरिघप्रांशुबाहुः अयम् एकः उदधिश्यामसीमां कृत्स्नां धरित्रीं भुनक्ति, एतत् न चित्रम्। हि दैत्यैः बद्धवैराः सुराः समितिषु अस्य अधिज्ये धनुषि पौरुहूते वज्रे च विजयम् आशंसन्ते।

**दूसरा—तो नगर-द्वार की अर्गला के समान विशाल-बाहु यह अकेला समुद्र से नीली सीमायुक्त समस्त पृथिवी का पालन करता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि राक्षसों से वैरभावयुक्त देवता युद्ध में इसके प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुष और इन्द्र के वज्र पर (ही) विजय की आशा रखते हैं ॥१५॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—तेन हि—अतएव, नगर०—नगरस्य लक्षणया नगरद्वारस्य परिघः अर्गलः स इव प्रांशू विशालौ बाहू भुजौ यस्य सः, अयमेकः—अयमेकाकी दुष्यन्तः, उदधि०—उदधिः समुद्रः श्यामा नीला सीमा प्रान्तभागः यस्याः ताम्, कृत्स्नां—समग्राम्, धरित्रीं—पृथिवीम्, भुनक्ति—पालयति, एतत् न चित्रम्—नात्र किंचिदपि आश्चर्यजनकम् अस्ति। हि—यतो हि, दैत्यैः—राक्षसैः, बद्धवैराः—बद्धं रूढं वैरं शत्रुता येषां ते, सुराः—देवाः, समितिषु—युद्धेषु, अस्य—दुष्यन्तस्य, अधिज्ये—आरोपितगुणे, धनुषि—कार्मुके, पौरुहूते—ऐन्द्रे, वज्रे—कुलिशे च, विजयम् आशंसन्ते—स्वविजयस्याशां कुर्वन्ति। अत्र पर्यायोक्तं काव्यलिङ्गं लुप्तोपमा दीपकं चालंकाराः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

---

पाठभेद—६७. नि० सुरयुवतयो० (देवांगनाएँ)।

## टिप्पणी

( १ ) **बलभित्सखः**—बलं भिनत्तीति बलभित्, बल+भिद्+क्विप्। बलभिदः सखा, तत्पुरुष। यहाँ पर राजाहःसखिभ्यष्टच् (५-४-९१) से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय। बलभित्—बल नामक राक्षस का मारने वाला। वेद में इस बल राक्षस के ही अन्य नाम हैं—वृत्र, नमुचि, अहि, शम्बर आदि। (२) **उदधि०**—उदधिः श्यामा सीमा यस्याः ताम्, बहु०। समुद्र जिसकी नीली सीमा है। उदधि—उदकानि धीयन्ते अस्मिन्, उदक+धा+कि ( इ )। कर्मण्यधिकरणे च ( ३-३-९३ ) से कि प्रत्यय, उदकस्योदः० (६-३-५७) से उदक को उद आदेश। ( ३ ) **नगर०**—नगरस्य परिघ इव प्रांशू बाहू यस्य सः, तत्पुरुषगर्भक बहु०। नगर के द्वार की अर्गला के तुल्य विशाल भुजा वाला। परिघ—किवाड़ के पीछे लगाए जाने वाले डंडे या लोहे को कहते हैं। परिघ+परि+हन्+अप् (अ)। ( ४ ) **भुनक्ति**—पालन करता है। भुज् धातु रक्षा अर्थ में परस्मैपदी है और भोजन अर्थ में आत्मनेपदी। ( ५ ) **आशंसन्ते**—आशा करते हैं। आ+शंस् इच्छा अर्थ में आत्मनेपदी होती है। ( ६ ) **समितिषु**—युद्धों में। समिति शब्द के युद्ध और सभा दोनों अर्थ हैं। समेत्य यन्ति यत्र, सम्+इ+क्तिन् ( ति )। एकत्र होकर जिसमें जाते हैं। पाठभेद—सुरयुवतयः—देवताओं की स्त्रियाँ, से यह पाठ अच्छा है। ( ७ ) **बद्धवैराः**—बद्धं वैरं येषां ते, बहु०। जिनकी शत्रुता चल रही है। ( ८ ) **पौरुहूते**—इन्द्र के। पुरुहूतः—इन्द्र, पुरुभिः बहुभिः हूयते यज्ञेषु आहूयते इति। पुरुहूतस्य इदम्—पौरुहूतम्। (९) इस श्लोक में नगर० में भुजाओं से शत्रुओं को जीता इस कारण के स्थान पर कार्य समस्त-पृथ्वी-पालन के वर्णन से पर्यायोक्त अलंकार है। श्लोक का उत्तरार्ध नतच्चित्रम् का कारण है, अतः काव्यलिंग है। नगरपरिघ० में लुप्तोपमा है। प्रस्तुत राजा के धनुष और अप्रस्तुत इन्द्र के वज्र के देव-विजयाशारूपी एक धर्म में सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार है।

**६८. उभौ—(उपगम्य) विजयस्व राजन्।**

दोनों—(पास जाकर) राजन्, आपकी विजय हो।

**६९. राजा—(आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ।**

राजा—(आसन से उठकर) आप दोनों को प्रणाम करता हूँ।

**७०. उभौ—स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः।)**

दोनों—आपका कल्याण हो। (दोनों फल भेंट करते हैं।)

**७१. राजा—(सप्रणामं परिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि।**

राजा—(प्रणामपूर्वक स्वीकार करके) मैं चाहता हूँ (कि आप लोग कुछ) आज्ञा दें।

७२. उभौ—विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थः । तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते ।

दोनों—आप यहाँ हैं, यह आश्रमवासियों को ज्ञात हो गया है। अतः वे आप से प्रार्थना करते हैं।

७३. राजा—किमाज्ञापयन्ति ?

राजा—वे क्या आज्ञा देते हैं ?

७४. उभौ—तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसांनिध्याद् रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति । तत् कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति ।

दोनों—पूजनीय महर्षि कण्व के यहाँ न होने से राक्षस हमारे यज्ञों में विघ्न डालते हैं। अतः कुछ दिन आप सारथि के साथ रह कर आश्रम को सनाथ कीजिए।

७५. राजा—अनुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—मैं (बहुत) अनुगृहीत हूँ।

७६. विदूषकः—(अपवार्य) एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना। [एसा दाणिं अणुऊला ते अब्भत्थणा ।]

विदूषक—(एक ओर होकर) यह प्रार्थना अब आपके अनुकूल ही है।

७७. राजा—(स्मितं कृत्वा) रैवतक, मद्वचनादुच्यतां सारथिः, सबाणासनं रथमुपस्थापयेति ।

राजा—(मुस्कराकर) रैवतक, मेरी ओर से सारथि से कहना कि धनुष के साथ रथ लाकर उपस्थित करो।

७८. दौवारिकः—यद् देव आज्ञापयति । [जं देवो आणवेदि ।] (इति निष्क्रान्तः ।)

द्वारपाल—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान।)

७९. उभौ—(सहर्षम्)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ।।१६।।

---

पाठभेद—७२. नि० त (व)।

**अन्वय**—पूर्वेषाम् अनुकारिणि त्वयि इदं युक्तरूपम्। खलु पौरवाः आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः।

**दोनों**—(हर्ष के साथ) अपने पूर्वजों के अनुकरण करने वाले आपके लिए यह अत्यन्त उचित है। वस्तुतः पुरुवंशी राजा आपत्तिग्रस्तों को अभयदान-रूपी यज्ञ की दीक्षा लिये हुए हैं॥१६॥

**संस्कृत-व्याख्या**—पूर्वेषां—पूर्वजानाम्, अनुकारिणि—अनुवर्तिनि, त्वयि—राज्ञि, इदं युक्तरूपम्—एतत् उचिततममस्ति। खलु—निश्चयेन, पौरवाः—पुरुवंशिनृपाः, आपन्ना०—आपत्तिग्रस्ताभयदानयज्ञेषु, दीक्षिताः—गृहीतव्रताः सन्ति। काव्यलिङ्गमर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **आज्ञापयितुम्**—आज्ञायुक्त होना चाहता हूँ अर्थात् आप आज्ञा दें। (२) **असांनिध्यात्**—न होने के कारण। (३) **इष्टि०**—यज्ञ में विघ्न। (४) **अपवार्य**—एक ओर होकर कोई गुप्त बात कहना। इसका लक्षण है—तद्भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते। (सा० दर्पण ६-१३८)। (५) **आपन्ना०**—आपन्नानाम् अभयमेव सत्राणि तेषु दीक्षिताः, बहु०। आपत्तिग्रस्तों को अभयदान-रूपी यज्ञ में दीक्षा लिये हुए। (६) **युक्तरूपम्**—अति उचित। प्रशंसा अर्थ में रूप प्रत्यय है। (७) उत्तरार्ध पूर्वार्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग है। उत्तरार्ध में विशेष के द्वारा सामान्य अर्थ के समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास है।

**८०. राजा**—(सप्रणामम्) गच्छतां पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव।

**राजा**—(प्रणाम करके) आप दोनों आगे चलिए। मैं भी पीछे-पीछे आ ही रहा हूँ।

**८१. उभौ**—विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ।)

**दोनों**—आपकी विजय हो। (दोनों का प्रस्थान।)

**८२. राजा**—माधव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्।

**राजा**—माधव्य, क्या शकुन्तला को देखने की (तुम्हें कुछ) उत्सुकता है?

**८३. विदूषकः**—प्रथमं सपरिवाहमासीत्। इदानीं

---

पाठभेद—८०. नि० गच्छतम् (जाइए)। ८२. नि० माढव्य (माढव्य)।

राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः। [पढमं सपरिवाहं आसि। दाणिं रक्खसवुत्तन्तेण बिन्दुवि णावसेसिदो।]

विदूषक—पहले (तो) बहुत अधिक थी। परन्तु अब राक्षसों के समाचार से एक बूंद भी उत्सुकता शेष नहीं रही है।

८४. राजा—मा भैषीः। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे।

राजा—मत डरो। निश्चय ही तुम मेरे पास रहोगे।

८५. विदूषकः—एष राक्षसाद् रक्षितोऽस्मि। [एस रक्खसादो रक्खिदो म्हि।]

विदूषक—तो मैं राक्षसों से सुरक्षित हो गया हूँ।

(प्रविश्य)

८६. दौवारिकः—सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद् देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः। [सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणं अवेक्खदि। एस उण णअरादो देवीणं आणतिहरओ करभओ आअदो।]

(प्रविष्ट होकर)

द्वारपाल—रथ तैयार है और महाराज के विजय-प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है। किन्तु महारानी का संदेश लेकर नगर से यह करभक आया है।

८७. राजा—(सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः?

राजा—(आदरपूर्वक) क्या माता जी ने भेजा है?

८८. दौवारिकः—अथ किम्। [अह इं।]

द्वारपाल—हाँ, (महाराज)।

८९. राजा—ननु प्रवेश्यताम्।

राजा—तो (उसको) अन्दर बुला लाओ।

९०. दौवारिकः—तथा। (इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) एष भर्ता। उपसर्प। [तह। एसो भट्टा। उवसप्प।]

द्वारपाल—जो महाराज की आज्ञा (बाहर निकल कर और करभक के साथ प्रविष्ट होकर) यह महाराज हैं। उनके पास जाओ।

## टिप्पणी

( १ ) **अनुपदम्०**—पीछे-पीछे आ ही रहा हूँ। **अनुपदम्**—पदस्य पश्चात्, अव्ययीभाव। पीछे-पीछे। आगत एव—आता हूँ। यहाँ पर क्त प्रत्यय वर्तमान अर्थ का बोध कराता है। ( २ ) **विजयस्व**—विजय हो। वि+जि सदा आत्मनेपदी ही होती है, विपराभ्यां जेः (१-३-१९) से आत्मनेपद। ( ३ ) **परिवाहः**—तालाब आदि के पानी का लबालब भरा होने के कारण बाहर बहना। यहाँ भाव है कि पहले मेरी उत्सुकता लबालब भरी हुई थी, अब एक बूंद भी नहीं रही। परिवाह—परितः वहनम्, परि+वह्+घञ् (अ)। परिवाहेन सह सपरिवाहम्। (४) **राक्षसः**—रक्षः एव राक्षसः, स्वार्थ में अण्। ( ५ ) **मा भैषीः**—मा के कारण लुङ। मत डरो। ( ६ ) **राक्षसात्०**—विदूषक प्रदर्शित करता है कि वह वस्तुतः राक्षसों से घिरा हुआ था और अब बच गया। ( ७ ) **सज्जः**—तैयार। सज्ज्+अच् ( अ )। ( ८ ) **देवीनाम्**—राजा की माता के लिए है। आदर अर्थ में बहुवचन है। ( ९ ) **आज्ञप्तिहरः**—सन्देशवाहक। आज्ञप्ति+हृ+अच् (अ)। हरतेरनुद्यमनेऽच् (३-२-९) से अच्। (१०) **अम्बाभिः**—माता जी ने। आदर अर्थ में बहुवचन है।

९१. **करभकः**—जयतु जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति। आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं संभावनीयेति। [ जेदु जेदु भट्टा। देवी आणवेदि। आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्तपारणो मे उववासो भविस्सदि। तहिं दीहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा त्ति।]

**करभक**—जय हो, महाराज की जय हो। महारानी ने संदेश दिया है कि आगामी चौथे दिन मेरे उपवास की पारणा (व्रतान्तभोजन) होगी। उस अवसर पर चिरंजीवी (पुत्र आकर मुझे) अवश्य संमानित करें।

९२. **राजा**—इतस्तपस्विकार्यम्। इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्।

**राजा**—इधर तपस्वियों का कार्य है और उधर गुरुजनों की आज्ञा है। दोनों का ही उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। (तो) इस विषय में क्या उपाय किया जाय?

---

पाठभेद—९१. नि० जयतु ( जेदु ), इति नास्ति।

**६३. विदूषकः——त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ । [ तिसङ्कू विअ अन्तरा चिट्ठ । ]**

**विदूषक**——त्रिशंकु की तरह बीच में लटके रहिए ।

**६४. राजा——सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि ।**

**कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः ।**
**पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ।।१७।।**

**(विचिन्त्य) सखे, त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः । अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति ।**

**अन्वय**——कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात् मे मनः पुरः शैले प्रतिहतं स्रोतोवहः स्रोतः यथा द्वैधीभवति ।

**राजा**——वस्तुतः मैं व्याकुल हो गया हूँ ।

दोनों कार्यों के भिन्न-भिन्न स्थान पर होने से मेरा मन सामने पहाड़ से रुके हुए नदी के प्रवाह के तुल्य दुविधा में पड़ गया है ।।१७।।

(सोचकर) मित्र, मेरी माता तुमको पुत्रवत् मानती हैं । अतः तुम यहां से लौटकर, मुझे तपस्वियों के कार्य में व्यस्त-चित्त बताकर, माता जी के लिए पुत्र के कार्य संपन्न करना ।

**संस्कृत-व्याख्या**——कृत्ययोः——उभयोरपि कार्ययोः, भिन्नदेशत्वात्——नानादेशस्थत्वात्, मे मनः——मम हृदयम्, पुरः——अग्रे, शैले——पर्वते, प्रतिहतम्——अवरुद्धम्, स्रोतोवहः——नद्याः, स्रोतः यथा——प्रवाह इव, द्वैधीभवति——संशयाकुलं भवति । अत्रोपमाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **प्रवृत्तपारणः**——प्रवृत्ता पारणा यस्य सः, बहु० । जिसका व्रतान्त-भोजन चौथे दिन होगा । यहाँ पर अधिक सम्भवतः जीवत्पुत्रिका (जिउतिया, जूतिया) व्रत का ग्रहण है । आजकल भी यह व्रत स्त्रियाँ अधिक संख्या में करती हैं । व्रत का उद्देश्य है कि सन्तान चिरंजीवी हो । पाठभेद——पुत्रपिण्डपालनो नाम०—पुत्रपिंडपालन नामक व्रत है । पुत्र को सन्तान प्राप्त हो, इसके लिए व्रत । ( २ ) **संभावनीया**——संमानित करना । ( ३ ) **त्रिशंकुः**——त्रिशंकु

---

पाठभेद——६३. नि० अन्तराले [अन्तराले] (बीच में) ।

सूर्यवंशी राजा था और हरिश्चन्द्र का पिता था। त्रिशंकु की कामना थी कि सशरीर स्वर्ग जाएँ। उसने अपने कुलगुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की कि वे यज्ञ द्वारा ऐसा कर दें। उन्होंने उसकी प्रार्थना अस्वीकृत की। उसने वसिष्ठ के पुत्रों से कहा। उन्होंने उसे शाप दिया कि चाण्डाल हो जाओ। उसने वशिष्ठ के शत्रु विश्वामित्र से प्रार्थना की। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने तपोबल से उसे सशरीर स्वर्ग भेजा। इन्द्रादि देवों ने उसे स्वर्ग में प्रविष्ट न होने दिया और उल्टे शिर नीचे डाल दिया। विश्वामित्र ने तपोवल से उसे पृथ्वी पर नहीं आने दिया और वह आकाश में बीच में ही लटका रहा। वह तारे के रूप में अब भी आकाश में है। ( ४ ) **भिन्नदेशत्वात्**—भिन्नः देशः ययोः, तयोर्भावः तस्मात्। भिन्न-भिन्न स्थानों पर होने से। ( ५ ) **द्वैधीभवति**—द्विविधायुक्त हो रहा है अर्थात् कुछ निश्चय नहीं कर पाता है। ( ६ ) **स्रोतोवहः०**—जैसे नदी का प्रवाह पर्वत से रुकने के कारण आगे नहीं बढ़ सकता है, वैसे ही मैं भी आगे कुछ नहीं सोच पाता हूँ। स्रोतोवह्—नदी। स्रोतस्+वह्+क्विप्।

**९५. विदूषकः**—न खलु मां रक्षोभीरुकं गणयसि। [ण क्खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि।]

विदूषक—वस्तुतः मुझे राक्षसों से भयभीत मत समझ लेना।

**९६. राजा**—(सस्मितम्) कथमेतद् भवति संभाव्यते ?

राजा—(मुस्कराकर) आप में यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

**९७. विदूषकः**—यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि। [जह राआणुएण गन्तव्वं तह गच्छामि।]

विदूषक—जिस प्रकार राजा के छोटे भाई को जाना चाहिए, उस प्रकार जाऊँगा।

**९८. राजा**—ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वाननुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

राजा—तपोवन में कोई विघ्न न हो, अतः सभी अनुयायियों को तुम्हारे साथ ही भेजता हूँ।

**९९. विदूषकः**—(सगर्वम्) तेन हि युवाराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः। [तेण हि जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो]।

---

पाठभेद—९५. नि० गणय (समझना)। ९९. नि० (सगर्वम्), इति नास्ति।

विदूषक—(गर्व के साथ) तो मैं अब युवराज हो गया हूँ।

१००. **राजा**—(स्वगतम्) चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये। (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा। प्रकाशम्) वयस्य, ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य—

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहासविजल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥१८॥

**अन्वय**—सखे, वयं क्व, मृगशावैः समम् एधितः परोक्षमन्मथः जनः क्व। परिहासविजल्पितं वचः परमार्थेन न गृह्यताम्।

**राजा**—(मन में) यह (ब्राह्मण) बालक चंचल है। कहीं हमारी (शकुन्तलाविषयक) इच्छा अन्तःपुर की स्त्रियों से न कह दे। अच्छा, इससे इस तरह कहता हूँ। (विदूषक का हाथ पकड़ कर। प्रकट) मित्र, ऋषियों के प्रति आदरभाव के कारण आश्रम में जा रहा हूँ। वस्तुतः तपस्वी कन्या पर मेरी आसक्ति नहीं है। देखो—मित्र, कहाँ हम और मृग-शावकों के साथ पला हुआ कामभाव से दूर व्यक्ति (शकुन्तला) कहाँ? (मेरी) हँसी में कही हुई बात को वस्तुतः सत्य न समझ लेना ॥१८॥

१०१. **विदूषकः**—अथ किम्। [अह इं।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।) इति द्वितीयोऽङ्कः।

**विदूषक**—ठीक है। (सबका प्रस्थान) द्वितीय अंक समाप्त।

**संस्कृत-व्याख्या**—सखे—मित्र, वयं—राजानः, क्व—कुत्र, मृगशावैः—हरिणशिशुभिः, समं—सह, एधितः—वृद्धि प्राप्तः, परोक्षमन्मथः—कामभावानभिज्ञः, जनः—शकुन्तला, क्व—कुत्र। परिहासविजल्पितम्—उपहासकथितम्, वचः—मे वचनम्, परमार्थेन—सत्यरूपेण, न गृह्यताम्—न ज्ञायताम्। अत्र विषमं काव्यलिङ्गं चालंकारौ। वियोगिनी वृत्तम्।

---

पाठभेद—१०१. नि० विदूषकः……[अह इं], इति नास्ति।

## टिप्पणी

( १ ) **वटुः**—ब्राह्मण बालक। ( २ ) **अस्मत्प्रार्थनाम्**—मेरी शकुन्तला के प्रति अभिलाषा को। ( ३ ) **अन्तःपुरेभ्यः**—लक्षणा से अन्तःपुर की स्त्रियाँ अर्थ है। (४) **क्व वयम्**—हम सांसारिक विषयी व्यक्ति हैं। (५) **परोक्ष०**—परोक्षः मन्मथः यस्य सः। कामभाव से सर्वथा अपरिचित। ( ६ ) **परिहास०**—परिहासेन विजल्पितम्, तत्पुरुष। ( ७ ) यहाँ पर दो विभिन्न स्वरूप वाले राजा और शकुन्तला के एकत्र वर्णन से विषम अलंकार है। पूर्वार्ध उत्तरार्ध का कारण है, अतः काव्यलिग है। यहाँ पर वियोगिनो नामक छन्द है। उसका लक्षण है—विषमे ससजा गुरुः समे सभरालोऽथ गुर्वियोगिनी। राजा—स्वगतम् से लेकर अन्त तक संवृत्ति नामक सन्ध्यंग है। संवृति का लक्षण है—संवृतिः स्वयमुक्तस्य स्वयं प्रच्छादनं भवेत्॥ ( ८ ) विदूषक का शकुन्तला को बिना देखे चला जाना और राजा का कथन कि यह सब हँसीमात्र है, नाटक की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः अंक ५ में विदूषक ने उसे याद नहीं दिलाया।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः॥**

## तृतीयोऽङ्कः

**(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः।)**

**१. शिष्यः—अहो, महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। यत्प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति निरुपद्रवाणि नः कर्माणि संवृत्तानि।**

**का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।**
**हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति॥१॥**

**यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थं दर्भानृत्विग्भ्य उपहरामि। (परिक्रम्यावलोक्य च। आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरा-**

---

पाठभेद—१. नि० यत्, इति नास्ति। नि० तत्रभवति राजनि (माननीय राजा के)। नि० प्रवृत्तानि भवन्ति (होने लगते हैं)। नि० उपनयामि (पास ले जाता हूँ)। नि० आकर्ण्य (सुनकर)। नि० त्वरितं गम्यताम् (शीघ्र जाओ)। नि० सखि, सा (हे सखी, वह)।

नुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते । (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि । आतपलङ्घनाद् बलवदस्वस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वापणायेति । तर्हि यत्नादुपचर्यताम् । सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम् । अहमपि तावद् वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

विष्कम्भकः ।

---

**अन्वय**—बाणसन्धाने का कथा, हि स दूरतः ज्याशब्देन एव धनुषः हुंकारेण इव विघ्नान् अपोहति ।

(तदनन्तर कुशा लिए हुए यजमान के शिष्य का प्रवेश)

**शिष्य**—ओह, राजा दुष्यन्त महाप्रतापी है। उस महानुभाव के आश्रम में प्रवेश करते ही हमारे (सभी धार्मिक) कार्य निर्विघ्न हो गए हैं।

बाण चढ़ाने की तो बात ही क्या है ? क्योंकि वह दूर से प्रत्यंचा के शब्द से ही, मानो धनुष की हुंकार से, विघ्नों को दूर कर देता है ।।१।।

तब तक इन कुशाओं को वेदि पर बिछाने के लिए ऋत्विजों को जाकर देता हूँ। (चारों ओर घूमकर और देखकर। आकाश की ओर देखता हुआ) प्रियंवदा, यह खस का लेप और कमलनालयुक्त कमलपत्र किसके लिए ले जा रही हो ? (सुनने का अभिनय करके) क्या कहा ? लू लगने से शकुन्तला बहुत अधिक अस्वस्थ है, उसके शरीर को शान्ति-प्रदान करने के लिए यह ले जा रही हूँ। तो सावधानी से (उसका) उपचार करना। वह कुलपति भगवान् कण्व की वस्तुतः प्राणस्वरूप है। मैं भी तब तक शकुन्तला के लिए यज्ञिय शान्ति-जल गौतमी के द्वारा भेजता हूँ। (प्रस्थान) (शुद्ध) विष्कम्भक समाप्त।

**संस्कृत-व्याख्या**—बाणसन्धाने—शरयोजने, का कथा—तस्य वर्णनमेवानावश्यकम् । हि—यतो हि, सः—राजा, दूरतः—दूरादेव, ज्याशब्देनैव—गुणध्वनिनैव, धनुषः—कार्मुकस्य, हुंकारेणेव—हुंशब्दसदृशेन, विघ्नान्—अन्तरायान्, अपोहति—दूरीकरोति । अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **यजमानशिष्यः**—यजत इति यजमानः, यज्+लट्—शानच् (आन)।

शिष्य–शास्+क्यप् (य)। एतिस्तु० (३-१-१०९) से क्यप् और शास इदङ्हलोः (६-४-३४) से आ को इ। (२) **प्रविष्ट०**—प्रविष्ट एव प्रविष्टमात्रः, मयूरव्यंसकादिवत् समास। घुसते ही। (३) **बाण०**—बाणस्य सन्धानम्, तत्पुरुष। सन्धान—सम्+धा+ल्युट्। (४) **ज्या०**—ज्यायाः शब्देन, तत्पुरुष। (५) **अपोहति**—दूर करता है। अप+ऊह्। ऊह् धातु आत्मनपदी है, उपसर्ग पहले होने पर उपसर्गादस्यति० (वार्तिक) से परस्मैपद। (६) **ऋत्विग्भ्यः**—ऋत्विजों के लिए। ऋत्विग्—ऋतौ यजतीति, ऋतु+यज्+क्विन् (०)। (७) **आकाशे**—इसको आकाशभाषण कहते हैं। आकाश की ओर देखते हुए अकेले कुछ कहना। इसका लक्षण है—किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्॥ (सा० दर्पण ६-१४०)। (८) **उशीर०**—उशीर–खस या खसखस, एक सुगन्धित घास। (९) **शरीर०**—शरीर को शान्ति देने के लिए। (१०) **वैतानिकम्**—यज्ञ-संबन्धी। वितान–यज्ञ। (११) **विष्कम्भक**—भूत और भावी घटनाओं का निर्देश करता है। संक्षेप के लिए अंक के आदि में रखा जाता है। पात्र संस्कृतभाषी होंगे तो शुद्ध, संस्कृत-प्राकृतभाषी होंगे तो मिश्र। निम्न श्रेणी के प्राकृत-भाषी ही होंगे तो प्रवेशक। इसका लक्षण है—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥ मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः। शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः। (सा० द० ६-५५, ५६)।

**(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा।)**

**२ (क). राजा—(निःश्वस्य)**

**जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।**
**अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्॥२॥**

**अन्वय**—तपसः वीर्यं जाने, सा बाला परवती इति मे विदितम्। तथापि इदं हृदयं ततः निवर्तयितुम् अलं न अस्मि।

**(तदनन्तर काम-पीड़ित अवस्था में राजा का प्रवेश)**

**राजा—(लम्बी साँस लेकर) मैं तपस्या की शक्ति को जानता हूँ। यह (भी) जानता हूँ कि वह कन्या (शकुन्तला) पराधीन है। तथापि मैं (अपने) इस मन को उससे लौटाने में असमर्थ हूँ॥२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—तपसः—तपस्यायाः, वीर्यं—शक्तिम्, जाने—अहं जानामि। सा बाला—सा शकुन्तला, परवती—पराधीना, इति मे विदितम्—इत्यपि अहं जानामि। तथापि—एतत् जानन्नपि, इदं हृदयम्—एतत् स्वकीयं

---

पाठभेद—२. का० सचिन्तं निःश्वस्य (चिन्ता के साथ लम्बी साँस लेकर)।

मनः, ततः—शकुन्तलायाः, निवर्तयितुं—रोद्धुम्, अलं न अस्मि—समर्थो नास्मि। अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः। अत्र तापनं नाम प्रतिमुखसन्ध्यङ्गमस्ति। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **कामय०**—कामयमानस्य अवस्था इव अवस्था यस्य सः, बहु०। कामियों की सी अवस्था वाला। कामयमान—कम्+णिङ+शानच्। आने मुक् (७-२-८२) से मुगागम। पाठभेद—कामयानावस्थः। कामयमान के स्थान पर कामयान वैदिक प्रयोग है। रामायण और महाभारत में कामयान शब्द भी काफी प्रचलित है। जैसे—रामायण २-१००-२३ में कामयानमिव स्त्रियः। (२) **जाने०**—मैं तपस्या का बल जानता हूँ। अतएव शकुन्तला को बलात् नहीं ले जा सकता हूँ। (३) **सा बाला०**—वह पराधीन है, अतः अपनी इच्छा से भी मेरे साथ नहीं जा सकती है। (४) **ततः**—मैं प्रयत्न करने पर भी अपने मन को उसकी ओर से लौटा नहीं सकता हूँ। (५) **जाने**—ज्ञा+लट् उत्तम पु०। अनुपसर्गाज्ज्ञः (१-३-७६) से आत्मनेपद। निवर्तयितुम्–नि+वृत्+णिच्+तुमुन्। (६) **जाने तपसः०**—तपस्या का बल जानना रूपी कारण से हरण न कर सकना रूपी अप्रस्तुत कार्य के कारण अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार है। कोई उपाय न दीखने के कारण यहाँ पर तापन नामक प्रतिमुखसंधि का अंग है। उसका लक्षण है—उपायासन्दर्शनं यत्तु तापनं नाम तद् भवेत्। (सा० दर्पण ६-९१)। (७) **पाठभेद**—न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम्—मेरा मन उसकी ओर से इसी प्रकार नहीं लौटता है, जैसे नीचे की ओर से जल ऊपर की ओर नहीं लौट पाता।

कुछ संस्करणों में इसके पश्चात् निम्नलिखित अंश अधिक है।

**भगवन् मन्मथ, कुतस्ते कुसुमायुधस्य सतस्तैक्ष्ण्यमेतत्। (स्मृत्वा) आं ज्ञातम्-**
**अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ।**
**त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः॥**

भगवन् कामदेव, आप पुष्पवाण हैं, फिर इस प्रकार की तीक्ष्णता आप में कैसे? (विचार कर) अच्छा, समझ गया—आज भी तुम्हारे अन्दर अवश्य ही शिव के क्रोधरूपी अग्नि वैसे ही जल रही है, जैसे समुद्र में वाडवाग्नि। नहीं तो हे कामदेव, भस्मरूप में शेष तुम मुझ जैसों के लिए कैसे इस प्रकार सन्तापकारी होते?

**२ (ख). (मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः। कुतः—**

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥३॥

**अन्वय**—तव कुसुमशरत्वम् इन्दोः शीतरश्मित्वम्, इदं द्वयं मद्विधेषु अयथार्थं दृश्यते। इन्दुः हिमगर्भैः मयूखैः अग्निं विसृजति। त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि।

**(कामपीड़ा का नाट्य करके) भगवन् कामदेव, विश्वास के योग्य आप और चन्द्रमा से कामिजनों का समूह ठगा जा रहा है। क्योंकि—**

**तुम्हारा पुष्प-बाण होना और चन्द्रमा का शीतांशु होना, ये दोनों बातें मुझ जैसे (कामपीडितों) के लिए असत्य दिखाई पड़ती हैं। (क्योंकि) चन्द्रमा शीतल किरणों से अग्नि की वर्षा करता है और तुम भी फूल के बाणों को वज्र के तुल्य कठोर बना लेते हो॥३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—तव—कामदेवस्य, कुसुमशरत्वम्—पुष्पबाणत्वम्, इन्दोः—चन्द्रस्य, शीतरश्मित्वम्—शीतांशुत्वम्, इदं द्वयम्—एतदुभयमपि, मद्विधेषु—मत्सदृशेषु कामपीडितेषु, अयथार्थम्—असत्यम्, दृश्यते—प्रकटीभवति। यतो हि, इन्दुः—चन्द्रः, हिमगर्भैः—तुषारपूर्णैः, मयूखैः—किरणैः, अग्निं—वह्निम्, विसृजति—वर्षति। त्वमपि—त्वं कामदेवोऽपि, कुसुमबाणान्—पुष्पशरान्, वज्रसारीकरोषि—कुलिशवत् कठोरान् करोषि। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गं विरोधाभासः परिणामश्चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **विश्वसनीयाभ्याम्**—कामदेव फूल के बाणों वाला है और चन्द्रमा शीतल किरणों से युक्त है, अतः तापहारक होने से विश्वासयोग्य हैं, परन्तु कामपीड़ितों को ये दोनों अधिक दुःखदायी हैं। (२) **अतिसंधीयते**—प्रतार्यते, वञ्च्यते। ठगा जाता है। अति+सम्+धा का अर्थ ठगना है। (३) **कुसुम०**—कुसुमानि एव शराः यस्य तस्य भावः, बहु०। फूल ही जिसके बाण हैं, ऐसा होना। कामदेव के पाँच फूल ही बाण माने जाते हैं। उनके नाम हैं—अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः॥

---

पाठभेद—२. का० अथवा—अनिशमपि·····प्रहरतीति, इत्ययं श्लोकोऽधिकः। (श्लोकोऽर्थश्च टिप्पण्यां द्रष्टव्यौ)।

कार्य की दृष्टि से उसके पास पाँच बाण ये हैं—उन्मादनस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा । संमोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः ।। (४) **शीत०**—शीताः रश्मयः यस्य, तस्य भावः, बहु० । शीतल किरणों वाला होना । (५) **अयथार्थम्**—नामानुसार ठीक अर्थ वाला न होना । अतः असत्य या विपरीतार्थ । (६) **हिम०**—हिमं गर्भे येषां तैः, बहु० । हिम जिनके अन्दर है अर्थात् शीतल । (७) **वज्रसारी०**—वज्रस्य सार इव सारः येषां ते वज्रसाराः, बहुव्रीहि । अवज्रसारान् वज्रसारान् करोषि । यहाँ पर अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है । (८) यहाँ पर 'मयि' विशेष कहना चाहिए था, उसके स्थान पर 'मद्विधेषु' सामान्य कहा गया है । सामान्य से विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा है । उत्तरार्ध पूर्वार्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग है । हिमगर्भैरग्निं विसृजति में विरोधाभास है । वियोगियों को ऐसा अनुभव होना उनका स्वभाव है । कुसुमबाणान् में फूलों पर बाण का आरोप विरहदुःख का कारण होने से यहाँ पर उपयोगी है, अतः परिणाम अलंकार है ।

कुछ संस्करणों में इसके बाद निम्नलिखित पाठ अधिक है ।

**अथवा—अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे ।**
**यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति ।।**
**भगवन् एवमुपालब्धस्य ते न मां प्रत्यनुक्रोशः ।**
**वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम् ।**
**आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठे मय्येव युक्तस्तव बाणमोक्षः ।'**

अथवा—कामदेव सदा मेरे मन को दुःखित करता हुआ मुझे प्रिय है, यदि वह उस मादक नेत्रवाली शकुन्तला को लक्ष्य में रखकर मुझे पीडित करता है। भगवन्, इस प्रकार उलाहना देते हुए मुझ पर तुम्हें दया नहीं आती। हे कामदेव, मैंने व्यर्थ ही तुम्हें सैकड़ों संकल्पों से निरन्तर बढ़ाया । क्या यह उचित है कि तुम कान तक खींच कर मेरे ऊपर ही बाण चलाओ ?

**२ (ग). (सखेदं परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः खिन्नमात्मानं विनोदयामि । (निःश्वस्य) किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत् । यावदेनामन्विष्यामि । (सूर्यमवलोक्य) इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति ।**

---

पाठभेद—२. नि० सखेदम्, इति नास्ति । नि० श्रमक्लान्तम् (परिश्रम से खिन्न) ।

**तत्रैव तावद् गच्छामि। (परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।**

**शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।**
**अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥४॥**

**अन्वय**—अनङ्गतप्तैः अङ्गैः अरविन्दसुरभिः मालिनीतरङ्गाणां कणवाही पवनः अविरलम् आलिङ्गितुं शक्यः।

(खेद के साथ चारों ओर घूमकर) यज्ञ-कार्य के समाप्त हो जाने से ऋषियों के द्वारा जाने की अनुमति पाकर मैं अपने खिन्न मन को कहाँ बहलाऊँ। (लम्बी साँस लेकर) प्रिया के दर्शन के अतिरिक्त मेरे लिए और क्या आश्रय है? तब तक उसी को ढूँढ़ता हूँ। (सूर्य की ओर देखकर) इस तीव्र धूप के समय को शकुन्तला सखियों के साथ प्रायः लताकुंजों से युक्त मालिनी नदी के किनारे बिताती है। तो वहीं जाता हूँ। (चारों ओर घूमकर और वायु के स्पर्श का अभिनय करके) ओह, यह प्रदेश सुखद वायु के कारण क्या ही सुन्दर है!

काम-सन्तप्त अङ्गों से कमल की सुगन्ध से युक्त और मालिनी के तरंगों के कणों से मिश्रित वायु जोर से आलिंगन के योग्य है ॥४॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अनङ्गतप्तैः—कामसन्तप्तैः, अङ्गैः—शरीरावयवैः, अरविन्दसुरभिः—पद्मसुगन्धिः, मालिनीतरङ्गाणां—मालिनीवीचीनाम्, कणवाही—शीकरसंपृक्तः, पवनः—वायुः, अविरलं—दृढम्, आलिङ्गितुं शक्यः—समालिङ्गनयोग्योऽस्ति। अत्र समाहितः समासोक्तिश्चालङ्कारौ। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **संस्थिते**—समाप्त होने पर। संस्थित का अर्थ मृत भी होता है। (२) **सदस्यैः**—विधिदर्शिभिः। विधि को जानने वाले ऋषियों से। 'सदस्या विधिदर्शिनः' इत्यमरः। विधि को जानने वाले को सदस्य कहते हैं। सदस्+यत् (य)। सदसि साधुः, तत्र साधुः (४-४-९८) से साधु अर्थ में यत्। (३) **खिन्नम्**—व्याकुल। खिद्+क्त। (४) **प्रियादर्शनाद् ऋते**—शकुन्तला के बिना मेरा और कुछ सहारा नहीं है। ऋते के कारण पंचमी। (५) **प्रवातसुभगः**—सुखद वायु के कारण मनोहर। (६) **शक्यम्**—शकिसहोश्च (३-१-९९) से यत् (य), शक्+यत्। यहाँ पर पवनः आलिङ्गितुं शक्यः होना चाहिए, परन्तु शक्यम् प्रयोग कर्म की अविवक्षा के कारण नपुंसकलिङ्ग एकवचन है। महाभाष्य (आह्निक १) आदि में भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। जैसे—शक्यं चानेन क्षुत् प्रतिहन्तुम्। (७) **अरविन्द०**—अरविन्दैः सुरभिः, तत्पुरुष। कमलों

के गन्ध से युक्त । (८) अनङ्गतप्तैः—अनङ्गेन तप्तैः, तत्पुरुष । काम-सन्तप्त । (९) इस श्लोक में वायु के सहायक होने से समाहित अलंकार है। उसका लक्षण है—कार्यारम्भे सहायाप्तिः । वायु में मित्र के तुल्य आलिंगन आदि कार्यों का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार है ।

कुछ संस्करणों में तत्रैव तावद् गच्छामि के बाद यह अधिक पाठ है—

(परिक्रम्यावलोक्य च) अनया बालपादपवीथ्या सुतनुरचिरं गतेति तर्कयामि ।

कुतः—संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोषास्तयाऽवचितपुष्पाः ।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः ।।

(चारों ओर घूमकर और देखकर) मैं समझता हूँ कि वह सुन्दरी शकुन्तला इन पौधों के पास के रास्ते से अभी गई है। क्योंकि—उसके द्वारा फूल तोड़े जाने के कारण फलों के डंठल अभी तक संकुचित नहीं हुए हैं। कोंपलों के टूटने के स्थान दूध से आर्द्र दिखाई पड़ रहे हैं।

**२ (घ). (परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया शकुन्तलया भवितव्यम् । तथा हि—**

**अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात् ।**
**द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ।।५।।**

**यावद् विटपान्तरेणावलोकयामि । (परिक्रम्य, तथा कृत्वा, सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम् । एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते । भवतु । श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि ।**

**(इति विलोकयन् स्थितः ।)**

अन्वय—पाण्डुसिकते अस्य द्वारे पुरस्तात् अभ्युन्नता, जघनगौरवात् पश्चात् अवगाढा, अभिनवा पदपङ्क्तिः दृश्यते ।

(चारों ओर घूम कर और देखकर) बेंत से घिरे हुए इस लतामण्डप में शकुन्तला विद्यमान होनी चाहिए। क्योंकि—पीली रेत से युक्त इस (लतामंडप) के द्वार पर आगे की ओर उठा हुआ और कटिभाग के भार के कारण पीछे की ओर गहरा नवीन पद-चिह्न दिखाई पड़ रहा है।।५।।

---

पाठभेद—२. नि० तया (उसके द्वारा) । नि० तयाहि, (अधो विलोक्य) क्योंकि, (नीचे की ओर देखकर) ।

**तो मैं शाखाओं के बीच से देखता हूँ। (चारों ओर घूम कर उसी प्रकार देखकर, हर्ष के साथ) ओह, मेरी आँखों का आनन्द मिल गया। यह मेरी मानसिक प्रियतमा फूल बिछे हुए शिलापट्ट पर लेटी हुई है और (उसकी) दो सखियाँ (उसकी) सेवा कर रही हैं। अच्छा, इनके गुप्त वार्तालाप को सुनता हूँ। (उनको देखता हुआ खड़ा रहता है।)**

**संस्कृत-व्याख्या**—पाण्डुसिकते—पीतवर्णवालुकायुक्ते, अस्य—लतामण्डपस्य, द्वारे—प्रतीहारे, पुरस्तात्—अग्रभागे, अभ्युन्नता—उत्थिता, जघनगौरवात्—कटिभागभारात्, पश्चात्—पृष्ठतः, अवगाढा—गम्भीरा, अभिनवा—नवीना, पदपंक्तिः—चरणचिह्नावलिः, दृश्यते—अवलोक्यते। अत्रोपमानमनुमानं पर्यायोक्तं स्वभावोक्तिश्चालङ्काराः। परिसर्पो नाम प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं चास्ति। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **अभ्युन्नता०**—अंगुलियों की ओर पैर का भार कम होने से चिह्न हलका है और एड़ी की ओर कमर के भार के कारण चिह्न गहरा है। अभ्युन्नत—उठा हुआ, कम गहरा। अभि+उत्+नम्+क्त। ( २ ) **अवगाढा**—गहरा, अधिक दबा हुआ। अव+गाह्+क्त। ( ३ ) **जघन०**—जघनस्य गौरवात्, तत्पुरुष। कटि के अग्रभाग के भारीपन से। ( ४ ) **पाण्डुसिकते**—पाण्डवः सिकताः यत्र, तस्मिन्, बहु०। पीली रेत से युक्त। ( ५ ) इस श्लोक में सदृश से सदृश के ज्ञान के कारण उपमान अलंकार है। उसका लक्षण है—सदृशात् सदृशज्ञानमुपमानं द्विधेह तत्। स्यादेकमनुभूतेऽर्थेऽननुभूते द्वितीयकम्॥ अभ्युन्नत आदि पदपंक्ति से शकुन्तला का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है। शकुन्तला यहीं है, इसका प्रकारान्तर से उल्लेख होने से पर्यायोक्त अलंकार है। स्वभावोक्ति भी है। यहाँ पर इष्ट शकुन्तला के चारों ओर ढूंढ़ने के कारण परिसर्प नामक प्रतिमुखसन्धि का अंग है। इसका लक्षण है—इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते। (सा० द० ६-९०)। ( ६ ) **नेत्र-निर्वाणम्**—निर्वाण शब्द का अर्थ मोक्ष आनन्द है। यहाँ पर नेत्रों का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो गया अर्थात् अभीष्ट शकुन्तला के सुखद दर्शन हो गये। निर्वाण—निर्+वा+क्त। निर्वाणोऽवाते (८-२-५०) से त को न। ( ७ ) **मनोरथ०**—मन से मानी हुई प्रियतमा, अभी तक वास्तविक रूप से नहीं। मनोरथानां प्रियतमा, तत्पुरुष। ( ८ ) **शिलापट्टम्**—शिलापट्ट पर सोई हुई। यहाँ पर अधिशीङ्स्थासां कर्म (१-४-४६) से द्वितीया। ( ९ ) **अन्वास्यते**—सेवा की जा रही है।

**(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला।)**

**३. सख्यौ—(उपवीजय सस्नेहम्) हला शकुन्तले, अपि**

सुखयति ते नलिनीपत्रवातः । [हला सउन्दले, अवि सुहअदि दे णलिणीपत्तवादो ।]

(तदनन्तर पूर्वोक्त अवस्था में दोनों सखियों के साथ शकुन्तला का प्रवेश) ।

**दोनों सखियाँ**—(हवा करके, स्नेहपूर्वक) सखी शकुन्तला, क्या कमल के पत्ते की हवा तुझे (कुछ) सुख दे रही है ?

४. **शकुन्तला**—किं वीजयतो मां सख्यौ । [किं वीअअन्ति मं सहीओ ।] (सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः ।)

**शकुन्तला**—सखियो, क्या मुझे हवा कर रही हो ?

(दोनों सखियाँ चिन्ता का अभिनय करके एक दूसरे की ओर देखती हैं ।)

५. **राजा**—बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते । (सवितर्कम्) तत्किमयमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्तते । (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन ।

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥६॥

**अन्वय**—प्रियायाः स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं साबाधम् इदं वपुः किमपि कमनीयम् । युवतिषु मनसिजनिदाघप्रसरयोः तापः कामं समः, तु ग्रीष्मस्य अपराद्धम् एवं सुभगं न ।

**राजा**—शकुन्तला बहुत अधिक अस्वस्थ-शरीर दिखाई देती है। (सोचकर) क्या यह लू का प्रभाव है या जैसा मेरे मन में है ? (इच्छा-पूर्वक देखकर) अथवा सन्देह व्यर्थ ही है।

प्रिया (शकुन्तला) का स्तनों पर खस-युक्त और ढीले कमलनाल के एक कंकण से युक्त अस्वस्थ भी यह शरीर क्या ही सुन्दर है ! स्त्रियों पर कामदेव और लू के संचार से सन्ताप भले ही समान हो, किन्तु गर्मी (लू) का सन्ताप इस प्रकार सौन्दर्यवर्धक नहीं होता है ॥६॥

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रियायाः—शकुन्तलायाः, स्तन०—उरोजनिहितोशीरम्,

---

पाठभेद—५. नि० शिथिलित० (शिथिल हुए) ।

प्रशिथिल०—प्रशिथिलं श्लथं मृणालस्य कमलनालस्य एकं वलयं कङ्कणं यस्मिन् तत्, साबाधम्—अस्वस्थमपि, इदं वपुः—एतत् शरीरम्, किमपि—अनिर्वचनीयतया, कमनीयं—मनोज्ञमस्ति। युवतिषु—स्त्रीषु, मनसिज०—कामातपसंचारयोः, तापः—सन्तापः, कामं—मतमेतत्, समः—समानः। तु—परन्तु, ग्रीष्मस्य—आतपस्य, अपराद्धं—सन्तापः, एवं सुभगं न—एवं सौन्दर्यवर्धकं न भवति। अत्र व्यतिरेकोऽप्रस्तुतप्रशंसा विभावना विशेषोक्तिश्चालङ्काराः। शिखरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **यथोक्त०**—पूर्वोक्त अवस्था में। इससे ज्ञात होता है कि रंगमंच पर दो पर्दों का प्रबन्ध होना चाहिए। पर्दे के पीछे शकुन्तला है। पर्दा हटाते ही वह लेटी हुई दिखाई देती है। ( २ ) **सुखयति**—सुखं करोति, सुख+णिच्। सुख देती है। ( ३ ) **विषादम्**—खेद, दुःख या शोक। शकुन्तला की अवस्था अधिक खराब है, कुछ बेहोश भी ज्ञात होती है, अतः उसे पंखे की हवा का पता नहीं है। अवस्था बिगड़ी देखकर दोनों सखियाँ दुःखी हैं। ( ४) **आतपदोषः**—लू का प्रभाव। दोष—बुराई, यहाँ पर कुप्रभाव अर्थ है। ( ५) **कृतं सन्देहेन**—सन्देह व्यर्थ है। इस पर काम का ही प्रभाव है। ( ६ ) **स्तन०**—स्तनयोः न्यस्तम् उशीरं यस्मिन् तत्, बहु०। ठंडक के लिए छाती पर खस का लेप था। ( ७ ) **प्रशिथिल०**—प्रशिथिलं मृणालस्य एकं वलयं यस्मिन् तत्, तत्पुरुषगर्भक बहु०। शरीर की कोमलता के कारण केवल एक मृणाल का कंकण हाथ में था। (८) **किमपि**—क्या ही अनिर्वचनीय। (९) **मनसिज०**—मनसिजः निदाघश्च (द्वन्द्व), तयोः प्रसरः, तयोः, तत्पुरुष। लू लगना और काम के प्रभाव में यद्यपि समानता है, किन्तु लू लगने में शरीर-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और काम के प्रभाव में निर्बलता के साथ सुन्दरता बनी रहती है। (१०) लू के प्रभाव से काम के प्रभाव को विशेष बताने से व्यतिरेक है। शकुन्तला के स्थान पर युवतिषु कहने से अप्रस्तुत-प्रशंसा है। स्वस्थता के अभाव में भी कमनीयता के कारण विभावना है और साबाध कारण के होने पर भी सौन्दर्यनाश न होने से विशेषोक्ति है।

६. **प्रियंवदा**—(जनान्तिकम्) अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खल्वस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्। [ अणसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउन्दला। किं णु खु से तण्णिमित्तो अअं आतंको भवे।]

**प्रियंवदा**—(हाथ की ओट में) अनसूया, शकुन्तला ने जब से पहली बार

उस राजर्षि को देखा है, तब से वह खिन्न सी है। क्या इसकी यह अस्वस्थता उस (राजा) के कारण ही है?

७. **अनसूया**—सखि, ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु। प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। (प्रकाशम्) सखि, प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते सन्तापः। [सहि, ममवि ईदिसी आसंका हिअअस्स। होदु। पुच्छिस्सं दाव णं। सहि, पुच्छिदव्वासि किम्पि। बलवं खु दे संदावो।]

अनसूया—सखी, मेरे मन में भी ऐसा ही सन्देह है। अच्छा, इससे पूछती हूं। (प्रकट) सखी, तुमसे कुछ पूछना है। तुम्हारा सन्ताप वस्तुतः (बहुत) तीव्र है।

८. **शकुन्तला**—(पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, किं वक्तुकामासि। [हला, किं वत्तुकामासि।]

शकुन्तला—(ऊपर का आधा भाग विस्तर से उठाकर) सखी, क्या कहना चाहती हो?

९. **अनसूया**—हला शकुन्तले, अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि। कथय किंनिमित्तं ते सन्तापः। विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य। [हला सउन्दले, अणब्भन्तरा क्खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तन्तस्स। किं दु जादिसी इदिहासणिवन्धेसु कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि। कहेहि किणिमित्तं दे संदावो। विआरं क्खु परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो पडिआरस्स।]

अनसूया—सखी शकुन्तला, हम दोनों वस्तुतः काम-सम्बन्धी समाचारों से अनभिज्ञ हैं। किन्तु इतिहास की कथाओं में कामपीडितों की जैसी अवस्था सुनी जाती है, वैसी तुम्हारी (अवस्था) देख रही हूं। बताओ, तुम्हारे सन्ताप का क्या कारण है? वस्तुतः रोग को ठीक-ठीक जाने बिना उसकी चिकित्सा प्रारम्भ नहीं की जा सकती है।

**१०. राजा**——अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः । नहि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम् ।

**राजा**——मेरे वाला सन्देह अनसूया को भी हुआ है। मेरा विचार व्यक्तिगत अभिप्राय से नहीं था।

**११. शकुन्तला**——(आत्मगतम्) बलवान् खलु मेऽभिनिवेशः । इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम् । [बलवं क्खु मे अहिणिवेसो । दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कणोमि णिवेदिदुं ।]

**शकुन्तला**——(मन में) मेरी (राजा के प्रति) आसक्ति वस्तुतः बहुत तीव्र है। (किन्तु) अब भी सहसा इन दोनों को बताने में असमर्थ हूँ।

### टिप्पणी

( १ ) **पर्युत्सुका**—व्याकुल, खिन्न। ( २ ) **आतङ्कः**—रोग, सन्ताप। ( ३ ) **बलवान्०**—तुझे बुखार बहुत तेज है। ( ४ ) **सन्तापः**—दुःख या रोग। ( ५ ) **बलवान्**—तीव्र, उग्र। ( ६ ) **अनभ्यन्तरे**—अनभिज्ञ, अपरिचित। अभिगतः अन्तरम् अभ्यन्तरः, न अभ्यन्तरः अनभ्यन्तरः। (७) **मदन०**—कामसंबन्धी बातों से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। ( ८ ) **इतिहास०**—इतिहासस्य निबन्धेषु, तत्पुरुष। इतिहास की कहानियों में। इतिहास का लक्षण है—धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥ इतिहास—इति ह आस्ते अस्मिन् इति, इति+ह+आस। जिसमें प्राचीन घटनाओं का वर्णन है। ( ९ ) **विकारम्०**—रोग को ठीक जानें बिना चिकित्सा नहीं होती। (१०) **प्रतीकारः**—प्रति+कृ+घञ् (अ)। (११) **तर्कः**—मेरी वाली जिज्ञासा अनसूया को भी है। (१२) **दर्शनम्**—दृष्टि, विचार। यहाँ विचार अर्थ है। (१३) **अभिनिवेशः**—आग्रह, आसक्ति। यहाँ आसक्ति अर्थ है। अभिनिवेश का 'छिपाने का आग्रह' अर्थ लेना उचित नहीं है। वह अपने प्रेम को सहसा प्रकट करने में संकोच कर रही है।

**१२. प्रियंवदा**——सखि शकुन्तले, सुष्ठु एषा भणति । किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे । अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः । केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति । [सहि सउन्दले, सुट्ठु एषा भणादि । किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि । अणुदिअहं क्खु परिहीअसि अंगेहि । केवलं लावण्णमई छाया तुमं ण मुंचदि । ]

Funding by IKS-MoE

**प्रियंवदा**—सखी शकुन्तला, यह (अनसूया) ठीक कहती है। तू अपने रोग की उपेक्षा क्यों कर रही है? तू प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है, केवल सौन्दर्य की कान्ति तुझको नहीं छोड़ रही है।

१३. राजा—अवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि—

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥७॥

**अन्वय**—आननं क्षामक्षामकपोलम्, उरः काठिन्यमुक्तस्तनम्, मध्यः क्लान्ततरः, अंसौ प्रकामविनतौ, छविः पाण्डुरा। मदनक्लिष्टा इयं पत्राणां शोषणेन मरुता स्पृष्टा माधवी लता इव शोच्या च प्रियदर्शना च आलक्ष्यते।

**राजा—प्रियंवदा ने ठीक कहा है। क्योंकि—**

**इसके मुँह पर कपोल (गाल) अतिकृश हो गये हैं, छाती पर स्तन ढीले पड़ गये हैं, कटिभाग कृशतर हो गया है, कन्धे अत्यधिक झुक गये हैं और देह की कान्ति पीली पड़ गई है। काम-पीड़ित यह (शकुन्तला) पत्तों को सुखाने वाली हवा से छुई हुई माधवी (वासन्ती) लता के तुल्य शोचनीय और दर्शनीय दिखाई दे रही है॥७॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—आननं—मुखम्, क्षामक्षाम०—क्षामक्षामौ अतिकृशौ कपोलौ गण्डस्थलौ यस्मिन्, तथाविधं जातम्। उरः—वक्षःस्थलम्, काठिन्य०—काठिन्येन दृढतया मुक्तौ रहितौ स्तनौ कुचौ यत्र तथाविधं सम्पन्नम्। मध्यः—कटिभागः, क्लान्ततरः—क्षीणतरः जातः। अंसौ—स्कन्धौ, प्रकाम०—प्रकामम् अत्यधिकं विनतौ अवनतौ जातौ। छविः—शरीरकान्तिः, पाण्डुरा—पाण्डुवर्णा जाता। मदनक्लिष्टा—कामपीडिता, इयं—शकुन्तला, पत्राणां—दलानाम्, शोषणेन—शोषकेण, मरुता—वायुना, स्पृष्टा—बाधिता, माधवी लता इव—अतिमुक्तकव्रततिरिव, शोच्या च—शोचनीया, प्रियदर्शना च—मनोहारिणी च, आलक्ष्यते—दृश्यते। अत्र विरोधाभासः काव्यलिङ्गमुपमा चालङ्काराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

**(१) परिहीयसे अङ्गैः**—तुम्हारे अंग क्षीण हो रहे हैं। **(२) लावण्यमयी**

छाया—सौन्दर्य की कान्ति। उज्ज्वलनीलमणि में लावण्य का लक्षण दिया है—गुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥ (३) **अवितथम्**—सत्य। वितथ—असत्य, विगतं तथा सत्यं यस्मात् तत् वितथम्। न वितथम् अवितथम्। (४) **क्षामक्षाम०**—क्षामं क्षामं, प्रकारे गुणवचनस्य (८-१-१२) से द्वित्व, कर्मधारयवदुत्तरेषु (८-१-११) से कर्मधारयवत् कार्य होने से बीच की विभक्ति का लोप। प्रकार अर्थ में द्वित्व होने से यहाँ ईषत्क्षाम (कुछ कृश) अर्थ होना चाहिए, किन्तु द्वित्व आधिक्य अर्थ के भाव से ही है। अतः अतिकृश अर्थ लिया गया है। क्षामक्षामौ कपोलौ यस्मिन् तत्, बहु०। (५) **काठिन्य०**—काठिन्येन मुक्तौ स्तनौ यस्मिन् तत्, बहु०। स्तनों में कठिनता नहीं रही। (६) **छविः०**—कान्ति पीली पड़ गई है। (७) **मदनक्लिष्टा०**—कामदेव से पीडित है, अतः पीडित होने से शोचनीय और कामपीडित होने से दर्शनीय है, क्योंकि मदन अपनी मादकता उसमें रहने देता है। (८) यहाँ शोच्या और प्रियदर्शना में विरोधाभास है। शोच्या का अर्थ दयनीय होने से परिहार। मदनक्लिष्टा यह शोच्यत्व में कारण है, अतः काव्यलिंग है। माधवी लता इव में उपमा है।

**१४. शकुन्तला—सखि, कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि। किन्त्वायासयित्रीदानीं वां भविष्यामि।** [सहि, कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। किन्दु आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं।]

शकुन्तला—सखी, भला और किसको बताऊँगी? किन्तु अब मैं तुम लोगों के लिए कष्ट का कारण होऊँगी।

**१५. उभे—अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति।** [अदो एव्व क्खु णिब्बन्धो। सिणिद्धजणसंविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि।]

दोनों—अतएव यह आग्रह है। प्रियजनों में बँटा हुआ दुःख सह्य हो जाता है।

**१६. राजा—पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला**
**नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।**
**दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-**
**मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ॥८॥**

---

पाठभेद—१४. नि० किन्तु [किन्दु], इति नास्ति। १६. नि० निवृत्य (लौटकर)।

Funding by IKS-MoE

**अन्वय**—इयं बाला समदुःखसुखेन जनेन पृष्टा मनोगतम् आधिहेतुं न वक्ष्यति न। अनया बहुशः विवृत्यं सतृष्णं दृष्टः अपि अत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतः अस्मि।

**राजा—यह बालिका (शकुन्तला) सुख-दुःख के साथी व्यक्तियों से पूछी गई अपने मानसिक दुःख के कारण को नहीं बताएगी, ऐसा नहीं हो सकता। इसने बहुत बार पीछे मुड़कर तृष्णा के साथ (मेरी ओर) देखा, फिर भी मैं इस समय (इसका उत्तर) सुनने के लिए अधीर हो गया हूँ ॥८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—इयं बाला—शकुन्तला, समदुःखसुखेन—समं तुल्यं दुःखसुखं यस्य तेन, जनेन—सखीजनेन, पृष्टा—अनुयुक्ता सती, मनोगतम्—मनसि स्थितम्, आधिहेतुं—मानसिकदुःखकारणम्, न वक्ष्यति न—अवश्यमेव वदिष्यति। अनया—शकुन्तलया, बहुशः—अनेकवारम्, विवृत्य—मुखं परावृत्य, सतृष्णं—साभिलाषम्, दृष्टः अपि—अवलोकितोऽपि, अत्रान्तरे—अस्मिन्नवसरे, श्रवणकातरताम्—उत्तरश्रवणे व्याकुलताम्, गतोऽस्मि—प्राप्तोऽस्मि। काव्यलिङ्गमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **आयासयित्री**—कष्ट देनेवाली। आ+यस्+णिच्+तृच्+ङीप्। (२) **अतएव०**—इसीलिए आग्रह कर रही हैं कि तुम अवश्य सब बात ठीक-ठीक बताओ। (३) **स्निग्ध०**—स्निग्धजने संविभक्तम्, तत्पुरुष। प्रिय व्यक्तियों में बँटा हुआ दुःख सहन करने योग्य हो जाता है। सह्यवेदनम्—सह्या वेदना यस्य तादृशम्, बहु०। जिसकी पीड़ा सहन करने योग्य हो जाती है, ऐसा दुःख। प्रिय व्यक्ति दुःख के कारण को जानकर उसका निराकरण करते हैं या सान्त्वना देते हैं, इस प्रकार दुःखी को शान्ति मिलती है। इस भाव से मिलती हुई अन्य सूक्तियाँ ये हैं—(क) कस्य तावत् इमं वृत्तान्तं निवेद्य सह्यवेदनमिव दुःखं करिष्यामि। (प्रियदर्शिका ३), (ख) आवेदय ममात्मीयं पुत्रदुःखं सुदुःसहम्। मयि संक्रान्तमेतत्ते येन सह्यं भविष्यति ॥ (नागानन्द ५-६), (ग) तुल्याद् विभागादिव तन्मनोभिः दुःखातिभारोऽपि लघुः स मेने। (किराता० ३-३३)। (४) **सम०**—दुःखं च सुखं च तयोः समाहारः दुःखसुखम्, विप्रतिषिद्धं चानधि० (२-४-१३) से एकवचन। समं दुःखसुखं यस्य तेन, बहु०। सुख-दुःख के साथी। (५) **आधिहेतुम्**—मानसिक दुःख के कारण को। आधि का अर्थ है मानसिक दुःख। पुंस्याधिः मानसी व्यथा, इत्यमरः। (६) **न वक्ष्यति न**—दो न मिलकर स्वीकृतिसूचक हो जाते हैं। (७) **अत्रान्तरे०**—इस समय उसका उत्तर सुनने को अधीर हो गया हूँ। क्योंकि राजा के भविष्य का निश्चय उसी पर निर्भर है। (८) समदुःखसुख उत्तर-प्राप्ति का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**१७. शकुन्तला--सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः--(इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति)।** [ सहि, जदो पहुदि मम दंसणपहं आग्रदो सो तवोवणरक्खिदा राएसी--]

**शकुन्तला**--सखी, तपोवन के रक्षक वह राजर्षि जब से मेरी दृष्टि में आये हैं--(आधी बात कहकर ही लज्जा का अभिनय करती है)।

**१८. उभे--कथयतु प्रियसखी।** [कहेदु पिअसही।]

**दोनों**--कहो प्रियसखी।

**१९. शकुन्तला--तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थाऽस्मि संवृत्ता।** [ तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता।]

**शकुन्तला**--उसी समय से उनकी ओर इच्छा के कारण मेरी यह अवस्था हो गई है।

**२०. राजा--(सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्।**

**स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।**
**दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ॥९॥**

**अन्वय**--तपात्यये जीवलोकस्य अभ्रश्यामः दिवस इव, स्मरः एव मे तापहेतुः स एव निर्वापयिता जातः।

**राजा**--(हर्ष के साथ) जो सुनना था, (वह मैंने) सुन लिया।

ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर प्राणिवर्ग के लिए बादलों से काले दिन की तरह, कामदेव ही मेरे सन्ताप का कारण था, वही (अब) शान्तिप्रद हो गया है ॥९॥

**संस्कृत-व्याख्या**--तपात्यये--तपस्य ग्रीष्मस्य अत्यये अवसाने, जीवलोकस्य--प्राणिवर्गस्य, अभ्रश्यामः--अभ्रैः घनैः श्यामः कृष्णः, दिवस इव--दिनमिव, स्मरः एव--कामदेव एव, मे--मम दुष्यन्तस्य, तापहेतुः--सन्तापस्य कारणमासीत्, स एव--कामदेव एव, निर्वापयिता--शान्तिप्रदः, जातः--अभवत्। अयमाशयः--यथा वर्षर्तौ मेघाच्छन्नो दिवसो वृष्टेः प्राक् अतीव सन्तापकारको भवति, वृष्टयनन्तरं

---

पाठभेद--२०. नि० इवार्द्र० (जैसे [illegible]०)।

च शोभनः शान्तिप्रदश्च भवति, तथैव शकुन्तलावचनश्रवणात् पूर्वं कामो मां तापयति स्म, अधुना शान्तिहेतुश्च संवृत्तः । अत्र विरोधाभास उपमा चालङ्कारौ । आर्या जातिः ।

### टिप्पणी

( १ ) **दर्शनपथम्**—दृष्टिपथ में आया है । दर्शनस्य पन्थाः तम्, तत्पुरुष । यहाँ ऋक्पूरब्धूः० (५-४-७४) से समासान्त अ प्रत्यय । अतएव पथिन् के इन् का लोप । दर्शन+पथिन्+ अ । दर्शन—दृश्+ल्युट् (अन) । ( २ ) **श्रुतं०**—जो बात मैं सुनना चाहता था, वह सुनने को मिल गई । ( ३ ) **तापहेतुः**—तापस्य हेतुः, तत्पुरुष । इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक कामदेव के पक्ष में और दूसरा मेघाच्छन्न दिन के पक्ष में । '(क) वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में मेघाच्छन्न दिन वर्षा से पहले बहुत गर्म होने से ताप का कारण होता है और वर्षा होते ही सुखद हो जाता है । (ख) इसी प्रकार कामदेव शकुन्तला का उत्तर सुनने से पूर्व राजा के सन्ताप का कारण बना हुआ था, किन्तु उत्तर सुनते ही वही सुखदाता हो गया । ( ४ ) **निर्वापयिता**—शान्ति-प्रद । निर्+वा+णिच्+तृच् । ( ५ ) **अभ्रश्यामः**—अभ्रैः श्यामः, तत्पुरुष । बादलों से काला । ( ६ ) **तपात्यये**—तपस्य अत्यये, तत्पुरुष । ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर । तप—ग्रीष्म ऋतु, अत्यय–समाप्ति, नाश । अत्यय–अति+इ+अच् । पाठभेद–अभ्रश्यामः के स्थान पर अर्धश्यामः है । यह पाठ अधिक उपयुक्त नहीं है । अर्धश्यामः का भाव राघवभट्ट ने लिया है कि प्रातःकाल मेघरहित होने से अधिक गर्म और सायंकाल के समय मेघयुक्त होने से सुखद । इस पाठ में अर्ध-अश्याम का अर्थ और अर्धश्याम में श्याम होने का कारण ये दोनों बातें ऊपर से लगानी पड़ती हैं । ( ७ ) तापहेतुः और निर्वापयिता में विरोधाभास है । दो भिन्न अवस्थाओं में वह स्वरूप होने से परिहार है । ( ७ ) कालिदास ने यह भाव अन्यत्र भी वर्णन किया है–(क) मनो जह्रुः निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव । रघुवंश १०-८३ । (ख) नववारिधरोदयादहोभिः भवितव्यं च निरातपर्द्धिरम्यैः । विक्रमोर्व० ४-१४ ।

**२१. शकुन्तला—तद्यदि वामनुमतं, तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि । अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम् । [तं जइ वो अणुमदं, तह वट्टह जह तस्स राएसिणो अणुकम्पणिज्जा होमि । अण्णहा अवस्सं सिंचह मे तिलोदअं ।]**

---

पाठभेद २१—नि० तदा तथा [ता तह] (तो वैसा) ।

शकुन्तला--तो यदि तुम लोगों की अनुमति हो तो वैसा प्रयत्न करो जिससे मैं उस राजर्षि की कृपापात्र हो जाऊँ। नहीं तो अवश्य ही मेरे लिए तिलांजलि दो (अर्थात् मुझे मरा समझो और अन्त्येष्टि कार्य करो)।

२२. राजा--संशयच्छेदि वचनम्।

राजा—(इसका यह) वचन सन्देह को (सर्वथा) दूर करता है।

२३. प्रियंवदा--(जनान्तिकम्) अनसूये, दूरगतमन्मथाऽक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा, स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद् युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्। [अणसूए, दूरगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा एसा, स ललामभूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणन्दिदुं।]

प्रियंवदा--(हाथ की ओट में) अनसूया, इसका कामभाव बहुत बढ़ चुका है, अब यह विलम्ब को सहन करने में असमर्थ है। जिस पर इसकी आसक्ति है, वह पुरुवंशियों में सर्वश्रेष्ठ है। अतः उचित है कि इसकी इच्छा का समर्थन किया जाय।

२४. अनसूया--तथा यथा भणसि। [तह जह भणासि।]

अनसूया--जैसा तुम कहती हो, ठीक है।

२५. प्रियंवदा--(प्रकाशम्) सखि, दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। [सहि, दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। को दाणिं सहआरं अन्तरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि।]

प्रियंवदा--(प्रकट) सखी, भाग्य से तुम्हारी छाँट (तुम्हारे) योग्य (व्यक्ति पर) ही है। बड़ी नदी समुद्र को छोड़कर और कहाँ उतरती है (जाती है)? आम को छोड़कर और कौन (वृक्ष) पल्लवित अतिमुक्त (माधवी) लता को सहारा दे सकता है?

२६. **राजा**—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखाऽनुवर्तेते ।

राजा—इसमें आश्चर्य की क्या बात है, यदि दोनों विशाखा-नक्षत्र चन्द्रलेखा का अनुसरण करते हैं ?

२७. **अनसूया**—कः पुनरुपायो भवेद् येनाविलम्बितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः ।[ को उण उवाओ भवे जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीए मणोरहं संपादेम्ह ।]

अनसूया—क्या उपाय हो सकता है कि शीघ्र और गुप्तरूप से सखी का मनोरथ पूर्ण हो सके ?

२८. **प्रियंवदा**—निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत् । शीघ्रमिति सुकरम् । [णिहुअं त्ति चिन्तणिज्जं भवे । सिग्घं त्ति सुअरं ।]

प्रियंवदा—'गुप्तरूप से' यह सोचने की बात है। 'शीघ्र' यह सुकर है।

२९. **अनसूया**—कथमिव । [कहं विअ ।]

अनसूया—कैसे ?

### टिप्पणी

( १ ) **तिलोदकम्**—तिलमिश्रित जलाञ्जलि मृतकों को देने की सनातनी प्रथा है। यहाँ भाव है कि यदि राजा नहीं मिलेंगे तो मैं मर जाऊँगी। ( २ ) **संशय०**—शकुन्तला के इस कथन से सब सन्देह दूर हो गए हैं। ( ३ ) **दूरगत०**—इसका कामभाव बहुत बढ़ गया है, अतः थोड़े भी विलम्ब से अनर्थ हो सकता है। ( ४ ) **अभिनन्दितुम्०**—इसके उचित स्वयंवर के लिए इसको बधाई देनी चाहिए। ( ५ ) **अभिनिवेशः**—आग्रह। यहाँ पर छाँट अर्थ है, क्योंकि उसी के वरण करने का आग्रह है। ( ६ ) **सागरम्०**—समुद्र के पास ही बड़ी नदी जाती है। ऐसे भाव के लिए देखो रघु० ६.८५, जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्याऽवतीर्णा। (७) **अतिमुक्तलताम्**—माधवी लता को। ( ८ ) **विशाखे**—विशाखा में दो नक्षत्र हैं। यहाँ भाव है—जिस प्रकार दोनों विशाखा नक्षत्र चन्द्रमा की लेखा का अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार दोनों अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला का अनुसरण कर रही हैं। विशाखे स्त्रीलिंग द्विवचन है, चन्द्रलेखा स्त्रीलिंग एकवचन। इसी प्रकार अनसूया—प्रियंवदा स्त्रीलिंग हैं और शकुन्तला भी स्त्रीलिंग है।

३०. **प्रियंवदा**——ननु स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते। [णं सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो इमाइं दिअहाइं पजाअरकिसो लक्खीअदि।]

**प्रियंवदा**—क्योंकि उस राजर्षि ने इस (शकुन्तला) पर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखकर अपनी अभिलाषा सूचित की है और इन दिनों रात्रि-जागरण के कारण कृश दिखाई पड़ते हैं।

३१. **राजा**——सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथाहि——

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद् विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।।१०।।

**अन्वय**—निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः अन्तस्तापात् अशिशिरैः अश्रुभिः विवर्णमणीकृतं मणिबन्धनात् स्रस्तं स्रस्तम् इदं कनकवलयं मया अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुः प्रतिसार्यते।

**राजा**——वस्तुतः ऐसा ही हो गया हूँ। क्योंकि——

प्रत्येक रात्रि में (बाईं) भुजा पर रखे हुए नेत्र के कोण से बहने वाले तथा आन्तरिक सन्ताप के कारण उष्ण अश्रुओं से जिसकी मणियाँ निष्प्रभ हो गई हैं और कलाई से बार-बार (कोहनी की ओर) सरके हुए इस सुवर्णकंकण को मैं प्रत्यंचा के आघात के चिह्नों को न रगड़ते हुए बारबार यथास्थान पहुँचाता हूँ ।।१०।।

**संस्कृत-व्याख्या**—निशि निशि—प्रतिरात्रम्, भुज०—भुजे वामबाहौ न्यस्तात् स्थापितात् अपाङ्गात् नेत्रान्तात् प्रसारिभिः निर्गच्छद्भिः, अन्तस्तापात्—कामकृतमानसिकसन्तापात्, अशिशिरैः—उष्णैः, अश्रुभिः—नेत्रजलैः, विवर्ण०—विवर्णाः निष्प्रभाः मणयः रत्नानि यस्मिन् तत् विवर्णमणि तद्वत् विहितम्, मणिबन्धनात्—करमूलात्, स्रस्तं स्रस्तं—पुनः पुनः गलितम्, इदं कनकवलयम्—एतत् सुवर्णकङ्कणम्, मया—दुष्यन्तेन, अनभि०—अस्पृष्टगुणाघातचिह्नं यथा स्यात्तथा, मुहुः—पुनः पुनः प्रतिसार्यते—स्वस्थानं प्राप्यते। अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। हरिणी वृत्तम।

### टिप्पणी

( १ ) **ननु**—यह प्रश्नसूचक अव्यय है। क्योंकि अथवा क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है? ( २ ) **प्रजागर०**—प्रजागरात् कृशः। रात्रिजागरण के कारण कृश। ( ३ ) **अन्तस्तापात्०**—कामदेव के प्रभाव के कारण मानसिक सन्ताप था, अतः आँसू भी गर्म निकलते थे। ( ४ ) **विवर्ण०**—विवर्णाः मणयः यस्मिन् तत् विवर्णमणि, वहुव्रीहि। अतथा तथा कृतमिति विवर्णमणीकृतम्, च्विप्रत्यय। जिसकी मणियाँ कान्तिहीन हो गई हैं। ( ५ ) **भुज०**—भुजे न्यस्तात् अपाङ्गात् प्रसारिभिः, तत्पुरुष। बाँए हाथ पर रखे हुए नेत्र के छोर से निकलते हुए। ( ६ ) **अनभि०**—अनभिलुलितः ज्यायाः आघातस्य अङ्कः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा। तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। प्रत्यंचा के घाव के चिह्न को स्पर्श न करते हुए। ( ७ ) इस श्लोक के अर्थ पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अन्तिम दो पंक्तियों के अर्थ पर विवाद है। एक मत यह है कि राजा रात्रि में नींद न आने से बैठकर चिन्ता करता था। बाँए हाथ की हथेली पर उसका मुँह रहता था। वह इतना कृश हो गया था कि कलाई में पहना हुआ सुवर्णकंकण सरक कर कोहनी के पास तक पहुँच जाता था और वह उसे फिर कलाई पर पहुँचाता था। कलाई और कोहनी के बीच में प्रत्यंचा के घाव के चिह्न थे। कृशता इतनी बढ़ गई थी कि कंकण उन घाव-चिह्नों को बिना रगड़े हुए ऊपर नीचे आ जा सकता था। हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ मुँह का सहारा बना हुआ था, अतः कंकण कोहनी की ओर सरकता था। ठीक स्थान पर रखने के लिए वह बारबार कलाई पर लाता था। दूसरा मत है कि हाथ उठा हुआ नहीं था। चलते-फिरते भी कंकण नीचे की ओर अँगुलियों के पास आ जाता था या भूमि पर गिर जाता था और वह उसे ऊपर पहुँचा देता था। यहाँ पर पहला अर्थ ग्रहण किया गया है, क्योंकि अनभि० इत्यादि का अर्थ तभी सार्थक होता है। प्रत्यंचा के घाव के चिह्न कलाई और कोहनी के मध्य में होते हैं। अतः ऊपर की ओर सरकने पर ही उनसे रगड़ने का प्रश्न उठता है। राजा हाथ पर मुँह रखे बैठा है, उस स्थिति का वर्णन है। अतः हाथ ऊपर उठा हुआ ही होगा। कृशता की अधिकता का भाव भी कलाई से ऊपर के भाग की कृशता बताने से अधिक स्पष्ट होता है। इस श्लोक में मणिबन्ध का अभिप्राय प्रकोष्ठ (कलाई) है, वहीं पर कंकण पहना जाता है।

**३२. प्रियंवदा—(विचिन्त्य) हला, मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवप्रसादस्यापदेशेन तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि। [हला, मअणलेहो से करीअदु। तं सुमणोगोविदं करिअ देवप्पसादस्सावदेसेण से हत्थअं पावइस्सं।]**

Funding by IKS-MoE

पाठभेद—३२. नि० इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा [इमं देवप्पसा-

प्रियंवदा—(सोचकर) सखी, उनके लिए एक प्रणय-पत्र (इससे) लिखवाओ। उसको फूलों में छिपाकर देवता के प्रसाद के बहाने उनके पास पहुँचा दूंगी।

३३. अनसूया—रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति। [रोअइ मे सुउमारो पओओ। किं वा सउन्दला भणादि।]

अनसूया—मुझे यह सुन्दर उपाय पसन्द है। किन्तु शकुन्तला क्या कहती है?

३४. शकुन्तला—किं नियोगो वां विकल्प्यते। [किं णिओओ वो विकप्पीअदि।]

शकुन्तला—क्या आप लोगों की आज्ञा टाल सकती हूँ?

३५. प्रियंवदा—तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावत् किमपि ललितपदबन्धनम्। [तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि दाव किम्पि ललिअपदबन्धणं।]

प्रियंवदा—तो अपने नामोल्लेखपूर्वक एक सुन्दर पद्य सोचो।

३६. शकुन्तला—हला, चिन्तयास्यहम्। अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्। [हला, चिन्तेमि अहं। अवहीरणाभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं।]

शकुन्तला—सखी, मैं सोचती हूँ। किन्तु तिरस्कार के भय से मेरा हृदय काँप रहा है।

३७. राजा—(सहर्षम्)

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥११॥

---

दस्तावदेसेण सुमणोगोविदं करिअ] (इसको देवता के प्रसाद के बहाने फूलों से ढककर)।

पाठभेद—३५. नि० किमपि [किम्पि], इति नास्ति।

**अन्वय**—भीरु, यतः अवधीरणां विशङ्कसे, सः अयं ते संगमोत्सुकः तिष्ठति। प्रार्थयिता श्रियं लभेत न वा, श्रिया ईप्सितः कथं दुरापः भवेत्।

**राजा**—(हर्ष के साथ) हे भीरु, जिससे तू तिरस्कार की आशंका करती है, वह यह (दुष्यन्त) तेरे मिलन के लिए उत्कंठित खड़ा है। प्रार्थी व्यक्ति लक्ष्मी को पावे या न पावे, (किन्तु) लक्ष्मी के द्वारा प्रार्थित (व्यक्ति लक्ष्मी के लिए) कैसे दुर्लभ हो सकता है? ॥११॥

**संस्कृत-व्याख्या**—भीरु—हे भयशीले, यतः—यस्मात् जनात्, अवधीरणां—तिरस्कारम्, विशङ्कसे—आशङ्कसे, सोऽयम्—दुष्यन्तः, ते—तव, संगमोत्सुकः—समागमलालसः, तिष्ठति—स्थितोऽस्ति। प्रार्थयिता—प्रार्थी जनः, श्रियं—लक्ष्मीम्, लभेत—प्राप्नुयात्, न वा—न प्राप्नुयाद् वा। किन्तु, श्रिया—लक्ष्म्या, ईप्सितः—प्राप्तुमिष्टः जनः, कथं—केन प्रकारेण, दुरापः—दुर्लभः, भवेत्—स्यात्। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **मदनलेखः**—प्रेमपत्र, जिसमें अपनी कामभावना का उल्लेख हो। स्त्रियों की भावाभिव्यक्ति के चार प्रकार हैं, उनमें से यह एक है। वे चार प्रकार हैं—१. प्रेमपत्र भेजना, २. प्रेमपूर्वक देखना, ३. मीठी बातें, ४. दूती को भेजना। नाटचशास्त्र में कहा है—लेख्यप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः। दूतीसंप्रेषणैर्नार्या भावाभिव्यक्तिरिष्यते॥ (२) **देवप्रसाद०**—देवता को पूजा में चढ़ाए हुए फूलों का यह उपहार है, यह कहकर। (३) **सुकुमारः०**—कोमल उपाय। (४) **उपन्यास०**—उपन्यास का अर्थ है पास में रखना, प्रस्तुत करना। यहाँ उल्लेख अर्थ है। अपना उल्लेख करते हुए। (५) **ललित०**—सुन्दर कविता। (६) **अवधीरणा०**—कहीं मेरा तिरस्कार न कर दें, इससे भयभीत। (७) **संगमो०**—संगमे उत्सुकः, तत्पुरुष। मिलन के लिए उत्कंठित। उत्सुक के साथ सप्तमी और तृतीया दोनों होती हैं। (८) **यतः**—जिससे, जिस व्यक्ति से। (९) **प्रार्थयिता०**—चाहने वाले को लक्ष्मी मिले या न मिले, दोनों ही बातें संभव हैं। (१०) **श्रिया०**—लक्ष्मी जिस पर कृपा करनी चाहे, वह दुर्लभ कैसे हो सकता है, क्योंकि लक्ष्मी के प्रार्थी सभी रहते हैं। शकुन्तला भी लक्ष्मी है। (११) **दुरापः**—दुर्+आप्+खल् (अ)। (१२) **ईप्सितः**—आप्+सन्+क्त। आप् का सन्प्रत्यय का रूप है।

**३८. सख्यौ—अयि आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति।**

---

पाठभेद—३८. नि० अयि [अयि], इति नास्ति।

[अयि अत्तगुणावमाणिणि, को दाणिं सरीरणिव्वावइत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडन्तेण वारेदि ।]

दोनों सखियाँ—ओ अपने गुणों का तिरस्कार करने वाली, भला कौन शरीर को शान्ति प्रदान करने वाली शरत्काल की चाँदनी को (अपने) वस्त्र के छोर से रोकता है ?

**३९. शकुन्तला—(सस्मितम्) नियोजितेदानीमस्मि । [णिओइआ दाणिं म्हि ।] (इत्युपविष्टा चिन्तयति ।)**

**शकुन्तला—(मुस्कराकर) तो मैं अब (इस काम में) लगती हूँ । (बैठकर सोचती है ।)**

**४०. राजा—स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि । यतः—**

**उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।**
**कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥१२॥**

**अन्वय**—पदानि रचयन्त्याः अस्याः उन्नमितैकभ्रूलतम् आननं कण्टकितेन कपोलेन मयि अनुरागं प्रथयति ।

**राजा—यह उचित है कि निर्निमेष (अपलक) दृष्टि से अपनी प्रिया को देखूं । क्योंकि—**

**(कविता के) पदों को बनाती हुई इसका, उठाई हुई एक भौं से युक्त, मुंह रोमांचित कपोल से मेरे प्रति अनुराग प्रकट कर रहा है ॥१२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—पदानि—छन्दःपादान्, रचयन्त्याः—निबध्नन्त्याः, अस्याः—शकुन्तलायाः, उन्नमितैकभ्रूलतम्—उत्थापितैकभ्रकुटियुक्तम्, आननं—मुखम्, कण्टकितेन—रोमाञ्चितेन, कपोलेन—गण्डस्थलेन, मयि—दुष्यन्ते, अनुरागं—स्नेहम्, प्रथयति—प्रकटीकरोति । अत्रानुमानमलङ्कारः । क्रमो नाम गर्भ-सन्ध्यङ्गं चास्ति । आर्या जातिः ।

### टिप्पणी

( १ ) **आत्मगुणा०**—तू अपने गुणों का तिरस्कार कर रही है अर्थात् तू अपने सौन्दर्य आदि गुणों का पूरा मूल्य नहीं आँक रही है । (२) **शरीर०**—शरीर को शान्ति देने वाली शरत्कालीन चाँदनी को सभी प्रेम से चाहते हैं, कोई उसको हटाता नहीं है । इसी प्रकार तू भी सर्वत्र आदरणीय है । (३) **नियोजितास्मि**—

आप लोगों के द्वारा काम पर लगाई गई हूँ, अर्थात् आप लोगों के कहने से इस काम को करती हूँ। (४) **स्थाने**—उचित है। राजा को अब अधिकार है कि वह शकुन्तला को अपनी समझ कर प्रेम से देखे। (५) **विस्मृत०**—निर्निमेष, अपलक, पलक न मारते हुए। (६) **उन्नमितैक०**—उन्नमिता एका भ्रूलता यस्मिन् तत्, बहु०। एक भौं-रूपी लता जिसमें उठाई हुई है, ऐसा मुख। (७) **पदानि**—किसी श्लोक या छन्द के चतुर्थांश को पद या चरण कहते हैं। (८) **कण्टकितेन**—रोमाञ्चित। कण्टक+इतच् (इत)=कण्टकित। तारकादित्वात् इतच्। (९) **अनुरागम्**—प्रेम। अनुराग रति की छठी अवस्था है। ६ अवस्थाएँ ये हैं—अङ्कुरपल्लव-कलिकाप्रसूनफलभोगभागियं क्रमशः। प्रेमा मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुराग इत्युक्तः।। (सुधाकर)। अनुराग का लक्षण सुधाकर में है–राग एव स्वसंवेद्यदशाप्राप्त्या प्रकाशितः। यावदाश्रयवृत्तिश्चेदनुराग इतीरितः।। (१०) यहाँ पर व्याप्तिनिर्देशपूर्वक अनुराग का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (६-९७) में क्रम नामक गर्भसंधि के अंग का यह श्लोक उदाहरण दिया है। क्रम का लक्षण है—भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रमः स्यात्। यहाँ पर अनुरागरूपी भाव का तात्त्विक ज्ञान है, अतः क्रम है।

**४१. शकुन्तला—हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। असंनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि।** [हला, चिन्तिदं मए गीदवत्थु। असण्णिहिदाणि उण लेहणसाहणाणि।]

**शकुन्तला—सखी, मैंने पद्य का भाव सोच लिया है। किन्तु लेखन-सामग्री यहाँ विद्यमान नहीं हैं।**

**४२. प्रियंवदा—एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।** [इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि।]

**प्रियंवदा—तोते के पेट के तुल्य कोमल इस कमल-पत्र पर नाखूनों से अक्षरों को अंकित कर दो।**

**४३. शकुन्तला—(यथोक्तं रूपयित्वा) हला, शृणुतेदानीं संगतार्थं न वेति।** [हला, सुणुद दाणिं संगदत्थं ण वेति।]

---

पाठभेद—४१. नि० न खलु संनिहितानि [ण खु सण्णिहिदाणि] (पास में नहीं हैं)।

**शकुन्तला**—(पूर्वोक्तरूप से लिखने का नाट्य करके) सखियो सुनो, (देखो) इसका भाव ठीक है या नहीं ?

४४. **उभे**—अवहिते स्वः। [अवहिदे म्ह।]

**दोनों**—हम सावधान हैं।

४५. **शकुन्तला**—(वाचयति)

**तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्रावपि।**
**निर्घृण, तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया अङ्गानि ॥१३॥**

[तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवावि रत्तिम्पि।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं॥]

**अन्वय**—निर्घृण, तव हृदयं न जाने, त्वयि वृत्तमनोरथायाः मम अङ्गानि मदनः दिवा अपि रात्रौ अपि बलीयः तपति।

**शकुन्तला—(बाँचती है) हे निर्दय, मैं तुम्हारे हृदय को नहीं जानती, किन्तु तेरी ओर अभिलाषायुक्त मेरे अंगों को कामदेव दिन-रात बहुत अधिक तपा रहा है ॥१३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—निर्घृण—हे निर्दय, तव—नृपस्य, हृदयं—मनः, न जाने—न जानामि, त्वयि—तव विषये, वृत्त०—वृत्तः संजातः मनोरथः अभिलाषः यस्याः तादृश्याः, मम—शकुन्तलायाः, अङ्गानि—शरीरावयवान्, पुनः—तर्हि, मदनः—कामः, दिवा अपि—दिवसेऽपि, रात्रौ अपि—निशायामपि, बलीयः—अत्यधिकम्, तपति—पीडयति। अत्रानुमानमर्थापत्तिः श्लेषश्चालंकाराः। वज्रनामकं प्रतिमुख-सन्ध्यङ्गं चास्ति। उद्गाथा वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **लेखनसाधनानि**—लिखने की सामग्री—कागज, लेखनी आदि। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास से बहुत पूर्व लेखनकला विद्यमान थी। वर्ण का अर्थ रंग है, अर्थात् रंग से लिखे जाने वाले अक्षर। यह भी इसी की पुष्टि करता है। पाणिनि का इन्द्रवरुण० (४-१-४९) सूत्र तथा कात्यायन का 'यवनाल्लिप्याम्' वार्तिक सिद्ध करता है कि ८०० ई० पू० से पूर्व लेखनकला विद्यमान थी, अतः लिपि शब्द का प्रयोग किया है। (२) **निक्षिप्त०**—अक्षरों को लिख दो। (३) **संगतार्थम्०**—इसका भाव ठीक है या नहीं। संगत—उचित, अनुकूल। (४) **न जाने०**—तेरे हृदय का पता नहीं कि उसकी

---

**पाठभेद**—४५. नि० वृत्तमनोरथान्यङ्गानि (तेरी ओर लगे हुए अंगों को)

क्या अवस्था है ? अथवा यह भी भाव हो सकता है कि तेरे हृदय का पता नहीं कि उसका झुकाव मेरी ओर है या नहीं ? ( ५ ) **निर्घृण**—निर्दय। मेरी यह अवस्था देखकर भी मेरी ओर तेरा ध्यान नहीं है, अतः निर्दय है। (६) **वृत्तमनोरथायाः**—मेरी सब अभिलाषाएँ तेरी ओर लगी हुई हैं। (७) यदि तेरे अंग भी सन्तप्त हैं, तो आलिंगनार्थ आ, यह अनुमान होने से अनुमानालंकार है। तव हृदयं० से भाव व्यक्त किया है कि तेरे हृदय में उत्कण्ठा का अभाव है, अतः अर्थापत्ति है। काम का कामदेव और अभिलाषा दोनों अर्थ लेने से श्लेष है।

**४६. राजा——(सहसोपसृत्य)**

**तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।**
**ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ।।१४।।**

**अन्वय**—तनुगात्रि, मदनः अनिशं त्वां तपति, मां पुनः दहति एव। दिवसः यथा शशाङ्कं ग्लपयति, कुमुद्वतीं न हि तथा।

**राजा—(सहसा पास में जाकर) हे कृशाङ्गी, कामदेव सदा तुझको तपाता है, किन्तु मुझको तो वह जलाता ही है। दिन जितना चन्द्रमा को निष्प्रभ बना देता है, उतना कुमुदिनी को नहीं ।।१४।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे तनुगात्रि—कृशाङ्गि, मदनः—कामः, अनिशं—सततम्, त्वां—शकुन्तलाम्, तपति—पीडयति, मां—दुष्यन्तम्, पुनः—तु, दहति एव—भस्मीकरोत्येव। दिवसः—दिनम्, यथा—येन रूपेण, शशाङ्कं—चन्द्रम्, ग्लपयति—ग्लानिं नयति, कुमुद्वतीं—कुमुदिनीम्, न हि तथा—न तेन प्रकारेण ग्लानिं प्रापयति। अत्र दृष्टान्तः काव्यलिङ्गं विरोधाभासः पुनरुक्तवदाभासः समासोक्तिश्चालङ्काराः। आर्या जातिः।

**४७. सख्यौ——(विलोक्य सहर्षमुत्थाय) स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य। [ साअदं अविलम्बिणो मणोरहस्स। ]**

**(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति ।)**

**दोनों सखियाँ—(देखकर हर्ष के साथ उठकर) अविलम्ब उपस्थित हुए मनोरथ (आप) का स्वागत है। (शकुन्तला खड़ी होना चाहती है।)**

**४८. राजा——अलमलमायासेन ।**

**सन्दष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि ।**
**गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ।।१५।।**

---

पाठभेद—४७. नि० सहर्षम् (हर्ष के साथ)।

**अन्वय**—सन्दष्टकुसुमशयनानि आशुक्लान्तविसभङ्गसुरभीणि गुरुपरितापानि ते गात्राणि उपचारं न अर्हन्ति।

**राजा—कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। फूलों की शय्या को पीड़ित करने वाले, शीघ्र ही मुरझाए हुए कमलनाल के टूटने से सुगन्धित, अतिसन्तप्त तुम्हारे अङ्ग शिष्टाचार-प्रदर्शन के योग्य नहीं हैं ॥१५॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—सन्दष्ट०—सन्दष्टं पीडितं कुसुमानां पुष्पाणां शयनं शय्या यैः तानि, आशु०—आशु शीघ्रं क्लान्तः म्लानः विसभङ्गः कमलनालविच्छेदः तेन सुरभीणि सुगन्धीनि, गुरुपरितापानि—अतिसन्तप्तानि, ते—तव, गात्राणि—शरीरावयवाः, उपचारं—शिष्टाचारप्रदर्शनम्, न अर्हन्ति—न क्षमन्ते। अत्र काव्यलिङ्गं परिकरश्चालङ्कारौ। आर्या जाति।

### टिप्पणी

( १ ) **तपति**—यहाँ पर तपति और दहति के अन्तर पर ध्यान दें। राजा का कथन है कि कामदेव तुझे तपाता है, पर मुझे तो वह जलाता है। अर्थात् मुझे अधिक दुःख देता है और तुम्हारे मिलन के विना मृतप्राय हो रहा हूँ। ( २ ) **ग्लपयति०**—दिन में कुमुदिनी केवल मुरझा जाती है, परन्तु चन्द्रमा का तो अस्तित्व ही प्रायः समाप्त हो जाता है। यहाँ पर राजा ने अपने आप को चन्द्रमा और शकुन्तला को कुमुदिनी माना है। कुमुदिनी चन्द्रोदय होने पर खिलती है। (३) यहाँ पर दोनों वाक्यों में विम्ब-प्रतिविम्बभाव होने से दृष्टान्त अलंकार है। कृशगात्र होने और स्त्री होने से काम तपाता है। दोनों कारणों से काव्यलिंग है। मदन का अर्थ सुखदायक भी है, वह ताप का कारण होने से विरोधाभास है। मदयतीति मदनः—आनन्दप्रद। काम अर्थ होने से परिहार। तनु और गात्र दोनों का शरीर अर्थ है, अतः तनुगात्रि में पुनरुक्तवदाभास है। यहाँ तनु का अर्थ कृश है। चन्द्र और कुमुदिनी में नायक-नायिका का संकेत होने से समासोक्ति है। मनोरथस्य—यहाँ पर लक्षणा से मनोरथ का अभीष्ट व्यक्ति अर्थात् राजा अर्थ है। (४) **सन्दष्ट०**—सन्दष्ट शब्द का अर्थ है लगा हुआ, मिला हुआ। यहाँ पर लाक्षणिक अर्थ पीडित लिया गया है। फूल की शय्या अंगों में लगी होने से दब गई है और मुरझा गई है। यही कवि का अभिप्रेत अर्थ है। देखो आगे श्लोक २३ में शरीरलुलिता शब्द। सन्दष्टं कुसुमानां शयनं यैः तानि, बहु०। (५) **आशु०**—आशु क्लान्तेन विसभङ्गेन सुरभीणि, तत्पुरुष। तुरन्त मुरझाए हुए कमलनाल के टूटने से सुगन्धित। ( ६ ) **गुरु०**—गुरुः परितापः येषु तानि, बहु०। अत्यधिक सन्तापयुक्त। ( ७ ) **उपचारम्**—सामान्य शिष्टाचार के प्रदर्शन की क्षमता उनमें नहीं है। ( ८ ) इस श्लोक में उत्तरार्ध के प्रति पूर्वार्ध कारण है, अतः काव्यलिंग है। साभिप्राय विशेषणों के कारण परिकर है :

**४९. अनसूया**—इतः शिलातलैकदेशमलंकरोतु वयस्यः। [इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो।]

(राजोपविशति। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति।)

अनसूया—प्रियमित्र, आप इधर शिलातल के एक भाग को अलंकृत कीजिए। (राजा बैठता है। शकुन्तला लज्जित हो जाती है।)

**५०. प्रियंवदा**—द्वयोरपि युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्मां पुनरुक्तवादिनीं करोति। [दुवेणं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण मं पुणरुत्तवादिणिं करेदि।]

प्रियंवदा—आप दोनों का परस्पर प्रेम दोनों को ही प्रत्यक्ष है। तथापि सखी के प्रति स्नेह मुझे उसी बात को फिर कहने के लिए बाध्य कर रहा है।

**५१. राजा**—भद्रे, नैतत् परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

राजा—भद्रे, उसे न रोकिए। क्योंकि जो बात कहना चाहते हैं, वह न कही जाय तो पश्चात्ताप का कारण होती है।

**५२. प्रियंवदा**—आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः। [आवण्णस्स विसअणिवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो।]

प्रियंवदा—यह आप राजाओं का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य के अन्दर रहने वाले आपत्तिग्रस्त व्यक्ति की आपत्ति को दूर करें।

**५३. राजा**—नास्मात् परम्।

राजा—इससे बढ़कर और कोई (कर्तव्य) नहीं है।

**५४. प्रियंवदा**—तेन हीयमावयोः प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्या

---

पाठभेद—५०. नि० पुनः (उण), इति नास्ति। ५२. नि० युष्माकम् (तुम्हारा)।

Funding by IKS-MoE

**जीवितमस्या अवलम्बितुम्।** [ तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थन्तरं भअवता मअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदुं।]

**प्रियंवदा—तो हम लोगों की इस प्रियसखी को आपके कारण ही भगवान् कामदेव ने इस शोचनीय अवस्था को पहुँचाया है। अतः उचित है कि आप अनुग्रह करके इसके जीवन की रक्षा करें।**

**५५. राजा—भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः। सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि।**

**राजा—भद्रे, यह प्रार्थना (दोनों ओर से ही) समान है। मैं सर्वथा (आपका) अनुगृहीत हूँ।**

### टिप्पणी

( १ ) **वयस्य**—अनसूया का नया संबोधन ध्यान देने योग्य है। राजा ने अपनी विवाह की स्वीकृति दे दी है। अतः सखी शकुन्तला का पति भी वयस्य अर्थात् मित्र हो गया है। ( २ ) **अन्योन्या०**—अन्यस्मिन् अन्यस्मिन् इति अन्योन्यम्। यहाँ कर्मव्यतिहार अर्थात् पारस्परिक आदान-प्रदान अर्थ में कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे० (वार्तिक) से द्वित्व और असमासवद्भाव, असमासवद्भावे (वार्तिक) से प्रथमपद में स्। अन्य+अन्य—अन्योन्य। अन्योन्यस्मिन् अनुरागः, तत्पुरुष। पारस्परिक प्रेम। अनुराग—अनु+रञ्ज्+घञ्। ( ३ ) **द्वयोः**—द्वयोरपि का संबन्ध प्रत्यक्ष से है। अतः अर्थ होगा कि आप दोनों का परस्पर प्रेम है, यह आप दोनों को ही प्रत्यक्ष है। अन्यथा द्वयोरपि के विना भी काम चल जाता। युवयोः से द्विवचन का अर्थ निकल जाता। ( ४ ) **पुनरुक्त०**—पुनरुक्तं वदतीति, साधुकारी अर्थ में णिनि, पुनरुक्त+वद्+णिनि। पुनरुक्त—उसी बात को कहना या दुहराना। ( ५ ) **नैतत्०**—जो कहना है, उसे मत रोको। विवक्षितम्—जो कहना अभीष्ट है। ब्रू+सन्+क्त—विवक्षित। अनुताप—पश्चात्ताप। ( ६ ) **आपन्नस्य**—आपत्तिग्रस्त को। आपन्न—आ+पद्+क्त। विषयनिवासिनः—विषय का अर्थ प्रदेश है। यहाँ राज्य अर्थ है। धर्म—कर्तव्य। ( ७ ) **नास्मात् परम्**—अर्थात् इससे बढ़कर और कोई राजा का कर्तव्य नहीं है। ( ८ ) **भगवता**—कामदेव के साथ भगवान् विशेषण सार्थक है। वह सर्वशक्तिमान् है, अतः शकुन्तला उसके प्रभाव से नहीं बच सकी। (९) **अवस्थान्तरम्**—इस दयनीय दशा को, परिवर्तित अवस्था को। (१०) **अभ्युपपत्त्या**—अनुग्रह के द्वारा। (११) **जीवितम्०**—जीवन की रक्षा करना। (१२) **साधारणः**—यह प्रार्थना दोनों ओर से ही समान है। तुम्हारी

सखी की रक्षा के लिए मैं अनुग्रह करूं और मेरी रक्षा के लिए तुम्हारी सखी अनुग्रह करे।

**५६. शकुन्तला--(प्रियंवदामवलोक्य) हला, किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन।** [ हला, किं अन्तेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण। ]

**शकुन्तला--(प्रियंवदा की ओर देखकर) सखी, अपने अन्तःपुर की स्त्रियों के विरह से खिन्न राजर्षि को क्यों रोकती हो?**

**५७. राजा--**

**इदमनन्यपरायणमन्यथा**
**हृदयसन्निहिते हृदयं मम।**
**यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे**
**मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥१६॥**

**अन्वय**--मदिरेक्षणे हृदयसन्निहिते, इदम् अनन्यपरायणं मम हृदयं यदि अन्यथा समर्थयसे, मदनबाणहतः पुनः हतः अस्मि।

**राजा--हे मादक नेत्रों वाली तथा मेरे हृदय में विराजमान, तू इस अनन्यभक्त मेरे हृदय को यदि उलटा समझती है तो काम के बाणों से मारा हुआ मैं फिर मारा जाऊंगा ॥१६॥**

**संस्कृत-व्याख्या**--मदिरेक्षणे--हे मादकलोचने, हृदय०--हृदये मनसि सत् सम्यक्तया निहिते प्रतिष्ठिते हे हृदयसुप्रतिष्ठिते, इदम्--एतत्, अनन्य०--न अन्यत् कलत्रं परायणम् आश्रयः यस्य तत्, मम--दुष्यन्तस्य, हृदयं--मानसम्, यदि अन्यथा--प्रकारान्तरेण, समर्थयसे--चिन्तयसि, तर्हि मदनबाणहतः--कामशरक्षतः, पुनः--भूयोऽपि, हतः--मारितः, अस्मि। अत्र काव्यलिङ्गं परिकरो लाटानुप्रासश्चालंकाराः। सामनामकं प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं चास्ति। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **अन्तःपुर०**--रनवास की स्त्रियों के विरह से व्याकुल। अन्तःपुरस्य विरहेण पर्युत्सुकस्य, तत्पुरुष। अन्तःपुर का अर्थ रनवास है, जहाँ रानियाँ रहती हैं। यहाँ पर लक्षणा से रनवास की स्त्रियाँ अर्थ है। पर्युत्सुक--खिन्न, व्याकुल। ( २ ) **उपरोधेन**--राजा को रोकने से क्या लाभ अर्थात् उनको

---

पा०भेद--५७. का० राजा--सुन्दरि (राजा--हे सुन्दरी)

क्यों रोकती हो ? किम् के कारण तृतीया। इस वाक्य से शकुन्तला राजा की परीक्षा करना चाहती है। ( ३ ) **अनन्य०**—न अन्यत् परायणं यस्य तत्, बहु०। और कोई स्त्री जिसका सर्वश्रेष्ठ आश्रय नहीं है। परायण का अर्थ है—चरमलक्ष्य या सर्वश्रेष्ठ आधार। परा—सर्वश्रेष्ठ, उत्तम, अयन—आश्रय, आधार। परा+अय्+ल्युट्। ( ४ ) **हृदय०**—हृदये सन्निहिता, संबोधन, तत्पुरुष। हृदय में सुप्रतिष्ठित। सन्निहित के दो अर्थ हो सकते हैं, (क) सत्+निहित, अच्छे प्रकार से रखी हुई अर्थात् प्रतिष्ठित, (ख) सम्+निहित, पास में रखी हुई अर्थात् हृदय में विद्यमान। संनिधा का अर्थ संनिधान (पास) होता है। तुम मेरे हृदय में हो, अतः मेरे हृदय को जानती हो। (५) **समर्थयसे**—मानती हो। (६) **मदिरे०**—मदिरे ईक्षणे यस्याः सा, बहु०। मादक नेत्रों वाली। यहाँ पर मदिरा शब्द के चार अर्थ हो सकते हैं :—(क) मदिरा—सुरा, अतः लाक्षणिक अर्थ मादक, उन्मादक, देखने वालों को आकृष्ट करने वाली। (ख) मदिरा शब्द का पारिभाषिक अर्थ है—सुन्दर, खिले हुए अपांग वाली और चंचल तारावाली आँखें। हेमाद्रि ने रघुवंश ८-६८ की टीका में संगीतकलिका का श्लोक मदिरा के लक्षण के रूप में उद्धृत किया है—सौष्ठवेनापरित्यक्ता स्मेरापाङ्गमनोहरा। वेपमानान्तरा दृष्टिर्मदिरा परिकीर्तिता ।। नाटचशास्त्र में मदिरा का लक्षण है—आघूर्णमानमध्या या क्षामा चाञ्चिततारका। दृष्टिर्विकसितापाङ्गा मदिरा तरुणे मदे ।।(ग) माद्यति आभ्याम् इति मदिरा, मद्+किरच् (इर)=मदिरा। उन्मत्त करने वाली। (घ) मदिरा मत्तखंजन का नाम है। मदिरा मत्तखंजनः, इति शब्दरत्नावली। मत्त खंजन के तुल्य चंचल नेत्रों वाली। (७) **मदन०**—मदनस्य वाणेन हतः, तत्पुरुष। मैं अब भी कामदेव के बाणों से मरा हुआ हूँ। यदि तुम मुझ पर सन्देह करती हो तो मैं फिर मारा जाऊँगा—अर्थात् फिर जीवित न रह सकूँगा। ( ८ ) यहाँ पर हृदयसन्निहिते अनन्यपरायणम् का कारण है, अतः काव्यलिंग है। हृदयसन्निहिते आदि शब्द साभिप्राय हैं, अतः परिकर है। हृदय—हृदयं, हतः हतः के कारण लाटानुप्रास है। यहाँ साम नामक प्रतिमुखसंधि का अंग है। उसका लक्षण है—तत्र साम प्रियं वाक्यं सानुवृत्तिप्रकाशकम्। (नाटचशास्त्र)।

**५८. अनसूया—वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय।** [ वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणीअन्ति। जह णो पिअसही बन्धुअणसोअणिज्जा ण होइ तह णिव्वाहेहि। ]

---

पाठभेद—५८. नि० निर्वर्तय [णिव्वत्तेहि] (करना)।

**अनसूया**—मित्र, सुना है कि राजाओं की बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं। अतः वैसा व्यवहार कीजिएगा, जिससे हम लोगों की प्रियसखी अपने संबन्धियों के लिए शोचनीय न हो।

५९. **राजा**—भद्रे, किं बहुना।

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥१७॥

**अन्वय**—परिग्रहबहुत्वे अपि द्वे मे कुलस्य प्रतिष्ठे, समुद्ररसना उर्वी च युवयोः इयं सखी च।

**राजा**—भद्रे, अधिक कहने से क्या लाभ?

बहुत स्त्रियों के होते हुए भी दो ही मेरे वंश की प्रतिष्ठा (गौरव या मुख्य आधार) हैं—समुद्ररूपी मेखला से युक्त पृथ्वी और आप लोगों की यह सखी ॥१७॥

**संस्कृत-व्याख्या**—परिग्रह०—परिग्रहाणां स्त्रीणां बहुत्वे आधिक्येऽपि, द्वे—द्वे स्त्रियो, मे—मम, कुलस्य—वंशस्य, प्रतिष्ठे—गौरवहेतू आधारहेतू वा स्तः। समुद्र०—समुद्रः सागरः रसना मेखला यस्याः सा, उर्वी च—पृथ्वी च, युवयोः—भवत्योः, इयम्—एषा, सखी—शकुन्तला च, समुद्र०—मुदं राति ददाति इति मुद्रं मुद्रा वा रत्नम् तैः सहिता रसना यस्याः सा। अत्रातिशयोक्तिस्तुल्ययोगिता श्लेषः समासोक्तिश्चालंकाराः। दाक्षिण्यं नाम नाट्यलक्षणं चास्ति। श्लोको वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) बहुवल्लभाः—अनसूया का अप्रत्यक्षरूप से संकेत है कि आपकी भी बहुत सी स्त्रियाँ होंगी। अतः इस प्रकार निर्वाह कीजिएगा कि शकुन्तला किसी प्रकार दुःखित न हो और हम लोगों को शोक न करना पड़े। यहाँ पर बन्धुजन-शोचनीया उक्ति सार्थक है, क्योंकि अनसूया का सन्देह पाँचवें अंक में कार्यरूप में परिणत होता है। राजा शकुन्तला का परित्याग करता है और सभी आश्रमवासी दुःखित होते हैं। ( २ ) परिग्रह०—परिग्रहाणां बहुत्वम्, तस्मिन्, तत्पुरुष। स्त्रियों की अधिकता। परिग्रह का अर्थ स्त्री है। परि परितः सर्वथा गृह्यते इति परिग्रहः, परि+ग्रह्+अप् (अ) ग्रहवृदृ० (३-३-५८) से अप्। जिसको पूर्णरूप से ग्रहण करते हैं। ( ३ ) प्रतिष्ठे—प्रतिष्ठा अर्थात् गौरव के कारण या आधारस्वरूप। प्रतितिष्ठत्यस्यामिति, प्रति+स्था+अङ (अ)+टाप्। आतश्चोपसर्गे (३-३-१०६) से अङ। राजा शकुन्तला को अपने कुल के गौरव का कारण

---

Funding by IKS-MoE

पाठभेद—५९. नि० समुद्रवसना (समुद्र जिसका वस्त्र है)।

मानता है। (४) समुद्र०—समुद्रः रसना यस्याः सा, बहु०। समुद्र जिसकी मेखला के सदृश है। इसका शकुन्तला के साथ भी अर्थ लगाया जाता है। मुद्र या मुद्रा का अर्थ रत्न है, मुद्रा अर्थात् रत्नों से युक्त जिसकी मेखला है। रसना और रशना दोनों रूपों में यह शब्द लिखा जाता है। दोनों का ही अर्थ पृथ्वी और जीभ है। समुद्ररसना पृथ्वी का वर्णन बहुत स्थलों पर आया है। स रत्नाकरमेखलामुर्वीम्, रघु० १५-१, रत्नानुविद्धार्णवमेखलायाः, रघु० ६-६३, ततः स रत्नाकरमेखलामिलाम्, दशकुमार० इत्यादि। समुद्ररसना का ही अन्यत्र वर्णन होने से 'समुद्रवसना' (समुद्र जिसका वस्त्र है) पाठभेद अधिक उपयुक्त नहीं है। (५) यहाँ शकुन्तला को प्रतिष्टा कहने से अतिशयोक्ति है। शकुन्तला और पृथ्वी दोनों प्रस्तुत का एक धर्म प्रतिष्ठा के साथ संवन्ध होने से तुल्ययोगिता है। समुद्ररसना में श्लेष है। पृथ्वी में स्त्रीत्व का आरोप होने से समासोक्ति है। यहाँ पर वाणी से दूसरे के चित्त का अनुरंजन होने से दाक्षिण्य नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—दाक्षिण्यं चेष्टया वाचा परचित्तानुवर्तनम्। (सा० दर्पण ६-१८८)।

**६०. उभे—निर्वृते स्वः।** [णिव्वुदे म्ह।]

दोनों—हम लोग आनन्दित हो गईं।

**६१. प्रियंवदा—(सदृष्टिक्षेपम्) अनसूये, यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि, संयोजयाव एनम्।** [अणसूए, जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उत्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि, संजोएम णं।] **(इत्युभे प्रस्थिते)**

प्रियंवदा—(एक ओर दृष्टि डालकर) अनसूया, इधर की ओर दृष्टि डालता हुआ उत्सुक यह मृग का बच्चा अपनी माँ को ढूंढ़ रहा है। आओ, इसको उससे मिला दें। (दोनों चल पड़ती हैं।)

**६२. शकुन्तला—हला, अशरणाऽस्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु।** [हला, असरणा म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु।]

शकुन्तला—सखी, मैं निराश्रित हो गई हूँ। तुम दोनों में से एक यहाँ आओ।

**६३. उभे—पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते।** [पुहवीए जो सरणं सो तुह समीवे वट्टइ।] **(इति निष्क्रान्ते।)**

दोनों—जो पृथ्वी का आश्रय है, वह तेरे पास है। (दोनों का प्रस्थान।)

---

पाठभेद—६१. का० यथा [जह] इति नास्ति।

**६४. शकुन्तला**—कथं गते एव । [ कहं गदाओ एव्व ।]

**शकुन्तला**—क्यों, दोनों ही चली गईं ?

**६५. राजा**—अलमावेगेन । नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते ।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।१८।।

**अन्वय**—किं शीतलैः क्लमविनोदिभिः नलिनीदलतालवृन्तैः आर्द्रवातान् संचारयामि । उत करभोरु, ते पद्मताम्रौ चरणौ अङ्के निधाय यथासुखं संवाहयामि ।

**राजा**—घबड़ाने की कोई बात नहीं है । यह (तुम्हारा) उपासक व्यक्ति तुम्हारे पास ही है ।

क्या मैं शीतल, थकान को दूर करने वाले, कमलपत्र के पंखे से ठंडी हवा करूँ ? अथवा हे करभोरु, तेरे कमल के तुल्य लाल चरणों को गोद में रखकर, जिस प्रकार तुम्हें सुख मिले उस प्रकार, दबाऊँ ।।१८।।

**संस्कृत-व्याख्या**—किम्, शीतलैः—शीतलस्पर्शैः, क्लमविनोदिभिः—सन्तापहारकैः नलिनी०—पद्मपत्रव्यजनैः, आर्द्रवातान्—शीतलतरवातान्, संचारयामि—करोमि, उत—अथवा, करभोरु—करभः मणिबन्धात् कनिष्ठिकाङ्गुलिपर्यन्तं हस्तस्य वहिः प्रदेशः स इव ऊरुः यस्याः सा तत्संबोधनम्, ते—तव, पद्मताम्रौ—कमलतुल्यरक्तवर्णौ, चरणौ—पादौ, अङ्के—क्रोडे, निधाय—संस्थाप्य, यथासुखं—यथा ते सुखं भवति तथा, संवाहयामि—मर्दयामि किम् । अत्र परिणामो विकल्पः परिकरश्चालंकाराः । उपन्यासनामकं प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं मालानामकं नाट्यलक्षणं चात्र स्तः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) निर्वृते—आनन्दित हो गईं अर्थात् निश्चिन्त हो गईं । (२) मृगपोतकः—चतुर प्रियंवदा वहाँ से हटने का बहाना ढूंढ़ती है और मृग के बच्चे को माँ से मिलाने के बहाने अनसूया के साथ जाती है । (३) अशरणा—तुम दोनों में से कोई सहायक नहीं रहा । (४) अन्यतरा—अन्यतर शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपादिक है । दो में से एक—इसका अर्थ है । (५) पृथिव्याः०—जो पृथ्वी का रक्षक है, वह तेरे पास है । वही तेरी रक्षा करेगा । (६) आराध-

यिता—उपासक, पूजक। साथ ही सेवक अर्थ भी निकलता है। (७) **क्लम०**—क्लमं विनोदयितुं शीलं येषां तैः। क्लम+वि+नुद्+णिच्+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। थकान दूर करने वाले। (८) **नलिनी०**—नलिनीदलमेव तालवृन्तम्, तैः। कमलपत्र के पंखे से। (९) **करभोरु**—करभ का अर्थ है कलाई से लेकर कनी अँगुली तक हाथ का बाहर का भाग। ऊपर से नीचे की ओर उतार वाला। उसके तुल्य जिसकी जंघा है। करभ का अर्थ हाथी का बच्चा भी है। दूसरा अर्थ होगा—हाथी के बच्चे की सूँड के तुल्य जाँघ वाली। (१०) **संवाहयामि**—दबाऊँ। इससे राजा की चाटुकारिता सूचित होती है। (११) कमलपत्र में तालवृन्त का आरोप इस प्रकरण में उपयोगी होने से परिणाम अलंकार है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में विकल्प अलंकार है। करभोरु पद्मताम्रौ आदि साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। प्रसन्न करने के कारण उपन्यास नामक प्रतिमुखसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—उपन्यासः प्रसादनम्। (सा० दर्पण ६-९३)। अभीष्ट अर्थ के लिए अनेक बातें कहने के कारण माला नामक नाटकीय लक्षण है। माला का लक्षण है—माला स्याद् यदभीष्टार्थं नैकार्थ-प्रतिपादनम्। (सा० दर्पण ६-१८९)। विश्वनाथ ने यह श्लोक माला का उदाहरण उद्धृत किया है।

**६६. शकुन्तला—न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये। [ण भाणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं।] (इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति।)**

**शकुन्तला—मैं माननीय व्यक्तियों के प्रति अपने आप को अपराधिनी नहीं बनाऊँगी। (उठकर जाना चाहती है।)**

**६७. राजा—सुन्दरि, अनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।**

**उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।**
**कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः ।।१९।।**

**(इति बलादेनां निवर्तयति।)**

अन्वय—नलिनीदलकल्पितस्तनावरणं कुसुमशयनम् उत्सृज्य परिबाधा-पेलवैः अङ्गैः कथम् आतपे गमिष्यसि?

**राजा—सुन्दरी, दिन (अभी) ढला नहीं है और तुम्हारे शरीर की यह अवस्था है।**

**जिसके कमलपत्रों से स्तनों का आवरण बनाया है, ऐसी पुष्प-शय्या को छोड़कर पीड़ा के कारण कोमल अङ्गों से तुम धूप में कैसे जाओगी? ।।१९।।**

**(बलात् उसको लौटाता है)**

**संस्कृत-व्याख्या**—नलिनी०—नलिनीदलैः कमलपत्रैः कल्पितं कृतं स्तनयोः कुचयोः आवरणम् आच्छादनं यस्मिन् तत्, कुसुमशयनं—पुष्पशय्याम्, उत्सृज्य—परित्यज्य, परिबाधा०—परिबाधया पीडया पेलवैः कोमलैः, अंगैः—शरीरावयवैः, कथं—केन प्रकारेण, आतपे—निदाघे, गमिष्यसि। आतपे तव गमनं सर्वथाऽहितकरमिति भावः। अत्र काव्यलिंगं परिकरश्चालंकारौ। उपन्यासो नाम प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं हेतुर्नाम नाटचलक्षणं चात्र स्तः। इयमार्या।

**टिप्पणी**

( १ ) **माननीयेषु०**—यहाँ पर माननीय व्यक्ति से अभिप्राय राजा से है। आप पति हैं, संमाननीय हैं, अतः आपसे पैर नहीं दबवाऊँगी। अन्यथा मैं इस अपराध की अपराधिनी होऊँगी। अपराधयिष्यामि—अप्+राध्+णिच्+लृट्। ( २ ) **अनिर्वाणः**—ढला नहीं, ठंडा नहीं हुआ है। निर्वाण का अर्थ है बुझना, शान्त होना। यहाँ पर सूर्य का अस्त होना भाव है। सूर्य अभी छिपा नहीं है। अभी धूप काफी तेज है, अतः बाहर न जाओ। (३) **नलिनी०**—नलिनीदलैः कल्पितं स्तनयोः आवरणं यस्मिन् तत्, तत्पुरुषगर्भक बहुव्रीहि। उसने पुष्पशय्या के कमलपत्रों से स्तनों को ढका हुआ है। ( ४ ) **परिबाधा०**—परिबाधया पेलवैः, तत्पुरुष। पीडा के कारण कोमल। ( ५ ) यहाँ पर पेलव शब्द अश्लील है, अतः 'परिबाधाकोमलैः' पाठ अधिक उचित है। यहाँ पर 'परिबाधापेलवैः अङ्गैः' यह 'कैसे जाओगी' का कारण है, अतः काव्यलिग अलंकार है। परिबाधापेलवैः आदि विशेषण साभिप्राय हैं, अतः परिकर अलंकार है। यहाँ पर हेतुपूर्वक अर्थ के वर्णन से उपन्यास नामक प्रतिमुख सन्धि का अंग है। इसका लक्षण है—उपपत्तिकृतो योऽर्थ उपन्यासस्तु स स्मृतः। (नाटचशास्त्र)। हेतु के साथ अभीष्ट वाक्य के कथन से हेतु नामक नाटकीय लक्षण है। इसका लक्षण है—हेतुर्वाक्यं समासोक्तमिष्टकृद् हेतुदर्शनात्। (सा० दर्पण ६-१७८)।

६८. **शकुन्तला**—पौरव, रक्ष विनयम्। मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि। [पोरव, रक्ख विणअं। मअणसंतत्तावि ण हु अत्तणो पहवामि।]

शकुन्तला—पौरव, शील की रक्षा कीजिए। कामपीड़ित भी मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूं, (अतः अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकती)।

६९. राजा—भीरु, अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्नात्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च—

---

पाठभेद—६९. का० पश्य (देखो)।

**गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।**
**श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ॥२०॥**

**अन्वय**—बह्व्यः राजर्षिकन्यकाः गान्धर्वेण विवाहेन परिणीताः, ताः पितृभिः अभिनन्दिताः च श्रूयन्ते ।

**राजा—भीरु, अपने गुरुजनों का भय मत करो। तुम्हारे विषय में (सब बातें) जानकर धर्म को जानने वाले पूजनीय कुलपति (कण्व) इस विषय में कुछ बुरा नहीं मानेंगे। और भी—**

**बहुत सी राजर्षियों की कन्याओं ने अपना गान्धर्व विवाह किया और उनका (उनके कार्य का) उनके पिताओं ने समर्थन किया, ऐसा सुना जाता है ॥२०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—बह्व्यः—अनेकाः, राजर्षिकन्यकाः—राजर्षिपुत्र्यः, गान्धर्वेण विवाहेन—पारस्परिकप्रेममूलकेन विवाहविधिना, परिणीताः—विवाहं प्राप्ताः । ताः—कन्यकाः, पितृभिः—गुरुजनैः, अभिनन्दिताः च—अनुमोदिताश्च, श्रूयन्ते—आकर्ण्यन्ते । अत्रोपदिष्टं नाम नाट्यलक्षणमस्ति । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **रक्ष विनयम्**—विनय की रक्षा कीजिए अर्थात् शिष्टाचार का पालन कीजिए। मुझे बलात् न खींचिए। ( २ ) **आत्मनः०**—मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ। मैं अपने इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकती हूँ। मेरे विषय में जो कुछ करना है, पिता जी ही करेंगे। ( ३ ) **अलं गुरु०**—अपने गुरुजनों से डरने की कोई बात नहीं है। ( ४ ) **दृष्ट्वा**—देखकर अर्थात् तेरे विषय की सब बातें जानकर। ( ५ ) **विदितधर्मा**—विदितः धर्मः यस्य सः, बहु०। यहाँ पर धर्मादनिच्० (५-४-१२४) सूत्र से समासान्त अनिच् (अन्) प्रत्यय। इसके रूप आत्मन् के तुल्य चलेंगे। धर्म को जानने वाले। यहाँ पर धर्म से भाव विधि, मर्यादा, आचार, परम्परा है। ( ६ ) **गान्धर्वेण०**—विवाह के आठ प्रकारों में से एक भेद गान्धर्वविवाह है। आठ प्रकार ये हैं—ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ कन्या और वर के पारस्परिक प्रेम के आधार पर दोनों की स्वीकृति से होने वाले विवाह को गान्धर्वविवाह कहते हैं। इसमें दोनों ओर के माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक नहीं है। मनु ने इसकी व्याख्या की है—इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ (मनुस्मृति ३-३२)। यह विवाह क्षत्रियों के लिए ही स्वीकृत था। (मनु० ३-२६)। साथ ही यह भी आवश्यक था कि वर-कन्या दोनों अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को ठीक समझते हों। अतएव ऐसे विवाहों को माता-पिता आदि का समर्थन

प्राप्त हो जाता था। ( ७ ) अभिनन्दिताः—माता-पिता आदि ने उनका समर्थन किया। ( ८ ) ऐसे गान्धर्वविवाहों में एक विवाह नीलध्वज राजा की कन्या स्वाहादेवी का अग्नि से हुआ है। स्वाहा और अग्नि का विवाह वस्तुतः आलंकारिक-भावयुक्त कथा है। प्रभावती का प्रद्युम्न से, उषा का अनिरुद्ध से गान्धर्व विवाह हुआ है। देखो हरिवंश० २-९४ और २-११९। इस श्लोक में शास्त्रानुकूल मनोहर वाक्य के कथन से उपदिष्ट नामक नाटकीय लक्षण है। इसका लक्षण है—उपदिष्टं मनोहारि वाक्यं शास्त्रानुसारतः। (सा० द० ६-१८४)।

**७०. शकुन्तला—मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।** [ मुञ्च दाव मं। भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं।]

**शकुन्तला—मुझे अभी छोड़िए। मैं फिर अपनी सखियों की अनुमति लूंगी।**

**७१. राजा—भवतु। मोक्ष्यामि।**

**राजा—अच्छा, छोड़ दूंगा।**

**७२. शकुन्तला—कदा।** [ कदा ]

**शकुन्तला—कब ?**

**७३. राजा—**

**अपरिक्षतकोमलस्य यावत्**
**कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।**
**अधरस्य पिपासता मया ते**
**सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥२१॥**

**(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन।)**

अन्वय—सुन्दरि यावत् षट्पदेन नवस्य कुसुमस्य इव पिपासता मया अपरिक्षतकोमलस्य अस्य ते अधरस्य रसः सदयं गृह्यते।

राजा—हे सुन्दरी, भौंरे के द्वारा नवीन फूल के (रस के) तुल्य प्यासे मेरे द्वारा अक्षत और कोमल तेरे अधर का रस दयाभाव से पिया जा रहा है, उसके बाद (तुझे छोड़ूंगा) ॥२१॥ (उसका मुंह उठाना चाहता है। शकुन्तला उसको रोकने का अभिनय करती है।)

संस्कृत-व्याख्या—हे सुन्दरि—हे कान्ते, यावत्—यावत्कालपर्यन्तम् मयाऽधर-

पानं क्रियते, तत्पश्चात् मोक्ष्यते इति भावः, षट्पदेन—भ्रमरेण, नवस्य—नवविकसितस्य, कुसुमस्य इव—पुष्पस्येव, पिपासता—पातुमिच्छता पिपासायुक्तेनेत्यर्थः, मया—दुष्यन्तेन, अपरिक्षत०—अपरिक्षतः न दष्टः अनास्वादितपूर्वं इत्यर्थः कोमलः च सुकुमारश्च तस्य, अस्य ते अधरस्य, रसः—स्वादः, सदयं—दयापूर्वकम्, गृह्यते—आदीयते। अत्र स्पृहानामको नाटकालंकारः। मालभारिणी वृत्तम्। तल्लक्षणम्—विषमे ससजा गुरू समे चेत् सभरा येन तु मालभारिणीयम्।

### टिप्पणी

(१) **अनुमानयिष्ये**—अनुमति लूंगी। अनु+मन्+णिच्+लृट्। (२) **अपरिक्षत०**—अपरिक्षतः चासौ कोमलश्च, कर्मधारय। अक्षत और कोमल। अक्षत का अभिप्राय है जिसका अभी तक किसी ने स्वाद नहीं लिया है। (३) **पिपासता**—पीने के इच्छुक अर्थात् प्यासे। पा+सन्। पिपास+शतृ+तृ० १। (४) इस श्लोक में सुन्दर वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा के कारण स्पृहा नामक नाटकीय अलंकार है। उसका लक्षण है—आकांक्षा रमणीयत्वाद् वस्तुनो या स्पृहा तु सा॥ (सा० द० ६-२०२)। (५) **नाट्येन०**—शकुन्तला राजा को अधरपान से रोकने का अभिनय करती है। नाटकीय नियमों के अनुसार रंगमंच पर अधरपान दिखाना वर्जित है।

### (नेपथ्ये)

**७४.—चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।** [चक्कवाकवहुए, आमन्तेहि सहअरं। उवट्ठिआ रअणी।]

**(नेपथ्य में)** हे चक्रवाकवधू, अपने साथी से विदाई लो। रात आ गई है।

**७५. शकुन्तला—(ससंभ्रमम्) पौरव, असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति। तद् विटपान्तरितो भव।** [पोरव, असंसअं मम सरीरवुत्तन्तोवलम्भस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि। ता विडवन्तरितो होहि।]

**शकुन्तला—(घबड़ाहट के साथ)** हे पौरव, निःसन्देह मेरे स्वास्थ्य का समाचार जानने के लिए पूजनीया गौतमी इधर ही आ रही हैं। इसलिए आप शाखाओं की ओट में छिप जाइए।

---

पाठभेद—७५. नि० यावद् [जाव] जबतक।

७६. **राजा**—तथा। (इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति।)

**राजा**—अच्छा। (अपने आपको छिपाकर खड़ा होता है।)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च)

७७. **सख्यौ**—इत इत आर्या गौतमी। [इदो इदो अज्जा गोदमी।]

(तदनन्तर पात्र हाथ में लिए गौतमी और दोनों सखियों का प्रवेश)

**दोनों सखियाँ**—इधर से आर्या गौतमी, इधर से।

७८. **गौतमी**—(शकुन्तलामुपेत्य) जाते, अपि लघुसन्तापानि तेऽङ्गानि। [जादे, अवि लहुसंदावाइं दे अङ्गाइं।]

**गौतमी**—(शकुन्तला के पास जाकर) पुत्री, क्या तेरे शरीर का सन्ताप कुछ कम हुआ?

७९. **शकुन्तला**—आर्ये, अस्ति मे विशेषः। [अज्जे, अत्थि मे विसेसो।]

**शकुन्तला**—आर्या, हाँ, मुझे कुछ लाभ है।

८०. **गौतमी**—अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, परिणतो दिवसः। एहि, उटजमेव गच्छामः। [इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि। वच्छे, परिणदो दिअहो। एहि, उडजं एव गच्छम्ह।] (इति प्रस्थिताः।)

**गौतमी**—इस कुशायुक्त जल से तेरा शरीर सर्वथा नीरोग हो जाएगा। (शकुन्तला के सिर पर जल छिड़क कर) पुत्री, अब दिन ढल गया है। आओ, अब हम सब कुटी पर ही चलें। (सब चल पड़ती हैं।)

### टिप्पणी

(१) **चक्रवाकवधुके**—चक्रवाक की वधू अर्थात् चकवी। कवि-परम्परा है कि चकवा-चकवी दिन में साथ रहते हैं और रात्रि में अलग हो जाते हैं। कथा है कि राम सीता के वियोग में पम्पासर पर रो रहे थे तो चकवा उन पर हँसा।

---

पाठभेद—७९. नि० आर्ये [अज्जे] इति नास्ति।

क्रोध में आकर उन्होंने शाप दिया कि तुम भी रात में वियुक्त होकर रोओगे। कालिदास ने यहाँ पर बहुत सुन्दर नाटकीय संकेत किया है कि शकुन्तला तुम अपने पति से विदाई लो। रात्रिरूपी गौतमी आ गई है। चकवा-चकवी बहुत प्रेमी जीव माने जाते हैं। इनके पर्यायवाची शब्द हैं—भूरिप्रेमा, द्वन्द्वचारी, रात्रिविश्लेषगामी। कालिदास ने इनका कई स्थानों पर वर्णन किया है। जैसे—दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् (मेघदूत २-२३), शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ( रघु० ८-५६ ), इत्यादि। ( २ ) आमन्त्रयस्व—आ+मन्त्र् का अर्थ विदाई लेना है। यह वाक्य शकुन्तला के लिए उसकी सखियों का कहा हुआ है। नेपथ्य से संकेत करती है कि दोनों प्रेमी अलग हो जाओ। ( ३ ) शरीर०—स्वास्थ्य का समाचार जानने के लिए। ( ४ ) उपलम्भः—जानना, पता चलाना। उप+लभ्+घञ्। ( ५ ) अन्तरितः—छिपना। ( ६ ) जाते—हे पुत्रि, प्रेमपूर्ण संबोधन है। जैसे—प्यारे बच्चे आदि। ( ७ ) लघु०—कम सन्ताप वाले। ( ८) अङ्गानि—अंग से अभिप्राय शरीर से है। शरीर की पीड़ा कुछ कम हुई या नहीं? (९) विशेषः—विशेषता है अर्थात् लाभ है। (१०) निराबाधम्—पीडारहित, रोगरहित। (११) परिणतः०—दिन ढल गया है। सायंकाल का समय हो रहा है।

**८१. शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय, प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं सन्तापः। (पदान्तरे स्थित्वा। प्रकाशम्) लतावलय सन्तापहारक, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय।** [हिअअ, पढमं एव्व सुहोवणदे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअविहडिअस्स कहं दे संपदं संदावो। लदावलअ संदावहारअ, आमन्तेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स।]

**(इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।)**

शकुन्तला—(मन में) हे हृदय, पहले ही अनायास मिले हुए मनोरथ (दुष्यन्त) के होने पर तूने (अपने) संकोच को नहीं छोड़ा। अब पश्चात्ताप के लिए वियुक्त होने पर तुझे दुःख क्यों है? (थोड़ा चलकर रुककर। प्रकट) हे लताकुंज, मेरे दुःख-हारक, मैं तुमको फिर भोग के लिए निमन्त्रित करती हूँ। (दुःखित शकुन्तला का औरों के साथ प्रस्थान।)

**८२. (क) राजा—(पूर्वस्थानमुपेत्य, सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि—**

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं
प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् ।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः
कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ।।२२।।

अन्वय—पक्ष्मलाक्ष्याः मुहुः अङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् अंसविवर्ति मुखं कथमपि उन्नमितं न तु चुम्बितम् ।

राजा—(पहले स्थान पर आकर, लंबी साँस छोड़कर) ओह, अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति विघ्नों से युक्त होती है। क्योंकि मैंने—

उस मनोहर-नेत्रों वाली (शकुन्तला) का बारबार अँगुलियों से ढके अधर से युक्त, निषेध के अक्षरों के अस्पष्ट उच्चारण के कारण सुन्दर, कन्धे की ओर मुड़े हुए, मुँह को किसी प्रकार उठाया तो, पर चूम न सका ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या—पक्ष्मलाक्ष्याः—पक्ष्मले प्रशस्तरोमयुक्ते अक्षिणी लोचने यस्याः तस्याः, मुहुः—वारंवारम्, अङ्गुलिभिः संवृतः आच्छादितः अधरोष्ठः निम्नोष्ठः यस्मिन् तत्, प्रतिषेधा०—प्रतिषेधाक्षरस्य निषेधोक्तेः विक्लवम् अस्फुटोच्चारणं तेन अभिरामं मनोहरम्, अंसविवर्ति—अंसयोः स्कन्धयोः विवर्ति परिवर्तनशीलम्, मुखं—वदनम्, कथमपि—कठिनतया, उन्नमितम्—ऊर्ध्वीकृतम्, न तु चुम्बितं—न तु चुम्बनं कृतम् । अत्र काव्यलिङ्गं स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। पश्चात्तापो नाम नाट्यालङ्कारश्चान्ति । मालभारिणी वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) सुखोप०—सुखेन उपनते, तत्पु० । अनायास उपस्थित हुए । ( २ ) मनोरथे—इष्ट वस्तु अर्थात् दुष्यन्त । ( ३ ) कातरभावम्—लज्जाशीलता, संकोच या भय । ( ४ ) सानुशय०—पश्चात्ताप के साथ-साथ वियुक्त। अनुशय—पश्चात्ताप । अनु+शी+अच् (अ) । ( ५ ) लतावलय०—इस वाक्य के दो अर्थ हैं, एक लता की ओर और दूसरा राजा की ओर । गौतमी को ज्ञात हो कि लता को संबोधन किया जा रहा है, परन्तु वस्तुतः लता की ओट में छिपे हुए राजा के लिए यह वाक्य है। लता के पक्ष में अर्थ है—लता-कुंज, तुम मेरे ताप के हर्ता हो। मैं तुम्हारे पास विश्राम के लिए फिर आऊँगी और विदाई लेती हूँ। राजा के पक्ष में—लताकुंज में छिपे हुए प्राणनाथ, तुमने मेरा काम-सन्ताप दूर किया है। मैं संभोग के लिए तुम्हें फिर निमंत्रित करती हूँ अर्थात् मुझे फिर मिलना। आमन्त्रये के दो अर्थ हैं—विदाई लेती हूँ, निमंत्रित करती हूँ। ( ६ ) इस वाक्य में मनोरथ नामक नाटकीय लक्षण हैं। उसका लक्षण है—

मनोरथस्त्वभिप्रायस्योक्तिर्भङ्ग्यन्तरेण यत्। (सा० द० ६-१६३)। प्रकारान्तर से अपने अभिप्राय को कहना। (७) प्रार्थितार्थ०—प्रार्थितानाम् अर्थानां सिद्धयः, तत्पुरुष। इष्ट वस्तु की प्राप्ति में अनेक विघ्न होते हैं। (८) अंगुलि०—अंगुलिभिः संवृतः अधरोष्ठः यस्मिन् तत्, बहु०। अंगुलियों से ओष्ठ को बार-बार ढक लेती थी। (९) प्रतिषेधा०—प्रतिषेधस्य अक्षराणां विक्लवं तेन अभिरामम्, तत्पुरुष। निषेध के अक्षरों के अस्पष्ट उच्चारण के कारण सुन्दर। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि निषेध के अक्षरों से व्याकुलता के कारण सुन्दर। (१०) अंस०—कन्धे की ओर मुड़ा हुआ। (११) पक्ष्मलाक्ष्याः—सुन्दर पलकयुक्त नेत्रों वाली। (१२) कथमपि—कठिनाई से अर्थात् उसकी इच्छा के विरुद्ध। (१३) यहाँ पर मुखम् के तीनों विशेषण कथमपि के कारण हैं, अतः काव्यलिंग है। श्लोक में स्वभावोक्ति भी है। इसमें पश्चात्ताप नामक नाटकीय अलंकार है। उसका लक्षण है—मोहावधीरितार्थस्य पश्चात्तापः स एव तु। (सा० दर्पण ६-२०३)। यहाँ पर चुम्बन न कर सकने का पश्चात्ताप है।

**८२ (ख).**—क्व नु खलु संप्रति गच्छामि। अथवा, इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि। (सर्वतोऽवलोक्य)—

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥२३॥

अन्वय—तस्याः शरीरलुलिता शिलायाम् इयं पुष्पमयी शय्या। (तस्याः) नखैः अर्पितः नलिनीपत्रे एष क्लान्तः मन्मथलेखः। (तस्याः) हस्ताद् भ्रष्टम् इदं बिसाभरणम्, इति आसज्यमानेक्षणः शून्यात् अपि वेतसगृहात् सहसा निर्गन्तुं न शक्नोमि।

अब कहाँ जाऊँ? अथवा, यहीं प्रिया के द्वारा उपभुक्त और (अब) मुक्त लताकुंज में थोड़ी देर रुकता हूँ। (चारों ओर देखकर)

उसके शरीर से दबाई हुई शिला पर पड़ी हुई यह फूलों की शय्या है। (उसके) नाखूनों से लिखा हुआ, कमलपत्र पर यह मुरझाया हुआ प्रेम-पत्र है। (उसके) हाथ से गिरा हुआ यह कमलनाल का कंकण है। इस प्रकार आसक्त-दृष्टि मैं शून्य भी इस बेंत के गृह से सहसा बाहर जाने में असमर्थ हूँ ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—तस्याः—शकुन्तलायाः, शरीरलुलिता—शरीरेण देहेन

लुलिता मर्दिता, शिलायाम्—पाषाणपट्टे, इयं पुष्पमयी—कुसुमरचिता, शय्या—शयनीयम् अस्ति। तस्याः नखैः—करजैः, अर्पितः—उल्लिखितः, नलिनीपत्रे—कमलपत्रे एष क्लान्तः—म्लानः, मन्मथलेखः—प्रणयपत्रम् अस्ति। तस्या हस्तात्—करात्, भ्रष्टं—पतितम्, इदं बिसाभरणं—मृणालवलयमस्ति, इति आसज्यमानेक्षणः—आसज्यमाने लग्ने ईक्षणे नेत्रे यस्य सः, शून्यादपि—रिक्तादपि, वेतसगृहात्—लतावलयात्, सहसा—सद्य एव, निर्गन्तुं—बहिर्यातुम्, न शक्नोमि—न समर्थोऽस्मि। अत्र विभावना विशेषोक्तिश्चालंकारौ। पुष्पनामकं प्रतिमुखसन्ध्यङ्गं चास्ति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) शरीर०—शरीरेण लुलिता, तत्पुरुष। शरीर से रगड़ी हुई। लुलिता—रगड़ी हुई, दबाई हुई। (२) क्लान्तः—मुरझाया हुआ। क्लम्+क्त। (३) आसज्यमाने०—आसज्यमाने ईक्षणे यस्य सः, बहु०। जिसकी दृष्टि उस ओर लगी हुई है। पाठभेद—आसज्जमानेक्षणः का भी यही अर्थ है। सञ्ज् का आत्मनेपद में भी प्रयोग होता है। (४) राजा को शकुन्तला के द्वारा उपभुक्त वस्तुओं से भी इतना प्रेम हो गया है कि वह उनको छोड़कर नहीं जा सकता है। (५) यहाँ पर वेतसगृह के शून्य होने के कारण रुकने का कारण न होने पर भी रुकने के कारण विभावना है। शून्यतारूपी जाने का कारण होने पर भी न जाने के कारण विशेषोक्ति है। चतुर्थ चरण में प्रेमाधिक्य को प्रदर्शित करने वाली विशेष बात कहने से यहाँ पर पुष्प नामक प्रतिमुखसंधि का अंग है। उसका लक्षण है—पुष्पं विशेषवचनं मतम्। (सा० दर्पण ६-९३)।

**८३. (आकाशे) राजन्,**

**सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते**
**वेदिं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।**
**छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः**
**सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥२४॥**

अन्वय—सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते हुताशनवतीं वेदिं परितः प्रयस्ताः सन्ध्यापयोदकपिशाः भयम् आदधानाः पिशिताशनानां छायाः बहुधा चरन्ति।

(आकाश में) हे राजन्, सायंकालीन यज्ञकर्म के प्रारम्भ होने पर (यज्ञिय) अग्नि से युक्त वेदी के चारों ओर फैली हुई, सन्ध्याकालीन बादलों के तुल्य भूरी, भयप्रद, राक्षसों की छाया अनेक रूप में विचरण कर रही हैं ॥२४॥

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—सायन्तने—सायंकालिके, सवनकर्मणि—यज्ञकर्मणि, संप्रवृत्ते—सम्यक्तया प्रारब्धे सति, हुताशनवतीं—यज्ञियाग्नियुक्ताम्, वेदिं परितः—वेदीं सर्वतः, प्रयस्ताः—विकीर्णाः, सन्ध्या०—सन्ध्यापयोदाः सायंकालिकमेघाः इव कपिशाः पिंगलवर्णाः, भयम्—भीतिम्, आदधानाः—कुर्वाणाः, पिशिताशनानां—राक्षसानाम्, छायाः—प्रतिबिम्बानि, बहुधा—अनेकशः, चरन्ति—इतस्ततो भ्रमन्ति। अत्र काव्यलिङ्गमुपमा चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

**८४. राजा—अयमहमागच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।)**

## इति तृतीयोऽङ्कः।

**राजा—मैं यह आ रहा हूँ। (प्रस्थान।)**

**तृतीय अंक समाप्त।**

### टिप्पणी

(१) **सायन्तने**—सायंकालीन। सायं भवं सायन्तनम्। सायम्+ट्यु (अन)। सायंचिरं० (४-३-२३) से ट्यु प्रत्यय और बीच में त् का आगम। (२) **सवनकर्मणि**—यज्ञकर्म। सवन का अर्थ यज्ञ है, जहाँ पर सोमरस निचोड़ा जाता है। सवन—सु+ल्युट् (अन)। (३) **संप्रवृत्ते**—अच्छे प्रकार से प्रारम्भ हो जाने पर । सम्+प्र+वृत्+क्त। (४) **हुताशनवतीम्**—अग्नियुक्त। हुताशनः—अश्नातीति अशनः, अश्+ल्यु (अन)। नन्दादित्वात् ल्युः। हुतस्य अशनः हुताशनः, हवन किए गए पदार्थों को खाने वाला। हुतम् अश्नातीति, विग्रह करने पर कर्मण्यण् से अण् होने से हुताश रूप बनेगा। (५) **प्रयस्ताः**—फैले हुए। (६) **छायाः**—राक्षस आकाश में घूम रहे हैं, अतः उनकी छाया ही पृथ्वी पर दिखाई देती है। (७) **बहुधा**—इसका संबन्ध दोनों ओर हो सकता है। बहुधा चरन्ति—अनेक प्रकार से घूम रही हैं। बहुधा भयमादधानाः—बहुत प्रकार से भयभीत करती हुई। आदधानः—आ+धा+शानच्। (८) **सन्ध्या०**—सन्ध्यापयोदा इव कपिशाः, उपमान समास। सायंकालीन बादलों के तुल्य भूरी। (९) **पिशिताशनाः**—पिशितं मांसम् अशनं येषां ते। मांसाहारी राक्षस। (१०) इस श्लोक में भयमादधानाः का कारण राक्षसों की छाया होने से काव्यलिंग है। सन्ध्यापयोद० में लुप्तोपमा है।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां**
**'भारती'-व्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः समाप्तः।**

---

## चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।)

१. अनसूया—हला प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्। [हला पिअंवदे, जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं। तह वि एतिअं चिन्तणिज्जं।]

(तदनन्तर फूल चुनने का नाटच करती हुई शकुन्तला की दोनों सखियों का प्रवेश।)

अनसूया—सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व विधि से विवाहित होकर शकुन्तला (अपने) अनुकूल पति को प्राप्त हो गई है, इसलिए मेरा मन सुखी है, फिर भी इतनी बात विचारणीय है।

२. प्रियंवदा—कथमिव। [कहं विअ।]

प्रियंवदा—वह क्या?

३. अनसूया—अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति। [अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि वा ण वेति।]

अनसूया—आज वह राजर्षि यज्ञ की समाप्ति के बाद ऋषियों से विदाई पाकर, अपने नगर में प्रविष्ट होकर (अपने) अन्तःपुर की स्त्रियों से मिलकर, यहाँ की बातों को स्मरण करेगा या नहीं?

४. प्रियंवदा—विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति। [वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअ अ आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति।]

प्रियंवदा—निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की सुन्दर आकृतियाँ गुणों से

---

पाठभेद—१. नि० हला [हला], इति नास्ति।

Funding by IKS-MoE

**रहित नहीं होती हैं। (किन्तु) पिता (कण्व) अब इस समाचार को सुनकर पता नहीं क्या सोचेंगे (अर्थात् हाँ करेंगे या नहीं) ?**

### टिप्पणी

( १ ) **कुसुमावचयम्**—कुसुमानाम् अवचयम्। फूलों का चुनना। व्याकरण के हस्तादाने चेरस्तेये (३-३-४०) नियम से यहाँ पर अवचाय शब्द का प्रयोग होना चाहिए, अवचय प्रयोग अशुद्ध है। चोरी को छोड़कर अन्यत्र हाथ से चुनना अर्थ होगा तो धातु से घञ् (अ) प्रत्यय होगा और वृद्धि होकर अवचाय रूप बनेगा। अव+चि+घञ्। अवचय रूप अव+चि+अच् प्रत्यय से बनेगा। वामन ने अवतर और अवचय का प्रयोग अज्ञतासूचक माना है—अवतारावचायशब्दयोर्दीर्घव्यत्यासो बालानाम्। यह अवचय का प्रयोग वैदिक प्रयोग ही मानना चाहिए। कालिदास ने बहुत से वैदिक शब्दों का प्रयोग किया है। मालविकाग्निमित्र में भी अवचय का प्रयोग किया है—कुसुमावचयव्यग्रहस्ता (अंक ४)। राघवभट्ट ने पेड़ पर चढ़कर फूल तोड़ने के कारण दूरी होने से घञ् नहीं हुआ, ऐसा माना है। परन्तु यह सन्तोषजनक उत्तर नहीं है। यहाँ पर पेड़ पर चढ़कर फूल तोड़ने का भाव नहीं है। ( २ ) **गान्धर्वेण**—गान्धर्व विवाह की विधि से। ( ३ ) **निर्वृत्त०**—निर्वृत्तं सम्पन्नं कल्याणं विवाहमंगलं यस्याः सा, बहु०। जिसका विवाहरूपी मंगल कार्य हो गया है। कल्याण—कल्य+अण्+अ। यहाँ पर विवाह अर्थ में है। निर्वृत्त—निर्+वृत्+क्त। (४) **निर्वृतम्**—सन्तुष्ट, प्रसन्न। निर्+वृ+क्त। ( ५ ) **इष्टि**—यज्+क्तिन् (ति)। ( ६ ) **स्मरति न वा**—अनसूया का शकुन्तला के भविष्य के विषय में चिन्तित होना स्वाभाविक था। ( ७ ) **विस्रब्धा०**—चिन्ता न करो, विश्वासयुक्त होवो। ( ८ ) **आकृति०**—आकृतीनां विशेषाः, तत्पु० विशेष सुन्दर आकृति वाले। ( ९ ) **गुणविरोधिनः**—गुणान् विरुन्धन्ति इति, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। गुणों से विरोध करने वाले। अथवा—विरोधः अस्ति येषामिति विरोधिनः, मत्वर्थ में इनि। गुणैः विरोधिनः। गुणों से विरोध रखने वाले। राजा सुन्दर होने से गुणसंपन्न होना चाहिए। यह सूक्ति है। इस भाव की अन्य सूक्तियाँ हैं—प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति (बृहत्संहिता), यत्राकारस्ततो गुणाः (अग्निपुराण), न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् (मृच्छकटिक ९-१६), आकारसदृशप्रज्ञः (रघुवंश १-१५), स्वप्नेऽपि अविसंवादिन्य आकृतयः (कादम्बरी), सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (दशकुमार०)।

**विशेष**—राघवभट्ट के अनुसार गर्भसन्धि यहाँ चतुर्थ अंक के प्रारम्भ से लेकर पंचम अंक में श्लोक १८ के बाद—इति यथोक्तं करोति तक है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (६-८०) में यहाँ से लेकर सप्तम अंक में शकुन्तला के पहचानने तक विमर्श सन्धि मानी है। उसके अनुसार गर्भसन्धि अंक ३ के स्निग्धजनसंविभक्तम्० वाक्य से लेकर तृतीय अंक के अन्त तक माननी चाहिए। गर्भसन्धि का लक्षण

है—उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव च । पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भः परिकीर्तितः ।। (नाटचशास्त्र) ।। यहाँ राघवभट्ट के अनुसार ही सन्धियों का विभाजन माना है।

**५. अनसूया**—यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत् । [जह अहं देक्खामि, तह तस्स अणुमदं भवे ।]

अनसूया—जहाँ तक मैं समझती हूँ, यह उनको स्वीकृत ही होगा।

**६. प्रियंवदा**—कथमिव ? [कहं विअ ।]

प्रियंवदा—वह कैसे ?

**७. अनसूया**—गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः । तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः । [गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो । तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो ।]

अनसूया—गुणवान् (सुयोग्य) व्यक्ति को कन्या देनी है, यह (माता-पिता का) मुख्य विचार होता है। यदि उसको भाग्य ही पूर्ण कर देता है तो गुरुजन बिना प्रयत्न के ही कृतार्थ हो गये।

**८. प्रियंवदा**—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि । [सहि, अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं ।]

प्रियंवदा—(फूलों की टोकरी की ओर देखकर) सखी, पूजा के कार्य के लिए पर्याप्त फूल (हम लोगों ने) चुन लिए हैं।

**९. अनसूया**—ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया । [णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ ।]

अनसूया—किन्तु सखी शकुन्तला के सौभाग्य-देवता (पति) की भी पूजा करनी है।

**१०. प्रियंवदा**—युज्यते । [जुज्जदि ।]

(इति तदेव कर्माभिनयतः ।)

---

पाठभेद—१०. नि० कर्माभिनये ( [illegible] करती हैं ) ।

प्रियंवदा—ठीक है। (फिर उसी कार्य का अभिनय करती हैं।)

### टिप्पणी

( १ ) पश्यामि—यहाँ समझना अर्थ है। जहाँ तक मैं समझती हूँ या मेरा विचार है। ( २ ) गुणवते०—सुयोग्य व्यक्ति को कन्या देनी है, यह कन्या के माता-पिता का मुख्य विचार होता है। ( ३ ) प्रथमः संकल्पः—मुख्य निश्चय या विचार। ( ४ ) अप्रयासेन—अनायास ही। ( ५) बलिकर्म०—बलिकर्म अर्थात् पूजा के कार्य के लिए पर्याप्त। ( ६ )सौभाग्यदेवता—अभीष्ट देवता अर्थात् पति. जो उसको सुहागिन बनाकर रखेगा। कुछ लोगों ने सौभाग्य-देवता से पार्वती आदि की पूजा का भाव लिया है। ( ७ ) युज्यते—तुम्हारी बात ठीक है।

### (नेपथ्ये)

११. अयमहं भोः।

(नेपथ्य में) यह मैं (एक अतिथि) आया हूँ। यहाँ कौन है ?

१२. अनसूया—(कर्णं दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव निवेदितम्। [सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं।]

अनसूया—(सुनकर) सखी, किसी (पूजनीय) अतिथि की सी यह आवाज है।

१३. प्रियंवदा—ननूटजसंनिहिता शकुन्तला। [णं उडजसण्णिहिदा सउन्दला।]

प्रियंवदा—कुटी पर शकुन्तला विद्यमान है ही।

१४. अनसूया—अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता। अलमेतावद्भिः कुसुमैः। [अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं।] (इति प्रस्थिते)

अनसूया—(है तो), पर आज उसका हृदय कहीं और है। बस, इतने ही फूल रहने दो। (दोनों चल पड़ती हैं।)

---

पाठभेद—१३. नि० शकुन्तला। (आत्मगतम्) अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता [अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा] (मन में, आज, उसका हृदय कहीं और है), इत्यधिकः पाठः। १४. नि० अद्य…संनिहिता [अज्ज…हिदा], इति नास्ति। नि० भवतु, अलम् [होदु, अलं] (अच्छा, बस)।

Funding by IKS-MoE

(नेपथ्ये)

१५. आः, अतिथिपरिभाविनि,  
विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा  
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।  
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्  
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥१॥

अन्वय—अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितं तपोधनं मां न वेत्सि, स प्रमत्तः प्रथमं कृतां कथाम् इव बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति ।

(नेपथ्य में) ओह, ओ अतिथि का तिरस्कार करने वाली,

अनन्यहृदय से जिसका चिन्तन करती हुई तू उपस्थित हुए (भी) मुझ तपस्वी को नहीं देख रही है, वह (तेरे) स्मरण दिलाने पर भी तुझको स्मरण नहीं करेगा, जैसे उन्मत्त व्यक्ति पहले कही बात को (स्मरण नहीं करता है) ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अनन्यमानसा—एकाग्रचित्ता, यं—यं जनं दुष्यन्तमित्यर्थः, विचिन्तयन्ती—ध्यायन्ती, उपस्थितम्—अत्रैव समागतम्, तपोधनं—तपस्विनम्, मां—दुर्वाससम्, न वेत्सि—न जानासि पश्यसीत्यर्थः, सः—स जनः दुष्यन्तः, प्रमत्तः—उन्मत्तः, प्रथमं—पूर्वम्, कृताम्—उक्ताम्, कथामिव—वार्तामिव, बोधितः अपि सन्—स्मारितः सन् अपि, त्वां—शकुन्तलाम्, न स्मरिष्यति—मम पत्नीत्येवंरूपेण नाभिज्ञास्यति । स न स्वयं स्मरिष्यति, न च स्मारितोऽपि स्मरिष्यतीत्याशयः । अत्र काव्यलिङ्गमुपमा श्लेषश्चालंकाराः । वंशस्थं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) अयमहं भोः—यह बोलचाल का संक्षिप्त वाक्य है । पूरा वाक्य है—अयमहम् आगतः, भोः कोऽत्र वर्तते—यह मैं आया हूँ, यहाँ कौन है ? अतः अनुवाद में पूरे वाक्य का अर्थ अपनाया गया है । ( २ ) निवेदितम्—निवेदन, वक्तव्य । यह किसी पूज्य अतिथि का-सा वक्तव्य है । ( ३ ) अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता—यह वाक्य कुछ संस्करणों में वाक्य सं० १३ में है । यह वाक्य वहाँ अनावश्यक और असंगत-सा प्रतीत होता है । इस वाक्य में उसकी संगति ठीक होती है, अतः इसमें दिया गया है । आज शकुन्तला का मन कहीं और है, इसलिए इतने ही फूल रहने दो और चलकर स्वयं अतिथि का सत्कार करो । ( ४ ) हृदयेन०—वह हृदय से यहाँ नहीं है अर्थात् वह शरीरमात्र से यहाँ है और उसका मन कहीं और है । वह दुष्यन्त के ध्यान में लगी हुई है । ( ५ ) अनन्य०—केवल एक ओर मन लगाए हुए । न अन्यत् अवलम्बनं यस्य तत् अनन्यम्,

अनन्यं मानसं यस्याः सा, बहु० । दुर्वासा का शाप इस कारण से नहीं है कि वह दुष्यन्त को क्यों स्मरण कर रही है, अपितु इसलिए है कि अपने अतिथि-सेवा-रूपी कार्य की ओर ध्यान न देकर किसी एक का ही चिन्तन क्यों कर रही है। इस शाप से दुर्वासा की क्रोधवृत्ति का ज्ञान होता है। मूलकथा में दुर्वासा के शाप की चर्चा नहीं है। यह कालिदास की अपनी मौलिक कल्पना है। ( ६ ) तपोधनम्—वह तपस्वी है, अतः उसकी ओर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है। ( ७ ) प्रमत्तः—शराबी व्यक्ति मत्तावस्था में शराब पीने से पहले की सब बातों को भूल जाता है, उसी प्रकार दुष्यन्त भी सब पुरानी बातों को भूल जाएगा। वह न तो स्वयं स्मरण करेगा और न स्मरण दिलाने पर ही उसे कोई बात याद आएगी। (८) यहाँ पर पूर्वार्ध विस्मरण-रूपी शाप का कारण है, अतः काव्यलिंग है। इव से उपमा है। प्रथमं कृताम्० में श्लिष्ट अर्थ होने से श्लेष है।

१६. **प्रियंवदा**—हा धिक्, हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः [ हद्धी, हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। ण हु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ वेअबलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो।]

**प्रियंवदा**—हाय! हाय! अनर्थ हो ही गया। किसी पूजनीय व्यक्ति के प्रति शून्यहृदय शकुन्तला ने कुछ अपराध कर दिया है। (सामने देखकर) वस्तुतः किसी साधारण व्यक्ति के प्रति नहीं। यह हैं अतिक्रोधी महर्षि दुर्वासा। इस प्रकार (शकुन्तला को) शाप देकर वेग के बल से युक्त (अर्थात् अति तीव्र) और अनिवार्य गति से लौटे जा रहे हैं।

१७. **अनसूया**—कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि।

---

पाठभेद—१६. नि० हा धिक् (हद्धी], इति नास्ति। नि०प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। [पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि] (अग्नि के अतिरिक्त और कौन जला सकता है), इत्यधिकः पाठः।

[को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।]

अनसूया--अग्नि के अतिरिक्त और कौन जला सकता है? (तुरन्त) भागकर जा और (उनके) चरणों में प्रणाम करके उनको लौटाकर ला, तब तक मैं अर्घ और जल (पूजा का सामान) तैयार करती हूँ।

१८. **प्रियंवदा**--तथा। [तह।] (इति निष्क्रान्ता।)

**प्रियंवदा**--अच्छा। (प्रस्थान)

१९. **अनसूया**--(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्। [अम्मो, आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।] (इति पुष्पोच्चयं रूपयति।)

**अनसूया**--(कुछ चलकर गिरने का अभिनय करके) ओह, घबड़ाहट से लड़खड़ाती हुई चाल के कारण मेरे हाथ से फूल की डाली गिर गई। (फूलों के उठाने का अभिनय करती है।)

### टिप्पणी

( १ ) अप्रियमेव—अशुभ, अनर्थ, अवांछनीय। ( २ ) पूजार्हे॰—पूजनीय व्यक्ति के प्रति अपराध किया है। पूजार्ह—पूजाम् अर्हतीति, पूजा+अर्ह्+अच्। अपराद्धा—अप+राध्+क्त+टाप्। ( ३ ) शून्यहृदया—अन्यमनस्क। अतएव उसने दुर्वासा की ओर ध्यान नहीं दिया। ( ४ ) यस्मिन्॰—ऐसा वैसा अर्थात् साधारण। (५) दुर्वासाः—ऋषि का नाम। दुर्वासा अत्रि और अनसूया के पुत्र थे। पुराणों में इनका बहुत क्रोधी के रूप में वर्णन है। ( ६ ) वेग॰—वेगस्य बलं तेन उत्फुल्ला, तत्पु॰। अति तीव्र। (७) कोऽन्यः॰—अग्नि के अतिरिक्त और कौन जला सकता है। यहाँ भाव है कि दुर्वासा जैसा क्रोधी ऋषि ही शकुन्तला को शाप दे सकता है। ( ८ ) अर्घोदकम्—अर्घश्च उदकं च तयोः समाहारः। अर्घ और जल। अर्घ में ये आठ चीजें होती हैं—आपः क्षीरं कुशाग्रश्च दधि सर्पिः सतण्डुलम्। यवः सिद्धार्थकश्चैवाष्टाङ्गोऽर्घः परिकीर्तितः॥ ( ९ ) आवेग॰—घबड़ाहट के कारण लड़खड़ाने वाली चाल से फूलों की डाली हाथ से गिर गई। (१०) अग्रहस्तात्—हाथ से। अग्रश्चासौ हस्तश्च अग्रहस्तः। कर्मधारय। यहाँ पर अवयव अग्रभाग और अवयवी हस्त

---

पाठभेद—१७. नि॰ कोऽन्यो···प्रभवति [को अण्णो···पहवदि], इति नास्ति।

में अभेद की विवक्षा से समास। अतएव वामन ने कहा है—हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदाभ्याम्। हस्तस्य अग्रः समास करने पर हस्ताग्रः रूप बनेगा। (११) नाटकीय नियमानुसार रंगमंच खाली नहीं रहना चाहिए। अतः अनसूया का गिरना और फूल चुनना दिखाकर उसे रोक लिया गया है। घबड़ाकर गिरना अशकुन है, इससे दुर्वासा के न लौटने का संकेत है।

(प्रविश्य)

२०. **प्रियंवदा**—सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। [सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।]

(प्रवेश करके)

**प्रियंवदा**—सखी, स्वभाव से ही टेढ़ा वह किसकी प्रार्थना स्वीकार करता है? फिर भी मैंने उसे कुछ दयालु बना लिया।

२१. **अनसूया**—(सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। [तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि।]

**अनसूया**—(मुस्कराते हुए) उससे इतना भी बहुत है। बताओ (क्या हुआ)?

२२. **प्रियंवदा**—यदा निर्वर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति। [जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति]।

**प्रियंवदा**—जब वे लौटने को उद्यत न हुए तो मैंने प्रार्थना की—भगवन्, (आपके) तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्रियों का यह प्रथम (अपराध) है, यह समझ कर आप इस एक अपराध को क्षमा कीजिएगा।

२३. **अनसूया**—ततस्ततः। [तदो तदो]।

**अनसूया**—तब क्या हुआ?

२४. **प्रियंवदा**—ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति,

**किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः ।** [तदो ण मे वअणं अण्णहाभविदुं अरिहदि, किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो एव्व अन्तरिहिदो ।]

प्रियंवदा—'मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता है, किन्तु पहचान के आभूषण के दिखाने से मेरा शाप समाप्त हो जाएगा'—यह कहते-कहते ही वे अन्तर्धान हो गए।

२५. **अनसूया—शक्यमिदानीमाश्वसितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति ।** [सक्कं दाणिं अस्ससिदुं । अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीयं त्ति सअं पिणद्धं । तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि ।]

अनसूया—अब धैर्य धारण किया जा सकता है। उस राजर्षि ने प्रस्थान के समय अपने नाम से अंकित एक अँगूठी स्मृति-चिह्न के रूप में स्वयं (शकुन्तला की अँगुली में) पहनाई है, वह विद्यमान है। उससे शकुन्तला (शाप-निवृत्ति के) उपाय में स्वतन्त्र है।

### टिप्पणी

(१) प्रकृतिवक्रः—प्रकृत्या वक्रः, तत्पु० । स्वभाव से कुटिल । (२) प्रतिगृह्णाति—स्वीकरोति । स्वीकार करता है। (३) सानुक्रोशः—अनुक्रोशेन दयया सह, बहु० । दयायुक्त । अनुक्रोश—अनु+क्रुश्+घञ् । (४) इच्छति—ऐच्छत् । भूतकाल के स्थान पर वर्तमान काल का प्रयोग प्रचलित मुहावरा है। (५) दुहितृ०—इसके द्वारा संकेत है कि हम आपकी पुत्री हैं, अतः दया कीजिए। (६) अन्तर्हितः—छिप गए, गायब हो गए, अन्तर्धान हो गए। अन्तर्+धा+क्त। धा को दधातेर्हिः (७-४-४२) से हि । दुर्वासा अपनी यौगिक सिद्धि से सहसा अन्तर्धान हो गए। याज्ञवल्क्य (३-२०३) ने योगसिद्धि का लक्षण दिया है—

---

पाठभेद—२४. नि० मे···नार्हति [मे···णारिहदि] (मेरा···नहीं हो सकता है।) नि० मन्त्रयन् स्वयम् [सअं] (कहते हुए स्वयं)।

अन्तर्धानं स्मृतिः कान्तिः दृष्टिः श्रोत्रज्ञता तथा। निजं शरीरमुत्सृज्य परकायप्रवेशनम्। अर्थानां छन्दतः सृष्टिर्योगसिद्धेर्हि लक्षणम्॥ (७) आश्वसितुम्०—धैर्य रख सकती है। (८) संप्रस्थितेन—प्रस्थान करते समय। सम्+प्र+स्था+क्त। (९) स्मरणीयमिति—स्मृतिचिह्न के रूप में, इसको देख कर मुझे याद करते रहना। (१०) पिनद्धम्—पहनाया। अपि+नह्+क्त। अपि के अ का भागुरि के मतानुसार लोप। (११) स्वाधीनोपाया—शाप-निवृत्ति का उपाय उसके पास है।

२६. **प्रियंवदा**—सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः। [सहि, एहि। देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।] (इति परिक्रामतः।)

**प्रियंवदा**—सखी आओ। तब तक देवपूजा का कार्य समाप्त करें।

(दोनों चारों ओर घूमती हैं।)

२७. **प्रियंवदा**—(विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्। [अणसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअं।]

**प्रियंवदा**—(देखकर) अनसूया, देख तो। (यह हमारी) प्रियसखी बाएँ हाथ पर मुँह रखे हुए चित्रित सी (बैठी) है। पति के ध्यान में मग्न होने के कारण उसे अपने आपकी भी सुध नहीं है, फिर अतिथि की तो कहाँ से ?

२८. **अनसूया**—प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। [पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा क्खु पकिदिपेलवा पिअसही।]

**अनसूया**—प्रियंवदा, यह वृत्तान्त हम दोनों तक ही सीमित रहे। स्वभाव से ही कोमल प्रियसखी की रक्षा करनी चाहिए। (अन्यथा यह समाचार सुनकर उसे बहुत आघात पहुँचेगा।)

---

पाठभेद—२६. का० तावदस्याः [दाव से] (तो इसका)।

२९. **प्रियंवदा**—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति । [को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि ।]

(इत्युभे निष्क्रान्ते ।)

विष्कम्भकः ।

**प्रियंवदा**—भला कौन नवमालिका को गर्म जल से सींचेगा ?

(दोनों का प्रस्थान ।) विष्कम्भक समाप्त ।

### टिप्पणी

( १ ) **वामहस्तो०**—वामहस्ते उपहितं वदनं यस्याः सा, बहु० । जिसने बाँए हाथ पर मुंह रखा हुआ है । ( २ ) **आत्मानमपि०**—उसे अपनी भी सुध नहीं है । विभावयति—जानती है । जब उसे अपनी ही सुध नहीं है तो अतिथि की क्या सुध होती ? ( ३ ) **द्वयोरेव०**—इसका शाब्दिक अर्थ है कि यह बात हम दोनों के ही मुंह में रहे और स्वभाव से ही कोमल शकुन्तला बचानी चाहिए । ( ४ ) **को नाम०**—इसका अभिप्राय है कि भला कौन ऐसा होगा जो शकुन्तला को ऐसा अशुभ समाचार बतावे । यदि वह इस समाचार को जान लेगी तो उसका जीवन संकट में पड़ जायगा । ( ५ ) **विष्कम्भक**—यहाँ पर दुर्वासा संस्कृत में बोलते हैं और अनसूया तथा प्रियंवदा प्राकृत में बोलती हैं । सभी पात्र मध्यम श्रेणी के हैं, अतः शुद्ध विष्कम्भक है । विष्कम्भक के लक्षण आदि के लिए देखो अंक ३ वाक्य १ की व्याख्या ।

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः । )

३०. (क) **शिष्यः**—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन । प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति । (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त, प्रभातम् । तथाहि—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
मा‍विष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥२॥

**अन्वय**—एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरःसरः अर्कः आविष्कृतः । लोकः तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम आत्मदशान्तरेषु नियम्यते इव ।

(तदनन्तर सोकर उठे हुए शिष्य का प्रवेश।)

**शिष्य**—प्रवास से लौटे हुए पूजनीय काश्यप ने मुझे आदेश दिया है कि 'क्या समय है' पता चलाऊँ। बाहर प्रकाश में निकल कर देखता हूँ कि कितनी रात शेष है। (चारों ओर घूमकर और देखकर) ओह, सबेरा हो गया। क्योंकि—

एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है (और) दूसरी ओर अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदय हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानो अपने दशा-विशेषों में नियन्त्रित हो रहा है ।।२।।

**संस्कृत-व्याख्या**—एकतः—पश्चिमायां दिशि, ओषधीनां पतिः—ओषधीशः चन्द्रः, अस्तशिखरम्—अस्ताचलम्, याति—गच्छति। एकतः—पूर्वस्यां दिशि, अरुणपुरःसरः—अरुणः गरुडाग्रजः पुरःसरः अग्रगामी यस्य सः, अर्कः—सूर्यः, आविष्कृतः—उदितो भवति। लोकः—संसारः, तेजोद्वयस्य—चन्द्रसूर्ययोः, युगपद्०—युगपत् समकालमेव व्यसनं भ्रंशः उदयः उन्नतिश्च ताभ्याम्, आत्मदशान्तरेषु—स्वदशाविशेषेषु, नियम्यते इव—अनुशास्यते इव। अयमाशयः—लोके सर्वोऽपि जीवः स्वसमयानुसारमुदयमस्तं च लभते। यो विधुः साम्प्रतमस्तमेति स सायंकाले उदयं लप्स्यते, यः सूर्यश्चोदेति स सायंकालेऽस्तमेष्यति। अतः सुखे हर्षो दुःखे शोकश्च न विधेयौ। अत्र समासोक्तिस्तुल्ययोगिता यथासंख्यमुत्प्रेक्षा चालंकाराः। दृष्टान्तो नाम नाटचलक्षणं चास्ति। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) वेला०—समय पता चलाने के लिए। वेला—समय। (२) उपावृत्तेन—लौटे हुए। (३) प्रकाशम्—बाहर प्रकाश वाले स्थान में। (४) हन्त—यह हर्ष और खेद सूचक अव्यय है। यहाँ हर्ष अर्थ में है। प्रसन्नता के साथ। यहाँ आश्चर्य का भी भाव मिश्रित है। (५) अस्तशिखरम्०—अस्त हो रहा है। सायंकाल के समय सूर्य की किरणों से पश्चिम दिशा के लाल बादलों को आलंकारिक रूप देकर पश्चिमाचल या अस्ताचल कहा जाता है। (६) ओषधीनां पति०:—चन्द्रमा। यहाँ अर्थ-सौन्दर्य उल्लेखनीय है। ओषधियाँ रोगनाशक होती हैं, परन्तु समय आ जाने पर ओषधीश भी मृत्यु से नहीं बच सकता है। ओषधि—ओषः पाकः दीप्तिर्वा धीयते अस्यामिति, ओष+धा+कि (इ)। ओषधि शब्द वनस्पतिमात्र के लिए प्रयुक्त होता है। चन्द्रमा की किरणों से वनस्पतियाँ बढ़ती हैं, अतः चन्द्रमा को ओषधीश कहते हैं। (७) आविष्कृतः—यहाँ पर आदिकर्म अर्थात् कार्य के प्रारम्भ अर्थ में कर्तृवाच्य में क्त प्रत्यय है। आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या (वार्तिक) और आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च (३-४-७१) से क्त प्रत्यय। अतः अर्थ होगा—सूर्य उदय हो रहा है। सूर्य उदितो भवति, अर्थ है

अतः प्रक्रमभंग दोष नहीं है। ( ८ ) अरुण०—अरुणः पुरःसरः यस्य सः, वहु०। अरुण जिसके आगे चल रहा है। ( ६ ) युगपद्०—व्यसनमुदयः च, द्वन्द्व, युगपद् व्यसनोदयौ, ताभ्याम्, कर्मधारय। एक साथ ही अस्त और उदय होने से। (१०) आत्मदशा०—आत्मनः दशानाम् अन्तराणि, तत्पुरुष। अपने दशाविशेषों में नियन्त्रित है। समय ही किसी को उन्नत करता है और किसी को अवनत। जो आज उन्नत है, वह कल अवनत होता है और जो आज अवनत है, वह कल उन्नत होता है, यह चन्द्रमा और सूर्य शिक्षा देते हैं। अतः उन्नति में हर्ष और अवनति में शोक नहीं करना चाहिए। ये दशाएँ परिवर्तनशील हैं। मेघदूत (२-४८) में कहा है—कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। (११) चन्द्र और सूर्य में दो सज्जनों के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति है। चन्द्र और सूर्य दोनों प्रस्तुत हैं। अतः तुल्ययोगिता है। चन्द्र और सूर्य का क्रमशः व्यसन और उदय से संवन्ध होने से यथासंख्य है। इव उत्प्रेक्षा-बोधक है। यहाँ पर अपने पक्ष के अर्थ की सिद्धि के लिए उदाहरण देने से दृष्टान्त नामक नाटकीय लक्षण है। इसका लक्षण है—दृष्टान्तो यस्तु पक्षार्थसाधनाय निदर्शनम्। (सा० दर्पण ६-१७६)।

**३०. (ख) अपि च—**

**अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे**
**दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।**
**इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य**
**दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥३॥**

**अन्वय**—शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा (सती) मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् अबलाजनस्य इष्टप्रवासजनितानि दुःखानि अतिमात्रसुदुःसहानि।

**और भी—चन्द्रमा के छिप जाने पर वही कुमुदिनी (अब) स्मरणीय शोभावाली होन से मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। वस्तुतः स्त्रियों को अपने इष्ट व्यक्ति के प्रवास से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असह्य होते हैं ॥३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—शशिनि—विधौ, अन्तर्हिते—अस्तं गते सति, सा एव—सैव मनोहारिणी, कुमुद्वती—कुमुदिनी, संस्मरणीयशोभा—नष्टकान्तिः सती, दृष्टिं—नेत्रम्, न नन्दयति—न आह्लादयति। नूनम्—अवश्यमेव, अबलाजनस्य—स्त्रीजनस्य, इष्ट०—इष्टस्य प्रियतमस्य प्रवासेन देशान्तरगमनेन जनितानि उत्पादितानि, दुःखानि—कष्टानि, अतिमात्र०—अतिमात्रम् अत्यधिकं सुदुःसहानि

असह्यानि भवन्ति। अत्र समासोक्तिः काव्यलिङ्गमर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। तृतीयं पताकास्थानकं चास्ति। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) अन्तर्हिते—छिपने पर। अन्तर्+धा+क्त। धा को हि हो जाता है। ( २ ) कुमुद्वती—कुमुदिनी रात्रि में खिलती है और दिन में मुरझा जाती है। ( ३ ) संस्मरणीयशोभा—कुमुदिनी की शोभा अब केवल स्मरण की चीज हो गई है। संस्मरणीया शोभा यस्याः सा, बहु०। ( ४ ) अबला०—स्त्रियाँ। यहाँ पर अबला शब्द साभिप्राय है, स्त्रियों का पति ही बल है, उसके बिना वे अबला हैं। अतएव उसके वियोग में दुःखित रहती हैं। ( ५ ) अतिमात्र०—अतिमात्रं सुदुःसहानि, कर्मधारय। अत्यधिक असह्य। दुःसह के पूर्व सु शब्द उसकी अधिकता या कठोरता का सूचक है। सुदुःसह–सु+दुः+सह्+खल्। ( ६ ) यहाँ पर शशी सकलंक है, फिर भी उसका प्रियतम होने से कुमुदिनी खिन्न है, इसी प्रकार दुष्यन्त का कार्य भी सदोष है, फिर भी शकुन्तला दुःखित है। इस श्लोक में चन्द्र और कुमुदिनी के द्वारा दुष्यन्त और शकुन्तला की ओर संकेत है। ( ७ ) यहाँ पर चन्द्र और कुमुदिनी में दुष्यन्त और शकुन्तला का आरोप होने से समासोक्ति है। संस्मरणीयशोभा दृष्टि न नन्दयति का कारण है, अतः काव्यलिंग है। उत्तरार्ध में सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। यहाँ पर शकुन्तला को शीघ्र राजा के पास भेजना चाहिए, यह गूढ अर्थ होने से तीसरा पताकास्थानक है। उसका लक्षण है—अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्। श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते। (सा० दर्पण ६-४८)।

इस श्लोक के बाद बँगला संस्करण में निम्नलिखित दो श्लोक और दिए हैं।

(१) अपि च—कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात् खुरविलिखितादुत्थितश्चैष सद्यः
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्गमायच्छमानः॥

और भी—प्रातःकालीन सन्ध्या बेर की झाड़ियों पर पड़ी ओस की बूंदों को लाल रंग का बना रही है। जागा हुआ मोर कुशनिर्मित कुटी की छत को छोड़ रहा है। खुर से खोदे हुए यज्ञवेदी के किनारे से उठा हुआ यह मृग अपने अंगों को फैलाता हुआ पीछे की ओर से उठ रहा है। ( मन्दाक्रान्ता छन्द। स्वभावोक्ति अलंकार। )

(२) अपि च—पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।

सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
रत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा ।।

और भी—अन्धकार को नष्ट करके जो पर्वतराज सुमेरु की चोटी पर पैर ( किरण ) रखकर, विष्णु के मध्यमस्थान ( अर्थात् आकाश ) पर आरूढ हुआ। वही यह चन्द्रमा थोड़ी-सी शेष किरणों के साथ आकाश से गिर रहा है। बड़ों का भी अति ऊँचे स्थान पर चढ़ना पतन में ही परिवर्तित होता है। ( मन्दाक्रान्ता छन्द। समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास और श्लेष अलंकार हैं। )

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

३१. अनसूया—यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्य जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। [जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।]

(पर्दा हटाकर प्रविष्ट होकर)

अनसूया—यद्यपि विषयों से विमुख व्यक्ति (हम लोगों) को ये सब बातें ज्ञात नहीं हैं, तथापि (मैं समझती हूँ कि) राजा ने शकुन्तला के साथ अशिष्ट व्यवहार किया है।

३२. शिष्यः—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः।)

शिष्य—मैं गुरु से निवेदन करता हूँ कि हवन का समय हो गया है। (प्रस्थान।)

३३. अनसूया—प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। कामं इदानीं सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य

---

पाठभेद—३३. नि० करिष्ये (करूँगी)। नि० निजकार्येषु (अपने कामों में)। नि० कोपः [कोवो] (क्रोध)।

विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्। [पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो दाणिं सकामो होदु, जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससो सावो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं तस्स विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थंगदे अम्हेहिं किं करणिज्जं।]

**अनसूया**—जागी हुई भी मैं क्या करूँ? अभ्यस्त दैनिक कार्यों में भी मेरे हाथ-पाँव नहीं चल रहे हैं। कामदेव की अब इच्छा पूर्ण हो, जिसने असत्य-प्रतिज्ञ व्यक्ति के प्रति शुद्ध हृदय वाली सखी (शकुन्तला) का प्रेम कराया है। अथवा दुर्वासा का शाप (ही) यह बिगाड़ करा रहा है। नहीं तो कैसे वह राजर्षि उस प्रकार की (मीठी) बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी न भेजता। अतः यहाँ से वह पहचान की अँगूठी हम उसके पास भेजती हैं। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों में से किससे प्रार्थना करें (कि वह संवाद ले जाए)? हमारी सखी पर दोष आएगा। इसलिए उद्यत होते हुए भी मैं प्रवास से लौटे हुए पिता काश्यप को यह समाचार बताने में असमर्थ हूँ कि शकुन्तला का (गान्धर्व) विवाह दुष्यन्त से हो गया है. और वह गर्भिणी है। ऐसी अवस्था में हम क्या करें?

### टिप्पणी

(१) **अपटीक्षेप**—पटचाः क्षेपः पटीक्षेपः, न पटीक्षेपः। पर्दा उठाए बिना ही केवल हाथ से एक ओर पट को झटका देकर प्रवेश करना। राघवभट्ट ने

अपटी का अर्थ पर्दा लेकर अर्थ किया है कि पर्दा हटा कर। सहसा कोई बात सूचित करनी हो तो अपटीक्षेप दिखाया जाता है। पात्र पर्दे को झटका देकर रंगमंच पर आता है, पर्दा उठाया नहीं जाता। अन्यथा यहाँ पर दूसरे विष्कम्भक की आवश्यकता होती। (२) विषय०—हम लोग सांसारिक बात नहीं जानती हैं, फिर भी इतना अवश्य कहेंगी कि दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ अनुचित कार्य किया है कि अब तक उसका समाचार भी नहीं पूछा। (३) **कामः०**—कामदेव की इच्छा पूर्ण हो कि उसने झूठे व्यक्ति के साथ शकुन्तला का प्रेम कराया और शकुन्तला को दुःख में डाला। (४) **लेखमात्रमपि**—पत्रमात्र भी। (५) **एतावतः०**—इतना लम्बा समय बीत गया अर्थात् इतने दिनों तक। (६) **अङ्गुलीयकम्०**—राजा वाली अँगूठी उसके पास भेजें, उससे संभव है उसे शकुन्तला की याद आवे। (७) **दुःखशीले०**—तपस्वी लोग दुःख सहन करने वाले हैं, संयमी हैं। उनमें से भला कौन इस प्रकार के प्रेमसंवाद को ले जाने को तैयार होगा? (८) **सखीगामीदोष०**—यह बात ऋषि को बताई जाएगी तो सारा दोष शकुन्तला पर ही पड़ेगा कि उसने ऐसा निकृष्ट कार्य क्यों किया। (९) **परिणीताम्**—विवाहित। (१०) **आपन्नसत्त्वाम्**—गर्भिणी। सत्त्वम् आपन्ना, तत्पुरुष।

(प्रविश्य)

३४. **प्रियंवदा**—(सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। [सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं।]

**(प्रविष्ट होकर) प्रियंवदा—(हर्ष के साथ) सखी, शकुन्तला के प्रस्थान-समय के मांगलिक कार्यों को पूरा करने के लिए शीघ्रता करो।**

३५. **अनसूया**—सखि, कथमेतत्। [सहि, कहं एदं।]

**अनसूया—सखी, यह कैसे?**

३६. **प्रियंवदा**—शृणु। इदानीं सुखशयितप्रच्छिका शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि। [सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि।]

**प्रियंवदा—सुनो। मैं अभी 'सुखपूर्वक सोई कि नहीं' यह पूछने के लिए शकुन्तला के पास गई थी।**

---

पाठभेद—३४. नि० त्वरस्व [तुवर] इति, नास्ति। ३६. नि० शयन० (सोना)।

Funding by IKS-MoE

३७. अनसूया—ततस्ततः। [तदो तदो।]

**अनसूया—तब क्या हुआ ?**

३८. प्रियंवदा—तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्टया धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति। [दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं। दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।]

**प्रियंवदा—तब लज्जा से नीचे मुंह की हुई उसको पिता काश्यप ने गले लगाकर इस प्रकार उसका अभिनन्दन किया—"सौभाग्य से धुएँ से व्याकुल दृष्टि वाले भी यजमान की आहुति ठीक अग्नि में ही पड़ी। पुत्री, योग्य शिष्य को दी गई विद्या की तरह तुम अशोचनीय हो गई हो। आज ही ऋषियों से सुरक्षित करके तुमको (तुम्हारे) पति के पास भेज दूंगा।"**

### टिप्पणी

( १) **प्रस्थान०**—प्रस्थान के समय किए जाने वाले मांगलिक कार्यों के लिए। कौतुक शब्द का अर्थ है मांगलिक कार्य या मंगलाचार। मंगलार्थं सुधागैरिकलेपादि यत् क्रियते तत् कौतुकमुच्यते। (चारित्रवर्धन)। कौतुक का अर्थ कंगन, विवाह के समय हाथ में पहना जाने वाला धागा, भी है। ( २ ) **सुखशयित०**—सुखेन शयितं सुखशयितम्, सुप्सुपा समास। तत् पृच्छतीति। सुखशयित+प्रच्छ्+ण्वुल् (अक)। तुमुन्ण्वुलौ० (३-३-१०) से ण्वुल्। ण्वुल् प्रत्यय करने पर स्त्रीलिंग में प्रच्छिका ही रूप बनेगा। पाठभेद—सुखशयित-पृच्छिका रूप प्रकारान्तर से बन सकता है। पृच्छा शब्द से स्वार्थ में कन् पृच्छिका। सुखशयितस्य पृच्छिका, तत्पुरुष। सुखपूर्वक सोना हुआ या नहीं, यह पूछना।

---

पाठभेद—३७. नि० अनसूया···तदो, इति वाक्यं नास्ति। ३८. नि० ततो यावदेनां [तदो जाव] (तब ही इसको)।

( ३ ) **लज्जा०**—लज्जया अवनतमुखीम्, तत्पुरुष। लज्जा से नीचे मुंह की हुई। ( ४ ) **अभिनन्दितम्**—ऋषि ने उसके कार्य को स्वीकृत किया और उसे बधाई दी। ( ५ ) **दिष्टया**—सौभाग्य से। ( ६ ) **धूमा०**—धूमेन आकुलिता दृष्टिः यस्य तस्य, बहु०। धुएँ से व्याकुल दृष्टि वाले। ( ७ ) **सुशिष्य०**—प्राचीन परम्परा के अनुसार शिष्य की परीक्षा लेकर योग्य शिष्य को ही विद्या दी जाती थी। योग्य शिष्य को विद्या देने से विद्या की श्रीवृद्धि होती थी। शकुन्तला भी विद्या के तुल्य पवित्र है और योग्य व्यक्ति के हाथ में गई है। इसी प्रकार के भाव को व्यक्त करने वाली सूक्तियाँ ये हैं—(क) विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्। असूयकाय मां मा दास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा। (मनु० २-११४)। (ख) विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मां ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्। (निरुक्त २-३) (ग) विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि त्वं मां पालयानर्हते मानिने नैव मा दाः, गोपाय मां श्रेयसी तथाऽहमस्मि। (छान्दोग्य ब्राह्मण)। (घ) प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय प्रक्षीणदोषाय यथोक्तकारिणे। गुणान्वितायाऽनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सकलं मुमुक्षवे।। (वेदान्तसार श्लोक ३)।

**३९. अनसूया——अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः।** [अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।]

**अनसूया—किसने यह समाचार पिता काश्यप को बताया ?**

**४०. प्रियंवदा——अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।** [अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईए वाणिआए।]

**प्रियंवदा—यज्ञशाला में प्रविष्ट होने पर (उनको) अशरीरधारी छन्दोमयी वाणी ने।**

**४१. अनसूया——(सविस्मयम्) कथमिव।** [कहं विअ।]

**अनसूया—(आश्चर्य के साथ) किस रूप में ?**

**४२. प्रियंवदा——(संस्कृतमाश्रित्य)**

**दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।**
**अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥४॥**

**अन्वय**—ब्रह्मन्, दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

---

पाठभेद—४१. नि० अनसूया····विअ, इति वाक्यं नास्ति।

**प्रियंवदा—(संस्कृत में बोलती है)—**

**हे ब्रह्मन्, दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज (वीर्य) को पृथ्वी के कल्याण के लिए धारण करने वाली (अपनी) पुत्री को छिपी हुई अग्नि से युक्त शमीवृक्ष के तुल्य समझो ।।४।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे ब्रह्मन्—हे द्विजोत्तम, दुष्यन्तेन—राज्ञा दुष्यन्तेन, आहितं—गर्भाधानरूपेण संस्थापितम्, तेजः—वीर्यम्, भुवः—पृथिव्याः, भूतये—कल्याणाय, दधानां—धारयन्तीम्, तनयां—स्वपुत्रीं शकुन्तलाम्, अग्निगर्भाम्—अग्निः वह्निः गर्भे अन्तः यस्याः ताम्, शमीमिव—शमीवृक्षमिव, अवेहि—जानीहि । अत्रोपमाऽलंकारः । मार्गनामकं गर्भसन्ध्यङ्गं चास्ति । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **अग्निशरणम्**—यज्ञशाला । यज्ञशाला यज्ञकार्य के लिये ही होती है। इसमें तीन अग्नियों के लिये ३ कुंड होते हैं। तीन अग्नियों को त्रेता भी कहते हैं। तीन अग्नियों के नाम हैं—गार्हपत्य अग्नि, आहवनीय अग्नि और दक्षिणाग्नि । ( २ ) **छन्दोमयी**—छन्दोवद्ध । ( ३ ) **तेजः**—तेज, वीर्य । (४) **भूतये भुवः**—संसार के कल्याण के लिए । यह संकेत करता है कि शकुन्तला का पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा । ( ५ ) **अवेहि**—जानो । अव+आ+इ का लोट् म० पु० एक० का रूप है । अव+एहि=अवेहि । ओमाङोश्च (६-१-९५) से पररूप । ( ६ ) **अग्निगर्भां शमीम्**—जिस प्रकार शमी वृक्ष के अन्दर अग्नि होती है, उसी प्रकार शकुन्तला में भी तेजोमय जीव गर्भ में है । महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ३५ के अनुसार कथा है कि देवताओं की प्रार्थना पर अग्नि ने शिव के वीर्य को धारण किया । उसके उग्र ताप को सहन न कर सकने के कारण वह पहले पीपल में प्रविष्ट हुआ, फिर शमीवृक्ष में । देवताओं ने अग्नि को ढूंढ़कर शमी को अग्नि का स्थायी आधार बना दिया । अतः थोड़े से रगड़ने से भी शमी में अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इत्युक्त्वा निःसृतोऽश्वत्थादग्निर्वारणसूचितः । प्रविवेश शमीगर्भमथ वह्निः सुषुप्सया ।···इत्युक्त्वा तं शमीगर्भे वह्निमालक्ष्य देवताः । तदेवायतनं चक्रुः पुण्यं सर्वक्रियास्वपि ।। ततः प्रभृति चाप्यग्निः शमीगर्भेषु दृश्यते ।। महाभारत शल्यपर्व अध्याय ४६ के अनुसार भृगु के शाप से भयभीत अग्नि ने शमी वृक्ष में प्रवेश किया । भृगोः शापाद् भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान् । (इत्यादि) । (७) इस श्लोक में मार्ग नामक गर्भ सन्धि का अंग है, क्योंकि यहाँ पर वास्तविक बात का प्रकाशन है । इसका लक्षण है—तत्त्वार्थकथनं मार्गः (सा०दर्पण ६-९६) ।

**४३. अनसूया—(प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे । किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषम-**

नुभवामि। [सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं परितोसं अणुहोमि।]

अनसूया—(प्रियंवदा को गले लगा कर) सखी, मैं बहुत प्रसन्न हूं। किन्तु शकुन्तला आज ही (पति-गृह को) ले जाई जा रही है, इसलिए मेरा हृदय खद-मिश्रित सन्तोष का अनुभव कर रहा है।

४४. प्रियंवदा—सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु। [सहि, वअं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु।]

प्रियंवदा—सखी, हम दोनों अपने दुःख को किसी प्रकार दूर कर लेंगी। वह बेचारी (किसी प्रकार) सुखी हो।

४५. अनसूया—तेन ह्येतस्मिश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि। [तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालान्तरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसण्णिहिदं करेहि। जाव अहंपि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआणि त्ति मंगलसमालंभणाणि विरएमि।]

अनसूया—ठीक है। मैंने इस आम की डाल में लटके हुए नारियल के डिब्बे में इसी अवसर के लिए देर तक रुकने वाली बकुल (मौलसिरी) की माला रखी है, तो इसको तुम अपने हाथ में लो। मैं भी तब तक उसके लिए गोरोचन, तीर्थों की मिट्टी, दूब के अग्रभाग आदि मांगलिक वस्तुओं को तैयार करती हूं।

४६. प्रियंवदा—तथा क्रियताम्। [तह करीअदु।]

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति।)

---

पाठभेद—४४. [आवां] (हम दोनों)। ४५. नि० का० नालिकेर० (नारियल)। नि० का० मृगरोचना [मिअलोअण] (गोरोचन)।

Funding by IKS-MoE

**प्रियंवदा**—ऐसा ही करो।

(अनसूया का प्रस्थान। प्रियंवदा फूलों को लेने का नाटच करती है।)

### टिप्पणी

(१) **उत्कण्ठा०**—उत्कण्ठया दुःखेन साधारणं समानम्, तत्पु०। दुःख से मिश्रित। शकुन्तला के जाने का खेद है। (२) **उत्कण्ठाम्०**—हम दोनों किसी प्रकार अपना मन बहला लेंगी। (३) **तपस्विनी**—बेचारी। तपस्या के दुःख से पीड़ित, अतः आश्रय की इच्छुक। (४) **निर्वृता०**—सुखी हो। शकुन्तला का किसी प्रकार भला हो। (५) **चूत०**—आम की शाखा में लटके हुए। (६) **नारिकेल०**—नारियल के डिब्बे में। समुद्गक—डिब्बा या दोना। नारियल के ऊपर का थोड़ा हिस्सा काटने से साधारण डिब्बा सा बन जाता है। समुद्गक—समुद्गच्छतीति, सम्+उद्+गम्+ड (अ)। ड् के कारण अम् का लोप। स्वार्थ में कन् (क)। (७) **कालान्तर०**—देर तक रुकने वाली अर्थात् जिसकी गन्ध देर तक रुकती है। (८) **केसर०**—केसर वकुल अर्थात् मौलसिरी या मौलश्री को कहते हैं, उसकी माला। (९) **गोरोचना**—गोरोचन। यह गाय के पित्त या मूत्र से तैयार होती है। यह पीली होती है और मांगलिक अवसरों पर काम में आती है। स्वनामख्यातपीतवर्णद्रव्यम् (शब्दकल्पद्रुम)। (१०) **समालम्भनानि**—सामग्री या अलंकार की वस्तुएँ।

(नेपथ्ये)

**४७. गौतमि, आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय।**

(नेपथ्य में) गौतमी, शार्ङ्गरव आदि को शकुन्तला को (पतिगृह) ले जाने के लिए आदेश दे दो।

**४८. प्रियंवदा—(कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते। [अणसूए, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।]**

प्रियंवदा—(सुनकर) अनसूया, जल्दी करो, जल्दी करो। ये हस्तिनापुर को जाने वाले ऋषि लोग पुकारे जा रहे हैं।

---

पाठभेद—४८. नि० त्वरस्व [तुवर], इति नास्ति। नि० आकार्यन्ते (बुलाए जा रहे हैं)।

Funding by IKS-MoE

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

४९. अनसूया—सखि, एहि । गच्छावः [सहि, एहि । गच्छम्ह ।] (इति परिक्रामतः ।)

(मांगलिक वस्तुएँ हाथ में लिए प्रविष्ट होकर)

अनसूया—सखी, आओ, चलें। (दोनों चारों ओर घूमती हैं।)

५०. प्रियंवदा—(विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । उपसर्पाव एनाम् । [एसा सुज्जोदए एव सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवअणिआहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ । उवसप्पम्ह णं ।] (इत्युपसर्पतः ।)

प्रियंवदा—(देखकर) यह शकुन्तला सूर्योदय के समय ही पूर्ण स्नान करके नीवार (तिन्नी के चावल) हाथ में लिए, स्वस्तिवाचन का पाठ करती हुई, तपस्विनियों से अभिनन्दन की जाती हुई बैठी है। हम इसके पास चलती हैं। (दोनों उसके पास जाती हैं।)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

५१. तापसीनामन्यतमा—(शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व । [जादे, भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि ।]

(तदनन्तर पूर्वोक्तरूप में आसन पर बैठी हुई शकुन्तला का प्रवेश।)

एक तपस्विनी—(शकुन्तला से) पुत्री, पति के बहुत सम्मानसूचक 'महारानी' शब्द को प्राप्त करो।

५२. द्वितीया—वत्से, वीरप्रसविनी भव । [वच्छे, वीरप्पसविणी होहि । ]

दूसरी—पुत्री, वीर पुत्र को जन्म देने वाली हो।

५३. तृतीया—वत्से, भर्तुर्बहुमता भव । [वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि ।] (इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः ।)

**तीसरी**—पुत्री, पति के बहुत अधिक सम्मान को प्राप्त कर।

(आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर अन्य सभी तपस्विनियों का प्रस्थान।)

### टिप्पणी

( १ ) **शार्ङ्गरवमिश्राः**—यह दो प्रकार से बन सकता है—(क) शार्ङ्गरवेण मिश्राः, तत्पुरुष। शार्ङ्गरव आदि। मिश्र शब्द मिश्रित या इत्यादि अर्थ में है। (ख) मिश्र शब्द पूज्य अर्थ में भी आता है। शार्ङ्गरवः प्रधानं पूज्यो वा येषां ते शार्ङ्गरवमिश्राः। नित्यसमास। शार्ङ्गरव जिनमें मुख्य है। ( २ ) **हस्तिनापुर०**—यह नगर भरत के प्रपौत्र राजा हस्ती ने बसाया था। भरत>सुमन्यु>सुहोत्र>हस्ती। महाभारत (१-९५) के अनुसार वह भरत का प्रपौत्र था, किन्तु हरिवंशपुराण (अध्याय २०), वायुपुराण (अध्याय ९९ और १६५) और विष्णुपुराण (४ अ० १८) के अनुसार हस्ती भरत से सातवाँ राजा था। यह नगर वर्तमान दिल्ली से ५६ मील उत्तरपूर्व की ओर गंगा की एक सहायक नदी के किनारे था। कालिदास ने अपने समय में प्रचलित नाम ही दुष्यन्त की राजधानी के रूप में लिखा है। ( ३ ) **शब्दाय्यन्ते**—शब्दं करोति शब्दायते। शब्दवैर० (३-१-१७) से क्यङ। फिर णिजन्त से कर्मवाच्य। शब्दाय+णिच्+लट्। पुकारे ज रहे हैं। ( ४ ) **शिखामज्जिता**—सिर धोकर नहाई हुई। ( ५ ) **प्रतीष्ट०**—गृहीत। लिया है नीवार हाथ में जिन्होंने। ( ६ ) **स्वस्तिवाचनिकाभिः**—स्वस्ि-वाचनं प्रयोजनं यासामिति। प्रयोजन अर्थ में अनुप्रवचनादिभ्यश्छः (५-१-१त११) से छ और पुण्याहवाचनादिभ्यः लुक्० (वार्तिक) से छ का लुक्। स्वार्थ में कन्। स्वस्तिवाचन का पाठ करने वाली। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में स्त्रियाँ वेद-मन्त्रों का पाठ करती थीं। ( ७ ) **वीरप्रसविनी**—वीरं प्रसूते इति। वीर पुत्र को जन्म देन वाली। वीर+प्र+सू+इनि (इन्)। ताच्छील्य अर्थ में जिदृक्षिविश्री० (३-२-१५७) से इनि प्रत्यय।

५४. **सख्यौ**—(उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु।
[सहि, सुहमज्जणं दे होदु।]

**दोनों सखियाँ**—(पास पहुँच कर) सखी, तू सदा सुखी हो। (तेरा स्नान सुखकर हो।)

५५. **शकुन्तला**—स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्।
[साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह।]

**शकुन्तला**—मेरी सखियो, आपका स्वागत है। इधर बैठो।

५६. **उभे**—(मङ्गलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः।
[हला, सज्जा होहि। जाव दे मङ्गलसमालम्भणं विरएम।]

दोनों--(मांगलिक पात्रों को लेकर और बैठकर) सखी शकुन्तला, तैयार हो जाओ। हम लोग अब तेरा मांगलिक अलंकरण (सजावट) करती हैं।

५७. **शकुन्तला**--इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति। [इदं पि बहु मन्तव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि।] (इति बाष्पं विसृजति।)

शकुन्तला--यह भी बहुत मानने के योग्य है। अब मेरे लिए सखियों के द्वारा अलंकृत होना दुर्लभ हो जायगा। (रोती है।)

५८. **उभे**--सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्। [सहि, उइणं दे ण मङ्गलकाले रोइदुं।]

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।)

दोनों--सखी, इस मङ्गल के अवसर पर तेरा रोना उचित नहीं है। (आँसुओं को पोंछकर अलंकृत करने का नाटच करती हैं।)

५९. **प्रियंवदा**--आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। [आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि।]

प्रियंवदा--(बहुमूल्य) आभूषणों के योग्य यह (सुन्दर) रूप आश्रम में प्राप्य अलंकारों से विकृत किया जा रहा है।

(प्रविश्योपायनहस्तावृषिकुमारकौ)

६०. **उभौ**--इदमलंकरणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः।)

(आभूषणों को हाथ में लिए हुए दो ऋषिकुमारों का प्रवेश।)

दोनों--ये आभूषण हैं। (इनसे) इस देवी (शकुन्तला) को अलंकृत करें। (उनको देखकर सभी आश्चर्यान्वित होती हैं।)

६१. **गौतमी**--वत्स नारद, कुत एतत्। [वच्छ णारअ, कुदो एदं।]

गौतमी--पुत्र नारद, ये कहाँ से (मिले हैं) ?

---

पाठभेद--६०. नि० ऋषिकुमारकौ, इति नास्ति।

६२. **प्रथमः**——तातकाश्यपप्रभावात् ।

**पहला**—पिता काश्यप के प्रभाव से।

६३. **गौतमी**——किं मानसी सिद्धिः । [किं माणसी सिद्धिः ।]

**गौतमी**—क्या ये ऋषि के मानसिक संकल्प के फल हैं ?

### टिप्पणी

( १ ) **सुखमज्जनं०**—तेरा स्नान सुखकारी हो अर्थात् तू सदा सुखी हो। दुर्वासा के शाप का कुछ भी प्रभाव न हो, इसलिए सखियाँ इस प्रकार कहती हैं। ( २ ) **मंगलसमालम्भनं०**—तेरी मांगलिक सजावट हम लोग करती हैं। ( ३ ) **इदमपि०**—आप लोगों के द्वारा अलंकृत किए जाने को मैं वहुत गोरव की वात समझती हूँ। ( ४ ) **बाष्पं०**—रोती है। रोना अशुभ है, अतः भावी वियोग की सूचना देता है। ( ५ ) **आभरणोचितम्०**—तुम्हारा रूप इतना सुन्दर है कि इस पर बहुमूल्य आभूषणों से अलंकार होना चाहिए। ( ६ ) **विप्रकार्यते**—विकृत किया जा रहा है अर्थात् बिगाड़ा जा रहा है। आश्रम के अलंकारों से रूप सुन्दर होने के स्थान पर बिगड़ रहा है। ( ७ ) **उपायनहस्तौ**—भेंट रूप में प्राप्त आभूषणों को हाथ में लिए हुए। उपायन—भेंट, उपहार। ( ८ ) **मानसी. सिद्धिः**—क्या ये ऋषि के मानसिक संकल्प के फल हैं ? ऋषि ने विचार किया और ये प्रकट हो गए। योगियों को ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अतएव याज्ञवल्क्य ने कहा है—अन्तर्धानं स्मृतिः कान्तिर्दृष्टिः श्रोत्रज्ञता तथा। निजं शरीरमुत्सृज्य परकायप्रवेशनम्। अर्थानां छन्दतः सृष्टिर्योगसिद्धेर्हि लक्षणम्। (याज्ञ० स्मृ० ३-२०२, २०३)।

६४. **द्वितीयः**——न खलु । श्रूयताम् । तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति । तत इदानीम्——

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥५॥

**अन्वय**—नः केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्।

---

पाठभेद—६४ नि० का० चरणोपभोगसुलभो० (पैरों में उपयोग के योग्य)। नि० का० तत्० (उसके)।

केनचित् चरणोपरागसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः । अन्येभ्यः आपर्वभागोत्थितैः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि ।

**दूसरा—नहीं। सुनिए। पूजनीय (ऋषि) ने हमें आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल चुनकर लाओ। तब—**

**हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य लाक्षारस (अलक्तक, महावर) प्रकट किया (दिया)। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए, सुन्दर किसलयों (कोंपलों) की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वन-देवता के करतलों से आभूषण दिए ॥५॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—नः—अस्मभ्यम्, केनचित् तरुणा—वृक्षेण, इन्दुपाण्डु—चन्द्रशुभ्रम्, माङ्गल्यं—मङ्गलकर्मयोग्यम्, क्षौमं—दुकूलम्, आविष्कृतम्—प्रकटीकृतम्, प्रदत्तमित्यर्थः। केनचित्—केनापि तरुणा, चरणोपरागसुभगः—चरणयोः पादयोः उपरागः रञ्जनं तत्र सुभगः सुयोग्यः, लाक्षारसः—अलक्तकरसः, निष्ठ्यूतः—आविष्कृतः। अन्येभ्यः—अन्यवृक्षेभ्यः, आपर्वभागोत्थितैः—मणिबन्धं यावत् निर्गतैः, किसलयो०—किसलयानां नवपल्लवानाम् उद्भेदाः विकासाः तेषां प्रतिद्वन्द्विभिः प्रतिस्पर्धिभिः, वनदेवताकरतलैः—वनदेवतायाः हस्तैः, आभरणानि—आभूषणानि, दत्तानि—वितीर्णानि। अत्रोपमाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **वनस्पतिभ्यः**—वनस्य पतिः, वन+पति, पारस्करप्रभृतीनि० (६-१-१५७) से मध्य में स्। वनस्पति का प्रयोग साधारणतया वृक्षमात्र के लिए होता है। वनस्पति का पारिभाषिक अर्थ है, जिन वृक्षों पर बिना फूल के फल आते हैं। अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः (मनु० १-४७), वानस्पत्यः फलैः पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पतिः (अमरकोश)। ( २ ) **क्षौमम्**—रेशमी वस्त्र। क्षुमायाः विकारः क्षौमम्। क्षुमा—सन। ( ३ ) **इन्दुपाण्डु**—चन्द्रमा के तुल्य श्वेत। ( ४ ) **माङ्गल्यम्**—मङ्गलमेव माङ्गलम्, स्वार्थ में अण्। माङ्गले साधु माङ्गल्यम्। माङ्गल+यत्, साधु अर्थ में यत् (य)। मंगल के अवसर पर पहनने के योग्य। ( ५ ) **आविष्कृतम्**—प्रकट किया अर्थात् निकाल कर दिया। ( ६ ) **निष्ठ्यूतः**—निकाला, उगला। यहाँ पर निष्ट्यूत का लाक्षणिक अर्थ 'निकाला' लिया गया है, अतः अश्लीलता दोष नहीं है। निकाल कर देने का भाव है। ( ७ ) **चरणोपराग०**—चरणयोः उपरागे सुभगः, तत्पु०। पैरों को रंगने के योग्य। यह पाठ 'चरणोपभोगसुलभः' से अधिक उपयुक्त है। उसका अर्थ है—पैरों में उपयोग के योग्य। ( ८ ) **लाक्षारसः**—

अलक्तक या महावर, जो पैरों को रंगने के लिए लगाया जाता है। (९) **अन्येभ्यः**—अन्येभ्यः में पंचमी 'उत्थितैः' के कारण है। अन्य वृक्षों से उठे हुए करतलों से। अन्येभ्यः रखने पर कर्तृप्रक्रमभंग दोष है। पहले केनचित् कहकर अन्येन या अन्यैः कहना चाहिए, पंचमी नहीं। अतः 'अन्यैस्तैः' पाठ रखकर दोष का निवारण करना चाहिए। (१०) **आपर्व०**—पर्वभागं यावत् आपर्वभागम्, अव्ययीभाव, आपर्वभागम् उत्थितैः, सुप्सुपा समास। कलाई तक उठे हुए। (११) **किसलयो०**—किसलयानाम् उद्भेदाः, तेषां प्रतिद्वन्द्विभिः, तत्पुरुष। कोपलों के समान सुन्दर। द्वन्द्व—द्वौ द्वौ इति द्वन्द्वम्। द्वन्द्वं रहस्य० (८-१-१५) सूत्र से द्वन्द्व निपातन है। प्रतिगतं द्वन्द्वं प्रतिद्वन्द्वम्, प्रतिद्वन्द्वम् एषामस्तीति प्रतिद्वन्द्वी, मत्वर्थ में इनि (इन्)। (१२) वनदेवता के हाथों से आभूषणों का मिलना शकुन्तला के आजन्म अवैधव्य और सौभाग्य का सूचक है।

६५. **प्रियंवदा**—(शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः। [हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि।] (शकुन्तला व्रीडां रूपयति।)

**प्रियंवदा**—(शकुन्तला की ओर देखकर) सखी, (वनस्पतियों के) इस अनुग्रह से सूचित होता है कि तुम पति के घर में राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी। (शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है।)

६६. **प्रथमः**—गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

**पहला**—गौतम, आओ आओ। स्नान करके निकले हुए काश्यप को वनस्पतियों की (यह) सेवा बता दें।

६७. **द्वितीयः**—तथा। (इति निष्क्रान्तौ।)

**दूसरा**—ठीक है। (दोनों का प्रस्थान।)

६८. **सख्यौ**—अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु त आभरणविनियोगं कुर्वः। [अए, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु द आहरणविणिओअं करेह।]

---

पाठभेद—६५. नि० इति [त्ति], इत्यधिकः पाठः।

**दोनों सखियाँ**—ओह, हम लोगों ने कभी आभूषण का उपयोग नहीं किया है। चित्रकारी के कार्य से परिचित होने से हम लोग तेरे अंगों में आभूषण को पहनाती हैं।

६९. **शकुन्तला**—जाने वां नैपुणम्। [जाणे वो णेउणं।]

(उभे नाट्येनालंकुरुतः।)

**शकुन्तला**—मैं तुम्हारी निपुणता जानती हूँ।

(दोनों शकुन्तला को आभूषण पहनाने का नाट्य करती हैं।)

**टिप्पणी**

( १ ) **अभ्युपपत्त्या**—वृक्षों के अनुग्रह से। अभ्युपपत्ति—अनुग्रह। अभि+उप+पद्+क्तिन्। प्रियंवदा आदि के अनुसार यह वनस्पतियों का अनुग्रह था कि उन्होंने आभूषण आदि दिए। ( २ ) **राजलक्ष्मीः०**—इससे सूचित होता है कि तुम्हें पति के घर में राजकीय ऐश्वर्य प्राप्त होगा। (३) **अभिषेकोत्तीर्णाय**—अभिषेक अर्थात् स्नान करके निकले हुए। अभिषेक—अभि+सिच्+घञ्। उत्तीर्ण—उद्+तॄ+क्त। उत्तीर्ण—निकले हुए, बाहर आए हुए। ( ४ ) **वनस्पतिसेवाम्**—ब्रह्मचारियों के मतानुसार यह वृक्षों की ऋषि के प्रति सेवा है, अनुग्रह नहीं। ऋषि सिद्ध होने से सभी वस्तुएँ मानसिक संकल्प से उत्पन्न कर सकते हैं। (५) **चित्रकर्म०**—चित्रस्य कर्म, तस्मिन् तस्य वा परिचयः, तेन, तत्पु०। चित्र बनाने के कार्य से परिचित होने के कारण। यहाँ पर इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) चित्रकर्म अर्थात् चित्रकारी (चित्रकला) से परिचित होने के कारण हम उसी प्रकार तेरे अंगों में आभूषण पहनाएँगी। (ख) दूसरे के बनाए चित्रों में हम जिस प्रकार अलंकारों को पहना हुआ देखती हैं, उस प्रकार आभूषण पहनाएँगी। (६) **नैपुणम्**—निपुणता। निपुणस्य भावः नैपुणम्। निपुण+अण् हायनान्तयुवादिभ्योऽण् (५-१-१३०) से अण्। इसका ही गुणवचन० (५-१-१२४) से ष्यञ् प्रत्यय करने पर नैपुण्यम् भी रूप बनता है।

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः।)

७०. **काश्यपः**—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।६।

(इति परिक्रामन्ति।)

---

पाठभेद—७०. नि० कथं न (क्यों नहीं)।

**अन्वय**—अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम्, कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यम्, गृहिणः नवैः तनयाविश्लेषदुःखैः कथं नु पीड्यन्ते।

**(तदनन्तर स्नान करके आए हुए काश्यप का प्रवेश)**

**काश्यप—आज शकुन्तला विदा होगी, इसलिए मेरा हृदय दुःख से भर रहा है। आँसुओं के बहने को रोकने से (मेरा) गला भर आया है। (मेरी) दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गई है। जंगल में रहने वाले मुझको (शकुन्तला के प्रति) प्रेम के कारण इस प्रकार का दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग के दुःख से कितने अधिक दुःखित होते होंगे? ॥६॥** **(चारों ओर घूमते हैं।)**

**संस्कृत-व्याख्या**—अद्य शकुन्तला, यास्यति—पतिगृहं गमिष्यति, इति—एतस्य हेतोः, हृदयं—मम मनः, उत्कण्ठया—दुःखेन, संस्पृष्टं—समाक्रान्तमस्ति। कण्ठः—गलदेशः, स्तम्भित०—स्तम्भिता अवरुद्धा या बाष्पस्य अश्रूणां वृत्तिः प्रवृत्तिः तया कलुषः स्वरभङ्गवान् अस्ति। दर्शनं—दृष्टिः, चिन्ताजडम्—शकुन्तलाविषयकचिन्तया निश्चेष्टमस्ति। अरण्यौकसः—वनवासिनः, मम तावत्—मम कण्वस्यापि, स्नेहात्—पुत्रीप्रेम्णः, ईदृशमिदम्—एतादृशमेतत्, वैक्लव्यं—दुःखाधिक्यमस्ति तर्हि, गृहिणः—गृहस्थाः, नवैः—नूतनैः प्रथमोत्पन्नैरित्यर्थः, तनया०—पुत्रीवियोगदुःखैः, कथं नु—केनावर्णनीयेन रूपेण, पीड्यन्ते—व्याकुलीक्रियन्ते। अत्र व्यतिरेकोऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **काश्यपः**—प्रथम बार रंगमंच पर महर्षि कण्व का दर्शन होता है। (२) **संस्पृष्टम्**—व्याप्त है। सम्—अच्छी तरह से, स्पृष्टम्—छुआ हुआ अर्थात् पूर्णतया प्रभावित। सम्+स्पृश्+क्त। (३) **उत्कण्ठया**—दुःख से। कठिन वेदना को उत्कण्ठा कहते हैं। उत्कण्ठा का लक्षण है—रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः। (४) **स्तम्भित०**—स्तम्भिता बाष्पवृत्तिः, कर्मधारय, तया कलुषः, तत्पुरुष। आँसू के प्रवाह के रुकने से भरा हुआ। अतएव आवाज स्पष्ट नहीं निकल पाती। कलुष—मैला, स्वरभंग-युक्त। (५) **दर्शनम्**—दृष्टि, दर्शनशक्ति। (६) **चिन्ताजडम्**—चिन्ता का अर्थ है किसी वस्तु को निरन्तर सोचना या उसका ध्यान करना। शकुन्तला का ही निरन्तर ध्यान आने से दृष्टि निश्चेष्ट हो गई है। कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लग रही है। (७) **अरण्यौकसः**—अरण्यम् ओकः गृहं यस्य, बहु०। वन ही जिसका घर है अर्थात् वन-निवासी। (८)

**गृहिणः**—गृहस्थ। जब वनवासी तपस्वी की यह अवस्था है, तो गृहस्थ का क्या हाल होता होगा? (६) **कथं नु**—क्या ही अवर्णनीय रूप में। (१०) **तनया०**—प्रथम बार पुत्री के वियोग के दुःख से। तनयानां विश्लेषाद् दुःखं तैः, तत्पुरुष। (११) यहाँ पर गृहिणः में व्यतिरेक अलंकार है। गृहस्थ को मुनि से अधिक दुःख होने का वर्णन है।

**विशेष**—शाकुन्तल के विषय में कहा गया है कि—काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला। तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥ शाकुन्तल में चतुर्थ अंक सर्वोत्तम है, उसमें भी चार श्लोक मुख्य हैं। ये श्लोक भाव और भाषा की उत्तमता के कारण सुप्रसिद्ध हैं। उन चारों श्लोकों में से एक श्लोक यह है। शेष तीन श्लोक ये हैं—शुश्रूषस्व० (श्लोक १८), अभिजनवतो० (१६) या अस्मान् साधु० (श्लोक १७), भूत्वा चिराय० (श्लोक २०)।

**७१. सख्यौ**—हला शकुन्तले, अवसितमण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। [हला सउन्दले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं।] (शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते।)

**दोनों सखियाँ**—सखी शकुन्तला, तुम्हारा श्रृंगार पूरा हो गया है। अब (इन) दोनों रेशमी वस्त्रों को पहन लो। (शकुन्तला उठकर पहनती है।)

**७२. गौतमी**—जाते, एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व। [जादे, एसो दे आणन्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स।]

**गौतमी**—पुत्री, आनन्द (के आँसुओं) को बहाने वाली आँखों से तुझको गले लगाते हुए से तेरे पिता यहाँ उपस्थित हैं। अब उचित शिष्टाचार का पालन करो।

**७३. शकुन्तला**—(सव्रीडम्) तात, वन्दे। [ताद, वन्दामि।]

**शकुन्तला**—(लज्जा के साथ) पिता जी, प्रणाम।

**७४. काश्यपः**—वत्से,—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥७॥

**अन्वय**—वत्से, शर्मिष्ठा ययातेः इव, भर्तुः बहुमता भव। सा पूरुम् इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।

**काश्यप**—पुत्री, शर्मिष्ठा जिस प्रकार ययाति की (अतिप्रिय रानी) थी, उसी प्रकार (तू) पति की अतिप्रिय (रानी) हो। उस (शर्मिष्ठा) ने जिस प्रकार (सम्राट् पुत्र) पूरु को (प्राप्त किया), उसी प्रकार तू भी सम्राट् पुत्र को प्राप्त कर ।।७।।

**संस्कृत-व्याख्या**—वत्से—पुत्रि, शर्मिष्ठा—वृषपर्वणः कन्या, ययातेः इव—नहुषपुत्रस्य यथा प्रियतमाऽभवत्, तथा त्वमपि, भर्तुः—राज्ञो दुष्यन्तस्य, बहुमता—प्रियतमा भव, सा—शर्मिष्ठा, पूरुमिव—चन्द्रवंशप्रदीपं सम्राजं पुत्रं पूरुं यथा तथैव, त्वमपि सम्राजं सुतं—सार्वभौमं पुत्रम्, अवाप्नुहि—लभस्व । उपमाऽलंकारः । क्रमनामकं गर्भसन्ध्यङ्गमाशीर्नामको नाट्यालंकारश्चात्र वर्तेते । श्लोको वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **अवसित०**—अवसितं समाप्तं मण्डनं यस्याः सा, बहु० । तुम्हारा शृंगार पूरा हो गया है। अवसित—अव+सो+क्त । ( २ ) **आनन्द०**—आनन्दं परितः वाहयतीति, साधुकारी अर्थ में णिनि । आनन्द+परि+वाहि++णिनि+तृतीया । आनन्द के आँसुओं को बहाता हुआ। पुत्री का विवाह हो गया, इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है। (३) **आचार**—शिष्टाचार । ( ४ ) **ययातेः इव**—ययाति चन्द्रवंश के सस्थापक राजाओं में से एक था, उसकी दो पत्नियाँ थीं—(क) दानवों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी, (ख) दानवों के राजा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। शर्मिष्ठा देवयानी के साथ सेविका के रूप में आयी थी, परन्तु उसकी सुन्दरता आदि पर मुग्ध होकर ययाति ने उससे गान्धर्व-विवाह कर लिया और उससे ही अधिक प्रेम करने लगा। ययाति के पाँच पुत्र थे, उनमें शर्मिष्ठा का पुत्र पुरु भी था। ययाति के देवयानी के साथ दुर्व्यवहार पर शुक्राचार्य ने उसे शाप दिया कि वह शीघ्र ही वृद्ध हो जाए। पुरु ने पिता की वृद्धता अपने ऊपर ले ली और पितृभक्ति के फलस्वरूप पुरुवंश का संस्थापक सम्राट् हुआ। यहाँ पर भी शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह है और वह राजा की स्त्रियों में कुछ से बाद की ही है। परन्तु अपने सौन्दर्य आदि से मुख्य रानी होती है और सम्राट् भरत को जन्म देती है। (५) **सम्राजम्**—जो राजसूय यज्ञ करता है और राजाओं का राजा होता है, वह सम्राट् कहा जाता है। सम्राट् का लक्षण है—येनेष्टं राजसूयेन मण्डलस्येश्वरश्च यः । शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स सम्राट् ।। (अमरकोश) । सर्वेभ्यः क्षितिपालेभ्यो नित्यं गृह्णाति वै करम् । स सम्राडिति विज्ञेयश्चक्रवर्ती स एव हि ।। (चण्डेश्वरकृत राजनीतिरत्नाकर ) । (६) इस श्लोक में इष्ट की उपलब्धि के कारण क्रम नामक गर्भसंधि का अंग है। उसका लक्षण है—तत्त्वोपलब्धि-रिष्टस्य क्रम इत्यभिधीयते । इष्ट सम्राट् पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद होने से आशीः नामक नाटकीय अलंकार है। विश्वनाथ ने यह श्लोक इसका उदाहरण उद्धृत किया है। इसका लक्षण है—आशीरिष्टजनाशंसा । (सा० दर्पण ६-१९९) ।

७५. गौतमी—भगवन्, वरः खल्वेषः । नाशीः ।
[भअवं, वरो क्खु एसो । ण आसिसा ।]

गौतमी—भगवन्, यह वस्तुतः वर है, केवल आशीर्वाद नहीं ।

७६. काश्यपः—वत्से, इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व । (सर्वे परिक्रामन्ति ।)

काश्यप—पुत्री, आओ । अभी हवन की गई अग्नियों की प्रदक्षिणा करो ।
(सब परिक्रमा करते हैं ।)

७७. काश्यपः—(ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते ।) वत्से,

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥८॥

प्रतिष्ठस्वेदानीम् । (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः ।

अन्वय—अमी समिद्वन्तः, वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः वैतानाः वह्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः त्वां पावयन्तु ।

काश्यप—(ऋग्वेद के छन्द में बने श्लोक से आशीर्वाद देते हैं) पुत्री, ये समिधाओं से प्रज्वलित, वेदि के चारों ओर प्रतिष्ठित, किनारे पर बिछे हुए कुशों से युक्त, यज्ञिय अग्नियां हव्य-वस्तुओं की सुगन्ध से पापों (विघ्नों) को नष्ट करती हुई तुझे पवित्र करें ॥८॥

अब तुम प्रस्थान करो । (इधर-उधर) दृष्टि डालकर वे शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं ?

संस्कृत-व्याख्या—अमी—एते, समिद्वन्तः—समिधाभिः प्रदीप्ताः, वेदिं परितः—यज्ञवेद्याः समन्तात्, क्लृप्त०—क्लृप्तानि विहितानि धिष्ण्यानि स्थानानि येषां ते, प्रान्त०—प्रान्तेषु पार्श्वभागेषु संस्तीर्णा आकीर्णाः दर्भाः कुशाः येषां ते, वैतानाः—यज्ञियाः, वह्नयः—अग्नयः, हव्यगन्धैः—हुतद्रव्यगन्धैः, दुरितं—पापं विघ्नं वा, अपघ्नन्तः—विनाशयन्तः, त्वां—शकुन्तलाम्, पावयन्तु—पवित्रतां प्रापयन्तु । अत्र परिकरोऽलंकारः । अत्र वैदिकं त्रिष्टुप् छन्दः ।

---

पाठभेद—७७. नि० का० वत्से, इति नास्ति ।

(प्रविश्य)

**७८. शिष्यः**—भगवन्, इमे स्मः।

(प्रविष्ट होकर) **शिष्य**—भगवन्, हम ये हैं।

**७९. काश्यपः**—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

**काश्यप**—अपनी बहिन को मार्ग दिखाओ।

**८०. शार्ङ्गरवः**—इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

**शार्ङ्गरव**—आप इधर चलें। (सब घूमते हैं।)

### टिप्पणी

(१) **वरः०**—आपका कथन आशीर्वाद नहीं, अपितु वर है। आपका कथन अवश्य सत्य होगा, अतः वर ही है। भवभूति ने उत्तररामचरित (१-१०) में कहा है—लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। (२) **प्रदक्षिणीकुरुष्व**—प्रदक्षिणा करो। यहाँ पर अभूततद्भाव में च्वि प्रत्यय है। (३) **ऋक्छन्दसा**—यह अभिनेताओं के लिए निर्देश है कि इस श्लोक को वैदिक मन्त्रों के तुल्य पढ़ें। यह ऋग्वेद के छन्द के अनुकरण पर बना हुआ श्लोक है। लौकिक छन्दों से यह भिन्न है, अतः यहाँ पर ऐसा निर्देश करना आवश्यक हुआ है। (४) **क्लृप्त०**—क्लृप्तानि धिष्ण्यानि येषां ते, बहु०। जिनको यथास्थान स्थापित किया गया है। वेदी में तीन अग्नियों की स्थापना होती है:—गार्हपत्य—वेदी के पश्चिम हिस्से में, दक्षिण—वेदी के दक्षिण-पश्चिम कोने में, आहवनीय—पूर्व के कोने में। (५) **प्रान्त०**—प्रान्तेषु संस्तीर्णाः दर्भाः येषां ते, बहु०। जिनके आस-पास कुशा बिछाई हुई हैं। (६) **वैतानाः**—यज्ञसंबन्धी। वितान—यज्ञ। (७) **दुरितम्**—तेरे पापों को अथवा शापरूपी विघ्न को (८) **अपघ्नन्तः**—नष्ट करती हुई। (९) यहाँ पर विशेषण साभिप्राय हैं, अतः परिकर अलंकार है। यहाँ पर कालिदास ने वैदिक त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग करके मन्त्र की रचना प्रस्तुत की है। इस छन्द में प्रत्येक चरण में ११ वर्ण होते हैं और ४ या ५ वर्ण पर यति होती है।

**८१ (क). भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः।**

**पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या**
**नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।**
**आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः**
**सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥९॥**

**अन्वय**—युष्मासु अपीतेषु या प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति। भवतां स्नेहेन

या प्रियमण्डना अपि पल्लवं न आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः उत्सवः भवति। सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति, सर्वैः अनुज्ञायताम्।

**काश्यप—हे समीपस्थ तपोवन के वृक्षो,**

**तुम्हें बिना जल पिलाए जो पहले जल नहीं पीती थी, तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण जो अलंकारों की प्रेमी होने पर भी (तुम्हारे) नये पत्ते नहीं तोड़ती थी, तुम्हारे पुष्पोद्गम के समय जिसका उत्सव होता था, वह यह शकुन्तला (अब) पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो ॥६॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे तपोवनतरवः, युष्मासु अपीतेषु—अकृतजलसेकेषु, या—शकुन्तला, प्रथमं—पूर्वम्, जलं—पानीयम्, पातुं—ग्रहीतुम्, न व्यवस्यति—न यतते स्म। भवतां स्नेहेन—वृक्षेषु प्रेम्णा, या—शकुन्तला, प्रियमण्डना अपि—अलंकरणप्रिया अपि, पल्लवं—किसलयम्, न आदत्ते—न गृह्णाति स्म। वः—युष्माकम्, आद्ये—प्रथमे, कुसुम०—कुसुमानां पुष्पाणां प्रसूतेः उद्गमस्य समये काले, यस्याः—शकुन्तलायाः, उत्सवः भवति—आनन्दातिरेको भवति स्म। सेयं—सैषा शकुन्तला, पतिगृहं—भर्तृसदनम्, याति—गच्छति, सर्वैः—सकलैरपि तरुभिः, अनुज्ञायताम्—तस्या गमनम् अनुमन्यताम्। समासोक्तिः काव्यलिङ्गं चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **प्रथमं०**—शकुन्तला प्रतिदिन पहले वृक्षों में जल डालती थी और बाद में स्वयं जलपान करती थी। प्रथमम् का अभिप्राय है कि दिन में पहली बार वह जलपान तभी करती थी, जब वृक्षों को सींच लेती थी। यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि प्रत्येक बार जल पीने से पूर्व पेड़ों को सींचती थी। ( २ ) **अपीतेषु**—जब तक तुम जल नहीं पी लेते तब तक। पा धातु सकर्मक है, अतः कर्तृवाच्य में क्त प्रत्यय न होने से उपर्युक्त अर्थ नहीं हो सकता। दो प्रकार से यह अर्थ हो सकता है—(क) पीतं=पानम् (पीना), पीतमस्ति येषां ते पीताः, स्वार्थ में अर्श आदिभ्योऽच् (५-२-१२७) से अच्। न पीताः अपीताः, तेषु। जिन्होंने जल नहीं पिया है। (ख) अथवा पीत शब्द पीतजल के लिए गौण प्रयोग मानकर अर्थ होगा—जिन्होंने जल नहीं पिया है। (३) **प्रियमण्डना**—प्रियं मण्डनं यस्याः सा, बहु०। जिसको सजावट पसन्द है। (४) **भवतां स्नेहेन**—सम्बन्ध की विवक्षा में षष्ठी। आप लोगों के प्रति स्नेह के कारण। (५) **कुसुम०**—कुसुमानां प्रसूतेः समये, तत्पुरुष। फूलों के निकलने के समय। (६) **उत्सवः०**—उस समय वह उत्सव मनाती थी। (७) इस श्लोक में वृक्षों में भ्रातृ-व्यवहार के आरोप के कारण समासोक्ति है। पत्तों को न तोड़ने में स्नेह कारण है, अतः काव्यलिंग है।

Funding by IKS-MoE

(कोकिलरवं सूचयित्वा ।)

८१ (ख). अनुमतगमना शकुन्तला
तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥१०॥

**अन्वय**—इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरुतम् एभिः ईदृशं प्रतिवचनीकृतम् ।

**(कोयल का शब्द सुनने का अभिनय करके) इस शकुन्तला को (इसके) वनवास के साथी वृक्षों ने जाने की स्वीकृति दे दी है, क्योंकि सुन्दर कोयल की आवाज को इन्होंने इस प्रकार अपना प्रत्युत्तर बनाया है ॥१०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—इयं शकुन्तला, वनवासबन्धुभिः—तपोवनसहवासिभिः, तरुभिः—वृक्षैः, अनुमतगमना—अनुमतं स्वीकृतं गमनं पतिगृहं प्रति प्रस्थानं यस्याः सा, यथा—यतो हि, कलं—मधुरम्, परभृतविरुतं—कोकिलकूजितम्, एभिः—तरुभिः, ईदृशम्—एवं प्रकारेण, प्रतिवचनीकृतं—प्रत्युत्तरतां प्रापितम् । अत्र परिणामोऽलंकारः । अपरवक्त्रं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **अनुमत०**—अनुमतं गमनं यस्याः सा, बहु० । जाने की स्वीकृति दे दी है। अनुमत—अनु+मन्+क्त । (२) **वनवास०**—वनवासस्य बन्धुभिः, तत्पुरुष । तपोवन के बन्धु या साथी । उत्तररामचरित (३-८) में भी कहा है—यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे । (३) **परभृतविरुतम्**—कोयल की आवाज को । कोयल को परभृत इसलिए कहा जाता है कि वह अपने छोटे बच्चों को कौवे के घोंसले में डाल आती है । कौवे काली आकृति के कारण उनको अपने बच्चे समझ कर पालते हैं । बड़े होने पर वे उड़ जाते हैं । दूसरों से पलने के कारण उन्हें परभृत कहते हैं । परेण परैः वा भृतः. दूसरों से पालित । इसी भाव को आगे (अंक ५ श्लोक २२ में) भी कहा है—अन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति । मृच्छकटिक (७-३) में भी कहा है—परभृत इव नीडे रक्षितो वायसभिः । (४) कोयल की ध्वनि में प्रत्युत्तरत्व का आरोप किया गया है, वह यहाँ प्रकृत में उपयोगी होने के कारण परिणाम अलंकार है ।

( आकाशे )

८२. रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।

भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥११॥
(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति ।)

**अन्वय**—कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापः, अस्याः पन्थाः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात्।

**(आकाश में) कमलिनियों से हरे भरे तालाबों से मार्ग का मध्यभाग मनोहर हो। घनी छाया वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप दूर हो। इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूलि-युक्त, शान्त और अनुकूल वायु से युक्त तथा कल्याणकारी हो ॥११॥ (सब आश्चर्य के साथ सुनते हैं।)**

**संस्कृत-व्याख्या**—कमलिनी०—कमलिनीभिः पद्मिनीभिः हरितैः श्यामलैः, सरोभिः—जलाशयैः, रम्यान्तरः—रम्यं मनोहरम् अन्तरः अवकाशः यस्य तादृशो भूयात्। छायाद्रुमैः—छायाप्रधानाः सघनाः द्रुमाः वृक्षाः तैः, नियमिता०—नियमितः निवारितः अर्कस्य सूर्यस्य मयूखानां किरणानां तापः सन्तापः यस्मिन् तादृशो भूयात्। अस्याः—शकुन्तलायाः, पन्थाः—मार्गः, कुशेशय०—कुशेशयानां पद्मानां रजांसि परागाः तैः मृदवः कोमलाः रेणवः धूलयः यस्मिन् सः, शान्ता०—शान्तः मन्दः अनुकूलः सुखदः पवनः वायुः यत्र सः, शिवश्च—मङ्गलकरश्च भूयात्। अत्र तुल्ययोगिता परिकरोऽन्योन्यं हेतुः काव्यलिङ्गं चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **आकाशे**—यह 'आकाशे' तृतीय अंक के विष्कम्भक में आए 'आकाशे' से भिन्न है। यहाँ इसका अभिप्राय है कि यह देवताओं की आकाशवाणी है। यह नेपथ्य से ही कहा जाएगा। प्रस्थान के समय आकाशवाणी होना शुभसूचक है। भरत ने 'आकाशे' का लक्षण दिया हैं—दूरस्थाऽऽभाषणं यत् स्यादशरीरनिवेदनम्। परोक्षान्तरितं वाक्यं तदाकाशे निगद्यते ॥ (नाटयशास्त्र)। (२) **कमलिनी०**—मार्ग में कमलिनियों से हरे-भरे तालाब हों। (३) **छायाद्रुमैः**—छायाप्रधानैः द्रुमैः, शाकपार्थिवादि के तुल्य उत्तरपद का लोप। घनी छाया वाले वृक्षों से। (४) **नियमितार्क०**—नियमितः अर्कस्य मयूखानां तापः यस्मिन् सः, बहु०। सूर्य की किरणों का ताप जहाँ पर रोक दिया गया है। (५) **कुशेशय०**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) कमलों के पराग से कोमल धूलवाला, (ख) कमलों के पराग के तुल्य कोमल धूलवाला। प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है। इसका अभिप्राय है कि सारे मार्ग में कमलों से युक्त तालाब

मिलें और हवा से उड़ाया हुआ उनका पराग सारे मार्ग में धूल के ऊपर बिछा हुआ हो, जिससे धूल कोमल हो जाए। कुशेशय—कुशे जले शेते इति, कुशे+शी +अच, अधिकरणे शेतेः (३-२-१५) से अच् प्रत्यय, शयवासवासिषु० (६-३-१८) से सप्तमी का अलुक्। कुशेशय—कमल, जल में रहने वाला। (६) **शान्ता०**—शान्तः अनुकूलः पवनः यस्मिन् सः, बहु०। हवा शान्त और अनुकूल हो। वायु की तीन विशेषताएँ हैं—शीतल, मन्द, सुगन्ध। इन तीनों का यहाँ वर्णन है। छायाद्रुमों से शीतल, शान्तानुकूल होने से मन्द और कमलों से सुगन्ध। (७) **शिवः**—मंगलकारी, कल्याणकारी। (८) यहाँ पर मार्ग और वायु दोनों प्रकृत हैं, दोनों कल्याणकारी हों, दोनों का शिवः के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है। विशेषण साभिप्राय हैं, अतः परिकर है। वायु और मार्ग परस्पर उपकारी हैं, अतः अन्योन्य है। मंगलकारी को शिव कहने से हेतु है। कमलिनीहरितैः० आदि कारणों के होने से काव्यलिंग है।

**८३. गौतमी—जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनाऽसि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः।** [जादे, णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं।]

**गौतमी—पुत्री, संबन्धि-जनों के तुल्य प्रेम करने वाली तपोवन की देवताओं ने तुझे जाने की स्वीकृति दे दी है। इन देवताओं को प्रणाम कर।**

**८४. शकुन्तला—(सप्रणामं परिक्रम्य। जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते।** [हला पिअंवदे, अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टन्ति।]

**शकुन्तला—(प्रणाम करती हुई चारों ओर घूमकर, हाथ की ओट में) सखी प्रियंवदा, आर्यपुत्र (पति) के दर्शन की उत्सुकता होने पर भी आश्रम-भूमि को छोड़ते हुए मेरे पैर बड़ी कठिनता से आगे बढ़ रहे हैं।**

**८५. प्रियंवदा—न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते।**

**उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।**
**अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥१२॥**

[ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ।

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ॥]

**अन्वय**—मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः, मयूराः परित्यक्तनर्तनाः, लताः अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

**प्रियंवदा**—तपोवन के वियोग से केवल तू ही दुःखित नहीं है, अपितु तुझसे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तेरे समान ही अवस्था दिखाई पड़ रही है।

मृगियों ने कुशा के ग्रास उगल दिए हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताएँ पीले पत्तों को डालकर मानो अपने आँसू डाल रही हैं॥१२॥

**संस्कृत-व्याख्या**—मृग्यः—हरिण्यः, उद्गलित०—उद्गलितः निष्ठ्यूतः दर्भाणां कुशानां कवलः ग्रासः याभिः तादृश्यः सन्ति। मयूराः—बर्हिणः, परित्यक्त०—परित्यक्तं वर्जितं नर्तनं नृत्यं यैः तादृशाः सन्ति। लताः—व्रततयः, अपसृत०—अपसृतानि पतितानि पाण्डूनि पीतानि जीर्णानि वा पत्राणि पर्णानि याभ्यः तादृश्यः, अश्रूणि—बाष्पाणि, मुञ्चन्ति इव—त्यजन्तीव। उत्प्रेक्षा समासोक्तिश्चालंकारौ। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **ज्ञातिजन०**—ज्ञातयश्च ते जनाः ज्ञातिजनाः, कर्मधारय। ज्ञातिजना इव स्निग्धाभिः, कर्मधारय उपमानसमास। संबन्धी लोगों के तुल्य प्रेम करने वाली। स्निग्ध—स्निह्+क्त। (२) **अनुज्ञात०**—अनुज्ञातं गमनं यस्याः सा, बहु०। जाने की स्वीकृति मिल गई है। (३) **भगवतोः**—वनदेवताओं के लिए भगवती है। (४) **आर्यपुत्र०**—आर्यपुत्रस्य दर्शनेन दर्शनं वा उत्सुका, तस्याः, तत्पुरुष। प्रसितोत्सुकाभ्यां० (२-३-४४) से उत्सुक के साथ तृतीया और सप्तमी दोनों होती हैं। (५) **तपोवन०**—तपोवनस्य विरहेण कातरा, तत्पुरुष। आश्रम के वियोग से दुःखित। (६) **उपस्थित०**—उपस्थितः वियोगः यस्य, बहु०। तुझसे जिसकी विदाई का समय आ गया है। (७) **समवस्था**—समान ही अवस्था है। यहाँ पर सम् समान के अर्थ में है। पाणिनि ने प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् (१-३-४२) में समानार्थ के स्थान पर समर्थ दिया है। इससे ज्ञात होता है कि समान के अर्थ में सम का प्रयोग होता है। (८) **उद्गलित०**—उद्गलितः दर्भकवलः याभिः ताः, बहु०। जिन्होंने कुशाओं का कौर उगल दिया है। (९) **परित्यक्त०**—परित्यक्तं नर्तनं यैः ते, बहु०। जिन्होंने नाचना छोड़ दिया है।

(१०) **अपसृत०**—अपसृतानि पाण्डूनि पत्राणि याभ्यः ताः, बहु० । जिनसे पीले पत्ते गिर रहे हैं। (११) यहाँ पर इव के कारण उत्प्रेक्षा है। मृगी, मयूर और लताओं में भ्रातृत्व आदि के आरोप के कारण समासोक्ति है। (१२) इससे मिलते हुए श्लोक ये हैं—नृत्तं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः । तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि ।। (रघुवंश १४-६९) । हृष्टाश्च केका मुमुचुर्मयूरा दृष्ट्वाम्बुदं नीलमिवोन्नमन्तम् । शष्पाणि मुक्त्वाभिमुखाश्च तस्थुर्मृगाश्चलाक्षा मृगचारिणश्च ।। (बुद्धचरित ७–५) ।

८६. **शकुन्तला**—(स्मृत्वा) तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये । [ताद, लताबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सं ।]

शकुन्तला—(स्मरण करके) हे तात, मैं अपनी लता-बहिन वनज्योत्स्ना से विदाई ले लूँ।

८७. **काश्यपः**—अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम् । इयं तावद् दक्षिणेन ।

काश्यप—मैं जानता हूँ कि तेरा उसपर बहिन का सा प्रेम है। यह दाहिनी ओर है।

८८. **शकुन्तला**—(उपेत्य लतामालिङ्ग्य) वनज्योत्स्ने, चूतसंगताऽपि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहुभिः । अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि । [वणजोसिणि, चूदसंगता वि मं पच्चालिग इदोगदाहिं साहाबाहाहिं । अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी द क्खु भविस्सं ।]

शकुन्तला—(पास जाकर लता से लिपट कर) हे वनज्योत्स्ना, अपने पति आम से मिली हुई भी तुम इधर की ओर आई हुई अपनी शाखारूपी बाहुओं से मुझसे गले मिलो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊँगी।

८९. **काश्यपः**—

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।

---

पाठभेद—८७. नि० सोदर्यस्नेहम् (भाई का सा प्रेम) । ८८. नि० लतामुपेत्य (लता के पास जाकर) । नि० ते खलु [दे क्खु], इति नास्ति ।

**चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-**
**मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः ॥१३॥**

**इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व ।**

**अन्वय**—मया तवार्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदृशं भर्तारं त्वं सुकृतैः
गता। इयं नवमालिका चूतेन संश्रितवती । सम्प्रति अहम् अस्यां त्वयि च वीतचिन्तः

**काश्यप—मैंने तेरे लिए पहले ही जिसका संकल्प किया था, अपने सदृ
उस पति को तू (अपने) पुण्यों से प्राप्त हुई है। यह नवमालिका आम से मि
गई है। अब मैं इसकी और तेरी ओर से निश्चिन्त हो गया हूँ ॥१३॥**

**इधर से मार्ग पर चलो।**

**संस्कृत-व्याख्या**—मया—काश्यपेन, तवार्थे—त्वन्निमित्तम्, प्रथममेव—पूर्वमेव, संकल्पितं—मनसा निर्णीतम्, आत्मसदृशं—स्वगुणैस्तुल्यम्, भर्तारं—पतिम्, त्वं—शकुन्तला, सुकृतैः—पुण्यैः, गता—प्राप्ता । इयम्—एषा, नवमालिका—वनज्योत्स्ना, चूतेन—आम्रेण, संश्रितवती—संगतवती मिलितेत्यर्थः । सम्प्रति—इदानीम्, अहं—काश्यपः, अस्यां—वनज्योत्स्नायाम्, त्वयि—शकुन्तलायां, वीतचिन्तः—चिन्तामुक्तोऽस्मि । अत्र समासोक्तिस्तुल्ययोगिता समं काव्यलिङ्गं चालंकाराः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **आमन्त्रयिष्ये**—विदाई लूंगी। (२) **अवैमि**—जानता हूँ। अव+
इ और अव+आ+इ धातु का अर्थ जानना होता है। (३) **सोदर्या०**—समाने
उदरे शयिता इति। समान+उदर+य। सोदराद्यः (४-४-१०९) से य प्रत्यय
और विभाषोदरे (६-३-८८) से समान को स आदेश। समानोदर्य भी रूप बनता
है। जो एक पेट में रहे हैं अर्थात् सगे। सोदर्यायाः स्नेहः, तत्पुरुष। सगी बहन का
सा प्रेम। (४) **संकल्पितम्**—मैंने पहले ही संकल्प किया था कि किसी सुयोग्य
व्यक्ति को तुझे दूंगा। ऐसे सोचे हुए व्यक्तियों में दुष्यन्त सर्वप्रथम था।
(५) **तवार्थे**—तव+अर्थे। 'अर्थे' लिए अर्थ में अव्यय है। तेरे लिए। (६)
**सुकृतैः**—पुण्यों के द्वारा तू अपने ही सदृश पति को प्राप्त हुई। (७) **संश्रितवती**
—मेल को प्राप्त हुई। सम्+श्रि+क्त (भावे)=संश्रित+मतुप्+ङीप्।
संश्रित बनाकर मतुप् प्रत्यय। क्तवतु-प्रत्ययान्त यह रूप मानने पर धातु सकर्मक
होने से चूतं संश्रि वती रूप होना चाहिए। अतः क्त-प्रत्ययान्त से मतुप् करें।
संश्रितम् अस्याः अस्तीति। (८) **वीतचिन्तः**—वीता चिन्ता यस्य सः, बहु०।
चिन्तारहित, निश्चिन्त। (९) यहाँ पर आम और नवमालिका में नायक-नायिका
का आरोप होने से समासोक्ति है। शकुन्तला और नवमालिका दोनों प्रस्तुत

हैं, दोनों का वीतचिन्तः के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता है। अनुरूप पतिये से मिलने के कारण सम अलंकार है। दोनों का अपने पतियों से मिलना निश्चिन्तत का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**९०. शकुन्तला**––(सख्यौ प्रति) हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः। [हला, एषा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो।]

शकुन्तला––(दोनों सखियों से) सखियो, इस (लता) को तुम दोनों के हाथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हूँ।

**९१. सख्यौ**––अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः। [अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।] (इति बाष्पं विहरतः।)

दोनों सखियाँ––हम दोनों को किसके हाथ में छोड़ती हो?

(दोनों आँसू बहाती हैं।)

**९२. काश्यपः**––अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। (सर्वे परिक्रामन्ति।)

काश्यप––अनसूया, तुम लोग मत रोओ, क्योंकि तुम दोनों को ही चाहिए कि शकुन्तला को धैर्य बँधाओ। (सब चारों ओर घूमते हैं।)

**९३. शकुन्तला**––तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। [ताद, एषा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा अणघप्पसवा होइ, तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह।]

शकुन्तला––हे तात, कुटी के पास विचरण करने वाली, गर्भ के कारण शिथिलगति, इस मृगी के जब सुख से सन्तानोत्पत्ति हो जाए, तब इस शुभ समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजिएगा।

**९४. काश्यपः**––नेदं विस्मरिष्यामः।

काश्यप––हम इसे नहीं भूलेंगे।

**९५. शकुन्तला**––(गतिभङ्गं रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। [को णु क्खु एसो णिवसणे मे सज्जइ।] (इति परावर्तते।)

**शकुन्तला**—(गति में अवरोध का अभिनय करके) यह कौन मेरे वस्त्र खींच रहा है? (पीछे की ओर मुड़ती है।)

### टिप्पणी

(१) **निक्षेपः**—धरोहर। किसी के पास कोई वस्तु कुछ समय के लिए सुरक्षार्थ रखना। इसमें उसके स्वामी के माँगने पर उसे उसी सुरक्षित रूप में लौटाना होता है। (२) **विहरतः**—डालती हैं। वाष्पं विहरतः मुहावरा है, आँसू डालती हैं या वहाती हैं। (३) **अलं रुदित्वा**—अलं के साथ निषेध अर्थ में क्त्वा प्रत्यय होता है। अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः० (३-४-१८) से क्त्वा। मत रोओ। ऋषि अनसूया को ही संबोधन करते हैं, क्योंकि वह बड़ी और समझदार है। (४) **स्थिरीकर्तव्या**—स्थिर करो अर्थात् धैर्य बँधाओ। च्वि प्रत्यय है। (५) **गर्भमन्थरा**—गर्भ के भार के कारण शिथिल गति वाली। मन्थर—शिथिल, मन्द, सुस्त। (६) **अनघप्रसवा**—अनघः विपत्तिरहितः प्रसवः यस्याः सा, बहु०। अघ का अर्थ दुःख और विपत्ति भी है। दुःखैनोव्यसनेष्वघम्, इति यादवः। अनघ का अर्थ है बिना किसी कष्ट या विपत्ति के। जब बिना कष्ट के मृगी के वच्चा हो जाए। (७) **गतिभङ्गम्०**—चाल में कुछ रुकावट का अभिनय करके। (८) **वसने सज्जते**—वस्त्र में चिपट रहा है, अर्थात् वस्त्र खींच रहा है।

**९६. काश्यपः**—वत्से,

**यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां**
**तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।**
**श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति**
**सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥१४॥**

**अन्वय**—यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपणम् इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत, सः अयं श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

**जिसके कुशाग्रों से विंधे हुए मुँह में तूने घावों को भरने वाली इंगुदी (हिंगोट) का तेल लगाया था, वह यह श्यामाक जंगली (सावाँ, चावल) की मुट्ठियों से पाला हुआ और पुत्रवत् माना हुआ मृग तेरा मार्ग नहीं छोड़ रहा है ॥१४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—यस्य—मृगस्य, कुशसूचिविद्धे—कुशानां दर्भाणां सूचिभिः तीक्ष्णाग्रभागैः विद्धे क्षते, मुखे—आस्ये, त्वया—दयार्द्रभावया शकुन्तलया, व्रणविरोपणं—व्रणानां क्षतानां विरोपणं विशोषकम्, इङ्गुदीनां—तापसतरूणाम्, तैलं—स्नेहः, न्यषिच्यत—निषिक्तम्, सोऽयं—स एषः, श्यामाक०—श्यामाकानां वन्यधान्यानां मुष्टिभिः परिवर्धितकः संपोषितः, पुत्रकृतकः—पुत्रवत् स्वीकृतः,

मृगः—हरिणः, ते—शकुन्तलायाः, पदवीं—मार्गम्, न जहाति—न परित्यजति । स्वभावोक्तिरलंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **व्रणविरोपणम्**—व्रणानां विरोपणम्, तत्पुरुष । घावों को भरने वाला । विरोपण—वि+रुह्++णिच्+ल्युट् । णिच् प्रत्यय करने पर रुह् के ह् को रुहः पोऽन्यतरस्याम् (७-३-४३) से विकल्प से प् हो जाता है, अतः रोपयति और रोहयति दोनों रूप बनते हैं । ( २ ) **न्यषिच्यत**—लगाया । नि+सिच् का कर्मवाच्य लङ् का रूप है । यहाँ पर प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि (८-३-६३) से सिच् के स् को मूर्धन्य ष् । ( ३ ) **कुश०**—कुशानां सूचिभिः विद्धे, तत्पुरुष । कुशों के अग्रभाग से बिंधे हुए । विद्ध—व्यध्+क्त । य् को संप्रसारण इ । (४) **श्यामाक०**—श्यामाकानां मुष्टिभिः परिवर्धितकः, तत्पुरुष । सावाँ की मुट्ठियों से पाला-पोसा हुआ । श्यामाक—जंगली धान होता है, उसे सावाँ या सवाँ कहते हैं । परिवर्धितक में क प्रत्यय अनुकम्पा अर्थ में है । ( ५ ) **पुत्रकृतकः**—पुत्रवत् माना गया । यह प्रयोग दो प्रकार से ठीक बन सकता है—(क) कृतकः पुत्रः पुत्रकृतकः, मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से समास होने के कारण कृतक का वाद में प्रयोग हुआ । (ख) पुत्रः कृतः पुत्रकृतः, सुप्सुपा से समास और स्वार्थ में कन् (क) प्रत्यय । ( ६ ) यहाँ पर मृग के स्वभाव का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है ।

**९७. शकुन्तला—वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि । अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव । इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति । निवर्तस्व तावत् ।** [वच्छ, किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि । अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व । दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि । णिवत्तेहि दाव ।] **(इति रुदती प्रस्थिता ।)**

शकुन्तला—पुत्र, तेरा साथ छोड़कर जाने वाली मुझ शकुन्तला का पीछा क्यों कर रहे हो ? अपने जन्म के कुछ ही समय बाद मृत माता के बिना (भी) तुम पाले ही गए हो । अब भी मुझसे वियुक्त तुमको पिता जी पालेंगे । अतः लौट जाओ । (रोती हुई प्रस्थान करती है ।)

**९८. काश्यपः—**

**उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्ति**

बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम् ।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ।।१५।।

**अन्वय**—उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्ति बाष्पं स्थिरतया विरतानुबन्धं कुरु। अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि खलु विषमीभवन्ति।

**काश्यप--ऊपर उठी हुई बरौनी से युक्त नेत्रों की दर्शनशक्ति को रोकने वाले आँसू को धैर्य से रोको, क्योंकि ऊँची-नीची भूमि को न देखने के कारण इस मार्ग में तेरे पैर वस्तुतः लड़खड़ा रहे हैं ।।१५।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—उत्पक्ष्मणोः—उद्गतानि पक्ष्माणि नेत्रलोमानि ययोः तयोः, नयनयोः—नेत्रयोः, उपरुद्धवृत्तिम्—उपरुद्धा प्रतिहता वृत्तिः दर्शनव्यापारो येन तम्, बाष्पम्—अश्रुसलिलम्, स्थिरतया—धैर्येण, विरता०—विरतः निवृत्तः अनुवन्धः प्रवाहः यस्य तादृशम्, कुरु—विधेहि। अलक्षित०—अलक्षितः अदृष्टः नतः निम्नः उन्नतः उत्थितश्च भूमिभागः भूदेशः यस्मिन् तादृशे, अस्मिन्—एतस्मिन्, मार्गे—पथि, ते—तव, पदानि—चरणविन्यासाः, विषमीभवन्ति—नतोन्नताः भवन्ति। काव्यलिङ्गमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **सहवास०**—साथ छोड़ने वाली। सहवासं परित्यजतीति, सहवास+परि+त्यज्+घिनुण् (इन्), ताम्। साधुकारी अर्थ में सम्पृचानु० (३-२-१४२) से घिनुण् प्रत्यय। सह वासः—सहवासः, सुप्सुपा समास, साथ रहना। (२) **अचिर०**—अचिरं प्रसूता तया, कर्मधारय। जन्म देने के वाद शीघ्र ही मृत। (३) **उत्पक्ष्मणोः**—उद्गतानि पक्ष्माणि ययोः तयोः, बहु०। ऊपर को उठी हुई बरौनी से युक्त। (४) **उपरुद्ध०**—उपरुद्धा वृत्तिः येन तम्, बहु०। नेत्रों की दर्शन-शक्ति को रोकने वाले। वृत्ति—व्यापार, यहाँ पर दर्शन-व्यापार या दर्शनशक्ति। (५) **विरता०**—विरतः अनुवन्धः यस्य तम्, वहु०। जिसका प्रवाह रुक गया है, ऐसा। विरत—वि+रम्+क्त। (६) **अलक्षित०**—अलक्षितः नतः उन्नतः भूम्याः भागः यस्मिन् तस्मिन्, बहु०। जिसका ऊँचा-नीचा भाग नहीं देखा है, ऐसे मार्ग में। (७) **विषमीभवन्ति**—ऊँचे-नीचे पड़ रहे हैं अर्थात् लड़खड़ा रहे हैं। यहाँ पर च्वि प्रत्यय है। (८) यहाँ पर आँसू रोकने में स्थिरता कारण है, अतः पदगत काव्यलिंग है। उत्तरार्ध आँसू रोकने में कारण वताया गया है, अतः वाक्यगत काव्यलिंग है।

---

पाठभेद—९८. नि० विहतानुबन्धम् (रोको)।

९९. **शार्ङ्गरवः**——भगवन्, ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हति।

शार्ङ्गरव——भगवन्, प्रिय व्यक्ति का जल के किनारे तक अनुगमन करना चाहिए, ऐसी श्रुति है। यह सरोवर का तट है। यहाँ पर (हमें अपना) सन्देश देकर लौटिएगा।

१००. **काश्यपः**——तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः।

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः।)

काश्यप——तो हम इस पीपल की छाया में बैठते हैं।

(सब लोग चारों ओर घूम कर खड़े हो जाते हैं।)

१०१. **काश्यपः**——(आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्। (इति चिन्तयति।)

काश्यप——(मन में) हम माननीय दुष्यन्त को क्या सन्देश भेजें, जो अत्यन्त उचित हो? (विचार में मग्न होते हैं।)

१०२. **शकुन्तला**——(जनान्तिकम्) हला, पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति, दुष्करमहं करोमीति। [हला, पेक्ख। णलिणीपत्तन्तरिदं वि सहअरं अदेक्खन्ती आदुरा चक्कवाई आरडदि, दुक्करं अहं करेमि त्ति।]

शकुन्तला——(हाथ की ओट में) सखी, (इधर) देखो। कमल के पत्ते की ओट में बैठे हुए भी सहचर (चकवा) को न देख सकने से व्याकुल यह चकवी चिल्ला रही है कि मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ।

१०३. **अनसूया**——सखि, मैवं मन्त्रयस्व।

एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ॥१६॥

---

पाठभेद——९९. नि० उदकान्तम् (जल के पास तक)। नि० अर्हसि (योग्य हो)। १०१. नि० आरौति (चिल्लाती है)। १०३. नि० मन्त्रय (कहो)।

[सहि, मा एव्वं मन्तेहि ।
एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसादीहअरं ।
गरुअं पि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि ।।]

**अन्वय**—एषा अपि प्रियेण विना विषाददीर्घतरां रजनीं गमयति । आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखं साहयति ।

**अनसूया—सखी, ऐसी बात न कहो ।**

**यह भी अपने प्रिय के बिना दुःख के कारण अधिक लम्बी (प्रतीत होने वाली) रात्रि बिताती है । आशा का बन्धन विरह के कठोर दुःख को भी सहन करा देता है।।१६।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—एषा—चक्रवाकी अपि, प्रियेण विना—पति विना, विषाद०—विषादेन दुःखेन दीर्घतराम् अधिकदीर्घत्वेन प्रतीयमानाम्, रजनीं—रात्रिम्, गमयति—यापयति । आशाबन्धः—आशाया वन्धनम्, गुरु—असह्यम् अपि, विरहदुःखं—वियोगपीडाम्, साहयति—सहनयोग्यं करोति । अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । आर्या जातिः ।

### टिप्पणी

( १ ) **ओदकान्तम्०**—उदकस्य अन्तः उदकान्तः, आ उदकान्तात् ओदकान्तम् । यहाँ पर आङ्‌ मर्यादाभिविध्योः ( २-१-१३ ) से अव्ययीभाव समास, अतः ओदकान्तम् रूप वनेगा । समास विकल्प से होता है, अतः आ उदकान्तात् भी रूप वनेगा । यह आङ्‌ है, यह प्रगृह्य आ से भिन्न है, अतः सन्धि का निषेध नहीं होगा । जल के किनारे तक प्रिय व्यक्ति के पीछे उसे छोड़ने के लिए जावे । जहाँ नदी या तालाव मिले, वहाँ तक उसके साथ जावे । ओदकान्तं प्रियं प्रोथमनुव्रजेत् । याज्ञवल्क्य ( १-११३ ) ने कहा है—अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तमासीमान्तमनुव्रजेत् ।। (२) **सन्दिश्य**—सन्देश देकर । (३) **श्रूयते**—ऐसी परम्परागत श्रुति अर्थात् कहावत है । (४) **क्षीरवृक्ष**—दूधवाला वृक्ष । यह पीपल, वड़, गूलर कोई भी हो सकता है । यहाँ पर पीपल अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । ( ५ ) **युक्तरूपम्**—अतिशयेन युक्तम् । प्रशंसा अर्थ में रूप प्रत्यय । अत्यन्त सुन्दर । ( ६ ) **दुष्करम्०**—चकवी कहती है कि मैं वियोग में भी जीवित रह कर दुष्कर कार्य कर रही हूँ । उसका पति केवल कमलपत्र की ओट में है ।. शकुन्तला का अपनी ओर संकेत है कि मैं भी पति के बिना कठिनाई से जी रही हूँ । ( ७ ) **विषाद०**—दुःख के कारण रात लम्बी प्रतीत होती है । ( ८ ) **रजनीं गमयति**—गतिवुद्धि० (१-४-५२) से द्वितीया । ( ९ ) **आशाबन्धः**—आशा के कारण मनुष्य कठोर यातनाओं को भी सह लेत

है। इसी भाव की अन्य सूक्तियाँ हैं—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।। (मेघदूत १-९)। शक्यं खल्वाशाबन्धेनात्मानं धारयितुम्। (विक्रमोर्वशीय अंक ३)। आशया हि किमिव न क्रियते, (कादम्बरी)। मनोरथेन जीवामि मन्दभाग्या, (स्वप्नवासव० अंक ३)। (१०) विशेष से सामान्य अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है।

**१०४. काश्यपः—शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।**

काश्यप—शार्ङ्गरव, तुम शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से राजा से इस प्रकार कहना।

**१०५. शार्ङ्गरवः—आज्ञापयतु भवान्।**

शार्ङ्गरव—आप आदेश दीजिए।

**१०६. काश्यपः—**

**अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-**
**स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।**
**सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया**
**भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।१७।।**

अन्वय—संयमधनान् अस्मान्, आत्मनः उच्चैः कुलं च, त्वयि अस्याः कथमपि अबान्धवकृतां तां स्नेहप्रवृत्तिं च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकं दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्, तत् खलु वधूबन्धुभिः न वाच्यम्।

काश्यप—संयमरूपी धन वाले हम लोगों का, अपने ऊँचे कुल का और तेरी ओर इस (शकुन्तला) के, बन्धुओं के द्वारा न किए हुए, स्वाभाविक प्रेम-व्यापार का ठीक विचार करके तुम इसको अपनी स्त्रियों में सबके समान गौरव के साथ देखना। इससे आगे भाग्य के अधीन है, वह हम वधू के संबन्धियों को नहीं कहना चाहिए ।।१७।।

संस्कृत-व्याख्या—संयमधनान्—संयमः इन्द्रियनिग्रहः एव धनं वित्तं येषां तान्, अस्मान्—तपस्विनः, आत्मनः—स्वस्य, उच्चैः—अतिगौरवास्पदम्, कुलं—वंशं च, त्वयि—त्वद्विषये, अस्याः—शकुन्तलायाः, कथमपि—केनापि रूपेण, अबान्धवकृतां—बन्धुजनप्रयत्नं विनैव घटिताम्, तां—स्वाभाविकीम्, स्नेह-

---

पाठभेद—१०५. का भवान् (श्रीमान्)।

प्रवृत्ति—प्रेमसंचारम्, साधु—सम्यक्तया, विचिन्त्य—विचार्य, त्वया—नृपेण दुष्यन्तेन, इयं—शकुन्तला, दारेषु—स्त्रीषु, सामान्य०—सामान्या तुल्या प्रतिपत्तिः गौरवं तत्पूर्वकम्, दृश्या—दर्शनीया। अतः परम्—अतोऽग्रे, भाग्यायत्तं—दैवाधीनम्, तत् खलु—निश्चयेन, वधूबन्धुभिः—कन्यासंबन्धिभिरस्माभिः, न वाच्यं—न कथनीयम्। अप्रस्तुतप्रशंसाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **मद्वचनात्**—मेरी ओर से। ल्यब्लोप मानकर पंचमी। ( २ ) **पुरस्कृत्य**—आगे करके। ( ३ ) **साधु विचिन्त्य**—ठीक विचार करके। इसका आगे के तीन वाक्यों के साथ सम्बन्ध है। ( ४ ) **संयम०**—संयम एव धनं येषां तान्, बहु०। संयम ही जिनका धन है, ऐसे। संयम—सम्+यम्+अप् (अ)। हम लोग तपस्वी हैं। अतः ऐसा कार्य न करना, जिससे हम लोगों की निन्दा या हमारा अपमान हो। ( ५ ) **उच्चैः कुलं०**—अपने ऊँचे वंश का ध्यान रखते हुए भी शकुन्तला का उचित सम्मान करना। ( ६ ) **अबान्धव०**—न बान्धवैः कृताम्, तत्पुरुष। इसका प्रेम सम्बन्धियों के द्वारा कराया हुआ नहीं है, अपितु स्वाभाविक है। ( ७ ) **स्नेहप्रवृत्तिम्**—स्नेहस्य प्रवृत्तिम्, तत्पुरुष। प्रेम के संचार को। शकुन्तला का तुम पर स्वाभाविक प्रेम है, अतः इसके प्रेम की रक्षा करना। ( ८ ) **सामान्य०**—सामान्या प्रतिपत्तिः सामान्यप्रतिपत्तिः, कर्मधारय, सा पूर्वा यस्मिन् तत्, बहु०। सामान्य—साधारण, समान, तुल्य। प्रतिपत्ति—गौरव। सबके बराबर गौरव के साथ इस शकुन्तला को देखना। साधारणतया पत्नी के साथ जैसा सद्व्यवहार करना चाहिए, उतना अवश्य करना। ( ९ ) **भाग्यायत्तम्०**—इसके आगे भाग्य के अधीन है कि वह किस अवस्था को पहुँचती है। भाग्ये आयत्तम्, तत्पुरुष। आयत्त—आ+यत्+क्त। (१०) न खलु०—हम लोग कन्या-पक्ष के हैं, अतः इससे अधिक कुछ कहने का हमारा अधिकार नहीं है। अर्थात् कन्या के सम्बन्धी कन्या की सुख-शान्ति के लिए जो उच्च विचार रखते हैं, उनको तुम स्वयं समझना। इसको महारानी बनाना, यह हमारा कहने का अधिकार नहीं है। (११) यहाँ पर माम् न कहकर संयमधनान् अस्मान् कहने से विशेष के लिए सामान्य का प्रयोग करने से अप्रस्तुतप्रशंसा है।

**विशेषः**—यह प्रसिद्ध चार श्लोकों में से एक माना जाता है। कुछ इसके स्थान पर अभिजनवतः० (श्लोक १९) को लेते हैं।

**१०७. शार्ङ्गरवः—गृहीतः सन्देशः।**

**शार्ङ्गरव—आपका सन्देश मैंने ठीक समझ लिया है।**

**१०८. काश्यपः—वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।**

काश्यप—पुत्री, अब तुम्हें (भी) कुछ शिक्षा देनी है। वनवासी होते हुए भी हम लोग लौकिक व्यवहारों को जानते हैं।

**१०९. शार्ङ्गरवः—न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।**

शार्ङ्गरव—विद्वानों के लिए वस्तुतः कोई चीज अज्ञात नहीं होती है।

**११०. काश्यपः—सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य—**

**शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने**
**भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।**
**भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी**
**यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥१८॥**

**कथं वा गौतमी मन्यते।**

अन्वय—गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिं कुरु, विप्रकृता अपि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव, भाग्येषु अनुत्सेकिनी (भव)। एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामाः कुलस्य आधयः।

काश्यप—तू यहाँ से पति-गृह पहुँच कर—

अपने गुरुजनों (मान्यजनों) की सेवा करना, अपनी सपत्नियों (सौतों) से प्रिय-सखी का-सा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के आवेश में आकर पति के प्रतिकूल कार्य मत करना, अपने आश्रितों पर अत्यन्त उदार रहना, अपने ऐश्वर्य का अभिमान मत करना, इस प्रकार आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी के पद पर अधिष्ठित होती हैं और इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिए अभिशाप होती हैं ॥१८॥

(इस उपदेश के विषय में) गौतमी का क्या विचार है?

संस्कृत-व्याख्या—गुरून्—श्वशुरादीन् पूज्यान्, शुश्रूषस्व—सेवस्व। सपत्नीजने—सपत्नीवर्गे, प्रियसखीवृत्तिं—प्रियसख्याः वृत्तिं व्यवहारम्, कुरु—विधेहि। विप्रकृता अपि—तिरस्कृता अपि सती, रोषणतया—क्रोधावेशेन, भर्तुः—पत्युः, प्रतीपं—प्रतिकूलम्, मा स्म गमः—न याहि। परिजने—आश्रितवर्गे, भूयिष्ठम्—अत्यधिकम्, दक्षिणा—उदारा, भव। भाग्येषु—समृद्धिषु, अनुत्सेकिनी—गर्वरहिता भव। एवम्—इत्थमाचरणेन, युवतयः—रमण्यः, गृहिणीपदं—गृहलक्ष्मीस्थानम्, यान्ति—प्राप्नुवन्ति। वामाः—विपरीताचरणवत्यः स्त्रियः, कुलस्य—वंशस्य, आधयः—दुःखकारणानि भवन्ति। रूपकं हेतुरर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। उपदिष्टं नाम नाट्यलक्षणं चास्ति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **लौकिकज्ञाः**—लौकिक बातों को जानने वाले। लौकिक—लोके भवं लौकिकम्, लोक+ठञ् (इक), लौकिकं जानन्तीति, लौकिक+ज्ञा+क(अ)। (२) **अविषयः**—अज्ञात, अदृष्टिगोचर, अर्थात् विद्वानों को सभी बातें ज्ञात होती हैं। (३) **शुश्रूषस्व**—सेवा करना। श्रु+सन्+लोट् म०१। श्रु धातु से सन् प्रत्यय होने पर धातु ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः (१-३-५७) से आत्मनेपदी हो जाती है। शुश्रूषा का अर्थ सेवा करना हो जाता है, रोगी या गुरुजनों की आवश्यकताओं को सुनने और उसको पूरा करने की इच्छा रहती है। ( ४ ) **गुरून्**—अपने मान्य जनों की। बड़ों की सेवा करना वधू का कर्तव्य है। कामसूत्र (३-१-५) में कहा है—गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायकभगिनीषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः। श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या (सूत्र ३७)। ( ५ ) **प्रियसखी०**—प्रियायाः सख्याः वृत्तिम्, तत्पुरुष। प्रियसखी का-सा व्यवहार। ( ६ ) **सपत्नीजने**—सौतों के साथ। सपत्नी—समानः पतिः यासां ताः सपत्न्यः। नित्यं सपत्न्यादिषु (४-१-३५) से समान को स आदेश निपातन से तथा पति के इ को न्, बाद में ऋन्नेभ्यः० (४-१-५) से ङीप्। शकुन्तला की भी सपत्नियाँ हैं, अतः यह कथन सार्थक है। कामसूत्र (३-२-५) में भी कहा है—आगतां चैनां (सपत्नीं) भगिनिकावदीक्षेत। (७) **विप्रकृताऽपि**—तिरस्कृत या अपमानित होने पर भी। वि+ प्र+कृ+क्त+टाप्। (८) **रोषणतया**—क्रोध के आवेश में आकर। रुष्+युच् (शील अर्थ में)=रोषण +भाव अर्थ में ता। (९) **प्रतीपम्**—प्रतिकूल। प्रतिकूलम् अपाम्, प्रति+अप्+अ। यहाँ पर ऋक्पूर० (५-४-७४) से समासान्त अ और द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यः० (६-३-९७) से अप् के अ को ई। इसी प्रकार द्वीप, अन्तरीप आदि रूप बनते हैं, प्रतीप का अक्षरार्थ है—जल के वेग के प्रतिकूल चलना। अतः शब्दार्थ प्रतिकूल है। पति-सेवा और उसकी आज्ञा का पालन पत्नी का मुख्य कर्तव्य माना गया है। इसी प्रकार स्त्री के लिए एक उपदेश है—अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता, तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम्। सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति, प्राच्यैः पुत्रि निवदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः॥ (१०) **मा स्म गमः**—यहाँ पर मा के कारण अगमः में अ नहीं हुआ। न माङ्योगे (६-४-७४) से अडागम का अभाव। (११) **भूयिष्ठम्**—अत्यधिक। भूयिष्ठ—वहु+इष्ठन् (इष्ठ)। इष्ठस्य यिट् च (६-४-१५९) से वहु को भू आदेश और इ के स्थान पर यि। (१२) **दक्षिणा**—उदार, नम्र या अनुकल। (१३) **भाग्येषु**—समृद्धि होने पर घमण्ड न करना। पाठभेद—भोगेषु का अर्थ होगा—भोगों की सामग्री अधिक होने पर। उत्सेक—घमण्ड, उत्+सिच्+घञ्। चजोः कुः० (७-३-५२) से च् को क्। कामसूत्र में कहा है—(क) न चोपालभेत वामतां च न दर्शयेत् (३-२-६८), (ख) भोगेष्वनुत्सेकः (सूत्र ३९), (ग) परिजने दाक्षिण्यम् (सूत्र ४०)। (१४) **युवतयः**—तरुण स्त्रियाँ। युवति—युवन शब्द से स्त्रीलिंग में यूनस्तिः (४-१-७७) से ति प्रत्यय। युवा

का स्त्रीलिंग युवति है। युवती शब्द युवत् से ङीष् करके बनता है। इसका अर्थ है—पति वाली। (१५) **गृहिणी०**—गृहलक्ष्मी के पद को प्राप्त करती हैं। (१६) **वामाः**—विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ। वामा—वमति स्नेहमिति, वम्+ण (अ) =वाम, स्त्रीलिंग में आ। ज्वलिति० (३-१-१४०) से ण प्रत्यय या घञ् भावे (३-३-१८) से अथवा वामः कामः अस्त्यस्याः, वाम+ +अच्, अर्शआदित्वादच्। (१७) **आधयः**—विपत्ति के कारण-स्वरूप। आधि का अर्थ मानसिक दुःख और विपत्ति है। आधि—आधीयते दुःखमनेनेति, आ+धा+कि (इ), उपसर्गे घोः किः (३-३-९२) से कि प्रत्यय। (१८) यहाँ पर वामा स्त्रियों में आधित्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है। वामा स्त्रियाँ आधि की कारण हैं, कारण और कार्य में अभेद के कथन से हेतु अलंकार है। गृहिणीपदम्० में साधर्म्य से और वामाः० में वैधर्म्य से अर्थान्तरन्यास है। यहाँ पर शास्त्रानुकूल मनोहर वचन होने से उपदिष्ट नामक नाटकीय लक्षण है। विश्वनाथ ने उपदिष्ट का उदाहरण यह श्लोक उद्धृत किया है। उपदिष्ट का लक्षण है—उपदिष्टं मनोहारि वाक्यं शास्त्रानुसारतः। (सा० दर्पण ६-१८४)।

**विशेष**—यह श्लोक शाकुन्तल के चतुर्थ अंक का सर्वोत्तम श्लोक है। यह प्रसिद्ध चार श्लोकों में से एक श्लोक है। पतिगृह को जाती हुई पुत्री को पिता जो कुछ सुन्दर उपदेश दे सकता है, उसका ही सुन्दर वर्णन इस श्लोक में है।

१११. **गौतमी**—**एतवान् वधूजनस्योपदेशः। जाते, एतत् खलु सर्वमवधारय।** [एत्तिओ वहूजणस्स उवदेसो। जादे, एदं क्खु सव्वं ओधारेहि।]

**गौतमी—इतनी (ही) नववधुओं के लिए शिक्षाएँ हैं। पुत्री, इन सब बातों को ठीक स्मरण कर लो।**

११२. **काश्यपः—वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च।**

**काश्यप—पुत्री, मुझसे और अपनी सखियों से गले मिल लो।**

११३. **शकुन्तला—तात, इत एव किं प्रियंवदाऽनसूये सख्यौ निर्वतिष्येते।** [ताद, इदो एव्व किं पिअंवदाअणसूआओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति।]

**शकुन्तला—तात, मेरी सखियाँ प्रियंवदा और अनसूया क्या यहीं से लौट जाएँगी?**

---

पाठभेद—११३. नि० प्रियंवदामिश्राः सख्यो निर्वतिष्यन्ते [पिअंवदामिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति] (प्रियंवदा आदि सखियाँ लौट जाएँगी)।

**११४. काश्यपः—वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।**

**काश्यप—पुत्री, इन दोनों का भी विवाह करना है। इनका वहाँ जाना उचित नहीं है। तेरे साथ गौतमी जाएगी।**

**११५. शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।** [कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्टा मलअतडुम्मूलिआ चन्दणलदा विअ देसन्तरे जीविअं धारइस्सं।]

**शकुन्तला—(पिता से चिपट कर) मैं अब पिता की गोद से छूटी हुई, मलय पर्वत के किनारे से उखाड़ी हुई चन्दन-लता की तरह, दूसरे देश में कैसे जीवित रह सकूँगी?**

### टिप्पणी

(१) **एतावान्०**—नववधुओं को जो शिक्षाएँ दी जानी चाहिएँ, वे इतनी ही हैं। गौतमी काश्यप के सदुपदेश का पूर्ण समर्थन करती है। गौतमी वृद्ध तपस्विनी है, वह स्त्रियोचित शिक्षाओं को विशेषरूप से जानती है, अतः उसकी सम्मति माँगी गई है। (२) **अवधारय**—ठीक समझ लो। हिन्दी मुहावरा है—इन बातों को गाँठ बाँध लो। (३) **प्रदेये०**—इन दोनों का भी विवाह करके इन्हें किसी को देना है। कालिदास ने बड़ी चतुरता से प्रियंवदा और अनसूया को रोक लिया है, यदि वे दोनों साथ जातीं तो दुर्वासा के शाप की बात प्रकट कर देतीं और उनके प्रभाव में विघ्न पड़ जाता। इस कथन से ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में बड़ी आयु में ही कन्याओं का विवाह होता था। अतएव अनसूया आदि किसी का विवाह नहीं हुआ था। प्रदेये में प्र का अर्थ प्रकृष्ट है। कन्या विवाह में सर्वथा दे दी जाती है, अर्थात् विवाह-सम्बन्ध टूटने योग्य नहीं है। अतएव मनु ने कहा है—सकृत् कन्या प्रदीयते। प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार विवाह अविच्छेद्य था। (४) **तातस्य०**—पिता की गोद से छूटी हुई मैं देशान्तर में जीवित न रह सकूंगी। (५) **मलय०**—मलय पर्वत के किनारे से उखाड़ी हुई चन्दनलता की तरह। यहाँ पर चन्दनलता चन्दन के छोटे एवं कोमल वृक्ष के लिए है। चन्दन का वृक्ष होता है। या चन्दन के वृक्ष की शाखा अर्थ लिया जा सकता है।

---

पाठभेद—११५. नि० धारयिष्ये (धारण करूँगी)।

११६. **काश्यपः**—वत्से, किमेवं कातराऽसि ।
अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥१९॥
(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति ।)

**अन्वय**—वत्से, त्वम् अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता, तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला, अचिरात् प्राची इव अर्कं पावनं तनयं प्रसूय च मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि ।

**काश्यप**—पुत्री, तुम इस प्रकार दुःखित क्यों होती हो ?

पुत्री, तुम महाकुलीन पति के प्रशंसनीय गृहस्वामिनी (महारानी) पद पर अधिष्ठित होकर, ऐश्वर्य के कारण महत्त्वपूर्ण कार्यों में प्रतिक्षण व्यस्त होकर और शीघ्र ही पूर्वदिशा जिस प्रकार पवित्र सूर्य को (जन्म देती है) उसी प्रकार पवित्र (चक्रवर्ती) पुत्र को जन्म देकर, मेरे वियोग के दुःख को भूल जाओगी ॥१९॥ (शकुन्तला पिता के पैरों पर गिर पड़ती है ।)

**संस्कृत-व्याख्या**—वत्से—हे पुत्रि, त्वम् अभिजनवतः—महाकुलीनस्य, भर्तुः—पत्युः, श्लाघ्ये—प्रशंसनीये, गृहिणीपदे—गृहलक्ष्मीस्थाने, स्थिता—अधिष्ठिता सती, तस्य—भर्तुः, विभवगुरुभिः—विभवैः समृद्धिभिः गुरुभिः महद्भिः, कृत्यैः—कार्यैः, प्रतिक्षणं—प्रतिपलम्, आकुला—व्यस्ता सती, अचिरात्—शीघ्रमेव, प्राची—पूर्वा दिक्, अर्कमिव—सूर्यमिव, पावनं—पवित्रम्, तनयं—पुत्रम्, प्रसूय—उत्पाद्य च, मम—काश्यपस्य, विरहजां—वियोगोत्पन्नाम्, शुचं—शोकम्, न गणयिष्यसि—न चिन्तयिष्यसि । अत्रोपमा समुच्चयः काव्यलिङ्गं चालंकाराः । हरिणी वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **अभिजनवतः**—अभिजन का अर्थ कुल है। यहाँ पर मतुप् प्रत्यय
प्रशंसा अर्थ में है। प्रशस्तः अभिजनः—अभिजनवान्, तस्य। उच्च कुलवाले
अर्थात् महाकुलीन। ( २ ) **श्लाघ्ये**—प्रशंसनीय। प्रशंसनीय इसलिए है कि
वहाँ रहकर बहुतों का हित कर सकती हो, तभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।
( ३ ) **गृहिणीपदे**—तुम गृहिणी होगी अर्थात् महारानी बनोगी।
( ४ ) **विभवगुरुभिः०**—ऐश्वर्य की अधिकता के कारण तुम्हारे पास बहुत

बड़े काम रहेंगे और उनमें व्यस्त रहोगी। ( ५ ) **प्राचीवार्कम्**—पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य को जन्म देती है। यहाँ पर यह उपमा साभिप्राय है। जिस प्रकार सूर्य तेजस्वी प्रतापी और जगत् का हितकारी है, उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी तेजस्वी प्रतापी और चक्रवर्ती राजा होगा। (६) **पावनम्**—पवित्र, निष्कलंक। तुम्हारा पुत्र निष्कलंक और धर्मपरायण होगा। ( ७ ) **विरहजाम्०**—इस प्रकार दिन भर अपने काम में फँसी रहने से तुम मेरे विरह के दुःख को कुछ नहीं गिनोगी अर्थात् इस दुःख को भूल जाओगी। ( ८ ) यहाँ पर इव के द्वारा उपमा है। न गणयिष्यसि के तीन कारण होने से काव्यलिंग है। तीन कारणों के एकत्र होने से समुच्चय है।

**विशेषः**—चतुर्थ अंक के प्रसिद्ध चार श्लोकों में से एक श्लोक यह है। कुछ इसके स्थान पर अस्मान् साधु० को चार श्लोकों में लेते हैं। इसमें विदाई के समय पिता के द्वारा पुत्री को सान्त्वना देने का वर्णन है।

**११७. काश्यपः—यदिच्छामि ते तदस्तु।**

**काश्यप—मैं तेरे लिए जो चाहता हूँ, वह पूर्ण हो।**

**११८. शकुन्तला—(सख्यावुपेत्य) हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।** [हला, दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह।]

**शकुन्तला—(सखियों के पास पहुँचकर) सखियो, तुम दोनों एक साथ ही मुझसे गले मिलो।**

**११९. सख्यौ—(तथा कृत्वा) सखि, यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्, ततस्तस्मा इदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय।** [सहि, जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे, तदो से इमं अत्तणामहेअअंकिअं अंगुलीअअं दंसेहि।]

**दोनों सखियाँ—(वैसा करके) सखि, यदि वह राजा (तुम्हें) पहचानने में कुछ शिथिल हो तो उसके अपने नाम से अंकित यह अँगूठी उसको दिखा देना।**

**१२०. शकुन्तला—अनेन सन्देहेन वामाकम्पिताऽस्मि।** [इमिणा संदेहेण वो आकम्पिदम्हि।]

Funding by IKS-MoE

**शकुन्तला—तुम्हारे इस सन्देह से मैं घबड़ा गई हूँ।**

**१२१. सख्यौ**——मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशंकी। [मा भाआहि। अदिसिणेहो पावसंकी।]

दोनों सखियाँ——मत डरो। अत्यधिक प्रेम पाप (अनिष्ट) की आशंका करता है।

**१२२. शार्ङ्गरवः**——युगान्तरमारूढः सविता। त्वरतामत्रभवती।

शार्ङ्गरव——सूर्य दूसरे पहर में चढ़ गया है (दोपहर हो रहा है), आप (शकुन्तला) शीघ्रता करें।

**१२३. शकुन्तला**——(आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात, कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये। [ताद, कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं।]

शकुन्तला——(आश्रम की ओर मुँह कर) तात, अब मैं फिर कब (इस) तपोवन को देखूँगी।

### टिप्पणी

( १ ) **यदिच्छामि०**——मैं तेरे लिए जो चाहता हूँ, वे सब बातें पूर्ण हों। ऋषि की इच्छा अगले श्लोक भूत्वा चिराय० में स्पष्ट हुई है कि तू महारानी हो और चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दे। यहाँ पर जान बूझकर कवि ने इच्छसि के स्थान पर इच्छामि प्रयोग किया है। इच्छसि रखने पर अर्थ होगा——तू जो चाहती है वह तेरी इच्छा पूर्ण हो। ऐसा कहने पर संभव था कि वह पिता आदि के प्रेम की प्रबलता के कारण आश्रम में रहने का ही आग्रह कर बैठती। ( २ ) **प्रत्यभिज्ञान०**——अनसूया और प्रियंवदा अप्रत्यक्षरूप से उसे शाप का अभिप्राय बताती हैं और समझाती हैं कि आवश्यकता पड़ने पर अँगूठी दिखा देना। अँगूठी दिखाने से शाप दूर हो जायगा। प्रत्यभिज्ञान यह दार्शनिक शब्द है। इसका अर्थ है कि किसी पूर्वदृष्ट वस्तु को पुनः देखने पर स्मृति के द्वारा स्मरण करना और अनुभव या प्रत्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष देखना। इसमें स्मृति और प्रत्यक्ष दोनों का समावेश होता है। जैसे——सोऽयं रामः, यहाँ पर सः के द्वारा स्मरण है और अयं के द्वारा प्रत्यक्ष है। यहाँ पर पहचानना अर्थ ही लिया गया है। ( ३ ) **सन्देहेन०**——तुम्हारे सन्देह से मैं घबड़ा गई हूँ। शकुन्तला का घबड़ाना स्वाभाविक ही था। सन्देह——सम्+दिह्+घञ्। ( ४ ) **अतिस्नेहः०**——प्रेमी व्यक्ति अपने प्रिय व्यक्ति के लिए अनिष्ट की आशंका करता ही है। यहाँ भाव है कि——हम

---

पाठभेद——१२१. नि० स्नेहः [सिणेहो] (प्रेम)।

दोनों को आशंका है कि राजा कहीं तुम्हें भूल न गया हो, इसलिए अँगूठी दिखा देना। प्रिय व्यक्ति परदेश जा रहा हो तो परिवारवालों को ऐसी आशंकाएँ होती ही हैं कि मार्ग में कोई दुर्घटना न हो जाए आदि। ( ५ ) **युगान्तरम्०**—युग अर्थात् पहर भर सूर्य चढ़ गया है, अब दूसरा पहर प्रारम्भ हो गया है। एक युग तीन घंटे का होता है। २४ घंटे में ८ पहर होते हैं, चार दिन में और चार रात में। ( ६ ) **सविता**—सुवति कर्मणि प्रेरयति, सू+तृच् (तृ)। सूर्य, जो लोगों को कर्म में प्रवृत्त करता है।

**१२४. काश्यपः—श्रूयताम्—**

**भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी**
**दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।**
**भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं**
**शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥२०॥**

**अन्वय**—चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा, अप्रतिरथं तनयं दौष्यन्तिं निवेश्य, तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धं शान्ते अस्मिन् आश्रमे पुनः पदं करिष्यसि।

**काश्यप—सुनो—चिरकाल तक चारों समुद्रों तक व्याप्त पृथ्वी की सपत्नी होकर, अपने अद्वितीय महारथी पुत्र दौष्यन्ति (भरत) को सिंहासन पर बिठा कर और जिसने उस पर अपने परिवार का भार डाला है ऐसे अपने पति के साथ शान्त आश्रम में फिर आकर रहेगी ॥२०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—चिराय—बहुकालं यावत्, चतुरन्त०—चत्वारः समुद्राः अन्ताः प्रान्ताः यस्याः तादृश्याः मह्याः पृथिव्याः सपत्नी समानभर्तृका, भूत्वा, अप्रतिरथम्—अद्वितीयवीरम्, तनयं—पुत्रम्, दौष्यन्तिं—दुष्यन्तसुतं भरतमित्यर्थः, निवेश्य—राज्ये प्रतिष्ठाप्य, तदर्पित०—तस्मिन् अर्पितः न्यस्तः कुटुम्बस्य बन्धुवर्गस्य भरः भारः येन तादृशेन, भर्त्रा—पत्या दुष्यन्तेन, सार्धं—सह, शान्ते—निरुपद्रवे, अस्मिन् आश्रमे—अस्मिन् तपोवने, पुनः—भूयः, पदं—स्थानं निवासमित्यर्थः, करिष्यसि—विधास्यसि। मालादीपकमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **चिराय**—चिरकाल तक। यह अव्यय है। इसी अर्थ में चिरम्, चिरेण, चिरात्, चिरस्य आदि भी मिलते हैं। इसके आधार पर आधुनिक भाषा-वैज्ञानिकों का मत है कि अव्यय भी पहले साधारण शब्दों के तुल्य थे और इनके रूप चलते थे। ( २ ) **चतुरन्त०**—चतुरन्त के दो अर्थ हो सकते हैं—चारों समुद्र जिसकी सीमा है या चारों दिगन्त जिसकी

सीमा हैं, ऐसी पृश्वी की सपत्नी होकर। चत्वारः अन्ताः यस्याः तादृश्याः मह्याः सपत्नी, बहुव्रीहिगर्भकतत्पुरुष। ( ३ ) **दौष्यन्तिम्**--दुष्यन्तस्य पुत्रः दौष्यन्तिः, तम्। दुष्यन्त+इञ् (इ)। पुत्र अर्थ में अत इञ् (४-१-९५) से इञ्। दुष्यन्त के पुत्र को। अभी तक पुत्र न होने से पुत्र का नाम अज्ञात है। अतः दुष्यन्त-पुत्र ही कहा गया है। यहाँ भरत से अभिप्राय है। ( ४ ) **अप्रतिरथम्**--न विद्यते प्रतिरथः प्रतिद्वन्द्वी यस्य सः, तम्, बहु०। जिसका प्रतिद्वन्द्वी योद्धा कोई नहीं है। प्रतिरथ--प्रतिगतः रथः यस्य सः, बहु०। **प्रतिरथ**--प्रतिद्वन्द्वी या विपक्षी। ( ५ ) **निवेश्य**--इसके दो अर्थ हो सकते हैं। (क) राज्य पर बिठाकर, (ख) विवाह कराकर। दोनों अर्थों में निवेश्य का प्रयोग मिलता है। स निवेश्य कुशावत्यां० (रघु० १५-९७) और तान्निवेश्य चतुरोऽपि तत्र सः (रघु० ११-५७)। प्रथम में राज्य पर बिठाकर अर्थ है और दूसरे में विवाह कराकर अर्थ है। यहाँ प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है। नि+विश्+णिच्+ल्यप् (य)। ( ६ ) **तर्दापत०**—तस्मिन् अर्पितः कुटुम्बस्य भरः येन तेन, बहुः०। उस पर डाला है कुटुम्ब का भार जिसने, ऐसे पति के साथ। प्राचीन परम्परा थी कि सभी राजा वृद्धावस्था में वानप्रस्थ होकर तपोवनों में तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे। मनु के अनुसार सभी को वृद्धावस्था में वानप्रस्थ होना चाहिए। मनु ने (मनु० ६-२, ३) कहा है—गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मानः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥ सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा॥ ( ७ ) यहाँ पर शकुन्तला पर महीसपत्नीत्व का आरोप, मही पर पुत्र को बिठाना, पुत्र पर कुटुम्ब का भार रखने से मालादीपक अलंकार है। इसका लक्षण है—तन्मालादीपकं पुनः। धर्मिणामेकधर्मेण संबन्धो यद् यथोत्तरम्॥ (सा० दर्पण १०-७७)। चतुर्थ अंक के प्रसिद्ध चार श्लोकों में चतुर्थ श्लोक यह है।

१२५. **गौतमी--जाते, परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्।** [जादे, परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मन्तइस्सदि। णिवत्तदु भवं।]

**गौतमी**--पुत्री, हमारे प्रस्थान का समय बीतता जा रहा है। अपने पिता को लौटाओ। अथवा यह (शकुन्तला) तो चिरकाल तक बार-बार उसी बात को कहती रहेगी। (इसलिए) आप लौटिए।

१२६. **काश्यपः--वत्से, उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।**

**काश्यप**--पुत्री, मेरा तप का अनुष्ठान रुक रहा है, (मुझे जाने दो)

१२७. **शकुन्तला**—(भूयः पितरमाश्लिष्य) तपश्चरणपीडितं तातशरीरम् । तन्माऽतिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व । [तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं । ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कण्ठस्स ।]

**शकुन्तला**—(फिर पिता से चिपट कर) आपका शरीर तपस्या से अतिकृश है। अब आप मेरे लिए बहुत अधिक दुःखित न होइए।

१२८. **काश्यपः**—(सनिःश्वासम्)

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥२१॥

गच्छ । शिवास्ते पन्थानः सन्तु ।

(निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च ।)

**अन्वय**—वत्से, त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम् एष्यति।

**काश्यप**—(लम्बी सांस लेकर)

हे पुत्री, तेरे द्वारा पहले पूजा के रूप में डाले गए और अब कुटी के द्वार पर उगे हुए नीवार के उपहार को देखतें हुए मेरा शोक भला कैसे शान्त हो सकेगा ?॥२१॥ जाओ। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

(शकुन्तला और उसके साथ जाने वालों का प्रस्थान।)

**संस्कृत-व्याख्या**—वत्से—हे पुत्रि, त्वया—शकुन्तलया, रचितपूर्वं—पूर्वं प्राक् रचितं प्रदत्तम्, उटजद्वार०—उटजस्य द्वारे विरूढम् उत्पन्नम्, नीवार०—नीवारस्य वन्यधान्यस्य बलिं पूजोपहारम्, विलोकयतः—पश्यतः, मम—कण्वस्य, शोकः—विषादः, कथं नु—केन प्रकारेण, शमं—शान्तिम्, एष्यति—प्राप्स्यति। मम शोकः शान्तिं न प्राप्स्यतीत्यर्थः। काव्यलिङ्गमलंकारः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **परिहीयते**—छोड़ रही है। यहाँ पर बीत रही है, अर्थ है। परि+हा से कर्मकर्ता में लट्। जाने के समय में विलम्ब हो रहा है। (२) **अथवा**—पहले गौतमी ने शकुन्तला से पिता को लौटाने को कहा। अथवा से वह ऋषि से कहती है कि आप लौट जाइये। (३) **उपरुध्यते०**—मेरा तप का

---

पाठभेद—१२७. नि० उत्कण्ठितुम् [उक्कण्ठिदुं] (दुःखित होना)।

अनुष्ठान रुक रहा है, उसके लिए मुझे जाने दो। इससे ज्ञात होता है कि ऋषि अपने व्रत के कितने दृढ़ थे। वे अपनी तपस्या के कार्य में कोई विघ्न या विलम्ब नहीं होने देना चाहते थे। (४) **तपश्चरण०**—इस वाक्य से ऋषि के प्रति शकुन्तला के प्रेम का पता चलता है कि वह उनको किसी प्रकार भी दुःखित नहीं देखना चाहती है। आप वैसे ही तपस्या से निर्बल हो रहे हैं, अब मेरे लिए अधिक दुःख करके और निर्बल न होइएगा। (५) **शममेष्यति**—ऋषि ने अपने दुःख को ऋषि-जनोचित भाषा में ही व्यक्त किया है। इस श्लोक में भाषा और भाव अत्यन्त औचित्यपूर्ण हैं। यह अत्यन्त ही करुणापूर्ण श्लोक है। तेरे द्वारा डाले हुए पूजा के नीवार जो अब कुटी के द्वार पर अंकुरित हो गए हैं, उन्हें देखते हुए मेरा दुःख कैसे शान्त होगा? जब-जब उनको देखूंगा, तभी तेरा स्मरण आ जायगा। (६) **रचितपूर्वम्**—पूर्वं रचितम्, सुप्सुपा समास और भूतपूर्वे चरट् (५-३-५३) इस निर्देश से पूर्व का बाद में प्रयोग। तेरे द्वारा पहले डाले हुए। (७) **उटज०**—उटजस्य द्वारे विरूढम्, तत्पुरुष। कुटी के द्वार पर उगे हुए। (८) **नीवार-बलिम्**—बलि शब्द बलिवैश्वदेव यज्ञ या भूतयज्ञ के लिए डाले गए अन्न के लिए है। कुछ विद्वान् भूत्वा चिराय० के स्थान पर इसको चौथा प्रसिद्ध श्लोक मानते हैं।

१२९. सख्यौ—(शकुन्तलां विलोक्य) हा धिक्, हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। [हद्धी, हद्धी। अन्तलिहिदा सउन्दला वणराईए।]

**दोनों सखियाँ—(शकुन्तला की ओर देखकर) हाय, हाय, वन-पंक्ति से शकुन्तला ओझल हो गई।**

१३०. काश्यपः—(सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

**काश्यप—(लम्बी साँस लेकर) अनसूया, तुम लोगों की सखी चली गई। मैं (आश्रम को) चल रहा हूँ, तुम लोग अपने शोक को रोककर मेरे पीछे आओ।**

१३१. उभे—तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः। [ताद, सउन्दलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसामो।]

**दोनों—तात, शकुन्तला के बिना यह आश्रम सूना-सा हो रहा है, इसमें कैसे प्रवेश करें?**

---

पाठभेद—१३०. नि० सहधर्मचारिणी (सखी)।

१३२. काश्यपः—स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी । (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः, शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । कुतः—

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥२२॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

**अन्वय**—कन्या हि परकीयः एव अर्थः, अद्य तां परिग्रहीतुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यासः इव प्रकामं विशदः जातः ।

**काश्यप—प्रेम का संचार (वस्तुओं को) इस प्रकार दिखाता है। (विचार-मग्न से चारों ओर घूमकर) अहा, शकुन्तला को पति के घर भेजकर मुझे आज मानसिक शान्ति प्राप्त हुई है। क्योंकि—**

**कन्या वस्तुतः पराई सम्पत्ति है। आज उसको पति के पास भेजकर मेरी यह अन्तरात्मा उसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्न हो रही है, जैसे धरोहर को लौटाने पर (धरोहर रखने वाले का मन प्रसन्न होता है।) ॥२२॥**

**(सबका प्रस्थान ।) चतुर्थ अंक समाप्त ।**

**संस्कृत-व्याख्या**—कन्या—दुहिता, हि—निश्चयेन, परकीय एव—परस्यैव, अर्थः—धनमस्ति । अद्य तां—शकुन्तलाम्, परिग्रहीतुः—परिणेतुः समीपे, संप्रेष्य—प्रस्थाप्य, मम —कण्वस्य, अयम्—एषः, अन्तरात्मा—मनः, प्रत्यर्पितन्यासः—प्रत्यर्पितः पुनरर्पितः न्यासः निक्षेपः येन सः, इव—तद्वत्, प्रकामम्—अत्यधिकम्, विशदः—निर्मलः प्रसन्न इत्यर्थः, जातः—संपन्नः । उत्प्रेक्षाऽलंकारः। इन्द्रवज्रा वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **अन्तर्हिता०**—शकुन्तला पेड़ों की ओट में हो जाने से ओझल हो गई है। अन्तर्हिता—अन्तर्+धा+क्त+टाप् । धा को हि आदेश होता है। ( २ ) **सहचारिणी**—सखी, साथी, साथ रहने वाली। सह चरतीति, सह+चर्+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। सहधर्मचारिणी का मुख्यार्थ पत्नी होता है,

अतः सहचारिणी पाठ अधिक उपयुक्त है। ( ३ ) **निगृह्य**—रोककर। नि+ग्रह्+ल्यप्। ( ४ ) **शून्यमिव०**—शकुन्तला के विना आश्रम सूना सा हो गया है। प्रिय व्यक्ति के वियोग में ऐसा ही अनुभव होता है। ( ५ ) **स्नेहप्रवृत्तिः०**—प्रेम का संचार वस्तुओं को ऐसा दिखाता है कि उसके विना सभी स्थान सूने प्रतीत होते हैं। स्नेहस्य प्रवृत्तिः, तत्पुरुष, स्नेह का प्रवाह। एवं दर्शयतीति, एवम्+दृश्+णिच्+णिनि, (इन्), ताच्छील्य अर्थ में णिनि। ( ६ ) **हन्त**—यहाँ पर हर्ष सूचक अव्यय है। ( ७ ) **परिग्रहीतुः**—पति के पास। पति हाथ पकड़ कर अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करता है, अतः परिग्रहीता। परिणेता का भी यही भाव है। ( ८ ) विशद—स्वच्छ, प्रसन्न। ( ९ ) **प्रत्यर्पित०**—प्रत्यर्पितः न्यासः येन, बहु०। जिसने धरोहर लौटा दी है। पुत्री पिता के पास वस्तुतः धरोहर के रूप में होती है। उसका उत्तम स्थान पर विवाह करा देने पर ही पिता को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां**
**'भारती-'व्याख्यायां चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ॥**

---

## पञ्चमोऽङ्कः।

**(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च।)**

**१. विदूषकः—(कर्णं दत्त्वा) भो वयस्य, संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।** [भो वअस्स, संगीतसालन्तरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्णपरिअअं करेदि त्ति।]

(तदनन्तर आसन पर बैठे हुए राजा और विदूषक का प्रवेश।)

विदूषक—(कान लगाकर सुनकर) हे मित्र, संगीतशाला के अन्दर की ओर ध्यान दीजिए। मधुर और शुद्ध संगीत की सुरीली तान सुनाई पड़ रही है। मैं समझता हूँ, माननीया हंसपदिका (रानी) संगीत का अभ्यास कर रही हैं।

**२. राजा—तूष्णीं भव। यावदाकर्णयामि।**

राजा—चुप हो, मैं जरा सुनता हूँ।

**( आकाशे गीयते। )**

**३. अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।**
**कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।१।।**
[अहिणवमहुलोलुवो तुमं तह परिचुम्बिअ चूअमंजरिं ।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिओ सि णं कहं ।।]

**अन्वय**—मधुकर, अभिनवमधुलोलुपः त्वं चूतमंजरीं तथा परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृतः एनां कथं विस्मृतः असि ।

**(आकाश में संगीत होता है।) हे भ्रमर, नवीन मधु के इच्छुक तुम आम की मंजरी (बौर) का उस प्रकार रसास्वादन करके, कमल में निवासमात्र से सन्तुष्ट, (अब) उसको क्यों भूल गए हो ? ।।१।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे भ्रमर, अभिनव०—अभिनवे नूतने मधुनि पुष्परसे लोलुपः अभिलाषी, त्वं चूत०—चूतस्य आम्रस्य मञ्जरीं वल्लरीम्, तथा—तेन प्रकारेण सस्नेहम्, परिचुम्ब्य—रसास्वादनं कृत्वा, कमल०—कमले पद्मे वसतिः निवासः तन्मात्रेण निर्वृतः सन्तुष्टः सन्, एनाम्—आम्रमञ्जरीम्, कथं—केन कारणेन, विस्मृतोऽसि—न स्मरसि । अत्र क्षिप्तिराक्षेपश्च गर्भसन्ध्यङ्गे स्तः । तृतीयं पताकास्थानकमस्ति । प्रच्छेदकनामकं लास्याङ्गं चास्ति । अपरवक्त्रं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **संगीतशाला**—इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में ऊँचे परिवारों की स्त्रियाँ संगीत सीखती थीं । ( २ ) **कल०**—मधुर और अस्पष्ट ध्वनि को कल कहते हैं । विशुद्ध का अर्थ है निर्दोष, त्रुटिरहित । शुद्ध गीति के पाँच भेदों में से एक है । इसमें सरल और ललित स्वर होते हैं । संगीतरत्नाकर में इसका वर्णन है—गीतयः पञ्च शुद्धाख्या भिन्ना गौडा निवेसरा । साधारणी विशुद्धा स्यादवक्रैर्ललितैः स्वरैः ।। ( ३ ) **स्वरसंयोगः**—सुरीली तान, स्वरों का आलाप । षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद, ये सात स्वर हैं । इनके प्रथम अक्षर लेकर स रे ग म प ध नि बना है । (४) **हंसपदिका**—एक रानी का नाम है । (५) **वर्णपरिचयम्**—वर्ण का अर्थ है संगीत । हंसपदिका स रे ग म० का अभ्यास कर रही है । संगीत में आरोह, अवरोह, स्थायी और संचारी चार प्रकार होते हैं । नाटयशास्त्र में कहा है—स्थायी तथैव संचारी तथारोहावरोहणौ । वर्णाश्चत्वार एवैते कथिताः सर्वगीतिषु । संगीतरत्नाकर में कहा है—गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः । स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारी च० ।। ( ६ ) **अभिनव०**—अभिनवे मधुनि लोलुपः, तत्पुरुष । नए-

---

पाठभेद—३. नि० लोलुपो भवान् [भवं] (इच्छुक आप) ।

नए मधु के पान का लोभी। लोलुप--लुप् धातु के यङ्लुगन्त रूप लोलुप् से अच् प्रत्यय। ( ७ ) **चूतमंजरीम्**--आम के बौर को। ( ८ ) **परिचुम्ब्य**--चूमकर अर्थात् उसका रस लेकर और उससे संभोग करके। ( ९ ) **कमल०**—कमले वसतिमात्रेण निर्वृतः, तत्पुरुष। कमल में निवास से सन्तुष्ट। (१०) इस श्लोक का अभिप्राय है कि तुम वसुमती से प्रेम करने के कारण मुझ हंसपदिका को भूल गए हो। यह श्लोक कवि ने शकुन्तला की स्मृति दिलाने के लिये यहाँ रखा है। दुष्यन्त भ्रमर है, शकुन्तला आम्रमंजरी है, शकुन्तला से इस प्रकार संभोग आदि करके अब यहाँ राजधानी में आकर अन्तःपुर की स्त्रियों में मग्न होकर उसे क्यों भूल गए हो? राजा का उसे न स्मरण करना यह सूचित करता है कि दुर्वासा के शाप का प्रभाव पूर्णावस्था में है। (११) यहाँ पर क्षिप्ति नामक गर्भसन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—रहस्यार्थस्य तद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्। (सा० दर्पण ६-९९)। दशरूपक के अनुसार यहाँ पर आक्षेप नामक गर्भसन्धि का अंग है। शकुन्तला को भूलने का संकेत है। गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः। ( दशरूपक १-४२) ॥ यहाँ तृतीय पताकास्थानक है। उसका लक्षण है—अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्। श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते ॥ (सा० दर्पण ६-४८)। यह प्रच्छेदक नामक लास्य का अंग है। उसका लक्षण है—अन्यासक्तं पतिं मत्वा प्रेमविच्छेदमन्युना। वीणापुरःसरं गानं स्त्रियाः प्रच्छेदको मतः ॥ (सा० दर्पण ६-२१८)।

**४. राजा--अहो, रागपरिवाहिणी गीतिः।**

**राजा--अहा, क्या ही अनुराग को बरसाने वाला संगीत है!**

**५. विदूषकः--किं तावद् गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः।**
[किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो।]

**विदूषक--क्या आपने गीत के शब्दों का अर्थ समझ लिया?**

**६. राजा--(स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। सखे माधव्य, मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका। निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।**

**राजा--(मुस्कराकर) इस व्यक्ति (हंसपदिका) से मैंने केवल एक बार प्रेम किया था। अतएव इसने महारानी वसुमती को लक्ष्य में रखकर मुझे**

---

पाठभेद—६. नि० माढव्य (माढव्य)। का० उपालब्धाः स्म इति (हमें ताना दिया है)।

बहुत बड़ा उपालम्भन (उलाहना, ताना) दिया है। मित्र माधव्य, मेरी ओर से हंसपदिका से कहना कि तुमने बहुत चतुरता से मुझे उपालम्भन दिया है।

७. विदूषकः——यद् भवानाज्ञापयति। (उत्थाय) भो वयस्य, गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्यांप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः। [जं भवं आणवेदि। भो वअस्स, गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मे मोक्खो।]

**विदूषक**——जो महाराज की आज्ञा। (उठकर) हे मित्र, वह दूसरों (अर्थात् सेविकाओं आदि) के हाथों से मेरी चोटी पकड़कर अब मुझ प्रेम-शून्य को (मनोरंजनार्थ) पीटेगी और (मुझे) किसी प्रकार छुटकारा नहीं मिलेगा, जैसे किसी अप्सरा के द्वारा पकड़े हुए विरक्त (संन्यासी) को मुक्ति नहीं मिलती है।

८. राजा——गच्छ। नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्।

**राजा**——जाओ और शिष्ट व्यवहार से उसको यह बता देना।

९. विदूषकः——का गतिः। [का गई।] (इति निष्क्रान्तः।)

**विदूषक**——और कोई मार्ग नहीं है। (प्रस्थान।)

### टिप्पणी

(१) **रागपरिवाहिणी**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं:—(क) अनुराग को बरसाने या फैलाने वाला संगीत है। (ख) राग-रागिनियों के प्रवाह से युक्त संगीत। (२) **अक्षरार्थः०**—क्या आपने इस कविता का भाव समझ लिया है? अक्षरार्थ पद्यार्थ के अर्थ में है। एक-एक अक्षर क्रमशः कान में सुनाई पड़ता है, अतः अक्षरार्थ कहा है। (३) **सकृत्०**—सकृत् कृतः प्रणयः यस्मिन् सः, बहु०। मैंने इस व्यक्ति से एक बार ही प्रेम किया है। प्रणय—प्र+नी+अच् (अ)। (४) **देवीं०**—अब मैं महारानी वसुमती से ही प्रेम करता हूँ, अतः इसने मुझे ताना दिया है कि मुझे क्यों भुला दिया है? महारानी के लिये देवी शब्द का प्रयोग होता है, अन्य रानियों को भट्टिनी कहते हैं। 'देवी कृताभिषकायामितरासु च भट्टिनी' (सा० दर्पण)। राजा के इस कथन से स्पष्ट है कि वह दुर्वासा के शाप के प्रभाव से शकुन्तला को सर्वथा भूल चुका है। उप+आ+लभ् का अर्थ उलाहना या ताना देना है। (५) **उपालब्धः०**—मुझे बड़ी चतुरता से ताना दिया है।

Funding by IKS-MoE

(६) **परकीयैः०**—विदूषक अपना भय प्रदर्शित करता है कि रानी मुझे पकड़ लेगी और पीटेगी। मुझे कोई बचाने वाला भी नहीं होगा। इस वाक्य में वीतरागस्य और मोक्षः के दो अर्थ हैं। रानी दूसरों के हाथों से मेरी चोटी पकड़वा लेगी। यदि स्वयं मुझे पकड़े तो मुझे कुछ शान्ति प्राप्त होती, भले ही बाद में पीट ले। शिखण्डक—चोटी, बड़े बाल। (७) **वीतरागस्य०**—जैसे कोई अप्सरा किसी विरक्त संन्यासी को फँसा लेती है, तो उसे मोक्ष नहीं मिल सकता है। वीतराग—विदूषक के पक्ष में प्रेम-शून्य, संन्यासी के पक्ष में विरक्त, विषयों में अलिप्त। मोक्ष—विदूषक के पक्ष में छुटकारा, संन्यासी के पक्ष में मुक्ति या मोक्ष। (८) **नागरिक०**—नागरिक के तुल्य चतुरतापूर्ण व्यवहार से। (९) **का गतिः**—यह मुहावरा है। और क्या करूँ, और कोई चारा नहीं है, और कोई मेरे लिए मार्ग नहीं है। विवश होकर यह करता हूँ।

**१०. राजा—(आत्मगतम्) किं नु खलु गीतमेवंविधार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा—**

**रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्**
**पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।**
**तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं**
**भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥२॥**

**(इति पर्याकुलस्तिष्ठति।)**

**अन्वय**—रम्याणि वीक्ष्य, मधुरान् शब्दान् निशम्य च, सुखितः अपि जन्तुः यत् पर्युत्सुकः भवति, तत् नूनं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि अबोधपूर्वं चेतसा स्मरति।

**राजा—(मन में) क्या बात है कि मैं इस प्रकार के भाव वाला गीत सुनकर प्रिय व्यक्ति के वियोग के बिना भी अत्यन्त खिन्न हो रहा हूँ? अथवा—**

**मनोहर वस्तुओं को देखकर या मधुर शब्दों को सुनकर एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति भी जो उत्कण्ठित (क्षुब्ध) हो जाता है, तब वह अवश्य ही (अपने मन में) संस्कार के रूप में दृढ़ विद्यमान पूर्वजन्मों के प्रेम-व्यवहारों को, (तथ्य के) ठीक-ठीक जाने बिना ही, अपने मन से स्मरण करता है ॥२॥**

**(खिन्न अवस्था में बैठता है।)**

---

पाठभेद—१०. नि० गीतार्थम् (गीत के अर्थ को)। नि० पर्युत्सुकीभवति (उत्कण्ठित होता है)।

**संस्कृत-व्याख्या**—रम्याणि—मनोहराणि वस्तूनि, वीक्ष्य—दृष्ट्वा, मधुरान्–श्रुतिसुखदान्, शब्दान्—संगीतादीन्, निशम्य च—श्रुत्वा च, सुखितोऽपि—प्रसन्नचित्तोऽपि सुखान्वितोऽपि वा, जन्तुः—प्राणी, यत् पर्युत्सुकः भवति—उत्कण्ठितः क्षुब्धो वा भवति, तत्—तदा, नूनम्—अवश्यमेव, भावस्थिराणि—भावैः संस्कारैः स्थिराणि दृढरूपेण विद्यमानानि, जनना०—जननान्तराणां पूर्वजन्मनां सौहृदानि प्रणयव्यवहारम्, अबोधपूर्वं—विषयविशेषस्याज्ञानपुरःसरम्, चेतसा—मनसा, स्मरति—स्मृतिं प्रापयति। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गं विभावना चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **इष्टजन०**—किसी प्रिय व्यक्ति के वियोग के बिना भी खिन्न हो रहा हूँ। राजा के इस कथन से ज्ञात होता है कि शाप के कारण वह शकुन्तला को स्मरण नहीं कर रहा है, पर संस्काररूप में वह विद्यमान है, अतः उसका मन वियोग का अनुभव कर रहा है। ( २ ) **रम्याणि०**—सुन्दर वस्तुओं को देखकर। वस्तूनि का अर्थ गम्य है। ( ३ ) **पर्युत्सुकः**—खिन्न, क्षुब्ध, उत्कण्ठायुक्त। पाठभेद—पर्युत्सुकीभवति में च्वि प्रत्यय अनावश्यक है, उसका भाव सुखितोऽपि से पूर्ण हो जाता है, अतः नहीं अपनाया गया है। औत्सुक्य का लक्षण सुधाकर में दिया गया है—कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टवस्तुवियोगतः। तद्दर्शनाद् रम्यवस्तुदिदृक्षादेश्च॥ ( ४ ) **चेतसा स्मरति**—स्मरण मन से ही होता है, परन्तु चेतसा देने का भाव यह है कि मनुष्य की इच्छा के न होते हुए भी उसका मन स्मरण करता है। यहाँ मन के कार्य पर बल है। ( ५ ) **अबोधपूर्वम्**—बोधः पूर्वं यथा स्यात् तथा बोधपूर्वम्, न बोधपूर्वम् अबोधपूर्वम्। उसके कारण या उस बात को ठीक-ठीक जाने बिना ही। मनुष्य का मन किस बात को लेकर उत्कण्ठित हो रहा है? यह उसे ठीक पता नहीं चलता। ( ६ ) **भावस्थिराणि**—भावैः स्थिराणि, तत्पुरुष। यहाँ पर भाव का अर्थ संस्कार है। मनुष्य जो कुछ देखता-सुनता आदि है, वे कार्य सूक्ष्म संस्कारों के रूप में आत्मा में विद्यमान रहते हैं। आगे जब भी वह कोई अतीत की बात स्मरण करता है तो वे संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं और उसको पूर्व कार्य का ज्ञान हो जाता है। ये जन्म जन्मान्तरों तक के संस्कार आत्मा में विद्यमान रहते हैं। ( ७ ) **जननान्तर०**—अन्य जन्मों के प्रेम-व्यवहारों को। अन्यत् जननं जननान्तरम्, मयूरव्यंसकादिवत् समास। जननान्तरस्य सौहृदानि, तत्पुरुष। संस्कृत में सौहार्द और सौहृद दोनों शब्द मित्रता अर्थ में प्रचलित हैं। कालिदास ने दोनों का ही प्रयोग किया है। सौहृद रूप दो प्रकार से बन सकता है:—(क) सुहृदय को मित्र अर्थ में सुहृद् आदेश सुहृद्दुर्हृदौ० (५-४-१५०) से होने पर अण् प्रत्यय करके प्रथम स्वर को वृद्धि। यह सुहृद् शब्द लाक्षणिक है, अतः हृद्भग० (७-३-१९) से उभय-पद-वृद्धि नहीं

होगी। (ख) सुहृदय शब्द से अण् प्रत्यय करके हृदयस्य हृद्० (६-३-५०) से हृदय को हृद् आदेश। स्वतन्त्र हृदयार्थक हृद् शब्द लेने पर सौहार्द बनेगा। (८) कालिदास ने ये भाव अन्यत्र भी प्रकट किए हैं—मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (रघु० ७-१५), संस्काराः प्राक्तना इव (रघु० १-२०)। (९) यहाँ पर पूर्वार्ध विशेष के द्वारा उत्तरार्ध सामान्य अर्थ के समर्थन के कारण अप्रस्तुत-प्रशंसा है। पूर्वार्ध में उत्तरार्ध कारण है, अतः काव्यलिंग है। बोधरूपी कारण के अभाव में भी स्मरणरूपी कार्य होने से विभावना है।

**(ततः प्रविशति कञ्चुकी।)**

**११ (क). कञ्चुकी—अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।**

**आचार इत्यवहितेन मया गृहीता**
**या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।**
**काले गते बहुतिथे मम सैव जाता**
**प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था ॥३॥**

**अन्वय**—राज्ञः अवरोधगृहेषु आचार इति अवहितेन मया या वेत्रयष्टिः गृहीता, सा एव वहुतिथे काले गते प्रस्थानविक्लवगतेः मम अवलम्बनार्था जाता।

(तदनन्तर कंचुकी का प्रवेश)

**कंचुकी—आह, मैं (आज) इस अवस्था को पहुँच गया हूँ।**

**राजा के अन्तःपुर में परम्परा मानकर सशक्त होते हुए भी मैंने जो बेंत की लाठी ग्रहण की थी, वही आज बहुत समय बीत जाने पर ठीक चलने में असमर्थ मेरे लिए सहारे की वस्तु हो गई है।।३।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—राज्ञः—नृपस्य, अवरोधगृहेषु—अन्तःपुरेषु, आचार इति—परम्परागता मर्यादेति मनसि विचार्य, अवहितेन—सावधानेन सशक्तेनापीत्यर्थः, या वेत्रयष्टिः—वेत्रदण्डः, मया—कंचुकिना, गृहीता—धृता, सा एव—सैव वेत्रयष्टिः, वहुतिथे—वहुसंख्यके, काले—शैशवयौवनादिसमये, गते—व्यतीते सति, प्रस्थान०—प्रस्थाने गमने विक्लवा स्खलिता गतिः पादक्षेपः यस्य तस्य, मम—कंचुकिनः, अवलम्बनार्था—अवलम्बनम् आश्रयः अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा, जाता—अभूत्। काव्यलिङ्गं विशेषः समाधिश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **कञ्चुकी**—यह अन्तःपुर की रानियों के अंगरक्षक का काम करता

था। यह सात्त्विक और वृद्ध ब्राह्मण होता था। कंचुकी नाम संभवतः इसलिए पड़ा है कि वह कंचुक (चोगा) पहनता था। कंचुकी का लक्षण है—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः। सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते ।। (नाट्यशास्त्र)। ये नित्यं सत्यसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः। ज्ञानविज्ञानकुशलाः कंचुकीयास्तु ते स्मृताः ।। (मातृगुप्त)। (२) **आचार इति**—परम्परा है कि कंचुकी हाथ में लाठी रखे। कंचुकी रानियों का अंगरक्षक होता था, अतः उसके हाथ में लाठी या डंडा होना उचित है। (३) **अवहितेन**—सावधान होते हुए भी। यहाँ पर अवहित का अर्थ है सशक्त होते हुए भी। उसमें शक्ति थी कि विना डंडे के भी किसी अनावश्यक व्यक्ति को वलात् अन्दर न आने दे। अतः अवहितेन कहा है। पाठभेद 'अधिकृतेन' का अर्थ 'आचार इति' के द्वारा पूरा हो जाता है, अतः स्वीकार नहीं किया गया है। (४) **वेत्रयष्टिः**—लाठी वेंत की वनीं होती थी। उस पर साधारणतया चाँदी की नक्काशी वाली पत्ती चढ़ी होती थी और मूंठ सोने या चाँदी की टोपी की होती थी। (५) **अवरोध०**—अवरोध अन्तःपुर या रनवास को कहते हैं। अन्तःपुर के कमरों में। अवरोध—अवरुध्यन्ते राजदाराः यत्र, अव+रुध्+घञ् (अ)। (६) **बहुतिथे**—वहुत लम्बा या बहुत सा। वहूनां पूरणः वहुतिथः, पूरण अर्थात् पूर्ति अर्थ में बहुपूगगण० (५-५-५२) से तियुक् (तिथ्) प्रत्यय और तस्य पूरणे० (५-२-४८) से डट् (अ) प्रत्यय। वहु+तिथ्+अ। (७) **प्रस्थान०**—प्रस्थाने विक्लवा गतिः यस्य तस्य, बहु०। प्रस्थान के समय या चलने के समय जिसकी लड़खड़ाती हुई चाल है? (८) **अवलम्बनार्था**—अवलम्बनम् अर्थः यस्याः सा, बहु०। सहारे की चीज, सहारे के काम की। (९) इस श्लोक में अधिक समय बीतना लड़खड़ाने का कारण है, अतः काव्यलिंग है। एक ही वेत्रयष्टि अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होने से विशेष अलंकार है। वृद्धावस्था के प्रारम्भ होने पर लाठी सहायक हो गई है। अतः समाधि अलंकार है।

**इस श्लोक के बाद कुछ संस्करणों में इतना पाठ और है—**

**यावदभ्यन्तरगताय देवाय स्वमनुष्ठेयमकालक्षपार्हं निवेदयामि। (स्तोकमन्तरं गत्वा) किं पुनस्तत्। (विचिन्त्य) आं ज्ञातम्। कण्वशिष्यास्तपस्विनो देवं द्रष्टुमिच्छन्ति। भोः चित्रमेतत्—क्षणात् प्रबोधमायाति लंघ्यते तमसा पुनः। निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः ।।**

मैं अन्दर गए हुए महाराज को विलम्ब न करने योग्य अपने कर्तव्य से सूचित करता हूँ। (कुछ दूर जाकर) क्या कहना है? (सोचकर) अच्छा, समझ गया! कण्व के शिष्य तपस्वी लोग महाराज से मिलना चाहते हैं। यह वड़े आश्चर्य की वात है कि—मुझ वृद्ध की वुद्धि, वुझते हुए दीपक की शिखा के तुल्य क्षणभर में जागृत हो जाती है और फिर क्षणभर में अन्धकार (अज्ञान) से ग्रस्त हो जाती है।

**११ (ख). भोः, कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदयितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। कुतः—**

**भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव, रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।**
**शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥४॥**

**अन्वय**—भानुः सकृद्युक्ततुरङ्गः एव। गन्धवहः रात्रिदिवं प्रयाति। शेषः सदैव आहितभूमिभारः। षष्ठांशवृत्तेः अपि एष धर्मः।

यह ठीक है कि महाराज को धार्मिक कर्तव्यों में विलम्ब नहीं करना चाहिए। फिर भी अभी धर्मासन (न्यायासन) से उठे हुए महाराज को फिर (विश्राम-कार्य में) विघ्नकारी कण्व के शिष्यों के आगमन का समाचार बताने में समर्थ नहीं हूँ। अथवा प्रजापालन के अधिकार में विश्राम कहाँ है? क्योंकि—

सूर्य ने अपने घोड़ों को एक बार ही सदा के लिए जोता है। वायु दिन-रात चलती है। शेषनाग सदा ही पृथ्वी का भार उठाए हुए है। राजा का भी यही धर्म (कर्तव्य) है ॥४॥

**संस्कृत-व्याख्या**—भानुः—सूर्यः, सकृद्०—सकृत् एकवारमेव युक्ताः नियुक्ताः तुरङ्गाः अश्वाः यस्य तादृशोऽस्ति। गन्धवहः—वायुः, रात्रिन्दिवम्—अहोरात्रम्, प्रयाति—प्रवहति। शेषः—शेषनागः, सदैव—सततम्, आहित०—आहितः न्यस्तः भूम्याः पृथिव्याः भारः यस्मिन् तादृशोऽस्ति, षष्ठांशवृत्तेः अपि—षष्ठांशः षष्ठभागः वृत्तिः जीविका यस्य तस्य राज्ञोऽपि, एष धर्मः—एतदेव कर्तव्यमस्ति, यत् सोऽपि रात्रिन्दिवं प्रजापालनव्रते तत्परः स्यात्। मालाप्रतिवस्तूपमाऽप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **कामम्**—भले ही, यह ठीक है कि। यह अव्यय है। (२) **धर्मकार्यम्**—राजा का कर्तव्य है कि वह धार्मिक कार्यों में विलम्ब न करे। ऋषियों और विद्वानों का सत्कार करना भी धार्मिक कर्तव्य है। यहाँ पर ऋषियों का स्वागत करना है। (३) **अनतिपात्यम्**—विलम्ब नहीं करना चाहिए। अतिपात का अर्थ है विलम्ब करना। अनतिपात्यम्—न+अति+पत्+णिच्+यत् (य)। (४) **धर्मासनात्**—धर्मासन का अर्थ है न्याय का आसन। जिस आसन पर बैठकर राजा न्याय का काम करता है। रघुवंश (८.२८) में इसके लिए ही व्यवहारासन शब्द

आया है। राजा सिंहासन पर बैठकर विवादों का निर्णय आदि करता है। (५) **अविश्रमः**—विश्राम से रहित। पाणिनि के अनुसार विश्रम शब्द ही शुद्ध है विश्राम नहीं। विश्रम—वि+श्रम्+घञ् (अ), नोदात्तोपदेशस्य० (७-३-३४) से श्रम् के अ को वृद्धि का निषेध। (६) **लोकतन्त्राधिकारः**—लोक—प्रजा, तन्त्र—पालन, अधिकार—कर्तव्य। प्रजा के पालन के कार्य में विश्राम कहाँ? इसका यह भी भाव हो सकता है कि कालिदास के समय में राजा का मन्त्रिमण्डल प्रजा की संमति से निर्वाचित होता था और राजा राज्य-प्रमुख या राज्यपाल का काम करता था। प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा राज्य का संचालन होने से लोकतन्त्रसत्ता या प्रजातन्त्रसत्ता थी। आजकल यह लोकतन्त्र और प्रजातन्त्र प्राचीन पद्धति का अनुकरण माना जा सकता है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में कई स्थानों पर प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन का और जनतन्त्रसत्ता का वर्णन आया है। ऋग्वेद (१०-१२४-८) में कहा है—विशो न राजानं वृणानाः० (जिस प्रकार प्रजा राजा का निर्वाचन करती है)। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन की प्रथा थी। यजुर्वेद (९-४० और १०-१८) में कहा है—महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय०। इसमें महान् जानराज्य अर्थात् जनता द्वारा संचालित राज्य का वर्णन है। यजुर्वेद (१०-४) में राष्ट्रपति का वर्णन है कि—वह सूर्य के समान तेजस्वी हो, जनहित और विश्वहित का रक्षक हो और अपने राज्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करे—सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त० जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त० विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त० स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त०। (यजु० १०-४)। (७) **सकृद्०**—सकृद् युक्ताः अश्वाः यस्य सः, बहु०। जिसके घोड़े एक वार ही जुते हैं। सूर्य को तव से आज तक विश्राम नहीं मिला है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। (८) **रात्रिन्दिवम्**—रात्रौ च दिवा च तयोः समाहारः, अचतुरविचतुर० (५-४-७७) से रात्रिन्दिव निपातन। (९) **गन्धवहः**—वायु। वहति इति वहः, पचाद्यच्, गन्धस्य वहः, गन्ध को ले जाने वाली। (१०) **आहित०**—आहितः भूम्याः भारः यस्मिन् सः, बहु०। जिस पर भूमि का भार रखा हुआ है। (११) **षष्ठांश०**—षष्ठांशः वृत्तिः यस्य सः, बहु०। षष्ठभाग से काम चलाने वाला। राजा प्रजा से छठा भाग कर-रूप में लेता है, अतः उसका कर्तव्य है कि प्रजा का उसी उत्तरदायित्व से पालन करे। (१२) यहाँ पर अविश्रमः का ही भाव सकृद्युक्त, रात्रिन्दिव और सदैव के द्वारा कहा गया है, अतः प्रतिवस्तूपमा है। इसकी माला सी होने से मालाप्रतिवस्तूपमा है। विशेष दुष्यन्त से स्थान पर सामान्य राजा कहने से अप्रस्तुतप्रशंसा है।

**११ (ग). यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः—**

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते श्रान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः
शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥५॥

(उपगम्य) जयतु जयतु देव ! एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः । श्रुत्वा दवः प्रमाणम् ।

**अन्वय**—स्वाः प्रजाः इव प्रजाः तन्त्रयित्वा श्रान्तमनाः, दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः द्विपेन्द्रः शीतं स्थानम् इव विविक्तं निषेवते ।

**मैं अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ। (घूमकर और देखकर) यह महाराज—**

**अपनी सन्तान की तरह (अपनी) प्रजा का पालन करके थके हुए उसी प्रकार एकान्त का सेवन कर रहे हैं, जिस प्रकार दिन में अपने झुण्ड को इधर उधर (खेतों में) भेजकर धूप से सन्तप्त गजराज शीतल स्थान का सेवन करता है ॥५॥**

**(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो। ये हिमालय की तराई के जंगल में रहने वाले, (महर्षि) काश्यप के सन्देश को लेकर स्त्रियों के साथ तपस्वी लोग आए हैं। (यह) सुनकर महाराज ही आगे निश्चय करें (कि क्या करना है ? ) ।**

**संस्कृत-व्याख्या**—एष देवः, स्वाः—स्वकीयाः, प्रजाः इव—सन्ततयः इव, प्रजाः—प्रकृतीः, तन्त्रयित्वा—पालयित्वा सम्यक्तया व्यवस्थाप्य वा, श्रान्तमनाः—खिन्नचेताः, दिवा—दिवसे, यूथानि—हस्तिगणान्, संचार्य—इतस्ततः क्षेत्रादिषु संप्रेष्य, रविप्रतप्तः—आतपपीडितः, शीतं—शीतलम्, स्थानं—प्रदेशम्, इव—यथा, विविक्तम्—एकान्तम्, निषेवते—आश्रयते । यमकमुपमा चालंकारौ । उपेन्द्रवज्रेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणाद् उपजातिर्वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **नियोगम्०**—कर्तव्य का पालन करता हूँ। नियोग—कर्तव्य, ड्यूटी : ( २ ) **स्वाः प्रजा इव**—अपनी सन्तान की तरह प्रजा का पालन करके। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में राजा और प्रजा का संबन्ध पिता-पुत्र

---

पाठभेद—११. नि० निषेवतेऽशान्तमना (अशान्त-चित्त राजा सेवन करता है)।

का-सा था । राजा प्रजा के सभी कष्टों को दूर करने के लिए सदा उद्यत रहता था । (३) **तन्त्रयित्वा**—पालन करके । दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि प्रजा की सुन्दर व्यवस्था करके, सभी कार्यों को ठीक सँभाल कर । (४) **श्रान्तमनाः**—श्रान्तं मनः यस्य सः, बहु० । थके हुए चित्त वाला । श्रान्त—श्रम्+क्त । (५) **विविक्तम्**—एकान्त, शान्त । वि+विच्+क्त । (६) **यूथानि संचार्य०**—हाथी जिस प्रकार अपने झुण्डों को इधर-उधर आहार के लिए खेतों आदि में भेजकर विश्राम करता है । संचार्य—सम्+चर्+णिच्+ल्यप् । (७) **रविप्रतप्तः**—धूप से व्याकुल । (८) **दिवा**—दिन में । दिन का वर्णन है, अतः दिवा आवश्यक है । राजा और हाथी दोनों की दिन की अवस्था का वर्णन है । (९) **द्विपेन्द्रः**—हाथियों का राजा, बड़ा हाथी । (१०) प्रजाः प्रजाः में यमक है । दोनों का अर्थ भिन्न है । इव के कारण उपमा है । (११) **उपत्यकारण्य०**—उपत्यका तराई को कहते हैं । पहाड़ के पास की भूमि । उपाधिभ्यां त्यकन्० (५-२-३४) से त्यकन् (त्यक) प्रत्यय समीप अर्थ में । उप+त्यक । अधित्यका पहाड़ की ऊँची समभूमि (पठार) को कहते हैं । (१२) **देवः प्रमाणम्**—यह मुहावरा है । इस विषय में आप प्रमाण हैं अर्थात् आप ही निश्चय कीजिए कि आगे क्या करना है ? जो आप कहें, वह किया जाय ।

**१२. राजा—(सादरम्) किं काश्यपसन्देशहारिणः ।**

राजा—(आदर के साथ) क्या वे लोग काश्यप का सन्देश लेकर आए हैं ?

**१३. कञ्चुकी—अथ किम् ।**

कंचुकी—हाँ, महाराज ।

**१४. राजा—तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः । अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति । अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि ।**

राजा—तो मेरी ओर से (हमारे) गुरु सोमरात से निवेदन करना कि इन आश्रमवासियों का वैदिक विधि से सत्कार करके स्वयं ही इनको अन्दर लावें । मैं भी यहाँ तपस्वियों के दर्शन के योग्य स्थान पर बैठा हुआ (उनकी) प्रतीक्षा करता हूँ ।

**१५. कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः ।)**

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा । (प्रस्थान)

**१६. राजा—(उत्थाय) वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय ।**

राजा—(उठकर) वेत्रवती, यज्ञशाला का मार्ग बताओ।

१७. प्रतीहारी—इत इतो देवः। [ इदो इदो देवो।]

प्रतीहारी—महाराज इधर से आइए, इधर से।

टिप्पणी

( १ ) **सादरम्**—ऋषि का सन्देश लेकर आए हैं, अतः आदर प्रदर्शित करता है। ( २ ) **उपाध्यायः**—गुरु, अध्यापक। मनु के अनुसार उपाध्याय का स्थान आचार्य से छोटा होता था और वह वेतन लेकर वेद के कुछ अंश और वेदांग पढ़ाता था। एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः। योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥ (मनु० २—१४१)। उपेत्य अधीयते अस्मात्, उप+अधि+इङ (इ)+घञ्। इङश्च (३-३-२१) से घञ् प्रत्यय। उपाध्याय की स्त्री को उपाध्यायानी और उपाध्यायी कहते हैं और जो स्वयं अध्यापिका हो उसे उपाध्यायी और उपाध्याया। ( ३ ) **श्रौतेन०**—वेदोक्त विधि से। श्रुतौ विहितः श्रौतः, श्रुति+अण्। जो श्रुति अर्थात् वेद में कहा गया है! ( ४ ) **सत्कृत्य**—सत्कार करके। आदरानादरयोः० (१-४-६३) से सत् की गति संज्ञा होने से समास और क्त्वा को ल्यप्। सत्+कृ+ल्यप्। ( ५ ) **स्वयमेव०**—स्वयं ही उनको अन्दर लावें। इससे तपस्वियों के प्रति विशेष आदर सूचित करता है। राजा ने शकुन्तला का परित्याग भी दुर्वासा के शाप के कारण किया, अन्यथा नहीं करता। ( ६ ) **अग्निशरणमार्गम्०**—यज्ञशाला का मार्ग बताओ। अग्निशरण—यज्ञशाला, जहाँ पर अग्नियों की स्थापना की हुई है। राजा के लिए विधान है कि तपस्वियों आदि से यज्ञशाला में ही मिले। अग्न्यागारतः कार्यं पश्येद् वैद्यतपस्विनाम्। पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च॥

१८. राजा—(परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य।) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥६॥

---

पाठभेद—१८. नि० दुःखान्तरैव (दुःखान्त ही है)। नि० रेनम् (इसको)। नि० न च श्रमाय (थकान के लिए नहीं है, ऐसी बात नहीं, अर्थात् थकान के लिए ही होता है)।

**अन्वय**—प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसाययति। लब्धपरिपालनवृत्तिः क्लिश्नाति एव। राज्यम् आतपत्रम् इव स्वहस्तधृतदण्डम् अतिश्रमापनयनाय न, यथा श्रमाय।

**राजा**—(चारों ओर घूमता है और अपने अधिकार के दुःख का अभिनय करता हुआ) सभी प्राणी अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करके सुखी हो जाते हैं, किन्तु राजाओं की चरितार्थता (सफलता) मुख्यतः दुःख के लिए ही है।

प्रतिष्ठा (उच्चपद) की प्राप्ति केवल उत्सुकता को समाप्त करती है, किन्तु प्राप्त हुए की रक्षा का कार्य उसको दुःखित कर देता है। राज्य छाते के तुल्य है, जिसका अपने हाथ में पकड़ा हुआ दण्ड (१. दण्डविधान या न्यायव्यवस्था, २. डण्डा) थकान को उतना अधिक दूर नहीं करता है, जितना (स्वयं और) थकान करता है॥६॥

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रतिष्ठा—महोच्चपदप्राप्तिः गौरवप्राप्तिर्वा, औत्सुक्यमात्रम्—उत्कण्ठामात्रम्, अवसाययति—समापयति, लब्ध०—लब्धस्य प्राप्तस्य परिपालने रक्षणकार्ये वृत्तिः व्यापारः, क्लिश्नाति एव—अत्यधिकं दुःखयति। राज्यं—राजत्वम्, आतपत्रमिव—छत्रमिव, स्वहस्त०—(राजपक्षे) स्वहस्ते स्वकरे धृतः गृहीतः दण्डः न्यायव्यवस्था यस्मिन् तत्, (छत्रपक्षे) स्वहस्तेन निजकरेण धृतः गृहीतः दण्डः छत्रदण्डः यस्मिन् तत्, अतिश्रमा०—अत्यधिकं श्रमस्य विषादस्य खेदस्य वा अपनयनाय नाशाय, न—तथा न भवति, यथा—येन प्रकारेण, श्रमाय—विषादाय खेदाय वा भवति। काव्यलिङ्गं श्लेषश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **अधिकारखेदम्**—अधिकार की प्राप्ति से उत्पन्न कष्ट या दुःख। (२) **निरूप्य**—अभिनय करके। (३) **चरितार्थता**—सफलता अर्थात् राज्य की प्राप्ति। चरितः अर्थः येन सः चरितार्थः, तस्य भावः। चरित—प्राप्त, अर्थ—प्रयोजन, जिसने अपना अभीष्ट प्राप्त कर लिया है, वह चरितार्थ है। (४) **दुःखोत्तरा**—दुःखप्रधान, जिसमें दुःख ही मुख्य है। दुःखम् उत्तरं प्रधानं यस्मिन् सा, बहु०। (५) **औत्सुक्यमात्रम्**—उत्सुकता अर्थात् उत्कण्ठा, किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छामात्र को। औत्सुक्यमेव औत्सुक्यमात्रम्। यहाँ पर मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से एव अर्थ में मात्र के साथ नित्य समास। (६) **अवसाययति**—नष्ट करती है। अव+सो (सा)+णिच्+लट्। णिच् करने पर शाच्छासाह्वा० (७-३-३७) से धातु के बाद यक् (य्)। (७) **प्रतिष्ठा**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) प्रतिष्ठा अर्थात् राज्य का लाभ, उस स्थान पर अधिष्ठित होना, (ख) गौरव और यश की

प्राप्ति। दोनों ही अर्थों में इसका प्रयोग मिलता है। प्रतिष्ठा—प्रति+स्था+अङ् (अ)। (८) **लब्ध०**—लब्धस्य परिपालने वृत्तिः, तत्पुरुष। प्राप्त हुए की रक्षा का कार्य। मनुष्य को जब तक कोई उच्चपद नहीं मिलता है, तब तक वह उसके लिए बहुत उत्सुक रहता है। परन्तु जब वह स्थान मिल जाता है तो उसका उत्तरदायित्व और कार्य-भार उसे दुःखित कर देता है। वही राजा की अवस्था है। (९) **नातिश्रमा०**—प्रतिष्ठा मनुष्य के खेद को उतना दूर नहीं करती, जितना उसको खिन्न कर देती है। अतिशयेन श्रमापनयनम्, अधिक दुःख दूर करना। अतिश्रमापनयनाय को समस्त एकपद रखना अधिक उपयुक्त है। 'अति' पृथक् रखने पर उसका प्रशंसा अर्थ करना क्लिष्टकल्पना है। (१०) **स्वहस्त०**—इसके दो अर्थ हैं, एक राजा के पक्ष में और दूसरा छाते के पक्ष में। क्रमशः ये अर्थ हैं—(क) अपने हाथ में ली है राजकीय दण्ड-व्यवस्था जिसने, (ख) अपने हाथ में लिया है छाते का डंडा जिसने। दण्ड—(क) दण्ड-व्यवस्था या न्याय-कार्य, (ख) डंडा। स्वहस्ते स्वहस्तेन वा धृतः दण्डः यस्मिन् तत्, बहु०। (११) **आतपत्रम्**—छाता। आतपात् त्रायते इति, आतप+त्रा+क (अ)। धूप से बचाता है। (१२) प्राप्त की रक्षा क्लेश का कारण है, अतः काव्यलिंग है। प्रतिष्ठा दण्ड आदि श्लिष्ट हैं, अतः श्लेष अलंकार है।

**(नेपथ्ये।)**

**१९. वैतालिकौ—विजयतां देवः।**

**(नेपथ्य में) दो भाट (स्तुतिपाठक)—महाराज की जय हो।**

**२०. प्रथमः—**

**स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः**
**प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।**
**अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं**
**शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥७॥**

**अन्वय**—स्वसुखनिरभिलाषः लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे। अथवा ते वृत्तिः एवंविधा एव। हि पादपः मूर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति, छायया संश्रितानां परितापं शमयति।

**पहला—आप अपने सुख की चिन्ता न करते हुए प्रजा के (हित के) लिए प्रतिदिन कष्ट उठाते हैं। अथवा आपका कार्य-व्यापार ही ऐसा है। क्योंकि वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप को सहन करता है और अपनी छाया से अपने आश्रितों के सन्ताप (१. दुःख, २. गर्मी) को दूर करता है ॥७॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—**स्वसुख०**—स्वस्य निजस्य सुखे आनन्दानुभूतौ निरभिलाषः,

लोकहेतोः—लोकस्य प्रजायाः हेतोः सुखसम्पादनार्थम्, प्रतिदिवसं—निरन्तरमित्यर्थः, खिद्यसे—कष्टमनुभवसि। अथवा ते—तव राज्ञः, वृत्तिः—कार्यव्यापारः, एवंविधैव—एतादृशी एवास्ति। हि—यतोहि, पादपः—वृक्षः, मूर्ध्ना—स्वशिरसा, तीव्रम्—अत्युग्रम्, उष्णम्—आतपम्, अनुभवति—सहते : छायया—स्वछायाप्रदानेन, संश्रितानाम्—आश्रितानाम्, परितापं—सन्तापम्, शमयति—निवारयति। समासोक्तिः काव्यलिङ्गमाक्षेपो दृष्टान्तश्चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **वैतालिकौ**—वैतालिक भाट या चारण को कहते हैं। ये स्तुतिपाठक होते हैं। ये निश्चित समय की सूचना देते हैं और साथ ही राजा की स्तुति का पाठ भी करते हैं। भविष्यपुराण में कहा है—तत्तत्प्रहरकयोग्यै रागैस्तत्कालवाचिभिः श्लोकैः। सरभसमेव वितालं गायन् वैतालिको भवति।। यह शब्द दो प्रकार से वन सकता है—(क) विविधः तालः वितालः, वितालः प्रयोजनमस्य, विताल+ठञ् (इक)। प्रयोजनम् (५-१-१०९) से ठञ् प्रत्यय। (ख) विताल शब्द का लक्षणा के द्वारा विताल-गान अर्थ लेकर, वितालगानं शिल्पम् अस्य, विताल+ठक् (इक)। शिल्पम् (४-४-५५) से ठक् प्रत्यय। विताल जिनका प्रयोजन है या वितालगान जिनका शिल्प है। (२) **स्वसुख०**—स्वस्य सुखे निरभिलाषः, तत्पुरुष। अपने सुखों की चिन्ता या इच्छा छोड़कर। (३) **खिद्यसे**—दुःखित होते हो, कष्ट उठाते हो। खिद् धातु दिवादिगणी आत्मनेपदी है, उसका यह लट् का रूप है। काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (५-२-६) में वामन ने खिद् धातु को दिवादिगणी न होना मानकर खिद्यते रूप कर्म-कर्तृवाच्य का माना है। खिद्यते इति च प्रयोगो दृश्यते। सोऽपि कर्मकर्तर्येव द्रष्टव्यः, न कर्तरि। अदैवादिकत्वात् खिदेः। सिद्धान्तकौमुदी आदि में यह धातु दिवादिगण में है, अतः उक्त प्रकार मानने की आवश्यकता नहीं है। (४) **लोकहेतोः**—प्रजा के हित के लिए। हेतु अर्थ में पंचमी। (५) **वृत्तिः**—कार्य व्यापार, कार्यों का करना। (६) **पादपः**—वृक्ष। यह शब्द यहाँ विशेष रूप से रखा गया है। यह साभिप्राय है। पादप—नृप शब्द के तुल्य यह राजा अर्थ भी वता सकता है। पादान् चरणभूताः प्रजाः पाति रक्षतीति। पैरों के तुल्य आश्रित प्रजा की रक्षा करने वाला। प्रजा राजा के आधार पाद हैं। वृक्ष को पादप इसलिए कहा जाता है कि वह पैरों अर्थात् जड़ों से जल या रस पीता है। पादैः पिवतीति। (७) **परितापम्**—(क) प्रजा के सन्ताप को, (ख) वृक्ष के नीचे वैठे हुओं की गर्मी को। (८) यहाँ वृक्ष पर सज्जन व्यक्ति का आरोप होने से समासोक्ति है। छाया ताप-शान्ति का कारण है, अतः काव्यलिंग है। यहाँ पर अथवा के द्वारा पूर्व वात का निषेध-सा होने से आक्षेप अलंकार है। उत्तरार्ध में दृष्टान्त होने से विम्व-प्रतिविम्वभाव है, अतः दृष्टान्त है। (९) धनंजय ने दशरूपक में धीरोदात्त नायक की निरभिलाषिता गुण का यह श्लोक उदाहरण दिया है।

## २१. द्वितीयः––

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥८॥

**अन्वय**––आत्तदण्डः विमार्गप्रस्थितान् नियमयसि, विवादं प्रशमयसि, रक्षणाय कल्पसे। अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम, प्रजानां बन्धुकृत्यं तु त्वयि परिसमाप्तम्।

**दूसरा––आप राजदण्ड (हाथ में) लेकर कुमार्ग-गामियों को नियन्त्रित करते हैं, विवादों को पूर्णतया शान्त करते हैं और (प्रजा की) रक्षा करते हैं। विशाल ऐश्वर्य होने पर भले ही बहुत से संबन्धी हो जाएँ, परन्तु प्रजा का बन्धुकार्य (संबन्धियों वाला काम) तो आप में ही पूर्ण होता है ॥८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**––आत्तदण्डः––आत्तः गृहीतः दण्डः राजदण्डः येन सः, विमार्ग०––विमार्गेण विपरीतेन पथा प्रस्थितान् प्रचलितान् कुमार्गगामिन इत्यर्थः, नियमयसि––सन्मार्गगामिनः करोषि। विवादं––कलहम्, प्रशमयसि––निवारयसि। रक्षणाय––रक्षाकार्याय, कल्पसे––प्रभवसि। अतनुषु––प्रभूतेषु, विभवेषु––धनादिषु सत्सु, ज्ञातयः––बान्धवाः, सन्तु नाम––भवन्तु नाम। प्रजानां––प्रकृतीनाम्, बन्धुकृत्यं––बान्धवकार्यं कुमार्गात् निवर्तनं कलहशमनं रक्षणं च, त्वयि––राज्ञि दुष्यन्ते, परिसमाप्तं––पूर्णतया सम्पन्नं भवति। व्यतिरेकः काव्यलिङ्गं दीपकं चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **नियमयसि**––नियन्त्रित करते हो, सन्मार्ग पर लाते हो। नि+यम्+णिच्+लट्। मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से ह्रस्व। (२) **विमार्ग०**––विपरीतो मार्गः विमार्गः, प्रादितत्पुरुष०। तेन प्रस्थितान्, तत्पुरुष। कुमार्ग पर चलने वालों को। मार्ग––मृज्+घञ् (अ)। (३) **आत्तदण्डः**––आत्तः दण्डः येन सः, बहु०। राजदण्ड को हाथ में लिए हुए। आत्त––आ+दा+क्त (त)। अच उपसर्गात्तः (७-४-४७) से दा के आ को त्। (४) **प्रशमयसि**––पूर्णतया शान्त करते हो। प्र+शम्+णिच्+लट्। णिच् के कारण शम् के अ को जो वृद्धि होगी, उसको मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से ह्रस्व। (५) **कल्पसे०**––कल्प् धातु के कारण रक्षण में चतुर्थी। रक्षा के कार्य में समर्थ हो। (६) **अतनुषु**––

---

पाठभेद––२१. नि० कुमार्ग०, (कुमार्ग)।

बहुत अधिक। तनु का अर्थ है—कम, अतनु-—अत्यधिक। ( ७ ) **विभवेषु०**—सम्पत्ति होने पर। जिसके पास धन वहुत है, उसके वहुत से संबन्धी हो जाते हैं और जिनके पास धन नहीं है, उनके कोई संबन्धी नहीं होते। उनके जो सम्बन्धी हैं वे पराए से रहते हैं। परन्तु आप वस्तुतः सारी प्रजा के सम्बन्धी हैं और संबन्धी का पूरा कार्य करते हैं। जैसे—कुमार्ग से हटाना, पारस्परिक झगड़ों को निपटाना और उनकी सुरक्षा करना—ये सभी काम आप करते हैं। ( ८ ) **ज्ञातयः**—सम्बन्धी। ( ९ ) **नाम**—भले ही। यहाँ निन्दा-सूचक है। ( १० ) **परिसमाप्तम्०**—तुझमें ही वन्धुत्व का कार्य वस्तुतः पूर्ण हुआ है। वन्धु का लक्षण पंचतंत्र में कहा है—उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे। राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स वान्धवः॥ परिसमाप्तम्—परि साकल्येन समाप्तं सम्पन्नम्। परि+सम्+आप्+क्त। पूर्णतया समाप्त हुआ है। (११) इस श्लोक में निजी वन्धुओं से राजा को उच्च वन्धु वताया गया है, अतः व्यतिरेक है। पूर्वार्ध वन्धुकृत्य संपन्न हुआ का कारण है, अतः काव्यलिंग है। नियमयसि आदि तीन क्रियाओं का कर्ता एक त्वम् (तू) है, अतः दीपक अलंकार है।

२२. राजा—एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः।

(इति परिक्रामति।)

राजा—(इस स्तुति को सुनकर) खिन्नचित्त भी मैं फिर उत्साहयुक्त हो गया हूँ। (चारों ओर घूमता है।)

२३. प्रतीहारी—एषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः। [एसो अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दो। आरोहदु देवो।]

प्रतीहारी—यह अभी सफाई करने के कारण मनोहर, हवन के (घृतादि के लिए) उपयोगी समीपस्थ गाय से युक्त, यज्ञशाला का चबूतरा है। महाराज इस पर चढ़िए।

२४. राजा—(आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति।) वेत्रवति, किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः।

---

पाठभेद—२३. नि० एषो [एसो], इति नास्ति।

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥६॥

**अन्वय**—किं तावद् उपोढतपसां व्रतिनां तपः विघ्नैः दूषितम् । उत धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु केनचित् असत् चेष्टितम् । आहोस्वित् मम अपचरितैः वीरुधां प्रसवः विष्टम्भितः, इति आरूढबहुप्रतर्कं मे मनः अपरिच्छेदाकुलम् ।

**राजा**—(उस पर चढ़कर सेविका के कंधे का सहारा लेकर खड़ा होता है।) वेत्रवती, किस उद्देश्य से भगवान् काश्यप ने मेरे पास इन ऋषियों को भेजा होगा ?

**क्या उच्च कोटि के तपस्वी व्रती ऋषियों की तपस्या विघ्नों के कारण दूषित हो गई है ? अथवा तपोवन में विचरण करने वाले प्राणियों (मृग आदि) पर किसी ने अनुचित चेष्टा की है ? अथवा मेरे किन्हीं कुकृत्यों से लताओं में फल-फूल आदि आना रुक गया है ? इस प्रकार बहुत सी शंकाओं से व्याप्त मेरा मन कुछ निश्चय न कर सकने से व्याकुल हो रहा है ॥६॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—किं तावत्—किमिति, उपोढ०—उपोढं विवृद्धं तपः तपश्चर्या येषां तेषाम्, व्रतिनां—नियमवतां तपस्विनाम्, तपः—तपश्चरणम्, विघ्नैः—अन्तरायैः, दूषितं—सविघ्नमस्ति । उत—अथवा, धर्मारण्यचरेषु—तपोवनविहारिषु, प्राणिषु—जीवेषु मृगादिषु, केनचित्—केनचिज्जनेन, असत्—अनुचितम्, चेष्टितम्—आचरितम् । आहोस्वित्—अथवा, मम—दुष्यन्तस्य, अपचरितैः—कुकृत्यैः पापैरित्यर्थः, वीरुधां—लतानाम्, प्रसवः—फलपुष्पाद्युद्गमः, विष्टम्भितः—निरुद्धः, इति—एवं प्रकारेण, आरूढ०—आरूढाः समुत्पन्नाः बहवः अनेके प्रतर्काः संशयाः यस्मिन् तत्, मे मनः—मम मानसम्, अपरिच्छेदा०—अपरिच्छेदेन विषयविशेषस्य निर्णयाभावेन आकुलं व्याकुलमस्ति । काव्यलिङ्गमलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **क्लान्त०**—मेरा मन खिन्न था, परन्तु स्तुति सुनकर फिर नवीन अर्थात् उत्साहयुक्त हो गया है । ( २ ) **होमधेनुः**—होमार्था धेनुः, यज्ञ के उपयोग की गाय । घी-दूध आदि के लिए यज्ञशाला के पास गाय बांधी जाती थीं । ( ३ ) **अलिन्दः**—चबूतरा या बरामदा । ( ४ ) **व्रतिनाम्**—व्रत का पालन

करने वाले तपस्वियों का। (५) **उपोढ०**—ऊँची तपस्या वाले। उपोढ का अर्थ अत्यधिक या उच्च है। उपोढं तपः येषां तेषाम्, बहु०। उपोढ—उप+वह्+क्त। संप्रसारण के द्वारा व् को उ और हो ढः (८-२-३१) से ह् को ढ्। वह् का क्त प्रत्यय करने पर ऊढ रूप बनता है। (६) **विघ्नैः०**—राक्षसों आदि के विघ्नों से। (७) **दूषितम्**—विघ्नयुक्त हो गया है। दुष्+णिच्+क्त। णिच् करने पर दोषो णौ (६-४-९०) से उ को दीर्घ ऊ। (८) **असत्**—अनुचित, अशिष्ट। (९) **अपचरितैः**—कुकृत्य या पाप। यह माना जाता था कि राजा के पापों के कारण ही प्रजा पर कोई विपत्ति आती है। कहा गया है कि—(क) राज्ञोऽपचारात् पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत् किल। अल्पायुषः प्रजाः सर्वा दरिद्रा व्याधिपीडिताः॥ (ख) राजन् प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते। (रघुवंश १५-४७)। (ग) न राजापचारमन्तरेण प्रजासु अकालमृत्युः संचरति। (उत्तररामचरित अंक २)। (घ) राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः। असद्वृत्ते हि नृपतौ अकाले म्रियते जनः (रामायण ७-७३)। (१०) **प्रसवः**—फल फूल की उत्पत्ति। (११) **आरूढ०**—आरूढा बहवः प्रतर्का यस्मिन् तत्, बहु०। जिसमें बहुत से संशय उत्पन्न हो रहे हैं। (१२) **अपरिच्छेदा०**—परिच्छेद का अर्थ है काटना, विवेचन करना, अतएव निर्णय करना। कुछ निर्णय न कर सकने से व्याकुल हूँ। (१३) आरूढबहु० व्याकुलता का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**२५. प्रतीहारी**—सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि। [सुचरिदणन्दिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि।]

**प्रतीहारी**—मैं समझती हूँ कि आपके सच्चरित्र से प्रसन्न ऋषि लोग महाराज का अभिनन्दन करने के लिए आए हैं।

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः। पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च।)

**२६. कञ्चुकी**—इत इतो भवन्तः।

(तदनन्तर गौतमी के साथ शकुन्तला को आगे किए हुए मुनियों का प्रवेश। उनके आगे कंचुकी और पुरोहित।)

**कंचुकी**—आप लोग इधर से आइए, इधर से।

**२७. शार्ङ्गरवः**—शारद्वत,

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।

---

पाठभेद—२७. नि० रहो (अहो आश्चर्यसूचक अव्यय है)।

**तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा**
**जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥१०॥**

**अन्वय**——कामम् अभिन्नस्थितिः असौ नरपतिः महाभागः, वर्णानाम् अपकृष्टः अपि कश्चिद् अपथं न भजते। तथापि शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा जनाकीर्णम् इदं हुतवहपरीतं गृहम् इव मन्ये।

**शार्ङ्गरव——शारद्वत, मैं मानता हूँ कि मर्यादा-पालक ये राजा बड़े भाग्यशाली हैं और निकृष्ट (शूद्र) वर्ण का भी कोई व्यक्ति कुमार्गगामी नहीं है। फिर भी निरन्तर एकान्त के अभ्यस्त मन से मैं भीड़ से युक्त इस राजगृह को अग्नि (की लपटों) में घिरे हुए भवन की तरह समझता हूँ ॥१०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**——कामं——मतमेतत् मया यत्, अभिन्न०——न भिन्ना परित्यक्ता स्थितिः मर्यादा येन सः मर्यादापालक इत्यर्थः, असौ——दुष्यन्तः, नरपतिः——राजा, महाभागः——प्रशस्तभाग्यशाली वर्तते, वर्णानां——ब्राह्मणादीनां वर्णानां मध्ये, अपकृष्टः——निकृष्टः शूद्रोऽपि, अपथं——कुमार्गम्, न भजते——न सेवते। तथापि——किन्तु, शश्वत्०——शश्वत् निरन्तरं परिचितम् अभ्यस्तं विविक्तं निर्जनं स्थानं यस्य तेन, मनसा——हृदयेन, जनाकीर्णं——जनैः नरैः आकीर्णं व्याप्तम्, इदं——राजगृहम्, हुतवहपरीतं——हुतवहेन वह्निना परीतं व्याप्तम्, गृहमिव——भवनमिव, मन्ये——संभावयामि। विभावना विशेषोक्तिरुपमा चालंकाराः। शिखरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **सुचरित०**——शोभनं चरितं सुचरितम्, सुचरितेन साधु नन्दन्तीति, सुचरित+नन्द्+णिनि, साधुकारी अर्थ में णिनि। आपके सुन्दर आचरण से प्रसन्न। ( २ ) **सभाजयितुम्**——अभिनन्दन करने का या सत्कार करने को। सभाज् धातु चुरादिगणी है। इसका अर्थ है——स्वागत या सत्कार करना। सभाज्+णिच्+तुमुन्। ( ३ ) **महाभागः**——महाभाग्यशाली, महानुभाव। महान् भागः भाग्यं यस्य सः, बहु०। महाभाग अतिपवित्रात्मा और महायशस्वी को कहते हैं। महाभाग का लक्षण है——आरम्योत्पत्तिमा मृत्योः कलङ्को यस्य नो भवेत्। स्याच्चैवानुपमा कीर्तिर्महाभागः स उच्यते। ( ४ ) **कामम्**——भले ही, मानता हूँ कि। यह अव्यय है। ( ५ ) **अभिन्न०**——अभिन्ना स्थितिः येन सः, बहु०। जिसने मर्यादा नहीं छोड़ी है अर्थात् मर्यादापालक। स्थिति का अर्थ मर्यादा है। ( ६ ) अपथम्——न पन्थाः, तत्पुरुष। पथो विभाषा (५-४-७२) से समासान्त अ प्रत्यय, अपथं नपुंसकम् (२-४-३०) से नित्य नपुंसक। ( ७ ) **अपकृष्टः**——निकृष्ट। अर्थात् शूद्रादि भी कुमार्गगामी नहीं हैं, ब्राह्मणादि का तो कहना ही क्या। (८) **शश्वत्०**——निरन्तर एकान्त स्थान में रहने के अभ्यासी मन को भीड़ से युक्त

यह राजगृह ऐसा ही प्रतीत होता है, जैसे अग्नि की लपटों में जलता हुआ कोई मकान। तपस्वी शान्त और एकान्त स्थान में रहते थे, अतः उन्हें भीड़ देखकर अशान्ति हो रही है। शश्वत् परिचितं विविक्तं यस्य तेन, बहु०। (९) **हुतवह०**—हुतवहेन परीतम्, तत्पुरुष। अग्नि से व्याप्त। (१०) यहाँ पर अशान्ति का कोई कारण न होने पर भी घबड़ाहट होने से विभावना है। शान्ति के कारण राजा की महानुभावता और प्रजा की पवित्रता के होते हुए भी शान्ति का अनुभव न करने से विशेषोक्ति है। इव के द्वारा उपमा है। यहाँ मन्ये उत्प्रेक्षा-सूचक नहीं है।

**२८. शारद्वतः—स्थाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि—**

**अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।**
**बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥११॥**

अन्वय—सुखसङ्गिनं जनं स्नातः अभ्यक्तम् इव, शुचिः अशुचिम् इव, प्रबुद्धः सुप्तम् इव, स्वैरगतिः बद्धम् इव, अवैमि।

**शारद्वत—यह उचित ही है कि आप नगर में आने से इस प्रकार के हो गए हैं। मैं भी—**

**सुखों में आसक्त लोगों को ऐसा ही समझता हूँ जैसे नहाया हुआ व्यक्ति तेल लगाए हुए को, पवित्र व्यक्ति अपवित्र को, जागा हुआ व्यक्ति सोए हुए को और स्वच्छन्दगति वाला व्यक्ति बँधे हुए को ॥११॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अहमपि, सुखसङ्गिनं—भौतिकसुखेष्वासक्तम्, जनं—मनुष्यवृन्दम्, स्नातः—कृतस्नानः, अभ्यक्तमिव—कृततैलमर्दनमिव जनं यथा गणयति, शुचिः—पवित्रः जनः, अशुचिम्—अपवित्रमिव, प्रबुद्धः—जागरितो जनः, सुप्तमिव—शयितमिव, स्वैरगतिः—स्वच्छन्दगतिः, बद्धमिव—निगडितमिव, अवैमि—जानामि। अत्र मालोपमाऽलंकारः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **स्थाने**—उचित है, युक्त है। यह अव्यय है। (२) **अभ्यक्तमिव०**—इस श्लोक के दो अर्थ हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। स्थूल अर्थ है—मैं सुखासक्त व्यक्तियों को ऐसा ही समझता हूँ जैसे—नहाया हुआ न नहाए हुए को, पवित्र अपवित्र को, जागा हुआ सोए हुए को और स्वतन्त्र बद्ध को। इस श्लोक में मुमुक्षु की चार अवस्थाओं का वर्णन है, जिनको उसे पार करना होता है। इन अवस्थाओं को पार करके वह मुक्त होता है। ये चार अवस्थाएँ हैं—देहशुद्धि, मनःशुद्धि,

तत्त्वज्ञान के द्वारा वैराग्य और माया के बन्धनों को नष्ट करके मोक्ष-प्राप्ति। इनका ही श्लोक में क्रमशः वर्णन है—(क) नहाया हुआ अर्थात् देहशुद्धि वाला व्यक्ति जिस प्रकार अशुद्ध देह वाले को देखता है। सांसारिक लोग विषयों में फँसे हैं, अतः उनका शरीर शुद्ध नहीं है। (ख) शुचि अर्थात् मन, वचन, कर्म से पवित्र। इसके द्वारा मनःशुद्धि की ओर विशेष निर्देश है। जैसे पवित्र मन वाला व्यक्ति अपवित्र मन वाले को देखता है। (ग) प्रबुद्ध का अभिप्राय है कि जिसको तत्त्वज्ञान हो गया है। वह विषयों में फँसे व्यक्ति को सोया हुआ समझता है। (घ) स्वैरगति का अभिप्राय है जो माया के बन्धनों से मुक्त हो चुका है और पूर्णतया स्वतन्त्र है, उसको सांसारिक व्यक्ति माया में बद्ध दिखाई देते हैं। ( ३ ) **अभ्यक्तमिव**—तेल लगाए हुए को। जब तक मनुष्य तेल लगाकर स्नान नहीं कर लेता, तब तक अपवित्र माना जाता है। कहा है कि—तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि। तावद् भवति चाण्डालो यावत् स्नानं समाचरेत्॥ अभ्यक्त–अभि+अञ्ज्+क्त। ( ४ ) **प्रबुद्धः**—तत्त्वज्ञानी। तत्त्वज्ञानी व्यक्ति प्रबुद्ध होता है और अविद्या से ग्रस्त सुप्त होता है। गीता (२-६९) में कहा है—यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। ( ५ ) **स्वैरगतिः**—स्वच्छन्द गति वाला। विषयों से विरक्त व्यक्ति स्वतन्त्र होता है और विषयों में मग्न, बद्ध और परतन्त्र होता है। स्वैरा गतिः यस्य सः, बहु०। स्व+ईर=स्वैर, स्वादीरेरिणोः (वार्तिक) से वृद्धि। ( ६ ) **सुखसङ्गिनम्**—सुखे सङ्गः यस्यास्तीति, मत्वर्थ में इनि। सुखों में आसक्त। ( ७ ) इस श्लोक से ज्ञात होता है कि शान्त वातावरण में रहने वाले तपस्वी सांसारिक लोगों को किस प्रकार का समझते हैं और अशान्त वातावरण से कैसे घबड़ाते हैं। शारद्वत ने स्थिति का गम्भीरतापूर्ण वर्णन किया है। उसके वक्तव्य में उद्वेग और दया दोनों भावों का मिश्रण है। ( ८ ) एक सुखसंगी के अनेक उपमान होने से मालोपमा है।

**२९. शकुन्तला—(निमित्तं सूचयित्वा) अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति** [ अम्महे, किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि ]

**शकुन्तला—(अशकुन का अभिनय करके) ओह, मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़क रही है?**

**३०. गौतमी—जाते, प्रतिहतममङ्गलम्। सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु।** [ जादे, पडिहदं अमंगलं। सुहाइं दे भत्तुकुलदेवदाओ वितरन्दु। ] **(इति परिक्रामति।)**

**गौतमी—पुत्री, अमंगल दूर हो। तेरे पतिकुल के देवता तुझे सुख प्रदान करें। (चारों ओर घूमती है।)**

Funding by IKS-MoE

**३१. पुरोहितः**—(राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः, असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

**पुरोहित**—(राजा की ओर निर्देश करके) हे तपस्वियो, ये (चारों) वर्णों और (चारों) आश्रमों के रक्षक महाराज पहले से ही अपना आसन छोड़ कर आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इनकी ओर देखिए।

**३२. शार्ङ्गरवः**—भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१२॥

**अन्वय**—तरवः फलागमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति)। सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)। एषः परोपकारिणां स्वभावः एव।

**शार्ङ्गरव**—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, भले ही यह (राजा का शिष्टाचार-प्रदर्शन) प्रशंसनीय है, फिर भी हम लोग इस विषय में उदासीन (ही) हैं। क्योंकि—

वृक्ष फलों के आने पर नम्र हो जाते हैं। बादल नये जल से पूर्ण होने पर बहुत नीचे लटक आते हैं। सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर सुशील हो जाते हैं। यह परोपकारियों का स्वभाव ही है ॥१२॥

**संस्कृत-व्याख्या**—तरवः—वृक्षाः, फलागमैः—फलसमृद्धिभिः, नम्राः—अधोमुखा विनीताश्च, भवन्ति। घनाः—मेघाः, नवाम्बुभिः—नववर्षर्तुजलपूर्णाः, दूरविलम्बिनः—दूरं भूतलसमीपं यावत् विलम्बन्ते समागच्छन्तीति तच्छीलाः, अत्यधिकवर्षणशीला भवन्तीत्यर्थः। सत्पुरुषाः—सज्जनाः, समृद्धिभिः—विभवोत्कर्षैः, अनुद्धताः—विनम्राः, भवन्ति। एषः—अयम्, परोपकारिणां—परहितनिरतानाम्, स्वभाव एव—निसर्ग एव। अत्रातिशयोक्तिः मालाप्रतिवस्तूपमाऽप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **निर्मित्तम्**—यहां पर अशकुन अर्थ है। निमित्त शुभ और अ

दोनों प्रकार के शकुन के लिए आता है। ( २ ) **वामेतरम्**—दाहिनी। वामम् इतरत् यस्मात्, बहु०, अथवा वामादितरत्, तत्पुरुष। न बहुव्रीहौ (१-१-२९) से सर्वनामसंज्ञा का अभाव। तत्पुरुष में भी भाष्यकार के मतानुसार वामेतरम् शुद्ध है। पुरुष का दाहिना अंग फड़कना शुभ माना जाता है और स्त्री का वायाँ अंग। इसके विपरीत अंग फड़कना अशुभ माना जाता है। हेमाद्रि ने रघुवंश (१४-४९) की टीका में यह श्लोक उद्धृत किया है—पुंसां सदा दक्षिणदेहभागे स्त्रीणां तु वामावयवे प्रजातः। स्पन्दः फलाप्ति प्रदिशत्यवश्यं निहन्त्यनुक्ताङ्ग-विपर्ययेण। ( ३ ) **महाब्राह्मण**—श्रेष्ठ ब्राह्मण। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में महाब्राह्मण शब्द का प्रयोग नीच ब्राह्मण के अर्थ में नहीं होता था। साधारणतया ब्राह्मण, वैद्य आदि के साथ महा शब्द निन्दासूचक होता है। कहा भी है—शंखे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषके द्विजे। यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते॥ ( ४ ) **मध्यस्थाः**—उदासीन। अर्थात् हमारे लिए राजा का यह कार्य कोई विशेष प्रशंसा के योग्य नहीं। राजा का यह शिष्टाचार सामान्य कार्य है। ( ५ ) यहाँ पर अचेतन वृक्ष और मेघ में चेतन में रहने वाले नम्रता और दूरविलम्वित के अभेद रूप से वर्णन से अतिशयोक्ति है। विनय गुण के ही प्रकारान्तर से तीनों पदों में वर्णन से मालाप्रतिवस्तूपमा है। विशेष दुष्यन्त के स्थान पर सामान्य सज्जन के वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा है। चतुर्थ चरण में अर्थान्तरन्यास है।

३३. **प्रतीहारी**—देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः। [ देव, पसण्णमुहवण्णा दीसन्ति। जाणामि विस्सद्धकज्जा इसीओ। ]

**प्रतीहारी**—महाराज, ये ऋषिलोग प्रसन्नमुखाकृति दिखाई पड़ रहे हैं। मैं समझती हूँ कि ये किसी शान्तिपूर्ण कार्य से आए हैं।

३४. **राजा**—(शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥१३॥

**अन्वय**—पाण्डुपत्राणां मध्ये किसलयम् इव, तपोधनानां मध्ये अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या का स्वित्?

**राजा**—(शकुन्तला को देखकर) और यह स्त्री?

पीले पत्तों के बीच में किसलय (कोंपल) की तरह, इन तपस्वियों के बीच में घूँघट वाली और जिसके शरीर का सौन्दर्य बहुत अधिक प्रकट नहीं हो रहा है, ऐसी यह कौन है? ॥१३॥

**संस्कृत-व्याख्या**—पाण्डुपत्राणां—पाण्डूनां परिणामेन पीतानां जीर्णानामित्यर्थः पत्राणां पर्णानाम्, मध्ये—अन्तरे, किसलयमिव—नवपल्लवमिव, तपोधनानां—तपस्विनाम्, मध्ये, अवगुण्ठनवती—अवगुण्ठनं सशिरोमुखप्रावरणं तद्वती, नाति०—न अतिपरिस्फुटम् अतिप्रकटं शरीरस्य देहस्य लावण्यं सौन्दर्यं यस्याः सा, का स्वित्—का न्वेषा स्त्री। उपमा काव्यलिङ्गं चालंकारौ। आर्या जातिः।

## टिप्पणी

(१) **प्रसन्न०**—प्रसन्नाः मुखस्य वर्णाः येषां ते, बहु०। जिनके मुख का रंग प्रसन्नता से युक्त है, अर्थात् प्रसन्नमुख। वर्ण—रंग, यहाँ पर आकृति से अभिप्राय है। (२) **विश्रब्धकार्याः**—विश्रब्धं कार्यं येषां ते, बहु०। जिनका कार्य शान्तियुक्त है। ऋषि लोग प्रसन्न चित्त हैं, अतः किसी घबड़ाहट वाले सन्देश को लेकर नहीं आए हैं। विश्रब्ध शब्द दो प्रकार से लिखा जाता है—विश्रब्ध और विस्रब्ध। यह स्मरण रखें। (३) **अवगुण्ठनवती**—घूंघट वाली। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में उच्च कुलों और राज-परिवारों की स्त्रियाँ घूंघट करती थीं। वे साड़ी से ही मुख तक का भाग ढकती थीं। विवाहित युवतियाँ सौन्दर्य-प्रदर्शन को रोकने की दृष्टि से ऐसा करती थीं। घूंघट करना और पर्दा-प्रथा दोनों में अन्तर है। प्राचीन काल में पर्दा-प्रथा का अभाव था। पाणिनि ने असूर्यललाटयोर्दृशितपोः (३-२-३६) में कहा है—सूर्यं न पश्यन्तीति असूर्यम्पश्या राजदाराः। इसका अभिप्राय केवल यह है कि साधारणतया राज-परिवार की स्त्रियाँ बाहर जन-सम्पर्क में नहीं आती थीं और अन्तःपुर में रहती थीं। यह प्रथा केवल राज-परिवारों में ही थी। जिस प्रकार राजा के साथ अंगरक्षक होते थे, उसी प्रकार उनके साथ भी अंगरक्षक होते थे। आजकल जैसी हिन्दूमात्र में पर्दा-प्रथा प्रचलित है, उसका प्रारम्भ यवनों के आक्रमण के समय से ही हुआ है। प्राचीन समय में उच्च कुलों में घूंघट की प्रथा विद्यमान थी। कतिपय अवसरों पर जैसे यज्ञ और विवाह में युवतियाँ बिना घूंघट के ही बैठती थीं। अतएव भास ने कहा है—स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद् बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः। निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च॥ (प्रतिमानाटक १-२०)। रामायण (युद्धकाण्ड ११४-२८) में कहा है—व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे। न क्रतौ न विवाहे च दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः॥ महाभारत (शल्यपर्व २९) में कहा है—अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु। ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति॥ (४) **नाति०**—जिसके शरीर का सौन्दर्य बहुत अधिक प्रकट नहीं हो रहा है, क्योंकि घूंघट से मुंह ढका हुआ था। लावण्य सौन्दर्य को कहते हैं। उसका लक्षण है—मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥ (सुधाकर)। (५) श्लोक में उपमा अलंकार है। नातिपरिस्फुट० का कारण अवगुण्ठनवती है, अतः काव्यलिंग है।

३५. **प्रतीहारी**---देव, कुतूहलगर्भः प्रहितो न मे तर्कः प्रसरति । ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते । [ देव, कुतूहलगब्भो पहिदो ण मे तक्को पसरदि । णं दंसणीआ उण से आकिदी लक्खीअदि ।]

प्रतीहारी---महाराज, कुतूहलता के साथ भेजा हुआ भी मेरा अनुमान (कुछ निश्चय को) नहीं पहुँच रहा है, तथापि इस कन्या की आकृति मनोहर प्रतीत होती है ।

३६. **राजा**---भवतु । अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

राजा---अच्छा । पर-स्त्री की ओर ध्यान से देखना उचित नहीं है ।

३७. **शकुन्तला**---(हस्तमुरसि कृत्वा । आत्मगतम्) हृदय, किमेवं वेपसे आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव । [ हिअअ, किं एव्वं वेवसि अज्जउत्तस्स भावं ओहारिअ धीरं दाव होहि । ]

शकुन्तला---(हाथ छाती पर रखकर । मन में) हृदय, तू इस प्रकार क्यों काँप रहा है ? पतिदेव के प्रेम को ठीक समझकर धैर्य धारण कर ।

३८. **पुरोहितः**---(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः । कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः । तं देवः श्रोतुमर्हति ।

पुरोहित---(आगे बढ़कर) विधिपूर्वक पूजित ये तपस्वी उपस्थित हैं । ये अपने गुरु का कुछ सन्देश लेकर आए हैं । महाराज, आप उसे सुनने की कृपा करें ।

३९. **राजा**---अवहितोऽस्मि ।

राजा---मैं सावधान हूँ ।

४०. **ऋषयः**---(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन् ।

ऋषि लोग---(अपने हाथ उठाकर) महाराज की विजय हो ।

४१. **राजा**---सर्वानभिवादये ।

राजा---मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ ।

४२. **ऋषयः**---इष्टेन युज्यस्व ।

ऋषि लोग---अभीष्ट वस्तु प्राप्त करो ।

**४३. राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः ?**

**राजा—ऋषि लोगों की तपस्या तो निर्विघ्न चल रही है ?**

### टिप्पणी

( १ ) **कुतूहलगर्भः०**—कुतूहलं गर्भे यस्य सः, बहु० । इसका अभिप्राय है कि मैं बहुत कुतूहलता से अपनी अनुमान-शक्ति को प्रेरित कर रही हूँ, फिर भी मेरा अनुमान कुछ ठीक नहीं लग रहा है अर्थात् मैं वस्तु-स्थिति को समझने में असमर्थ हूँ। ( २ ) **भवतु**—यह निषेधार्थक अव्यय है । इसका अर्थ है—अच्छा, बस करो। यहाँ निषेधार्थक है। इसका स्वीकार अर्थ भी होता है। ( ३ ) **अनिर्वर्णनीयम्०**—परस्त्री को विशेष ध्यानपूर्वक नहीं देखना चाहिए। विष्णु-सूत्र है कि—परदारान् न वीक्षेत। यह वाक्य राजा के उच्च सदाचार का सूचक है। आगे भी इस अंक में राजा का चरित्र बहुत उच्च प्रदर्शित किया गया है। कलत्रम् शब्द का अर्थ स्त्री है, परन्तु यह शब्द नपुंसकलिंग है। ( ४ ) **आर्यपुत्र**—यह पति के लिए नाटकीय संबोधन है। पत्नी पति को आर्यपुत्र कहे। आर्यपुत्र—श्रेष्ठ व्यक्ति के पुत्र। ( ५ ) **भावम्**—प्रेमभाव को। ( ६ ) **उपाध्याय०**—यहाँ पर इसका गुरु अर्थ में सामान्य प्रयोग है। आचार्य और उपाध्याय में अन्तर है। आचार्य—अवैतनिक होता है और आध्यात्मिक शिक्षा देता है। उपाध्याय—वैतनिक होता है और सभी शास्त्रादि पढ़ाता है। ( ७ ) **इष्टेन०**—यहाँ पर इष्ट के द्वारा व्यंग्य अर्थ है कि तुम शकुन्तलारूपी प्रिय वस्तु से युक्त होओ।

**४४. ऋषयः—**

**कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।**
**तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ? ।।१४।।**

**अन्वय**—सतां रक्षितरि त्वयि धर्मक्रियाविघ्नः कुतः ? घर्मांशौ तपति तमः कथम् आविर्भविष्यति।

**ऋषि लोग—सज्जनों के रक्षक आपके विद्यमान होते हुए धार्मिक क्रियाओं में विघ्न कैसे हो सकता है ? सूर्य के तपते हुए होने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है।।१४।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—सतां—सज्जनानाम्, रक्षितरि—पालके, त्वयि—त्वयि राजनि विद्यमाने सति, धर्म०—धर्मक्रियासु यज्ञादिधार्मिककर्मसु विघ्नः अन्तरायः, कुतः—कथं संभवति। घर्मांशौ—सूर्ये, तपति—भासमाने सति, तमः—अन्धकारः, कथं—केन प्रकारेण, आविर्भविष्यति—प्रकटीभविष्यति, न प्रकटीभविष्यतीत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तोऽर्थापत्तिश्चालंकारौ। उदाहरणं नाम नाट्यलक्षणं चास्ति। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **सतां रक्षितरि**—सज्जनों के रक्षक आपके रहते हुए। इससे स्पष्ट है कि राजा सज्जनों का ही रक्षक और मित्र था। वह दुष्टों का नाशक था। सत्—अस्+शतृ (अत्)। (२) **धर्म०**—धर्मस्य क्रियासु विघ्नः, तत्पुरुष। धार्मिक कार्यों में विघ्न कैसे हो सकता है, अर्थात् नहीं हो सकता है। (३) **घर्मांशौ**—सूर्य। सूर्य को घर्मांशु इसलिए कहा जाता है कि उसकी किरणें उष्ण होती हैं। (४) **तमः०**—अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है, अर्थात् नहीं प्रकट हो सकता है। (५) इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार है। राजा को सूर्यवत् बताने से स्पष्ट होता है कि राजा सूर्यवत् तेजस्वी था। दोनों पदों में कुतः और कथम् के द्वारा अर्थापत्ति है, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता है। यह अर्थ होने से अर्थापत्ति अलंकार है। यहाँ पर उदाहरण नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—यत्र तुल्यार्थयुक्तेन वाक्येनाभिप्रदर्शनात्। साध्यतेऽभिमतश्चार्थस्तदुदाहरणं मतम् ।। (सा० दर्पण ६-१७७)। (६) इस श्लोक के भाव से मिलती हुई सूक्तियाँ ये हैं—(क) सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन् नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्। सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ।। (रघुवंश ५-१३), (ख) तमांसि तिष्ठन्ति हि तावदंशुमान् न याति यावदुदयाद्रिमौलिताम्। (मालविकाग्नि०,) (ग) ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः, (शिशुपाल० १-३८)।

**४५. राजा—अर्थवान् खलु मे राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः ?**

**राजा**—तो मेरा राजा-शब्द वस्तुतः सार्थक है। भगवान् काश्यप विश्व के कल्याण के लिए सकुशल तो हैं ?

**४६. शार्ङ्गरवः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह।**

**शार्ङ्गरव**—सिद्धियों से संपन्न महात्मा लोगों की कुशलता उनके अपने अधीन होती है। उन्होंने आपकी नीरोगता का प्रश्न पूछते हुए यह (सन्देश) कहा है।

**४७. राजा—किमाज्ञापयति भगवान्**

**राजा**—भगवान् ने क्या आज्ञा दी है ?

### टिप्पणी

(१) **राजशब्दः**—राजन् शब्द दीप्त्यर्थक राज् धातु से कनिन् (अन्)

---

पाठभेद—४६. नि० ऋषयः (ऋषि लोग)।

Funding by IKS-MoE

प्रत्यय करके बनता है, इसका अर्थ है—प्रकाशमान, तेजोमय। कालिदास ने रञ्ज् धातु से भी राजन् शब्द की सिद्धि मानी है। अतः राजते इति, रञ्जयति लोकान् इति वा राजा। राजा वह है—जो प्रजा को प्रसन्न रखता है। (२) **अर्थवान्**—सार्थक है। मैं वस्तुतः प्रजा का हितकारी हूँ। इसी भाव का दूसरा श्लोक है—यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात् तपनो यथा। तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् (रघु० ४-१२)। मनु (७-३) ने कहा है कि—रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः। (३) **लोकानुग्रहाय**—कण्व ऋषि जीवन्मुक्त होने के कारण अपने लिए जीवित नहीं थे, अपितु विश्व के कल्याण के लिए जीवित थे। (४) **कुशली**—सकुशल तो हैं। भृगुसंहिता में वर्णन है कि किस वर्ण वाले व्यक्ति से किस प्रकार कुशल-प्रश्न पूछे। ब्राह्मण से कुशलता, क्षत्रिय से नीरोगता, वैश्य से क्षेम और शूद्र से आरोग्य पूछे। ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ (५) **कुशल**—कुशल शब्द का शब्दार्थ है—कुशाओं को काटनेवाला। कुशान् लाति इति, कुश+ला+क (अ)। कुशाओं की नोक तीक्ष्ण होती है, उनके काटने में चतुरता चाहिए। अतएव कुशल शब्द का अर्थ हो गया है—प्रवीण, चतुर, दक्ष। (६) **भगवान्**—सिद्धियों से सम्पन्न होने के कारण कण्व को भगवान् कहा गया है। ऐश्वर्य आदि ६ गुणों को भग कहते हैं, अतः इन ६ गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को भगवान् कहते हैं। भग कहते हैं—ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धैर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ (७) **स्वाधीन०**—जिनकी कुशलता अपने हाथ में है। स्वस्मिन् अधि इति स्वाधीनम्, स्व+अधि+ख (ईन), स्वाधीनं कुशलं येषां ते, बहु०। (८) **सिद्धिमन्तः**—सिद्धियों से युक्त। सिद्धियाँ ८ हैं—अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः॥ इनका विशेष वर्णन पतंजलि के योगदर्शन (३.४५-४८) में है। (९) **अनामय०**—नीरोगता के प्रश्न के साथ। राजा से नीरोगता पूछने का नियम है। अनामयस्य प्रश्नः, स पूर्वः यथा स्यात् तथा।

**४८. शार्ङ्गरवः—यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः—**

**त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः**
**शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।**
**समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं**
**चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥१५॥**

**तदिदानीमापन्नसत्त्वेयं प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।**

---

पाठभेद—४८. नि० यत् (क्योंकि)।

**अन्वय**—त्वं नः, अर्हतां प्राग्रसरः स्मृतः असि। शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया। तुल्यगुणं वधूवरं समानयन् प्रजापतिः चिरस्य वाच्यं न गतः।

**शार्ङ्गरव**—आपने परस्पर शपथपूर्वक (गान्धर्व विधि से) इस मेरी पुत्री से विवाह किया है, तुम दोनों के उस (कार्य) को मैंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दे दी है। क्योंकि—

तुम हमारे लिए पूजनीयों में मुख्यतम हो और शकुन्तला शरीरधारिणी सत्क्रिया (पूजा) है। (ऐसे) तुल्य गुणों वाले वधू और वर को मिलाते हुए प्रजापति चिरकाल के पश्चात् निन्दा के पात्र नहीं हुए (अर्थात् चिरकाल बाद प्रजापति की प्रशंसा हुई है।) ॥१५॥

तो अब इस गर्भिणी को अपने साथ धर्माचरण के लिए स्वीकार करो।

**संस्कृत-व्याख्या**—त्वं—दुष्यन्तः, नः—अस्माकम्, अर्हतां—पूज्यानाम्, प्राग्रसरः—मुख्यतमः, स्मृतोऽसि—मतोऽसि। शकुन्तला च, मूर्तिमती—शरीरधारिणी, सत्क्रिया—पूजास्वरूपाऽस्ति। तुल्यगुणं—समानगुणयुक्तम्, वधूवरं—वरवध्वौ, समानयन्—संयोजयन्, प्रजापतिः—ब्रह्मा, चिरस्य—चिरकालानन्तरम्, वाच्यं—निन्दाम्, न गतः—न प्राप्तः। अत्रोत्प्रेक्षा समं काव्यलिङ्गं चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **मिथः समयात्**—पारस्परिक शपथपूर्वक अर्थात् दोनों की परस्पर अनुमति से। समय का अर्थ शपथ है। समय—सम्+इ+अच् (अ), मिलना, निश्चय करना। (२) **दुहितरम्**—पुत्री को। दुहितृ—दुह्+तृच् (तृ)। यह शब्द स्वस्रादि में है, अतः न षट्स्वस्रादिभ्यः (४-१-१०)से ङीप् का निषेध। प्राचीन समय में कन्याएँ गाय आदि का दूध दुहती थीं, अतः उन्हें दुहिता कहा जाता था। इंग्लिश् का Daughter (डॉटर) शब्द भी दुहितर् से निकला है। यास्क ने निरुक्त में दुहिता की व्युत्पत्ति दी है कि दुहिता दूरे हिता भवति, विवाह के बाद वह दूर अर्थात् सुदूर पतिगृह को चली जाती है। (३) **उपायंस्त**—विवाह किया। उप+यम् धातु विवाह करने अर्थ में उपाद्यमः स्वकरणे (१-३-५६) से आत्मनेपदी हो जाती है। यह लुङ् का रूप है। (४) **प्रीतिमता०**—मैंने प्रसन्नतापूर्वक इसको स्वीकार कर लिया है। (५) **अर्हताम्**—पूजनीयों में। बाद में इस शब्द को बौद्धों और जैनों ने इस अर्थ में अधिक प्रयोग किया है। (६) **प्राग्रसरः**—मुख्यतम। प्रकर्षेण अग्रे सरतीति, अग्र+सृ+ट(अ)। यहाँ पर 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' (३-२-१८) से ट प्रत्यय। बाहुलकात् अग्रे के स्थान पर अग्र प्रयोग। इसका शुद्ध रूप अग्रेसर ही है। अग्रसर भी बाहुलकात् शुद्ध माना जाता है। (७) **मूर्तिमती**—शरीरधारिणी, साक्षात्। (८) **सत्क्रिया**—सत्कार या पूजास्वरूप

है। सत्+क्त+श (अ)+टाप् (आ)। (९) वधूवरम्—वधूः वरश्च तयोः समाहारः, द्वन्द्व। वर और वधू। समाहार द्वन्द्व होने से एकवचन। (१०) चिरस्य वाच्यं०—प्रजापति बहुत समय के बाद निन्दा से बचा है। साधारणतया योग्य वर और अयोग्य पत्नी या अयोग्य वर और योग्य पत्नी का विवाह होने से प्रजापति की निन्दा होती है। बहुत समय के बाद ऐसे दो योग्यों का यह विवाह हुआ है। (११) सत्क्रिया में उत्प्रेक्षा है। योग्य का योग्य से मेल होने से सम अलंकार है। तृतीय चरण चतुर्थ चरण का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**४९. गौतमी—आर्य, किमपि वक्तुकामास्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति।**

**नापेक्षितो गुरुजनोऽनया त्वया पृष्टो न बन्धुजनः।**
**एकैकस्य च चरिते भणामि किमेकैकम् ॥१६॥**

[अज्ज, किंपि वत्तुकाम म्हि। ण मे वअणावसरो अत्थि। कहंत्ति।
णावेक्खिओ गुरुअणो इमाए तुए पुच्छिदो ण बन्धुअणो।
एक्कक्कस्स च चरिए भणामि किं एक्कमेक्कस्स ॥]

**अन्वय**—अनया गुरुजनः न अपेक्षितः, त्वया बन्धुजनः न पृष्टः। एकैकस्य च चरिते एकैकं किं भणामि।

**गौतमी—आर्य, मैं कुछ कहना चाहती हूँ, तथापि मेरे कहने का कोई अवसर नहीं है। क्योंकि—**

**इस (शकुन्तला) ने अपने गुरुजनों की अनुमति नहीं ली और तुमने (भी) अपने सम्बन्धियों की संमति नहीं ली। तुम दोनों के परस्पर के इस कार्य पर मैं तुम दोनों में से प्रत्येक को क्या कहूँ? ॥१६॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अनया—शकुन्तलया, गुरुजनः—पूज्यो जनः कण्वादिः, न अपेक्षितः—न परिगणितः। त्वया—दुष्यन्तेन, बन्धुजनः—स्वसंबन्धिवर्गः, न पृष्टः—न जिज्ञासितः। एकैकस्य च—एकस्य एकस्य च, चरिते—कृते कर्मणि, एकैकम्—एकमेकम्, किं भणामि—किं कथयामि। अर्थापत्तिरलंकारः। आर्या जातिः।

---

पाठभेद—४९. नि० न खलु पृष्टश्च [ण हु पुच्छिदो अ] (और नहीं पूछा)। नि० परस्परस्मिन्नेव, का० एकैकस्मिन्नेव [[illegible]व] (पारस्परिक स्वीकृति से ही किए गए काम में)।

## टिप्पणी

(१) **किमपि०**—मैं कुछ कहना चाहती हूँ, परन्तु मेरे कहने का कुछ अवसर नहीं है। गौतमी का यह वाक्य एक व्यंग्य है। तुम दोनों ने अपने संबन्धियों से बिना स्वीकृति लिए ही परस्पर प्रेम किया और फलस्वरूप गान्धर्व विवाह किया। अतः तुम दोनों के इस प्रकार के स्वतन्त्रता वाले कार्य के लिए मैं तुम दोनों को क्या कहूँ अर्थात् अब तुम दोनों का ही परस्पर उत्तरदायित्व है कि अपने किए को निभाओ। (२) **वक्तुकामा**—वक्तुं कामः यस्याः सा, बहु०। कहने की इच्छुक। 'तुं काममनसोरपि' नियम से तुम् के म् का लोप। (३) **नापेक्षितः०**—इस शकुन्तला ने अपने पूजनीय पिता कण्व आदि की प्रतीक्षा नहीं की और न उनकी कुछ गणना ही की। अपनी स्वतन्त्र इच्छा से स्वीकृति दे दी। (४) **त्वया पृष्टः०**—तुमने भी अपने संबन्धियों की संमति नहीं ली। (५) **एकैकस्य**—एकस्य एकस्य। वीप्सा अर्थ में नित्यवीप्सयोः (८-१-४) से द्वित्व और एकं बहुव्रीहिवत् (८-१-९) से बहुव्रीहिवत् होने से बीच की विभक्ति का लोप। इसी प्रकार एकम् एकम् से एकैकम् बनेगा। (६) यहाँ पर अर्थापत्ति अलंकार है।

**५०. शकुन्तला——(आत्मगतम्) किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति [ किं णु क्खु अज्जउत्तो भणादि ? ]**

शकुन्तला——(मन में) (देखें), आर्यपुत्र (पति) क्या कहते हैं ?

**५१. राजा——किमिदमुपन्यस्तम् ?**

राजा——यह क्या बात (मेरे सामने) उपस्थित की है ?

**५२. शकुन्तला——(आत्मगतम्) पावकः खलु वचनोपन्यासः। [ पावओ क्खु वअणोवण्णासो। ]**

शकुन्तला——(मन में) इनकी बात का प्रारम्भ वस्तुतः अग्नि (के तुल्य) है।

**५३. शार्ङ्गरवः——कथमिदं नाम ? भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः।**

**सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां**
**जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।**
**अतः समीपे परिणेतुरिष्यते**
**प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥१७॥**

अन्वय——भर्तृमतीं ज्ञातिकुलैकसंश्रयां सतीम् अपि जनः अन्यथा विशङ्कते। अतः स्वबन्धुभिः प्रमदा प्रिया अप्रिया वा परिणेतुः समीपे इष्यते।

Funding by IKS-MoE

**शार्ङ्गरव**—(आप) यह कैसे कहते हैं ? आप स्वयं ही लोक-व्यवहार बहुत अच्छी तरह जानते हैं।

सधवा स्त्री यदि निरन्तर अपने पिता के घर ही रहती हैं, तो भले ही वह सती-साध्वी हो, लोग उसका उल्टा (वह व्यभिचारिणी है) अर्थ लगाते हैं। अतः स्त्री के बन्धु-बान्धव चाहते हैं कि पति उसको चाहता हो या न चाहता हो, पर वह पति के पास ही रहे ।।१७।।

**संस्कृत-व्याख्या**—भर्तृमतीं—सधवाम्, ज्ञाति०—ज्ञातीनां पित्रादीनां कुलं गृहम् एकः केवलः संश्रयः आश्रयस्थानं यस्याः ताम्, सतीमपि—पतिव्रतामपि, जनः—लोकः, अन्यथा—अन्यप्रकारेण व्यभिचारिणीत्वेनेत्यर्थः, विशङ्कते—संभावयति। अतः—एतस्मात् कारणादेव, स्वबन्धुभिः—वधूबान्धवैः, प्रमदा—युवतिः, प्रिया—भर्तुरभिमता, अप्रिया वा—भर्तुरनभिमता वा, परिणेतुः—भर्तुः, समीपे—पार्श्वे, इष्यते—वाञ्छ्यते। शकुन्तला तव प्रियाऽप्रिया वा स्यात्, तवैव पार्श्वे तस्याः स्थितिरुचिता। अन्यथा लोकापवादः स्यात्। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गं चालंकारौ। अर्थविशेषणं नाम नाट्यालंकारश्चास्ति। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **उपन्यस्तम्**—प्रस्तुत की है, उपस्थित की है। उप+नि+अस्+क्त ; उपन्यस् का अर्थ है—किसी बात को संपुष्ट्यर्थ सामने उपस्थित करना। (२) **वचनोपन्यासः**—बात का प्रारम्भ। उपन्यास—प्रस्तुत करना, अतः इसका अर्थ हो जाता है—प्रारम्भ। राजा की बात आग की तरह जलाने वाली है। उपन्यास—उप+नि+अस्+घञ् (अ)। (३) **कथमिदं०**—आप यह क्या कहते हैं ? यह 'किमिदमुपन्यस्तम्' को लक्ष्य में रखकर कहा गया है। (४) **सुतराम्**—बहुत अधिक। सु+तर+आम्। उपसर्ग सु से तरप् प्रत्यय करके किमेत्तिङव्यय० (५-४-११) से अन्त में आम् प्रत्यय। (५) **लोक०**—लौकिक व्यवहारों में चतुर। निष्णात—चतुर, कुशल। नि+स्ना+क्त। निनदीभ्यां स्नातेः कौशले (८-३-८९) से कुशल अर्थ में स् को ष्। दूसरे अर्थों में निस्नात रूप बनता है। (६) **ज्ञाति०**—पिता के परिवार में सदा रहने वाली। ज्ञातीनां कुलम् एकः संश्रयः यस्याः ताम्, बहु०। ज्ञाति—पिता, भाई आदि सम्बन्धी। (७) **भर्तृमतीम्**—सधवा, जिसका पति जीवित है। (८) **अन्यथा०**—लोग उल्टा अर्थ लगाते हैं कि यह व्यभिचारिणी है, अतः पति के घर नहीं जाती। (९) **परिणेतुः**—पति के। पति विवाह के समय कन्या को अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा कराता है, अतः उसे परिणेता कहते हैं। (१०) **प्रियाऽप्रिया वा**—पति को वह स्त्री पसन्द हो या न हो। (११) इस श्लोक से कालिदास के समय में स्त्रियों की स्थिति पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पति के जीवित रहते

हुए स्त्री का अपने पिता के घर अधिक समय रहना अनुचित माना जाता था। पद्मपुराण में कहा है—कन्या पितृगृहे नैव सुचिरं वासमर्हति। लोकापवादः सुमहान् जायते पितृवेश्मनि।। कामसूत्र में कहा है कि वह शोक और उत्सवों के समय थोड़े समय के लिए पिता के घर जावे। ज्ञातिकुलस्यानभिगमनमन्यत्र व्यसनोत्सवाभ्याम्। तत्रापि नायकपरिजनाधिष्ठिताया नातिकालमवस्थानमपरिवर्तितप्रवासवेषता च। (कामसूत्र ३-१-४६, ५०)। (१२) शकुन्तला तुम्हारे पास रहनी चाहिए, इस विशेष के स्थान पर सामान्य वर्णन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। उत्तरार्ध के प्रति पूर्वार्ध कारण है, अतः काव्यलिंग है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (परि० ६) में अर्थविशेषण नामक नाटकीय अलंकार का यह श्लोक उदाहरण दिया है। इसमें राजा के 'किमिदमुपन्यस्तम्' पर व्यंग्य है। इसका लक्षण है—उक्तस्यार्थस्य यत्तु स्यादुत्कीर्तनमनेकधा। उपालम्भस्वरूपेण तत् स्यादर्थविशेषणम्।। (सा० दर्पण ६-२०६)।

**५४. राजा—किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?**

**राजा—और क्या मैंने इन श्रीमती जी (शकुन्तला) से पहले विवाह भी किया है ?**

**५५. शकुन्तला—(सविषादम्। आत्मगतम्) हृदय, साम्प्रतं ते आशङ्का। [ हिअअ, संपदं दे आसङ्का। ]**

**शकुन्तला—(खेद के साथ, मन में) हे हृदय, तेरी आशंका ठीक ही थी।**

**५६. शार्ङ्गरवः—**

**किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा ?**

अन्वय—किं कृतकार्यद्वेषः, धर्मं प्रति विमुखता, कृतावज्ञा ?

**शार्ङ्गरव—क्या आप अपने किये हुए कार्य से घृणा करते हैं, अथवा धर्म की ओर से विमुख हो रहे हैं, अथवा किये हुए का (जान बूझ कर) निरादर कर रहे हैं ?**

**५७. राजा—कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः ?**

**राजा—यह झूठी कल्पना वाला प्रश्न क्यों करते हैं ?**

**५८. शार्ङ्गरवः—**

**मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ।।१८।।**

अन्वय—ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी विकाराः मूर्च्छन्ति।

---

पाठभेद—५४. का० किमत्रभवती (क्या श्रीमती जी)।

**शार्ङ्गरव—समृद्धि के कारण प्रमत्त व्यक्तियों में प्रायः ये मन के विकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—किं—किमिति, कृत०—कृते स्वेच्छया विहिते कार्यं गान्धर्वविवाहे द्वेषः अप्रीतिः, धर्मं प्रति—अथवा स्वकर्तव्यं प्रति, विमुखता—पराङ्मुखता, कृतावज्ञा—अथवा कृतस्य कर्मणः अवज्ञा अनादरः किम् । ऐश्वर्यं०—ऐश्वर्येण समृद्धया मत्तेषु प्रमत्तेषु जनेषु, प्रायेण—आधिक्येन, अमी—एते, विकाराः—मनोविकृतयः, मूर्च्छन्ति—वर्धन्ते । अर्थान्तरन्यासोऽलंकारः । त्रोटकं नाम गर्भसन्ध्यङ्गं चास्ति । आर्या जातिः ।

## टिप्पणी

( १ ) **परिणीत०**—क्या मैंने इससे पहले विवाह किया है ? पूर्वं परिणीता परिणीतपूर्वा । भूतपूर्वे चरट् (५-३-५३) ज्ञापक से पूर्व शब्द का पर-निपात । (२) **साम्प्रतम्**—उचित, ठीक । साम्प्रतम् का जब विशेषण के तुल्य प्रयोग होता है, तब इसका अर्थ उचित या ठीक होता है । ( ३ ) **कृत०**—किये हुए कार्य के प्रति द्वेष या घृणा । किये हुए कार्य को अनुचित समझकर उससे घृणा करना । यहाँ अर्थ है—तुमने शकुन्तला से जो गान्धर्व विवाह किया है, उसको अनुचित समझकर क्या उस कार्य से घृणा करते हो; अतः इसे स्वीकार नहीं करते । ( ४ ) **धर्मं प्रति०**—अथवा अपने धर्म या कर्तव्य से विमुख होना चाहते हो, अतः अपनी पत्नी को स्वीकार नहीं करते और अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाते । ( ५ ) **कृतावज्ञा**—किये हुए का जान-बूझ कर निरादर । अपने किये हुए कार्य से जानबूझकर मुकरना । कृतकार्यद्वेषः प्रायश्चित्तरूप में होने से कुछ अंश तक क्षम्य है, पर कृतावज्ञा असद्भाव से प्रेरित होने के कारण अक्षम्य अपराध है । पाठभेद—किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखतोचिता राज्ञः । यह पाठ उचित नहीं है । आगे श्लोक के उत्तरार्ध में कहा है—अमी विकाराः, इस पाठ में विकारों का बहुत्व नहीं है । ( ६ ) **असत्कल्पना०**—झूठी कल्पना पर आश्रित यह प्रश्न उचित नहीं है । असती असाध्वी कल्पना, तन्मूलकः प्रश्नः । (७) **मूर्च्छन्ति**—बढ़ते हैं । मूर्च्छ् धातु के दो अर्थ हैं—मूर्च्छित होना और बढ़ना । यहाँ बढ़ना अर्थ है । कालिदास ने मूर्च्छ् धातु का बढ़ने अर्थ में कई स्थानों पर प्रयोग किया है—शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (रघु० २-३४), तूर्यस्वने मूर्च्छति मंगलार्थे (रघु० ६-९), तमसां निशि मूर्च्छताम्० (विक्रमो० ३-७) आदि । ( ८ ) **विकाराः**—यहाँ पर मानसिक विकार अर्थ है । ( ९ ) विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है । यहाँ पर क्रोधयुक्त वचन होने के कारण त्रोटक नामक गर्भसन्धि का अंग है । उसका लक्षण है—त्रोटकं पुनः [illegible] धवाक् । (सा० दर्पण ६-९६)

Funding by IKS-MoE

५९. **राजा**——विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि ।

**राजा**—(इस कथन से) मैं बहुत अधिक तिरस्कृत हुआ हूँ।

६०. **गौतमी**——जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति। [ जादे, मुहुत्तअं मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे ओउण्ठणं । तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि। ] (इति यथोक्तं करोति।)

**गौतमी**——पुत्री, थोड़ी देर के लिये अपनी लज्जा छोड़ दे। मैं तेरा घूंघट हटाती हूँ। तब तेरा पति तुझको पहचान लेगा। (वैसा करती है।)

६१. **राजा**——(शकुन्तलां निर्वर्ण्य। आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन् ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ।।१९।।

(इति विचारयन् स्थितः।)

**अन्वय**—एवम् उपनतम् इदम् अक्लिष्टकान्ति रूपं प्रथमपरिगृहीतं स्यात् न वा इति अव्यवस्यन्, विभाते भ्रमरः अन्तस्तुषारं कुन्दम् इव, न च खलु परिभोक्तुं नैव हातुं शक्नोमि।

**राजा**—(शकुन्तला को ध्यान से देखकर। मन में)

इस प्रकार प्राप्त हुए इस उज्ज्वल शोभा-संपन्न सौन्दर्य को मैंने पहले (विवाह रूप में) स्वीकार किया है या नहीं, इसका निश्चय न कर सकने के कारण, प्रातःकाल के समय हिमकणों से युक्त कुन्द के फूल को भौंरे की तरह, मैं न तो इसका उपभोग ही कर सकता हूँ और न छोड़ ही सकता हूँ।।१९।।

(विचार-मग्न होकर बैठता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—एवम्—अनेन प्रकारेण गर्भिणीरूपेणेत्यर्थः, उपनतं—प्राप्तम्, इदम्—एतत्, अक्लिष्टकान्ति—अक्लिष्टा निर्दोषा कान्तिः शोभा यस्य तत्, रूपं—सौन्दर्यम्, प्रथमपरिगृहीतं—प्रथमं पूर्वं परिगृहीतं पत्नीत्वेन स्वीकृतम्, स्यात् न वा—भवेत् न वा भवेदिति, इति—एतत्, अव्यवस्यन्—निर्णेतुम-

---

पाठभेद—६१. नि० वेति व्यवस्यन् (ऐसा विचार करते हुए)।

समर्थोऽहम्, विभाते—प्रातःकाले, भ्रमरः—षट्पदः, अन्तस्तुषारम्—अन्तः मध्ये तुषारः हिमं यस्य तत्, कुन्दमिव—माघ्यं पुष्पमिव, न च खलु—न हि खलु, परिभोक्तुं—स्वीकर्तुम् उपभोक्तुं वा, नैव—न च, हातुं—त्यक्तुम्, शक्नोमि—पारयामि। उपमाऽलंकारः। संशयनामकं नाट्यलक्षणं चास्ति। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **विशेषेण०**—इस वचन के द्वारा मेरा विशेष रूप से तिरस्कार हुआ है। शार्ङ्गरव का कथन सामान्य रूप से है, परन्तु राजा की ओर लक्ष्य होने से विशेषार्थक हो गया है। इस पूरे प्रसंग में राजा का चरित्र धीरता, गंभीरता और शान्ति इन गुणों से युक्त है। वह शार्ङ्गरव के उत्तेजक वाक्यों को सुनकर भी उत्तेजित नहीं होता है और न अपने धैर्य को छोड़ता है। यहाँ राजा का धैर्य प्रशंसनीय है। ( २ ) **अवगुण्ठनम्०**—तेरे घूंघट को हटाती हूँ। उच्च कुलों की स्त्रियाँ उस समय बाहर घूंघट करने लगी थीं। भास ने भी कहा है—देव्योऽवगुण्ठनमपनयामि (प्रतिमा०)। संक्षिप्यतां यवनिका (स्वप्न०)। ( ३ ) **अभिज्ञास्यति**—पहचान लेगा।

**विशेष**—इस वाक्य से लेकर षष्ठ अंक की समाप्ति तक विमर्श (या अवमर्श) सन्धि है। यहाँ पर शाप के प्रभाव के कारण शकुन्तला के पहचानने में विघ्न आया है। इसका लक्षण है—यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः। शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः॥ (सा० दर्पण ६-७९)। यत्र प्रलोभनक्रोधव्यसनाद्यैर्विमृश्यते। बीजादौ गर्भनिर्भिन्नः सोऽवमर्श इतीर्यते॥ (सुधाकर)। ( ४ ) **एवं**—इस प्रकार अर्थात् गर्भिणी अवस्था वाली को। शार्ङ्गरव के 'आपन्नसत्त्वा' (वक्तव्य सं० ४८) विशेषण की ओर संकेत है। अतएवा उपमा में कुन्द के लिए अन्तस्तुषारम् कहा है। कुछ लोगों ने एवम्० का अर्थ 'अनायास ही प्राप्त' लिया है। परन्तु पूर्वोक्त अर्थ अधिक प्रासंगिक है। ( ५ ) **अक्लिष्टकान्ति**—निर्दोष कान्ति वाले। अक्लिष्टा कान्तिः यस्य तत्, बहु०। ( ६ ) **अव्यवस्यन्**—निश्चय करने में असमर्थ होता हुआ। वि+अव+सो+ शतृ=व्यवस्यन्, नञ् समास। पाठभेद—व्यवस्यन् या अध्यवस्यन्, विचार करता हुआ। ( ७ ) **विभाते**—यह पद आवश्यक है। प्रातःकाल के समय ही कुन्द के फूल में ओस रहती है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से ओस के हट जाने पर भौंरा कुन्द के मधु का पान कर सकता है, उसी प्रकार राजा भी अभिज्ञान के दर्शन से शाप के निवृत्त होने पर शकुन्तला का उपभोग कर सकता है। ( ८ ) **अन्तस्तुषारम्**—कुन्द के अन्दर ओस भरी है, उधर शकुन्तला के उदर में बच्चा है। ( ९ ) **परिभोक्तुम्**—पत्नी रूप में निश्चय न होने से स्वीकार नहीं कर सकता हूँ और इसकी असाधारण सुन्दरता पर आकृष्ट होने से छोड़ भी नहीं सकता हूँ। (१०) वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण यहाँ पर संशय नामक नाटकीय लक्षण है। इसका लक्षण है—संशयोऽज्ञाततत्त्वस्य वाक्ये स्याद् यदनिश्चयः। (सा० दर्पण ६-१७९)।

६२. प्रतीहारी--(स्वगतम्) अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति? [अहो धम्मावेक्खिआ भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि?]

प्रतीहारी--(मन में) ओह, महाराज की कैसी धर्मनिष्ठता है! ऐसे अनायास प्राप्त हुए रूप को देखकर और कौन विचार करता है?

६३. शार्ङ्गरवः--भो राजन्, किमिति जोषमास्यते?

शार्ङ्गरव--हे राजन्, आप इस प्रकार चुप क्यों बैठे हैं?

६४. राजा--भोस्तपोधनाः, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये?

राजा--हे तपस्वियो, मैं सोच रहा हूँ, परन्तु इन श्रीमती जी को (विवाह रूप में) स्वीकार करने की बात वस्तुतः मुझे स्मरण नहीं आ रही है। अतः गर्भिणी के लक्षणों से युक्त इसके प्रति अपने आप को क्षेत्री (पति) मानता हुआ मैं कैसे इसको स्वीकार करूँ?

६५. शकुन्तला--(अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव सन्देहः। कुतः इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा? [अज्जस्स परिणए एव्व संदेहो। कुदो दाणिं मे दूराहिरोहिणी आसा?]

शकुन्तला--(एक ओर मुँह करके) महाराज को विवाह में ही सन्देह है। अब मेरी महत्त्वाकांक्षा कहाँ?

६६. शार्ङ्गरवः--मा तावत्।

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः
सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं
पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥२०॥

---

पाठभेद--६२. नि० स्वगतम्, इति नास्ति।

**अन्वय**—कृताभिमर्शी सुताम् अनुमन्यमानः मुनिः त्वया विमान्यः नाम। येन मुष्टं स्वम् अर्थं प्रतिग्राहयता दस्युः इव पात्रीकृतः असि।

शार्ङ्गरव—आप ऐसा न कीजिए (अर्थात् शकुन्तला को स्वीकार न कीजिए)।

तुम्हारे द्वारा बलात् उपभोग की गई अपनी पुत्री (के गान्धर्व विवाह) को अनुमति देने वाले मुनि का वस्तुतः तुम्हें अपमान करना चाहिए, जिसने चुराए हुए अपने धन (शकुन्तला) को तुम्हें समर्पण करते हुए, चोर के तुल्य तुमको, एक योग्य पात्र बनाया है ॥२०॥

**संस्कृत-व्याख्या**—कृताभिमर्शी—कृतः विहितः अभिमर्शः बलादुपभोगः यस्याः ताम्, सुतां—पुत्रीं शकुन्तलाम्, अनुमन्यमानः—त्वत्कृतं गान्धर्वविवाहम् अनुमोदमानः, मुनिः—ऋषिः कण्वः, त्वया—दुष्यन्तेन, विमान्यो नाम—अवमाननीय एव। येन—दयालुना मुनिना, मुष्टं—चोरितम्, स्वमर्थं—स्वकीयं धनं शकुन्तलारूपम्, प्रतिग्राहयता—स्वीकारयता सता, दस्युः इव—चौर इव त्वम्, पात्रीकृतोऽसि—पात्रत्वं प्रापितोऽसि। विषमोऽलंकारः। उपजातिर्वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **धर्मापेक्षिता**—धर्म का विचार रखना। धर्मम् अपेक्षते विचारयति इति धर्मापेक्षी, ताच्छील्य अर्थ में णिनि, तस्य भावः। (२) **जोषम्०**—क्यों चुप बैठे हैं? (३) **अभिव्यक्तसत्त्व०**—जिसमें गर्भ के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। राजा के कथन का भाव है कि यदि यह गर्भिणी न होती तो मैं इसको रखने का विचार कर सकता था। यह गर्भ मुझसे नहीं रहा है, अतः इसको स्वीकार करने पर इसका पुत्र मेरा औरस पुत्र नहीं होगा, अपितु क्षेत्रज पुत्र होगा। (४) **क्षेत्रिणम्०**—क्षेत्री अर्थात् पति। इसका भाव यह है कि जिस प्रकार किसी के खेत में कोई दूसरा बीज बो दे तो अनाज उसका होगा जिसका खेत है, भले ही बीज उसने नहीं बोया है, उसी प्रकार स्त्री को क्षेत्र माना गया है। उसमें परपुरुष ने गर्भाधान किया है। परपुरुष से बीज होने पर भी वह सन्तान वधू के पति की मानी जाएगी। वह सन्तान औरस न होकर क्षेत्रज होगी। अतः राजा का भाव है कि परपुरुष से गर्भिणी इसको मैं अपनी स्त्री कैसे मान लूं? पाठभेद—क्षेत्रियम् है। क्षेत्रिय का अर्थ है—परस्त्रीगामी। इसका अभिप्राय यह होगा कि मैं अपने आपको परस्त्रीगामी मानकर कैसे इसे पत्नीरूप में स्वीकार कर लूं? (५) **आर्यस्य**—महाराज को। आर्यपुत्र कहकर जानबूझकर आर्य कहा है। (६) **दूराधिरोहिणी आशा**—महत्त्वाकांक्षा, दूर तक जाने वाली अभिलाषा। (७) **मा तावत्**—शार्ङ्गरव का पूरा वक्तव्य कठोर व्यंग्य से पूर्ण है। वह राजा को एक चोर के तुल्य सिद्ध करता है। मा तावत् के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) आप ऐसा न कहिए, (ख) आप शकुन्तला को स्वीकार न कीजिए। दूसरा

अर्थ व्यंग्यरूप में अधिक उपयुक्त है। (८) **कृताभिमर्शाम्**—जिसके साथ तुमने बलात्कार किया है। अभिमर्श—बलात्कार, संभोग। कृतः अभिमर्शः यस्याः ताम्, बहु०। (९) **अनुमन्यमानः**—तुम्हारे गान्धर्व विवाह को स्वीकार करने वाला। (१०) **विमान्यः**—ऐसे मुनि का तुम अवश्य अपमान करो। यह व्यंग्यपूर्ण वचन है। इसका दूसरा अर्थ 'मा तावत्' को लगाने से होगा कि तुम ऐसे ऋषि का अपमान मत करो। (११) **मुष्टमर्थम्**०—जैसे चोर को ही चोरी का माल दे दिया जाए, वैसे ही चोरी का माल अर्थात् शकुन्तला को उन्होंने तुम्हें दिया है। (१२) **दस्युरिव**—तुम वस्तुतः चोर हो, अर्थात् धूर्त और बेईमान हो। (१३) **पात्रीकृतोऽसि**—उन्होंने भला आदमी समझकर तुम्हें शकुन्तला दी है। तुम उनकी सज्जनता का अपमान करो, यही तुम्हें उचित है।

**६७. शारद्वतः——शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।**

शारद्वत——शार्ङ्गरव, तुम अब चुप रहो। शकुन्तला, हमने अपनी बात कह दी। यह राजा इस प्रकार कह रहे हैं। इनको विश्वास दिलाने वाला कोई प्रत्युत्तर दो।

**६८. शकुन्तला——(अपवार्य) इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन? आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। (प्रकाशम्) आर्यपुत्र——(इत्यर्धोक्ते) संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः।——पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।** [इमं अवत्थन्तरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण? अत्ता दाणिं मे सोअणीओ त्ति ववसिदं एदं। अज्जउत्त——संसइदे दाणिं परिणए ण एसो समुदाआरो।——पोरव, ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं।]

---

पाठभेद—६८. का० न (ग), इति नास्ति। का० साम्प्रतमीदृशै० [संपदं ईदिसेहिं] (अब इस प्रकार के)।

**शकुन्तला**--(एक ओर मुँह करके) वैसा प्रेम जब ऐसे परिवर्तन को प्राप्त हो गया है, तो (अब) याद दिलाने से क्या लाभ ? अब यह निश्चय है कि मुझे अपने आपकी ही निन्दा करनी चाहिए। (प्रकट) आर्यपुत्र,--(बीच में ही रुककर) अभी विवाह ही सन्दिग्ध है, अतः यह संबोधन उचित नहीं है।--पौरव, आपके लिए यह उचित नहीं है कि उस प्रकार पहले आश्रम-भूमि में स्वभाव से ही निष्कपट-हृदय इस व्यक्ति को (मुझे) शपथ-पूर्वक ठगकर (अब) इस प्रकार के वाक्यों से उसका निराकरण (निषेध) करें।

६९. **राजा**--(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् ।
व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ।।२१।।

**अन्वय**—किं व्यपदेशम् आविलयितुम् इमं जनं पातयितुं च ईहसे। कूलंकषा सिन्धुः प्रसन्नम् अम्भः तटतरुं च इव।

**राजा**--(कानों को ढककर) पाप शान्त हो।

क्या तुम अपने वंश को कलंकित और इस व्यक्ति को (मुझको) पतित करना चाहती हो, जिस प्रकार किनारों को तोड़ने वाली नदी स्वच्छ जल को (मलिन करती है) और किनारे के वृक्ष को (तोड़ती है) ? ।।२१।।

**संस्कृत-व्याख्या**—किं—किमिति, व्यपदेशं—स्वकीयं वंशम्, आविलयितुं—कलङ्कयितुम्, इमं जनं—मां दुष्यन्तम्, पातयितुं च—पतितं कर्तुं च, ईहसे—वाञ्छसि। कूलंकषा--कूलं तटं कषति भिनत्तीति तटभेदिनी, सिन्धुः—नदी, प्रसन्नं--स्वच्छम्, अम्भः—जलं यथा मलिनीकरोति, तटतरुं च इव--तटस्थं वृक्षं च यथा पातयति तद्वत्। अत्र समुच्चय उपमा चालंकारौ। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **प्रत्यय०**—विश्वास दिलाने वाला प्रत्युत्तर। ऐसी बात कहो, जिससे यह पहचान सके कि तुम इसकी पत्नी हो। प्रत्ययजनकं वचनम्, मध्यम-पदलोपी तत्पुरुष। ( २ ) **शोचनीयः**--मुझे अपने आपको ही धिक्कारना चाहिए। पाठभेद—शोधनीयः, यह पाठ भी अच्छा है। मुझे अपने ऊपर आए हुए कलंक का संशोधन करना चाहिए, अतः मैं उत्तर देती हूँ। ( ३ ) **पौरव**—यह साभिप्राय संबोधन है। यह संबोधन शकुन्तला के क्रोध को सूचित करता है। साथ ही यह भी सूचित करता है कि पुरुवंशी के लिये यह सर्वथा अनुचित है कि वह किये हुए से मुकरे, विशेष रूप से पवित्र आश्रम में किये हुए काम से। ( ४ ) **स्वभावोत्तान०**--स्वभाव से ही निश्छल हृदय। उत्तान--फैला हुआ, स्पष्ट,

अतः निश्छल या निष्कपट। ( ५ ) **समयपूर्वम्**—तुमने प्रतिज्ञा की थी कि—परिग्रहबहुत्वेऽपि० (३-१७)। ( ६ ) **प्रत्याख्यातुम्**—निषेध करना या मुकरना। ( ७ ) **शान्तं पापम्**—पाप शान्त हो, अर्थात् ऐसा न हो। ( ८ ) **व्यपदेशम्**—अपने वंश या कुल को। व्यपदिश्यते अनेन इति व्यपदेशः, जिसके द्वारा पुकारा जाता है। वि+अप+दिश्+घञ्। ( ९ ) **आविलयितुम्**—कलंकित करने को, दूषित करने को। आविलं कर्तुम्, 'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्। (१०) **पातयितुम्**—मुझे पतित करने को। पत्+णिच्+तुम्। (११) **कूलंकषा**—किनारे को तोड़ने वाली। कूलं कषतीति, सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः (३-२-४२) से खच् प्रत्यय और अरुर्द्विषत्० (६-३-६७) से मुम् अर्थात् बीच में म्। (१२) **सिन्धुः**—नदी। (१३) यहाँ पूर्वार्ध में समुच्चय अलंकार है।

**७०. शकुन्तला**——भवतु। यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशङ्कामपनेष्यामि। [ होदु। जइ परमत्थतो परपरिग्गहसंकिणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसंकं अवणइस्सं। ]

**शकुन्तला**—अच्छा। यदि वस्तुतः (मुझे) पराई स्त्री समझ कर आप ऐसा कह रहे हैं, तो मैं इस अभिज्ञान (पहचान की अँगूठी) से आपके सन्देह को दूर करती हूँ।

**७१. राजा**——उदारः कल्पः।

**राजा**—(यह) उत्तम प्रस्ताव है।

**७२. शकुन्तला**——(मुद्रास्थानं परामृश्य) हा धिक्। अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः। [ हद्धी। अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली। ] (इति सविषादं गौतमीमवेक्षते।)

**शकुन्तला**—(अँगूठी के स्थान को छूकर) हाय, मेरी अँगुली में अँगूठी नहीं है। (खेद के साथ गौतमी की ओर देखती है।)

**७३. गौतमी**——नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं

---

पाठभेद—७०. का० वक्तुं [वत्तुं], इति नास्ति। ७२. का० हा धिक्, हा धिक् [हद्धी हद्धी] (हाय, हाय)।

**वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम् ।** [णूणं दे सक्कावदारब्भन्तरे सचीतित्थसलिलं वन्दमाणाए पब्भट्टं अंगुलीअअं ।]

**गौतमी—अवश्य ही शक्रावतार तीर्थ में शचीतीर्थ के जल की वन्दना करते समय तेरी अँगूठी गिर गई है।**

**७४. राजा—(सस्मितम्) इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते ।**

**राजा—(मुस्कराते हुए) यह वही बात है, जिसके लिए कहावत है कि 'स्त्रियाँ प्रत्युत्पन्नमति होती हैं'।**

**७५. शकुन्तला—अत्र तावद् विधिना दर्शितं प्रभुत्वम् । अपरं ते कथयिष्यामि ।** [एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं ।]

**शकुन्तला—इस विषय में भाग्य ने अपना बल दिखाया है। मैं दूसरी बात तुमसे कहती हूँ।**

**७६. राजा—श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम् ।**

**राजा—अब सुनना ही रह गया है।**

### टिप्पणी

(१) **परपरिग्रह०**—पराई स्त्री की शंका से। (२) **अभिज्ञानेन**—पहचान की यह अँगूठी दिखाकर। (३) **अपनेष्यामि**—दूर करती हूँ। यहाँ पर कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि (१-३-३७) से आत्मनेपद नहीं होगा, क्योंकि आशंका यद्यपि अशरीर कर्म है, परन्तु वह शकुन्तला में न होने से कर्तृस्थ नहीं है। (४) **उदारः कल्पः**—उत्तम प्रस्ताव है। उदार—उत्तम, श्रेष्ठ, कल्प—विचार, प्रस्ताव। इस कल्प का अर्थ संकल्प शब्द पर ध्यान देने स्पष्ट होता है। 'प्रथमः कल्पः' यह अधिक प्रचलित मुहावरा है। (५) **शक्रावतार**—इन्द्र का घाट या इन्द्र का प्रिय घाट। अवतार का अर्थ घाट है, जो नदी आदि में स्नानार्थ बनाया जाता है। यह हस्तिनापुर के समीप किसी नदी का घाट ज्ञात होता है। (६) **शचीतीर्थ**—इन्द्राणी का घाट। यह शक्रावतार के अन्दर ही एक ओर बना हुआ घाट था। वहाँ शकुन्तला ने पूजा आदि की। वहीं जलार्घ देते समय उसकी अँगूठी जल में गिर गई। (७) **अंगुलीयकम्**—अँगूठी। जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः (४-३-६२) से छ(ईय) प्रत्यय और स्वार्थ में क। (८) **इदं तत्**—इसी को कहते हैं या यह वही बात है जिसको कहते

हैं। (९) **प्रत्युत्पन्नमति०**—'स्त्रियां प्रत्युत्पन्नमति होती हैं।' इसी मुहावरे को दूसरे शब्दों में यह भी कहते हैं—स्त्रियाँ बात बनाने में बहुत चतुर होती हैं या स्त्रियाँ बहुत हाजिर-जवाब होती हैं। प्रत्युत्पन्नमति का लक्षण है—तात्कालिकी तु प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमतिः स्मृता। (सुधाकर)। (१०) **स्त्रैणम्**—स्त्रीसमूह या स्त्री-जाति। स्त्री शब्द से जाति या समूह अर्थ में स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ० (४-१-८७) से नञ् प्रत्यय। (११) **प्रभुत्वम्०**—दुर्भाग्य ने अपना प्रभाव दिखाया है। (१२) **श्रोतव्यम्०**—अब सुनना ही शेष रह गया है। यह शकुन्तला पर व्यंग्य है। अँगूठी दिखाने की बात समाप्त हुई। अब कहानी शेष है। अतः जो मन में आवे, वह कहे जाओ।

**७७. शकुन्तला—नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्।** [णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमण्डवे णलिणीपत्तभाअणगअं उअअं तुह हत्थे सण्णिहिदं आसि।]

शकुन्तला—एक दिन (जब हम दोनों) चमेली के मण्डप में थे, उस समय कमल पत्र के दोने में रखा हुआ जल आपके हाथ में था।

**७८. राजा—शृणुमस्तावत्।**

राजा—हाँ, सुन रहा हूँ, (आगे कहो)।

**७९. शकुन्तला—तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशमुपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।** [तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम मिअपोदओ उवट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअम्पिणा उवच्छन्दिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिदे सलिले णेण किदो पणओ। तदा तुमं इत्थं पहसिदो सि। सव्वो सगन्धेसु विस्ससिदि। दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति।]

**शकुन्तला**—उसी समय मेरे द्वारा पुत्रवत् पाला हुआ वह दीर्घापाङ्ग नाम का मृग का बच्चा वहाँ आ गया। तब आपने 'यह पहले जल पी ले' इस अभिप्राय से दयापूर्वक उसे जल पीने के लिए आमन्त्रित किया। किन्तु आपसे परिचय न होने के कारण वह आपके हाथ के समीप नहीं आया। बाद में वही जल मैंने अपने हाथ में लिया तो उसने उसे पी लिया। तब आपने इस प्रकार हँसी की थी कि—'सभी अपने साथियों पर विश्वास करते हैं, तुम दोनों ही यहाँ जंगली हो'।

८०. **राजा**—एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।

**राजा**—अपने स्वार्थ को सिद्ध करने वाली स्त्रियों के इस प्रकार के झूठ से भरे हुए मीठे वचनों से विषयी लोग ही आकृष्ट होते हैं।

८१. **गौतमी**—महाभाग, नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य। [महाभाअ, ण अरुहसि एव्वं मन्तिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो अणभिण्णो अअं जणो कइदवस्स।]

**गौतमी**—महोदय, आपको ऐसा कहना उचित नहीं है। तपोवन में पाला-पोसा हुआ यह व्यक्ति (अर्थात् शकुन्तला) छल-प्रपंचों से (सर्वथा) अनभिज्ञ है।

### टिप्पणी

(१) **शृणुमस्तावत्**—यह वाक्य राजा की उपेक्षा-दृष्टि को सूचित करता है, क्योंकि शकुन्तला प्रत्यक्ष प्रमाण न दे सकी और अब घटना-मात्र के वर्णन से उसे विश्वास दिलाना चाहती है। राजा शाप के प्रभाव के कारण सब कुछ भूला हुआ है, अतः इस घटना को कल्पित समझता है। (२) **पुत्रकृतकः**—पुत्रवत् पाला हुआ। (३) **उपच्छन्दितः**—आमन्त्रित किया, बुलाया, प्रार्थना की। यहाँ जल पीने के लिए आमन्त्रित करना भाव है। (४) **हस्ताभ्याशम्**—हाथ के पास। अभ्याश का अर्थ समीप है। (५) **कृतः प्रणयः**—प्रेम किया अर्थात् उस जल को पी लिया। (६) **सगन्धेषु**—साथियों पर, संबन्धियों पर। गन्ध शब्द के अर्थ हैं—गन्धो गन्धक आमोदे लेशे संबन्धगर्वयोः, इति विश्वः। समानः गन्धो येषां ते सगन्धाः। समानस्य छन्दसि० (६-३-८४) सूत्र में समानस्य के योगविभाग से समान को स आदेश। भट्टोजि दीक्षित और हरदत्त के मतानुसार यहाँ सदृश अर्थ में सह शब्द लेकर अस्वपद-बहुव्रीहि समास करके वोपसर्जनस्य (६-३-८२) से सह को स आदेश। सदृशः गन्धो येषां ते सगन्धाः,

बहु० । एक संबन्ध वाले या एक प्रकार के गुणों वाले । ( ७ ) **आरण्यकौ**—जंगली, वनवासी । अरण्ये भवः आरण्यकः । अरण्य शब्द से अरण्यान्मनुष्ये (४-२-१२९) से वुञ् (अक) प्रत्यय । ( ८ ) **आत्मकार्य०**—अपने स्वार्थ को सिद्ध करने वाली स्त्रियों के । ( ९ ) **अनृतमय०**—झूठीवाणी रूपी मधु से । अमृतमयवाच एव मधूनि तैः, कर्म० । (१०) **विषयिणः**—विषयी लोग । कामुक लोग ही ऐसी बातों पर विश्वास करते हैं ।

**८२. राजा—तापसवृद्धे,**

**स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु**
**संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।**
**प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-**
**मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥२२॥**

**अन्वय**—स्त्रीणाम् अमानुषीषु (अपि) अशिक्षितपटुत्वं संदृश्यते, याः प्रतिबोधवत्यः (तासां) किमुत । परभृताः खलु अन्तरिक्षगमनात् प्राक् स्वम् अपत्यजातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति ।

**राजा—हे वृद्ध तपस्विनी,**

**स्त्रियों में जो मनुष्य जाति से भिन्न स्त्रियाँ हैं, उनमें (भी) बिना शिक्षा के ही चतुरता देखी जाती है । जो ज्ञान-सम्पन्न हैं, उनका तो कहना ही क्या ? कोयल आकाश में उड़ने की सामर्थ्य होने तक अपने बच्चों का अन्य पक्षियों (कौओं) से ही पालन करवाती हैं ॥२२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—स्त्रीणां—स्त्रीणां मध्ये, अमानुषीषु—मनुष्येतरजातिस्त्रीष्वपि, अशिक्षित०—शिक्षणं विनापि वञ्चनाकौशलम्, संदृश्यते—लक्ष्यते । याः—स्त्रियः, प्रतिबोधवत्यः—ज्ञानसंपन्नाः, तासां किमुत—तासां किं वक्तव्यम् । परभृताः—कोकिलाः, खलु—निश्चयेन, अन्तरिक्ष०—अन्तरिक्षे आकाशे गमनात् गमनशक्तिलाभात्, प्राक्—पूर्वं यावदित्यर्थः, स्वम्—स्वकीयम्, अपत्यजातं—शिशुसमूहम्, अन्यैः—स्वभिन्नैः, द्विजैः—पक्षिभिः काकैरित्यर्थः, पोषयन्ति—वर्धयन्ति । व्यतिरेकोऽप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **तापसवृद्धे**—वृद्ध तपस्विनी । वृद्धा तापसी, कर्मधारय । कडाराः कर्मधारये (२-२-३८) से वृद्ध का विकल्प से परनिपात । वृद्धतापसी अधिक प्रचलित प्रयोग है । यह विशेषण राजा के क्रोध का सूचक है । शकुन्तला की

ओर से कोई सफाई देना उसके लिए असह्य हो गया था। ( २ ) **स्त्रीणाम्..... अमानुषीषु**—स्त्रियों में मनुष्येतर जाति की स्त्रियों में भी स्वाभाविक चतुरता और चालाकी देखी जाती है। अमानुषी से अभिप्राय पशु-पक्षियों आदि से है। पाठभेद—अमानुषीणाम्। अमानुषीणां स्त्रीणाम्—मनुष्येतर स्त्रियों में भी। यह पाठ सरल है, परन्तु अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों में अमानुषीषु पाठ है, अतः वह अपनाया गया है। ( ३ ) **अशिक्षित०**—बिना शिक्षा के ही अर्थात् स्वाभाविक चतुरता और चालाकी। अशिक्षितं च तत् पटुत्वम्, कर्म०। यही भाव अन्यत्र भी आया है—(क) स्त्रियो हि नाम खल्वेताः निसर्गादेव पण्डिताः। पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥ (मृच्छकटिक ४-१९), (ख) वयस्य, निसर्गनिपुणाः स्त्रियः। (मालविका० अंक ३)। ( ४ ) **प्रतिबोधवत्यः**—ज्ञान-सम्पन्न। प्रतिबोध—ज्ञान या बुद्धि। प्रति+बुध्+घञ्। किमुत—सुशिक्षित स्त्रियों का तो कहना ही क्या? ( ५ ) **अन्तरिक्ष०**—आकाश में उड़ने की शक्ति होने तक। अन्तरिक्ष—अन्तः द्यावापृथिव्योर्मध्य ईक्ष्यते इति। अन्तर्+ईक्ष्+घञ्। ई को छान्दस ह्रस्व। जो द्युलोक और पृथ्वी के बीच में दिखाई देता है। अन्तः ऋक्षाणि यस्य तत्, पृषोदरादित्वात् साधुः। जिसके मध्य में नक्षत्र हैं। ( ६ ) **अपत्यजातम्**—बच्चों को। जात का अर्थ समूह भी है। ( ७ ) **द्विजैः**—पक्षियों से। यहाँ कौओं से अर्थ है। ( ८ ) **परभृताः**—कोयल। परैः भृताः, कौओं से पाली हुई। लोकश्रुति है कि कोयल अपने बच्चों को कौए के घोंसले में छोड़ देती है और कौवा अपना बच्चा समझ कर उन्हें पालता है। कोयल के बच्चे उड़ने के योग्य होते ही वहाँ से उड़ जाते हैं, अतः उन्हें परभृत कहते हैं। ( ९ ) इस श्लोक में अप्रत्यक्ष रूप से शकुन्तला की उत्पत्ति की ओर भी संकेत है कि वह वेश्या की पुत्री है और अकुलीन है। अमानुषी और परभृता के द्वारा मेनका की ओर संकेत है। वह अप्सरा होने से अमानुषी है और वेश्या होने के कारण दूसरों के द्वारा पालित है, अतः परभृता है। स्वमपत्यजातम् से शकुन्तला का निर्देश है। प्रागन्तरिक्ष० से शकुन्तला को जन्म देकर आकाश में जाने का संकेत है। अन्यैः द्विजैः से कण्व ऋषि का संकेत है। द्विज का अर्थ ब्राह्मण भी है। टीकाकार श्रीनिवास ने इसको आगे की कथा का सूचक माना है। परभृता—शकुन्तला के लिए। अपत्य०—भरत के लिए। अन्यैः द्विजैः—मारीच आदि ऋषियों के लिए। प्रागन्तरिक्ष०—राजा का मातलि के साथ स्वर्ग में जाने के लिए। राजा के मारीच के आश्रम में आने से पूर्व शकुन्तला ने ऋषियों से भरत का पालन-पोषण कराया। यह अर्थ कुछ क्लिष्ट-कल्पना है। (१०) यहाँ पर किमुत के द्वारा आधिक्य का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है। शकुन्तला के स्थान पर स्त्री-सामान्य की उक्ति से अप्रस्तुतप्रशंसा है। पूर्वार्ध सामान्य का उत्तरार्ध विशेष से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है।

**८३. शकुन्तला—(सरोषम्) अनार्य, आत्मनो हृदयानु-**

मानेन पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते? [अणज्ज, अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि? को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदिस्सदि?]

शकुन्तला—(क्रोध के साथ) नीच, तू अपने हृदय की तरह ही सबको समझता है? धर्म के चोगे को पहने हुए, तिनके से ढके हुए कुएँ के तुल्य तुझ जैसा और कौन (नीच) हो सकता है जो तेरा अनुकरण कर सके।

८४. राजा—(आत्मगतम्) सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया-

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद् भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ॥२३॥

(प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये।

अन्वय—विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ मयि एव रहः वृत्तं प्रणयम् अप्रतिपद्यमाने अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या अनया कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव।

राजा—(मन में) इसका क्रोध अकृत्रिम सा दिखाई पड़ रहा है, अतः मेरे विचार (की सत्यता) को सन्देह में डाल रहा है। क्योंकि—

विस्मृति के कारण कठोर चित्तवृत्ति वाले मेरे द्वारा ही एकान्त में सम्पन्न हुए प्रेम-सम्बन्ध को स्वीकार न करने पर, अतिक्रोध के कारण बहुत लाल आँखों वाली इस (शकुन्तला) ने अपनी तिरछी भौंहों को चढ़ाकर मानो कामदेव का धनुष ही तोड़ दिया है ॥२३॥

(प्रकट) देवी, दुष्यन्त का चरित सर्वत्र प्रसिद्ध है, किन्तु मैं यह (वंचकता अपने अन्दर) नहीं देखता हूँ।

---

पाठभेद—८३. का० प्रेक्षसे (देखते हो)। ८४. का० दृश्यते (दीखता है, अर्थात् छलयुक्त होना मुझे नहीं दीखता है)।

**संस्कृत-व्याख्या**—विस्मरण०—विस्मरणेन विस्मृत्या दारुणा कठोरा चित्तवृत्तिः मनोवृत्तिः यस्य तस्मिन्, मयि एव—दुष्यन्ते एव, रहः—एकान्ते, वृत्तं—सम्पन्नम्, प्रणयं—प्रेमसंवन्धम्, अप्रतिपद्यमाने—अस्वीकुर्वति सति, अतिरुषा—अतिक्रोधेन, अतिलोहिताक्ष्या—अतिलोहिते अत्यन्तं रक्तवर्णे अक्षिणी नेत्रे यस्याः तया, अनया—शकुन्तलया, कुटिलयोः—वक्रयोः, भ्रुवोः भेदात्—भ्रूभङ्गात् भ्रुवोः भङ्गं विधायेत्यर्थः, स्मरस्य—मदनस्य, शरासनं—धनुः, भग्नमिव—त्रोटितमिव। अत्रोत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गं चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **सरोषम्**—राजा ने गौतमी के समाधान पर आपत्ति करके गौतमी का अपमान किया और शकुन्तला को वेश्या की पुत्री होने का संकेत किया, अतः उसे विशेष क्रोध आया। (२) **अनार्य**—नीच, आर्यत्व के गुणों से रहित। कण्व की शिक्षा भर्तुर्विप्रकृतापि० को न भूलते हुए उसने राजा को अनार्य ही कहा, और कोई अनुचित कटु संबोधन नहीं कहा। (३) **धर्म०**—धर्म का चोगा पहनने वाले। धर्मस्य कंचुकं प्रविशतीति तस्य, तच्छील अर्थ में णिनि। (४) **तृण०**—तिनकों से ढके हुए कुएँ के तुल्य। तृणैः छन्नः कूपः तस्य उपमा यस्य तस्य, बहु०। (५) **तवानुकृतिम्०**—कौन तुम जैसे नीच का अनुकरण कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं। (६) इस वाक्य में क्रोधयुक्त वचन होने से संफेट नामक विमर्श सन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—संफेटो रोषभाषणम् (सा० दर्पण ६-१०२)। (७) **सन्दिग्ध०**—मेरे निश्चय को सन्देह में डालता हुआ। (८) **अकैतव इव**—अकृत्रिम सा। इसका क्रोध स्वाभाविक है। (९) **विस्मरण०**—भूल जाने के कारण कठोर चित्तवृत्ति वाले। संभव है मैं उस घटना को भूल गया हूँ, अतः कठोर हो रहा हूँ। विस्मरणेन दारुणा चित्तवृत्तिः यस्य तस्मिन्, बहु०। (१०) **वृत्तं०**—मैंने एकान्त में प्रेम किया और अब उसको स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। वृत्त—सम्पन्न, घटित। (११) **भ्रुवोः भेदात्**—भौंहें कामदेव का धनुष मानी गई हैं। क्रोध के कारण जोर से भौंहों को चढ़ाने से वे बीच से टूटी हुई ज्ञात होती हैं, अतः उत्प्रेक्षा है कि मानो कामदेव का धनुष टूट गया है। (१२) इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है। अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। (१३) **इदं न लक्षये**—तुमने वंचकता का जो दोष मेरे अन्दर बताया है, वह मुझे दिखाई नहीं देता है। मैंने किसी को धोखा नहीं दिया है।

**८५. शकुन्तला**—सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि। याऽहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोहृदयस्थित-

---

पाठभेद—८५. का० हृदयविषस्य [हिअअविसस्स] (हृदय में विष भरे)।

विषस्य हस्ताभ्याशमुपगता । [सुट्ठु दाव अत्त सच्छन्दचारिणी किदम्हि । जा अहं इमस्स पुरुवंसप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिअविसस्स हत्थब्भासं उवगदा ।]

(इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति ।)

शकुन्तला—अच्छा, यहाँ मैं दुश्चरित्र सिद्ध कर दी गई हूँ, जो मैं पुरुवंश के विश्वास पर ऊपर से मीठे और हृदय में विष भरे इस (राजा) के हाथ पड़ी। (आंचल से मुंह ढककर रोती है।)

८६. **शार्ङ्गरवः**—इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति ।
अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥२४॥

**अन्वय**—अतः रहः संगतं विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम् । अज्ञातहृदयेषु सौहृदम् एवं वैरीभवति ।

**शार्ङ्गरव**—इस प्रकार अपने आप की गई अनियन्त्रित चंचलता दुःख देती है। इसलिए गुप्त मैत्री (गुप्त विवाह-संबन्धादि) विशेष रूप से परीक्षा करके ही करनी चाहिए। परस्पर अज्ञात-हृदय वाले व्यक्तियों के साथ किया हुआ प्रेम इसी प्रकार वैररूप में परिणत होता है ॥२४॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अतः—एतस्मादेव कारणात्, रहः—एकान्ते, संगतं—सख्यं प्रणयसंबन्धादिकम् इत्यर्थः, विशेषात्—विशेषरूपेण, परीक्ष्य—स्वभावादिकं विवेच्य, कर्तव्यं—विधेयम् । अज्ञातहृदयेषु—परस्परम् अविदितचित्तेषु जनेषु सौहृदं—सख्यम्, एवम्—इत्थम्, वैरीभवति—शत्रुतामापद्यते । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा-ऽर्थान्तरन्यासः काव्यलिङ्गं चालंकाराः । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **स्वच्छन्दचारिणी०**—इस सारे प्रसंग ने मुझे दुश्चरित्र सिद्ध कर दिया है। यहाँ स्वच्छन्दचारिणी का अर्थ वेश्या कुछ विद्वानों ने लिया है, परन्तु यह ठीक नहीं है। यहाँ पर इसका अर्थ—'अपनी इच्छा के अनुसार काम करने वाली' है। परिणाम को बिना सोचे अपनी इच्छा से ही विवाह-सम्बन्ध आदि कर लेने के कारण वह स्वच्छन्दचारिणी है। किसी के नियन्त्रण में न रहने से दुश्चरित्र भी अर्थ निकलता है। ( २ ) **मुखमधोः**—मुंह पर मीठे अर्थात् ऊपर से मीठे ( ३ ) **हृदयस्थितविषस्य**—जिसके हृदय में विष भरा हुआ है। इसीलिए कहा गया है कि ऐसे दुर्जनों से मित्रता न करे 'वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयो

मखम्'। (४) अप्रतिहतम्०—अनियन्त्रित चंचलता परिणाम में दुःखदायी होती है। अप्रतिहत—अनियन्त्रित। अतः इस प्रकार की चंचलता को रोकना चाहिए। भारवि ने ठीक ही कहा है—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। (किरात० २-३०)। (५) परीक्ष्य०—किसी प्रकार की भी मित्रता परीक्षा करके ही करनी चाहिए। गुप्त मैत्री जैसे गुप्त-विवाह-सम्बन्ध, गान्धर्व-विवाह आदि विशेष रूप से परीक्षा करके ही करना चाहिए। जब तक दोनों को दोनों का हृदय ज्ञात न हो जाए तब तक मित्रता न करे। अन्यथा वह मित्रता शत्रुता में परिणत हो जाती है। जैसें यहाँ दोनों का गुप्तरूप से गान्धर्वविवाह दुःख और पारस्परिक अप्रीति का कारण हुआ है। भारवि ने भी कहा है—असन्मैत्री हि दोषाय कूलच्छायेव सेविता। (किरात०)। (६) इस श्लोक से प्रेमविवाह के सम्बन्ध में कालिदास के विचार ज्ञात होते हैं। शार्ङ्गरव के द्वारा उसने अपने विचारों को प्रकट किया है। प्रेम-विवाह के दोषों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। इस श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में गान्धर्व-विवाह सम्भवतः अप्रिय हो गया था। (७) विशेष शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेम के स्थान पर सामान्य प्रेम के वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा है। पूर्वार्ध विशेष का उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा वैधर्म्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। पूर्वार्ध के प्रति उत्तरार्ध कारण है। अतः काव्यलिंग है।

**८७. राजा—अयि भोः, किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ ?**

राजा—महानुभावो, इन (शकुन्तला) पर विश्वास के कारण ही क्यों दोषयुक्त वाक्यों से मुझे दुःखित कर रहे हो ?

**८८. शार्ङ्गरवः—(सासूयम्) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्।**
**आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो य-**
**स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।**
**परातिसन्धानमधीयते यै-**
**र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥२५॥**

अन्वय—यः आ जन्मनः शाठ्यम् अशिक्षितः, तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम्। ः परातिसन्धानं विद्या इति अधीयते ते किल आप्तवाचः सन्तु।

शार्ङ्गरव—(ईर्ष्या के साथ) आप लोगों ने यह उलटी बात (अथवा निकृष्ट त्तर) सुनी ?

जिसने जन्म से लेकर आज तक धूर्तता नहीं सीखी है, उस व्यक्ति की बात

**तो अप्रामाणिक है और जो दूसरों को धोखा देने को एक विद्या के रूप में सीखते हैं, वे पूर्ण सत्यवादी माने जाएँ ? ।।२५।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—यः—जनः, आ जन्मनः—जन्मनः प्रभृति अद्य यावत्, शाठ्यं—परवञ्चनम्, अशिक्षितः—न पठितुमारब्धवान्, तस्य जनस्य—शकुन्तला-रूपस्य जनस्य, वचनं—कथनम्, अप्रमाणम्—अप्रामाणिकम् । यैः—नृपादिभिः प्रकृते दुष्यन्तेनेत्यर्थः, परातिसन्धानं—परवञ्चनम्, विद्येति—विद्यारूपेण, अधीयते—पठ्यते, ते किल—नृपादयः, आप्तवाचः—पूर्णसत्यवादिनः, सन्तु—भवन्तु । अप्रस्तुतप्रशंसा रूपकं चालंकारौ । "शकुन्तला—सुष्ठु तावत्" इत्यादिना एतदन्तेन द्रवो नाम विमर्शसन्ध्यङ्गमस्ति । उपजातिर्वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **संयुत०**—दोष से युक्त वाक्यों से । संयुताः दोषाः येषु तैः संयुतदोषैः, बहु०, तादृशः अक्षरैः, तत्पुरुष । संयुत—संयुक्त, पूर्ण । (२) **क्षिणुथ**—पीड़ित करते हो, दुःख देते हो । ( ३ ) **सासूयम्**—ईर्ष्या के साथ । असूया का अर्थ है—गुणेषु दोषाविष्करणम्, छिद्रान्वेषण, बुराई निकालना । यहाँ पर ईर्ष्या के साथ या व्यंग्य के साथ अर्थ है । ( ४ ) **अधरोत्तरम्**—इसके यहाँ पर दो अर्थ हो सकते हैं—(क) उलटी बात । अधर का अर्थ है नीचा, उत्तर का अर्थ है ऊँचा । नीचे को ऊँचा और ऊँचे को नीचा करना अर्थात् उलटी बात, विपरीत अर्थ । सच्ची शकुन्तला को झूठी बताना और झूठे राजा का अपने आपको सच्चा मानना । अधरं च उत्तरं च, द्वन्द्व । विभाषा वृक्षमृग० (२-४-१२) से एकवचन । अथवा अधरं च तत् उत्तरम्, कर्मधारय । (ख) निकृष्ट उत्तर । अधरं च तत् उत्तरम्, कर्मधारय । यहाँ पर प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है । उसका ही आगे श्लोक में वर्णन है । यह वाक्य पुरोहित तथा अपने साथियों को संबोधन करके शार्ङ्गरव ने कहा है । पूरा वाक्य व्यंग्य से पूर्ण है । ( ५ ) **आ जन्मनः**—जन्म से लेकर आज तक । आङ् मर्यादावचने (१-४-८९) से कर्मप्रवचनीय और पञ्चम्यपाङ्-परिभिः (२-३-१०) से आ के कारण पंचमी । ( ६ ) **अशिक्षितः**—नहीं सीखा है या सीखना भी प्रारम्भ नहीं किया । आदिकर्म में आदिकर्मणि क्तः० (३-४-७१) से क्त प्रत्यय । ( ७ ) **परातिसन्धानम्**—दूसरों को ठगना । परेषाम् अतिसन्धानम्, तत्पुरुष । अतिसन्धान का अर्थ ठगना है । अति+सम्+धा+ल्युट् । ( ८ ) **विद्येति**—जो इसको कला या विज्ञान के रूप में सीखते हैं । ( ९ ) **आप्तवाचः**—पूर्ण सत्यवादी । आप्त का लक्षण है—आप्तस्तु यथार्थवक्ता । जो किसी प्रकार के प्रलोभनादि में न आकर सदा सत्य ही बोलता है, उसे आप्त कहते हैं । (१०) यह श्लोक पूरा व्यंग्य है, अतः अर्थ निकलता है कि शकुन्तला प्रामाणिक है और तुम असत्यवादी हो । (११) शकुन्तला और दुष्यन्त के कथन के स्थान पर सामान्य

Funding by IKS-MoE

वर्णन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। परातिसन्धान पर विद्या का आरोप होने से रूपक है। (१२) शकुन्तला का कथन सुष्ठु तावत्० (वाक्य सं० ८५) से यहां तक क्रोधयुक्त वचन होने के कारण द्रव नामक विमर्श संधि का अंग है। उसका लक्षण है—द्रवो गुरुव्यतिक्रान्तिः शोकावेगादिसंभवा। (सा० दर्पण ६-१०३)।

**८९. राजा—भोः सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामतिसन्धाय लभ्यते ?**

राजा—हे सत्यवादी, मैं मानता हूँ कि ऐसा ही हूँ। परन्तु इस स्त्री को ठगकर मुझे क्या मिलगा ?

**९०. शार्ङ्गरवः—विनिपातः।**

शार्ङ्गरव—अधःपतन (मिलगा)।

**९१. राजा—विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयमेतत्।**

राजा—पुरुवंशी राजा अपना अधःपतन चाहते हैं, यह बात विश्वास के योग्य नहीं है।

**९२. शारद्वतः—शार्ङ्गरव, किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामिहे वयम्। (राजानं प्रति)**

**तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।**
**उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥२६॥**

**गौतमि, गच्छाग्रतः। (इति प्रस्थिताः।)**

अन्वय—तत् एषा भवतः कान्ता, एनां त्यज वा गृहाण वा। हि दारेषु सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना।

शारद्वत—शार्ङ्गरव, इस उत्तर देने से क्या लाभ ? हमने गुरु की आज्ञा का पालन कर दिया। (अब) हम लौटते हैं। (राजा से)

यह आपकी स्त्री है, आप इसको छोड़िए चाहे अपने पास रखिए। क्योंकि पत्नी पर (पति की) सब प्रकार की प्रभुता स्वीकार की गई है ॥२६॥

गौतमी, आगे-आगे चलो। (सबका प्रस्थान।)

संस्कृत-व्याख्या—तत्—इत्युपसंहारे, एषा—शकुन्तला, भवतः—दुष्यन्तस्य, कान्ता—गान्धर्वविवाहविधिना परिणीता स्त्री वर्तते, एनां—शकुन्तलाम्, त्यज—परित्यागं कुरु, गृहाण वा—अथवा स्वीकुरु। हि—यतो हि, दारेषु—भार्यायाम्,

सर्वतोमुखी—सर्वप्रकारा, प्रभुता—स्वामित्वम्, उपपन्ना—स्वीकृता वर्तते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **अभ्युपगतम्**—मैं मानता हूँ, मैं स्वीकार करता हूँ। ( २ ) **अतिसन्धाय**—ठग कर। अति+सम्+धा का अर्थ ठगना है। (३) **विनिपातः**—अधःपतन, अवनति, विनाश। राजा ने कहा था कि शकुन्तला को ठग कर मुझे क्या मिलेगा ? उसका उत्तर है कि अधःपतन मिलेगा। ( ४ ) **न श्रद्धेयम्**—यह विश्वास के योग्य नहीं है कि हम अपना विनाश चाहें। ( ५ ) **किमुत्तरेण**—उत्तर देने से क्या लाभ ? ( ६ ) **सन्देशः**—सन्देश या आज्ञा। (७) **कान्ता**—स्त्री। पाठभेद—पत्नी है। यहाँ पर कान्ता पाठ अधिक उपयुक्त है। कान्ता का अर्थ है प्रेम की गई, प्रिया। गान्धर्व-विवाह से विवाहित स्त्री के लिए कान्ता शब्द ही उपयुक्त है। यज्ञ को साक्षी रखकर किये गये विवाह वाली स्त्री को पत्नी कहना उचित है। शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह था, अतः वह कान्ता है। शारद्वत आदि को भी इतना ही ज्ञात था कि इनका गान्धर्व-विवाह हुआ है और दुष्यन्त ने इससे प्रेम किया है। अग्निसाक्षिक विवाह न होने से पत्नी नहीं कहा है। ( ८ ) **त्यज०**—छोड़ो या स्वीकार करो। ( ९ ) **उपपन्ना**—स्वीकृत है, उचित है। उप+पद्+क्त+टाप्। (१०) **दारेषु**—स्त्री पर। दार का अर्थ स्त्री है। यह शब्द पुंलिंग में ही आता है और सदा बहुवचन में प्रयोग होता है। अतः दारेषु का अर्थ भार्यायाम् है। (११) **प्रभुता**—प्रभुत्व, अधिकार। (१२) **सर्वतोमुखी**—सब प्रकार की। स्त्री पर पति का पूर्ण अधिकार है। इससे कालिदास के समय की सामाजिक स्थिति पर विशेष प्रकाश पड़ता है कि स्त्री की क्या स्थिति थी। स्त्री के विषय में कहा है—भर्ता हि दैवतं स्त्रीणां भर्ता हि गतिरुच्यते (अग्निपुराण)। भर्तृनाथा हि नार्यः (प्रतिमानाटक १-२५)। (१३) यहाँ उत्तरार्ध में सामान्य अर्थ है, उसके द्वारा विशेष पूर्वार्ध का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। (१४) पाठभेद—उपपन्ना के स्थान पर उपयन्तुः—पति की।

**९३. शकुन्तला—कथमनेन कितवेन विप्रलब्धाऽस्मि ? यूयमपि मां परित्यजथ ?** [ कहं इमिणा किदवेण विप्पलद्ध म्हि ? तुम्हे वि मं परिच्चअह ?] **(इत्यनुप्रतिष्ठते)**

**शकुन्तला**—अब कैसे करूँ ? इस धूर्त के द्वारा मैं ठगी गई हूँ। आप लोग भी (अब) मुझे छोड़ रहे हैं ? (उनके पीछे-पीछे चल पड़ती है।)

**९४. गौतमी—(स्थित्वा) वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि**

किं वा मे पुत्रिका करोतु ? [वच्छ संगरव, अणुगच्छदि इअं क्खु णो करुणपरिदेविणी सउन्दला । पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं वा मे पुत्तिआ करेदु ?]

गौतमी—(रुककर) वत्स शार्ङ्गरव, करुण-स्वर से रोती हुई यह शकुन्तला हम लोगों के पीछे-पीछे आ रही है। पति ने निर्दयतापूर्वक परित्याग कर दिया है, (अब) बेचारी मेरी पुत्री क्या करे ?

९५. **शार्ङ्गरवः**—(सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे, स्वातन्त्र्यमवलम्बसे ?
(शकुन्तला भीता वेपते ।)

शार्ङ्गरव—(क्रोध के साथ घूमकर) ओ दुष्टा, क्या तू स्वतन्त्र (मनमानी) हो रही है ?
(शकुन्तला भय से काँपती है।)

९६. **शार्ङ्गरवः**—शकुन्तले,

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा
त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः
पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥२७॥

तिष्ठ । साधयामो वयम् ।

अन्वय—क्षितिपः यथा वदति, यदि त्वं तथा असि, उत्कुलया त्वया पितुः किम् ? अथ तु आत्मनः व्रतं शुचि वेत्सि, पतिकुले तव दास्यम् अपि क्षमम् ।

शार्ङ्गरव—ओ शकुन्तला, राजा जैसा कहते हैं, यदि तू वैसी ही है तो तुझ कुल-कलंकिनी से पिता को क्या करना है ? यदि तू अपने आचरण को पवित्र समझती है तो पति के परिवार में तुझे दासता करनी भी उचित है ॥२७॥

यहीं रुक । हम लोग जाते हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—क्षितिपः—नृपः, यथा वदति—यथा भाषते यत् नेयं मया परिणीतपूर्वेति, यदि त्वं तथा असि—तादृशी एवासि तर्हि, उत्कुलया—कुलमर्यादाभ्रष्टया, त्वया—शकुन्तलया, पितुः किम्—कण्वस्य किं प्रयोजनमस्ति नास्तीत्यर्थः । अथ तु आत्मनः—स्वस्य, व्रतं—चरित्रं पातिव्रत्यमित्यर्थः, शुचि—पवित्रम्, वेत्सि—गणयसि तर्हि, पतिकुले—भर्तृगृहे, तव दास्यमपि—दासत्वमपि, क्षमं—योग्यमस्ति । काव्यलिङ्गमलंकारः । अत्र प्ररोचनानामकं विमर्शसन्ध्यङ्गं चास्ति । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **कथम्**—कैसे करूँ, क्या करूँ ? ( २ ) **विप्रलब्धा**—ठगी गई हूँ। वि+प्र+लभ् का अर्थ ठगना है। ( ३ ) **अनुप्रतिष्ठते**—पीछे-पीछे चल पड़ती है। प्र+स्था को समवप्रविभ्यः स्थः (१-३-२२) से आत्मनेपद होता है। ( ४ ) **करुण०**—करुण स्वर से रोती हुई। परि+दिव् का अर्थ रोना है। ( ५ ) **प्रत्यादेश०**—पतियाग के कारण कठोर। प्रत्यादेश—निराकरण, तिरस्कार, परित्याग। ( ६ ) **पुत्रिका**—बेचारी पुत्री। ( ७ ) **पुरोभागे**—दुष्ट, नीच। पुरो भागः यस्याः सा, पहले हिस्सा माँगने वाली अर्थात् झगड़ालू अथवा हर काम में आगे आने वाली अर्थात् ढीठ और निर्लज्ज। पुरः भजते इति। पाठभेद—पुरोभागिनि है। अमरकोश के अनुसार इसका अर्थ छिद्रान्वेषी है। 'दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः। ( ८ ) **स्वातन्त्र्यम्**—तू स्वतन्त्र होना चाहती है। स्वः आत्मा तन्त्रं प्रधानं यस्य सः स्वतन्त्रः, तस्य भावः। वह अब पति के पास है, अतः उसके कथनानुसार काम करे। मनु आदि का कथन है कि स्त्री सदा दूसरे के निरीक्षण में रहनी चाहिए। पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।। (मनु० ९-३)। यही भाव मनु० ५-१४८, याज्ञवल्क्य० १-८५, ब्रह्मवैवर्त० १७ में भी आया है। (९) **क्षितिपः**—पृथ्वी का पालक है, तुम्हारी भी रक्षा करेगा। (१०) **उत्कुलया**—कुलटा, कुलमर्यादा से भ्रष्ट। उत्क्रान्ता कुलात् कुलं वा, तत्पुरुष। कुल का अर्थ कुल-मर्यादा है। (११) **पितुः किम्**—पिता को तुझसे क्या करना? (१२) **व्रतम्**—चरित्र, पातिव्रत्य धर्म। (१३) **क्षमम्**—उचित है, योग्य है। (१४) शार्ङ्गरव ने उसे दोनों बातों का उत्तर दिया है—(क) यदि कुलटा है तो भी हमारे साथ न चल, (ख) यदि सती है तो पति की दासता भी स्वीकार कर। (१५) **साधयामः**—जाते हैं। नाटकों में साधि धातु का प्रयोग जाने अर्थ में होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण के कारण प्रथम और तृतीय चरण हैं, अतः काव्यलिंग है। यहाँ पर प्रसंग की समाप्ति होने से प्ररोचना नामक विमर्श संधि का अंग है। उसका लक्षण है—प्ररोचना तु विज्ञेया संहारार्थप्रदर्शिनी। (सा० दर्पण ६-१०६)।

**९७. राजा—भोस्तपस्विन्, किमत्रभवतीं विप्रलभसे।**
**कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव।**
**वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥२८॥**

**अन्वय**—शशाङ्कः कुमुदानि एव सविता पङ्कजानि एव बोधयति। हि वशिनां वृत्तिः परिपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी।

**राजा**—हे तपस्वी, आप इस स्त्री को क्यों धोखा दे रहे हैं?

चन्द्रमा कुमुदों को ही खिलाता है और सूर्य कमलों को ही। क्योंकि जितेन्द्रियों की मनोवृत्ति परस्त्री-संपर्क से विमुख होती है ॥२८॥

**संस्कृत-व्याख्या**—शशाङ्कः—चन्द्रः, कुमुदान्येव—कैरवाण्येव न तु कमलानि, सविता—सूर्यः, पङ्कजान्येव—कमलान्येव, बोधयति—विकासयति, न तु कुमुदानीत्यर्थः। हि—यतो हि, वशिनां—जितेन्द्रियाणाम्, वृत्तिः—मनोवृत्तिः, परपरिग्रह०—परेषाम् अन्येषां परिग्रहाणां भार्याणां संश्लेषे संस्पर्शे पराङ्मुखी विमुखी भवति। अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासस्तुल्ययोगिता चालंकाराः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **विप्रलभसे**—धोखा दे रहे हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यदि आप यह सोचते हों कि किसी बहाने यहाँ छोड़ देने से मैं इसे स्वयं अपने यहाँ रख लूंगा तो यह आपको भ्रम है। मैं जितेन्द्रिय हूँ, अतः ऐसा नहीं हो सकता कि परस्त्री से संपर्क स्थापित करूँ। अतः शकुन्तला को यहाँ छोड़ना, उसे धोखा देना है। इसी को आगे श्लोक में स्पष्ट किया है। ( २ ) **कुमुदान्येव**—कुमुदों को ही, औरों को नहीं। इसी प्रकार सूर्य कमलों को ही खिलाता है, कुमुदों को नहीं। जिसका जिससे सम्बन्ध स्थापित है, उसी को वह विकसित करता है। ( ३ ) **परपरिग्रह०**—परेषां परिग्रहाणां संश्लेषे पराङ्मुखी, तत्पुरुष। परस्त्री के संपर्क से विमुख। परिग्रह—स्त्री। संश्लेष—आलिगन, सम्पर्क। ( ४ ) यहाँ पर शकुन्तला और दुष्यन्त के स्थान पर तत्सम कुमुद्र और शशांक आदि अप्रस्तुत का उल्लेख होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्ध विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। शशाङ्क और सविता दोनों अप्रस्तुत हैं, दोनों का बोधयति इस एक क्रिया से संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

**९८. शार्ङ्गरवः**—यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद् विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरुः ?

**शार्ङ्गरव**—यदि पूर्व घटित घटना को अन्य (कार्य या स्त्री) में आसक्त होने के कारण भूल गए हों तो आप अधर्म से डरने वाले कैसे कहे जा सकते हैं ?

**९९. राजा**—(पुरोहितं प्रति) भवन्तमेवात्र गुरुलाघवं पृच्छामि।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ॥२९॥

---

पाठभेद—९९. का० पुरोहितं प्रति, इति नास्ति।

**अन्वय**—अहं मूढः स्याम्, वा एषा मिथ्या वदेत्, इति संशये दारत्यागी भवामि, आहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः (भवामि)।

**राजा—(पुरोहित से) मैं इस विषय में आपसे ही पूछता हूँ कि क्या कार्य अच्छा है और क्या बुरा?**

**मेरी मति भ्रष्ट हो रही है, अथवा यह झूठ बोल रही है, इस संदेह में मैं स्त्री-परित्यागी होऊँ या पर-स्त्री के स्पर्श से दूषित होऊँ ॥२९॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अहं मूढः—नष्टबुद्धिः, स्यां—भवेयम्, वा—अथवा, एषा—शकुन्तला, मिथ्या—अनृतम्, वदेत्—भाषेत, इति संशये—सन्देहे, दारत्यागी—पत्नीपरित्यागी, भवामि, आहो—अथवा, परस्त्री०—परस्त्रियाः अन्यस्य पत्न्याः स्पर्शेन पांसुलः दूषितः भवामि। राजा—भोः सत्यवादिन् इत्यादिनैतदन्तेन विरोधनामकमङ्गमस्ति। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **अन्यसङ्गाद्**—अन्य राजकीय कार्यों में आसक्त होने के कारण, अथवा अन्य वसुमती आदि स्त्रियों में आसक्त होने से। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि अन्य अर्थात् शाप के प्रभाव के कारण आप पूर्व घटना को भूल गए हों। (२) **पुरोहितं प्रति**—यह पाठ निर्णयसागर को छोड़ कर अन्य संस्करणों में नहीं है। परन्तु यह पाठ यहाँ होना उचित है, अतः यह पाठ रखा गया है। राजा का यह कथन पुरोहित से है, शार्ङ्गरव से नहीं, अतएव पुरोहित ने इसका उत्तर दिया है। (३) **गुरुलाघवम्**—कौन सा काम अच्छा है, कौन सा बुरा। गुरु—श्रेष्ठ, उत्तम, लघु—निकृष्ट, बुरा। गुरुलाघवम् यह अनियमित प्रयोग। पतंजलि आदि ने इसका प्रयोग किया है, अतः यह प्रयोग शुद्ध माना जाता। गुरु च लघु च गुरुलघु, विप्रतिषिद्धं० (२-४-१३) से एकवचन। गुरुलघुनो भावः। अण् प्रत्यय करने पर गौरुलघवम् रूप बनता, परन्तु भाष्यप्रयोग कारण उत्तरपद को ही वृद्धि होती है। गुरुलाघव का प्रयोग पतंजलि आदि किया है। जैसे—पर्यायशब्दानां गुरुलाघवचिन्ता नास्ति (महाभाष्य), विमृश्य रुलाघवम् (रामायण ४-२-४, ४-३२-२), आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरु-ाघवम् (मनु० ९-२९९) आदि। (४) **दारत्यागी**—स्त्री के त्याग का दोषी। ५) **परस्त्री०**—पराई स्त्री के स्पर्श का दोषी। पांसुल—दूषित, कलंकी, पी। पांसु—धूल, अतः पांसुल दूषित। (६) राजा का कथन भोः सत्यवादिन् वक्तव्य सं० ८९) से यहाँ तक उत्तर-प्रत्युत्तर वाले वाक्य होने से विरोध नामक ङ्ग है। उसका लक्षण है—उत्तरोत्तरवाक्यं तु विरोध इति संज्ञितः।

**१००. पुरोहितः—(विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्।**

पुरोहित--(विचार कर) यदि ऐसा है तो इस प्रकार कीजिए।

१०१. राजा--अनुशास्तु मां भवान्।

राजा--आप मुझे आज्ञा दीजिए।

१०२. पुरोहितः--अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यते इति चेत्--त्वं साधुभिरादिष्टपूर्वः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव।

पुरोहित--यह श्रीमती (शकुन्तला) सन्तानोत्पत्ति तक मेरे घर रहें। यदि आप यह पूछें कि मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ तो (मेरा उत्तर है कि)--आपको (ज्योतिर्विद्) महात्माओं ने पहले ही बताया हुआ है कि आपके सर्वप्रथम चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। यदि वह मुनि (कण्व) का नाती उन (चक्रवर्ती राजा के) लक्षणों से युक्त उत्पन्न होता है तो आप इनको सत्कारपूर्वक अपने रनवास में प्रविष्ट कीजिएगा, अन्यथा इनको इनके पिता के पास भेजना निश्चित ही है।

१०३. राजा--यथा गुरुभ्यो रोचते।

राजा--जैसा आप गुरु जी को अभीष्ट है।

१०४. पुरोहितः--वत्स, अनुगच्छ माम्।

पुरोहित--पुत्री, मेरे पीछे-पीछे आओ।

१०५. शकुन्तला--भगवति वसुधे, देहि मे विवरम्। [भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं।]

(इति रुदती प्रस्थिता। निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च)

(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति।)

शकुन्तला--भगवती पृथिवी, मुझे अपने अन्दर स्थान दें, (अर्थात् हे पृथिवी, तू फट जा और मैं उसमें समा जाऊँ।)

(शकुन्तला रोती हुई चल पड़ती है। पुरोहित और तपस्वियों के साथ उसका प्रस्थान।)

Funding by IKS-MoE

**(शाप के कारण लुप्त-स्मृति अवस्था में राजा शकुन्तला के विषय में ही सोचता है।)**

### टिप्पणी

( १ ) **आ प्रसवात्**—बालक होने तक। पञ्चम्यपाङ्परिभिः (२-३-१०) से आ के कारण पंचमी। ( २ ) **कुत इदम्०**—ऐसा क्यों कहता हूँ, यदि आप ऐसा पूछते हैं तो मेरा उत्तर है कि। यह उक्ति दार्शनिक पद्धति के अनुकूल है। पुरोहित दार्शनिक विद्वान् है, अतः उसके मुँह से ऐसी उक्ति उचित है। ( ३ ) **साधुभिः**—सज्जन महात्माओं द्वारा। यहाँ ज्योतिषी महात्माओं से भाव है। ( ४ ) **आदिष्टपूर्वः**—पहले ही बताया है या भविष्यवाणी की है। पूर्वम् आदिष्टः आदिष्टपूर्वः। भूतपूर्वे चरट् (५-३-५३) निर्देश से पूर्व का परनिपात। ( ५ ) **चक्रवर्तिनम्०**—चक्रवर्ती पुत्र होगा। ( ६ ) **मुनिदौहित्रः**—कण्व ऋषि का नाती। दौहित्र का अर्थ है—दुहिता अर्थात् लड़की का पुत्र, धेवता या नाती। (७) **तल्लक्षणोपपन्नः**—चक्रवर्ती राजा के चिह्नों से युक्त। चक्रवर्ती के हाथ आदि में ये चिह्न माने जाते हैं—(क) अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलको मृदुः। चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्॥ (ख) यस्य पादतले पद्मं चक्रं वाप्यथ तोरणम्। अङ्कुशं कुलिशं चापि स सम्राट् भवति ध्रुवम्॥ ( ८ ) **विपर्यये**—इसके विपरीत होने पर। ( ९ ) **गुरुभ्यः०**—रुच् धातु के कारण चतुर्थी। (१०) **देहि मे विवरम्**—पृथ्वी फट जावे और मैं उसमें समा जाऊँ। यह अत्यन्त दुःख की अवस्था में कहा जाता है, जब जीवन भार प्रतीत होता है। (११) **शापव्यवहित०**—शाप के कारण राजा शकुन्तला को स्मरण नहीं कर रहा था। स्मृति थी, परन्तु बीच में शाप का व्यवधान था।

**(नेपथ्ये)**

**१०६. आश्चर्यमाश्चर्यम्।**

**(नेपथ्य में) आश्चर्य है! आश्चर्य है!!**

**१०७. राजा—(आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्?**

**राजा—(सुनकर) ऐसी क्या बात हो सकती है?**

**(प्रविश्य)**

**१०८. पुरोहितः—(सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्।**

**(प्रविष्ट होकर)**

**पुरोहित—(आश्चर्य के साथ) महाराज, बड़े आश्चर्य की बात हो गई है।**

**१०९. राजा—किमिव?**

**राजा**—वह क्या ?

११०. **पुरोहितः**—देव, परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—
सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।

**पुरोहित**—महाराज, कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर—
वह बालिका अपने भाग्य की निन्दा करती हुई हाथ उठाकर रोने लगी।

१११. **राजा**—किं च ?

**राजा**—और फिर ?

११२. **पुरोहितः**—
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारा-
दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥३०॥
(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति)

**अन्वय**—सा बाला स्वानि भाग्यानि निन्दन्ती बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं प्रवृत्ता च। अप्सरस्तीर्थम् आरात् स्त्रीसंस्थानम् एकं ज्योतिः एनाम् उत्क्षिप्य जगाम च।

**पुरोहित**—अप्सरातीर्थ (शचीतीर्थ) के पास ही स्त्री के सदृश आकार वाली एक तेजोमयी मूर्ति उसको उठाकर अदृष्ट हो गई ॥३०॥

(सब लोग आश्चर्य का अभिनय करते हैं।)

**संस्कृत-व्याख्या**—सा बाला—शकुन्तला, स्वानि भाग्यानि—स्वकीयं दुर्भाग्यम्, निन्दन्ती—अधिक्षिपन्ती सती, बाहूत्क्षेपं—बाहू ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा, क्रन्दितुम्—उच्चैर्विलपितुम्, प्रवृत्ता च—प्रारब्धवती। अप्सरस्तीर्थम् आरात्—शचीतीर्थस्य समीप एव, स्त्रीसंस्थानं—स्त्रियाः संस्थानम् आकृतिरिव संस्थानं यस्य तत् ललनाकारमित्यर्थः, एकं ज्योतिः—एका तेजोमयी मूर्तिः, एनां—शकुन्तलाम्, उत्क्षिप्य—उत्थाप्य, जगाम च—तिरोबभूव। समुच्चय उपमा चालंकारौ। शक्तिर्नाम विमर्शसन्ध्यङ्गं चास्ति। शालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **स्वानि भाग्यानि**—अपने दुर्भाग्य को। राजा से प्रेम करना, महत्त्वाकांक्षा रखना आदि जीवन की विभिन्न घटनाओं को सूचित करने के लिए बहुवचन है। शकुन्तला अपने भाग्य की निन्दा करती है। राजा को नहीं कोसती है।
(२) **बाहूत्क्षेपम्**—हाथों को उठा कर। बाहू उत्क्षिप्य, बाहु+उत्+क्षिप्+णमुल्

(अम्)। यहाँ पर स्वांगेऽध्रुवे (३-४-५५) से अपने शरीर का अंग बाहु पहले होने से णमुल् (अम्) प्रत्यय। णमुल्-प्रत्ययान्त रूप अव्यय होते हैं। (३) **स्त्रीसंस्थानम्**—स्त्री के तुल्य आकार वाली। स्त्रियाः संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्, उष्ट्रमुखवत्, उत्तरपदलोपी बहुव्रीहि। (४) **आरात्**—समीप। श्लोक के उत्तरार्ध के कई अर्थ किए गए हैं। परन्तु सरल और स्पष्ट अर्थ यही प्रतीत होता है कि—शचीतीर्थ के पास एक तेजोमयी मूर्ति आई और वह उसे उठाकर अदृष्ट हो गई। दूसरा अर्थ यह किया गया है—एक तेजोमयी मूर्ति दूर से ही शकुन्तला को उठाकर शचीतीर्थ को चली गई। सप्तम अंक में मारीच के कथन यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्० से प्रथम अर्थ की ही पुष्टि होती है। (५) **जगाम**—लुप्त हो गई। यहाँ पर परोक्ष लिट् का प्रयोग वैदिक प्रयोग समझना चाहिए। पाठभेद—तिरोऽभूत् में यह दोष नहीं आता है। (६) दो च के द्वारा क्रियाओं के संग्रह के कारण समुच्चय अलंकार है। स्त्रीसंस्थानम् में लुप्तोपमा है। नेपथ्ये से लेकर यहाँ तक विरोध की शान्ति होने से शक्ति नामक विमर्श संधि का अंग है। उसका लक्षण है—शक्तिः पुनर्भवेत्। विरोधस्य प्रशमनम्। (सा० दर्पण ६-१०४)। यहाँ पर अद्भुत रस है।

**११३. राजा——भगवन्, प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते विश्राम्यतु भवान्।**

राजा——भगवन्, हमने पहले ही उस वस्तु (शकुन्तला) का निराकरण कर दिया है। (अब) व्यर्थ के तर्क से उसको क्यों खोजते हैं? आप विश्राम कीजिए।

**११४. पुरोहितः——(विलोक्य) विजयस्व।**

**(इति निष्क्रान्तः।)**

पुरोहित—(राजा की ओर देखकर) महाराज की विजय हो। (प्रस्थान।)

**११५. राजा——वेत्रवति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय।**

राजा—वेत्रवती, मैं व्याकुल हो गया हूँ। शयन-गृह का मार्ग बताओ।

**११६. प्रतीहारी——इत इतो देवः। [इदो, इदो देवो।]**

**(इति प्रस्थिता।)**

प्रतीहारी—महाराज, इधर से आइए। (चल पड़ती है।)

**११७. राजा——**

**कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।**

बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मां हृदयम् ॥३१॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

## पञ्चमोऽङ्कः ॥

**अन्वय**—कामं प्रत्यादिष्टां मुनेः तनयां परिग्रहं न स्मरामि। तु बलवत् दूयमानं हृदयं मां प्रत्याययति इव।

**राजा—भले ही परित्यक्त (इस) मुनि-कन्या को मैं अपनी विवाहित स्त्री के रूप में स्मरण नहीं करता हूँ, किन्तु बहुत अधिक दुःखित होता हुआ मेरा हृदय मुझको विश्वास सा दिला रहा है (कि यह मेरी पत्नी है) ॥३१॥**

**(सब का प्रस्थान।)**

**पंचम अंक समाप्त।**

**संस्कृत-व्याख्या**—कामं—मतमेतद् यत्, प्रत्यादिष्टां—परित्यक्ताम्, मुनेः—कण्वस्य, तनयां—पुत्रीम्, परिग्रहं—परिणीता पत्नी इयं मे इति, न स्मरामि—न विभावयामि। तु—किन्तु, बलवत्—अत्यधिकम्, दूयमानं—पीड्यमानम्, हृदयं—मम चेतः, मां—दुष्यन्तम्, प्रत्याययतीव—विश्वासमुत्पादयतीव यद् एषा मया परिणीतपूर्वेति। अत्रोत्प्रेक्षा विभावनाऽनुमानं चालंकाराः। प्रसङ्गनामकं विमर्शसन्ध्यङ्गं चास्ति। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **सोऽयंः**—वह वस्तु अर्थात् शकुन्तला। (२) **किं वृथा०**—व्यर्थ के तर्क से उसे क्यों खोजते हैं? अथवा—व्यर्थ के तर्क से क्या लाभ? उसे कोई भी उठा ले गया हो, हमें क्या करना? यह शकुन्तला के प्रति राजा के उपेक्षा-भाव को व्यक्त करता है। (३) **कामम्**—भले ही, मैं मानता हूँ, यह सत्य है कि। यह अव्यय है। टीकाकार राघवभट्ट ने कामम् का अर्थ अत्यधिक लिया है, परन्तु प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है। (४) **परिग्रहम्**—विवाहिता स्त्री। (५) **प्रत्याययति०**—दुःखित होता हुआ हृदय मुझे विश्वास सा दिला रहा है कि यह मेरी पत्नी है। प्रत्याययति—प्रति+इ+णिच्+लट्। प्रति+इ धातु का अर्थ जानना है। यहाँ णिजन्त रूप है। बोधन अर्थ होने के कारण णौ गमिरबोधने (२-४-४६) सेइ को गम् आदेश नहीं हुआ। गतिबुद्धि० (१-४-५२) से माम् में द्वितीया। (६) यहाँ पर प्रत्यायतीव में इव के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। पीडा के कारण स्मृति के न होते हुए भी पीडा होने से विभावना है। विश्वास उत्पन्न करने का कारण हृदय की पीडा है, अतः अनुमान अलंकार है। गुरु कण्व

---

पाठभेद—११७. नि० मे (मेरा)।

की पुत्री इस प्रकार गुरु के उल्लेख के कारण प्रसंग नामक विमर्श सन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—प्रसङ्गो गुरुकीर्तनम् (सा० दर्पण ६-१०४)। शकुन्तला के निराकरण से कथा की समाप्ति हो जाती है, परन्तु राजा का चित्त-क्षोभ शकुन्तला की प्राप्ति की ओर उसको अग्रसर करता है, अतः वह बिन्दु है।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ॥**

---

## षष्ठोऽङ्कः

**(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद् बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च।)**

**१. रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम्?** [अले कुम्भीलआ, कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीअए अंगुलीअए शमाशादिए?]

### षष्ठ अंक प्रारम्भ

**(तदनन्तर राजा के साले कोतवाल का और उसके पीछे बेड़ी पड़े हुए एक पुरुष को लिए हुए दो सिपाहियों का प्रवेश।)**

**दोनों सिपाही—(मारते हुए) अरे चोर, बता—तूने मणि-जटित और जिसमें (राजा का) नाम खुदा हुआ है ऐसी यह राजा की अँगूठी कहाँ पाई?**

**२. पुरुषः—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी।** [पशीदन्तु भावमिश्शे। हगे ण ईदिशकम्मकाली।]

**पुरुष—(भय का नाट्य करता हुआ) आप लोग प्रसन्न हों। मैं ऐसा काम नहीं करता।**

**३. प्रथमः—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः?** [किं शोहणे बम्हणेत्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे?]

---

पाठभेद—२. का० नाहमीदृशा० [ण हगे ईदिशा०] (मैं नहीं)।

**पहला सिपाही—तो क्या 'तू सुयोग्य ब्राह्मण है' ऐसा समझकर राजा ने (तुझे) उपहार दिया है?**

### टिप्पणी

(१) **नागरिकः**—कोतवाल। नगर की रक्षा में नियुक्त प्रधान अधिकारी। नगरं रक्षति अथवा नगरे नियुक्तः, नगर+ठक् (इक)। रक्षा अर्थ में रक्षति (४-४-३३) से ठक् अथवा नियुक्त अर्थ में तत्र नियुक्तः (४-४-६९) से ठक्। ( २ ) **श्यालः**—साला, पत्नी का भाई। इसको ही राजश्याल, राष्ट्रिय, राष्ट्रियश्याल अथवा शकार भी कहा जाता है। यह नीच कुल की स्त्री से उत्पन्न हुआ व्यक्ति होता था। शकारी बोली का प्रयोग करने के कारण इसका नाम शकार पड़ा है। 'शकारभाषाप्रायत्वात् शकारो राष्ट्रियः स्मृतः।' साहित्यदर्पण (३-४४) में शकार का लक्षण दिया है—मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः। सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः॥ नीच कुल का होने पर भी राजा का साला होने के कारण वह कोतवाल जैसा उच्च अधिकारी हो गया है। मृच्छकटिक नाटक में शकार का मुख्य रूप से वर्णन है। ( ३ ) **कुम्भीरक**—चोर। यह शब्द दो प्रकार से बन सकता है:—(क) कु+भिद्। कु=पृथ्वी, इसका गौण अर्थ मिट्टी की दीवार है, उसको तोड़ने वाला अर्थात् दीवार तोड़कर घर में घुसने वाला, चोर। निपातन से यह रूप बना है। (ख) कुम्भीरक का मुख्य अर्थ मगर है। उसके चोरी के स्वभाव के कारण चोर का भी नाम गौणरूप से यह हो गया। कुम्भिनं हस्तिनम् ईरयति इति कुम्भीरः, कुम्भिन्+ईर्+अण् (अ)। कुम्भीर से स्वार्थ में क प्रत्यय। जो हाथी को जल में से भगा देता है, मगर। ( ४ ) **मणिबन्धनो०**—वह अँगूठी एक बड़ी मणि से जड़ी हुई थी और उस पर राजा का नाम खुदा हुआ था। मणेः बन्धनं यत्र तत् मणिबन्धनम्, उत्कीर्णं नामधेयं यत्र तत्, मणिबन्धनं च तत् उत्कीर्णनामधेयम्, कर्मधारय। जिस पर मणि जड़ी हुई है और राजा का नाम खुदा हुआ है। पाठभेद—महामणिभासुरम्—बड़ी मणि से सुशोभित। इस पाठ से अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। ( ५ ) **पुरुषः**—धीवर मागधी बोली बोलता है। भरत का कथन है कि राक्षसों आदि की भाषा मागधी होती है। मागधी राक्षसादेः स्यात्। मागधी की विशेषता है कि उसमें र को ल बोला जाता है और स या ष को श तथा कर्ता एकवचन एकारान्त होता है। (६) **नाटितकम्**—अभिनय करना। (७) **भावमिश्राः**—भाव का अर्थ मान्य है। मान्यो भावस्तु वक्तव्यः। मिश्र शब्द आदरसूचक है। आदरणीय सज्जनो। ( ८ ) **ईदृशकर्म०**—अर्थात् मैं चोरी जैसा कुकर्म नहीं करता हूँ। ( ९ ) **कृत्वा**—मन में विचार करके। प्राकृत कलिअ का कृत्वा और कलयित्वा दोनों संस्कृत रूप हो सकते हैं। कृत्वा यह संस्कृत रूप अधिक प्रचलित है। (१०) **प्रतिग्रहः**—उपहार, दान।

**४. पुरुषः—शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरा-**

लवासी धीवरः। [शुणध दाणिं। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले।]

**पुरुष—जरा सुनिए। मैं शुक्रावतार (नामक तीर्थ) पर रहने वाला धीवर हूँ।**

५. द्वितीयः—पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्टा ? [पाडच्चला, किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा ?]

**दूसरा सिपाही—अरे चोर, क्या हम (तेरी) जाति पूछ रहे हैं ?**

६. श्यालः—सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनमन्तरा प्रतिबधान। [सूअअ, कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबन्धह।]

**कोतवाल—सूचक, इसको सारी बात क्रमशः कहने दो। इसको बीच में मत टोको।**

७. उभौ—यदावुत्त आज्ञापयति। कथय। [जं आवुत्ते आणवेदि। कहेहि।]

**दोनों सिपाही—जो आपकी आज्ञा। तू (धीवर) अपनी बात कह।**

### टिप्पणी

(१) **शक्रावतारा०**—शक्रावतार नामक तीर्थ पर रहने वाला। **अवतार**—अवतरति अस्मिन् इति। अव+तृ+घञ् (अ)। यहाँ पर **अवे** तृस्त्रोर्घञ् (३-३-१२०) से घञ् प्रत्यय। अवतार का अर्थ तीर्थ और **घाट** है। शक्रस्य अवतारः, यह नाम होने के कारण नित्य-समास है। (२) **धीवरः**—मल्लाह। कैवर्तो दासधीवरौ, इत्यमरः। (३) **पाटच्चर**—चोर। यह शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) पाटयन् चरति इति, पृषोदरादित्वात् साधुः। जो दीवार आदि में सेंध मारता हुआ विचरण करता है। पाटयच्चर के य का लोप पृषोदरादित्वात्। (ख) पटयन् चरति इति पटच्चरः, पटच्चर एव पाटच्चरः, स्वार्थे अण्। जो वस्त्र से अपने मुखादि को ढककर रात्रि में घूमता है। (४) **सूचक**—एक सिपाही का नाम है। (५) **कथयतु**—इसको कहने दो। (६) **मा प्रतिबधान**—इसको बीच में मत टोको। यहाँ पर निषेधार्थक मा है, माङ् नहीं, अतः लोट् लकार है। (७) **आवुत्तः**—जीजा, बहिन के पति को आवुत्त कहते हैं। भगिनीपतिरावुत्तः, इत्यमरः। यहाँ पर यह केवल आदरसूचक शब्द है।

८. पुरुषः—अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः

कुटुम्बभरणं करोमि। [अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि।]

पुरुष—मैं जाल-काँटा आदि मछली पकड़ने के साधनों से अपने कुटुम्ब का पालन करता हूँ।

९. **श्यालः**—(विहस्य) विशुद्ध इदानीमाजीवः। [विसुद्धो दाणिं आजीवो।]

**कोतवाल**—(हँसकर) वस्तुतः बहुत पवित्र आजीविका है।

१०. **पुरुषः**—

**सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।**
**पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥१॥**

[शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए॥]

**अन्वय**—विनिन्दितं यत् कर्म किल सहजम्, तत् खलु न विवर्जनीयम्। पशुमारणकर्मदारुणः श्रोत्रियः अनुकम्पामृदुः एव।

**पुरुष**—निन्दित भी जो काम वस्तुतः वंश-परम्परागत हैं, उसको नहीं छोड़ना चाहिए। (यज्ञ में) पशुहत्यारूपी कर्म से क्रूर भी वेदपाठी ब्राह्मण वस्तुतः दयाभाव से कोमल-हृदय होता ही है॥ १॥

**संस्कृत-व्याख्या**—विनिन्दितम्—विगर्हितमपि, यत् कर्म—यत् कार्यम्, किल—निश्चयेन, सहजं—स्वाभाविकं वंशपरम्परागतमित्यर्थः, तत्—तत् कर्म, खलु—अवश्यम्, न विवर्जनीयं—न परित्याज्यम्। पशुमारणकर्मदारुणः—पशूनां यज्ञियपशूनां मारणरूपं हननरूपं यत् कर्म कार्यं तेन दारुणः क्रूरोऽपि, श्रोत्रियः—वेदपाठी ब्राह्मणः, अनुकम्पामृदुः एव—अनुकम्पया दयया मृदुः कोमलहृदय एव भवति। अत्रार्थान्तरन्यासोऽप्रस्तुतप्रशंसा विषमं चालंकाराः। सुन्दरी वृत्तम्। तल्लक्षणम्—'अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभरा ल्गौ यदि सुन्दरी मता'।

**टिप्पणी**

(१) **जालोद्गाला०**—जालानि च उद्गालाश्च जालोद्गालम्।

---

पाठभेद—१०. का० भर्तः मा एवं भण [भट्टा मा एव्वं भण] (स्वामी, ऐसा मत कहिए), इत्यधिकः पाठः।

समाहार द्वन्द्व, जातिरप्राणिनाम् (२-४-६) से एकवचन। जालोद्गालम् आदिर्येषां तैः, बहुव्रीहि।। उद्गाल—उद्+गॄ+घञ् (अ)। यहाँ पर उन्न्योर्ग्रः (३-३-२९) से घञ् प्रत्यय और अचि विभाषा (८-२-२१) से र् को वैकल्पिक ल्। उद्गाल का अर्थ काँटा है, जिससे मछली फँसाई जाती है। ( २ ) **मत्स्य०**—मत्स्यानां बन्धनस्य उपायैः, तत्पुरुष। ( ३ ) **विशुद्धः**—यह व्यंग्य के रूप में कहा गया है, क्योंकि जीव-हत्या के कारण धीवर नीच जाति में गिना जाता है। ( ४ ) **सहजम्**—स्वाभाविक, जन्मसिद्ध। सह जातम् इति, सह+जन्+ड (अ)। अपना जन्मसिद्ध कार्य कुछ सदोष भी हो तो उसे नहीं छोड़ना चाहिए। इस भाव की ये सूक्तियाँ हैं—(क) सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् (गीता १८-४८)। (ख) श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। (गीता ३-३५)। (ग) श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।। (गीता १८-४७)। (घ) वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः। परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः।। (मनु० १०-९७)। ( ५ ) **विनिन्दितम्**—जीवहिंसा आदि के कारण निन्दित। ( ६ ) **पशुमारण०**—पशु-हत्यारूपी कर्म के कारण क्रूर। पशूनां मारणं यत् कर्म तेन दारुणः, तत्पुरुष। ( ७ ) **श्रोत्रियः**—वेदपाठी ब्राह्मण। छन्दोऽधीते इति श्रोत्रियः। श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते (५-२-८४) से श्रोत्रिय निपातन। अथवा इस सूत्र से छन्दस् को श्रोत्र आदेश और घ प्रत्यय, श्रोत्र+घ (इय)=श्रोत्रिय। जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्याभ्यासी भवेद् विप्रः श्रोत्रियस्त्रिभिरेव हि।। (पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड, अ० ११६)। एकां शाखां सकल्पां वा षड्भिरङ्गैरधीत्य च। षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित्।। (दानकमलाकार)। ( ८ ) इस श्लोक में उत्तरार्ध विशेष के द्वारा सामान्य पूर्वार्ध का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। विशेष धीवर के प्रस्तुत होने पर पूर्वार्ध में सामान्य वर्णन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। दयालु श्रोत्रिय के द्वारा पशु-हत्यारूपी क्रूरकर्म के कारण विषम अलंकार है।

**विशेष**—इस श्लोक से ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में यज्ञों में पशु-बलि प्रचलित थी। वस्तुतः यज्ञों में पशु-बलि सर्वथा वेदविरुद्ध है। अग्नीषोमीयं पशुमालभेत इत्यादि उक्तियाँ पशु-पालन और रक्षण की सूचक हैं, न कि उनकी हिंसा की। यज्ञों में पशु-बलि यह मांसाहारी वाममार्गियों की देन है, अतः त्याज्य है। यज्ञ को हिंसा से रहित होने के कारण ही अध्वर (अ-नहीं, ध्वर-हिंसा) कहा गया है। इस श्लोक में कालिदास यज्ञ में हिंसा का समर्थन करते हैं, यह कहना निःसार है। इस श्लोक का यह भाव है कि पशु-हत्या करने वाला भी ब्राह्मण जिस प्रकार घृणित दृष्टि से नहीं देखा जाता, उसी प्रकार मुझ धीवर का भी मत्स्य-हत्या दोष क्षम्य है।

Funding by IKS-MoE

**११. श्यालः—ततस्ततः ? [तदो तदो ?]**

कोतवाल—हाँ, तब ?

१२. पुरुषः—एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत्। तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुञ्च वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः [एक्कर्शिश दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव। तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेह वा मुंचेह वा। अअं शे आअमवुत्तंते।]

पुरुष—एक दिन मैंने एक रोहू मछली के टुकड़े-टुकड़े किए। उसके पेट के अन्दर रत्नों से चमकती हुई यह अँगूठी मैंने देखी। बाद में मैं उसको बेचने के लिए (इधर-उधर) दिखा रहा था कि आप लोगों ने मुझे पकड़ लिया। मुझे मारिए या छोड़िए। यह इस (अँगूठी) के मिलने की कहानी है।

१३. श्यालः—जानुक, विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः। [जाणुअ, विस्सगन्धी गोहादी मच्छबन्धो एव्व णिस्संअअं। अंगुलीअअदंसणं से विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्व गच्छामो।]

कोतवाल—जानुक, (इसके शरीर से) कच्चे मांस की गन्ध आ रही है, अतः यह निःसन्देह गोह खाने वाला धीवर ही है। इसको यह अँगूठी कैसे मिली ? यही विचारणीय है। अच्छा, हम राजकुल को ही चलते हैं।

१४. रक्षिणौ—तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक। [तह। गच्छ अले गंडभेदअ।]

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

दोनों सिपाही—जैसी आपकी आज्ञा। अरे गिरहकट, चल।

(सब घूमते हैं।)

---

पाठभेद—१२. का० प्रेक्षे तावदिदं [पेक्खामि दाव एदं] (देखो तो यह)। का० दृष्टम् [देक्खिअं] (देखा)। १४. का० ग्रंथिभेदक [गण्ठिभेदअ] (गिरहकट)।

## टिप्पणी

( १ ) **रोहितमत्स्यः**—रोहू नामक मछली। ( २) **कल्पितः**—टुकड़े-टुकड़े किया। क्लृप्+क्त (त)। ( ३ ) **आगम०**—मिलने की कहानी या मिलने का विवरण है। ( ४ ) **जानुक**—दूसरे सिपाही का नाम है। ( ५ ) **विस्रगन्धी**—कच्चे मांस की गन्ध वाला। विस्रस्य गन्धः अस्ति यस्य सः, मत्वर्थ में इनि। अमरकोश 'विस्रं स्यादामगन्धि यत्' के अनुसार विस्र शब्द का ही अर्थ है आमगन्धी अर्थात् कच्चे मांस की गन्ध वाला। अतः विस्रगन्धी में गन्ध शब्द अनावश्यक है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में विस्र शब्द का अर्थ केवल कच्चा मांस रहा होगा और अमरसिंह के समय में इसका अर्थ कच्चे मांस की गन्धवाला हो गया होगा। अतः कालिदास का प्रयोग ठीक है। ( ६ ) **गोधादी**—गोह खाने वाला । अधिकांश टीकाकारों ने इसे अपाणिनीय प्रयोग घोषित किया है, क्योंकि गोधा शब्द जातिवाचक है, अतः ताच्छील्य अर्थ में सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (३-२-७८) से णिनि प्रत्यय नहीं हो सकता है। इसलिए कवि की विवक्षा या प्रमादवश णिनि माना है। यह प्रयोग निम्नलिखित रूप से बन सकता है, अतः इसको अपाणिनीय कहना असंगत है। पौनःपुन्येन गोधाम् अत्ति इति गोधादी, गोधा+अद्+णिनि। यहाँ पर बहुलमाभीक्ष्ण्ये (३-२-८१) से पौनःपुन्य अर्थात् बार-बार अर्थ में णिनि। यह सूत्र जातिवाचक शब्द पहले रहने पर भी णिनि करता है। बार-बार गोह को खाने वाला। कुछ लोगों ने गोधादी को अपाणिनीय मानकर पाठान्तर 'गोघाती' (गाय की हत्या करनेवाला) रखा है। परन्तु यह पाठ अनुचित है। धीवर गोघाती नहीं होता। ( ७ ) **मत्स्यबन्धः**—धीवर, मछुआ। मत्स्यान् बध्नाति इति, मत्स्य+बन्ध्+अण् (अ)। ( ८ ) **अंगुलीयक०**—अँगूठी कैसे मिली, यही विचारणीय है। ( ९ ) **गण्डभेदक**—गिरहकट, चोर। गण्ड अर्थात् गाँठ को काटने वाला। पाठभेद—ग्रन्थिभेदक है। दोनों का अर्थ एक ही है।

**१५. श्यालः—सूचक, इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रामामि।** [ सूअअ, इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिवालह जाव इमं अंगुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि। ]

**कोतवाल—सूचक, इस नगर-द्वार पर सावधानी से इस (धीवर) की**

---

पाठभेद—१५. का० भर्त्रे ([illegible])। का० प्रतीष्य (प्राप्त करके)। नि० निष्क्रमामि (निकलकर आता हूँ)।

देख-भाल रखना। जब तक मैं इस अँगूठी के मिलने का पूरा विवरण महाराज को बताकर और उनको आज्ञा प्राप्त करके आता हूँ।

१६. **उभौ**—प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय। [पविशदु आवुत्ते शामिपशादश्श।] (इति निष्क्रान्तः श्यालः।)

**दोनों सिपाही**—आप महाराज का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए अन्दर जाइए। (कोतवाल का प्रस्थान।)

१७. **प्रथमः**—जानुक, चिरायते खल्वावुत्तः। [जाणुअ, चिलाअदि क्खु आवुत्ते।]

**पहला सिपाही**—जानुक, कोतवाल जी देर कर रहे हैं।

१८. **द्वितीयः**—नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः। [णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो।]

**दूसरा सिपाही**—राजाओं से वस्तुतः (उनके) अवकाश के समय ही मिला जाता है।

१९. **प्रथमः**—जानुक, स्फुरतो मम हस्तावस्य वधार्थं सुमनसः पिनद्धुम्। [जाणुअ, फुल्लन्ति मे हत्था इमश्श वहश्श शुमणा पिणद्धुं।] (इति पुरुषं निर्दिशति।)

**पहला सिपाही**—जानुक, मेरे हाथ इसके वध के लिए इसको फूलों की माला पहनाने के लिए फड़क रहे हैं। (धीवर की ओर संकेत करता है।)

२०. **पुरुषः**—नार्हति भावोऽकारणमारणं भावयितुम्। [ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भविदुं।]

**पुरुष**—आपके लिए यह उचित नहीं है कि बिना कारण के ही मुझे मारने का विचार करें।

२१. **द्वितीयः**—(विलोक्य) एष नः स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि,

---

पाठभेद—१९. का० वधस्य (वध के)। २०. का० अकारणमारणो भवितुम् [० मालणे] (अकारण हत्या करने वाला होना)। २१. का० नौ (हम दोनों का)। का० प्रतीष्य (प्राप्त करके)।

शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि। [एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देखीअदि। गिद्धबली भविश्शशि, शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि।]

दूसरा सिपाही—(देखकर) यह हमारे स्वामी पत्र हाथ में लिए, राजा का आदेश प्राप्त करके, इधर की ओर मुँह किए हुए दिखाई पड़ रहे हैं। तू (अब) या तो गिद्धों का भोजन बनेगा, या (अपने भक्षक) कुत्ते का मुंह देखेगा।

### टिप्पणी

( १ ) **गोपुरद्वारे**—नगर के मुख्य-द्वार पर। गोपुर का अर्थ है नगर का मुख्य द्वार। पुरद्वारं तु गोपुरम्, इत्यमरः। गोपुर शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) गोपायति पुरम् इति गोपुरम्। गुप्+उरच् (उर)। जो नगर की रक्षा करता है। (ख) गवां पुरम्, जहाँ पर गौएँ बाँधी जाती हैं। गोपुर शब्द का अर्थ केवल नगर भी है, अतः अर्थ होगा—नगर के मुख्य द्वार पर। पुरमात्रेऽपि गोपुरम्, इति रत्नकोषः। ( २ ) **अप्रमत्तौ**—सावधानी से। प्रमत्त—प्र+मद्+क्त। यहाँ पर न ध्याख्यापॄ० (८-२-५७) नियम के कारण त को न नहीं हुआ। न प्रमत्तौ अप्रमत्तौ। (३) **प्रतिपालयतम्**—प्रतीक्षा करो। प्रति+पालि का अर्थ प्रतीक्षा करना है। ( ४ ) **भर्त्रे**—कर्मणा यमभिप्रैति० (१-४-३२) से संप्रदान संज्ञा और संप्रदान में चतुर्थी। ( ५ ) **प्रतीक्ष्य**—प्रतीक्षा करके अर्थात् प्राप्त करके। प्रति+ईक्ष्+ल्यप्। पाठभेद—प्रतीष्य (प्राप्त करके)। प्रति+इष् का अर्थ ग्रहण करना है। ( ६ ) **स्वामिप्रसादाय**—महाराज की कृपा प्राप्त करने के लिए। क्रियार्थोपपदस्य० (२-३-१४) से चतुर्थी। (७) **चिरायते**—चिर इव आचरतीति, चिर+क्यङ+लट्। विलम्ब कर रहा है। ( ८ ) **सुमनसः०**—फूलों की माला पहनाने का। प्राचीन प्रथा थी कि जिसको मृत्यु का दण्ड दिया जाता था, उसे वध से पूर्व करवीर आदि फूलों की माला पहनाई जाती थी। मृच्छकटिक आदि में भी ऐसा उल्लेख है—दत्तकरवीरदामा (मृच्छ० १०-२), पितृवनसुमनोभिर्वेष्टितं० (मृ० १०-३)। (९) **अकारण०**—बिना कारण के ही मारने वाला। अकारणे मारणः, सुप्सुपा से समास। मारयतीति मारणः, हत्यारा। मृ+णिच्+ल्युट्=मारणः। (१०) **गृध्रबलिः०**—तुझे गिद्ध खाएँगे या कुत्ते। प्राचीन प्रथा थी कि मृत्यु-दण्ड-प्राप्त व्यक्ति को फाँसी पर लटकाया जाता था और उसके शव को गिद्ध खाते थे। अथवा ऐसे जीवित व्यक्ति को ही आधा जमीन में गाड दिया जाता था और उसको खाने के लिए कुत्ते छोड़े जाते थे। वे उस जीवित का ही मांस खा जाते थे और वह व्यक्ति मर जाता था।

(प्रविश्य)

२२. **श्यालः**—सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी । उपपन्नः खल्वस्याङ्गुलीयकस्यागमः । [सूअअ, मुंचेदु एसो जालोअजीवी । उववण्णो क्खु से अंगुलीअअस्स आअमो ।]

(प्रविष्ट होकर) **कोतवाल**—सूचक, इस धीवर को छोड़ दो। इस अँगूठी के मिलने की बात सच है।

२३. **सूचकः**—यथावुत्तो भणति । [जह आवुत्ते भणादि ।]

**सूचक**—जैसी आपकी आज्ञा।

२४. **द्वितीयः**—एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः । [एशे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते । ]

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति ।)

**दूसरा सिपाही**—यह यमलोक को पहुँचकर फिर लौट आया है।

(धीवर को बन्धन से मुक्त करता है।)

२५. **पुरुषः**—(श्यालं प्रणम्य) भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः ? [भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे ?]

**पुरुष**—(कोतवाल को प्रणाम करके) स्वामी, कहिए मेरी आजीविका कैसी है?

२६. **श्यालः**—एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः । [एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो ।] (इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति ।)

**कोतवाल**—महाराज ने अँगूठी के बराबर मूल्य का यह पुरस्कार भी दिया है।

(धीवर को धन देता है।)

२७. **पुरुषः**—(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भर्तः, अनुगृहीतोऽस्मि । [भट्टा, अणुग्गहिद म्हि ।]

**पुरुष**—(प्रणामपूर्वक लेकर) स्वामी, मैं आपका अनुगृहीत हूँ।

२८. **सूचकः**—एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः । [एशे णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे ।]

सूचक—यह वस्तुतः अनुग्रह है कि इसको शूली (फाँसी के तख्ते) पर से उतार कर हाथी की पीठ पर बैठा दिया है।

**२९. जानुकः—आवुत्त, पारितोषिकं कथयति, तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम्।** [आवुत्त, पालिदोशिअं कहेदि, तेण अंगुलीअएणं भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं।]

जानुक—श्रीमन्, इस पुरस्कार से विदित होता है कि वह अँगूठी महाराज को बहुत प्रिय है।

### टिप्पणी

(१) **उपपन्नः**—सत्य सिद्ध हुआ है। उप+पद्+क्त। (२) **यमसदनं०**—यमलोक को पहुँच कर मानो लौट आया है। अर्थात् हमारा विचार था कि इसे अवश्य मृत्यु-दण्ड प्राप्त होगा, परन्तु यह निर्दोष छूट गया है। (३) **अथ कीदृशः०**—कोतवाल ने वाक्यसंख्या ९ में धीवर पर व्यंग्य किया था कि उसकी आजीविका बहुत पवित्र है। अब निर्दोष सिद्ध होने पर धीवर व्यंग्य का उत्तर पूछता है कि अब कहिए, मेरी आजीविका कैसी है? कोतवाल के व्यंग्य पर यह व्यंग्य है। कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है कि अब मेरी आजीविका कैसे चलेगी। परन्तु यह अर्थ क्लिष्ट-कल्पना है। उपर्युक्त वाक्य इस अर्थ की पुष्टि नहीं करता है। (४) **अंगुलीयक०**—अँगूठी के मूल्य के बराबर मूल्य का। मूल्य—मूलेन आनाम्यं मूल्यम्, मूल+यत् (य)। नौवयोधर्म० (४-४-९१) से यत्। मूल अर्थात् लागत से बढ़ा हुआ। मूल्य लागत से अधिक रखा जाता है। संमित—समान, तुल्य, बराबर। (५) **प्रसादः**—पुरस्कार। प्र+सद्+घञ्। (६) **दापितः**—मेरे द्वारा दिलवाया है। दा+णिच्+क्त। (७) **हस्तिस्कन्धे०**—हाथी पर बैठना गौरव और महत्त्व का सूचक है। (८) **पारितोषिकं०**—पुरस्कार से ज्ञात होता है। परितोष+ठञ्=पारितोषिक। प्रयोजनम् (५-१-१०९) से ठञ्। पारितोषिक अर्थात् हृदय को सन्तोष देने वाला। पाठभेद—परितोषं कथय, पुरस्कार के विषय में कहो। यह पाठ अस्पष्ट है।

**३०. श्यालः—न तस्मिन् महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत्।** [ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण

---

पाठभेद—२९. नि० परितोषं कथय [परितोशं कहेहि] (पुरस्कार के विषय में कहो)।

भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो । मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जस्सुणअणो आसि । ]

कोतवाल—मैं समझता हूँ कि उस (अँगूठी) में बहुमूल्य रत्न महाराज को अधिक प्रिय नहीं हैं। (अपितु) उसके दर्शन ने महाराज को किसी इष्ट व्यक्ति की याद दिलाई है। स्वभाव से ही गम्भीर होने पर भी क्षण भर के लिए उनकी आँखों में आँसू आ गए थे।

**३१. सूचकः—सेवितं नामावुत्तेन ।** [शेविदं णाम आवुत्तेण ।]

सूचक—आपने वस्तुतः (महाराज की) सेवा की है।

**३२. जानुकः—ननु भण । अस्य कृते मात्स्यकभर्तुरिति।** [णं भणाहि। इमश्श कए मच्छिअभत्तुणो त्ति ।]

**(इति पुरुषमसूयया पश्यति ।)**

जानुक—यह कह कि इस धीवर के लिए (महाराज की सेवा की है।)

(धीवर को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है।)

**३३. पुरुषः—भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु ।** [भट्टालक, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु ।]

पुरुष—स्वामी, इसमें से आधा आप लोगों के लिए (पूजार्थ) फल के मूल्यस्वरूप हो।

**३४. जानुकः—एतावद् युज्यते ।** [एत्तके जुज्जइ ।]

जानुक—इतना ठीक है।

**३५. श्यालः—धीवर, महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते । तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः ।** [धीवर, महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो । कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छीअदि । ता सोण्डिआपणं एव्व गच्छामो ।]

**(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)**

---

पाठभेद—३५. का० इति निष्क्रान्ताः सर्वे, इति नास्ति ।

## इति प्रवेशकः।

**कोतवाल**—धीवर, तुम अब हमारे बहुत बड़े प्रिय मित्र हो गए हो। हमारी पहली मित्रता शराब को साक्षी करके होनी चाहिए। अतः हम शराब बेचने वाले की दूकान पर चलते हैं। **(सब का प्रस्थान।)**

**प्रवेशक समाप्त।**

### टिप्पणी

(१) **दर्शनेन०**—अँगूठी के दर्शन ने राजा को किसी इष्ट व्यक्ति की याद दिलाई। यह प्रेरणार्थक प्रयोग है। सामान्य (अप्रेरणार्थक) प्रयोग होगा—अभिमतः जनः स्मृतः। प्रेरणार्थक—दर्शनेन अभिमतः जनः स्मारितः। (२) **अभिमतः**—इष्ट। अभि+मन्+क्त। मतिबुद्धि० (३-२-१८८) से वर्तमान अर्थ में क्त। क्तस्य च वर्तमाने (२-३-६७) से भर्तुः में षष्ठी। (३) **स्मारितः**—स्मृ+णिच्+क्त। (४) **पर्यश्रु०**—आँसू भरे नेत्रों वाला। परिगतानि अश्रूणि ययोः ते पर्यश्रुणी तादृशे नयने यस्य सः। बहु०। पाठभेद—(क) पर्युत्सुकनयनः, खिन्न नेत्रों वाला। ऐसा प्रयोग अप्रचलित है। (ख) पर्युत्सुकमनाः—खिन्न मन वाला। (५) **मात्स्यिकभर्तुः०**—वस्तुतः इस धीवर के लिए आपने राजा की सेवा की है, क्योंकि पुरस्कार इसे ही मिला है। मात्स्यिक—मत्स्यान् घ्नन्ति इति मात्स्यिकाः, मत्स्य+ठक् (इक)। पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति (४-४-३५) से ठक्। तेषां भर्तुः, तत्पु०। मछुओं के स्वामी। पाठभेद—मत्स्यशत्रोः, मछली मारने वाले के लिए। (६) **असूयया०**—पुरस्कार धीवर को मिला है, अतः ईर्ष्या हुई है। (७) **सुमनोमूल्यम्**—आप लोगों ने मेरा जीवन बचाया है, अतः पूज्य हैं। आपकी पूजा के लिए फूल चाहिए, उनके स्थान पर फूलों के मूल्य-स्वरूप यह आधा धन आपको देता हूँ। यह धीवर का नम्र निवेदन है। यहाँ सुमनस् का अर्थ अच्छा मन, सद्भाव, दयालुता भी हो सकता है। आपकी दयालुता का यह मूल्य दे रहा हूँ। पाठभेद—सुरामूल्यम्, शराब के लिए मूल्य। (८) **महत्तरः**—बहुत बड़े। अतिशयेन महान्, महत्+तरप्। औरों की अपेक्षा बड़े। यहाँ बौद्धिक तुलना है। (९) **कादम्बरी०**—मदिरा को साक्षी रखकर। कादम्बरी—कुत्सितम् अम्बरं वस्त्रं यस्य सः कदम्बरः बलरामः, तस्य इयम्, कदम्बर+अण्+ङीप्। पाठभेद—कादम्बरीसखित्वमस्माकं प्रथमशोऽभिमतमिष्यते—हमारी यह प्रथम बार इष्ट मित्रता मदिरा के साथ हो। (१०) **शौण्डिकापणम्**—शराब बेचने वाले की दूकान पर। शौण्डिक—शुण्डा सुरा पण्यम् अस्य सः, शुण्डा+ठक् (इक)। शराब बेचने वाला। (११) **प्रवेशक**—विष्कम्भक के तुल्य यह भी भूत और भावी घटना का सूचक होता है। इसके पात्र निम्न कोटि के व्यक्ति होते हैं और उनकी भाषा प्राकृत ही होती है। इसका लक्षण है—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। अंकद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥ (सा० दर्पण ६-५७)।

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः ।)

३६. सानुमती——निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसांनिध्यं यावत् साधुजनस्याभिषेककाल इति । साम्प्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि । मेनकासंबन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला । तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वाऽस्मि । (समन्तादवलोक्य) किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते । अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम् । किन्तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः । भवतु, अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये ।

[णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिव्वत्तिणिज्जं अच्छरातित्थसण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति । संपदं इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरिस्सं । मेणआसंबन्धेण सरीरभूदा मे सउन्दला । ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठपुव्वम्हि । किं णु क्खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारम्भं विअ राअउलं दीसइ । अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं । किं दु सहीए आदरो मए माणइदव्वो । होदु, इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं ।]

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता ।)

(तदनन्तर विमान से सानुमती नामक अप्सरा का प्रवेश ।)

**सानुमती**—जब तक सज्जनों के स्नान का समय है, तब तक अप्सरातीर्थ पर बारी-बारी से वहाँ उपस्थित रहने का जो नियम है, वह मैंने पूरा कर लिया है। अब इस राजर्षि (दुष्यन्त) का हाल मैं स्वयं देखूँगी। मेनका से उसका संबन्ध होने के कारण शकुन्तला मेरे शरीर के एक भाग के तुल्य है और उसने अपनी पुत्री के लिए मुझसे पहले से कहा हुआ है (कि मैं उसके लिए कुछ करूँ)। (चारों ओर देखकर) क्या बात है कि (वसन्त) ऋतु का उत्सव उपस्थित होने पर भी राजपरिवार में उत्सव का प्रारम्भ ही नहीं

Funding by IKS-MoE

दिखाई पड़ रहा है। मेरे अन्दर सामर्थ्य है कि मैं ध्यान से ही सब कुछ जान सकूं, परन्तु मुझे अपनी सखी की प्रार्थना का आदर करना चाहिए। अच्छा, मैं अन्तर्धान होने की विद्या से अदृश्य रहती हुई इन दोनों उद्यानपालिकाओं के पास जाकर (सब आवश्यक समाचार) ज्ञात करूँगी।

(विमान से उतरने का अभिनय करके वहाँ खड़ी हो जाती है।)

### टिप्पणी

( १ ) **आकाशयानेन**—विमान से। यान—याति अनेन इति, या+ल्युट् (अन)। जिसके द्वारा जाते हैं, सवारी। इसका दूसरा अर्थ आकाशमार्ग भी हो सकता है। अप्सराओं में शक्ति होती थी कि वे आकाश में पक्षी की भाँति उड़ सकें। (२) **पर्याय०**—अप्सरातीर्थ की रक्षिकाएँ अप्सराएँ थीं, अतः क्रमशः उनकी ड्यूटी लगती थी कि वे देखें कि सज्जनों के स्नान के समय कोई दुर्घटना आदि न होने पावे। ( ३ ) **पर्याय**—परि+इ+घञ्। परावनुपात्यय इणः (३-३-३८) से घञ्। सांनिध्यम्—सामीप्य। यहाँ पर उपस्थिति अर्थ है? ( ४ ) **यावत्**—तक या जब तक अर्थ में है। ( ५ ) **उदन्तम्**—समाचार, हाल। उद्गतः अन्तः यस्य स। जिसका अन्त अर्थात् घटित होने का अवसर आ गया है, अतः समाचार। ( ६ ) **प्रत्यक्षी०**—अप्रत्यक्षं प्रत्यक्षं करिष्यामि इति। अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय। प्रत्यक्ष—अक्ष्णोः प्रति, प्रति+अक्षि+टच् (अ)। प्रतिपरसम० (गणसूत्र) से समासान्त टच् प्रत्यय। ( ७ ) **मेनकासंबन्धेन**—मेनका से संबन्ध होने के कारण। शकुन्तला मेनका की पुत्री है, अतएव। संबन्ध का अर्थ मित्रता भी है, तब अर्थ होगा—मेनका से मित्रता के कारण। ( ८ ) **शरीरभूता**—मेरी देह-स्वरूप अर्थात् मेरे शरीर के एक भाग के तुल्य। अशरीरं शरीरं भूता इति, यहाँ पर च्वि प्रत्यय का अर्थ मानकर श्रेण्यादयः कृतादिभिः (२-१-५९) से समास। श्रेण्यादि आकृतिगण है। अथवा भूत शब्द को तुल्यार्थक मानकर शरीरस्य भूता, तत्पुरुष समास। शरीर के सदृश। ( ९ ) **ऋतूत्सव**—वसन्तोत्सव के लिए है। (१०) **प्रणिधानेन**—ध्यानशक्ति के द्वारा। देवताओं और अप्सराओं आदि को शक्ति प्राप्त है कि वे अपनी ध्यानशक्ति से भूत और भविष्य को देख सकें। (११) **आदरः**—यहाँ प्रार्थना अर्थ में है। आ+दृ+अप् (अ)। (१२) **तिरस्करिणी०**—अन्तर्धान या अदृश्य होने की विद्या। अप्सराओं आदि को शक्ति प्राप्त है कि वे अदृश्य हो सकें। वे दूसरों को देख सकें, किन्तु दूसरे उन्हें न देख सकें।

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी।
अपरा च पृष्ठतस्तस्याः।)

**३७. प्रथमा—**

**आताम्रहरितपाण्डुर जीवित सत्यं वसन्तमासस्य ।**
**दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि ॥२॥**
[आतम्महरिअपंडुर जीविद सत्तं वसन्तमासस्स ।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि ॥२॥]

**अन्वय**—आताम्रहरितपाण्डुर, वसन्तमासस्य सत्यं जीवित, चूतकोरक दृष्टः असि। ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि।

**(तदनन्तर आम्रमंजरी को देखती हुई एक दासी का और उसके पीछे-पीछे दूसरी दासी का प्रवेश।)**

**पहली—कुछ लाल हरे और श्वेत वर्ण से शोभित, वसन्त मास के वस्तुतः जीवन-स्वरूप, हे आम्र के बौर, तुम (मुझे आज) दिखाई पड़े हो। हे ऋतु के मंगल-रूप, मैं तुमको प्रसन्न करने के लिए प्रणाम करती हूँ ॥२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—आताम्र०—हे लोहितहरितशुभ्रवर्णैः किंचित् समन्वित, वसन्तमासस्य—चैत्रमासस्य, सत्यं—वस्तुतः, जीवित—प्राणस्वरूप, त्वं दृष्टोऽसि—त्वं दर्शनपथं प्राप्तोऽसि। ऋतुमङ्गल—हे वसन्तर्तोः मङ्गलस्वरूप, त्वां प्रसादयामि—प्रीणयामि। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **चूताङ्कुरम्**—आम्र की मंजरी को, आम के बौर को। चूत का अर्थ आम है। (२) **आताम्र०**—आ का संबन्ध तीनों से है, अतः कुछ लाल, हरे और श्वेत वर्ण से युक्त। पाण्डुर शब्द का अर्थ है—कुछ पीलापन लिये हुए श्वेत वर्ण। पाण्डुरः शुक्लपीतकः। ताम्रश्चासौ हरितश्च पाण्डुरश्च, वर्णो वर्णेन (२-१-६९) से कर्मधारय समास। पुनः आ के साथ सुप्सुपा से समास। पाण्डुर—पाण्डु+र। नगपांसुपाण्डुभ्यश्च (वार्तिक) से मत्वर्थ में र प्रत्यय। (३) **जीवित**—जीवनस्वरूप, प्राणरूप। (४) **वसन्तमासस्य**—यहाँ पर वसन्त का प्रथम मास होने से चैत्र मास अर्थ है। चैत्र और वैशाख इन दो मासों का नाम वसन्त ऋतु है। मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू (यजुर्वेद १३-२५)। पाठभेद—वसन्तमासस्य जीवसर्वस्व—वसन्तमास के जीवनस्वरूप। (५) **चूतकोरक**—आम की कली या बौर। (६) **प्रसादयामि**—प्रसन्न करती हूँ। तुम प्रसन्न हो इसलिए प्रणाम करती हूँ, जिससे वसन्त मास मेरे लिए शुभ हो।

---

पाठभेद—३७: का० जीवितसर्वं [जीविदसव्वं] (जीवन के सर्वस्व)

**३८. द्वितीया——परभृतिके, किमेकाकिनी मन्त्रयसे ?** [परहुदिए, किं एआइणी मन्तेसि ?]

दूसरी——परभृतिका, तू अकेली क्या गुनगुना रही है ?

**३९. प्रथमा——मधुकरिके, चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति ।** [महुअरिए, चूदकलिअं देक्खिअ उन्मत्तिआ परहुदिआ होदि ।]

पहली——मधुकरिका, परभृतिका (कोयल) आम की कली को देखकर मतवाली हो जाती है । (मैं परभृतिका भी मतवाली हो रही हूँ ।)

**४०. द्वितीया——(सहर्षं त्वरयोपगम्य) कथमुपस्थितो मधुमासः ?** [कहं उवट्ठिदो महुमासो ?]

दूसरी——(हर्ष के साथ तुरन्त पास जाकर) क्या मधुमास (चैत्रमास) आ गया है ?

**४१. प्रथमा——मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम् ।** [महुअरिए, तव दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं ।]

पहली——मधुकरिका, तेरे मदयुक्त विलासों और गीतों का अब यही समय है । (तुझ भ्रमरी के मदयुक्त विलासों और गीतों का यही समय है ।)

**४२. द्वितीया——सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि ।** [सहि, अवलम्ब मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि ।]

दूसरी——सखी, जरा मुझे सहारा दो, मैं पैरों के अग्रभाग (पंजे) पर खड़ी होकर आम की कली को तोड़कर कामदेव की पूजा करूँ ।

### टिप्पणी

(१) परभृतिके——यहाँ पर ध्यान रखना चाहिए कि परभृतिका और मधुकरिका ये दोनों दो सखियों के नाम हैं । कवि ने ये शब्द साभिप्राय प्रयुक्त किए हैं । इन दोनों के दो-दो अर्थ हैं । एक दासी का नाम है, दूसरा परभृतिका का अर्थ कोयल है और मधुकरिका का अर्थ भ्रमरी । वसन्त में कोयल और भ्रमरी

की विशेषता होती है। ये दोनों वसन्त में अत्यन्त आनन्दित होती हैं। परभृतिका—परभृत एवं परभृतकः, स्वार्थ में क, स्त्री परभृतिका। ( २ ) **प्रथमा**—इस वाक्य को कहने वाली परभृतिका है। वह अपने ही नाम पर व्यंग्य करती है कि आम की कली को देखकर कोयल और मैं दोनों ही उन्मत्त हो रहे हैं। ( ३ ) **मधुकरिका**—सखी और भ्रमरी। मधुकर एव मधुकरकः, स्वार्थ में क, स्त्री मधुकरिका। यहाँ पर परभृतिका और मधुकरिका दोनों शब्द श्लिष्ट अर्थात् द्व्यर्थक हैं। ( ४ ) **मदविभ्रम०**—मदयुक्त विलास और मदयुक्त गीत। यहाँ पर मद का संबन्ध विभ्रम और गीत दोनों से है। विभ्रमाश्च गीताश्च विभ्रमगीताः, द्वन्द्व, मदेन विभ्रमगीताः, तत्पुरुष। कुछ टीकाकारों ने इसके ये अर्थ किए हैं—(क) मद से युक्त विलास-गीतों का, (ख) मद, विलास और गीतों का। ( ५ ) **अग्रपाद०**—पैर के पंजे पर खड़ी होकर। अग्रौ च तौ पादौ अग्रपादौ, कर्मधारय, अग्रपादयोः स्थिता, तत्पुरुष। ( ६ ) यहाँ दोनों सखियों के चित्रण में कवि की भेद-बुद्धि विशेष ध्यान देने योग्य है। परभृतिका हास्यप्रिय और बातूनी है, मधुकरिका शान्त प्रकृति की है।

**४३. प्रथमा**—यदि ममापि खल्वर्धमर्चनफलस्य। [जइ मम वि क्खु अद्धं अच्चणफलस्स।]

**पहली—यदि पूजा के फल का आधा भाग मुझे भी मिले तो (मैं ऐसा करूँगी)।**

**४४. द्वितीया**—अकथितेऽप्येतत् संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधास्थितं शरीरम्। (सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताङ्कुरं गृह्णाति।) अये, अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति। (इति कपोतहस्तकं कृत्वा)

त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव ॥३॥

[अकहिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुधाट्ठिदं शरीरं। अए, अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभंगसुरभी होदि।

तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहीदधणुअस्स।
पहिअजणजुवइलक्खो पंचाब्भहिओ सरो होहि ॥३॥]

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति)

**अन्वय**—हे चूतांकुर, त्वं मया गृहीतधनुषे कामाय दत्तः असि। पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरः भव।

**दूसरी—तुम्हारे बिना कहे भी ऐसा ही होता। क्योंकि हम दोनों के प्राण एक ही हैं, केवल हमारे शरीर पृथक् हैं। (सखी का सहारा लेकर खड़ी होकर आम के बौर तोड़ती है।) ओह, यद्यपि यह आम का बौर अभी पूरा नहीं खिला है, फिर भी डंठल से टूटने पर सुगन्ध दे रहा है। (कपोताकार हाथों को जोड़कर)।**

**हे आम के बौर, तुझको मैं धनुर्धारी कामदेव को समर्पण करती हूँ। पथिकों की स्त्रियाँ तुम्हारा लक्ष्य हों और तुम पाँचों बाणों में सर्वश्रेष्ठ बाण होओ॥३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे चूतांकुर—हे आम्रमुकुल, त्वं मया गृहीतधनुषे—धनुर्धारिणे, कामाय—मदनाय, दत्तः असि—समर्पितोऽसि। पथिक०—पथिकजनानां पान्थानां युवतयः स्त्रियः लक्ष्यं शरव्यं यस्य सः, पञ्चाभ्यधिकः—पञ्चाना शराणां श्रेष्ठः, शरः—वाणः, भव—एधि। आर्या जातिः।

## टिप्पणी

(१) **जीवितम्**—जीवन, प्राण या आत्मा। (२) **अप्रतिबुद्धः**—पूर्णरूप से अविकसित। जो अभी पूरा खिला नहीं है। प्रति+बुध्+क्त=प्रतिबुद्धः, न प्रतिबुद्धः अप्रतिबुद्धः। (३) **बन्धन०**—डंठल से टूटने पर सुगन्धित हो रहा है। वन्धनात् भङ्गेन सुरभिः, तत्पुरुष। (४) **कपोतहस्तकम्**—प्रणामादि के समय हाथ जोड़ने का यह एक प्रकार है। दोनों हाथ इस प्रकार मिलाकर जोड़े जायँ कि दोनों हथेलियों के बीच में कुछ जगह खाली रहे और हाथ का शेष भाग मिला हुआ हो। बीच का भाग उठा होने से कबूतर की तरह प्रतीत होता है, अतः इसे कपोतहस्त कहते हैं। संगीत-रत्नाकर में इसका लक्षण है—कपोतोऽसौ करौ यत्र श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकौ। प्रणामे गुरुसंभाषे०॥ भरत ने इसका लक्षण दिया है—सर्वपार्श्वसमाश्लेषात् कपोतः सर्पशीर्षकः। भीतौ विज्ञापने चैव विनये च प्रयुज्यते॥ (५) **गृहीतधनुषे**—धनुर्धारी। गृहीतं धनुः येन तस्मै, बहु०। यहाँ पर बहुव्रीहि होने के कारण धनुषश्च (५-४-१३२) से समासान्त अनङ् होकर 'गृहीतधन्वने', रूप बनना चाहिए। समासान्त विधि को अनित्य मानने से यह रूप भी ठीक है। अन्य कवियों ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं। अश्वत्थामा करधृतधनुः (वेणीसंहार ३-२३), धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि (उत्तरराम० ५-४)। (६) **पथिक**—पन्थानं गच्छति इति, पथिन्+ष्कन् (क)। पथः ष्कन् (५-१-७५) से ष्कन् प्रत्यय। (७) **पञ्चाभ्यधिकः**—पाँचों में श्रेष्ठ। पञ्चानाम् अभ्यधिकः। कामदेव के पाँच बाण ये हैं—(क) अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।

नीलोत्पलं च पंचैते पंचवाणस्य सायकाः। (ख) संमोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पंच बाणाः प्रकीर्तिताः ।।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः।)

४५. **कञ्चुकी**--मा तावत् अनात्मज्ञे ! देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्गं किमारभसे ?

(पर्दा हटाकर क्रोध के साथ प्रविष्ट होकर)

**कंचुकी**--अरी मर्ख, ऐसा मत कर। महाराज ने वसन्तोत्सव को मना कर दिया है, तो तू क्यों आम की कली को तोड़ रही है ?

४६. **उभे**--(भीते) प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्। [पसीददु अज्जो। अग्गहीदत्थाओ वअं।]

**दोनों**--(भयभीत होकर) आप क्षमा कीजिए। हम दोनों को यह बात ज्ञात नहीं थी।

४७. **कञ्चुकी**--न किल श्रुतं युवाभ्यां यद् वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथाहि--

चूतानां चिरनिर्गताऽपि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत् कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ।।४।।

**अन्वय**--चूतानां चिरनिर्गता अपि कलिका स्वं रजः न वध्नाति। कुरवकं यदपि संनद्धं तत् कोरकावस्थया स्थितम्। शिशिरे गते अपि पुंस्कोकिलानां रुतं कण्ठेषु स्खलितम्। शङ्के स्मरः अपि चकितः तूणार्धकृष्टं शरं संहरति।

**कंचुकी**--क्या तुम दोनों ने नहीं सुना है कि वसन्त ऋतु में फूलने वाले वृक्षों और उन पर रहने वाले पक्षियों ने भी महाराज की आज्ञा का पालन किया है ? क्योंकि--

आम की बहुत समय से निकली हुई भी कली (मंजरी) अपने पराग को धारण नहीं कर रही है। कुरवक (फूल) यद्यपि खिलने के लिए तैयार हैं, परन्तु वह कली के रूप में ही रह गया है। शिशिर ऋतु के बीत जाने पर भी

**कोयलों की आवाज उनके गले में ही रुकी हुई है। मैं समझता हूँ कि कामदेव ने भी भयभीत होकर तूणीर से आधे निकाले हुए अपने बाण को फिर रोक लिया है ॥४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—चूतानाम्—आम्राणाम्, चिरनिर्गताऽपि—वहुपूर्वं निःसृताऽपि, कलिका—मञ्जरी, स्वं—स्वकीयम्, रजः—परागम्, न वध्नाति—न धारयति। कुरवकं—कुरबक-पुष्पम्, यदपि—यद्यपि, संनद्धं—विकासार्थं सज्जीभूतम्, तत्—तत्पुष्पम्, कोरकावस्थया—कलिकारूपेण, स्थितम्—अविकसितमेव रुद्धमित्यर्थः। शिशिरे—शिशिरर्तौ, गतेऽपि—व्यतीतेऽपि, पुंस्कोकिलानां—पुंजातीयपिकानाम्, रुतं—कूजितम्, कण्ठेषु—तेषां गलविलेष्वेव, स्खलितं—रुद्धम्। शङ्के—मन्ये, स्मरोऽपि—मदनोऽपि, चकितः—भीतः, तूणार्ध०—तूणीरात् अर्धं निष्कासितमपि, शरं—बाणम्, संहरति—पुनः तूणीर एव स्थापयति। अत्रोत्प्रेक्षा विशेषोक्तिः काव्यलिङ्गं चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **कुपितः**—क्रुद्ध। अतः सहसा पर्दा हटाकर प्रविष्ट होता है। (२) **अनात्मज्ञे**—मूर्ख, जिसे अपना होश नहीं है। (३) **वसन्तोत्सवे**—यहाँ वसन्तोत्सव से होली का पर्व समझना चाहिए। इसी समय सब प्रकार की प्रसन्नताएँ मनाई जाती हैं। आमों पर बौर भी होता है और कोयल की ध्वनि भी। ठंड इस समय समाप्त हो जाती है। इसी समय रंग आदि खेला जाता है। रत्नावली (अंक १) में भी मदनमहोत्सव का ऐसा ही वर्णन है—मधुमत्तकामिनीजन……… सश्रीकतां मदनमहोत्सवस्य। वसन्तोत्सव का दूसरा अर्थ वसन्तपंचमी भी हो सकता है। इस अवसर पर कामदेव की पूजा विशेषतः होती है। (४) **अगृहीतार्थे**—हमें यह बात ज्ञात नहीं थी। अगृहीतः अर्थः याभ्यां ते, बहु०। अर्थ—बात, विषय। (५) **वासन्तिकैः**—वसन्त ऋतु में फूलने वाले वृक्ष। यह वैदिक प्रयोग है। वसन्ते जातः वासन्तिकः, वसन्त+ठञ् (इक)। वसन्ताच्च (४-३-२०) से ठञ्। यह ठञ् वेद में ही होता है। अतः लौकिक रूप वासन्तः है, सन्धिवलादि० (४-३-१६) से अण् प्रत्यय। यह प्रयोग कालिदास द्वारा किए गए वैदिक प्रयोगों में से एक है। (६) **प्रमाणीकृतम्**—प्रमाण माना। च्वि प्रत्यय। (७) कलिका, कुरबकम्, रुतम्—ये जाति अर्थ में एकवचन वाले प्रयोग हैं। (८) **रजः**—पराग। जैसे प्रौढ़ युवती को रजोदर्शन होता है। (९) **कोरका०**—कुरबक कली की अवस्था में ही रुक गया। (१०) **कण्ठेषु०**—गले में ही रुक गई, बाहर न निकल सकी। (११) **चकितः**—भयभीत, डरा हुआ। (१२) यहाँ पर शंके के कारण उत्प्रेक्षा है। प्रथम तीन चरणों में कारण चिरनिर्गतत्व आदि के रहने पर भी कार्य पराग आदि के अभाव के कारण

मालारूप में विशेषोक्ति है। प्रथम तीन चरणों के तीन वाक्य चतुर्थ चरण में उक्त कामदेव के बाणसंहार के कारण हैं, अतः काव्यलिंग है।

**४८. उभे——नास्ति सन्देहः। महाप्रभावो राजर्षिः।** [णत्थि संदेहो। महाप्पहाओ राएसी।]

दोनों——इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस राजर्षि का बड़ा प्रभाव है।

**४९. प्रथमा——आर्य, कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः। इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः।** [अज्ज, कदि दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं। इत्थं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअन्तुअदाए अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो।]

पहली—आर्य, कई दिन हुए हम दोनों को महाराज के साले मित्रावसु ने महारानी के चरणों की सेवा के लिए भेजा था। हमें अभी इस उद्यान की सुरक्षा का काम सौंपा गया है। अतः नवागन्तुक होने के कारण हमने यह समाचार नहीं सुना है।

**५०. कञ्चुकी——भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।**

कंचुकी—अच्छा, अब फिर ऐसा न करना।

**५१. उभे——आर्य, कौतूहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वार्यः किंनिमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः।** [अज्ज, कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अज्जो किंणिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो।]

दोनों—आर्य, हमें कुतूहलता है। यदि हम लोग यह सुन सकती हैं तो आप कृपया बताइए कि किसलिए महाराज ने वसन्तोत्सव को मना किया है?

**५२. सानुमती—उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।** [उस्सवप्पिआ क्खु मणुस्सा। गुरुणा कारणेण होदव्वं।]

---

पाठभेद—४९. का० अत्र [एत्थ] (यहाँ)।

सानुमती—मनुष्य उत्सव-प्रिय होते हैं। अतः (इस रोकने में) कोई बड़ा कारण होगा।

**५३. कञ्चुकी—बहुलीभूतमेतत् किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्?**

कंचुकी—यह बात सर्वत्र फैल चुकी है, तो क्यों न बता दूँ। क्या आप लोगों ने शकुन्तला के परित्याग के कारण जन-निन्दा की बात नहीं सुनी है?

**५४. उभे—श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावदङ्गुलीयकदर्शनम्।**
[सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अंगुलीअदंसणं।]

दोनों—हमने राज-श्यालक के मुँह से अँगूठी मिलने तक का समाचार सुना है।

### टिप्पणी

(१) **नास्ति संदेहः**—इस वक्तव्य को सानुमती की उक्ति मानना अधिक उचित है। वही राजा को राजर्षि कहती है। (देखो वक्तव्य सं० ३६)। दासी आदि राजा को भर्ता या देव कहती हैं। (२) **महाप्रभावः**—बड़े प्रभाव वाला है। महाभारत (शान्तिपर्व) में कहा है—राजा कालस्य कारणम्। राजा समय को बनाने वाला है। (३) **कति०**—कई दिन बीत गए। गतानि का अध्याहार है। कति शब्द के रूप बहुवचन में ही चलते हैं। कति—किम्+डति (अति), इम् का लोप। (४) **दिवसानि**—अर्धर्चादिगणी होने से इसके रूप पुंलिंग और नपुंसक० दोनों में चलते हैं। (५) **मित्रावसुः**—राजा के साले का नाम है। (६) **राष्ट्रियः**—राजा का साला। राजश्यालस्तु राष्ट्रियः, इत्यमरः। साधारणतया राजा का साला कोतवाल पद पर होता था। राष्ट्रिय—राष्ट्रे अधिकृतः, राष्ट्र+घ (इय)। राष्ट्रावारपाराद् घखौ (४-२-९३) से घ। राष्ट्र में शान्ति-स्थापन करने वाला। (७) **यद्यनेन०**—यदि हम लोगों को सुनाने के योग्य बात हो तो। यदि हम सुन सकती हों तो। (८) **किं निमित्तम्**—क्यों। निमित्त-वाची शब्दों के साथ प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं। निमित्तपर्यायप्रयोगे० (वार्तिक) से। (९) **उत्सवप्रियाः**—उत्सव प्रिय होता है। उत्सवः प्रियः येषां ते, बहु०। उत्सव—उत्+सू+अप् (अ)। समास में वा प्रियस्य (वार्तिक) से प्रिय का पहले भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—प्रियमण्डना। (१०) **बहुलीभूतम्**—सर्वत्र फैल गया है। अबहुलं बहुलं भूतम्, च्वि प्रत्यय। (११) **प्रत्यादेशकौलीनम्**—शकुन्तला के परित्याग के कारण निन्दा। कौलीन—लोकापवाद, जननिन्दा। कुले भवः कुलीनः, कुल+ख (ईन)। कुलीनस्य भावः कौलीनम्, कुलीन+अण्। कुलीन परिवार की गोप्य बात।

**५५. कञ्चुकी—तेन ह्यल्पं कथयितव्यम्। यदैव खलु**

स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात् प्रत्यादिष्टेति । तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः । तथाहि——

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ।।५।।

**अन्वय**——रम्यं द्वेष्टि । यथा पुरा प्रकृतिभिः प्रत्यहं न सेव्यते । उन्निद्रः एव शय्याप्रान्तविवर्तनैः क्षपाः विगमयति । यदा दाक्षिण्येन अन्तःपुरेभ्यः उचितां वाचं ददाति, तदा गोत्रेषु स्खलितः चिरं व्रीडाविलक्षः च भवति ।

**कंचुकी**——तो वस्तुतः थोड़ा ही कहना शेष रह गया है। ज्योंही अपनी अँगूठी को देखने से महाराज को याद आई कि वस्तुतः मैंने श्रीमती शकुन्तला से एकान्त में विवाह किया था और अज्ञान के कारण उसका परित्याग किया है, तभी से महाराज पश्चात्ताप में पड़े हैं। क्योंकि——

वे सभी मनोहर चीजों से घृणा करते हैं। पूर्ववत् मन्त्रियों से प्रतिदिन नहीं मिलते हैं। रात्रि भर जागते हुए ही बिस्तर के किनारों पर करवट बदलते हुए रात्रियाँ बिताते हैं। जब शिष्टता के कारण अन्तःपुर की स्त्रियों को उचित उत्तर देते हैं, तब नामोच्चारण में त्रुटि (शकुन्तला का नामोच्चारण) कर जाते हैं और बहुत देर तक लज्जा के कारण व्याकुल रहते हैं ।।५।।

**संस्कृत-व्याख्या**—रम्यं—सर्वं मनोहरं वस्तु, द्वेष्टि—नाभिनन्दति । यथा पुरा—पूर्ववत्, प्रकृतिभिः—अमात्यादिभिः, प्रत्यहं—प्रतिदिनम्, न सेव्यते—नोपगम्यते । उन्निद्र एव—निद्रारहित एव जाग्रदेवेत्यर्थः, शय्या०—शय्यायाः शयनीयस्य प्रान्तयोः पर्यन्तभागयोः विवर्तनैः परिलुण्ठनैः, क्षपाः—रात्रीः, विगमयति—यापयति । यदा दाक्षिण्येन—उदारतया समरागितया वा, अन्तःपुरेभ्यः—अवरोधस्थितकामिनीभ्यः, उचितां—समयोचिताम्, वाचं ददाति—उत्तरं प्रयच्छति, तदा गोत्रेषु—नामसु, स्खलितः—प्रभ्रष्टः, शकुन्तलामयचित्तत्वाद् अन्यनामोच्चारणसमये शकुन्तलानामोच्चारणात्, चिरं—वहुकालं यावत्, व्रीडाविलक्षः—लज्जाविकलः, च भवति—संजायते । अत्र पर्यायोक्तं समुच्चयः काव्यलिङ्गं चालंकाराः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **अल्पं०**—थोड़ा ही बताना शेष है। ( २ ) **ऊढपूर्वा**—पहले विवाह किया है। पूर्वम् ऊढा, सुप्सुपा से समास। ( ३ ) **रम्यम्०**—सभी मनोहर वस्तुओं से घृणा करते हैं। ( ४ ) **प्रकृतिभिः**—प्रकृति शब्द के दो अर्थ हैं, मन्त्री और प्रजा। यहाँ दोनों अर्थ हो सकते हैं—वह मन्त्रियों से और प्रजाजनों से पूर्ववत् नहीं मिलते हैं। ( ५ ) **शय्या०**—वह बिस्तर के दोनों किनारों पर करवट बदलते रहते हैं और उन्हें रात भर नींद नहीं आती है। शय्यायाः प्रान्तयोः विवर्तनैः, तत्पुरुष। ( ६ ) **विगमयति**—खेदपूर्वक बिताते हैं। वि+इ+णिच्+लट्। णौ गमिरबोधने (२-४-४६) से इ धातु को गम् आदेश। ( ७ ) **दाक्षिण्येन**—नम्रता या शिष्टता के कारण। साहित्यदर्पण (३-३५) में दक्षिण नायक का लक्षण दिया है—एषु त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः। अनेक स्त्रियों से समान प्रेम करने वाला। समान प्रेम के कारण सभी स्त्रियों की बातों का उत्तर देता था। (८) **अन्तःपुरेभ्यः**—लक्षणा के द्वारा अन्तःपुर की स्त्रियाँ अर्थ है। ( ९ ) **गोत्रेषु०**—वह शकुन्तला के ध्यान में मग्न रहते थे, अतः दूसरी स्त्रियों को भी शकुन्तला कह देते थे। अन्य कवियों ने भी गोत्रस्खलन के वर्णन किए हैं—(क) गोत्रस्खलितेषु बन्धनम् (कुमार० ६-८), (ख) जगाद गोत्रस्खलितम्० (नैषध० १-३०), (ग) पुरुषोत्तमेति भणितव्ये पुरूरवा इति निर्गता वाणी (विक्रमो० ३), (घ) गोत्रस्खलनमनिशं० (उद्धवदूत)। (१०) **व्रीडा०**—लज्जा से व्याकुल, विह्वल या किंकर्तव्यविमूढ। (११) पश्चात्तापादि कारण के स्थान पर कार्य रम्य-द्वेष आदि के उल्लेख के कारण पर्यायोक्त है। पश्चात्ताप के प्रतिपादक कई कारणों के उल्लेख से समुच्चय है। व्रीडाविलक्ष का कारण गोत्रस्खलन होने से काव्यलिंग है।

**५६. सानुमती—प्रियं मे। [पिअं मे।]**

**सानुमती—यह मेरे लिए शुभ समाचार है।**

**५७. कञ्चुकी—अस्मात् प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।**

**कंचुकी—इस प्रबल मानसिक ग्लानि के कारण ( महाराज ने ) उत्सव रोक दिया है।**

**५८. उभे—युज्यते। [जुज्जइ।]**

**दोनों—उचित ही है।**

Funding by IKS-MoE

**(नेपथ्ये)**

**५९. एतु एतु भवान्। [एदु एदु भवं।]**

(नेपथ्य में) महाराज, इधर से आइये।

६०. कञ्चुकी—(कर्णं दत्त्वा) अये, इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्।

कंचुकी—(कान लगा कर सुनकर) ओह, महाराज इधर ही आ रहे हैं। (जाओ) अपना काम करो।

६१. उभे—तथा। [ तह। ]। (इति निष्क्रान्ते।)

दोनों—अच्छा। (दोनों का प्रस्थान।)

### टिप्पणी

(१) **प्रियं मे**—यह मेरे लिए प्रिय है, अर्थात् यह मेरे लिए शुभ समाचार है। (२) **प्रभवतः**—प्रबल, उत्कट, विशेष प्रभावयुक्त। यहाँ पर यह वैमनस्य का विशेषण है। कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ 'राजा' किया है, यह ठीक नहीं है। यहाँ पर कर्ता 'देवेन' गुप्त है। (३) **वैमनस्यात्**—मानसिक ग्लानि या उद्विग्नता के कारण। विकृतं मनः विमनः, तस्य भावः, विमनस्+ष्यञ् (य)। (४) **प्रत्याख्यातः**—रोक दिया है, मना कर दिया है। प्रत्याख्यात—प्रति+आ+चक्ष्+क्त। चक्ष् को ख्या आदेश। प्रत्याख्यान का अर्थ होता है—खण्डन करना, रोकना। (५) **कर्णं दत्त्वा**—कान देकर अर्थात् कान लगाकर सुनकर। यह मुहावरा है। (६) **स्वकर्म०**—अपना काम करो। कंचुकी ने यह दोनों दासियों से कहा है। प्रविश्यापटीक्षेपेण० वाक्य सं० ४५ से यहाँ तक द्युति नामक विमर्श सन्धि का अङ्ग है, क्योंकि यहाँ पर दासियों को डराया और धमकाया गया है। द्युति का लक्षण है—तर्जनोद्वेजने प्रोक्ता द्युतिः। (सा० दर्पण ६-१०४)।

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा
विदूषकः प्रतीहारी च।)

६२. कंचुकी—(राजानमवलोक्य) अहो, सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः। तथा हि—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥६॥

अन्वय—प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः वामप्रकोष्ठार्पितम् एकम् एव काञ्चनं

वलयं बिभ्रत्, श्वासोपरक्ताधरः चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनः संस्कारोल्लिखितः महामणिः इव क्षीणः अपि आत्मनः तेजोगुणात् न आलक्ष्यते ।

**(तदनन्तर पश्चात्ताप के अनुकूल वेष धारण किए हुए राजा का, विदूषक और प्रतीहारी के साथ प्रवेश ।)**

**कंचुकी**—(राजा को देखकर) अहो, सुन्दर आकृति वालों में सभी अवस्थाओं में सुन्दरता विद्यमान रहती है। इस प्रकार (प्रिया-वियोग के कारण) खिन्न होने पर भी महाराज देखने में सुन्दर ही हैं। क्योंकि—

उन्होंने विशेष रूप से अलंकार पहनने का कार्य बन्द कर दिया है; बाईं कलाई में पड़े हुए एक ही सुवर्ण के कंकण को पहने हुए हैं; उनके ओठ (उष्ण) साँसों से अधिक लाल पड़ गए हैं, चिन्ता के कारण (रात भर) जागते रहने से उनकी आँखें बहुत भारी हो रही हैं; कसौटी पर घिसे हुए बहुमूल्य रत्न के तुल्य कृश होने पर भी वे अपनी तेजस्विता के कारण (कृश) नहीं दिखाई पड़ते हैं ।।६।।

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रत्यादिष्ट०—प्रत्यादिष्टः परित्यक्तः विशेषेण हारादिना मण्डनस्य अलङ्करणस्य विधिः अनुष्ठानं येन सः, वाम०—वामे सव्ये प्रकोष्ठे मणिबन्धोर्ध्वभागे अर्पितं न्यस्तम्, एकमेव काञ्चनं—हैमम्, वलयं—कटकम्, बिभ्रत्—धारयन्, श्वासोप०—श्वासैः उष्णनिःश्वासवायुभिः उपरक्तः अतिरक्ततां प्राप्तः अधरः यस्य सः, चिन्ता०—चिन्तया शकुन्तलाविषयकचिन्तया यत् जागरणम् अनिद्रा तेन प्रतान्ते अतिखिन्ने नयने नेत्रे यस्य सः, संस्कारोल्लिखितः—शाणोपरि घर्षितः, महामणिरिव—बहुमूल्यं रत्नमिव, क्षीणोऽपि—कृशोऽपि, आत्मनः—स्वस्य, तेजोगुणात्—तेजस्विताहेतोः, न आलक्ष्यते—न प्रतीयते। अत्रोपमा स्वभावोक्तिश्चालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **पश्चात्ताप०**—पश्चात् तापः, कर्मधारय। पश्चात्तापेन सदृशः वेषो यस्य सः, बहु० । (२) **सर्वास्ववस्थासु०**—कालिदास ने यही भाव अन्यत्र भी वर्णन किया है—(क) किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् (अंक १-२०) (ख) अहो सर्वास्ववस्थासु अनवद्यता रूपस्य । (मालविका० अंक २) । रमणीय—रम्+णिच्+अनीयर् । (३) **उत्सुकः**—खिन्न, दुःखित । शकुन्तला को पाने के लिए व्याकुल । (४) **प्रत्यादिष्ट०**—प्रत्यादिष्टः विशेषेण मण्डनस्य विधिः येन सः, बहु० । जिसने विशेष अलंकारादि पहनना बन्द कर दिया है । प्रत्यादिष्ट—प्रति+आ+दिश्+क्त । प्रत्यादेश का अर्थ है—रोकना, त्याग करना, खण्डन

Funding by IKS-MoE

करना। विधि—कार्य, अनुष्ठान। (५) **वाम०**—वामे प्रकोष्ठे अर्पितम्, तत्पुरुष। प्रकोष्ठ—कलाई। बाएँ हाथ में कंकण पहनना, राजा की अव्यवस्थितचित्तता को सूचित करता है। ( ६ ) **श्वासोपरक्ता०**—श्वासैः उपरक्तः अधरः यस्य सः, बहु०। उपरक्त—अधिक लाल। पाठभेद—अपरक्त—रक्तहीन, फीका। यहाँ उपरक्त पाठ अधिक उचित है। (७) **चिन्ता०**—चिन्तया जागरणेन प्रतान्ते नयने यस्य सः, बहु०। प्रतान्त—खिन्न, दुःखित, भारी पड़ी हुई, थकी हुई। प्र+तम्+क्त। पाठभेद—प्रताम्र—बहुत लाल। (८) **तेजोगुणात्**—तेजस्विता के कारण। ( ९ ) **संस्कारो०**—संस्कारे उल्लिखितः। कसौटी या शान पर चढ़े हुए। (१०) **नालक्ष्यते**—कृश होने पर भी कृश नहीं दीखते हैं। (११) इस श्लोक में चार कामदशाओं का वर्णन है। प्रत्यादिष्ट० के द्वारा विषय-निवृत्ति, चिन्ता० के द्वारा चिन्ता, जागरण० के द्वारा निद्रानाश, क्षीणः के द्वारा तनुता। काम-दशाएँ दस होती हैं:—नयनप्रीतिः प्रथमं चिन्तासङ्गस्ततोऽथ संकल्पः। निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः। उन्मादो मूर्च्छा इत्येताः स्मरदशा दशैव स्युरित्याचक्षते॥ (उज्ज्वलनीलमणि)।

**६३. सानुमती—(राजानं दृष्ट्वा) स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताऽप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति। [ठाणे क्खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउन्दला किलम्मदि त्ति।]**

**सानुमती—(राजा को देखकर) परित्याग के द्वारा अपमानित भी शकुन्तला इसके लिए दुःखित रहती है, यह उचित ही है।**

**६४. राजा—( ध्यानमन्दं परिक्रम्य )**

**प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।**
**अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम्॥७॥**

अन्वय—प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानम् अपि सुप्तम्, इदं हतहृदयं सम्प्रति अनुशयदुःखाय विबुद्धम्।

**राजा—(ध्यान में मग्न धीरे-धीरे चारों ओर घूमकर)।**

**पहले तो मृगनयनी प्रिया के द्वारा जगाया जाने पर भी सोता रहा, अब यह (मेरा) नीच हृदय पश्चात्ताप के दुःख के लिए जागा है॥७॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रथमं—पूर्वम्, सारङ्गाक्ष्या—सारङ्गस्य मृगस्य अक्षिणी

---

पाठभेद—६३. का० इति [त्ति], इति नास्ति।

नेत्रे इव अक्षिणी यस्याः सा तया मृगलोचनया, प्रियया—शकुन्तलया, प्रतिबोध्यमानमपि—स्मर्यमाणमपि, सुप्तं—निद्रितं मोहमुपगतमित्यर्थः। इदम्—एतत्, हतहृदयम्—अधमहृदयम्, सम्प्रति—अधुना, अनुशयदुःखाय—पश्चात्तापदुःखानुभवाय, विबुद्धं—जागरितम् । अत्र विशेषोक्तिर्विभावना चालंकारौ । आर्या जातिः ।

### टिप्पणी

( १ ) **स्थाने खलु**—शकुन्तला इसके लिए दुःखित रहती है, यह उचित ही है, क्योंकि अब यह स्पष्ट हो गया है कि राजा सच्चे हृदय से शकुन्तला से प्रेम करता है और उसके परित्याग के कारण उसे बहुत पश्चात्ताप है। राजा के वास्तविक प्रेम, सहृदयता और सौन्दर्य के कारण शकुन्तला का उसे स्मरण करना उचित ही है। स्थाने—उचित है। यह अव्यय है; ( २ ) **प्रत्यादेश०**—परित्याग के कारण अपमानित। प्रत्यादेशेन विमानिता, तत्पुरुष। ( ३ ) **क्लाम्यति**—दुःखित होती है। ( ४ ) **ध्यानमन्दं०**—ध्यान में मग्न होने के कारण धीरे-धीरे घूमकर। ध्यानेन मन्दम्, तत्पुरुष। (५) **प्रथमम्**—पहले, शकुन्तला के परित्याग के समय। (६) **सारङ्गाक्ष्या**—मृगनयनी के द्वारा। सारङ्गस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा तया, बहु०। सारङ्ग+अक्षिन्+षच् (अ)। बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः० (५-४-११३) से समासान्त षच् प्रत्यय। षित् होने के कारण षिद्गौरादिभ्यश्च (४-१-४१) से ङीष् (ई)। ( ७ ) **प्रतिबोध्यमानम्**—जगाया जाने पर भी अर्थात् याद दिलाने पर भी। ( ८ ) **सुप्तम्**—सोता रहा अर्थात् इस हृदय को उसका स्मरण नहीं आया। (९) **अनुशय०**—पश्चात्ताप के दुःख का अनुभव करने के लिए। (१०) **हतहृदयम्**—नीच हृदय। हत शब्द नीच, निकृष्ट, अधम अर्थ में शब्द के पूर्व प्रयोग में आता है। जैसे—कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन्। (रघु० १४-६५), हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः (शिशुपाल० ११-६४)। दग्ध और हतक शब्द भी निकृष्ट अर्थ में आते हैं—दग्धोदरम्, दुर्योधनहतकः आदि। (११) **विबुद्धम्**—जागा है अर्थात् अब होश में आया है। (१२) यहाँ पूर्वार्ध में कारण के होने पर भी कार्य न होने से विशेषोक्ति है और उत्तरार्ध में बिना कारण के कार्य होने से विभावना है।

**६५. सानुमती—नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि।**
[णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि।]

**सानुमती**—उस बेचारी का भाग्य ही ऐसा है।

**६६. विदूषकः—(अपवार्य) लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।** [लंघिदो एषो भूओ वि सउन्दलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति।]

विदूषक—(एक ओर होकर) इन्हें फिर शकुन्तला की बीमारी चढ़ी है। पता नहीं, इनका कैसे इलाज होगा।

६७. कञ्चुकी—(उपगम्य) जयतु जयतु देवः। महाराज, प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः।

कंचुकी—(पास जाकर) महाराज की जय हो। महाराज, प्रमदवन के सभी स्थानों का मैंने पूरा निरीक्षण कर लिया है। अब महाराज अपने इच्छानुसार आमोद-प्रमोद के स्थानों पर विराजें।

६८. राजा—वेत्रवति, मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति।

राजा—वेत्रवती, मेरे आदेशानुसार मन्त्री श्रीमान् पिशुन से कहना कि—"आज देर से उठने के कारण धर्मासन पर बैठना हमारे लिए संभव नहीं है। आपने जो नागरिकों का कार्य देखा हो, उसे पत्र में चढ़ाकर भेज दें।"

६९. प्रतीहारी—यद्देव आज्ञापयति। [जं देवो आणवेदि।] (इति निष्क्रान्ता।)

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान।)

७०. राजा—वातायन, त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु।

राजा—वातायन, तुम भी अपने काम पर जाओ।

७१. कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान।)

### टिप्पणी

(१) ईदृशानि०—इस प्रकार का प्रतिकूल भाग्य। यह उस बेचारी का दुर्भाग्य ही था कि राजा उस समय उसे पहचान न सके। (२) तपस्विन्याः—बेचारी का। तपस्विनी शब्द का प्रयोग दयनीय, बेचारी अर्थ में भी होता है। तपस्वी चानुकम्पार्हः, इत्यमरः। तपस्वी तापसे चानुकम्प्ये त्रिषु, इति मेदिनी। तपस्वी तापसे दीने, इति हैमः। (३) भागधेयानि—भाग्य। नाम, रूप और भाग शब्दों से स्वार्थ में धेय प्रत्यय होता है। (४) लङ्घितः—आक्रान्त हुआ है। इन्हें शकुन्तला की बीमारी चढ़ी है। लङ्घन और चिकित्सा ये दोनों वैद्य

Funding by IKS-MoE

के शब्द हैं। लंघन का अर्थ है बीमारी के समय भोजन न करना। अतः यहाँ यह अर्थ भी हो सकता है कि राजा ने लंघन कर लिया है अर्थात् मनोहर वस्तुओं का परित्याग कर दिया है। अब इसकी चिकित्सा होनी चाहिए। (५) **चिकित्सितव्यः**—चिकित्सा के योग्य। कित्+सन्+तव्य। कित् धातु से व्याधि-प्रतिकार अर्थ में गुप्तिज्किद्भ्यः सन् (३-१-५) से सन् प्रत्यय। यहाँ सन् का इच्छा अर्थ नहीं है। (६) **प्रत्यवेक्षिताः**—अच्छे प्रकार से देख लिया गया है। राजा जब कभी उद्यान आदि या एकान्त स्थान में जाता था, तो उसकी सुरक्षा के लिए पहले से उस स्थान का निरीक्षण कर लिया जाता था कि वहाँ कोई शत्रु या चोर आदि न हो। (७) **प्रमदवन०**—आमोद-प्रमोद के लिए उपवन। प्रमदार्थं प्रमदोचितं वा वनम्। (८) **अमात्यम्**—मन्त्री। वह राजा के साथ रहता है। अमा सह भवः, अमा+त्यप् (त्य)। अव्ययात्त्यप् (४-२-१०४) से त्यप्। (९) **आर्यपिशुनम्**—मन्त्री का नाम पिशुन है। आर्य शब्द आदरार्थक है। (१०) **चिरप्रबोधात्**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) देर से उठने के कारण। (ख) रात्रि में देर तक जागने के कारण। (११) **संभावितम्०**—हमारे लिए संभव नहीं है। सम्+भू+णिच्+क्त। संभावित का मुख्यार्थ पूजित, मान्य है। गौण अर्थ समर्थ, युक्त आदि। (१२) **पत्रम्०**—कागज पर चढ़ा कर। इससे ज्ञात होता है कि जाँच आदि का काम मन्त्री करता था और निर्णय राजा देता था। (१३) **वातायन**—कंचुकी का नाम है।

७२. विदूषकः—कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देश आत्मानं रमयिष्यसि। [किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि।]

**विदूषक—आपने सब मक्खियाँ भगा दीं (अर्थात् यह स्थान पूर्णतया एकान्त कर दिया है)। अब शीत और गर्मी के अभाव के कारण मनोहर इस प्रमदवन के प्रदेश में अपना मन बहलाइए।**

७३. राजा—वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः। कुतः—

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।

---

पाठभेद—७३. का० यदुच्यते रन्ध्रेषु० (यह जो कहावत है कि०)

मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥८॥

**अन्वय**—सखे, मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना तमसा मम इदं मनः मुक्तं च। प्रहरिष्यता मनसिजेन धनुषि चूतशरः निवेशितः च।

**राजा—मित्र, "विपत्ति में विपत्तियाँ आती हैं" यह जो कहावत कही जाती है, वह सर्वथा सत्य है। क्योंकि—**

**हे मित्र, मुनि की पुत्री के प्रति प्रेम की स्मृति को रोकने वाले मोह ने मेरे इस मन को मुक्त कर दिया है और मुझ पर प्रहार करने के इच्छुक कामदेव ने अपने धनुष पर आम्रमंजरीरूपी बाण चढ़ा लिया है ॥८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—सखे—वयस्य, मुनि०—मुनेः कण्वस्य सुतायां पुत्र्यां शकुन्तलायां यः प्रणयः प्रेम तस्य स्मृतिं स्मरणं रुणद्धि आवृणोति इति तेन शकुन्तला-विषयकप्रेमस्मृतिलोपिना, तमसा—मोहेन, इदं मम मनः—एतत् मदीयं हृदयम्, मुक्तं च—त्यक्तं च, प्रहरिष्यता—प्रहर्तुमिच्छता, मनसिजेन—कामेन, धनुषि—कार्मुके, चूतशरः—आम्रमंजरीबाणः, निवेशितश्च—आरोपितश्च। चकारद्वयं यौगपद्यं सूचयति। अत्रातिशयोक्तिमूलकः समुच्चयोऽलंकारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **निर्मक्षिकम्**—मक्खियों से रहित, अर्थात् सभी अनावश्यक व्यक्तियों से रहित, अतएव एकान्त। मक्षिकाणाम् अभावः, अव्ययीभाव०। ( २ ) **शिशिरा०**—ठंड और गर्मी के अभाव के कारण मनोहर। शिशिरश्च आतपश्च शिशिरातपौ, द्वन्द्व, तयोः छेदेन रमणीये, तत्पुरुष। कुछ टीकाकारों ने छेद का अर्थ अवकाश या मध्यभाग लेकर यह अर्थ किया है—शिशिर और ग्रीष्म के मध्यगत वसन्त ऋतु में मनोहर। ( ३ ) **आत्मानम्**—गतिबुद्धि० ( १-४-५२ ) से कर्म और द्वितीया। ( ४ ) **रन्ध्रोप०**—विपत्ति में विपत्तियाँ आती हैं। यह मुहावरा है। रन्ध्र—छिद्र। छिद्र में अर्थात् दुःख में या विपत्ति में अनर्थ आकर पड़ते हैं। न अर्थाः अनर्थाः, दुःख या विपत्ति। इस भाव की अन्य सूक्तियाँ हैं—(क) छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (पंचतन्त्र), (ख) क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम् (पंचतन्त्र), (ग) प्रायो गच्छति यत्र भाग्यहतकस्तत्रैव यान्त्यापदः। (नीतिशतक ८६), (घ) तथा मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति (मृच्छकटिक)। ( ५ ) **अव्यभिचारि**—अपवाद-रहित अर्थात् सर्वथा सत्य। व्यभिचार—दोष या अपवाद। यह न्याय का पारिभाषिक शब्द है। सदोष हेतु को व्यभिचारदोष कहते हैं। हेतोः साध्याभाववद्वृत्तित्वं व्यभिचारः (तर्ककौमुदी)। ( ६ ) **मुनि०**—मुनेः

सुतायां प्रणयस्य स्मृतेः रोधिना, तत्पुरुष। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (७) **तमसा**—मोह, अज्ञान ने। (८) **मनसिजेन**—कामदेव ने। तत्पुरुषे कृति० (६-३-१४) से सप्तमी का विकल्प से अलुक्। लुक् होने पर मनोज। (९) **प्रहरिष्यता**—प्रहार करने के इच्छुक। प्र+हृ+लृट्+शतृ तृ० १। (१०) श्लोक में दो च एक साथ क्रिया के होने को सूचित करते हैं। यहाँ पर मन का मोह-रहित होना कारण है और काम का बाण चढ़ाना कार्य है। दोनों के एक साथ होने से अतिशयोक्ति है। दो च के कारण समुच्चय है। अतः अतिशयोक्तिमूलक समुच्चय है। भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण (३-४२) में इसको स्मरण अलंकार का उदाहरण दिया है। उन्होंने कहा है :—अदृष्टादपि स्मरणे स्मरणालंकारः। मुनिसुता··· इत्यदृष्टकृतं स्मरणमिदम्।

**७४. विदूषकः—तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयिष्यामि।** [चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकट्ठेण कन्दप्पबाणं णासइस्सं।]

**(इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति।)**

**विदूषक—आप जरा रुकिए। मैं इस डंडे से कामदेव के बाण को नष्ट करता हूँ। (डंडा उठाकर आम के बौर को तोड़ना चाहता है।)**

**७५. राजा—(सस्मितम्) भवतु। दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि।**

**राजा—(मुस्कराकर) बस करो। मैंने (तुम्हारा) ब्रह्मतेज देख लिया। मित्र, कहाँ बैठकर मैं प्रिया का कुछ अनुकरण करने वाली इन लताओं को देखकर अपनी दृष्टि को आनन्दित करूँ?**

**७६. विदूषकः—नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता सन्दिष्टा। माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।** [णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमण्डवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउन्दलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति।]

विदूषक—आपने समीपवर्तिनी दासी चतुरिका को आदेश दिया ही था कि—"मैं माधवी-लता के मण्डप में यह समय बिताऊँगा। तू चित्रपट्ट पर मेरे अपने हाथों से बनाए हुए श्रीमती शकुन्तला के चित्र को वहाँ मेरे पास लेकर आना।"

७७. राजा—ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय।

राजा—ऐसा मन बहलाने के लिए स्थान है। अच्छा, तो वही रास्ता दिखाओ।

७८. विदूषकः—इत इतो भवान्। [इदो इदो भवं।]
( उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति। )

विदूषक—आप इधर से आइए।

(दोनों चारों ओर घूमते हैं। सानुमती पीछे-पीछे चलती है।)

७९. विदूषकः—एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान्। [एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीददु भवं।]

( उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ )

विदूषक—यह मणिमय शिलापट्ट (संगमर्मर की चौकी) से युक्त माधवी लता का मण्डप (फूलों के) उपहारों से मनोहर होने के कारण निःसन्देह स्वागतपूर्वक हम लोगों को आमन्त्रित कर रहा है। तो यहाँ प्रविष्ट होकर आप बैठिए।

(दोनों प्रविष्ट होकर बैठते हैं।)

### टिप्पणी

( १ ) **कन्दर्पबाणम्**—कामदेव के बाण इस आम्रमंजरी को। पाठभेद—कन्दर्पव्याधिम्—कामदेवरूपी व्याधि को या कामदेव के द्वारा दिए गए दुःख को। पहला पाठ अधिक उचित है। ( २ ) **ब्रह्मवर्चसम्**—ब्राह्मण का तेज। ब्रह्मणः वर्चः, तत्पुरुष। ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः (५-४-७८) से समासान्त अच् प्रत्यय। ( ३ ) **विलोभयामि**—आनन्दित करूँ, बहलाऊँ। पाठभेद—विनोदयामि—बहलाऊँ। वि+लुभ्+णिच्+लट्। वियोगावस्था में मन बहलाने के चार उपाय बताए गए हैं—(क) तत्सदृश वस्तुओं को देखना, (ख) उसका चित्र

बनाना, (ग) स्वप्न में उसका दर्शन करना, (घ) उसके द्वारा छुई हुई वस्तुओं को छूना। यहाँ प्रथम दो का वर्णन है। मल्लिनाथ ने रघुवंश (८–९२) में गुणपताका का इस विषय का श्लोक उद्धृत किया है—वियोगावस्थासु प्रियजनसदृक्षानुभवनं, ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि। तदङ्गस्पृष्टानामुपगतवतां स्पर्शनमपि, प्रतीकारः कामव्यथितमनसां कोऽपि गदितः॥ (४) **अतिवाहयिष्ये**—बिताऊँगा। णिचश्च (१-३-७४) से आत्मनेपद। (५) **प्रतिकृतिम्०**—चित्र को लाना। इसके द्वारा द्वितीय उपाय चित्रकर्म का वर्णन है। (६) **ईदृशम्**—यह माधवीमण्डप के लिए है। कुछ टीकाकारों ने इसका यह अर्थ किया है—अब मेरे लिए ऐसे ही मनोरंजन के साधन हैं। (७) **मणिशिला०**—संगमर्मर की बनी चौकी या मणिजटित पत्थर की चौकी। (८) **उपहार०**—लता फूलों से लदी हुई है। वह मानो हमें फूलों के गुच्छे भेंट करके आमन्त्रित कर रही है। (९) **प्रतीच्छति**—आमन्त्रित कर रही है। प्रति+इष् का अर्थ स्वागत करना या स्वागतपूर्वक बुलाना है।

८०. **सानुमती**——लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत् सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि। [लदासंस्सिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं।]

(इति तथा कृत्वा स्थिता।)

**सानुमती**—मैं लता का सहारा लेकर अपनी सखी का चित्र देखती हूँ। तत्पश्चात् उसके पति के विविध प्रकार से प्रकट हुए प्रेम को उसे बताऊँगी।

(उसी प्रकार सहारा लेकर खड़ी होती है।)

८१. **राजा**——सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित् संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्।

**राजा**—मित्र, मुझे शकुन्तला के विषय की सारी पहली घटनाएँ अब स्मरण आ रही हैं। मैंने तुम्हें बताया भी था। उसके परित्याग के समय तुम मेरे पास नहीं थे। तुमने पहले भी कभी उसका नाम मुझे स्मरण नहीं दिलाया था। क्या तुम भी मेरी ही तरह भूल गए थे?

---

पाठभेद—८०. का० ततस्तस्यै (फिर उस शकुन्तला को)।

८२. विदूषकः—न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयाऽपि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती। [ण विसुमरामि। किंतु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहासविअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा क्खु बलवदी।]

**विदूषक**—मैं भूला नहीं था। किन्तु सारी बात कहकर अन्त में आपने फिर कहा था कि यह सब हँसी की बात ही है, सच नहीं है। मुझ अतिमन्दबुद्धि ने वैसा ही समझ लिया। अथवा होनहार प्रबल होती है।

८३. सानुमती—एवमेवैतत्। [एव्वं णेदं।]

**सानुमती**—यही बात है।

८४. राजा—(ध्यात्वा) सखे, त्रायस्व, माम्।

**राजा**—(सोचकर) मित्र, मुझे बचाओ।

८५. विदूषकः—भोः, किमेतत्। अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। [भो, किं एदं। अणुववण्णं क्खु ईदिसं तुइ। कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा ण होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा गिरीओ।]

**विदूषक**—मित्र, यह क्या? ऐसा आपके लिए सर्वथा अनुचित है। सज्जन व्यक्ति कभी भी शोक के पात्र नहीं होते हैं। प्रचण्ड वायु (आँधी) में भी पहाड़ विचलित नहीं होते हैं।

### टिप्पणी

(१) **बहुमुखम्**—अनेक प्रकार से प्रकट। (२) **प्रथम०**—पहली घटनाओं को। (३) **कथितवानस्मि**—अंक २ में राजा ने सब बातें विदूषक को बताई थीं। विदूषक शकुन्तला को देखने से पूर्व ही लौट आया था। अंक ५ में शकुन्तला के राजा के सामने आने से पूर्व ही विदूषक हंसपदिका के पास भेज

---

पाठभेद—८३. का० एवं न्विदम् (ऐसी ही बात है)।

दिया गया था। अतः वह परित्याग के समय उपस्थित नहीं था। (४) **कच्चित्**—यह प्रश्नवाचक अव्यय है। मुझे आशा है, इस अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। (५) **मृत्पिण्ड०**—मिट्टी के ढेले के तुल्य बुद्धिवाला अर्थात् महामूर्ख, अतिमन्द बुद्धि। (६) **भवितव्यता०**—होनहार बलवान् होती है। भू+तव्य+ता। इस भाव की अन्य सूक्तियाँ ये हैं :—(क) सर्वंकषा भगवती भवितव्यतैव (मालती० १—२३), (ख) नियतिः केन वार्यते, (ग) यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (हितोपदेश), (घ) भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्। (७) **शोकवास्तव्याः**—शोक के आधार या निवासस्थान। शोकस्य वास्तव्याः, तत्पुरुष। पाठभेद—शोकवक्तव्याः—शोक में दूसरों के द्वारा समझाने के योग्य। यह पाठ अस्पष्ट है।

**८६. राजा—वयस्य, निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि—**

**इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता**
**स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।**
**पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती**
**मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥९॥**

**अन्वय**—इतः प्रत्यादेशात् स्वजनम् अनुगन्तुं व्यवसिता, गुरुसमे गुरुशिष्ये तिष्ठ इति उच्चैः वदति (सति) स्थिता। बाष्पप्रसरकलुषां दृष्टिं पुनः मयि क्रूरे अर्पितवती (इति) यत् तत् सविषं शल्यम् इव मां दहति।

**राजा—मित्र, परित्याग के कारण विकल प्रियतमा की दशा को स्मरण करके मैं अत्यधिक अधीर हो गया हूँ। क्योंकि वह—**

**यहाँ मेरे द्वारा परित्यक्त होने के कारण अपने घरवालों के पीछे-पीछे जाने लगी, (किन्तु) पिता के तुल्य, पिता के शिष्य, के जोर से यह कहने पर कि—"यहीं रुक" वह रुक गई और आँसुओं के प्रवाह से मलिन दृष्टि फिर उसने मुझ क्रूर पर डाली। वह सारी (घटना) विष से बुझे हुए बाण की तरह मुझे जला रही है। (दुःखित कर रही है) ॥९॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—इतः—अस्मात् स्थानात्, प्रत्यादेशात्—निराकरणहेतोः, स्वजनं—स्वबन्धुवर्गम्, अनुगन्तुम्—अनुसर्तुम्, व्यवसिता—प्रवृत्ता, गुरुसमे—पितृवन्माननीये, गुरुशिष्ये—पितृशिष्ये शार्ङ्गरवे, तिष्ठ—अत्रैव तिष्ठ, इति

---

पाठभेद—८६. नि० मुहुः (बारबार)।

उच्चैः—तारस्वरेण, वदति सति—भाषमाणे सति, स्थिता—गमनात् निवृत्ता। बाष्प०—बाष्पाणाम् अश्रूणां प्रसरेण प्रवाहेण कलुषां मलिनाम्, दृष्टि—लोचनम्, पुनः—भूयोऽपि, मयि क्रूरे—मयि नृशंसे दुष्यन्ते, अर्पितवती—पातितवती, इति यत् तत्—तत् सर्वमेव वृत्तम्, सविषं—विषलिप्तम्, शल्यमिव—बाण इव, मां—दुष्यन्तम्, दहति—पीडयति। उपमाऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **निराकरण०**—निराकरणेन विक्लवायाः, तत्पुरुष। परित्याग के कारण व्याकुल। ( २ ) **समवस्थाम्**—अवस्था को। अवस्था के अर्थ में समवस्था का प्रयोग है। ( ३ ) **अशरणः**—असहाय अर्थात् धैर्यरहित, अधीर, दुःखित। ( ४ ) **इतः**—इस स्थान से अर्थात् मेरे द्वारा। ( ५ ) **प्रत्यादेशात्**—परित्यक्त होने के कारण। हेतु अर्थ में पंचमी। ( ६ ) **व्यवसिता**—प्रवृत्त हुई। वि+अव+सो+क्त। द्यतिस्यति० (७-४-४०) से सो धातु के आ को इ। (७) **स्थिता**—रुक गई। पाठभेद—मुहुः—बारबार। मुहुः पाठ रखने पर शकुन्तला ढीठ सिद्ध होती है, क्योंकि बार-बार पिता के तुल्य गुरुशिष्य के कहने पर उसने रोती हुई दृष्टि से राजा को देखा। स्थिता पाठ रखने से वह आज्ञाकारिणी ज्ञात होती है। एक बार डाँटने पर ही रुक गई। अतः स्थिता पाठ अपनाया गया है। ( ८ ) **वदति**—कहने पर। वद्+शतृ सप्तमी एकवचन का रूप है। (९) **बाष्प०**—बाष्पाणां प्रसरेण कलुषाम्, तत्पुरुष। आँसुओं के विस्तार के कारण मलिन। (१०) **दहति**—जला रहा है अर्थात् अत्यधिक दुःख दे रहा है।

**८७. सानुमती—अहो, ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य सन्तापेनाहं रमे।** [ अम्महे, ईदिसी स्वकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि। ]

**सानुमती—ओह, अपने स्वार्थ के प्रति प्रेम ऐसा ही होता है कि मैं इसके दुःख से प्रसन्न हो रही हूँ।**

**८८. विदूषकः—भोः, अस्ति मे तर्कः केनापि तत्रभवत्याकाशचारिणा नीतेति।** [ भो, अत्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदी आआसचारिणा णीदे त्ति। ]

**विदूषक—मित्र, मेरा अनुमान है कि उस माननीया (शकुन्तला) को कोई आकाश में विचरण करने वाला व्यक्ति उठा ले गया है।**

**८९. राजा—कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहेत ?**

**मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते।**

राजा—उस पतिव्रता को और कौन छूने का साहस कर सकता है? मैंने सुना है कि मेनका तुम्हारी सखी (शकुन्तला) की माता है। मेरा हार्दिक विचार है कि उसकी (मेनका की) सखियाँ तुम्हारी सखी को ले गई हैं।

**९०. सानुमती—संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः।** [संमोहो क्खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो।]

सानुमती—(इस राजा का शकुन्तला को) भूलना ही आश्चर्य की बात है, स्मरण करना (आश्चर्य की बात) नहीं है।

**९१. विदूषकः—यद्येवमस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या।** [जइ एव्वं अत्थि क्खु समाअमो कालेण तत्तहोदीए।]

विदूषक—यदि ऐसी बात है तो अवश्य ही यथासमय आपका उन श्रीमती जी से मिलन होगा।

**९२. राजा—कथमिव?**

राजा—कैसे?

**९३. विदूषकः—न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः।** [ण क्खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं चिरं देक्खिदुं पारेन्ति।]

विदूषक—वस्तुतः माता-पिता पति के वियोग से दुःखित पुत्री को अधिक समय तक नहीं देख सकते हैं।

### टिप्पणी

(१) **स्वकार्य०**—अपने कार्य अर्थात् स्वार्थ के प्रति ऐसी ही तत्परता होती है, अर्थात् अपना स्वार्थ ऐसा ही मुख्य होता है। सानुमती को इसलिए भेजा गया था कि वह जाकर देखे कि शकुन्तला के परित्याग के कारण राजा की मानसिक अवस्था कैसी है। राजा जितना अधिक दुःखित है, उतनी ही सानुमती को प्रसन्नता है, क्योंकि राजा का वह दुःख शकुन्तला के दुःख को शीघ्रातिशीघ्र दूर करेगा। स्वस्य कार्यं स्वकार्यं, तत् परं यस्याः सा स्वकार्यपरा, तस्याः भावः। (२) **केनापि०**—इससे संकेत है कि शकुन्तला मरी नहीं है, अतः उससे मलना संभव है। (३) **पतिदेवताम्**—पतिव्रता को। पतिः देवता यस्याः

ताम्, वहु० । पति ही जिसका देवता है। देव एव देवता। देव शब्द से स्वार्थ में तल् ( ता ) प्रत्यय, देवात् तल् (५-४-२७) से । पतिव्रता स्त्री तेजोमयी होती है, उसे कोई दुष्ट दवा नहीं सकता है। पतिव्रता का महत्त्व ब्रह्मवैवर्तपुराण (८३) में दिया है—स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा। नहि तस्या भयं किंचिद् यमादपि···। रामायण (८-११८-१७) में सीता के लिए लिखा है—रक्षितां स्वेन तेजसा···। न च शक्तः स दुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम्। प्रधर्षयितुम्···। ( ४ ) **परामर्ष्टुम्**—छूने को। इसका गौण अर्थ है, आक्रमण करने को। ( ५ ) **सख्याः**—पति का मित्र भी पत्नी का मित्र होता है। अतएव मेघदूत में कहा है—निर्विनोदां सखीं ते (२-२८), जाने सख्यास्तव मयि मनः (२-३४)। ( ६ ) **जन्मप्रतिष्ठा**—जन्मस्थान, जन्मदात्री। प्रतिष्ठा—प्रति+स्था+अङ (अ)। जन्मनः प्रतिष्ठा। ( ७ ) **तत्सह०**—शकुन्तला को वस्तुतः मेनका ही उठाकर ले गई थी। आगे अंक ७ में मारीच ऋषि ने कहा है—यदैव··· शकुन्तलामादाय मेनका···उपगता। ( ८ ) **कालेन**—यथासमय, समयानुसार। अपवर्गे तृतीया (२-३-६) से तृतीया। ( ९ ) **मातापितरौ**—माता च पिता, द्वन्द्व। आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (६-३-२५) से आनङ होने से मातृ को माता। (१०) **न पारयतः**—माता-पिता पुत्री को बहुत समय तक दुःखित नहीं देख सकते हैं, अतः वे शीघ्र ही शकुन्तला को राजा के पास भेज देंगे।

**९४. राजा—वयस्य,**

**स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु**
**क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्।**
**असन्निवृत्यै तदतीतमेते**
**मनोरथा नाम तटप्रपाताः ॥१०॥**

**अन्वय**—तत् स्वप्नः नु, माया नु, मतिभ्रमः नु, तावत्फलमेव क्लिष्टं पुण्यं नु, असन्निवृत्त्यै अतीतम्। एते मनोरथाः नाम तटप्रपाताः।

**राजा—मित्र, वह (शकुन्तला का मिलन) क्या स्वप्न था? क्या वह माया थी? क्या वह मेरी बुद्धि का भ्रम था? क्या वह उतने ही फल वाला मेरा अत्यल्प पुण्य था? वह कभी न लौटने के लिए चला गया। ये मेरे मनोरथ नदी के किनारे के पतन के तुल्य हैं (जो कभी उठकर सत्य नहीं होंगे) ॥१०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—तत्—शकुन्तलासंमेलनरूपं वस्तु, स्वप्नो नु—किमिति स्वप्नः, माया नु—केनापि मायिकेन प्रयुक्तम् इन्द्रजालं किम्, मतिभ्रमो नु—किं वा मम बुद्धिविपर्ययो जातः, तावत्फलमेव—तावन्मात्रमेव फलं यस्य तत्, क्लिष्टम्—अत्यल्पम्, पुण्यं नु—सत्कर्म किम्। असन्निवृत्त्यै—अपुनरागमनाय, अतीतं—

गतम्। एते—इमे, मनोरथाः—ममाभिलाषाः, नाम—इत्यलीके, तटप्रपाताः—तटस्य तीरस्य प्रपातः पतनम् इव प्रपातः येषां तादृशाः सन्ति। अत्र सन्देहः काव्यलिङ्गं चालंकारौ स्तः। प्ररोचना नाम विमर्शसन्ध्यङ्गं संशयनामकं नाट्यलक्षणं च वर्तेते। उपजातिर्वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **स्वप्नो नु०**—अँगूठी मिलने के बाद राजा को जो शकुन्तला से मिलन का पूरा विवरण स्मरण हुआ, उस पर राजा चार विकल्प करता है और पहले विकल्प को काट कर दूसरा विकल्प करता जाता है। ये चार विकल्प हैं—(क) क्या वह शकुन्तला से मिलन और सुखानुभव स्वप्न था ? नहीं, मैं उस समय सोया हुआ नहीं था। मेरी स्मृति स्पष्ट रूप से बताती है कि मैंने उसके मिलन का अनुभव किया है, अतः वह स्वप्न नहीं था। (ख) तो क्या वह किसी मायावी के द्वारा रचित माया थी ? नहीं, किसी मायावी का साहस नहीं है कि वह मेरे सामने जादू कर सके। दूसरी बात यह है कि जादू का प्रभाव थोड़े ही समय रहता है, परन्तु अँगूठी मिलने तक के इस लम्बे समय में मुझे स्मरण नहीं आया, अतः यह माया नहीं थी। (ग) तो क्या यह मेरी बुद्धि का भ्रम था ? नहीं, मुझे उस समय की सब बातें ठीक-ठीक स्मरण हैं, अतः उस समय मेरी बुद्धि में कोई भ्रम नहीं था। (घ) तो क्या यह मेरा थोड़ा सा पुण्य था, जिसका केवल इतना ही फल था कि थोड़े समय के लिए उससे मिलन हो सके ? राजा इस विचार पर पहुँचता है कि मेरा पुण्य थोड़ा था, अतः उतने थोड़े समय के लिए शकुन्तला से मिलन हो सका। ( २ ) **माया नु**—क्या यह माया थी ? जागृत व्यक्ति पर जादू किया जाता है। माया शब्द मुख्य रूप से वेदान्त दर्शन में आता है। इसका पारिभाषिक अर्थ है—सत्य में असत्य की कल्पना करना। माया अविद्यामूलक है। इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है। इसकी दो शक्तियाँ हैं—आवरण और विक्षेप। आवरण के द्वारा वस्तु के स्वरूप का अज्ञान होता है और विक्षेप के द्वारा अन्य वस्तु का भ्रम उत्पन्न होता है। अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी० (शारीरक भाष्य १-४-३), शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम्। (दृग्दृश्यविवेक १३)। ( ३ ) **क्लिष्टम्**—नष्टप्रायः, जो प्रायः क्षीण हो चुका था, अतएव नाममात्र शेष। ( ४ ) **तावत्फलम्०**—जिसका उतना ही फल मिलना था। तावत् फलं यस्य तत्, बहु०। ( ५ ) **असन्निवृत्त्यै०**—कभी फिर न लौटकर आने के लिए वह चली गई, अर्थात् शकुन्तला अब फिर नहीं मिलेगी। ( ६ ) **मनोरथाः**—शकुन्तला के लिए मेरे मनोरथ ऐसे ही हैं, जैसे किनारों का टूट-टूट कर गिरना। उससे मिलने के विचार झूठे ही हैं। ये पुनः सत्य नहीं होंगे, जैसे टूटे हुए किनारे फिर नहीं जुड़ते। पाठभेद—मनोरथानाम् अतटप्रपाताः—मेरे मनोरथ पहाड़ की ऊँची चोटी से गिरकर नष्ट हो रहे हैं। अतट का अर्थ है ऊँची चोटी। ( ७ ) इस श्लोक में प्रथम दो पंक्तियों में शुद्ध सन्देह होने से सन्देह

अलंकार है। प्रथम दो पंक्तियाँ असंनिवृत्ति में कारण हैं, अतः काव्यलि है। विदूषकः—यद्येवम्० से लेकर यहाँ तक सिद्धों के वचन के तुल्य भावी घटना की सूचना के कारण प्ररोचना नामक विमर्श सन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—सिद्धामन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात् प्ररोचना। (दशरूपक १-४७)। यहाँ सन्देह होने के कारण संशय नामक नाटकीय लक्षण है। उसका लक्षण है—संशयोऽज्ञाततत्त्वस्य वाक्ये स्याद् यदनिश्चयः। (सा० दर्पण ६-१७६)।

**९५. विदूषकः—मैवम्। नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति।** [मा एव्वं। णं अंगुलीअअं एव्वं णिदंसणं अवस्संभावी अचिन्तणिज्जो समाअमो होदि त्ति।]

**विदूषक—ऐसा न कहिए। वस्तुतः यह अँगूठी ही इस बात का प्रमाण है कि अवश्यंभावी मिलन अचानक ही होता है।**

**९६. राजा—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) अये, इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्।**

**तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं**
**प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन।**
**अरुणनखमनोहरासु तस्या-**
**श्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥११॥**

**अन्वय**—हे अङ्गुलीय, तव सुचरितं मम इव नूनं प्रतनु, फलेन विभाव्यते। यत् अरुणनखमनोहरासु तस्याः अङ्गुलीषु लब्धपदं च्युतम् असि।

**राजा—(अँगूठी को देखकर) ओह, दुर्लभ स्थान से गिर जाने वाली यह (अँगूठी) शोक के योग्य है।**

**हे अँगूठी, तेरा पुण्य मेरी तरह ही अवश्य न्यून है, यह (तेरे द्वारा अनुभूत) फल से ज्ञात होता है, जो कि तू लाल नाखूनों से मनोहर उस (शकुन्तला) की अँगुलियों में स्थान पाकर गिर पड़ी थी ॥११॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे अङ्गुलीय, तव—त्वदीयम्, सुचरितं—पुण्यम्, मम इव—दुष्यन्तस्येव, नूनम्—अवश्यम्, प्रतनु—स्वल्पम्, फलेन—एतत् त्वयाऽनुभूतेन परिणामेन, विभाव्यते—ज्ञायते। यत् अरुण०—अरुणैः आरक्तैः नखैः मनोहरासु मनोरमासु, तस्याः—शकुन्तलायाः, अङ्गुलीषु, लब्धपदं—लब्धं प्राप्तं पदं स्थानं

ेन तादृशं सदपि, च्युतमसि—पतितमसि। अत्राऽनुमानं काव्यलिङ्गं समासोक्तिश्चालंकाराः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **निदर्शनम्**—उदाहरण। यहाँ पर प्रमाण अर्थ है। अँगूठी ही इस बात का प्रमाण है कि अवश्यंभावी मिलन अवश्य होगा। जैसे यह अँगूठी मिली है, इसी प्रकार शकुन्तला भी अचानक मिलेगी। निदर्श्यते अनेन इति, नि+दृश्+ल्युट्। (२) **अवश्यंभावी**—होनहार। अवश्यं भवतीति, अवश्यम्+भू+णिनि, आवश्यक अर्थ में आवश्यकाधमर्ण्ययोः० (३-३-१७०) से णिनि। (३) **समागमः**—मेल, मिलना। सम्+आ+गम्+अप् (अ)। ग्रहवृदृ० (३-३-५८) से अप्। (४) **असुलभ०**—दुर्लभ स्थान से गिरने वाली। असुलभं यत् स्थानं तस्माद् भ्रश्यति इति, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। असुलभ—नञ्+सु+लभ्+खल् (अ)। शकुन्तला की अँगुलियों में स्थान पाना दुर्लभ कार्य था। स्थान शब्द शकुन्तला की अँगुलियों के लिए है। (५) **सुचरितम्**—पुण्य। (६) **प्रतनु**—अति न्यून। जैसे मेरे पुण्य न्यून थे, वैसे ही तेरे भी पुण्य न्यून थे। (७) **फलेन विभाव्यते**—जो फल या परिणाम तुझे प्राप्त हुआ है, उससे यही प्रतीत होता है। (८) **अरुण०**—अरुणैः नखैः मनोहरासु, तत्पुरुष। लाल नाखून सौन्दर्य के सूचक माने गए हैं। राघव ने सामुद्रशास्त्र का श्लोक उद्धृत किया है—नातिह्रस्वा नातिदीर्घा न स्थूला न कृशा अपि। अवक्राः सरला रक्तनखा रक्ततला अपि। कोमलाः सितविन्द्वाढ्या भङ्गुरा दीप्तिमन्नखाः। तादृगङ्गुलयो यस्याः सा भवेद् राजवल्लभा। (९) **लब्धपदम्**—लब्धं पदं येन तत्, बहु०। जिसको स्थान प्राप्त हो गया है। (१०) यहाँ पर अल्प फल से अल्प पुण्य का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है। फलेन० अल्प पुण्य का कारण होने से काव्यलिंग है। अँगूठी के गिरने में क्षीण पुण्य मनुष्य के स्वर्ग से गिरने का आरोप होने से समासोक्ति है।

**९७. सानुमती—यद्यन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत्।** [जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे।]

**सानुमती—यदि यह किसी और के हाथ पड़ जाती तो वस्तुतः शोक की बात हो जाती।**

**९८. विदूषकः—भोः, इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रापिता?** [ भो, इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थब्भासं पाविदा? ]

**विदूषक—मित्र, आपने यह नामांकित अँगूठी किस प्रसंग में उनके हाथ में पहनाई थी?**

**९९. सानुमती**—ममापि कौतूहलेनाकारित एषः। [मम वि कोदूहलेण आआरिदो एसो।]

सानुमती—मेरी कुतूहलता से यह भी प्रेरित हुआ है।

**१००. राजा**—श्रूयताम्। स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति।

राजा—सुनो। जब मैं अपने नगर के लिए प्रस्थान करने लगा, तब मेरी प्रिया ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"पतिदेव, कितने दिनों में आप मुझे (अपना) समाचार भेजेंगे।"

**१०१. विदूषकः**—ततस्ततः? [तदो तदो?]

विदूषक—फिर क्या हुआ?

**१०२. राजा**—पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय गच्छसि यावदन्तम्।
तावत् प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥१२॥

तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम्।

अन्वय—हे प्रिये, दिवसे दिवसे एकैकं मदीयं नामाक्षरं गणय। यावत् अन्तं गच्छसि, तावत् मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनः तव समीपम् उपैष्यति इति।

राजा—तत्पश्चात् इस अँगूठी को उसकी अँगुली में पहनाते हुए मैंने उससे कहा—हे प्रिये, इस अँगूठी में प्रतिदिन एक-एक मेरे नाम का अक्षर गिनना। जब तक तुम उसकी समाप्ति पर पहुँचोगी, तब तक मेरे अन्तःपुर तक पहुँचाने वाला व्यक्ति तुम्हारे समीप पहुँच जाएगा ॥१२॥

और वह काम मुझ क्रूरहृदय ने अज्ञानवश नहीं किया।

संस्कृत-व्याख्या—हे प्रिये—हे कान्ते, अत्र—अङ्गुलीयके, दिवसे दिवसे—प्रतिदिनम्, एकैकम्—एकम् एकम्, मदीयं—मामकम्, नामाक्षरं—नाम्नः अक्षरम्, गणय—गणनां कुरु। यावत्—यत्कालम्, अन्तम्—अक्षराणां समाप्तिम्,

---

पाठभेद—१०२. नि० गच्छति (गणना जब तक समाप्त होती है)।

गच्छसि—प्राप्नोषि, तावत्—तत्कालम्, ततः पूर्वमेवेत्यर्थः, मदव०—मम दुष्यन्तस्य अवरोधगृहे अन्तःपुरे प्रवेशं प्रवेशनम्, नेता—प्रापयिता, जनः—नरः, तव—शकुन्तलायाः, समीपम्—अन्तिके, उपैष्यति इति—आगमिष्यतीति। पर्यायोक्तमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **शोचनीयं०**—शोक की बात होती। ( २ ) **उद्घातेन०**—प्रसंग या प्रकरण में। ( ३ ) **आकारितः**—प्रेरित हुआ है। आ+कारि का अर्थ प्रेरणा है। इसके हृदय में भी मेरी वाली कुतूहलता हुई है। यह भी वही बात पूछ रहा है। ( ४ ) **प्रतिपत्ति०**—अपना समाचार भेजेंगे। ( ५ ) **एकैकम्**—एकम् एकम्। यहाँ पर वीप्सा अर्थ न होने से 'स्वार्थे अवधार्यमाणे एकस्मिन् द्वे०' इस वार्तिक से द्वित्व और एक बहुव्रीहिवत् (८-१-९) से सुप् का लोप। (६) **दिवसे दिवसे**—प्रतिदिन। नित्यवीप्सयोः (८-१-४) से वीप्सा अर्थात् द्विरुक्ति अर्थ में द्वित्व। ( ७ ) **नामाक्षरं०**—दुष्यन्त में व्यंजनों की भी गिनती करने से पाँच अक्षर होते हैं, अतः पाँच दिन के अन्दर कोई व्यक्ति तुम्हारे पास आ जाएगा। ( ८ ) **गच्छसि**—यहाँ पर यावत् के कारण यावत्पुरानिपातयोर्लट् (३-३-४) से भविष्यत् अर्थ में लट्। ( ९ ) **मदवरोध०**—मम अवरोधगृहे प्रवेशम्, तत्पुरुष। यहाँ पर गुणकर्मणि वेष्यते (वार्तिक) से द्वितीया। (१०) **नेता**—पहुँचाने वाला। (११) यहाँ पर स्पष्ट पाँच दिन न कहकर अप्रत्यक्ष रूप से कहने के कारण पर्यायोक्त अलंकार है।

**१०३. सानुमती—रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः। [रमणीओ क्खु अवही विहिणा विसंवादिदो।]**

**सानुमती—यह बहुत सुन्दर अवधि थी, (परन्तु) भाग्य ने इसे बिगाड़ दिया।**

**१०४. विदूषकः—कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत्?** [कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भन्तले आसि ? ]

**विदूषक—धीवर के द्वारा काटी हुई रोहू मछली के पेट के अन्दर यह (अँगूठी) कैसे पहुँची ?**

**१०५. राजा—शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्।**

---

पाठभेद—१०४. का० अथ कथं [अध कहं] (कैसे)।

राजा—शचीतीर्थ की वन्दना करती हुई तुम्हारी सखी के हाथ से यह गंगा की धारा में गिर पड़ी।

१०६. **विदूषकः**—युज्यते । [जुज्जइ ।]

विदूषक—यह ठीक है (यह संभव है)।

१०७. **सानुमती**—अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये सन्देह आसीत् । अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् ? [अदो एव्व तवस्सिणीए सउन्दलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि । अहवा ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि । कहं विअ एदं ?]

सानुमती—इसीलिए इस अधर्मभीरु राजर्षि को बेचारी शकुन्तला के साथ विवाह के विषय में सन्देह हो गया था। अथवा, इस प्रकार का प्रेम अभिज्ञान (विवाह की वस्तु) की अपेक्षा करता है, यह कहाँ तक ठीक है ?

१०८. **राजा**—उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम् ।

राजा—अच्छा तो मैं अब इस अँगूठी को उलाहना देता हूँ।

१०९. **विदूषकः**—( आत्मगतम् ) गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम् । [गहीदो णेण पन्था उम्मत्तआणं ।]

विदूषक—(मन में) इन्होंने अब पागलों का रास्ता अपनाया है।

११०. **राजा**—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) मुद्रिके,

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि ?

अथवा—

अचेतनं नाम गुणं न लक्षये-
न्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ।।१३।।

अन्वय—बन्धुरकोमलाङ्गुलिं तं करं विहाय कथं नु अम्भसि निमग्नम् असि। अथवा अचेतनं गुणं नाम न लक्षयेत्, मया एव कस्मात् प्रिया अवधीरिता।

राजा—(अँगूठी को देखकर) हे अँगूठी, सुन्दर और कोमल अँगुलियों वाले

**उस हाथ को छोड़कर तुम कैसे जल में गिर पड़ी ? अथवा—अचेतन वस्तु गुणों की ओर ध्यान न दे, किन्तु मैंने ही क्यों प्रिया का अपमान किया ?॥१३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—बन्धुर०—बन्धुराः सुन्दराः कोमलाः मृदवः अङ्गुलयः यत्र तम्, तं करं—शकुन्तलाया हस्तम्, विहाय—त्यक्त्वा, कथं नु—केन कारणेन, अम्भसि—नीरे, निमग्नमसि—नितरां मग्नमसि। अथवा अचेतनं—चेतनारहितं वस्तु, गुणं—वैशिष्टयम्, नाम—संभावनायाम्, न लक्षयेत्—न द्रष्टुं शक्नुयात्। मया एव—मया सचेतनेनैव, कस्मात्—केन कारणेन, प्रिया—शकुन्तला, अवधीरिता—तिरस्कृता। अत्र विभावना समासोक्तिरर्थान्तरन्यासश्चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **विसंवादितः**—बिगाड़ दिया। वि+सम्+वद्+णिच्+क्त। (२) **उन्मत्तानाम्**—पागलों का। उन्माद काम की दशाओं में आठवीं दशा है। उसकी ओर यह संकेत है। १० काम की दशाएँ ये हैं—अङ्गेष्वसौष्ठवं तापः पाण्डुता कृशताऽरुचिः। अधृतिः स्यादनालम्बस्तन्मयोन्मादमूर्च्छना:। मृतिश्चेति क्रमाज्ज्ञेया दश स्मरदशा इह॥ (सा० दर्पण ३-२०५, २०६)। मेघदूत (१-५) में भी कहा है—कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। ( ३ ) **बन्धुर०**—वन्धुराः कोमलाः अङ्गुलयः यत्र तम्, बहु०। वन्धुर का अर्थ सुन्दर है। वन्धुरं तून्नतानतम्। जो वस्तु उचित रूप से यथास्थान उठी हुई हो और दबी हुई हो। बन्ध्+उरच्। ( ४ ) **न लक्षयेत्**—न देख सके। (५) **अवधीरिता**—तिरस्कार किया, अपमान किया, अर्थात् शकुन्तला का परित्याग किया। मैं चेतन हूँ, परन्तु मैंने उसका परित्याग क्यों किया ? ( ६ ) यहाँ पर तिरस्कार के कारण के अभाव में भी तिरस्कार करने से विभावना है। अचेतन अँगूठी में चेतन व्यक्ति का आरोप करके उसके डूबने का वर्णन होने से समासोक्ति है। तृतीय चरण में सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है।

**१११. विदूषकः—(आत्मगतम्) कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। [कहं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि।]**

**विदूषक—(मन में) क्या बात है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो भूख मुझे खा जाएगी।**

**११२. राजा—प्रिये, अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन।**

**राजा—प्रिये, बिना कारण ही परित्याग के कारण जो पश्चात्ताप उससे संतप्त-हृदय इस व्यक्ति (अर्थात् दुष्यन्त) को पुनः दर्शन देकर अनुगृहीत करो।**

(प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता)

**११३. चतुरिका**—इयं चित्रगता भट्टिनी । [इअं चित्तगदा भट्टिणी ।] (इति चित्रफलकं दर्शयति । )

(चित्रपट्ट हाथ में लिए चतुरिका का पर्दा हटाकर प्रवेश)

**चतुरिका**—यह चित्रलिखित महारानी हैं । (यह कहकर चित्रपट्ट दिखाती है ।)

**११४. विदूषकः**—(विलोक्य) साधु वयस्य । मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः । स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु । [साहु वअस्स । महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो । क्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु ।]

**विदूषक**—(देखकर) मित्र, बहुत सुन्दर है । इसमें भावों का संचार सुन्दर विन्यास के कारण दर्शनीय है । इसमें उच्च और निम्न स्थानों पर मेरी दृष्टि लड़खड़ाती-सी है ।

**११५. सानुमती**—अहो, एषा राजर्षेर्निपुणता । जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति । [अम्मो, एसा राएसिणो णिउणदा । जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति ।]

**सानुमती**—अहो, यह राजर्षि कितने निपुण हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरी सखी (शकुन्तला) मेरे सामने विद्यमान हो ।

**११६. राजा**—

यद्यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत्तदन्यथा ।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥१४॥

**अन्वय**—चित्रे यत् साधु न स्यात्, तत् तत् अन्यथा क्रियते । तथापि तस्याः लावण्यं रेखया किंचित् अन्वितम् ।

**राजा**—चित्र में जो कुछ अच्छा नहीं है (अर्थात् त्रुटिपूर्ण है, उसको ठीक करता हूँ । फिर भी उस (शकुन्तला) का सौन्दर्य रेखाओं के द्वारा कुछ ही प्रकट हो पाया है ॥१४॥

**संस्कृत-व्याख्या**—चित्रे—मत्कृते आलेख्ये, यत् यत् साधु न स्यात्—शोभनं नास्ति, तत् तत् अन्यथा क्रियते—तत् संशोध्य शोभनं क्रियते । तथापि तस्याः—शकुन्तलायाः, लावण्यं—सौन्दर्यम्, रेखया—तूलिकाविहिताभिः रेखाभिः, किंचित्—किंचिदेव, अन्वितम्—युक्तमस्ति । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **खादितव्यः०**—विदूषक भूखा है। वह हास्य की पुट देकर कहता है कि भूख मुझे खा जाएगी। राजा के कथन की ओर उसका ध्यान नहीं है। ( २ ) **अकारण०**—चित्र को संबोधन कर राजा कहता है कि मैं परित्याग के पश्चात्ताप से खिन्न हूँ, तुम मुझ पर दया करो। ( ३ ) **मधुरावस्थान०**—शकुन्तला आदि के हर्ष, भय आदि भावों का संचार बहुत ही सुन्दर रूप से चित्रित किया गया है, अतः दर्शनीय है। ( ४ ) **स्खलति**—चित्र बहुत सावधानी से खींचा गया था, अतः उसमें ऊँचे और नीचे स्थान बहुत बारीकी से दिखाए गए थे। अतः ऐसे स्थानों पर विदूषक की भी दृष्टि रुकती जाती थी। (५) **साधु०**—चित्र में जो त्रुटि रह गई है, उसे ठीक करता हूँ। ( ६ ) **रेखया०**—शकुन्तला का सौन्दर्य रेखाओं के द्वारा बहुत थोड़ा ही प्रकट हो पाया है। राजा का भाव है कि शकुन्तला इतनी अधिक सुन्दर है कि उसकी सुन्दरता चित्र में किसी प्रकार भी नहीं लाई जा सकती है।

११७. **सानुमती—सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च।** [सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ।]

**सानुमती—पश्चात्ताप के कारण बढ़े हुए स्नेह और निरभिमान के योग्य ही यह (वक्तव्य) है।**

११८. **विदूषकः—भोः, इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमाऽत्र तत्रभवती शकुन्तला?** [भो, दाणिं तिण्हिओ तत्तहोदीओ दीसन्ति। सव्वाओ अ दंसणीआओ। कदमा एत्थ तत्तहोदी सउन्दला ?]

**विदूषक—श्रीमन्, इसमें अब तीन संमाननीय स्त्रियाँ दिखाई पड़ रही हैं। ये सभी सुन्दर हैं। इनमें से कौन सी स्त्री शकुन्तला है?**

११९. **सानुमती—अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः।** [ अणभिण्णो क्खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। ]

**सानुमती—इस व्यक्ति (विदूषक) की दृष्टि निरर्थक है, जो यह इस प्रकार के सौन्दर्य को नहीं पहचान रहा है।**

---

पाठभेद—११८. का० तिण्णि (तीन)।

Funding by IKS-MoE

**१२०. राजा—त्वं तावत् कतमां तर्कयसि ?**

राजा—अच्छा, तो तुम किसको (शकुन्तला) समझते हो ?

**१२१. विदूषकः—तर्कयामि यैषा शिथिलबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला। इतरे सख्याविति।** [तक्केमि जा एसा सिढिलबन्धणुव्वन्तकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णस्सेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे इसिपरिस्सन्ता विअ आलिहिदा सा सउन्दला। इदराओ सहीओ त्ति।]

विदूषक—मैं समझता हूँ कि जिसकी ढीली वेणी से फूल गिर गए हैं ऐसे केशपाश से युक्त, जिसके मुख पर पसीने की बूंदें दिखाई पड़ रही हैं, जिसकी भुजाएँ बहुत अधिक झुकी हुई हैं, जो जल देने से हरे-भरे और नवीन पत्तों से युक्त आम के पेड़ के पास कुछ थकी हुई सी चित्रित है, वह शकुन्तला है। अन्य दो उसकी सखियाँ हैं।

**१२२. राजा—निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्।**

**स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।**
**अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्णिकोच्छ्वासात् ॥१५॥**

**चतुरिके, अर्धलिखितमेतद् विनोदस्थानम्। गच्छ, वर्तिकां तावदानय।**

राजा—आप चतुर हैं। इस (चित्र) में मेरे भावों का संकेत है।

चित्र के किनारों पर पसीने से युक्त अँगुलियों के रखने से मैला चिह्न दिखाई पड़ रहा है और यह (चित्रगत शकुन्तला के) कपोलों पर पड़ा हुआ आंसू रंग के फूल जाने से दृष्टिगोचर हो रहा है ॥१५॥

चतुरिका, यह मनोरंजन की वस्तु अधूरी ही है। जा, कूँची लेकर आ।

संस्कृत-व्याख्या—रेखाप्रान्तेषु—चित्रपटस्य पर्यन्तभागेषु, मलिनः—कृष्ण-

---

पाठभेद—१२१. नि० शिथिलकेशबन्धनो० [सिढिलकेसबन्ध०] (शिथिल केश-बन्धन से) १२२. नि० वर्तिको० (चित्रपट के लेप के फूल जाने से)।

वर्णः, स्विन्ना०—स्विन्नानां स्वेदयुक्तानाम् अङ्गुलीनां विनिवेशः विन्यासः, दृश्यते—अवलोक्यते । इदं च—एतच्च, कपोल०—चित्रगतायाः शकुन्तलायाः कपोले गण्डदेशे पतितम्, अश्रु—नेत्रजलम्, वर्णिको०—वर्णिकायाः चित्रसाधनीभूतलेपस्य उच्छ्वासात् स्फीतताहेतोः, दृश्यं—द्रष्टुं शक्यम् । अत्रानुमानमलंकारः । आर्या जातिः ।

## टिप्पणी

(१) **पश्चात्ताप०**—पश्चात्ताप के कारण बढ़े हुए । गुरु—वड़े, महान् । (२) **अनवलेपस्य**—अभिमानहीनता के । पश्चात्ताप के कारण शकुन्तला के प्रति राजा का प्रेम वढ़ा हुआ है और उसका अभिमान दूर हो गया है, अतः वह शकुन्तला के प्रति इतने उच्च भाव प्रकट कर रहा है । (३) **अनभिज्ञः**—यह विदूषक शकुन्तला को पहचान नहीं पा रहा है । (४) **मोघदृष्टिः**—इसकी दृष्टि निरर्थक है । मोघा दृष्टिः यस्य सः, बहु० । सफल दृष्टि वाला व्यक्ति चित्र में शकुन्तला को तुरन्त पहचान लेता । विदूषक के विषय में सानुमती का यह वक्तव्य विचारपूर्ण नहीं है । विदूषक जान-बूझकर अनभिज्ञ वनता है, वस्तुतः वह शकुन्तला को पहचानता है । (५) **शिथिल०**—जिसकी शिथिल वेणी से फूल गिर गए हैं । शिथिलेन वन्धनेन उद्वान्तानि कुसुमानि यस्मात् तेन, बहु० । शिथिलकेशबन्ध० पाठ में केश शब्द अनावश्यक है । (६) **उद्भिन्न०**—उद्भिन्नाः स्वेद-बिन्दवः यस्मिन् तेन, बहु० । जिस पर पसीने की बूंदें दिखाई पड़ रही हैं । (७) **विशेषतः**—विशेष रूप से झुकी हुई वाहुओं से युक्त । अपसृत—झुकी हुई, अवनत । (८) **निपुणः**—तुमने शकुन्तला को पहचान लिया, अतः चतुर हो । (९) **भावचिह्नम्**—चित्र में मेरे भावों का संकेत है । भाव—सात्त्विक भाव । चिह्न—संकेत । (१०) **स्विन्ना०**—पसीने से युक्त अँगुलियों का रखना । स्विन्नानाम् अङ्गुलीनां विनिवेशः, तत्पुरुष । (११) **रेखाप्रान्तेषु**—चित्रपट के किनारे किनारे । रेखा—चित्र या चित्रपट के लिए है । (१२) **कपोलपतितम्**—चित्रगत शकुन्तला के गालों पर मेरे आँसू गिरे हैं, उससे वहाँ का रंग फैल गया है । (१३) **वर्णिको०**—रंग के फूल जाने से । वर्णिका और वर्णक का अर्थ रंग है । पाठभेद—वर्तिकोच्छ्वासात्—चित्रपट के लेप के फूल जाने से, वर्णकाच्छ्वासात्—रंग के फैलने से । (१४) **वर्तिकाम्**—चित्र में रंग भरने की कूँची । (१५) इस श्लोक में सात्त्विक स्वेद से युक्त अँगुलियों के द्वारा राजा की शकुन्तला के प्रति भाव-विह्वलता का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है ।

**१२३. चतुरिका—आर्य माधव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि । [अज्ज माढव्व, अवलम्ब चित्तफलअं जाव आअच्छामि । ]**

चतुरिका—आर्य माधव्य, इस चित्रपट्ट को जरा पकड़ लीजिए, जब तक मैं लौटकर आती हूँ।

**१२४. राजा**—अहमेवैतदवलम्बे। ( इति यथोक्तं करोति )। ( निष्क्रान्ता चेटी। )

राजा—मैं ही इसे पकड़ता हूँ। (वह चित्रपट्ट को पकड़ता है)।
(चेटी का प्रस्थान।)

**१२५. राजा**—( निःश्वस्य ) अहं हि—

साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥१६॥

**अन्वय**—सखे पूर्वं साक्षात् उपगताम् प्रियाम् अपहाय, पुनः चित्रार्पिताम् इमां बहुमन्यमानः, पथि निकामजलां स्रोतोवहाम् अतीत्य मृगतृष्णिकायां प्रणयवान् जातः।

राजा—(लम्बी साँस लेकर) मैं तो—

हे मित्र, पहले साक्षात् समीप आई हुई प्रिया (शकुन्तला) को छोड़कर, अब चित्रगत इसको बहुत समझता हुआ ऐसा ही हूँ, जैसे मार्ग में जल से परिपूर्ण नदी को छोड़कर मृगतृष्णा में प्रेम करने लगा हूँ ॥१६॥

**संस्कृत-व्याख्या**—हे सखे—हे मित्र, पूर्वं—प्राक्, साक्षात्—प्रत्यक्षेण, उपगतां—समीपं प्राप्ताम्, प्रियां—शकुन्तलाम्, अपहाय—त्यक्त्वा, पुनः—अधुना, चित्रार्पितां—चित्रलिखिताम्, इमां—शकुन्तलाम्, बहुमन्यमानः—अत्यादरास्पदं गणयन्, पथि—मार्गे, निकामजलां—प्रभूतजलपूर्णाम्, स्रोतोवहां—नदीम्, अतीत्य—परित्यज्य, मृगतृष्णिकायां—मरुमरीचिकायाम्, प्रणयवान्—प्रेमयुक्तः, जातः—अभवम्। निदर्शनाऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **स्रोतोवहाम्**—नदी को। वहतीति वहः, स्त्री वहा, स्रोतसो वहा—स्रोतोवहा। ( २ ) **निकाम०**—निकामं जलं यस्यां ताम्, बहु०। बहुत जल वाली। ( ३ ) **अतीत्य**—पार करके, बीच में छोड़कर। अति+इ+ल्यप्। ( ४ ) **प्रणयवान्**—प्रेमयुक्त। प्रणय शब्द सुखादिगण में है, अतः मत्वर्थं में सुखादिभ्यश्च (५-२-१३१) से इनि प्रत्यय होकर 'प्रणयी' रूप होता है। इसको वैदिक प्रयोग

---

पाठभेद—१२५. नि० निःश्वस्य इति नास्ति। का० अहं हि, इति नास्ति।

समझना चाहिए । कालिदास ने प्रणयिन् और प्रणयवत् दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। अङ्काश्रयप्रणयिनः० (शाकुन्तल ७-१७), प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं० (रघु० ९-३१), सा हि प्रणयवती० (रघु० ११-५७)। (५) **मृगतृष्णिका**—मृगाणां तृष्णा मृगतृष्णा, सा अस्ति अस्मिन् इति मृगतृष्णा, सैव मृगतृष्णिका। मरुभूमि में मृग सूर्य की किरणों के संचार को जल समझ कर अपनी प्यास बुझाने के लिए उधर भागता है। वहाँ जल न पाकर मर जाता है। अधिक गर्मी में किरणें हिलती हुई जलवत् प्रतीत होती हैं। इसके लिए ही मरुमरीचिका शब्द भी आता है। (६) इस श्लोक में असंभवद्वस्तुसम्बन्ध वाली निदर्शना है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध उपमा के रूप में समाप्त होते हैं, अतः निदर्शना है।

**१२६. विदूषकः**—(आत्मगतम्) एषोऽत्रभवान् नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः। (प्रकाशम्) भोः, अपरं किमत्र लेखितव्यम्? [एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकन्तो। भो, अवरं किं एत्थ लिहिदव्वम्?]

**विदूषक**—(मन में) यह महाराज नदी पार करके मृगतृष्णा में प्रविष्ट हो गए हैं। (प्रकट) महाराज, आपको इसमें और क्या बनाना है?

**१२७. सानुमती**—यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालेखितुकामो भवेत्। [जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे।]

**सानुमती**—मेरी सखी को जो-जो स्थान पसन्द हैं, उनको यह बनाने के इच्छुक ज्ञात होते हैं।

**१२८. राजा**—श्रूयताम्,

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥१७॥

**अन्वय**—सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी कार्या। ताम् अभितः निषण्णहरिणाः गौरीगुरोः पावनाः पादाः (कार्याः)। शाखालम्बितवल्कलस्य तरोः अधः कृष्णमृगस्य शृङ्गे वामनयनं कण्डूयमानां मृगीं च निर्मातुम् इच्छामि।

**राजा**—सुनो, जिसके रेतीले किनारे पर हंसों के जोड़े बैठे हुए हैं, ऐसी मालिनी नदी बनानी है। उसके दोनों ओर हिमालय की पवित्र पहाड़ियाँ

बनानी हैं, जिन पर हिरण बैठे हुए हैं। जिनकी शाखाओं पर वल्कल लटके हुए हैं, ऐसे वृक्ष के नीचे कृष्णमृग के सींग पर अपनी बाईं आँख खुजाती हुई मृगी को बनाना चाहता हूँ ॥१७॥

**संस्कृत-व्याख्या**—सैकत०—सैकते बालुकामये पुलिने लीनानि उपविष्टानि हंसमिथुनानि हंसानां द्वन्द्वानि यत्र सा, स्रोतोवहा—नदी, मालिनी, कार्या—आलेख्या। ताम्—मालिनीम्, अभितः—उभयतः, निषण्ण०—निषण्णा उपविष्टाः हरिणाः मृगाः येषु ते, गौरीगुरोः—हिमालयस्य, पावनाः—पवित्राः, पादाः—प्रत्यन्तपर्वताः, कार्याः। शाखा०—शाखासु लम्बितानि अवसक्तानि वल्कलानि वृक्षत्वचः यस्य तादृशस्य, तरोः—वृक्षस्य, अधः—नीचैः, कृष्णमृगस्य—हरिणविशेषस्य, शृङ्गे—विषाणे, वामनयनं—सव्यनेत्रम्, कण्डूयमानां—घर्षयन्तीम्, मृगीं च—हरिणीं च, निर्मातुम्—आलेखितुम्, इच्छामि—वाञ्छामि। तुल्ययोगिता स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **लेखितव्यम्**—लिख्+तव्य। तव्य प्रत्यय करने पर लेखितव्य रूप बनेगा। कुछ ग्रन्थों में लिखितव्यम् पाठ है। उसे अशुद्ध ही समझना चाहिए। ( २ ) **अभिरूपः**—रुचिकर, सुन्दर, पसन्द। अभिरूप का अर्थ विद्वान् भी होता है। ( ३ ) **आलेखितु०**—बनाने का इच्छुक। आलेखितुं कामः यस्य सः, बहु०। तुं काममनसोरपि, नियम से म् का लोप। ( ४ ) **सैकत०**—सैकते लीनानि हंसमिथुनानि यत्र सा, बहु०। सैकत—सिकताः सन्त्यत्र इति, सिकता+अण्। रेतीला तट। सिकता शब्द स्त्रीलिंग बहुवचन में ही आता है। ( ५ ) **पादाः**—छोटी पहाड़ियाँ। ( ६ ) **निषण्ण०**—निषण्णाः हरिणाः येषु ते, बहु०। निषण्ण—नि+सद्+क्त। ( ७ ) **गौरीगुरोः**—हिमालय के। हिमालय पार्वती का पिता है। ( ८ ) **शाखा०**—शाखासु लम्बितानि वल्कलानि यस्य तस्य, बहु०। ( ९ ) **कृष्णमृगस्य**—काला मृग स्थान की पवित्रता का सूचक है। (१०) यहाँ पर अप्रस्तुत मालिनी और पाद का कार्या इस एक क्रिया से संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

**१२९. विदूषकः—(आत्मगतम्) यथाहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः।** [जह अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लम्बकुच्चाणं तावसाणं कदम्बेहिं।]

**विदूषक—(मन में) इनकी बातों से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये इस चित्रपट्ट को लम्बी दाढ़ी वाले तपस्वियों के झुंड से भर देंगे।**

**१३०. राजा——वयस्य, अन्यच्च। शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्र विस्मृतमस्माभिः।**

राजा—मित्र, और यह करना है। शकुन्तला की जो सजावट हम करना चाहते थे, वह हम भूल गए हैं।

**१३१. विदूषकः——किमिव?** [किं विअ?]

विदूषक—वह क्या?

**१३२. सानुमती——वनवासस्य सौकुमार्यस्य विनयस्य च यत्सदृशं भविष्यति।** [वणवासस्स सोउमारस्स विणअस्स अ जं सरिसं भविस्सदि।]

सानुमती—जो चीज उसके वनवास, सुकुमारता और विनय के अनुकूल होगी।

**१३३. राजा——**

**कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे**
**शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।**
**न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं**
**मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥१८॥**

अन्वय—हे सखे, कर्णार्पितवन्धनम् आगण्डविलम्बिकेसरं शिरीषं न कृतम्। स्तनान्तरे शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं न वा रचितम्।

राजा—हे मित्र, उसके कानों में जिसका डंठल फँसाया हुआ है और जिसका पराग कपोलों तक फैला हुआ है, ऐसा शिरीष का फूल नहीं बनाया है और उसके स्तनों के बीच में शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के तुल्य कोमल (श्वेत) मृणाल (कमल-नाल) का हार नहीं बनाया है ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या——हे सखे, कर्णार्पित०——कर्णयोः श्रोत्रयोः अर्पितं निवेशितं वन्धनं वृन्तं यस्य तत्, आगण्ड०——आगण्डं कपोलपर्यन्तं विलम्बिनः प्रसृताः केसराः किंजल्काः यस्य तत्, शिरीषं——शिरीषकुसुमम्, न कृतं——न रचितम्। स्तनान्तरे——स्तनयोः मध्यभागे, शरच्चन्द्र०——शरच्चन्द्रस्य शरदिन्दोः मरीचिवत् चन्द्रिकावत्

---

पाठभेद——१३०. नि० अत्र विस्मृतम्, इति नास्ति। १३२. नि० अविनयस्य [अविणअस्स] (अविनय के)।

कोमलं मृदुलं शुभ्रं च, मणालसूत्रं—बिसमाला, न वा रचितं—न कृतम्। समुच्चय उपमा चालंकारौ। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **पश्यामि**—राजा की इस बात से प्रतीत होता है। ( २ ) **लम्बकूर्चानाम्**—लम्बी दाढ़ी वाले। लम्बा कूर्चाः येषां ते, बहु०। ( ३ ) **कदम्बैः**—समूह से, झुण्ड से। कदम्ब का अर्थ समूह है। ( ४ ) **अभिप्रेतम्**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) जो सजावट शकुन्तला को पसन्द थी, (ख) शकुन्तला की जो सजावट करना हमें पसन्द था। ( ५ ) **विनयस्य०**—जो शकुन्तला के विनय को द्योतित करे। निर्णयसागर संस्करण में—'अविनयस्य' पाठ अशुद्ध समझना चाहिए। ( ६ ) **कर्णार्पित०**—कर्णयोः अर्पितं वन्धनं यस्य तत्, बहु०। शिरीष के फूल का डंठल कान में फँसाया जायगा और शेष भाग कपालों पर लटकेगा। ( ७ ) **आगण्ड०**—आगण्डं विलम्बिनः केसराः यस्य तत्, बहु०। केसर के दो अर्थ हैं—पराग और फूल का नीचे लटकने वाला भाग। ( ८ ) **शरच्चन्द्र०**—शरच्चन्द्रस्य मरीचिवत् कोमलम्, तत्पुरुष। यहाँ पर कोमल का अर्थ श्वेत और मृदु दोनों है। ( ९ ) **मृणाल०**—कमलनाल का हार। (१०) यहाँ पर दो क्रियाओं के संग्रह के कारण क्रिया-समुच्चय अलंकार है। शरच्चन्द्र० में लुप्तोपमा है।

**१३४. विदूषकः—भोः, किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिनाऽग्रहस्तेन मुखमावार्य चकितचकितेव स्थिता। (सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा) आः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनकमलमभिलङ्घते मधुकरः।**

[भो, किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं आवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ। आ, एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणकमलं अहिलङ्घेदि महुअरो।]

**विदूषक—श्रीमन्, क्या बात है कि ये देवी जी लाल-कमल के पत्ते के तुल्य सुन्दर अँगुलियों से अपने मुँह को ढँककर बहुत डरी हुई सी खड़ी हैं? (सावधानी से विचार कर देखकर) ओह, यह नीच, फूलों के रस को चुराने वाला भौंरा इन देवी जी के मुख-कमल पर आक्रमण कर रहा है।**

**१३५. राजा—ननु वार्यतामेष धृष्टः।**

**राजा—तो इस ढीठ को रोको।**

१३६. **विदूषकः**—भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति । [भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि ।]

**विदूषक**—आप दुष्टों के शासक हैं, आप ही इसको हटाने में समर्थ हैं।

१३७. **राजा**—युज्यते । अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे, किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि ?

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति ॥१९॥

**अन्वय**—अनुरक्ता एषा मधुकरी तृषिता कुसुमनिषण्णा सती अपि भवन्तं प्रतिपालयति । त्वया विना न खलु मधु पिबति ।

**राजा**—ठीक है। हे पुष्पित लता के प्रिय अतिथि, तुम इस (शकुन्तला) के चारों ओर चक्कर काटने का कष्ट क्यों उठा रहे हो? तुमसे प्रेम करने वाली यह भ्रमरी प्यासी होकर फूल पर बैठी हुई भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारे बिना यह मधु (पराग) का पान नहीं कर रही है॥१९॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अनुरक्ता—प्रेमयुक्ता, एषा मधुकरी—भ्रमरी, तृषिता—पिपासिता, कुसुम०—पुष्पे उपविष्टा, सत्यपि—भवन्त्यपि, भवन्तं—मधुकरम्, प्रतिपालयति—प्रतीक्षते । त्वया विना—त्वया पत्या विना, न खलु—नैव, मधु—पुष्परसम्, पिबति—गृह्णाति । समासोक्तिरलंकारः । आर्या जातिः ।

## टिप्पणी

(१) **रक्तकुवलय०**—कुवलय नील-कमल को कहते हैं, अतः रक्तकुवलय० पाठ के स्थान पर रक्तपल्लवशोभिना पाठ अधिक उपयुक्त है। (२) **मुखमावार्य**—इससे ज्ञात होता है कि चित्र में भ्रमर का आक्रमण चित्रित था। (३) **चकितचकिता**—यहाँ पर प्रकारे गुणवचनस्य (८-१-१२) से द्वित्व नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रकार का अर्थ है सादृश्य और सादृश्य अर्थ इव के द्वारा प्रकट होता है। इसलिए सामान्ये नपुंसकम् से नपुंसक करके चकितम् अर्थात भयभीत। चकितात् चकिता, सह सुपा से समास। अत्यधिक डरी हुई। (४) **दास्याः पुत्रः**—नीच, दुष्ट। यहाँ पर निन्दा अर्थ होने से पुत्रेऽन्यतरस्याम् (६-३-२२) से षष्ठी का अलुक्। (५) **वारणे०**—हटाने में, दूर करने में। (६) **परिपतन०**—परिपतन का अर्थ है चारों ओर चक्कर काटना। (७) **कुसुम०**—प्यासी होने के कारण फूल पर बैठी है। कुसुमे निषण्णा, तत्पुरुष। (८) **भवन्तम्**—इसका संबन्ध अनुरक्ता और प्रतिपालयति दोनों से हो

सकता है—(क) आप पर आसक्त, (ख) आपकी प्रतीक्षा कर रही है। (९) प्रतिपालयति—प्रतीक्षा करती है। प्रति+पा+णिच्। (१०) यहाँ नायक-नायिका के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलंकार है।

**१३८. सानुमती—अद्याभिजातं खल्वेष वारितः।** [अज्ज अभिजादं क्खु एसो वारिदो।]

**सानुमती**—इस समय इन्होंने इसको बहुत शिष्ट ढंग से रोका है।

**१३९. विदूषकः—प्रतिषिद्धाऽपि वामैषा जातिः।** [पडिसिद्धा वि वामा एसा जादी।]

**विदूषक**—यह जाति ऐसी है कि रोकने पर भी उलटा ही काम करती है।

**१४०. राजा—एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि? श्रूयतां तर्हि सम्प्रति—**

**अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं**
**पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।**
**बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर प्रियाया-**
**स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ॥२०॥**

**अन्वय**—हे भ्रमर, अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं मया रतोत्सवेषु सदयम् एव पीतं प्रियायाः बिम्बाधरं चेत् स्पृशसि, त्वां कमलोदरबन्धनस्थं कारयामि।

**राजा**—अच्छा, तू मेरी आज्ञा नहीं मानता? तो अब यह सुन ले—

हे भ्रमर, न मुरझाए हुए और नवीन तरुपल्लव के तुल्य सुन्दर तथा मेरे द्वारा रतिकाल में दयापूर्वक पिये गये प्रिया के बिम्बाधर का यदि तू स्पर्श करता है तो मैं तुझको कमल के मध्यभागरूपी कारागृह में बन्द करा दूंगा ॥२०॥

**संस्कृत-व्याख्या**—हे भ्रमर—हे षट्पद, अक्लिष्ट०—अक्लिष्टः अम्लानः अमृदितो वा बालः नूतनः तरुपल्लवः वृक्षपत्रं तद्वत् लोभनीयं मनोहरम्, मया—दुष्यन्तेन, रतोत्सवेषु—सुरतोत्सवेषु, सदयमेव—सानुकम्पमेव, पीतम्—आस्वादितम्, प्रियायाः—शकुन्तलायाः, बिम्बाधरं—बिम्बफलसदृशमधरोष्ठम्, चेत् स्पृशसि—स्पर्शेन दूषयसि तर्हि, त्वां—भ्रमरम्, कमलोदर०—कमलस्य पद्मस्य उदररूपं मध्यभागरूपं यद् बन्धनं कारागृहं तत्र तिष्ठति यस्तादृशम्, कारयामि—सूर्येण कारयिष्यामि। अत्रातिशयोक्तिः समासोक्तिश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **अभिजातं०**—अभिजात का अर्थ कुलीन है। कुलीन व्यक्ति के तुल्य शिष्ट ढंग से राजा नें रोका है। (२) **वामा**—उलटी। जिस काम को मना करते हैं, उसी काम को यह करता है। (३) **शासने०**—मेरी आज्ञा नहीं मानता है। (४) **अक्लिष्ट०**—अक्लिष्टः वालश्च यः तरुपल्लवः तद्वत् लोभनीयम्, कर्मधारय। अक्लिष्ट के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) न मुरझाया हुआ या न सूखा हुआ, (ख) न विगाड़ा हुआ, न तोड़ा हुआ। इससे अधर की कोमलता और लाली सूचित होती है। (५) **सदयम्०**—मैंने दयाभाव से उसके अधर का चुम्बन किया। इसके द्वारा अधर की कोमलता सूचित होती है। (६) **बिम्बाधरम्**—बिम्व-फल के तुल्य लाल अधर। विम्वाकारः बिम्बसदृशो वा अधरः विम्बाधरः। यहाँ पर शाकपार्थिवादित्वात् उत्तरपदलोपी समास। उत्तरपद आकार या सदृश का लोप। वामन ने इसे मध्यमपदलोपी समास कहा है, परन्तु इसे उत्तरपदलोपी समास ही कहना चाहिए, वार्तिक में उत्तरपद के लोप का ही विधान है। नवयुवतियों के अधर की तुलना विम्वफल से की जाती है। बिम्ब एक लाल फल होता है। राजा अन्यमनस्क है, अतः वह चित्रगत भ्रमर को वास्तविक भ्रमर समझ रहा है। (७) **कमलोदर०**—कमलस्य उदररूपं यद् बन्धनं तत्र तिष्ठतीति। कमल के मध्यभाग रूपी कारागृह का निवासी। (८) स्वाभाविक बन्धन को अपने प्रयोजन का विषय बनाने से अतिशयोक्ति है। भ्रमर में प्रतिनायक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति है। यहाँ पर राजा की घोषणा के कारण व्यवसाय नामक विमर्श सन्धि का अंग है।

१४१. विदूषकः—एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति ? (प्रहस्य। आत्मगतम्) एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवर्ण इव संवृत्तः। (प्रकाशम्) भोः, चित्रं खल्वेतत्। [एव्वं तिक्खणदण्डस्स किं ण भाइस्सदि ? एसो दाव उम्मत्तो। अहं पि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। भो, चित्तं क्खु एदं।]

**विदूषक**—इस प्रकार तीक्ष्ण दण्ड देने वाले तुमसे यह क्यों नहीं डरेगा ? (हँसकर, मन में) ये तो पागल हो गए हैं। मैं भी इनके साथ में इसी प्रकार का हो गया हूँ। (प्रकट) श्रीमन्, यह तो चित्र है।

१४२. राजा—कथं चित्रम् ?

**राजा**—क्या यह चित्र है ?

१४३. सानुमती—अहमपीदानीमवगतार्था। किं पुनर्य-

थालिखितानुभाव्येषः। [अहं पि दाणिं अवगदत्था। किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो।]

**सानुमती**—मुझे भी अब वास्तविकता का पता चला है। जैसा चित्र में लिखा है, उसी प्रकार अनुभव करने वाले इस (राजा) का तो कहना ही क्या ?

१४४. **राजा**—वयस्य, किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम् ?
दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥२१॥
(इति बाष्पं विहरति।)

**अन्वय**—तन्मयेन हृदयेन साक्षात् इव दर्शनसुखम् अनुभवतः मे स्मृतिकारिणा त्वया कान्ता पुनरपि चित्रीकृता।

**राजा**—हे मित्र, तुमने यह क्या धृष्टता की है ?

तन्मय हृदय से मानो साक्षात् (शकुन्तला के) दर्शन के सुख का अनुभव करने वाले मुझको स्मरण दिलाकर तुमने प्रिया शकुन्तला को पुनः चित्र बना दिया है ॥२१॥ (यह कहकर आँसू बहाता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—तन्मयेन—शकुन्तलामयेन, हृदयेन—चित्तेन, साक्षादिव—प्रत्यक्षत इव, दर्शनसुखम्—अवलोकनानन्दम्, अनुभवतः—विभावयतः, मे—मम, स्मृतिकारिणा—चित्रमिदमिति स्मरणं जनयता, त्वया—विदूषकेन, कान्ता—प्रिया, पुनरपि—भूयोऽपि, चित्रीकृता—चित्रत्वेन परिणमिता। उत्प्रेक्षाऽलंकारः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

(१) **तीक्ष्ण०**—तीक्ष्ण दण्ड देने वाले। विदूषक ने यह मजाक में कहा है। प्राकृत व्याकरण के अनुसार तीक्ष्ण का प्राकृत रूप तिण्ह है। परन्तु सभी संस्करणों में तिक्खण पाठ पाया जाता है, अतः उसे अपनाया है। प्राकृत के नियमानुसार भी धातु के साथ षष्ठी होती है। (२) **प्रहस्य**—विदूषक राजा की उन्मत्तता पर हँसता है। (३) **ईदृशवर्णः**—इसी रंग का अर्थात् इसी प्रकार का। (४) **अवगतार्था**—मुझे भी अब वास्तविकता ज्ञात हुई है कि यह चित्र है। तीनों अभी तक तन्मय होकर चित्र को शकुन्तला समझ रहे थे। (५) **यथालिखिता०**—राजा ने जैसा चित्र खींचा था, उसी प्रकार वह अनुभव कर रहा था। (६) **पौरोभाग्यम्**—धृष्टता, अविनय। पुरोभागी का अर्थ है दोषदर्शी, बुराई ढूंढ़ने वाला। चित्र को चित्र बताकर विदूषक ने धृष्टता की है और राजा को दुःखी किया है। (७) **स्मृतिकारिणा**—स्मरण दि

तू ने। स्मृतिं करोतीति, स्मृति+कृ+णिनि, साधुकारी अर्थ में णिनि। (८) चित्रीकृता—यहाँ पर च्वि प्रत्यय है। तुमने यथार्थ शकुन्तला को चित्ररूप में परिणत कर दिया है। (९) यहाँ पर इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है।

**१४५. सानुमती—पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः।**
[पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो।]

**सानुमती—यह विरह का मार्ग (प्रदर्शन) अपूर्व ही है। इसमें पहली और अब की घटना में विरोध है।**

**१४६. राजा—वयस्य, कथमेवमविश्रान्तदुःखमनुभवामि ?**
**प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।**
**बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥२२॥**

अन्वय—प्रजागरात् तस्याः स्वप्ने समागमः खिलीभूतः। बाष्पः तु चित्रगताम् अपि एनां द्रष्टुं न ददाति।

**राजा—मित्र, मैं इस प्रकार अनवरत दुःख का क्यों अनुभव कर रहा हूँ? रात्रि-जागरण के कारण उस (शकुन्तला) का स्वप्न में भी मिलना रुक गया है और आँसू चित्रलिखित इस (शकुन्तला) को भी नहीं देखने देते हैं ॥२२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रजागरात्—रात्रिजागरणात्, तस्याः—शकुन्तलायाः, स्वप्ने—निद्रायाम्, समागमः—सम्मेलनम्, खिलीभूतः—निरुद्धः। बाष्पस्तु—अश्रुसंचारस्तु, चित्रगतामपि—चित्रलिखितामपि, एनां—शकुन्तलाम्, द्रष्टुं न ददाति—न दर्शनयोग्यां करोति। अत्र विरोधनं नाम विमर्शसन्धेरङ्गमस्ति। हेतुरलंकारः। पथ्यावक्त्रं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **पूर्वापरविरोधी०**—पूर्वश्च अपरश्च तयोर्विरोधः, सोऽस्यास्तीति। सानुमती के कथन का भाव है कि राजा के द्वारा विरह का यह प्रदर्शन अपूर्व ही है। इसमें पहली और अब की घटना में सर्वथा विरोध है। जब शकुन्तला स्वयं आई तब राजा ने उसका परित्याग किया और अब उसके लिए पश्चात्ताप करता है तथा रोता है। यह है इसकी दोनों घटनाओं में विरोध। राघवभट्ट ने पूर्वापरविरोधी का भाव दिया है कि राजा पहले चित्र को चित्र समझता है, फिर उन्माद के कारण उसे वास्तविक शकुन्तला समझता है और अब अन्त में उसे फिर चित्र समझता है। यह है पूर्वापर-विरोध। (२) **अविश्रान्त०**—राजा का कथन है कि मेरे दुःख का अन्त नहीं है। मुझे किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिलती है। (३) **प्रजागरात्०**—मैं रात्रि भर जागता रहता हूँ, मुझे नींद ही

नहीं आती है, अतः नींद न आने से स्वप्न में शकुन्तला का दर्शन नहीं कर पाता। ( ४ ) **खिलीभूतः**—रुक गया है, असंभव हो गया है। खिल का अर्थ है ऊसर भूमि, अतः यहाँ अर्थ है रुक गया है या असंभव हो गया है। यहाँ पर च्वि प्रत्यय है। ( ५ ) **बाष्पः०**—जागते समय सदा मेरी आँखों में आँसू भरे रहते हैं, अतः चित्र में भी उसको नहीं देख पाता हूँ। इस समय उन्माद की अवस्था में उसको चित्रगत देख रहा था, उसको तूने झंझट में डाल दिया। ( ६ ) यहाँ पर रात्रि-जागरण और बाष्प इन दोनों हेतुओं का अपने कार्य अनिद्रा और अदर्शन के साथ अभेदरूप से वर्णन के कारण हेतु अलंकार है। यहाँ पर दर्शनसुखम्० से यहाँ तक सुखानुभव में विघ्न आने के कारण विरोधन नामक विमर्श सन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—कार्यात्ययोपगमनं विरोधनमिति स्मृतम्। (सा० दर्पण ६-१०६)। ( ७ ) इस श्लोक के भाव की अन्य सूक्तियाँ हैं—(क) त्वामालिख्य······अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे····(मेघदूत २-४५), (ख) मत्संभोगः कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्रामाकाङ्क्षन्ती····(मेघ० २-३१), (ग) कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।····(विक्रमो० २-१०), (घ) स्वप्नेऽपि दुर्लभमहो तव दर्शनं मे चञ्चच्चकोरनयनेऽस्मि यतो विनिद्रः।

**१४७. सानुमती—सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः।** [सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउन्दलाए।]

**सानुमती—तुमने शकुन्तला के परित्याग का दुःख पूर्ण रूप से दूर कर दिया है।**

**(प्रविश्य)**

**१४८. चतुरिका—जयतु जयतु भर्ता। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थितास्मि।** [जेदु जेदु भट्टा। वट्टिआकरण्डअं गण्हिअ इदोमुहं पत्थिदम्हि।]

**(प्रविष्ट होकर) चतुरिका—महाराज की जय हो। मैं कूचियों की पेटी लेकर इधर की ओर आ रही थी।**

**१४९. राजा—किं च ?**

**राजा—तो फिर क्या हुआ ?**

**१५०. चतुरिका—स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः।** [सो मे हत्थादो अन्तरा तरलिआदुदीआए देवीए

Funding by IKS-MoE

वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो ।]

चतुरिका—मार्ग में ही उस (पेटी) को मेरे हाथ से तरलिका जिसके साथ थी ऐसी देवी वसुमती ने यह कहकर बलात् छीन लिया कि 'मैं ही इसे आर्यपुत्र के पास ले जाऊँगी।'

१५१. विदूषकः—दिष्ट्या त्वं मुक्ता । [दिट्ठिआ तुमं मुक्का ।]

विदूषक—यह तेरा भाग्य था कि तू छूट गई।

१५२. चतुरिका—यावद् देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा । [जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता ।]

चतुरिका—वृक्ष की शाखा में फँसे हुए महारानी के उत्तरीय (दुपट्टे) को जब तक तरलिका छुड़ाने लगी, तब तक मैं बचकर आ गई।

१५३. राजा—वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

राजा—मित्र, महारानी आ ही रही हैं। अत्यधिक स्वाभिमान के कारण उसे बहुत गर्व है। तुम इस चित्र की रक्षा करो।

१५४. विदूषकः—आत्मानमिति भण। (चित्रफलकमादायोत्थाय च) यदि भवानन्तःपुरकूटवागुरातो मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दायय। [अत्ताणं त्ति भणाहि। जइ भवं अन्तेउलकूडवागुरादो मुञ्चीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छन्दे पासादे सद्दावहि।](इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः।)

विदूषक—यह कहो कि—'मेरी रक्षा करना'। (चित्रपट्ट को लेकर और उठकर) यदि आप अन्तःपुर के जाल से मुक्त होना तो मुझे मेघप्रतिच्छन्द नामक महल पर पुकारना। (यह कहकर शीघ्रता से निकल गया।)

## टिप्पणी

(१) प्रमार्जितम्०—शकुन्तला को परित्याग का जो दुःख था, वह तुमने दूर कर दिया। (२) अन्तरा—बीच में, मार्ग के बीच में ही। (३) दिष्ट्या—

यह तेरा भाग्य है कि तू बच आई। (४) **निर्वाहितः**—अपने आपको बचा सकी। (५) **उपस्थिता**—आ ही रही है। (६) **बहुमान०**—वसुमती में स्वाभिमान बहुत है, अतः उसे बहुत घमण्ड है। (७) **आत्मानम्**—आत्मानम् का अर्थ राजा और विदूषक दोनों हो सकते हैं। चित्र को छिपाकर विदूषक राजा को भी बचाता है, नहीं तो वसुमती राजा पर क्रुद्ध होती। विदूषक अपनी भी रक्षा करता है, नहीं तो रानी उस पर भी क्रुद्ध होती। (८) **कूटवागुरा**—गूढ़ छल, प्रपंच या जाल। मनुष्य बड़ी कठिनाई से स्त्रियों के जाल से बच पाता है, उसी की ओर संकेत है। वागुरा—जाल। (९) **शब्दायय**—मुझे वहाँ पुकारना।

**१५५. सानुमती—अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते शिथिलसौहार्द इदानीमेषः।** [अण्णसंकन्तहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि सिढिलसोहृदो दाणिं एसो।]

**सानुमती—इसका प्रेम (वसुमती के प्रति) अब न्यून हो गया है और इसका मन दूसरी (अर्थात् शकुन्तला की) ओर लगा हुआ है, फिर भी यह पुराने प्रेम का पूरा ध्यान रखता है।**

**(प्रविश्य पत्रहस्ता)**

**१५६. प्रतीहारी—जयतु जयतु देवः।** [जेदु जेदु देवो।]

**(पत्र हाथ में लिये प्रविष्ट होकर)**

**प्रतीहारी—महाराज की जय हो।**

**१५७. राजा—वेत्रवति, न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी।**

**राजा—वेत्रवती, क्या तुमने रास्ते में देवी (वसुमती) को नहीं देखा?**

**१५८. प्रतीहारी—अथ किम्? पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।** [अह इं? पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता।]

**प्रतीहारी—हाँ, महाराज। किन्तु पत्र हाथ में लिये हुए मुझको देखकर वह लौट गई।**

**१५९. राजा—कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति।**

**राजा—वह जानती है कि क्या काम करना उचित है, अतः मेरे कार्यों में विघ्न नहीं डालती।**

**१६०. प्रतीहारी—देव, अमात्यो विज्ञापयति—अर्थजा-**

---

पाठभेद—१५५. का० अतिशिथिल० [अदिसिढिल०] (अत्यधिक शिथिल०)।

तस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितं तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु--इति। [देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति।]

**प्रतीहारी**—महाराज, मन्त्री जी ने निवेदन किया है कि—राजकीय धन-संग्रह के कार्य में गिनती करने का काम बहुत अधिक था, अतः एक ही नागरिक कार्य की मैंने जाँच की है। उसे पत्र में लिखकर भेज रहा हूँ। महाराज, उसे देख लें।

१६१. **राजा**--इतः पत्रं दर्शय। (प्रतिहार्युपनयति।)

**राजा**—पत्र मुझे दिखाओ। (प्रतिहारी पत्र देती है)

### टिप्पणी

(१) **अन्यसंक्रान्त०**—इसका मन दूसरी ओर लगा हुआ है अर्थात् शकुन्तला की ओर लगा है। अन्यस्यां संक्रान्तं हृदयं यस्य सः, बहु०। (२) **प्रथमसंभावनाम्०**—यह पुराने प्रेम का आदर करता है। संभावना—आदर। यह अब भी वसुमती के प्रति प्रेम का आदर करता है। प्रथमा संभावना ताम्, कर्म०। (३) **शिथिल०**—इसका प्रेम वसुमती के प्रति अब कम हो गया है। शिथिलः सौहार्दः यस्य सः, बहु०। (४) **कार्यज्ञा**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) वह अपने काम को जानती है कि क्या करना चाहिए, (ख) वह मेरे सरकारी काम के महत्त्व को समझती है। (५) **कार्योपरोधम्०**—मेरे काम में विघ्न उपस्थित नहीं करती। वसुमती का रंगमंच पर आना नाटक की प्रगति में कोई साधक नहीं होता, अतः कालिदास ने बहुत चतुरता से उसको बीच में ही रोक दिया है। (६) **अर्थजातस्य०**—सरकारी टैक्स का रुपया बहुत अधिक संख्या में आया है, अतः उसकी गिनती में बहुत समय लग गया है। (७) **अवेक्षितम्**—देखा है, अर्थात् उस मामले की जाँच की है। (८) **पत्रारूढम्**—उसको पत्र में लिख दिया है। (९) **प्रत्यक्षीकरोतु**—देखिए। अक्ष्णोः प्रति प्रत्यक्षम्, प्रत्यक्ष+च्वि+कृ+लोट्।

१६२. **राजा**--(अनुवाच्य) कथम्? समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसंचय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति, बहुधनत्वाद्

---

पाठभेद—१६२. नि० वेत्रवति, इति नास्ति।

Funding by IKS-MoE

बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।

राजा—(बाँचकर) यह क्या? समुद्र के द्वारा व्यापार करने वाला धनमित्र नामक प्रमुख वणिक् जहाज टूट जाने से मर गया। उस बेचारे के कोई सन्तान नहीं है। मन्त्री ने लिखा है कि उसका धन-संग्रह राजकीय वस्तु होती है। सन्तान-हीनता वस्तुतः बहुत कष्ट की बात है। वेत्रवती, उसके पास धन बहुत था, अतः उसकी कई स्त्रियाँ होनी चाहिए। पता चलाओ कि उसकी स्त्रियों में कोई गर्भिणी तो नहीं है।

१६३. प्रतीहारी—देव, इदानीमेव साकेतकस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते। [ देव, दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि।]

प्रतीहारी—महाराज, सुनने में आया है कि उसकी एक स्त्री जो अयोध्या के सेठ की पुत्री है, उसका पुंसवन संस्कार अभी हुआ है।

१६४. राजा—ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि।

राजा—तो गर्भस्थ बालक पिता के धन का अधिकारी होगा। जाओ, मन्त्री से ऐसा कह देना।

१६५. प्रतीहारी—यद् देव आज्ञापयति। [ जं देवो आणवेदि।] (इति प्रस्थिता।)

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। (चल पड़ती है।)

१६६. राजा—एहि तावत्।

राजा—जरा इधर आना।

१६७. प्रतीहारी—इयमस्मि। [इअं म्हि।]

प्रतीहारी—यह आई।

१६८. राजा—किमनेन सन्ततिरस्ति नास्तीति।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥२३॥

**अन्वय**—प्रजाः येन येन स्निग्धेन बन्धुना वियुज्यन्ते, पापाद् ऋते दुष्यन्तः तासां स स इति घुष्यताम्।

**राजा**—इस बात से क्या लेना कि सन्तान है या नहीं? **प्रजा में जो भी व्यक्ति अपने जिस-जिस प्रेमी सम्बन्धी से वियुक्त होता है, पापकर्म के अतिरिक्त, दुष्यन्त उनके लिए वह सम्बन्धी है, ऐसी घोषणा कर दो ॥२३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—प्रजाः—मदीयाः प्रकृतयः, येन येन स्निग्धेन—प्रियेण, बन्धुना—पित्रादिस्वजनेन, वियुज्यन्ते—वियुक्ता भवन्ति, पापाद् ऋते—पापकर्म त्यक्त्वा, दुष्यन्तः—नृपोऽहम्, तासां—प्रजानाम्, स स इति—सोऽस्तीति, घुष्यताम्—घोषणा क्रियताम्। अत्र साहाय्यनामको नाट्यालंकारोऽस्ति। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **समुद्र०**—समुद्र के द्वारा व्यापार करने वाला। इससे ज्ञात होता है कि उस समय समुद्री मार्ग से विभिन्न देशों से भारत का व्यापार होता था। मृच्छकटिक (अंक ४) में भी आया है—युष्माकं किं यानपात्राणि वहन्ति। ( २ ) **सार्थवाहः**—प्रमुख वणिक्। सार्थ—समूह, झुण्ड, व्यापारियों का समूह। वाह—प्रमुख, मुखिया। ( ३ ) **तपस्वी**—बेचारा। ( ४ ) **राजगामी**—संपत्ति राजकीय वस्तु हो जाएगी। मनु का कथन है कि ब्राह्मण को छोड़कर अन्य कोई व्यक्ति सन्तानहीन हो तो उसकी संपत्ति राजा की हो जाती है। अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः। इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः। (मनु० ९—१८९)। ( ५ ) **साकेतकस्य**—अयोध्यानिवासी। साकेते भवः वसति वा, साकेत+वुञ् (अक)। ( ६ ) **पुंसवन**—यह १६ संस्कारों में दूसरा संस्कार है। पुत्र ही उत्पन्न हो, इसके लिए तीसरे या चौथे महीने यह संस्कार होता है। ( ७ ) **गर्भः**—गर्भस्थ बालक। ( ८) **पित्र्यं रिक्थम्०**—पिता की सम्पत्ति का अधिकारी है। रिक्थ—धन। कालिदास ने इसके द्वारा उत्तराधिकार-नियम को स्पष्ट किया है कि गर्भस्थ पुत्र भी पिता की सम्पत्ति का अधिकारी है। ( ९ ) **बन्धुना**—अपने सम्बन्धी से। (१०) **पापादृते**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) पाप-कर्म को छोड़कर अर्थात् राजा परस्त्री-सम्पर्क आदि नहीं करेगा, (ख) पाप का अर्थ पापी लेकर अर्थ होगा—पापी को छोड़कर औरों का बन्धु होगा। इससे प्रकट होता है कि राजा प्रजा को पुत्रवत् मानता था।

१६९. **प्रतीहारी**—एवं नाम घोषयितव्यम्। (निष्क्रम्य। पुनः प्रविश्य) काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्। [एव्वं णाम घोसइदव्वं। काले पवुट्ठं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्।]

प्रतीहारी—इसी प्रकार घोषणा की जाएगी। (निकलकर और फिर प्रविष्ट होकर) समय पर हुई वर्षा के तुल्य महाराज की घोषणा का (जनता ने) अभिनन्दन किया है।

१७०. राजा—(दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य) एवं भोः, संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने सम्पदः परमुपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः।

राजा—(लम्बी और गर्म साँस छोड़कर) ओह, इस प्रकार सन्तान के अभाव के कारण निराश्रित कुलों की सम्पत्ति वंश के प्रतिनिधि अन्तिम व्यक्ति के मरने पर दूसरों के पास चली जाती है। मेरे मरने पर भी पुरुवंश की लक्ष्मी की यही दशा होगी।

१७१. प्रतीहारी—प्रतिहतममङ्गलम्। [पडिहदं अमगलं।]

प्रतीहारी—यह अमंगल दूर हो।

१७२. राजा—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्।

राजा—आए हुए कल्याण (शकुन्तला) का अपमान करने वाले मुझको धिक्कार है।

१७३. सानुमती—असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा। [असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा।]

सानुमती—वस्तुतः मेरी सखी (शकुन्तला) को ही मन में रखकर इसने अपने आपको धिक्कारा है।

१७४. राजा—संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ॥२४॥

अन्वय—काले उप्तबीजा महते फलाय कल्पिष्यमाणा वसुन्धरा इव कुलप्रतिष्ठा धर्मपत्नी आत्मनि संरोपिते अपि मया त्यक्ता नाम।

राजा—समय पर जिसमें बीज बो दिया गया है और जो महान् फल को देने वाली है, ऐसी पृथ्वी के तुल्य वंश की प्रतिष्ठास्वरूप तथा धर्मपत्नी

Funding by IKS-MoE

**(शकुन्तला) का, उसमें (गर्भरूप में) पुत्र का आधान करने पर भी, परित्याग कर दिया है ।।२४।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—काले—उचिते समये, उप्तबीजा—उप्तम् आहितं बीजं यस्यां सा, महते—प्रभूताय, फलाय—शस्याय, कल्पिष्यमाणा—भविष्यन्ती, वसुन्धरा इव—भूमिरिव, कुलप्रतिष्ठा—पुरुवंशस्याश्रयस्वरूपा, धर्मपत्नी—शकुन्तला, आत्मनि—गर्भस्थे पुत्रे, संरोपितेऽपि, मया त्यक्ता नाम—सा परित्यक्ता। उपमा काव्यलिङ्गं चालंकारौ। उपजातिर्वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **देवस्य०**—महाराज की घोषणा को। ( २ ) **सन्तति०**—सन्तान के अभाव के कारण निराश्रित कुलों की। सन्तान न होने से आगे वंश नहीं चलेगा। ( ३ ) **मूलपुरुषा०**—वंश का संस्थापक मूलपुरुष होता है। उसके पुत्र-पौत्रादि भी तद्वंशज होने से आत्मा रूप हैं, अतः मूलपुरुष हैं। यहाँ पर उस वंश का अन्तिम प्रतिनिधि अर्थ है। उसके मरने पर। ( ४ ) **उपतिष्ठन्ते**—यहाँ पर उपाद् देवपूजा०' (२—३—२५) वार्तिक से संगतिकरण अर्थ में आत्मनेपद। ( ५ ) पाठभेद—पुरुवंशश्रीरकाल इवोप्तबीजा भूरेवंवृत्ता। असमय में जिसमें बीज बोया गया है ऐसी पृथ्वी के तुल्य पुरुवंश की लक्ष्मी हो गई है। यह उपमा ठीक नहीं है, अतः यह पाठ नहीं अपनाया गया है। ( ६ ) **प्रतिहतम्**—नष्ट हो, दूर हो। ( ७ ) **आत्मनि०**—पुत्र पिता की आत्मा माना जाता है, अतः पुत्र को गर्भ में रखना अपनी आत्मा को गर्भ में रखना है। 'आत्मा वै पुत्रनामासि' यह श्रुति है। ( ८ ) **संरोपिते**—रखने पर भी। सम्+रुह्+णिच्+क्त। ( ९ ) **धर्मपत्नी**—धर्म से पत्नी या धर्म के लिए पत्नी। (१०) **त्यक्ता नाम**—नाम खेदसूचक है। (११) **कुलप्रतिष्ठा**—वंश की गौरवस्वरूप या आधाररूप। (१२) **कल्पिष्यमाणा**—होने वाली। कृप्+लृट्+शानच्। (१३) **उप्तबीजा**—जिसमें बीज या गर्भ रखा गया है। (१४) समय पर बीज डालना महान् फल का कारण है, अतः काव्यलिंग है। शकुन्तला पृथ्वी के तुल्य है, अतः उपमा है।

**१७५. सानुमती—अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति। [अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि।]**

**सानुमती**—अब तुम्हारी वंश-परम्परा अविच्छिन्न रहेगी।

**१७६. चतुरिका—(जनान्तिकम्) अये, अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यं माधव्यं गृहीत्वागच्छ। [अए, इमिणा सत्थवाह-**

Funding by IKS-MoE

वुत्तन्तेण दिउणुव्वेओ भट्टा । ण अस्सासिदु मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छेहि ।]

**चतुरिका**—(अलग प्रतीहारी से) ओह, इस व्यापारी के वृत्तान्त से महाराज का दुःख दुगुना हो गया है। इनको धैर्य बँधाने के लिए आर्य माधव्य को मेघप्रतिच्छन्न नामक महल से बुला लाओ।

१७७. **प्रतीहारी**—सुष्ठु भणसि । [सुट्ठु भणासि ।]

(इति निष्क्रान्ता ।)

**प्रतीहारी**—तुम ठीक कहती हो। (प्रस्थान)

१७८. **राजा**—अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः । कुतः—

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति ।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥२५॥

(इति मोहमुपगतः ।)

**अन्वय**—बत अस्मात् परं नः कुले यथाश्रुति संभृतानि निवपनानि कः नियच्छति इति नूनं पितरः प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तम् उदकं धौताश्रुशेषं पिबन्ति।

**राजा**—ओह, दुष्यन्त के पिण्डभागी पितृगण संशय को प्राप्त हो गए हैं। क्योंकि—"खेद की बात है कि इस (दुष्यन्त) के बाद हमारे कुल में वैदिक विधि से तैयार किए गए श्राद्ध और तर्पण को कौन करेगा" यह सोचकर अवश्य ही मेरे पितृगण सन्तानरहित मेरे द्वारा दिए गए और आँसुओं को धोने से बचे हुए तर्पण के जल को पीएँगे ॥२५॥ (मूर्च्छित होता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—बत—खेदे, अस्मात्—दुष्यन्तात्, परं—पश्चात्, नः कुले—अस्माकं वंशे, यथाश्रुति—वेदोक्तपद्धत्या, संभृतानि—सम्पादितानि, निवपनानि—श्राद्धतर्पणादीनि, कः नियच्छतीति—कः ददातीति विचार्य, नूनम्—अवश्यम्, पितरः—पूर्वपुरुषाः, प्रसूतिविकलेन—सन्ततिरहितेन, मया—दुष्यन्तेन, प्रसिक्तं—दत्तम्, उदकं—तर्पणजलम्, धौताश्रु०—धौतानि क्षालितानि अश्रूणि वाष्पजलानि येन तस्मात् शेषम् अवशिष्टम्, पिबन्ति—आचामन्ति । अत्रोत्प्रेक्षा काव्यलिङ्गं चालंकारौ । छलनं नाम विमर्शसन्ध्यङ्गं चास्ति । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **अपरिच्छिन्ना**—अटूट, अविच्छिन्न। परिच्छिन्न का अर्थ विच्छिन्न है। परि+छिद्+क्त। सानुमती को ज्ञात है कि राजा का सर्वदमन नामक पुत्र है। ( २ ) **संशयम्०**—पितरों को सन्देह है कि उन्हें आगे श्राद्ध-तर्पण मिलेगा या नहीं। ( ३ ) **पिण्डभाजः**—श्राद्ध के पिण्ड के भागी। तीन पीढ़ी अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह का श्राद्ध किया जाता है। लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः। पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं सप्तपौरुषम्॥ मत्स्यपुराण। ( ४ ) **निवपनानि**—पितरों को दिया जाने वाला श्राद्ध और तर्पण। नि+वप्+ल्युट्। ( ५ ) **यथाश्रुति**—वेदोक्त विधि से किए गए। श्रुतिम् अनतिक्रम्य, अव्ययीभाव। ( ६ ) **संभृतानि**—तैयार किए गए। ( ७ ) **प्रसूति०**—सन्तान से रहित। प्रसूत्या विकलन, तत्पुरुष। ( ८ ) **धौताश्रु०**—आँसू धोने से बचे हुए? धौतानि अश्रूणि येन तस्मात् शेषम्, तत्पुरुष। धौत—धाव्+क्त। पितरों को आगे श्राद्ध मिलने में सन्देह है, अतः वे रोते हैं और तर्पण के जल से मुँह धोकर तव उसे पीते हैं। ( ९ ) यहाँ पर नूनम् के द्वारा उत्प्रेक्षा है। पूर्वार्ध उत्तरार्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग है। दीर्घमुष्णं निःश्वस्य से लेकर यहाँ तक हार्दिक खेद होने के कारण छलन नामक विमर्श सन्धि का अंग है। उसका लक्षण है—आत्मावसादनं यत्तु छलनं तदुदाहृतम्।

**विशेष**—इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में मृतकों का श्राद्ध और तर्पण प्रचलित हो चुका था। मृतकों का श्राद्ध आदि करना वस्तुतः वेदोक्त विधि नहीं है। यह सनातनी प्रथा है।

१७९. **चतुरिका**—(ससंभ्रममवलोक्य) समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता। [समस्ससदु समस्ससदु भट्टा।]

**चतुरिका**—(घबड़ाहट के साथ देखकर) महाराज, धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए।

१८०. **सानुमती**—हा धिक् हा धिक्। सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथाऽनुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताभिनन्दिष्यतीति। तद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि।

Funding by IKS-MoE

[हद्धी हद्धी। सदि क्खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरदोसं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउन्दलं समस्सासअन्तीए महेन्दजणणीए मुहादो जण्णभाओस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्सन्ति जह अइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणन्दिस्सदि त्ति। ता जुत्तं एदं कालं पडिपालिदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं समस्सासेमि।] (इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता।)

**सानुमती—खेद है, खेद है। दीपक (अर्थात् पुत्र) के रहते हुए भी बीच में पर्दा पड़ जाने के कारण यह (राजर्षि) अन्धकार की बुराई का अनुभव कर रहा है। मैं इसको अभी प्रसन्नचित्त करती हूँ। अथवा शकुन्तला को धैर्य बँधाती हुई इन्द्र की माता अदिति के मुख से मैंने यह सुना था कि यज्ञभाग के लिए उत्सुक देवता ही वैसा ढंग करेंगे, जिससे शीघ्र ही पति (दुष्यन्त) अपनी धर्मपत्नी का अभिनन्दन करेगा। इसलिए यह उचित है कि तब तक प्रतीक्षा की जाए। तब तक मैं इस समाचार से अपनी प्रिय सखी को धैर्य बँधाती हूँ। (उद्भ्रान्तक नृत्य के साथ प्रस्थान।)**

## टिप्पणी

(१) **दीपे०**—पुत्र कुल का दीपक होता है, अतः पुत्र के लिए दीपक शब्द है। यहाँ पर शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन से अभिप्राय है। यही भाव अन्यत्र आया है—सुताभिधानं स ज्योतिः सद्यः शोकतमोऽपहम् (रघुवंश १०-२)। (२) **व्यवधान०**—व्यवधान का अर्थ है बीच में पर्दा आदि किसी चीज का आ जाना। यहाँ निराशारूपी पर्दा बीच में पड़ा है। (३) **अन्धकार०**—अन्धकार का अनुभव करता है, अर्थात् पुत्रहीनता का अनुभव कर रहा है। (४) **निर्वृतम्०**—प्रसन्न करती हूँ। तुम्हारा सर्वदमन पुत्र है, यह बताकर प्रसन्न करती हूँ। (५) **अथवा**—इसके द्वारा यह भाव प्रकट करती है कि अभी यह समाचार बताने का अवसर नहीं है। समय आने पर बात अपने आप प्रकट हो जाएगी। (६) **महेन्द्रजननी**—इन्द्र की माता का नाम अदिति है। वेदों में भी देवों की माता का नाम अदिति आता है। अदिति का अर्थ है अविनश्वर शक्ति। अ—नहं दिति—खण्डन, विनाश। (७) **यज्ञभागो०**—देवताओं को यज्ञ का भाग प्राप्त होता है। शकुन्तला के वियोग के कारण राजा यज्ञादि में उतनी उत्सुकता नहीं दिखाता था। शकुन्तला से मिलन हो जाने पर वह यज्ञादि विशेष उत्साह से करेगा। (८) **उद्भ्रान्तकेन**—यह एक प्रकार का नृत्य है। सानुमती प्रसन्न है।

अतः नाचती हुई जाती है । संगीत-सुधानिधि में उद्भ्रान्तक का लक्षण दिया है—पूर्वं दक्षिणमुत्थाप्य पश्चात् आकुञ्चयन् पदम् । वामं शीघ्रं भ्रमेद् वामावर्तमुद्भ्रान्तकं विदुः ।। इसका दूसरा अर्थ आकाश में उछलकर जाना भी हो सकता है ।

(नेपथ्ये)

१८१. अब्रह्मण्यम् । [अब्बम्हणं ।]

(नेपथ्य में) बचावो, बचावो ।

१८२. **राजा**——(प्रत्यागतचेतनः, कर्णं दत्त्वा) अये, माधव्यस्येवार्तस्वरः । कः कोऽत्र भोः ?

**राजा**—(होश में आकर, कान लगा कर) ओह, यह माधव्य का-सा करुणक्रन्दन है । यहाँ कौन है ?

(प्रविश्य)

१८३. **प्रतीहारी**——(ससंभ्रमम्) परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम् । [परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सम् ।]

(प्रविष्ट होकर)

**प्रतीहारी**—महाराज, संकट में पड़े हुए अपने मित्र को बचाइए ।

१८४. **राजा**——केनात्तगन्धो माणवकः ?

**राजा**—किसने उस बेचारे को अपमानित किया है ?

१८५. **प्रतीहारी**——अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः । [अदिट्ठरूवेण केन वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोहिदो ।]

**प्रतीहारी**—जिसका रूप दृष्टिगोचर नहीं है, ऐसे किसी भूत ने उसे पकड़ लिया है और मेघप्रतिच्छन्द नामक महल की ऊपर की मंजिल पर उसे ले गया है ।

१८६. **राजा**——(उत्थाय) मा तावत् । ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः । अथवा——

अहन्यहन्यात्मन एव ताव-
ज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम् ।

---

पाठभेद—१८२. का० प्रत्यागतः । (होश में आकर) ।

Funding by IKS-MoE

प्रजासु कः केन पथा प्रयाती-
त्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः ॥२६॥

**अन्वय**--अहनि अहनि आत्मन एव प्रमादस्खलितं तावत् ज्ञातुं न शक्यम्। प्रजासु कः केन पथा प्रयाति इति अशेषतो वेदितुं शक्तिः अस्ति।

**राजा**--(उठकर) ऐसा न हो। क्या मेरे घर भी भूत आदि के द्वारा तिरस्कृत होते हैं? अथवा--प्रतिदिन अपनी ही प्रमादजन्य त्रुटियों को पूर्णतया जानना संभव नहीं है। फिर प्रजा के अन्दर कौन किस मार्ग पर चल रहा है, इस बात को पूर्णतया जानना कैसे संभव है? ॥२६॥

**संस्कृत-व्याख्या**--अहनि अहनि--प्रतिदिनम्, आत्मन एव--स्वस्यैव, प्रमाद०--प्रमादेन अनवधानतया स्खलितं धर्माद् विच्युतिः, तावत्--साकल्येन, ज्ञातुं--वेदितुम्, न शक्यं--न संभाव्यते। प्रजासु--प्रकृतिषु, कः--कः जनः, केन पथा--केन मार्गेण, प्रयाति--विचरति, इति अशेषतः--पूर्णतया, वेदितुं--ज्ञातुम्, शक्तिः अस्ति--सामर्थ्यम् अस्ति किम्, नास्तीत्यर्थः। अत्रार्थापत्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। उपजातिर्वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **अब्रह्मण्यम्**--ब्रह्मण्य का अर्थ है--ब्राह्मण के लिए हितकर। अब्रह्मण्य ब्राह्मण के लिए अशुभ या अनिष्ट। इसका भाव होता है कि ब्राह्मण पर संकट है, उसे बचाओ। विपत्ति में इस प्रकार चिल्लाया जाता है। (२) **संशयगतम्**--खतरे में पड़े हुए। (३) **आत्तगन्धः**--गन्ध का अर्थ है घमण्ड। किसने उसके घमंड को हर लिया है अर्थात् किसने उसे अपमानित किया है। आत्तः गन्धः यस्य सः, बहु०। (४) **माणवकः**--बेचारा बालक। पुत्र अर्थ में मानव शब्द माणव हो जाता है। अनुकम्पा अर्थ में कन्। (५) **सत्त्वेन**--सत्त्व शब्द भूत या प्रेत के लिए है। (६) **अग्रभूमिम्**--ऊपर की मंजिल। (७) **मा तावत्**--ऐसा न हो या ऐसा मत कहो। (८) **ममापि०**--यह आश्चर्यसूचक है कि भूत मेरे यहाँ आक्रमण करें। (९) **प्रमाद०**--प्रमाद के कारण त्रुटियाँ। प्रमादेन स्खलितम्, तत्पुरुष। (१०) **वेदितुम्०**--यह काकु अर्थात् व्यंग्य है। अर्थात् यह जानना संभव नहीं है। (११) चतुर्थ चरण में काकु है, अतः अर्थापत्ति अलंकार है। सामान्य के द्वारा विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा है। राजा के कथन का भाव है कि मुझे अपनी ही त्रुटियों का पूरा ज्ञान नहीं है, नहीं तो शकुन्तला का त्याग न करता। मनुष्य अपने पापों का फल भोगता है, अतः इसने कोई पाप किया है, उसी का फल भोग रहा है।

(नेपथ्ये)

१८७. भो वयस्य, अविहा अविहा। [भो वअस्स, अविहा अविहा।]

(नेपथ्य में) हे मित्र, बचाओ-बचाओ।

१८८. राजा—(गतिभेदेन परिक्रामन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्।

राजा—(चाल बदल कर घूमकर) मित्र, मत डरो, मत डरो।

(नेपथ्ये)

१८९. (पुनस्तदेव पठित्वा) कथं न भेष्यामि? एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति। [कहं ण भाइस्सं? एस मं को वि पच्चवणदसिरोहरं इक्खुं विअ तिण्णभंगं करेदि।]

(नेपथ्य में) (फिर उसी बात को दुहरा कर) कैसे न डरूँ? यह कोई मेरी गर्दन पीछे झुका कर ईख की तरह तीन टुकड़े कर रहा है।

१९०. राजा—(सदृष्टिक्षेपम्) धनुस्तावत्।

राजा—(चारों ओर देखकर) मेरा धनुष तो लाना।

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता)

१९१. यवनी—भर्तः, एतद् हस्तावापसहितं शरासनम्। [भट्टा, एदं हत्थावावसहिदं सरासणं।]

(राजा सशरं धनुरादत्ते।)

(धनुष हाथ में लिए यवनी का प्रवेश)

यवनी—महाराज, यह धनुष और दस्ताना है।

(राजा बाण के सहित धनुष लेता है।)

(नेपथ्ये)

१९२. एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी
शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्।
आर्त्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा
दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ॥२७॥

**अन्वय**—अभिनवकण्ठशोणितार्थी (अहं) शार्दूलः पशुम् इव चेष्टमानं त्वाम् एष हन्मि। आर्त्तानां भयम् अपनेतुम् आत्तधन्वा दुष्यन्तः इदानीं तव शरणं भवतु।

**(नेपथ्य में) गले के ताजे खून का इच्छुक मैं, व्याघ्र जिस प्रकार छटपटाते हुए पशु को मारता है उसी प्रकार छटपटाते हुए तुझको अभी मारता हूं। दुःखितों के भय को दूर करने के लिए धनुष धारण करने वाला दुष्यन्त अब तुझको बचा सकता हो तो बचावे ॥२७॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अभिनव०—अभिनवं नूतनम् उष्णमित्यर्थः यत् कण्ठशोणितं गलरुधिरं तस्य अर्थी अभिलाषी, अहं—मातलिः, शार्दूलः—व्याघ्रः, पशुमिव—मृगादिकमिव, चेष्टमानं—स्वरक्षार्थं यतमानम्, त्वां—विदूषकम्, एषः—अधुनैव, हन्मि—व्यापादयामि। आर्तानां—पीडितानाम्, भयम्, अपनेतुं—दूरीकर्तुम्, आत्तधन्वा—गृहीतकार्मुकः, दुष्यन्तः, इदानीं—सम्प्रति, तव शरणं—रक्षकः, भवतु। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **अविहा**—यह खेदसूचक अव्यय है। बचाओ, बचाओ। यह शब्द दो शब्दों को मिलाकर बना है, अव्—बचाओ, इह—यहाँ पर। (२) **गतिभेदेन**—चाल बदल कर अर्थात् जल्दी से। (३) **प्रत्यवनत०**—प्रत्यवनता शिरोधरा यस्य तम्, बहुव्रीहि। जिसकी गर्दन पीछ की ओर मोड़ दी है ऐसे मुझको। (४) **इक्षुमिव**—विपत्ति में भी विदूषक की हास्यप्रियता को व्यक्त करता है। (५) **शार्ङ्ग०**—धनुष हाथ में लिए। शाङ्र्गं हस्ते यस्याः सा, बहु०। (६) **हस्तावाप**—हस्तावाप का अर्थ है हाथ को बचाने के लिए पहना जाने वाला चमड़े का दस्ताना। हस्तम् आवपति रक्षति इति हस्तावापः। 'कर्मण्यण्' से अण्। (७) **शरासनम्**—धनुष। शराः अस्यन्ते क्षिप्यन्ते अनेन इति, शर+अस्+ल्युट्। (८) **अभिनव०**—अभिनवस्य कण्ठशोणितस्य अर्थी तत्पुरुष। (९) **चेष्टमानम्**—छटपटाते हुए, रक्षार्थं अपने हाथ पाँव मारते हुए। यह विदूषक और पशु दोनों के साथ लगेगा। (१०) **एष हन्मि**—अभी तुझे मारता हूँ। एष वर्तमान अर्थ को बताता है। (११) **आत्तधन्वा**—धनुष धारण करने वाला। आत्तं धनुः येन सः, बहु०। धनुषश्च (५-४-१३२) से समासान्त अनङ् (अन्)। (१२) **शरणं**—तेरा रक्षक हो, तुझे बचा सकता हो तो बचावे।

**१९३. राजा—(सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति ? तिष्ठ कुणपाशन ! त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य) वेत्रवति, सोपानमार्गमादेशय।**

**राजा—(क्रोध के साथ) क्या मुझे ही लक्ष्य करके कह रहा है ? अच्छा**

तो ऐ राक्षस, ठहर। तू अब नहीं बचेगा। (धनुष चढ़ाकर) वेत्रवती, सीढ़ी का रास्ता दिखा।

१९४. प्रतीहारी——इत इतो देवः। [इदो इदो देवो।]

(सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति।)

प्रतीहारी——महाराज, इधर से आइए। (सभी शीघ्रतापूर्वक पास जाते हैं।)

१९५. राजा——(समन्ताद् विलोक्य) शून्यं खल्विदम्।

राजा——(चारों ओर देखकर) यह जगह तो खाली पड़ी है।

(नेपथ्ये)

१९६. अविहा अविहा। अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वं मां न पश्यसि? बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः। [अविहा अविहा। अहं अत्तभवन्तं पेक्खामि? तुमं मं ण पेक्खसि। बिडालग्गहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो।]

(नेपथ्य में) बचाओ-बचाओ। मैं आपको देख रहा हूँ। आप मुझे नहीं देख रहे हैं। बिल्ली से पकड़े गए चूहे की तरह मैं अपने जीवन के प्रति निराश हो गया हूँ।

१९७. राजा——भोस्तिरस्करिणीगर्वित, मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति। एष तमिषुं सन्दधे——

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥२८॥

(इत्यस्त्रं सन्धत्ते।)

अन्वय——यः वध्यं त्वां हनिष्यति, रक्ष्यं द्विजं रक्षिष्यति। हि हंसः क्षीरम् आदत्ते, तन्मिश्राः अपः वर्जयति।

राजा——ऐ तिरस्करिणी विद्या से गर्वयुक्त, मेरा शस्त्र तुझको ढूँढ़ लेगा। यह मैं उसी बाण को चढ़ाता हूँ——जो मारने योग्य तुझको मारेगा और रक्षा के योग्य ब्राह्मण (विदूषक) की रक्षा करेगा। क्योंकि हंस दूध को ले लेता है और उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है॥२८॥ (उस बाण को चढ़ाता है।)

---

पाठभेद—१९७. नि० रक्षति च (और रक्षा करता है)।

**संस्कृत-व्याख्या**—यः—बाणः, वध्यं—वधयोग्यम्, त्वां—राक्षसम्, हनिष्यति—मारयिष्यति। रक्ष्यं—रक्षायोग्यम्, द्विजं—ब्राह्मणं विदूषकम्, रक्षिष्यति—त्रास्यते। हि—यतोहि, हंसः—मरालः, क्षीरं—दुग्धम्, आदत्ते—गृह्णाति, तन्मिश्राः—दुग्धेन मिश्रिताः, अपः—जलम्, वर्जयति—त्यजति। दृष्टान्तोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **कुणपाशन**—राक्षस। कुणप का अर्थ शव है, शव को खाने वाला। कुणपम् अश्नाति इति, कर्ता में युच् (अन) प्रत्यय। ( २ ) **तिरस्करिणी०**--तिरस्करिणी विद्या के कारण घमण्ड वाले। तिरस्करिणी विद्या का अर्थ है अन्तर्धान होने या छिपने की विद्या। ( ३ ) **तमिषुम्०**—मैं उसी बाण को चढ़ाता हूँ, जो केवल तुझे ही मारे और विदूषक को छोड़ दे। ( ४ ) **सन्दधे**—चढ़ाता हूँ। सन्धान का अर्थ चढ़ाना है। ( ५ ) **वध्यम्**—मारने के योग्य। वधम् अर्हति वध्यः, हन् धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश, 'हनो वा यद् वधश्च वक्तव्यः' (वार्तिक, २-८-४३) से। ( ६ ) **रक्षिष्यति**—रक्षा करेगा। पाठभेद—रक्षति च, रक्षा करता है। यहाँ पर साम्य के आधार पर हनिष्यति के साथ रक्षिष्यति पाठ ही अधिक उपयुक्त है। ( ७ ) **हंसो हि०**—हंस में यह शक्ति मानी जाती है कि वह दूध और पानी को अलग कर देता है। वास्तविकता यह है कि हंस जल में विद्यमान कमलनाल का दूध पीता है और साथ के जल को छोड़ देता है। इस उक्ति में इतनी ही वास्तविकता है। इसी आधार पर हंस को नीर-क्षीर विवेकी कहा जाता है।

**(ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः।)**

**१९८. मातलिः**—राजन्,

**कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः**
**शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।**
**प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने**
**पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ॥२९॥**

**अन्वय**—हरिणा असुराः तव शरव्यं कृताः, तेषु इदं शराशनं विकृष्यताम्। सतां सुहृज्जने प्रसादसौम्यानि चक्षूंषि पतन्ति, दारुणाः शराः न।

(तदनन्तर विदूषक को छोड़कर मातलि का प्रवेश।)

**मातलि**—राजन्, इन्द्र ने राक्षसों को तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनाया है, उन पर इस धनुष को चढ़ाइए (चलाइए)। सज्जनों की अपने मित्रवर्ग पर प्रेम से मनोहर ही दृष्टि पड़ती है, न कि उनके भयंकर बाण उन पर पड़ते हैं ॥२९॥

**संस्कृत-व्याख्या**—हरिणा—इन्द्रेण, असुराः—राक्षसाः, तव—दुष्यन्तस्य, शरव्यं—लक्ष्यम्, कृताः—विहिताः। तेषु—राक्षसेषु, इदं शरासनम्—एतद् धनुः, विकृष्यताम्—आकृष्यताम्। सतां—सज्जनानाम्, सुहृज्जने—मित्रवर्गे, प्रसादसौम्यानि—प्रसादेन प्रेम्णा अनुग्रहेण वा सौम्यानि मनोरमाणि, चक्षूंषि—लोचनानि, पतन्ति—निपतन्ति। दारुणाः—भीषणाः, शराः—इषवः, न—न पतन्ति। अत्राऽर्थान्तरन्यासोऽप्रस्तुतप्रशंसा काव्यलिङ्गं चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **मातलिः**—इन्द्र के सारथि का नाम मातलि है। वह इन्द्र के ऐरावत हाथी का चालक भी है। (२) **शरव्यम्०**—लक्ष्य बनाया है। शृणाति इति शरुः, तस्मै हितम् शरव्यम्। शरु+यत् (य)। 'उगवादिभ्यो यत्' (५-१-२) से हित अर्थ में यत् प्रत्यय। शरव्य का अर्थ है लक्ष्य, निशाना। (३) **हरिणा**—यहाँ हरि इन्द्र के लिए है। (४) **विकृष्यताम्**—चढ़ाइए, खींचिए। (५) **प्रसाद०**—प्रेम या अनुग्रह के कारण सुन्दर। प्रसादेन सौम्यानि, तत्पुरुष। प्रसाद—प्रेम, कृपा, अनुग्रह या शान्ति। सौम्य—सुन्दर। (६) **सौम्य**—सोमः देवता अस्य सः। सोम+टचण्, 'सोमाट्टचण्' (४-२-३०) से टचण् (य) प्रत्यय। अथवा सोम इव सोमः, स्वार्थ में ष्यञ् (य) प्रत्यय, चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् (वार्तिक) से। (७) यहाँ पर उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्ध विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। 'तव मयि' इस विशेष के स्थान पर 'सतां सुहृज्जने' इस सामान्य उक्ति के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। द्वितीय चरण के प्रति प्रथम चरण कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**१९९. राजा—( ससंभ्रममस्त्रमुपसंहरन् ) अये मातलिः। स्वागतं महेन्द्रसारथे !**

राजा—(शीघ्रता से अस्त्र को रोककर) ओह, आप मातलि हैं। हे देवराज इन्द्र के सारथि ! आपका स्वागत है।

**(प्रविश्य)**

**२००. विदूषकः—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः, सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते। [अहं जेण इट्टिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि।]**

**(विदूषक का प्रवेश)**

**विदूषक—जिसने मुझे यज्ञिय पशु की मार मारा है, उसका यह स्वागत के द्वारा अभिनन्दन कर रहे हैं।**

२०१. **मातलिः**—(सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः।

मातलि—(मुस्कराते हुए) आयुष्मन्, जिस कार्य के लिये इन्द्र नें मुझे आपके पास भेजा है, उसे सुनिए।

२०२. **राजा**—अवहितोऽस्मि।

राजा—मैं सावधान हूँ।

२०३. **मातलिः**—अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः।

मातलि—कालनेमि के वंशज दुर्जय नामक राक्षसों का एक समुदाय है।

२०४. **राजा**—अस्ति। श्रुतपूर्वं मया नारदात्।

राजा—हाँ, है। मैंने नारद से उनके विषय में पहले से सुना हुआ है।

२०५. **मातलिः**—

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य-
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥३०॥

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीमैन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्।

अन्वय—स किल ते सख्युः शतक्रतोः अजय्यः, त्वं रणशिरसि तस्य निहन्ता स्मृतः। सप्तसप्तिः यत् नैशं तिमिरम् उच्छेत्तुं न प्रभवति, तत् चन्द्रः अपाकरोति।

मातलि—वह राक्षसगण वस्तुतः तुम्हारे मित्र इन्द्र के द्वारा अजेय है। तुम ही युद्धभूमि में उसके मारने वाले माने गए हो। सूर्य रात्रि के जिस अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ नहीं है, उसको चन्द्रमा ही दूर करता है॥३०॥

अतः आप हथियार लिए हुए ही अब इन्द्र के इस रथ पर बैठ कर विजय के लिए प्रस्थान कीजिए।

संस्कृत-व्याख्या—स—दानवगणः, किल—निश्चयेन, ते—तव दुष्यन्तस्य, सख्युः—मित्रस्य, शतक्रतोः—इन्द्रस्य, अजय्यः—जेतुं न शक्यः। त्वं—दुष्यन्तः, रणशिरसि—युद्धाग्रभागे, तस्य—दानवगणस्य, निहन्ता—घातकः, स्मृतः—

मतोऽसि। सप्तसप्तिः—सूर्यः, यत् नैशं—रात्रिभवम्, तिमिरम्—अन्धकारम्, उच्छेतुं—विनाशयितुम्, न प्रभवति—न शक्नोति, तत्—तमः, चन्द्रः—विधुः, अपाकरोति—नाशयति। दृष्टान्तोऽलंकारः। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **उपसंहरन्**—रोकना, लौटाना। उपसंहार का अर्थ है विशेष शक्तियों के साथ अस्त्र को लौटाना। ( २ ) **इष्टिपशु०**—यज्ञिय पशु के तुल्य मारा है। इष्टिपशुरिव मारितः, यहाँ पर "उपमाने कर्मणि च" (३-४-४५) से णमुल् (अम्) प्रत्यय। इष्टि०+मृ+णिच्+णमुल्। इष्टि—यज्+क्तिन्। ( ३ ) **आयुष्मन्**—मातलि वृद्ध होने के कारण राजा को आयुष्मन् कहता है। ( ४ ) **कालनेमि**—कालनेमि राक्षस के सौ शिर और सौ हाथ थे, विष्णु ने उसे मारा था। वह हिरण्यकशिपु का पुत्र था। ( ५ ) **दानव**—दनु के पुत्र, राक्षस। दनु दक्ष की पुत्री और कश्यप की स्त्री थी। ( ६ ) **नारदात्**—नारद ब्रह्मा के १० मानस पुत्रों में से एक हैं। वे वीणा लिए सदा घूमते रहते थे। देवों और मनुष्यों के बीच देवदूत का काम करते थे। ( ७ ) **शतक्रतोः**—इन्द्र के द्वारा। क्रतु का अर्थ यज्ञ है। सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले को इन्द्र का पद मिलता था। पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि वेद में क्रतु का अर्थ है मानसिक या शारीरिक बल। अतः शतक्रतु का अर्थ है—असंख्य बल से युक्त। ( ८ ) **अजय्यः**—न जीतने योग्य। "क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे" (६-१-८१) से जेय के स्थान पर जय्य निपातन। ( ९ ) **रणशिरसि**—युद्ध के अग्र भाग में। (१०) **सप्तसप्तिः**—सूर्य। सूर्य की सात रंग की किरणें उसके सात घोड़े माने जाते हैं। सप्ति—घोड़े। अथवा यह सात प्राणों को गति देता है। (११) **नैशम्**—रात्रि के। (१२) यहाँ पर इन्द्र को सूर्य और राजा को चन्द्रमा माना गया है। दोनों का अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है।

**२०६. राजा—अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माधव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्?**

राजा—इन्द्र के इस सम्मान से मैं अपने आपको अनुगृहीत समझता हूँ। किन्तु आपने माधव्य (विदूषक) के प्रति ऐसा व्यवहार क्यों किया?

**२०७. मातलिः—तदपि कथ्यते। किंचिन्निमित्तादपि मनःसन्तापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात् कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः—**

**ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।**
**प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः॥३१॥**

**अन्वय**—अग्निः चलितेन्धनः ज्वलति, पन्नगः विप्रकृतः फणां कुरुते । हि जनः प्रायः क्षोभात् स्वं महिमानं प्रतिपद्यते ।

**मातलि—वह भी बताता हूँ। मैंने किसी कारणवश मानसिक सन्ताप के कारण आपको खिन्न देखा। तत्पश्चात् आपको क्रुद्ध करने के लिए मैंने वैसा किया था। क्योंकि—**

**अग्नि लकड़ियों को हिला देने से प्रज्वलित हो जाती है। साँप छेड़ने पर अपने फन को फैलाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी प्रायः उत्तेजित होने पर अपने पराक्रम को प्राप्त होता है ॥३१॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अग्निः—वह्निः, चलितेन्धनः—चलितानि संघट्टितानि इन्धनानि काष्ठानि यस्य सः, ज्वलति—प्रदीप्तो भवति । पन्नगः—सर्पः, विप्रकृतः—उद्वेजितः सन्, फणां कुरुते—फटां विस्तारयति । हि—तथाहि, जनः—नरः, प्रायः—बाहुल्येन, क्षोभात्—अभिघातात्, स्वं—स्वकीयम्, महिमानं—पराक्रमम्, प्रतिपद्यते-आसादयति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासो दृष्टान्तश्चालंकाराः । आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **मघवतः**—इन्द्र का । यह मघवन् शब्द का षष्ठी एकवचन का रूप है। "मघवा बहुलम्" (६-४-१२८) सूत्र से मघवन् को विकल्प से मघवत् हो जाता है, अतः मघवतः और मघोनः दो रूप बनते हैं। लौकिक संस्कृत में मघवत् इन्द्र के लिए ही आता है, परन्तु वेद में यह सूर्य का भी विशेषण है। मघ अर्थात् धन वाला। ( २ ) **सम्भावनया**—आदर या सम्मान के द्वारा। सम्+भू+णिच्+युच् (अन)+टाप्। ( ३ ) **किमेवं०**—आपने ऐसा क्यों किया? ( ४ ) **विक्लवः०**—खिन्न, व्याकुल। ( ५ ) **कोपयितुम्**—क्रुद्ध करने को। कुप्+णिच्+तुमुन्। ( ६ ) **चलितेन्धनः**—चलितानि इन्धनानि यस्य सः, बहु०। लकड़ियों को हिलाने पर। ( ७ ) **विप्रकृतः**—अपमानित, छेड़ने पर। ( ८ ) **फणां**—अपने फन को दिखाता है या फैलाता है। फणा और फण दोनों शब्द हैं। ( ९ ) **महिमानम्**—पराक्रम को, प्रभाव को। महत्+इमनिच्=महिमन्। (१०) यहाँ पर भवान् विशेष के स्थान पर सामान्य जनः कहने से अप्रस्तुतप्रशंसा है। पूर्वार्ध विशेष का उत्तरार्ध सामान्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। अग्नि और पन्नग दो के साथ साधर्म्य होने से माला दृष्टान्त अलंकार है।

**२०८. राजा—(जनान्तिकम्) वयस्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि।**

**त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः ।**
**अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ।।३२।।**

**अन्वय**—केवला त्वन्मतिः तावत् प्रजाः परिपालयतु । इदम् अधिज्यं धनुः अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतम् ।

**राजा**——(विदूषक से एकान्त में) मित्र, देवराज की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है । अतः इस समाचार से अवगत कराकर मेरी ओर से मन्त्री पिशुन से कहना कि——

तुम्हारी बुद्धि अकेली ही प्रजा का पालन करे । यह प्रत्यंचा चढ़ा हुआ धनुष दूसरे काम में (अर्थात् राक्षसों के वध में) लग गया है ।।३२।।

**संस्कृत-व्याख्या**—केवला—असहाया, त्वन्मतिः—त्वदीया बुद्धिः, तावत्—मदागमनपर्यन्तम्, प्रजाः—प्रकृतीः राज्यस्थान् जनान्, परिपालयतु—रक्षतु । इदम् अधिज्यं—धृतमौर्वीकम्, धनुः—कार्मुकम्, अन्यस्मिन्—दानववधरूपे, कर्मणि—देवकार्ये, व्यापृतं—संलग्नम् । श्लोको वृत्तम् ।

**२०९. विदूषकः——यद् भवानाज्ञापयति ।** [जं भवं आणवेदि ।] **(इति निष्क्रान्तः ।)**

**विदूषक**——जो महाराज की आज्ञा । (विदूषक का प्रस्थान ।)

**२१०. मातलिः——आयुष्मान् रथमारोहतु ।**

**(राजा रथाधिरोहणं नाटयति ।)**

**(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)**

**षष्ठोऽङ्कः ।**

**मातलि**——आप रथ पर चढ़िए ।

(राजा रथ पर चढ़ने का अभिनय करता है ।)

(सबका प्रस्थान ।) षष्ठ अंक समाप्त ।

### टिप्पणी

( १ ) **दिवस्पतेः०**—इन्द्र की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है । दिवः पतिः दिवस्पतिः । दिवस्पति शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) दिवः पति, तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६-३-१४) से षष्ठी का अलुक् और कस्कादिषु च (८-३-४८) से कस्कादि को आकृतिगण मानकर विसर्ग को स् ।

---

पाठभेद—२१०. का० रथारोहणं० (रथ पर चढ़ने का) ।

(ख) यदि इसको वैदिक प्रयोग माना जाय तो षष्ठ्याः पतिपुत्र० (८-३-५३) सूत्र से षष्ठी का अलुक् और विसर्ग को स्। (२) **परिगतार्थम्०**—इस समाचार से विदित करके। (३) **केवला**—इसका अभिप्राय यह है कि मन्त्री की बुद्धि और राजा का धनुष दोनों मिलकर अब तक राज्य का पालन कर रहे थे। अब धनुष दानवों के वध के लिए जा रहा है, अतः मन्त्री की बुद्धि अकेली रह गई है। वही राज्य की रक्षा करे। भारवि ने कहा है—सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः। (किरात० १-५)। यजुर्वेद (३२-१६) में कहा है—इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।

**इत्यभिज्ञानशाकुन्तलस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां**
**"भारती"-व्याख्यायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥**

---

## सप्तमोऽङ्कः।

**(ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च।)**

**१. राजा—मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये।**

### सप्तम अंक प्रारम्भ।

**(तदनन्तर रथ पर बैठे हुए राजा और मातलि का आकाशमार्ग से प्रवेश।)**

**राजा**—मातलि, मैंने यद्यपि इन्द्र के आदेश का पालन कर दिया है, परन्तु उनके विशेष सत्कार के कारण मैं अपने आपको अनुपयुक्त (अर्थात् मैंने कुछ काम नहीं किया है) सा समझता हूँ।

**२. मातलिः—(सस्मितम्) आयुष्मन्, उभयमप्यपरितोषं समर्थये।**

**प्रथमोपकृतं मरुत्वतः**
**प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्।**
**गणयत्यवदानविस्मितो**
**भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ॥१॥**

**अन्वय**—भवान् मरुत्वतः प्रतिपत्त्या प्रथमोपकृतं लघु मन्यते। सोऽपि भवतः अवदानविस्मितः सत्क्रियागुणान् न गणयति।

**मातलि**—(मुस्कराते हुए) आयुष्मन्, मैं समझता हूँ कि आप दोनों ही

असन्तुष्ट हैं। आप इन्द्र के द्वारा किए गए सत्कार के कारण अपने किए गए पूर्व उपकार को तुच्छ समझते हैं। वह (इन्द्र) भी आपके पराक्रम से आश्चर्ययुक्त अपने द्वारा किए गए सत्कार के महत्त्व को कुछ नहीं समझता ॥१॥

**संस्कृत-व्याख्या**—भवान्—दुष्यन्तः, मरुत्वतः—इन्द्रस्य, प्रतिपत्त्या—गौरवेण, प्रथमोपकृतं—प्रथमं पूर्वकृतं यत् उपकृतम् उपकारः तत्, लघु—तुच्छम्, मन्यते—विचारयति, सोऽपि—इन्द्रोऽपि, भवतः—दुष्यन्तस्य, अवदान०—अवदानेन पराक्रमेण विस्मितः आश्चर्यान्वितः, सत्क्रियागुणान्—सत्क्रियायाः सत्कारस्य गुणान् विनयादिमहत्त्वम्, न गणयति—न चिन्तयति। अत्र विभावना विशेषोक्तिश्चालंकारौ। सुन्दरी वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **आकाशयानेन**—आकाशमार्ग से। यान का अर्थ यहाँ पर मार्ग है। (२) मघवतः—देहलीदीपकन्याय से इसका दोनों ओर सम्बन्ध है—(क) इन्द्र की आज्ञा का पालन करने पर भी, (ख) इन्द्र के सत्कार-विशेष से। (३) **अनुपयुक्तम्०**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) अनुपयुक्त सा, मैंने जैसे कुछ काम ही न किया हो, (ख) अयोग्य सा। इन्द्र के सत्कार के सामने मेरा कार्य नगण्य सा है। (४) **उभयम्०**—दोनों ओर ही, दोनों के ही हृदय में असन्तोष है। (५) **प्रथमोपकृतम्०**—पहले किए हुए उपकार को, अर्थात् राक्षसों के वधरूपी उपकार का। प्रथमं यत् उपकृतं तत्, कर्मधारय। (६) **मरुत्वतः**—इन्द्र के। वेद में मरुत्वान् इन्द्र का विशेषण है। वायु-देवताओं को मरुत् कहते हैं, मरुत् देवता वृत्र के वध में इन्द्र के सहायक हैं, अतः इन्द्र मरुत्वान् है। (७) **प्रतिपत्त्या**—गौरव, आदर या सत्कार से। प्रतिपत्तिः—प्रति+पद्+क्तिन्। (८) **अवदान०**—पराक्रम से आश्चर्ययुक्त। अवदानेन विस्मितः, तत्पुरुष। अवदान का अर्थ पराक्रम या विशेष वीरता का कार्य है। अवदान—अव+दै (दा)+ल्युट् (९) **सत्क्रिया०**—सत्क्रियायाः गुणान्, तत्पुरुष। सत्कार के विशेष महत्त्व को। (१०) यहाँ पर सत्काररूपी कारण के होने पर भी गणनारूपी कार्य न होने से विशेषोक्ति है। गणना के अभावरूपी कार्य का कारण न होने से विभावना है।

**विशेष**—यहाँ से लेकर अंक की समाप्ति तक निर्वहण सन्धि है। उसका लक्षण है—(क) वीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥ (सा० दर्पण ६-८०), (दशरूपक १-४८), (ख) मुखसन्ध्यादयो यत्र विकीर्णा वीजसंयुक्ताः। महाप्रयोजनं यान्ति तन्निर्वहणमुच्यते। (सुधाकर)।

**३. राजा—मातले, मा मैवम्। स खलु मनोरथानाम-**

**प्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य——**

**अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं**
**जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।**
**आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का**
**मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ॥२॥**

**अन्वय**—अन्तिकस्थम् अन्तर्गतप्रार्थनं जयन्तम् उद्वीक्ष्य कृतस्मितेन हरिणा आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला पिनद्धा।

**राजा—मातलि, ऐसा न कहो। मेरी विदाई के समय उन्होंने जो सत्कार किया है, वह वस्तुतः मेरी कल्पना से भी परे की चीज है। क्योंकि उन्होंने मुझे देवताओं के सन्मुख अपने आधे आसन पर बिठाकर पास में खड़े हुए, मन ही मन (माला के) इच्छुक, अपने पुत्र जयन्त की ओर देखकर मुस्कराते हुए इन्द्र ने वक्षःस्थल पर लगे हुए हरिचन्दन से चिह्नित मन्दार के फूलों की माला मुझे पहना दी ॥२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अन्तिकस्थं—समीपे स्थितम्, अन्तर्गत०—अन्तर्गता हृद्गता प्रार्थना मालाविषयिणी इच्छा यस्य तम्, जयन्तं—स्वपुत्रम्, उद्वीक्ष्य—दृष्ट्वा, कृतस्मितेन—विहितमन्दहासेन, हरिणा—इन्द्रेण, आमृष्ट०—आमृष्टं घर्षणेन अपहृतं यद् वक्षःस्थं हरिचन्दनं तस्य अङ्कः चिह्नं यस्याः सा, मन्दारमाला—मन्दारवृक्षस्य स्रक्, पिनद्धा—मम कण्ठे परिधापिता। अत्र परिकर उदात्तं चालंकारौ। उपजातिर्वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **अभूमिः**—अस्थान, अपात्र। मनोरथों की जहाँ तक पहुँच नहीं है, अतः मनोरथातीत या आशातीत। ( २ ) **विसर्जना०**—विसर्जनस्य अवसरे सत्कारः, तत्पुरुष। विदाई के समय मेरा सत्कार। ( ३ ) **दिवौकसाम्०**—देवताओं के सामने। द्यौः ओकः गृहं येषां ते दिवौकसः, स्वर्ग जिनका घर है। ( ४ ) **अर्धासनो०**—अपने आधे आसन पर बिठाकर। इससे ज्ञात होता है कि दुष्यन्त इन्द्र के आसन पर बैठने में संकोच कर रहा था, विशेष रूप से इसलिए कि अन्य देवता खड़े थे। इन्द्र न उसे अपने पास विठाया। हिन्दू-विचारधारा के अनुसार इन्द्र का आधा आसन पाना सर्वोत्तम गौरव की बात है। (५) **अन्तर्गत०**—अन्तर्गता प्रार्थना यस्य तम् (बहु०)। जयन्त मन ही मन चाह रहा था कि यह मन्दार की माला इन्द्र मुझे पहना दे। ( ६ ) **अन्तिकस्थम्**—जयन्त पास ही

खड़ा था। ( ७ ) **उद्वीक्ष्य**—ऊपर देखकर। इससे ज्ञात होता है कि इन्द्र और दुष्यन्त बैठे थे, जयन्त तथा अन्य सभी देवता खड़े थे, अतः इन्द्र को ऊपर देखना पड़ा। ( ८ ) **आमृष्ट०**—आमृष्टस्य वक्षोहरिचन्दनस्य अङ्कः यस्याः सा, बहु०। लगे हुए चन्दन के चिह्न से युक्त। स्वर्ग में जो चन्दन का वृक्ष है, उसे हरिचन्दन कहते हैं। इन्द्र को प्रिय होने से उसका नाम हरिचन्दन हो गया। पद्मपुराण (१२-७) के अनुसार हरिचन्दन एक विशेष प्रकार का लेप है। उसके बनाने की विधि है—घृष्टं च तुलसीकाष्ठं कर्पूराऽगुरुयोगतः। अथवा केसरैर्योज्यं हरिचन्दनमुच्यते। ( ९ ) **मन्दारमाला**—स्वर्ग के प्रसिद्ध पाँच वृक्षों में से एक मन्दार है। पाँच स्वर्ग के वृक्षों के नाम हैं—पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्। (अमरकोष) ; मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन। (१०) **पिनद्धा**—बाँध दी। अपि+नह्+क्त+टाप्। वष्टि भागुरिरल्लोपम्० इस नियम से अपि के अ का लोप। (११) साभिप्राय विशेषणों के कारण परिकर अलंकार है। गौरव के आधिक्य के वर्णन के कारण उदात्त अलंकार है।

**४. मातलिः—किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति ? पश्य—**

**सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं**
**त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम् ।**
**तव शरैरधुना नतपर्वभिः**
**पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ॥३॥**

**अन्वय**—अधुना नतपर्वभिः तव शरैः, पुरा च नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणः नखैः, उभयैः सुखपरस्य हरेः त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकं कृतम्।

**मातलि—ऐसी क्या चीज है जो आप इन्द्र से नहीं पा सकते हैं ? देखिए—**

**इस समय गाँठ पर से झुके हुए आपके बाणों ने और प्राचीन समय में गाँठ पर से मुड़े हुए नृसिंहावतार के नाखूनों ने, इन दोनों चीजों ने भोगों में लिप्त इन्द्र के स्वर्ग को दानवरूपी कण्टकों से रहित कर दिया है ॥३॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अधुना—इदानीम्, नतपर्वभिः—नतानि आकुञ्चितानि पर्वाणि ग्रन्थयः येषां तैः, तव—दुष्यन्तस्य, शरैः—बाणैः, पुरा च—कृतयुगे च, नतपर्वभिः—नतानि ईषदाकुञ्चितानि पर्वाणि अङ्गुलिपर्वभागाः येषां तैः, पुरुषकेसरिणः—नृसिंहस्य, नखैः—नखरैः, उभयैः—शरैः नखैश्च, सुखपरस्य—भोगेष्वासक्तस्य, हरेः—इन्द्रस्य, त्रिदिवं—स्वर्गं, उद्धृत०—उद्धृताः विनाशिताः दानवरूपाः कण्टकाः यस्मात तत्, कृतं—विहितम्। दीपकमलंकारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **सुखपरस्य**—इससे व्यक्त किया गया है कि इन्द्र सदा सुखों और भोगों में लिप्त रहता है। ज्योंही उसके सुखों में विघ्न आता है, तुरन्त उसका निवारण किया जाता है। ( २ ) **उभयैः**—दोनों ने। कैयट का मत है कि उभय शब्द का प्रयोग द्विवचन में नहीं होता। हरदत्त का मत है कि इसका प्रयोग तीनों वचनों म होता है। उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति, इति कैयटः। अस्ति, इति हरदत्तः। (सिद्धान्तकौमुदी सूत्र २१७ पर)। ( ३ ) **त्रिदिवम्**—स्वर्ग। यह शब्द पुंलिग और नपुंसक० दोनों है। यह शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) त्रिविधं दीव्यति इति, त्रि+दिव्+क (अ)। इगुपध० (३-१-१३५) से क। (ख) तृतीयं दिवम्-त्रिदिवम्। ( ४ ) **उद्धृत०**—नष्ट कर दिया है राक्षसरूपी कण्टक जहाँ से। उद्धृताः दानवकण्टकाः यस्मात् तत्, बहु०। ( ५ ) **नतपर्वभिः**—इसका बाणों और नाखूनों दोनों के साथ अन्वय है। बाण के साथ अर्थ है—(क) जो गाँठ पर से झुके हुए हैं, या जो गाँठ पर से नम्र या चिकने हैं। इससे ज्ञात होता है कि दुष्यन्त के बाण बहुत लम्बे थे और वेग से फेंकने के कारण झुके हुए चलते थे। (ख) नाखून के पक्ष में—अँगुलियों के जोड़ पर मुड़े हुए। ( ६ ) **पुरुषकेसरिणः**—नृसिंह अवतार के। नृसिंह या नरसिंह अवतार, यह अधिक प्रसिद्ध नाम है। यह विष्णु का चौथा अवतार माना जाता है। इसने हिरण्यकशिपु नामक राक्षस को मारकर देवों और मनुष्यों का दुःख दूर किया था। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद का पिता था। ( ७ ) यहाँ पर प्रस्तुत दुष्यन्त के बाण और अप्रस्तुत नृसिंह के नाखून का कृतम् इस एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार है।

**५. राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः।**

**सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः**
**संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।**
**किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता**
**तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥४॥**

अन्वय—महत्सु अपि कर्मसु नियोज्याः सिध्यन्ति (इति) यत् तम् ईश्वराणां संभावनागुणम् अवेहि। किं वा अरुणः तमसां विभेत्ता अभविष्यत् चेत् सहस्रकिरणः तं धुरि न अकरिष्यत्।

राजा—इस विषय में इन्द्र की ही महिमा प्रशंसनीय है।

बड़े-बड़े कामों में भी अधीनस्थ व्यक्ति जो सफल हो जाते हैं, उसको आप उनके स्वामियों के गौरव-प्रदान का ही फल समझिए। क्या अरुण कभी अन्धकार

का नाशक हो सकता था, यदि सूर्य उसको अपनी धुरा में (अग्रभाग में) न लगाता ? ।।४।।

**संस्कृत-व्याख्या**—महत्सु अपि—गुरुतरेषु अपि, कर्मसु—कार्येषु, नियोज्याः—सेवकाः अधीनस्थाः जना वा, सिध्यन्ति—सफला भवन्ति, इति यत् तम्, ईश्वराणां—प्रभूणाम्, संभावनागुणम्—संभावनायाः अयमेतत्कार्यं कर्तुं प्रभवतीति गौरवप्रदानं तस्य फलम्, अवेहि—जानीहि । किं वा—किमिति, अरुणः—सूर्यसारथिः, तमसाम्—अन्धकाराणाम्, विभेत्ता—नाशकः, अभविष्यत्—न अभविष्यदित्यर्थः, चेत्—यदि, सहस्रकिरणः—सूर्यः, तम्—अरुणम्, धुरि—अग्रभागे, न अकरिष्यत्—न अयोजयिष्यत् । अत्राप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) **अत्र**—इस विषय में, मेरी विजय के विषय में । ( २ ) **महत्सु०**—बड़े महत्त्व के कामों में । ( ३ ) **नियोज्याः**—सेवक । इसका मुख्य अर्थ सेवक है, परन्तु यहाँ पर अधीनस्थ व्यक्ति अर्थ है । ( ४ ) **संभावना०**—संभावना का अर्थ है किसी से किसी बड़े काम के कर लेने की आशा कि यह इस काम को अवश्य कर लेगा । अतः संभावना का अर्थ हो जाता है—किसी को गौरव प्रदान करना या विशेष आदर की दृष्टि से देखना । उसका ही फल है कि सामान्य व्यक्ति बड़ा काम कर पाता है । संभावनायाः गुणम्, तत्पुरुष । इसी प्रकार के भाव की सूक्तियाँ हैं—(क) ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद् विजयन्ते द्विषदो यदस्य पक्ष्याः । (विक्रमो० १-१५), (ख) त्रिलोकरक्षी महिमा हि वज्रिणः (विक्रमो० १-५) । (ग) तव प्रसादात् कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव० (कुमार० ३-१०), (घ) तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् । (किराता० १-६) । ( ५ ) **अरुणः**—सूर्य के सारथि का नाम है । ( ६ ) **सहस्रकिरणः**—सूर्य । हजारों किरणों वाला । सहस्र का प्रयोग असंख्य के अर्थ में भी होता है । जैसे—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्० (यजु० ३१-१) । (७) **धुरि**—धुरा में, अग्रभाग में । ( ८ ) यहाँ पर इन्द्र और दुष्यन्त प्रस्तुत के स्थान पर प्रभु और नियोज्य अप्रस्तुत के कथन के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है । सामान्य पूर्वार्ध के द्वारा उत्तरार्ध विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है ।

**६. मातलिः**—सदृशमेवैतत् । (स्तोकमन्तरमतीत्य) आयुष्मन्, इतः पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः ।

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां
वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।

**विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं**
**दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥५॥**

**अन्वय**—अमी दिवौकसः गीतक्षमम् अर्थजातं विचिन्त्य सुरसुन्दरीणां विच्छित्तिशेषैः वर्णैः कल्पलतांशुकेषु त्वच्चरितं लिखन्ति।

**मातलि**—यह कथन आपके अनुकूल ही है। (थोड़ी दूर आगे चलकर) आयुष्मन्, स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित अपने यश के सौभाग्य को इधर देखिए।

ये देवगण गाने के योग्य अर्थों को सोचकर (अर्थात् गेय पद्यों को बनाकर) देवांगनाओं के अंगराग से शेष रंगों से कल्पवृक्ष के रेशमी वस्त्रों पर आपका जीवन-चरित (पराक्रमादि) लिख रहे हैं ॥५॥

**संस्कृत-व्याख्या**—अमी—दूरे दृश्यमानाः, दिवौकसः—देवाः, गीतक्षमं—गानयोग्यम्, अर्थजातं—भावावलिम्, विचिन्त्य—विचार्य, सुरसुन्दरीणां—देवाङ्गनानाम्, विच्छित्तिशेषैः—विच्छित्त्याः अङ्गरागात् शेषैः अवशिष्टैः, वर्णैः—रागैः, कल्प०—कल्पलताभ्यः उत्पन्नेषु वस्त्रेषु, त्वच्चरितं—त्वदीयं पराक्रमादि-चरितम्, लिखन्ति। परिणामोऽलंकारः। उपजातिर्वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **नाकपृष्ठ०**—स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित। तुम्हारा यश सारे स्वर्ग में फैला हुआ है। ( २ ) **सौभाग्यम्**—गौरव, प्रतिष्ठा। ( ३ ) **विच्छित्ति०**—विच्छित्त्याः शेषैः, तत्पुरुष। अंगराग से बचे हुए। विच्छित्ति का साधारण अर्थ है काटना या चित्रादि खींचना। अतः इसका अर्थ हो जाता है—रंगों आदि से अपने अंगों पर फूल बूटे आदि बनाकर अंगों को सजाना। जैसे मेंहदी आदि से स्त्रियाँ अपने हाथों आदि पर फूल चित्रादि बनाती हैं। स्वर्ग की सुन्दरियों के अंगराग से जो रंग बच गया है, उससे देवगण तुम्हारा पराक्रमादि चरित अंकित कर रहे हैं। ( ४ ) **कल्पलता०**—कल्पलता से उत्पन्न हुए रेशमी वस्त्रों पर। कल्पवृक्ष सभी प्रकार के वस्त्रादि देता है। ( ५ ) **गीतक्षमम्०**—गाने के योग्य भावों को सोचकर। यहाँ इसका अभिप्राय यह है कि गाने के योग्य सुन्दर पद्यों को बनाकर। ( ६ ) **चरितम्०**—तुम्हारा चरित लिख रहे हैं, अर्थात् तुमने जो दुर्जय राक्षसों को मारा है, उस पराक्रम को ये लोग पद्यरूप में लिख रहे हैं। चरित और चरित्र शब्द का अन्तर स्मरण रखें—चरित्र का अर्थ है आचरण और चरित का अर्थ है जीवन-चरित, जीवन की घटनाएँ। ( ७ ) यहाँ पर विच्छित्ति से शेष अंगराग का लेखन में उपयोग होने से परिणाम अलंकार है।

Funding by IKS-MoE

**७. राजा—मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधि-**

रोहता मया न लक्षितः स्वर्गमार्गः । कतमस्मिन् मरुतां पथि वर्तामहे ?

राजा—मातलि, असुरों के साथ युद्ध की उत्सुकता के कारण पहले दिन स्वर्ग जाते समय मैंने स्वर्ग के मार्ग की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था । बताओ वायु के किस मार्ग में हम लोग चल रहे हैं ?

८. **मातलिः**—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥६॥

अन्वय—यः गगनप्रतिष्ठां त्रिस्रोतसं वहति, प्रविभक्तरश्मिः ज्योतींषि वर्तयति च । तस्य परिवहस्य वायोः द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कम् इमं मार्गं वदन्ति ।

मातलि—जो आकाश में प्रतिष्ठित आकाश-गंगा को धारण करता है, जो अपनी वायुरूपी किरणों को चारों ओर फैलाकर नक्षत्रों को यथास्थान चलाता है, उस परिवह नामक वायु का, वामनरूपधारी विष्णु के द्वितीय पद-विन्यास से पवित्र, यह मार्ग कहा जाता है ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—यः—परिवहनामको वायुः, गगन०—गगने आकाशे प्रतिष्ठा स्थितिः यस्याः ताम्, त्रिस्रोतसम्—आकाशगङ्गाम्, वहति—धारयति । प्रविभक्तरश्मिः—प्रविभक्ताः समन्ततो विस्तृता रश्मयः वायुरूपाः किरणाः यस्य सः, ज्योतींषि—नक्षत्राणि, वर्तयति च—भ्रमयति च । तस्य परिवहस्य—परिवहनामकस्य, वायोः—पवनस्य, द्वितीय०—द्वितीयेन हरेः विष्णोः विक्रमेण पादन्यासेन निस्तमस्कं निर्मलम्, इमं मार्गम्—एतं पन्थानम्, वदन्ति—कथयन्ति । उदात्तमलंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **असुर०**—असुरों से युद्ध की उत्सुकता के कारण । असुरैः संप्रहारे उत्सुकेन, तत्पुरुष । सुर शब्द सुरा शब्द से बना है, सुरा अस्यास्तीति, मत्वर्थ में अच् । अमृत का पान करने वाले । न सुरः असुरः । संप्रहार—युद्ध । सम्+प्र+हृ+घञ् (अ) । (२) **पूर्वेद्युः**—पिछले दिन, गत दिन । पूर्वस्मिन् अहनि

---

पाठभेद—७. नि० कतरस्मिन् (कौन से) ।

अर्थ में सद्यःपरुत्० (५-३-२२) से पूर्वद्यु निपातन। (३) **कतमस्मिन्**—किस मार्ग में। पाठभेद—कतरस्मिन्। दो की तुलना में कतर आता है और बहुतों की तुलना में कतम। वायु सात हैं, अतः कतमस्मिन् पाठ उचित है। (४) **मरुतां पथि**—हिन्दू विचारधारा के अनुसार आकाश को सात भागों में बाँटा गया है और प्रत्येक में एक वायु मानी गई है। सात वायुएँ ये हैं—आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह। सिद्धान्तशिरोमणि का कथन है—भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वं स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च। अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्माद् बाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः।। ब्रह्माण्डपुराण में इनके सात नाम इस प्रकार हैं—आवहः प्रवहश्चैव संवहश्चोद्वहस्तथा। विवहाख्यः परिवहः परावह इति क्रमात्। सप्तैते मारुतस्कन्धा महर्षिभिरुदीरिताः।। पृथ्वी से बादलों तक आवह वायु है, प्रवह वायु में सूर्य है, संवह में चन्द्रमा है, उद्वह में नक्षत्र हैं, विवह में ग्रह हैं, परिवह में सप्तर्षि हैं और परावह में ध्रुव है। (५) **त्रिस्रोतसम्**—गंगा की तीन धाराएँ मानी गई हैं। आकाशस्थ गंगा को आकाश-गंगा या मन्दाकिनी कहते हैं। पृथ्वीस्थ गंगा को भागीरथी और पातालस्थ गंगा को भोगवती। त्रीणि स्रोतांसि यस्याः ताम्, बहु०। परिवह नामक वायु में सप्तर्षि नक्षत्र और आकाशगंगा हैं। ब्रह्माण्डपुराण का कथन है—सप्तर्षिचक्रं स्वर्गङ्गा षष्ठः परिवहस्तथा। अतः इन दोनों का यहाँ वर्णन है। वायुपुराण (५१-४६,४७) में भी कहा है—श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः। योऽसौ बिभर्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्।। (६) **ज्योतींषि०**—नक्षत्रों को यथास्थान घुमाता है। यहाँ नक्षत्रों का अभिप्राय सप्तर्षि नक्षत्र हैं। (७) **प्रविभक्तरश्मिः**—अपनी वायुरूपी किरणों को फैलाकर। (८) **द्वितीयहरि०**—द्वितीयेन हरेः विक्रमेण निस्तमस्कम्, तत्पुरुष। विष्णु के दूसरे पैर के रखने से निर्मल या पवित्र। यह विष्णु के वामनावतार की ओर निर्देश है। हिरण्यकशिपु के वंशज बलि नामक राक्षस को मारने के लिए विष्णु वामन के रूप में पैदा हुए। उन्होंने बलि से तीन पैर पृथ्वी माँगी। उसने स्वीकृति दे दी। वामन ने विराट् रूप धारण करके एक पैर से पृथ्वी नाप ली, दूसरे से आकाश और तीसरा पैर बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल पहुँचा दिया। यह कथा वैदिक कथा का विकृत रूप है। विष्णु सूर्य है, इसके तीन पैर हैं—उदय, मध्याह्न और अस्त। इनसे वह तीनों लोगों को नाप लेता है। (९) पाठभेद—तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एषः। इस पाठ में प्रवह वायु मानी गई है। नक्षत्र प्रवह वायु में हैं। यहाँ पर ज्योतींषि का सप्तर्षि नक्षत्र अर्थ लेकर छठी परिवह वायु ही मानना उचित है। राजा अभी स्वर्ग से चला है, अतः परिवह में पहुँचा है। अतिवेग के कारण वह शीघ्र ही बादलों में पहुँचता है।

**९. राजा—मातले, अतः खलु सबाह्यान्तःकरणो**

पाठभेद—९. नि० सवाह्यकरणो० (वाह्य इन्द्रियों के साथ)।

ममान्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गमवलोक्य) मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः।

राजा—मातलि, अतएव मेरी अन्तरात्मा बाह्य (चक्षु आदि) इन्द्रियों और अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) के साथ प्रसन्न हो रही है। (पहिए की ओर देखकर) हम दोनों बादलों के मार्ग पर उतर आए हैं।

**१०. मातलिः—कथमवगम्यते ?**

मातलि—आपने यह कैसे जाना ?

**११. राजा—अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-**
**र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।**
**गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां**
**पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः ॥७॥**

अन्वय—शीकरक्लिन्ननेमिः अयं ते रथः अरविवरेभ्यः निष्पतद्भिः चातकैः अचिरभासां तेजसा अनुलिप्तैः हरिभिः च, वारिगर्भोदराणां घनानाम् उपरि गतं पिशुनयति।

राजा—जलकणों से जिसके चक्र का प्रान्तभाग गीला हो गया है, ऐसा यह तुम्हारा रथ अरों (पहिए के डंडों) के बीच से निकलते हुए चातकों और बिजली के तेज से रंजित घोड़ों के द्वारा जल से परिपूर्ण बादलों के ऊपर चलने को सूचित कर रहा है ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—शीकर०—शीकरैः जलकणैः क्लिन्ना आर्द्राः नेमयः चक्रप्रान्तभागाः यस्य सः, अयं ते—तव मातले:, रथः—स्यन्दनः, अर०—अराणां चक्राङ्गाणां विवरेभ्यः रन्ध्रेभ्यः, निष्पतद्भिः—बहिरागच्छद्भिः, चातकैः—चातकपक्षिभिः, अचिरभासां—विद्युताम्, तेजसा—कान्त्या, अनुलिप्तैः—रञ्जितैः, हरिभिः च—अश्वैश्च, वारि०—वारिगर्भाणि जलपरिपूर्णानि उदराणि अभ्यन्तराणि येषां तेषाम्, घनानां—मेघानाम्, उपरि—ऊर्ध्वभागे, गतं—गमनम्, पिशुनयति—सूचयति। अत्र समुच्चयः काव्यलिङ्गमनुमानं चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **सबाह्या०**—बाह्य इन्द्रिय और अन्तःकरणों के साथ। बाह्यानि करणानि अन्तःकरणानि च तैः सह, [illegible] का अर्थ है इन्द्रियाँ। बाह्य इन्द्रियाँ १० हैं—५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—आँख, नाक, का

त्वचा और जीभ। ५ कर्मेन्द्रियाँ हैं—हाथ, पाँव, वाणी, मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय। श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी। पायूपस्थं पाणिपादं वाक् चैव दशमी स्मृता। अन्तःकरण में ४ चीजें हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। पाठभेद—सवाह्यकरणः, वाह्य इन्द्रियों के साथ। इसमें आत्मा की मुख्य चीज अन्तःकरण छूट जाता है, अतः यह पाठ उचित नहीं है। ( २ ) **प्रसीदति**—प्रसन्न हो रही है। ( ३ ) **मेघपदवीम्**—वादलों के मार्ग पर। पृथ्वी से बादलों तक भूवायु या आवह है। भास्कराचार्य ने कहा है—भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि भूवायुरत्राम्वुदविद्युदाद्यम्। (सिद्धान्तशिरोमणि)। ( ४ ) **अवतीर्णौ**—उतर आए हैं। अव+तॄ+क्त। ( ५ ) **अर०**—पहिए के वीच में तिरछे लगे हुए डंडों को अर कहते हैं। अरों के बीच से। अराणां विवरेभ्यः, तत्पुरुष। ( ६ ) **चातकैः**—चातक पक्षी। यह माना जाता है कि चातक वादलों के जल को ही पीता है, पृथ्वी पर पड़े जल को नहीं छूता। हिंदी में इसे पपीहा भी कहते हैं। सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्राः पयोविन्दवः। (नीतिशतक)। ( ७ ) **अचिरभासाम्०**—विज़ली के तेज से रंजित। न चिरा भाः यासां तासाम्, वहु०। जिसका तेज क्षणस्थायी होता है, अर्थात् विजली। ( ८ ) **गतन्**—चलना। भाव अर्थ में क्त प्रत्यय। ( ९ ) **वारि०**—जिनका मध्यभाग जल से पूर्ण है। वारि गर्भे येषां तानि वारिगर्भाणि उदराणि येषां तेषाम्, वहु०। (१०) **पिशुनयति**—सूचित करता है। पिशुन+णिच्। (११) **शीकर०**—शीकरैः क्लिन्नाः नेमयः यस्य सः, वहु०। (१२) यहाँ पर पूर्वार्ध में मेघपथ पर जाने के दो कारण होने से समुच्चय है। शीकर० मेघपथ पर जाने का कारण है, अतः काव्यलिंग है। हेतुओं के द्वारा मेघपथगमन का अनुमान होने से अनुमान है।

१२. **मातलिः**—क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते।

मातलि—क्षण भर में आप अपने अधिकार वाली भूमि में पहुँच जाएंगे।

१३. **राजा**—(अधोऽवलोक्य) वेगावतरणादाश्चर्य-दर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। तथा हि—

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥८॥

अन्वय—मेदिनी उन्मज्जतां शैलानां शिखरात् अवरोहति इव। पादपाः

---

पाठभेद—१३. का० मातले, वेगा० (हे मातलि)। नि० पर्णस्वान्तर० (पत्तों के मध्य में अपने छिपे रहने को)।

स्कन्धोदयात् पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति। तनुभावनष्टसलिला: आपगा: सन्तानै: व्यक्ति भजन्ति। पश्य, उत्क्षिपता केनापि भुवनं मत्पार्श्वम् आनीयते इव।

राजा--(नीचे देखकर) वेग से उतरने के कारण यह मनुष्य-लोक आश्चर्यजनक दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि--

प्रकट होते हुए पर्वतों के शिखर से मानो पृथिवी नीचे उतर रही है। वृक्ष अपने तनों के दिखाई पड़ने से पत्तों के अन्दर छिपना छोड़ रहे हैं। सूक्ष्मता के कारण जिनका पानी दिखाई नहीं पड़ता था, ऐसी नदियाँ अब विस्तार के कारण प्रकट हो रही हैं। देखिए, ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई उछालकर पृथ्वी को मेरी ओर ला रहा है॥८॥

**संस्कृत-व्याख्या**—मेदिनी—भूमि:, उन्मज्जतां—प्रकटीभवताम्, शैलानां—पर्वतानाम्, शिखरात्—अग्रभागात्, अवरोहति इव—अधो गच्छतीव। पादपा:—वृक्षा:, स्कन्धोदयात्—स्कन्धानां प्रकाण्डानाम् उदयात् प्रकाशात्, पर्णा०—पर्णानां पत्राणाम् अभ्यन्तरे मध्ये लीनतां गुप्तताम्, विजहति—त्यजन्ति। तनु०—तनुभावेन क्षीणतया नष्टानि अलक्षितानि सलिलानि जलानि यासां ता:, आपगा:—नद्य:, सन्तानै:—विस्तारै:, व्यक्तिं—प्रकटताम्, भजन्ति—प्राप्नुवन्ति। पश्य—अवलोकय, उत्क्षिपता—ऊर्ध्वं प्रक्षिपता, केनापि—अदृश्येन केनापि जीवेन, भुवनं—भूलोक:, मत्पार्श्वं—मम समीपे, आनीयते इव—प्राप्यते इव। उत्प्रेक्षा स्वभावोक्ति: काव्यलिङ्गं चालंकारा:। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **अवरोहति इव**—पहाड़ों की चोटियाँ दिखाई दीं और वहाँ से पृथ्वी नीचे की ओर सरकती हुई सी दिखाई देती थी। वायुयान से आकाश में यात्रा के समय जो दृश्य दिखाई देता है, वैसा ही यह वर्णन है। (२) **उन्मज्जताम्**—प्रकट होतें हुए। (३) **मेदिनी**—पृथ्वी। पुराणों में मेदिनी शब्द की व्युत्पत्ति मेदस् अर्थात् चर्बी से मानी है। विष्णु ने मधु और कैटंभ राक्षसों को मारा। उनकी चर्बी से पृथ्वी भर गई। अत: पृथ्वी को मेदिनी कहते हैं। मधुकैटभयोरासीन्मेदसैव परिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि:॥ (४) **पर्णा०**—पर्णानाम् अभ्यन्तरे लीनताम्, तत्पुरुष। मातलि का रथ दूर था तो वृक्ष ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वे पत्तों से ढके हुए हैं, पास आने पर उनके तने आदि दिखाई पड़े। (५) **विजहति**—छोड़ते हैं। वि+हा+लट्, प्रथमपुरुष बहुवचन। (६) **सन्तानै:**—विस्तार के कारण। पाठभेद—सन्तानात्, विस्तार के कारण। सन्तानात् पाठ अधिक उपयुक्त है, इसमें हेतु अर्थ में पंचमी है। (७) **तनु०**—तनुभावेन नष्टानि सलिलानि यासां ता:, बहु०। रथ दूर

था तो नदियाँ बहुत पतली-सी दिखाई पड़ती थीं और ऐसा प्रतीत होता था कि इनमें जल नहीं है। पास आने पर उनमें जल दिखाई देने लगा। (८) **व्यक्तिम्**—जलयुक्त प्रकट होने लगीं। (९) **केनापि०**—ऐसा प्रतीत होता था मानो पृथ्वी को कोई उछाल कर पास ला रहा है। रेल और विमान से यात्रा करने वाले को ऐसा ही प्रतीत होता है कि पृथ्वी और वृक्षादि चल रहे हैं। (१०) यहां पर इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है। पूरे श्लोक में स्वभावोक्ति है। चतुर्थ चरण के प्रति अन्य तीन चरण कारण होने से काव्यलिंग है।

**१४. मातलिः—साधु दृष्टम्। (सबहुमानमवलोक्य) अहो, उदाररमणीया पृथ्वी।**

**मातलि—आपने ठीक देखा। (विशेष आदर के साथ देखकर) अहो, यह पृथिवी कैसी विशाल और मनोहर दीख रही है।**

**१५. राजा—मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिस्यन्दी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते?**

**राजा—मातलि, पूर्व और पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ, सुवर्ण के रस को बहाने वाला, सायंकालीन मेघों की अर्गला के तुल्य, यह कौन सा पर्वत दिखाई पड़ रहा है?**

**१६. मातलिः—आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्। पश्य—**

**स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।**
**सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥९॥**

अन्वय—स्वायंभुवात् मरीचेः यः प्रजापतिः प्रबभूव। सुरासुरगुरुः सः सपत्नीकः अत्र तपस्यति।

**मातलि—आयुष्मन्, यह हेमकूट नाम का किंपुरुषों (किन्नरों) का पर्वत है। यह तपस्या की सफलता के लिए सर्वोत्तम स्थान है। देखिए—**

**ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से जो प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, देवों और राक्षसों के पिता वे अपनी पत्नी के साथ यहाँ तपस्या करते हैं ॥९॥**

संस्कृत-व्याख्या—स्वायम्भुवात्—स्वयंभूः ब्रह्मा तस्य मानसपुत्रात्, मरीचेः—तन्नामकमुनेः, यः प्रजापतिः—लोकस्रष्टा कश्यप इति, प्रबभूव—जज्ञे। सुरासुर-

---

पाठभेद—१५. नि० निस्यन्दः (बहाने वाला)।

गुरुः—सुराणां देवानाम् असुराणां दैत्यानां च गुरुः पिता, सः—कश्यपः, सपत्नीकः—पत्न्या अदित्या सह, अत्र—अस्मिन् पर्वते, तपस्यति—तपश्चरति। श्लोको वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **उदार०**—विशाल और मनोहर। उदारा चासौ रमणीया, कर्मधारय। ( २ ) **पृथिवी**—पृथिवी प्रथनात्, बहुत फैली होने से इसका नाम पृथिवी पड़ा है। ( ३ ) **पूर्वापर०**—पूर्व और पश्चिम समुद्र तक प्रविष्ट या फैला हुआ। पूर्वम् अपरं च समुद्रम् अवगाढः, तत्पुरुष। ६ वर्ष-पर्वत माने जाते हैं, जो पूर्व से पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं। यह भी उन ६ वर्ष-पर्वतों में से एक है। प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः। अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ। कुमारसंभव १—१ में हिमालय का भी ऐसा ही वर्णन है—पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य। (४) **कनक०**—सोने के रस को फैलाने वाला। कनकरसस्य निस्यन्दः, सः अस्यास्तीति मत्वर्थ में इन्। यह शब्द दो प्रकार से लिखा जाता है—निस्यन्द और निष्यन्द। 'अनुविपर्यभि०' (८-३-७२) से वैकल्पिक स् को ष्। ( ५ ) **हेमकूटः**—सोने की चोटी वाला पर्वत। यह वर्षपवतों में से एक है। यह पर्वत हिमालय के उत्तर में कैलास के पास माना जाता है। ( ६ ) **किंपुरुष०**—इनको किन्नर भी कहते हैं। इनका शरीर मनुष्य का होता है और सिर घोड़े का। ये कुबेर के नौकर हैं। किन्नरों का देश। इस प्रकार के ९ वर्ष माने जाते हैं। उनके नाम हैं—कुरु, हिरण्मय, रम्यक, इलावृत, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष या किन्नर, भारत। ( ७ ) **स्वायंभुवात्**—स्वयंभू का अर्थ ब्रह्मा है। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि के पुत्र। ( ८ ) **प्रजापतिः**—यहाँ कश्यप ऋषि से अभिप्राय है। मरीचि का पुत्र होने से उन्हें मारीच भी कहते हैं। इनकी स्त्री का नाम अदिति है। ये देवताओं और राक्षसों के पिता माने जाते हैं। महाभारत आदिपर्व ६६१ के सात प्रजापतियों में और विष्णुपुराण के ९ प्रजापतियों में इनका नाम नहीं है। वायुपुराण में इनको प्रजापति माना है। इनकी स्त्रियाँ अदिति, दिति और दक्ष की ११ पुत्रियाँ हैं। अदिति के पुत्र देवता हुए और दिति के दैत्य। इस प्रकार ये देवों और दैत्यों के पिता हैं। ( ९ ) **तपस्यति**—तप करते हैं। तपः चरति, 'कर्मणो रोमन्थ०' ( ३-१-१५ ) से क्यङ (य) और तपसः परस्मैपदं च (वार्तिक) से परस्मैपद।

**१७. राजा—तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।**

राजा—तो कल्याण की चीजों को छोड़कर नहीं जाना चाहिए। मैं भगवान् (कश्यप) की प्रदक्षिणा करके ही आगे जाना चाहता हूँ।

**१८. मातलिः—प्रथमः कल्पः। (नाट्येनावतीर्णौ।)**

मातलि—यह उत्तम विचार है। (दोनों उतरने का अभिनय करते हैं।)

**१६. राजा—(सविस्मयम्)**

**उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः**
**प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।**
**अभूतलस्पर्शतयाऽनिरुद्धत-**
**स्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥१०॥**

**अन्वय**—अभूतलस्पर्शतया रथाङ्गनेमयः उपोढशब्दाः न । रजः च प्रवर्तमानं न दृश्यते । अनिरुद्धतः तव रथः अवतीर्णः अपि न लक्ष्यते ।

**राजा—(आश्चर्य के साथ)**

**(रथ से) पृथ्वी का स्पर्श न होने के कारण रथ के पहियों के अग्रभाग ने शब्द नहीं किया। धूल भी उठती हुई नहीं दिखाई देती है। लगाम न रोकने के कारण तुम्हारा रथ (भूमि पर) उतरा हुआ भी वैसा प्रतीत नहीं होता है ॥१०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अभूतलस्पर्शतया—पृथिव्याः स्पर्शाभावेन, रथाङ्गनेमयः—रथाङ्गानां चक्राणां नेमयः प्रान्तभागाः, उपोढशब्दाः—उपोढाः प्रारब्धाः शब्दा स्वनाः यैः ते, न—तादृशा न सन्ति । रजः च—धूलयश्च, प्रवर्तमानं—तुरगखुरैः उत्क्षिप्तम्, न दृश्यते—नावलोक्यते । अनिरुद्धतः—अनिरोधात्, तव—मातलेः, रथः—स्यन्दनः, अवतीर्णोऽपि—भूतलमागतोऽपि, न लक्ष्यते—अवतीर्ण इति न ज्ञायते । विशेषोक्तिः काव्यलिङ्गं चालंकारौ । वंशस्थं वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **अनतिक्रम०**—कल्याण करने वाली चीजों की प्रदक्षिणा किए विना आगे नहीं जाना चाहिए। उनका उल्लंघन या त्याग नहीं करना चाहिए। अतएव रघुवंश (१-७९) में कहा है—'प्रतिवध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः'। (२) **श्रेयांसि**—कल्याण या कल्याण को देने वाली चीजें। यहाँ शुभाशीर्वाद देने वाले ऋषि से भाव है। (३) **प्रदक्षिणी०**—प्रदक्षिणा करके। यहाँ पर च्वि प्रत्यय है। इन चीजों की प्रदक्षिणा करनी चाहिए—मृदङ्गं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणानि कुर्वीत विज्ञातांश्च वनस्पतीन्। (मनु० ४-३९)। (४) **प्रथमः०**—उत्तम विचार है। प्रथम का अर्थ है श्रेष्ठ, उत्तम। कल्प का अर्थ है विचार। इस कल्प का सम्बन्ध संकल्प से समझना चाहिए। भास के नाटकों में यह प्रयोग बहुत आया है। (५) **उपोढशब्दाः**—उपोढाः शब्दाः यैस्ते, बहु०। शब्द करने वाले। (६) **रथाङ्ग०**—पहिए के अग्रभाग। (७) **अभूतल०**—पृथ्वी का स्पर्श न होने से। (८) **अनिरुद्धतः**—निरोध का अर्थ है रोकना। अनिरुद्ध—न रोकना, लगाम न खींचने के कारण।

अनिरोध अर्थ में अनिरुद्ध है। हेतु अर्थ में पंचमी। पाठभेद—निरुद्धतिः—झटका न लगने से। यह पाठ अधिक स्पष्ट है। ( ६ ) यहाँ पर रथ के उतरने पर भी शब्दादि न होने से, कारण के होने पर भी कार्याभाव होने से विशेषोक्ति है। पहले के वाक्य उतरना मालूम न होने के प्रति कारण हैं, अतः काव्यलिंग है।

**२०. मातलिः—एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः ।**

**मातलि—इतना ही इन्द्र के और आपके (रथ में) अन्तर है।**

**२१. राजा—मातले, कतमस्मिन् प्रदेश मारीचाश्रमः ?**

**राजा—मातलि, मारीच का आश्रम किस स्थान पर है ?**

**२२. मातलिः—(हस्तेन दर्शयन्)**

**वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचा**
**कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः ।**
**अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं**
**यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥११॥**

**अन्वय**—वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिः, सन्दष्टसर्पत्वचा उरसा, जीर्णलताप्रतानवलयेन कण्ठे अत्यर्थसंपीडितः, अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं जटामण्डलं बिभ्रत्, स्थाणुः इव अचलः असौ मुनिः, यत्र अर्कबिम्बम् अभि स्थितः ।

**मातलि—(हाथ से दिखाकर)—जिसका आधा शरीर वल्मीक (बमी) में दबा हुआ है, जिसकी छाती साँप की केंचुली से लिपटी हुई है, जिसका गला पुराने लता-तन्तुओं के समूह से अत्यधिक पीड़ित है, जिसकी जटाएँ कन्धों पर फैली हुई हैं और जिनमें पक्षियों के घोंसले व्याप्त हैं, ऐसे ठूँठ की तरह निश्चल वे मुनि जहाँ सूर्यमण्डल की ओर मुँह किए खड़े हैं, (वहाँ आश्रम है) ॥११॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—वल्मीकार्ध०—वल्मीके पिपीलिकाकृतस्तूपे अर्धं निमग्ना निविष्टा मूर्तिः शरीरं यस्य सः, सन्दष्ट०—संदष्टा संलग्ना सर्पत्वक् निर्मोको यत्र तेन, उरसा—वक्षःस्थलेन युक्तः, जीर्ण०—जीर्णानां शुष्काणां लताप्रतानानां व्रततितन्तूनां वलयेन वेष्टनेन, कण्ठे—गलप्रदेशे, अत्यर्थ०—अत्यर्थम् अत्यधिकं संपीडितः क्लेशितः, अंस०—अंसौ स्कन्धौ व्याप्नोति इति तत्, शकुन्त०—शकुन्तानां पक्षिणां नीडैः कुलायैः निचितं व्याप्तम्, जटामण्डलं—जटाजूटम्, बिभ्रत्—धारयन्,

---

पाठभेद—२२. नि० वल्मीकाग्रनिमग्न० (बमी के अग्रभाग में जिसका शरीर दबा हुआ है)।

Funding by IKS-MoE

स्थाणुः इव—वृक्षकाण्ड इव, अचलः—निश्चलः, असौ मुनिः—स ऋषिः, यत्र—यस्मिन् स्थाने, अर्कबिम्बं—सूर्यमण्डलम्, अभि—लक्ष्यीकृत्य, स्थितः—तिष्ठति। तत्र मारीचाश्रमोऽस्ति। परिकरः श्लेष उपमा चालंकाराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **एतावान्०**—इन्द्र के और आपके रथ में इतना ही अन्तर है। तुम्हारा रथ पृथ्वी को छूता है, उसका रथ नहीं। जिस प्रकार देवता पृथ्वी को नहीं छूते, वैसे ही उनका रथ भी पृथ्वी को नहीं छूता है। (२) **वल्मीकार्ध०**—दीमक जो मिट्टी का ऊँचा ढेर कर लेती है, उसे वल्मीक या वमी कहते हैं। उसमें उसका आधा शरीर दबा हुआ या छिपा हुआ है। यह मारीच के आश्रम में किसी अन्य ऋषि का वर्णन है, मारीच का नहीं। कवि ने समाधिस्थ योगी का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वल्मीके अर्धं निमग्ना मूर्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि। (३) **सन्दष्ट०**—जिसके गले में साँप की केंचुली लिपटी हुई है। सन्दष्ट—लगी हुई, लिपटी हुई। स्थाणु के पक्ष में अर्थ होगा—जिसके मध्य भाग में केंचुली लगी हुई है। सन्दष्टा सर्पस्य त्वक् यत्र तेन, बहु०। (४) **जीर्ण०**—गले में सूखी लताएँ लिपटी हैं। जीर्णानां लताप्रतानानां वलयेन, तत्पुरुष। लताप्रतान—लताओं के तन्तु, वलय—घेरा। (५) **अत्यर्थ०**—बहुत पीड़ित। अत्यर्थं संपीडितः। (६) **अंसव्यापि**—कन्धों पर फैली हुई। (७) **शकुन्त०**—जटाओं में पक्षियों के घोंसले बने हुए थे। इससे ज्ञात होता है कि वह ऋषि कई वर्ष से तपस्या कर रहा था। (८) **अभ्यर्क०**—सूर्य-मण्डल की ओर मुंह किए हुए खड़ा है। यहाँ पर 'अभिरभागे' (१-४-९१) से अभि की कर्मप्रवचनीय-संज्ञा और 'कर्मप्रवचनीय०' (२-३-८) से द्वितीया। अथवा अभ्यर्कबिम्बम् एक शब्द माना जा सकता है। लक्षणेनाभिप्रती० (२-१-१४) से अव्ययीभाव समास। (९) यह समाधिस्थ योगी का विशद वर्णन है। इससे कवि की वर्णनशक्ति का परिचय मिलता है। योगी कई मास और कई वर्ष तक समाधिस्थ रह सकते हैं। (१०) साभिप्राय विशेषणों के कारण परिकर है। उरसा, कण्ठ आदि शब्द श्लिष्ट हैं, अतः श्लेष है।

**२३. राजा—नमस्ते कष्टतपसे।**

राजा—कठोर तपस्या करने वाले (मुनि) को प्रणाम है।

**२४. मातलिः—(संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) एतावददितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः।**

मातलि—(रथ की बागडोर रोककर) जहाँ पर अदिति ने मन्दार के वृक्षों को पाला है, ऐसे प्रजापति के आश्रम में हम दोनों पहुँच गए हैं।

---

पाठभेद—२४. नि० महाराज, एतौ० (हे महाराज, ये हम दोनों)।

२५. राजा——स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि।

राजा——यह स्वर्ग से भी अधिक सुख-शान्ति-प्रद स्थान है। यहाँ पर मैं मानो अमृत के तालाब में गोता लगा रहा हूँ।

२६. मातलिः——(रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्मान्।

मातलि——(रथ को रोककर) आप उतरिए।

२७. राजा——(अवतीर्य) मातले, भवान् कथमिदानीम् ?

राजा——(उतरकर) मातलि, अब आप क्या करेंगे ?

२८. मातलिः——संयन्त्रितो मया रथः। वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) इत आयुष्मन् ! (परिक्रम्य) दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः।

मातलि——मैंने इस रथ को अच्छे प्रकार से रोक दिया है। मैं भी उतरता हूं (वैसा करके) आप इधर से आइए। (घूमकर) आप माननीय ऋषियों की तपोवन-भूमि का दर्शन कीजिए।

२९. राजा——ननु विस्मयादवलोकयामि।

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत् कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥१२॥

अन्वय——सत्कल्पवृक्षे वने अनिलेन प्राणानां वृत्तिः उचिता। काञ्चनपद्मरेणुकपिशे तोये धर्माभिषेकक्रिया। रत्नशिलातलेषु ध्यानम्। विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमः। अन्यमुनयः तपोभिः यत् कांक्षन्ति तस्मिन् अमी तपस्यन्ति।

राजा——वस्तुतः मैं आश्चर्य के साथ देख रहा हूँ। कल्पवृक्ष जिनमें विद्यमान हैं, ऐसे वन में भी ये केवल वायु-भक्षण करके जीवन-यापन का अभ्यास करते हैं। सुवर्ण-कमलों के पराग से पीले जल में धार्मिक स्नान का कार्य करते हैं। रत्नों के शिलातलों पर ध्यान लगाते हैं और देवांगनाओं के समीप रहकर संयम करते हैं। अन्य मुनि लोग तपस्याओं के द्वारा जिन वस्तुओं की कामना करते हैं, उनके मध्य में रहकर ये तपस्या करते हैं ॥१२॥

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—सत्कल्प०—सन्तः विद्यमानाः कल्पवृक्षा यत्र तस्मिन्, वने—कानने, अनिलेन—वायुभक्षणेनैव, प्राणानां वृत्तिः—जीवनधारणक्रिया, उचिता—अभ्यस्ता। काञ्चन०—काञ्चनपद्मानां सुवर्णकमलानां रेणुभिः परागैः कपिशे पिङ्गले, तोये—जले, धर्माभि०—धर्मार्थम् अभिषेकक्रिया स्नानकर्म क्रियते। रत्न०—रत्नानां मणीनां शिलातलेषु शिलापट्टेषु, ध्यानम्—ईश्वरचिन्तनं क्रियते। विबुध०—विबुधानां देवानां स्त्रियः पत्न्यः तासां संनिधौ समीपे, संयमः—इन्द्रियनिग्रहः क्रियते। अन्यमुनयः—अन्ये तपस्विनः, तपोभिः—तपस्याभिः, यत्—यत् कल्पवृक्षादि वस्तु, कांक्षन्ति—अभिलषन्ति, तस्मिन्—तादृशभोगयुक्ते स्थाने, अमी—मुनयः तपस्यन्ति—तपश्चरन्ति। विशेषोक्तिः काव्यलिङ्गं चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **निर्वृति०**—निर्वृति का अर्थ सुख और शान्ति दोनों है। यहाँ दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं। ( २ ) **अमृत०**—यह स्थान ऐसा ही सुखद है, जैसे अमृत के तालाब में स्नान करना। ( ३ ) **कथमिदानीम्०**—अब आप क्या करेंगे? ( ४ ) **संयन्त्रितः**—रथ को ठीक ढंग से रोक दिया है। घोड़े इधर-उधर नहीं जाएँगे। ( ५ ) **अनिलेन०**—हवा खाकर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। ( ६ ) **उचिता**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(क) उचित अर्थात् ये उसके अभ्यस्त हैं, (ख) आवश्यक, जीवननिर्वाह का आवश्यक कार्य। (७) **सत्कल्प०**—सत् का अर्थ है विद्यमान, जहाँ कल्पवृक्ष विद्यमान हैं। ( ८ ) **काञ्चनपद्म०**—सुवर्ण के कमल। ( ९ ) **धर्माभिषेक०**—धार्मिक कार्यों के लिए स्नान, न कि भोगार्थ। (१०) **संयमः**—इन्द्रियों को वश में रखना। (११) **यत्**—जिस वस्तु को अन्य मुनि चाहते हैं। (१२) **तस्मिन्**—उन वस्तुओं के बीच में रहकर। (१३) यहाँ पर कारणों के रहते हुए भी कार्य न होने से मालारूप में विशेषोक्ति है। चतुर्थ चरण के प्रति प्रथम तीन पद कारण हैं, अतः काव्यलिंग है।

**३०. मातलिः—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्य। आकाशे) अये वृद्धशाकल्य, किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः? किं ब्रवीषि? दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति।**

मातलि—महात्माओं की इच्छा सदा ऊर्ध्वगामिनी होती है अर्थात् उनका लक्ष्य सदा उच्च ही होता है। (चारों ओर घूमकर। आकाश में) हे वृद्ध शाकल्य, भगवान् मारीच क्या कर रहे हैं? क्या कहा? दाक्षायणी (अदिति)

ने उनसे पतिव्रता स्त्री के धर्म के विषय में पूछा था, महर्षियों की पत्नियों के साथ बैठी हुई उनको वे उस विषय का उपदेश दे रहे हैं।

**३१. राजा--(कर्णं दत्त्वा) अये, प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।**

राजा--(सुनकर) यह (पतिव्रता-धर्म-वर्णन का) प्रसंग ऐसा है कि हमें अवसर की प्रतीक्षा ही करनी पड़ेगी। (अर्थात् उपदेश समाप्त होने तक हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए।)

**३२. मातलिः--(राजानमवलोक्य) अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान्, यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि।**

मातलि--(राजा की ओर देखकर) आप तब तक इस अशोक के वृक्ष की जड़ में बैठिए, जब तक मैं इन्द्र के पिता जी (मारीच) को आपके आगमन की सूचना देने के लिए उचित अवसर निकालूं।

**३३. राजा--यथा भवान् मन्यते। (इति स्थितः।)**

राजा--जैसा आप उचित समझें, करें। (राजा बैठ जाता है।)

**३४. मातलिः--आयुष्मन्, साधयाम्यहम्। (इति निष्क्रान्तः।**

मातलि--आयुष्मान्, मैं जाता हूँ। (प्रस्थान।)

**३५. राजा--(निमित्तं सूचयित्वा।)**

**मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।**
**पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥१३॥**

अन्वय--मनोरथाय न आशंसे! हे बाहो, वृथा किं स्पन्दसे। श्रेयः पूर्वावधीरितं दुःखं हि परिवर्तते।

राजा--(शुभ शकुन का अभिनय करके) मुझे अपने मनोरथ की (सफलता की) आशा नहीं है। हे भुजा, तू व्यर्थ ही क्यों फड़क रही है? कल्याणकारी वस्तु का पहले तिरस्कार कर दिया जाता है तो वह दुःखरूप में ही पुनः प्राप्त होती है (अथवा, वह बड़ी कठिनाई से फिर लौटकर आती है) ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या--मनोरथाय--अभीष्टप्राप्तये शकुन्तलाप्राप्तये इत्यर्थः, न--नैव, आशंसे--संभावयामि। हे बाहो--हे दक्षिणभुज, वृथा--मुधा, किं--

Funding by IKS-MoE

किमर्थम्, स्पदन्से—स्फुरसि। हि—यतोहि, श्रेयः—मङ्गलम्, पूर्वाव०—पूर्वं प्राक् अवधीरितं तिरस्कृतम्, दुःखं हि—दुःखमेव, परिवर्तते—परिणमति। अत्रार्थान्तरन्यासोऽतिशयोक्तिश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **उत्सर्पिणी**—ऊपर की ओर जाने वाली, ऊँचे लक्ष्य वाली। अंक ५ में आए दूराधिरोहिणी का भी यही भाव है। ( २ ) **महताम्**—महात्माओं या महर्षियों की । आश्रम के तपस्वियों के लिए है। ( ३ ) **प्रार्थना**—इच्छा। ( ४ ) **आकाशे**—यह आकाशभाषण है। ( ५ ) **वृद्धशाकल्य**—ऋग्वेद की शाकल शाखा कों पढ़ने वाला वृद्ध ऋषि। ( ६ ) **दाक्षायणी**—अदिति। वह दक्ष प्रजापित की पुत्री थी। (७) **पतिव्रता०**—कालिदास ने यह विषय जान-बूझकर प्रस्तुत किया है कि आश्रम में शकुन्तला पतिव्रता के रूप में रह रही है। ( ८ ) **महर्षि**—रत्नकोष के अनुसार ऋषियों की क्रमशः उन्नत ये सात श्रेणियाँ हैं—ऋषि, महर्षि, परमर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि। ( ९ ) **प्रतिपाल्या०**—हमें अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि ऋषि उपदेश दे रहे है। (१०) **प्रस्तावः**—प्रसंग। पतिव्रताधर्म की व्याख्या चल रही है। (११) **अशोक०**—अशोक शब्द यह संकेत करता है कि राजा का शोक या दुःख नष्ट होगा। (१२) **अन्तरा०**—अन्तर अर्थात् अवकाश या अवसर, ढूंढ़ता हूँ। अन्तरम् अन्विष्यति इति। (१३) **निमित्तं**—दाहिने हाथ के फड़कने का अभिनय करके। (१४) **मनोरथाय**—मनोरथरूपी शकुन्तला की प्राप्ति की। (१५) **नाशंसे**—मुझे आशा नहीं है। (१६) **श्रेयः**—मंगलकारी वस्तु। यहाँ कल्याणस्वरूप शकुन्तला से अभिप्राय है। (१७) **पूर्वा०**—मैंने पहले उसका तिरस्कार किया है। (१८) **दुःखं०**—इसके तीन अर्थ हो सकते हैं—(क) पूर्वतिरस्कृत कल्याण केवल दुःखरूप में ही लौटता है। (ख) पूर्वतिरस्कृत कल्याण की वस्तु बड़े दुःख से फिर मिलती है। (ग) मैंने कल्याणकारी वस्तु शकुन्तला का तिरस्कार किया है, अब मुझे दुःख चारों ओर से घेर रहा है। (१९) उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वाध विशेष के समर्थन से अर्थान्तरन्यास है। मनोरथ के विषय शकुन्तला के लिए मनोरथ कहने से अतिशयोक्ति है।

### (नेपथ्ये)

**३६. मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्?**
[मा क्खु चावलं करेहि। कहं गदो एव्व अत्तणो पक्किदिं ?]

**(नेपथ्य में) चंचलता मत कर। क्यों, यह तो फिर अपने स्वभाव पर आ गया है।**

**३७. राजा—(कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते ? (शब्दानुसारेणावलोक्य। सविस्मयम्) अये,**

**को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्याममबालसत्त्वो बालः ?**

**अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।**
**प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥१४॥**

**अन्वय**—मातुः अर्धपीतस्तनम् आमर्दक्लिष्टकेसरं सिंहशिशुं प्रकीडितुं बलात्कारेण कर्षति ।

**राजा—(सुनकर) यह धृष्टता के योग्य स्थान नहीं है। यह कौन है, जिसे मना किया जा रहा है ? (आवाज की ओर देखकर । विस्मय के साथ) ओह, दो तपस्विनियों से अनुगत असाधारण शक्ति-संपन्न यह कौन बालक है ?**

**ज़िसने माता के स्तनों को आधा ही पिया है, रगड़ने से जिसके बाल बिगड़ गए हैं, ऐसे सिंह के बच्चे को जो बलात् खींच रहा है ॥१४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—मातुः—जनन्याः, अर्धपीत०—अर्धम् असम्पूर्णं पीतः स्तनः येन तम्, आमर्द०—आमर्दन आकर्षणेन क्लिष्टाः विक्षिप्ताः केसराः स्कन्धकेशाः यस्य तम्, सिंहशिशुं—केसरिणः शावकम्, प्रक्रीडितुं—क्रीडनार्थम्, बलात्कारेण—प्रसह्य, कर्षति—आकर्षति । अत्र स्वभावोक्तिरुदात्तं चालंकारौ । श्लोको वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **प्रकृतिम्०**—यह अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया है, अर्थात् चंचलता पर आ गया है। ( २ ) **अभूमिः**—अस्थानम् । यह स्थान इस योग्य नहीं है। ( ३ ) **अविनयस्य**—चंचलता, दुष्टता या धृष्टता के योग्य। ( ४ ) **अनुबध्यमानः**—अनुगत। दो तपस्विनियाँ जिसके पीछे चल रही हैं। ( ५ ) **अबालसत्त्वः**—जिसका बल साधारण बालक के तुल्य नहीं है, अर्थात् असाधारण शक्ति-वाला। बुद्धचरित (२-३३) में भी कहा है—बालोऽप्यबालप्रतिमो बभूव धृत्या च शौचेन धिया श्रिया च ॥ ( ६ ) **अर्धपीत०**—अर्धं पीतः स्तनः येन तम्, बहुव्रीहि। जिसने माता के स्तनों से आधा ही दूध पिया है। ( ७ ) **आमर्द०**—जिसके कंधे के वाल रगड़ से बिगड़ गए हैं। आमर्देन क्लिष्टाः केसराः यस्य तम्, बहु०। आमर्द—रगड़ना, खींचना। कुमारसंभव (११-४४, ४५) में कुमार का वर्णन भी इससे मिलता हुआ है। गृह्णन् विषाणे हरवाहनस्य स्पृशन् उमाकेसरिणः सटालीः। इत्यादि।

**(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः ।)**

**३८. बालः—जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्ये [जिम्भ सिंघ, दन्ताइं दे गणइस्सं ।]**

**(तदनन्तर पूर्वोक्त काम में लगे हुए बालक का दो तपस्विनियों के साथ प्रवेश ।)**

बालक—ऐ शेर, जँभाई ले। मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

३९. **प्रथमा**—अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि ? हन्त, वर्धते ते संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि। [अविणीद, किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि ? हन्त, वड्ढइ दे संरम्भो। ठाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि।]

पहली तपस्विनी—दुष्ट, हमारे पुत्रतुल्य प्रिय इन प्राणियों को तू क्यों तंग कर रहा है ? हाय, तेरा क्रोध वढ़ता ही जाता है। ऋषियों ने ठीक ही तेरा नाम सर्वदमन रखा है।

४०. **राजा**—किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः ? नूनमनपत्यता मां वत्सलयति।

राजा—क्या बात है कि मेरा मन औरस (निजी) पुत्र के तुल्य इस बालक पर स्नेह करता है ? अवश्य ही सन्तानहीनता मुझसे इस प्रकार का प्रेम करा रही है।

४१. **द्वितीया**—एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि। [एसा क्खु केसरिणी तुमं लंघेदि जइ से पुत्तणं ण मंचेसि।]

दूसरी तपस्विनी—यह सिंहिनी अवश्य तुझ पर आक्रमण कर देगी, यदि तू इसके बच्चे को नहीं छोड़ेगा।

४२. **बालः**—(सस्मितम्) अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि। [अम्हहे, बलिअं क्खु भीदो म्हि।] (इत्यधरं दर्शयति।)

बालक—(मुस्कराकर) ओह, मैं बहुत डर गया हूँ। (अपना निचला होठ दिखाता है।)

४३. **राजा**—

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः ॥१५॥

---

पाठभेद—३९. नि० तव (तेरा)। ४१. नि०। लङ्घयिष्यति यदि तस्याः (आक्रमण करेगी, यदि उसके)।

**अन्वय**—महतः तेजसः बीजम् अयं बालः स्फुलिङ्गावस्थया एधापेक्षः स्थितः वह्निः इव मे प्रतिभाति ।

**राजा—बड़े भारी तेज का बीजरूप यह बालक, चिनगारी की अवस्था में लकड़ी की अपेक्षा करती हुई अग्नि के तुल्य विद्यमान, मुझे प्रतीत होता है ।।१५।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—महतः—प्रबलस्य, तेजसः—वीर्यस्य, बीजम्—उत्पत्तिस्थानम्, अयं बालः—शिशुरयम्, स्फुलिङ्गा०—स्फुलिङ्गस्य अग्निकणस्य अवस्थया दशया, एधापेक्षः—एधान् काष्ठानि अपेक्षते इति तादृशः, स्थितः—विद्यमानः, वह्निरिव—अग्निरिव, मे—मम, प्रतिभाति—प्रतीयते । उपमाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

( १ ) सिंह—शेर के बच्चे के लिए है । ( २ ) **जृम्भस्व**—जँभाई ले, अर्थात् मुंह खोल । ( ३ ) **अपत्यं०**—सर्वथा पुत्र के तुल्य । पुत्रों और उनमें कोई अन्तर नहीं है । देखो—सुतनिर्विशेषम्० (रघु० ५—६) । ( ४ ) **विप्रकरोषि**—तंग करता है । ( ५ ) **संरम्भः**—क्रोध, दुष्टता । ( ६ ) **स्थाने**—उचित ही है । यह अव्यय है । ( ७ ) **सर्वदमनः**—सर्वान् दमयतीति । सबको दवा लेने वाला । ( ८ ) **नामधेयः**—नाम । नाम शब्द से स्वार्थ में धेय प्रत्यय । ( ९ ) **औरसः**—निजी, अपना । उरसः जातः । मनुः० (९—१५९, १६०, १६६) में १२ प्रकार के पुत्रों का वणन है—औरस, क्षेत्रज, दत्त आदि । (१०) **स्निह्यति**—प्रेम करता है । राजा का हृदय उसको पुत्र बताता है । (११) **वत्सलयति**—प्रेम कराती है । वत्सल—पुत्रवत् प्रेम करना । (१२) **बलीयः०**—वह व्यंग्य में कहता है कि बड़ा डर गया हूँ, अर्थात् मैं इस बात से नहीं डरता हूँ । (१३) **अधरं०**—निन्दा या घृणा अर्थ में होठ दिखाया जाता है । (१४) **बीजम्**—कारण, मूल । यह किसी बड़े पराक्रम या प्रताप का कारण है, अर्थात् यह बड़ा प्रतापी होगा । (१५) **स्फुलिंगा०**—जैसे आग चिनगारी की हालत में हो और लकड़ी की प्रतीक्षा करे । ज्योंही लकड़ी मिल जाएगी, त्योंही वह चिनगारी प्रचण्ड आग हो जायगी । उसी प्रकार यह समय आते ही महाप्रतापी राजा होगा । (१६) **एधापेक्षः**—लकड़ी की प्रतीक्षा करता हुआ । एध शब्द अकारान्त भी लकड़ी का वाचक है । एधस् का भी अर्थ लकड़ी है ।

**४४. प्रथमा—वत्स, एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च । अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि ।** [वच्छ, एदं बालमिइन्दअं मुञ्च । अवरं दे कीलणअं दाइस्सं । ]

**पहली तपस्विनी—पुत्र, इस सिंह के बच्चे को छोड़ दे । मैं तुझे दूसरा खिलौना दूंगी ।**

४५. बालः—कुत्र ? देह्येतत् । [कहिं ? देहि णं ।]
( इति हस्तं प्रसारयति । )

बालक—कहाँ है (खिलौना) ? वह मुझे दो । (अपना हाथ फैलाता है ।)

४६. राजा—(बालस्य हस्तमवलोक्य) कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते ? तथा ह्यस्य—

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ॥१६॥

अन्वय—प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितः जालग्रथिताङ्गुलिः अस्य करः इद्धरागया नवोषसा भिन्नम् अलक्ष्यपत्रान्तरम् एकपङ्कजम् इव विभाति ।

राजा—(बालक के हाथ को देखकर) क्यों, यह तो चक्रवर्ती राजा के लक्षणों को भी धारण करता है। क्योंकि—ललचाने वाली वस्तु (खिलौने) के प्रति प्रेम के कारण फैलाया हुआ, जाल के तुल्य मिली हुई अँगुलियों से युक्त, इसका हाथ ऐसा ही सुशोभित हो रहा है, जैसे विशिष्ट लालिमा से युक्त नवीन उषाकाल के द्वारा विकसित किया हुआ और जिसके पत्तों का मध्यभाग स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता, ऐसा अद्वितीय कमल हो ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—प्रलोभ्य०—प्रलोभ्ये लोभकारके वस्तुनि क्रीडनकरूपे यः प्रणयः प्रेम तेन प्रसारितः विस्तृतः, जाल०—जालवद् ग्रथिताः संश्लिष्टाः अङ्गुलयः यस्मिन् सः, अस्य—बालकस्य, करः—हस्तः, इद्ध०—इद्धः समृद्धः रागः लौहित्यं यस्याः तया, नवोषसा—नवप्रभातसन्ध्यया, भिन्नं—विकासितम्, अलक्ष्य०—अलक्ष्याणि अदृश्यानि पत्राणां दलानाम् अन्तराणि अवकाशाः यस्मिन् तत्, एकपङ्कजम् इव—अद्वितीयं पद्ममिव, विभाति—शोभते । काव्यलिङ्गमुपमा चालंकारौ । वंशस्थं वृत्तम् ।

## टिप्पणी

( १ ) **चक्रवर्ति०**—चक्रवर्ती राजा के चिह्नों से युक्त । चक्रवर्ती के चिह्न का वर्णन किया गया है कि—(क) अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः

---

पाठभेद—४५. नि० देहि तत (वह मुझे दो) । ४६. का० बालस्य हस्तमवलोक्य, इति नास्ति ।

चापाङ्कुशाङ्किकितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम् ।। (ख) अंकुशं कुण्डलं चक्रं यस्य पाणितले भवेत् । चक्रवर्ती भवेन्नित्यं सामुद्रकवचो यथा ।। (ग) यस्य पाणितलौ रक्तौ तस्य राज्यं विनिर्दिशेत् ।। ( २ ) **प्रलोभ्य०**—प्रलोभ्ये वस्तुनि प्रणयेन प्रसारितः, तत्पुरुष । यहाँ पर प्रणय का अर्थ प्रेम या अभिलाषा है । ( ३ ) **जाल०**—जिसकी अँगुलियाँ जाल की तरह परस्पर मिली हुई हैं । जाल का अर्थ है मकड़ी का जाला । जालवद् ग्रथिताः अङ्गुलयः यस्मिन् सः, बहु० । अँगुलियाँ जाल के तुल्य मिली होना महापराक्रम का सूचक है । बुद्धचरित (१—६५) में भी कहा है—चक्राङ्कपादं स तथा महर्षिर्जालावनद्धाङ्गुलिपाणिपादम् । सोर्णभ्रुवं वारणवस्तिकोशं सविस्मयं राजसुतं ददर्श ।। ( ४ ) **अलक्ष्य०**—अलक्ष्याणि पत्राणाम् अन्तराणि यस्मिन् तत्, बहु० । उषाकाल के कारण पत्ते पूरे खिले नहीं हैं, अतः उनके अन्दर का भाग साफ दिखाई नहीं दे रहा है । इसी प्रकार बालक का हाथ भी पूरा स्पष्ट नहीं हुआ है । ( ५ ) **इद्धरागया**—समृद्ध है राग अर्थात् लालिमा जिसकी । ( ६ ) **नवोषसा**—नवीन उषाकाल के द्वारा । ( ७ ) **भिन्नम्**—खिलाया हुआ । इसका यह भी अर्थ हो सकता है—लालिमा से भिन्न अर्थात् मिश्रित । ( ८ ) **एकपङ्कजम्**—एक अद्वितीय या अनुपम अर्थ को व्यक्त करता है । अतः उसका हाथ अद्वितीय कमल के तुल्य था ।

**४७. द्वितीया—सुव्रते, न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम् । गच्छ त्वम् । मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति । तमस्योपहर ।** [सुव्वदे, ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमाविदुं । गच्छ तुमं । ममकेरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि । तं से उवहर ।]

दूसरी तपस्विनी—सुव्रता, यह केवल कहने मात्र से मान नहीं सकता है । तू जा । मेरी कुटिया में ऋषिकुमार मार्कण्डेय का रंगीन मिट्टी का मोर रखा है । वह इसको लाकर दे दे ।

**४८. प्रथमा—तथा ।** [तह ।] **(इति निष्क्रान्ता ।)**

पहली—अच्छा । (जाती है ।)

**४९. बालः—अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि ।** [इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं ।] **(इति तापसीं विलोक्य हसति ।)**

बालक—तब तक इससे ही खेलूँगा । (तपस्विनी को देखकर हँसता है ।)

---

पाठभेद—४७. नि० विरमयिदुं (रोकने को) ।

**५०. राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै ।**
**आलक्ष्यदन्तमुकुलानर्निमित्तहासै-**
**रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।**
**अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो**
**धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥१७॥**

**अन्वय**—अनिमित्तहासैः आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् अङ्काश्रयप्रणयिनः तनयान् वहन्तः धन्याः तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।

**राजा—मैं इस दुलारे बालक को वस्तुतः बहुत चाहता हूँ।**

**अकारण हँसने से जिनके दाँतरूपी अंकुर कुछ-कुछ दिखाई पड़ते हैं, अस्पष्ट वर्णों (तोतली बोली) के कारण जिनका बोलना बहुत मनोहर लगता है, जो गोद में रहने के इच्छुक हैं, ऐसे पुत्रों को गोद में धारण करने वाले भाग्यवान् लोग ही बच्चों के शरीर की धूल से मलिन होते हैं ॥१७॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अनिमित्त०—अनिमित्ताः अकारणाः ये हासाः तैः आलक्ष्य०—आलक्ष्या ईषद् दृश्याः दन्ताः मुकुलाः इव कुड्मला इव येषां तान्, अव्यक्त०—अव्यक्तैः अस्फुटैः वर्णैः अक्षरैः रमणीयाः मनोहराः वचसां प्रवृत्तयः वाग्व्यापाराः येषां तान्, अङ्काश्रय०—अङ्के क्रोडे आश्रयः निवासः तत्र ये प्रणयिनः प्रेमवन्तः तान्, तनयान्—पुत्रान्, वहन्तः—अङ्के धारयन्तः, धन्याः—सुकृतिनः, तदङ्ग०—तेषां पुत्राणाम् अङ्गे अवयवे यद् रजः धूलिः तेन, मलिनीभवन्ति—कलुषीभवन्ति। स्वभावोक्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **वाचामात्रेण०**—कथनमात्र से नहीं मानेगा। ( २ ) **वर्णचित्रितः**—रंगों से रँगा हुआ। ( ३ ) **मृत्तिकामयूरः**—मिट्टी का बना हुआ मोर। कालिदास के समय में मिट्टी के खिलौने विशेष प्रसिद्ध थे। विक्रमोर्वशीय (५-१३) में आयु भी मोर माँगता है। ( ४ ) **दुर्ललिताय**—दुष्टं ललितं यस्य सः, बहु०। जिसको प्रसन्न करना कठिन है। हिन्दी का दुलारा शब्द इसी का विकृत रूप है। ( ५ ) **स्पृहयामि**—बहुत चाहता हूँ। स्पृह् धातु के कारण "स्पृहेरीप्सितः" (१-४-३६) से चतुर्थी। ( ६ ) **आलक्ष्य०**—आलक्ष्याः दन्तमुकुलाः येषां तान्, बहु०। जिनके दाँत थोड़े दिखाई पड़ते हैं। ( ७ ) **अनिमित्त०**—बच्चे बिना कारण के ही हँसते रहते हैं। ( ८ ) **अव्यक्त०**—अव्यक्तैः वर्णैः रमणीयाः वचःप्रवृत्तयः येषां तान्, बहु०। तोतली बोली के कारण जिनकी बात मीठी लगती है। ( ९ ) **अङ्का०**—अङ्के आश्रयः, तस्मिन् प्रणयिनः, तत्पुरुष। बच्चे गोदी

में चढ़ने और गोदी में खेलने के बहुत इच्छुक रहते हैं। (१०) **धन्याः**—भाग्यवान् ही, पुण्यात्मा ही अर्थात् भाग्यवानों के ही सन्तान होती है। (११) **तदङ्ग०**—बच्चों के शरीर की धूल से। (१२) **मलिनी०**—मैले होते हैं। यहाँ पर च्वि प्रत्यय है। (१३) मृच्छकटिक (१०-२३) में ऐसा ही श्लोक है—इदं तत् स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः। अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम्। (१४) इस श्लोक में स्वाभाविक वर्णन से स्वभावोक्ति है। सर्वदमन विशेष के स्थान पर सामान्य वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा है।

**विशेष**—इस श्लोक से प्रकट होता है कि कालिदास का मानवप्रकृति-निरीक्षण कितना सूक्ष्म था। बालक के स्वभाव का क्या ही सुन्दर वर्णन है!

**५१. तापसी—भवतु। न मामयं गणयति। (पार्श्वमवलोक्य) कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्? (राजानमवलोक्य) भद्रमुख, एहि तावत्। मोचयानेन दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।** [होदु। ण मं अअं गणेदि। को एत्थ इसिकुमाराणं? भद्दमुह, एहि दाव। मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिइन्दअं।]

**तपस्विनी**—अच्छा, यह मेरी बात नहीं मानता है। (अगल-बगल देखकर) यहाँ कोई ऋषिकुमार है? (राजा की ओर देखकर) हे महाशय, कृपया इधर आइए और बालक्रीड़ा के द्वारा तंग किए जाते हुए इस सिंह के बच्चे को, जिसके हाथ की पकड़ बहुत कठिनता से छुड़ाई जा सकती है, ऐसे इस बालक से छुड़ाइए।

**५२. राजा—(उपगम्य। सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र,**

**एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना**
**संयमः किमिति जन्मतस्त्वया।**
**सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते**
**कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः ॥१८॥**

**अन्वय**—एवम् आश्रमविरुद्धवृत्तिना त्वया जन्मतः सत्त्वसंश्रयसुखः अपि संयमः कृष्णसर्पशिशुना चन्दनः इव किमिति दूष्यते?

---

पाठभेद—५१. नि० पार्श्वमवलोकयति (अगल-बगल देखती है)। नि०. का० दुर्मोक० (कठिनाई से छुड़ाने योग्य)। ५२. नि० चन्दनम् (चन्दन)।

**राजा—(पास में जाकर, मुस्कराते हुए) हे महर्षि-पुत्र, इस प्रकार आश्रम के विरुद्ध व्यवहार से तुम जन्मकाल से ही अभ्यास के योग्य तथा प्राणियों को आश्रय देने से सुखकर संयम (क्षमाशीलता) को, काले साँप का बच्चा चन्दन के वृक्ष को जैसे उस प्रकार, क्यों दूषित कर रहे हो? ॥१८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—एवम्—इत्थम्, आश्रम०—आश्रमस्य तपोवनस्य विरुद्धा प्रतिकूला वृत्तिः हिंसारूपः व्यवहारः यस्य तेन, त्वया—ऋषिकुमारेण, जन्मतः—जन्मारभ्य अभ्यसनीयः, सत्त्व०—सत्त्वानां जीवानां संश्रयः सम्यग् रक्षणं तेन सुखयतीति सुखकर इति, संयमः—शमः, कृष्णसर्प०—कृष्णसर्पस्य अर्भकेण, चन्दन इव—मलयजो वृक्ष इव, किमिति—केन कारणेन, दूष्यते—मलिनीक्रियते। उपमाऽलंकारः। रथोद्धता वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **न गणयति**—यह मुझे कुछ नहीं समझता, अर्थात् मेरी बात नहीं मानता। (२) **भद्रमुख**—सुन्दर मुँह वाले अर्थात् सुन्दर आकृति वाले सज्जन पुरुष। (३) **दुर्मोच०**—दुःखेन मुञ्चति एतम् इति दुर्मोचः, दुर्+मुच्+खल् (अ)। "ईषद्दुःसुषु०" (३-३-१२६) से खल्। हस्तेन ग्रहः हस्तग्रहः। ग्रह्+अप् (अ)=ग्रहः, ग्रहवृदृ० (३-३-५८) से अप्। दुर्मोचः हस्तग्रहः यस्य तेन, बहु०। जिसके हाथ की पकड़ बड़ी कठिनाई से छुड़ाई जा सकती है। पाठभेद—दुर्मोक०—यह पाठ अशुद्ध है, क्योंकि यहाँ पर खल् प्रत्यय होने से दुर्मोच ही रूप बनेगा। (४) **डिम्भलीलया**—बालक्रीड़ा के द्वारा। डिम्भ—बालक। (५) **आश्रम०**—आश्रमस्य विरुद्धा वृत्तिः यस्य तेन, बहु०। आश्रम के विपरीत आचरण वाले। आश्रम में प्राणियों को दुःख देना आश्रम के विरुद्ध कार्य है। (६) **संयमः**—शम, क्षमाशीलता। अहिंसा आदि नियमों का पालन। (७) **जन्मतः**—इसके दो अर्थ हो सकते हैं:—(क) जन्म से ही जिसका अभ्यास करना चाहिए ऐसे संयम को, (ख) जन्म के समय से ही संयम को क्यों दूषित करते हो? प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है। (८) **सत्त्व०**—सत्त्वानां संश्रयः तेन सुखयतीति सुखः, तत्पुरुष। प्राणियों को आश्रय देने के कारण सुखकर। संश्रय—आश्रय देना, अभयदान देना। इसका अन्वय संयम और चन्दन दोनों के साथ है। दोनों ही प्राणियों को आश्रय देते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—सत्त्व अर्थात् सात्त्विक गुण के आश्रय होने के कारण सुखकर संयम को। (९) **कृष्णसर्प०**—बालक की काले साँप के बच्चे से उपमा सुन्दर नहीं है। दोनों दुष्ट हैं और दोनों ही अपने निवासस्थान को दूषित कर रहे हैं, इतने अंश में समता है। (१०) **चन्दनः**—चन्दन का वृक्ष। पाठभेद—चन्दनम्। संयमः पुंलिग है, अतः चन्दनः भी पुंलिग ही रखना उचित है।

**५३. तापसी**—भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारः। [भद्दमुह, ण क्खु अअं इसिकुमारओ।]

**तपस्विनी**—हे महाशय, यह ऋषिपुत्र नहीं है।

**५४. राजा**—आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवंतर्किणः। (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य। आत्मगतम्)

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्
यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः ॥१९॥

**अन्वय**—कस्यापि कुलाङ्कुरेण अनेन स्पृष्टस्य मम गात्रेषु एवं सुखम्। यस्य कृतिनः अङ्कात् अयं प्ररूढः तस्य चेतसि कां निर्वृतिं कुर्यात्।

**राजा**—आकार के तुल्य इसकी चेष्टा ही यह कह रही है (कि यह ऋषिकुमार नहीं है)। इस स्थान के विश्वास के कारण ही मैंने ऐसा अनुमान किया था। (तापसी की प्रार्थना के अनुसार कार्य करते हुए वालक का स्पर्श प्राप्त करके, मन ही मन) किसी भी कुल के अंकुरस्वरूप इस बालक से स्पर्श होने पर मेरे अंगों में ऐसा सुख हो रहा है तो जिस पुण्यात्मा की गोद से यह उत्पन्न हुआ है, उसके हृदय में कैसा अपूर्व आनन्द करता होगा? ॥१९॥

**संस्कृत-व्याख्या**—कस्यापि—मयाऽसम्बद्धस्य जनस्य, कुलाङ्कुरेण—वंशस्य प्ररोहेण, अनेन—बालकेन, स्पृष्टस्य—स्पर्शं प्राप्तस्य, मम—दुष्यन्तस्य, गात्रेषु—अङ्गेषु, एवम्—अवर्णनीयम्, सुखम्—आनन्दः भवति। तर्हि यस्य कृतिनः—सुकृतिनः भाग्यशालिनो वा, अङ्कात्—उत्सङ्गात्, अयं—बालकः, प्ररूढः—संजातः, तस्य—जनस्य, चेतसि—हृदये, काम्—अनिर्वचनीयाम्, निर्वृतिं—सुखम्, कुर्यात्—विदध्यात्। अर्थापत्तिः रूपकं चालंकारौ। उपजातिर्वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **चेष्टितम्०**—इसका आकार बताता है कि यह ऋषिकुमार नहीं है और उसी प्रकार इसकी चेष्टाएँ हैं, अर्थात् इसकी चेष्टाओं में शैतानी भरी हुई है। (२) **स्थानप्रत्ययात्०**—यह स्थान ऋषियों का है, अतः यहाँ वालक भी

---

पाठभेद—५३. का० हु (अवश्य)।

ऋषियों के ही होंगे, इस प्रकार स्थान के आधार पर मैंने यह अनुमान किया था। प्रत्यय का अर्थ विश्वास या निश्चित ज्ञान है। यह ऋषियों का स्थान है, इस निश्चित ज्ञान के कारण। (३) **अनेन०**—यहाँ पर अनेन स्पृष्टस्य मम गात्रेषु ऐसा अन्वय करना उत्तम है। इसके शरीर का स्पर्श करने पर मेरे अंगों में ऐसा अपूर्व सुख हुआ है। गात्रेषु स्पृष्टस्य अन्वय अधिक उपयुक्त नहीं है। केवल हाथ से ही अभी तक बालक का स्पर्श हुआ है, सब अंगों से नहीं। (४) **कस्यापि०**—इससे ज्ञात होता है कि राजा उसे और किसी का पुत्र मानता है, अपना नहीं। अपने वंश को नष्ट हुआ समझता है। (५) **एवम्०**—ऐसा अनिर्वचनीय सुख। (६) **काम्०**—क्या ही अनिर्वचनीय आनन्द उसके हृदय में करता होगा, जिसका यह पुत्र है। (७) **अङ्कात्**—गोद से। पाठभेद—अङ्गात्—अंग से। प्रथम पाठ अधिक उपयुक्त है। (८) **कृतिनः**—पुण्यात्मा या भाग्यशाली के। राजा अपने आपको अभाग्यशाली समझता है। राजा के कथन का यह भी भाव है कि पुत्रहीन व्यक्ति अभागा होता है। (९) **प्ररूढः**—उत्पन्न हुआ है। प्र+रुह्+क्त। (१०) इस भाव की अन्य सूक्तियाँ हैं—(क) तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि (रघु० ३-२६), (ख) उत्संगवर्धितानां गुरुषु भवेत् कीदृशः स्नेहः (विक्रमो० ५-१०), (ग) शिशोरालिङ्गनं तस्मात् चन्दनादधिकं भवेत् (महाभारत १-७-५६), (घ) न वाससां न रामाणां नापां स्पर्शस्तथाविधः। शिशोरालिंग्यमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः। पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते। (महाभारत १-७-५७, ५८)। (११) कां निर्वृतिम् के द्वारा अर्थापत्ति से सिद्ध होता है कि उसे अपूर्व आनन्द होता है, अतः अर्थापत्ति है। कुलाङ्कुर में रूपक है।

**५५. तापसी**—(उभौ निर्वर्ण्य) आश्चर्यमाश्चर्यम्। [अच्छरिअं अच्छरिअं।]

तपस्विनी—(दोनों को देखकर) आश्चर्य है, आश्चर्य है।

**५६. राजा**—आर्ये, किमिव ?

राजा—माननीया, क्या आश्चर्य की बात है ?

**५७. तापसी**—अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मिताऽस्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति। [इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी आकिदी त्ति विम्हिदम्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति।]

तपस्विनी—इस बालक की और आपकी आकृति मिलती-जुलती है, इसलिए मुझे आश्चर्य हुआ है। यद्यपि आप अपरिचित हैं, फिर भी यह आपके अनुकूल हो गया है (अर्थात आपकी बात मान गया है)।

५८. राजा——(बालकमुपलालयन्)न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः ?

राजा——(बालक को प्यार करते हुए) यदि यह ऋषिकुमार नहीं है तो इसका वंश क्या है ?

५९. तापसी——पुरुवंशः । [पुरुवंसो ।]

तपस्विनी——पुरुवंश ।

६०. राजा——(आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम ? अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते । अस्त्येतत् पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम् ।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।
नियतैकयतिव्रतानि पश्चात्
तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥२०॥

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः ।

अन्वय—ये पूर्वं क्षितिरक्षार्थं रसाधिकेषु भवनेषु निवासम् उशन्ति । पश्चात् तेषां नियतैकयतिव्रतानि तरुमूलानि गृहीभवन्ति ।

राजा——(मन में) क्या बात है कि इसका और मेरा वंश एक ही है। इसीलिए यह तपस्विनी इसको मेरे समान आकृति वाला मान रही है। यह पुरुवंशी राजाओं का अन्तिम कुलव्रत है कि——

वे पहले (युवावस्था में) पृथ्वी की रक्षा के लिए भोगों से परिपूर्ण भवनों में निवास करना चाहते हैं और बाद में (वृद्धावस्था में) जहाँ पर नियमित रूप से एक वानप्रस्थ का जीवन बिताते हैं, ऐसे वृक्षों की जड़ें उनके घर हो जाती हैं ॥२०॥ (प्रकट) मनुष्य अपनी स्वाभाविक शक्ति से इस स्थान तक नहीं पहुँच सकते हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—ये—पौरवा नृपाः, पूर्वं—युवावस्थायाम्, क्षितिरक्षार्थं—भूमेः पालनार्थम्, रसाधिकेषु—रसैः भोगैः अधिकेषु आढ्येषु, भवनेषु—प्रासादेषु,

---

पाठभेद—६०. नि० नियतैकपतिव्रतानि (संयमी एक पतिव्रता स्त्री जिसके साथ है) ।

निवासम्—अवस्थानम्, उशन्ति—वाञ्छन्ति, पश्चात्—वार्धके, तेषां—नृपाणाम्, नियतैक०—नियतं व्यवस्थितम् एकं केवलं यतिव्रतं वानप्रस्थव्रतं येषु तानि, तरुमूलानि—वृक्षतलानि, गृहीभवन्ति—गृहाणि सम्पद्यन्ते। परिणामोऽलंकारः। मालभारिणी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **निर्वर्ण्य**—ध्यान से देखकर। (२) **संवादिनी**—मिलती हुई, एक सी। संवदतीति सम्+वद्+णिनि। (३) **अप्रतिलोमः**—विपरीत नहीं हुआ अर्थात् अनुकूल हो गया है। प्रतिगतः लोमानि प्रतिलोम, प्रति+लोमन्+अच्। यहाँ पर अच्प्रत्यन्वव०" (५-४-७५) से समासान्त अच् प्रत्यय। प्रतिलोम का अर्थ है—प्रतिकूल, अप्रतिलोम—अनुकूल। (४) **उपलालयन्**—लाड़-प्यार करते हुए। चुरादिगणी लल् धातु का रूप है। लालयेत् पञ्च वर्षाणि० (सुभाषित)। (५) **व्यपदेशः**—वंश। व्यपदिश्यते अनेन इति। (६) **एकान्वयः**—एक ही वंशवाला। (७) **कुलव्रतम्**—वंश की परम्परा या प्रथा। ५० वर्ष की आयु के बाद वे वन में जाकर वानप्रस्थ का जीवन बिताते थे। (८) **रसाधिकेषु**—रसैः अधिकेषु, तत्पुरुष। रस का अर्थ है—भोग-विलास की वस्तुएँ, वे जहाँ पर बहुत हैं। पाठभेद—सुधासितेषु, सफेदी से पुते हुए। यह पाठ अच्छा नहीं है। (९) **उशन्ति**—चाहते हैं। वश् धातु का रूप है। (१०) **नियतैक०**—नियमित रूप से एक यति का व्रत लेकर। यति से वानप्रस्थ आश्रम का भाव है। नियतम् एकं यतिव्रतं येषु तानि, बहु०। पाठभेद—नियतैकपतिव्रतानि—संयमी एक पतिव्रता स्त्री जिनके साथ है। यह पाठ अच्छा नहीं है। (११) **गृहीभवन्ति**—घर हो जाते हैं। अगृहाणि गृहाणि भवन्ति, च्वि प्रत्यय। (१२) तरुमूलों का यहाँ पर उपयोग होने से परिणाम अलंकार है। (१३) **आत्मगत्या**—अपनी ही शक्ति से। (१४) **विषयः**—जहाँ पहुँच सकें वह स्थान। प्राप्य स्थान।

**६१. तापसी—यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरःसंबन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता।** [जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासंबन्धेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा।]

तपस्विनी—जैसा आप कहते हैं, ठीक है। किन्तु एक अप्सरा (मेनका) से संबन्ध होने के कारण इसकी माता ने इस देवगुरु (मारीच) के आश्रम में इसको जन्म दिया है।

**६२. राजा—(अपवार्य) हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्। (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी?**

राजा—(एक ओर मुंह करके) ओह, यह दूसरी आशाजनक बात है। (प्रकट) अच्छा तो वह श्रीमती जी किस राजर्षि की पत्नी हैं ?

६३. तापसी—कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति ? [को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिन्तिस्सदि ?]

तपस्विनी—अपनी धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले उस (राजा) के नाम का उच्चारण करने का भी कौन विचार कर सकता है ?

६४. राजा—(स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवाऽनार्यः परदारव्यवहारः।

राजा—(मन में) यह कथा तो वस्तुतः मुझको ही लक्ष्य करती है। तो क्या इस बालक की माता का ही नाम पूछूँ ? अथवा परस्त्री के विषय में बात करना अशिष्टता है।

(प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता)

६५. तापसी—सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व। [सव्वदमण, सउन्दलावण्णं पेक्ख।]

(मिट्टी का मोर हाथ में लिए तपस्विनी का प्रवेश।)

तपस्विनी—सर्वदमन, शकुन्त (पक्षी) के लावण्य (सौन्दर्य) को देख। (अथवा शकुन्तलावर्णम्, शकुन्तला के रूप को देख)।

६६. बालः—(सदृष्टिक्षेपम्) कुत्र वा मम माता ? [कहिं वा मे अज्जू ?]

बालक—(इधर-उधर देखकर) कहाँ हैं मेरी अम्माँ ?

६७. उभे—नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः। [णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो।]

दोनों—नाम की समता के कारण यह मातृभक्त बेचारा ठगा गया है!

६८. द्वितीया—वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं

**पश्येति भणितोऽसि। [वच्छ, इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्ख त्ति भणिदो सि।]**

दूसरी तपस्विनी--पुत्र, तुमसे यह कहा था कि इस मिट्टी के मोर की सुन्दरता देखो।

**६९ राजा--(आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते।**

राजा--(मन में) क्या इसकी माता का नाम शकुन्तला है? किन्तु नामों में भी साम्य होते हैं। क्या यह भी हो सकता है कि मरुमरीचिका की तरह (शकुन्तला) नाम का आ जाना मेरे लिए दुःख का कारण हो जाए?

**७०. बालः--मातः, रोचते म एष भद्रमयूरः। [अज्जुए, रोअदि मे एसो भद्दमोरओ।] (इति क्रीडनकमादत्ते।)**

बालक--माँ, मुझे यह सुन्दर मोर अच्छा लगता है।

(यह कहकर वह खिलौना ले लेता है।)

### टिप्पणी

(१) **अप्सरः०**—इसकी माता का एक अप्सरा अर्थात् मेनका से संबन्ध है, अतः इसकी माता यहाँ पर आई है। यहीं पर इस बालक का जन्म भी हुआ है। (२) **प्रसूता**—बच्चे को जन्म दिया है। (३) **द्वितीयम्०**—यह दूसरी आशा की बात है। पहली बात—एकान्वयः, एक ही वंश का होना था। दूसरी बात यह कि इसकी माता का संबन्ध अप्सरा से है। राजा को ज्ञात ही था कि शकुन्तला की माता मेनका है। (४) **धर्मदार०**—अपनी धर्मपत्नी का त्याग करने वाले का। धर्मपत्नी का त्याग पाप है। ऐसे व्यक्ति के नामोच्चारण से भी पाप चढ़ता है। गरुडपुराण का कथन है—स्पर्शनाद् भाषणाद् वापि परस्य स्तवनादपि। दशांशं पुण्यपापानां नित्यं प्राप्नोति मानवः। (५) **संकीर्तयितुं०**—नाम उच्चारण करने का भी भला कौन विचार कर सकता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति का नाम भी सोचने में पाप चढ़ता है, कहना तो दूर की बात है। (६) **मामेव०**—इस बात का संबन्ध तो मुझसे ही है। (७) **यदि तावत्०**—क्या इस ढंग से उसका नाम पता लगाऊँ कि इस बालक की माता का क्या नाम है? (८) **अनार्यः०**—यह अशिष्टता है, असभ्यता है कि पराई स्त्री के बारे में बात की जाय। अनार्य—आर्यों के योग्य नहीं है। परदार०—परस्त्री के बारे में

---

पाठभेद—६८. का० पेक्ख (देखो)।

व्यवहार अर्थात् वार्तालाप आदि। इस वक्तव्य से कालिदास के समय की सामाजिक प्रथा का पता चलता है—परस्त्री के विषय में बात करना अशिष्टता समझी जाती थी। इससे राजा की उच्च चरित्रता का पता चलता है। कालिदास ने आगे ऐसा प्रसंग उपस्थित कर दिया है जिससे शकुन्तला का नाम स्वयं स्पष्ट हो जाता है और राजा की उत्सुकता पूर्ण हो जाती है। (९) **सउन्दलावण्णं०**— इसका संस्कृत रूपान्तर दो प्रकार से हो सकता है—(क) शकुन्तलावण्यम्, पक्षी की सुन्दरता देख। शकुन्त का अर्थ पक्षी है। (ख) शकुन्तला-वर्णम् शकुन्तला का रूप देख। प्रथम अर्थ यहाँ प्रसंग के अनुसार अभिप्रेत है। बालक ने दूसरा अर्थ समझा है और उसी आधार पर प्रश्न किया है कि कहाँ है मेरी माँ ? इस वाक्य से कालिदास की प्राकृत-संबन्धीविशेष योग्यता का पता चलता है। उसने ऐसा शब्द ढूंढ़कर रखा है कि एक ही शब्द से दो बातें पूरी हो जाती हैं। राजा के विना पूछे ही राजा को यह बताना अभिप्रेत है कि बालक की माँ का नाम शकुन्तला है। उधर मोर का प्रसंग भी नहीं टूटता। (१०) **मातृवत्सलः**—माता है प्रिय जिसको अर्थात् मातृभक्त। (११) **नाममात्र०**— नाममात्रस्य प्रस्तावः। नाममात्र का प्रसंग। राजा को सन्देह हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि यह सारी कहानी मरुमरीचिका के तुल्य भ्रम सिद्ध हो और फिर उसे दुःखित होना पड़े। (१२) **अज्जुए**—माता के लिए यह प्राकृत का रूप है। (१३) **भद्रमयूरः**—ऐसे प्रयोगों में भद्र का अर्थ सुन्दर होता है। सुन्दर मोर। (१४) शकुन्तलावण्यम्० इस वाक्य में श्लेषमूलक वक्रोक्ति है। द्व्यर्थक वाक्य रखने के कारण पताकास्थानक है। इसका लक्षण है—द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः। प्रधानार्थान्तरापेक्षी पताकास्थानकं परम्॥ (सा० दर्पण ६-४९)।

**७१. प्रथमा—(विलोक्य। सोद्वेगम्) अहो, रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते। [अम्हहे, रक्खाकरंडअं से मणिबन्धे ण दीसदि।]**

**पहली तपस्विनी—(देखकर, घबड़ाहट के साथ।) हाय, रक्षासूत्र (ताबीज) इसके हाथ में दिखाई नहीं पड़ रहा है।**

**७२. राजा—अलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावकविमर्दात् परिभ्रष्टम्। (इत्यादातुमिच्छति।)**

**राजा—घबड़ाइए नहीं। सिंह के बच्चे के साथ इसके संघर्ष के कारण यह (रक्षासूत्र) यहाँ गिर पड़ा है। (यह कहकर उसे उठाना चाहता है।)**

**७३. उभे—मा खल्वेतदवलम्ब्य—कथम्? गृहीतमनेन। [मा क्खु एदं अवलम्बिअ। कहं? गहीदं णेण।]**

Funding by IKS-MoE

(इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः ।)

दोनों--इसे मत छूइए। इसे छूने से·····। अब कैसे करें? यह तो इन्होंने उठा लिया। (वे आश्चर्य के साथ छाती पर हाथ रख लेती हैं और दोनों एक दूसरे को देखती हैं।)

७४. राजा--किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः ?

राजा--आपने हमें क्यों मना किया था?

७५. प्रथमा--शृणोतु महाराजः । एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति । [सुणादु महाराश्रो । एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेह्णादि ।]

पहली--महाराज, सुनिए। यह अपराजिता नाम की ओषधि है। यह भगवान् मारीच ने जातकर्म संस्कार के समय इसको दी थी। इसको माता-पिता और अपने आपको छोड़कर अन्य कोई व्यक्ति पृथ्वी पर गिरी हुई को नहीं उठाता है।

७६. राजा--अथ गृह्णाति ?

राजा--यदि उठा लेता है तो?

७७. प्रथमा--ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति। [तदो तं सप्पो भविअ दसइ ।]

पहली--तब यह सर्प बनकर उसे काट लेती है।

७८. राजा--भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ?

राजा--क्या आप दोनों ने इसका साँप बनना कभी स्वयं देखा है?

७९. उभे--अनेकशः । [अणेअसो ।]

दोनों--अनेक बार।

८०. राजा--(सहर्षम् । आत्मगतम्) कथमिव सम्पूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि ? (इति बालं परिष्वजते ।)

राजा—(हर्ष के साथ, मन ही मन) पूर्ण हुए अपने मनोरथ का मैं अभिनन्दन क्यों न करूँ? (बालक को छाती से लगा लेता है।)

**८१. द्वितीया—सुव्रते, एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः। [सुव्वदे, एहि। इमं वुत्तन्तं णिअमव्वावुडाए सउन्दलाए णिवेदेम्ह।] (इति निष्क्रान्ते।)**

दूसरी—सुव्रता, आ। यह समाचार नियम-पालन में लगी हुई शकुन्तला को बता दें। (दोनों का प्रस्थान।)

**८२. बालः—मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि। [मुंच मं। जाव अज्जुए सआसं गमिस्सं।]**

बालक—मुझे छोड़ दो। मैं अपनी माँ के पास जाऊँगा।

**८३. राजा—पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि।**

राजा—पुत्र, मेरे साथ ही अपनी माता का अभिनन्दन करना।

**८४. बालः—मम खलु तातो दुष्यन्तः। न त्वम्। [मम क्खु तादो दुस्सन्दो। ण तुमं।]**

बालक—मेरे पिता तो दुष्यन्त हैं, तुम नहीं।

**८५. राजा—(सस्मितम्) एष विवाद एव प्रत्याययति।**

राजा—(मुस्करा कर) यह विवाद ही मुझे विश्वास दिलाता है (कि मैं तेरा पिता हूँ)।

## टिप्पणी

(१) **रक्षाकरण्डकम्**—रक्षासूत्र। यहाँ इसका अर्थ ताबीज समझना चाहिए, जो रक्षा के लिए या कुप्रभाव से बचाने के लिए बच्चों आदि के हाथ में बाँधी जाती है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में हाथ में ताबीज बाँधना प्रचलित हो गया था। ताबीज में कोई दवा आदि डिबिया या कपड़े में बाँधकर हाथ में बाँधी जाती है। (२) **मा खलु**—आप इसे न उठाइए। (३) **एतद् अवलम्ब्य**—यह अधूरा वाक्य है। यह पूरा वाक्य है—एतद् अवलम्ब्य मरिष्यसि। इसको छूने से मर जाओगे। दोनों तपस्विनियाँ यह वाक्य पूरा नहीं कह पातीं, तब तक राजा उस ताबीज को उठा लेता है। (४) **गृहीतम्०**—राजा ने उस रक्षासूत्र को उठा लिया और उसने साँप बनकर नहीं काटा, अतः दोनों आश्चर्यचकित हैं। (५) **जातकर्म०**—यह १६ संस्कारों

---

पाठभेद—८५. का० एवम (इस प्रकार)।

में चतुर्थ संस्कार है। बालक के जन्म के बाद यह पहला संस्कार है। इसमें नवजात बालक की जीभ पर सोने की शलाका से 'ओ३म्' लिखा जाता है और उसे घी तथा शहद चटाया जाता है। यह कार्य बालक का पिता करता है। किन्तु पिता न हो तो अन्य कोई भी कर सकता है। मनु० (२—२९) का कथन है कि प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते। मन्त्रवत् प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्॥ (६) **विक्रिया**—विकृत होना, अर्थात् साँप रूप में बदलना। (७) **सहर्षम्**—राजा को अब निश्चय हो गया कि बालक उसी का पुत्र है। कालिदास ने इसके लिए निम्नलिखित तीन प्रकार अपनाए हैं और अन्त में पूर्ण निश्चय हुआ है कि वह बालक उसका ही पुत्र है। तीन प्रकार ये हैं—(क) मनोगत विचार—१. किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव०, २. महतस्तेजसो बीजम्०, ३. स्पृहयामि खलु०, ४. बालस्पर्शमुपलभ्य०। उसकी अन्तःकरण की प्रवृत्ति बता रही थी कि वह उसका पुत्र है। (ख) अप्रत्यक्ष प्रमाण—१. कथं चक्रवर्तिलक्षणम्०, २. एवमाश्रमविरुद्धवत्तिना०, ३, संवादिनी आकृतिः०। (ग) प्रत्यक्ष प्रमाण—१. पुरुवंश, २. माता का अप्सरा से संबन्ध, ३. शकुन्तलावण्य, ४. रक्षाकरण्डकवृत्तान्त। (८) **नियम०**—अपने नियमों के पालन में लगी हुई। (९) **प्रत्याययति**—यह विवाद ही निश्चय करा रहा है कि तेरा दुष्यन्त नामक पिता मैं ही व्यक्ति हूँ। तू मेरा ही पुत्र है।

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला।)

८६. **शकुन्तला**—विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्याऽऽख्यातं तथा संभाव्यत एतत्। [विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं]

(तदनन्तर एक वेणी धारण किए शकुन्तला का प्रवेश)

शकुन्तला—विकार के समय में सर्वदमन की ओषधि के प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक अवस्था में) रहने के समाचार को सुनकर भी मुझे अपने भाग्य पर ऐसी आशा नहीं थी (कि वे स्वयं यहाँ आए होंगे)। अथवा सानुमती ने जैसा बताया था, उस प्रकार यह संभव ही है।

८७. **राजा**—(शकुन्तलां विलोक्य) अये, सेयमत्रभवती शकुन्तला। यैषा—

**वसने परिधूसरे वसाना**
**नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।**
**अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला**
**मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ।।२१।।**

**अन्वय**—परिधूसरे वसने वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः शुद्धशीला अतिनिष्करुणस्य मम दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति ।

**राजा—(शकुन्तला को देखकर) ओह, यही वह शकुन्तला है, जो—**

**मैले वस्त्र पहने हुए, नियमपालन के कारण कृश मुख-वाली, एक वेणी धारण किए हुए, पवित्र आचरण वाली यह अति निर्दयी मुझ पति के लिए इतने लम्बे विरह-व्रत का पालन कर रही है ।।२१।।**

**संस्कृत-व्याख्या**—परिधूसरे—अतिमलिने, वसने—वस्त्रे, वसाना—धारयन्ती, नियम०—नियमेन उपवासादिव्रतपालनेन क्षामं कृशं मुखं यस्याः सा, धृतैक०—धृता एका वेणिः यया सा एकवेणिधारिणी, शुद्धशीला—पवित्राचारा, अतिनिष्करुणस्य—अतिनिष्ठुरस्य, मम—दुष्यन्तस्य, दीर्घं—बहुकालीनम्, विरहव्रतं—वियोगनियमम्, बिभर्ति—पालयति । काव्यलिङ्गं स्वभावोक्तिश्चालंकारौ । मालभारिणी वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **एकवेणी०**—धरतीति धरा, एका वेणी तस्याः धरा, तत्पुरुष । यदि एकवेणीं धरतीति विग्रह करेंगे तो कर्मण्यण् (३-२-१) से अण् होने से एकवेणीधारी रूप बनगा । अतः धरतीति धरा, अच् प्रत्यय और बाद में तत्पुरुष । एकवेणी के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) एक वेणी या बालों की गूंथी हुई एक चोटी, दो या तीन नहीं । (ख) एक ही बार बाँधी हुई चोटी । अर्थात् विरह से पहले एक बार जो चोटी बाँधी थी, उसके बाद फिर चोटी नहीं बाँधी । विरहिणी स्त्री के लिए विधान है कि वह अलंकार आदि धारण न करे और न नई चोटी बाँधे । (क) मण्डनं वर्जयेत् नारी तथा प्रोषितभर्तृका । (विष्णुधर्मोत्तर), (ख) न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीं च प्रमोचयेत् । (हारीतस्मृति) । मेघदूत (२-३२) में एकवेणी का वर्णन है—आद्ये वद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा । ० एकवेणीं करेण ।। रामायण (२—१०८) में वर्णन है—एकवेणीधरा हित्वा नगरी संप्रतीक्षते । (२) **विकारकाले०**—ओषधि को सर्प हो जाना चाहिए था । (३) **भागधेयेषु०**—मुझे अपने भाग्य पर आशा नहीं थी कि फिर पति के दर्शन होंगे और वह भी यहीं आश्रम में । (४) **सानुमत्या०**—इससे ज्ञात होता है कि सानुमती ने शकुन्तला को बता दिया था कि राजा तुम्हारे वियोग में बहुत

दुःखित हैं। ( ५ ) **वसने**—दो वस्त्र। एक साड़ी के स्थान पर और दूसरा उत्तरीय के रूप में। साड़ी और ब्लाउज़। ( ६ ) **परिधूसरे**—बहुत मैले। विरहिणी वियोग में मैले वस्त्र ही पहनती थी। ( ७ ) **वसाना**—पहने हुए। वस्+शानच्। यह वस् अदादिगणी का रूप है। ( ८ ) **नियम०**—नियमेन क्षामं मुखं यस्याः सा, बहु०। नियम-पालन के कारण कृश मुँह वाली। ( ९ ) **धृतैकवेणिः**—एक वेणी धारण किए। (१०) **अतिनिष्करुणस्य०**—मैं बहुत निष्ठुर हूँ, जिसने गर्भिणी का परित्याग किया। (११) **दीर्घम्**—विरह के कारण बहुत लम्बे प्रतीत होने वाले। (१२) नियमक्षाम० में काव्यलिंग है। पूरे श्लोक में स्वभावोक्ति है। (१३) भवभूति का इससे मिलता हुआ श्लोक है—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम्। करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी। (उत्तरराम० ३-४)।

८८. शकुन्तला—(पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा) न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति? [ण क्खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामंगलं दारिअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि?]

शकुन्तला—(पश्चात्ताप के कारण मलिन आकृति वाले राजा को देखकर) यह आर्यपुत्र के तुल्य नहीं दीखते हैं। तो यह कौन है जो इस समय रक्षा-सूत्रधारी मेरे पुत्र को अपने शरीर के स्पर्श से दूषित कर रहा है?

८९. बालः—(मातरमुपेत्य) मातः, एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति। [अज्जुए, एसो को वि पुरिसो मं पुत्त त्ति आलिंगदि।]

बालक—(माता के पास जाकर) माँ, यह कोई आदमी है, जो मुझे अपना पुत्र कहकर छाती से लगा रहा है।

९०. राजा—प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि।

राजा—प्रिये, यद्यपि मैंने तुम्हारे ऊपर क्रूरता की थी, परन्तु उसका परिणाम अनुकूल ही सिद्ध हुआ है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि तुमने मुझे अब पहचान लिया है।

९१. शकुन्तला—(आत्मगतम्) हृदय, समाश्वसिहि समा-

---

पाठभेद—९१. नि० आश्वसिहि आश्वसिहि [अस्सस अस्सस] (धैर्य रख, धैर्य रख)।

**श्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः।** [ हिअअ, समस्सस समस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो क्खु एसो।]

शकुन्तला--(मन ही मन) हे हृदय, धैर्य रख, धैर्य रख। भाग्य ने द्वेषभाव को छोड़कर अब मेरे ऊपर दया की है। ये वस्तुतः आर्यपुत्र ही हैं।

९२. राजा--प्रिये,

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम् ॥२२॥

**अन्वय**—हे सुमुखि, दिष्ट्या स्मृतिभिन्नमोहतमसः मे प्रमुखे स्थिता असि। उपरागान्ते रोहिणी शशिनः योगं समुपगता।

**राजा--प्रिये, हे सुमुखी, भाग्य से (पूर्व वृत्तान्त के) याद आ जाने से मेरा अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो गया है और तुम मेरे सम्मुख उपस्थित हो गई हो, जैसे ग्रहण के पश्चात् रोहिणी चन्द्रमा से मिल जाती है ॥२२॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे सुमुखि—हे सुन्दरि, दिष्टचा—भाग्येन, स्मृति॰—स्मृत्या पूर्ववृत्तस्मरणेन भिन्नं नष्टं मोहरूपम् अज्ञानरूपं तमः अन्धकारः यस्य तस्य, मे—दुष्यन्तस्य, प्रमुखे--पुरतः, स्थिताऽसि—उपस्थिताऽसि। उपरागान्ते—उपरागस्य राहुग्रासस्य अन्ते अवसाने, रोहिणी—चन्द्रस्य प्रिया भार्या, शशिनः—चन्द्रस्य, योगं—संमेलनम्, समुपगता—प्राप्ता। दृष्टान्तोऽलंकारः। आर्या जातिः।

### टिप्पणी

( १ ) **पश्चात्ताप॰**—पश्चात्ताप के कारण राजा का मुंह पीला पड़ा हुआ था और उसकी कान्ति नष्ट हो गई थी, अतः शकुन्तला उसे पहले न पहचान सकी। विवर्ण--मलिन, फीका, उदास, पीला। ( २ ) **अनुकूल॰**—यद्यपि मैंने तुम्हारे ऊपर क्रूरता की थी, परन्तु उसका परिणाम अच्छा रहा। ये लाभ हुए—तपस्या से तुम्हारा जीवन पवित्र हुआ, तुम पतिव्रता सिद्ध हुईं, दिव्य आश्रम में पुत्र हुआ, ऋषि-कृपा से उसे अमोघ शक्ति मिली। ( ३ ) **प्रत्यभिज्ञातम्**—तुमने मुझे स्वयं पहचान लिया है। ( ४ ) **स्मृति॰**—पूर्व वृत्तान्त की स्मृति से मेरा अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट हो गया है। स्मृत्या भिन्नं मोहरूपं तमः यस्य तस्य, बहु॰। ( ५ ) **दिष्टचा**--भाग्य से तुम मेरे सामने उपस्थित हो। ( ६ ) **उपरागान्ते**--चन्द्रमा के ग्रहण के बाद। उपराग का अर्थ है--ग्रहण। ( ७ ) **रोहिणी**—दक्ष की २७ पुत्रियों में चतुर्थ पुत्री थी और चन्द्रमा की सबसे अधिक प्रिय स्त्री थी। ( ८ ) **योगम्**—मेल, मिलन। हम दोनों का मिलन

ऐसा ही है, जैसे ग्रहण के वाद चन्द्रमा से रोहिणी का मिलन। (६) यहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

**९३. शकुन्तला—जयतु जयत्वार्यपुत्रः। [जेदु जेदु अज्जउत्तो।] (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति।)**

शकुन्तला—आर्यपुत्र की जय हो, जय हो। (इतनी आधी बात कहकर आँसू से गला भर जाने के कारण चुप हो जाती है।)

**९४. राजा—सुन्दरि,**

**बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।**
**यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ॥२३॥**

**अन्वय**—जयशब्दे वाष्पेण प्रतिषिद्धे अपि मया जितम्। यत् असंस्कारपाटलोष्ठपुटं ते मुखं दृष्टम्।

राजा—हे सुन्दरी, 'जय' शब्द यद्यपि आँसुओं ने रोक लिया है, फिर भी मेरी विजय हो गई है, क्योंकि सजावट न होने के कारण पाटल वर्ण (कुछ लाल और पीला) के होठों से युक्त तुम्हारे मुँह को मैं देख सका ॥२३॥

**संस्कृत-व्याख्या**—जयशब्दे—जयतु जयतु इति शब्दे, बाष्पेण—अश्रुप्रवाहेण, प्रतिषिद्धे अपि—निरुद्धेऽपि, मया—दुष्यन्तेन, जितं—जयलाभः प्राप्तः। यत्—यतो हि, असंस्कार०—असंस्कारेण अलक्तकदानादिसंस्काराभावेन पाटलं श्वेतरक्तम् ओष्ठपुटं यस्य तत्, ते—शकुन्तलायाः, मुखं—वदनम्, दृष्टम्—अवलोकितम्। विरोधाभासः काव्यलिङ्गं चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **बाष्पेण०**—आँसुओं से तुम्हारा गला भर गया और तुम जो जय शब्द कह रही थीं, वह पूरा नहीं निकल पाया। (२) **जितं०**—फिर भी मेरी जय हो गई, क्योंकि मैं तुम्हें देख सका। इस समय मेरी सबसे बड़ी आकांक्षा यही थी कि तुम्हारे दर्शन हो जाएँ। (३) **असंस्कार०**—इसके दो अर्थ किए गए हैं। (क) सजावट न करने के कारण जिसके ओष्ठ पीले पड़े हुए हैं, ऐसे मुँह को, (ख) सजावट के बिना भी लाल ओष्ठ वाले मुँह को। यहाँ पर पहला अर्थ अधिक उपयुक्त है, क्योंकि वह विरहिणी है। विरह के दुःख के कारण उसके ओष्ठों की स्वाभाविक लाली नष्ट हो गई है। असंस्कारं च तत् पाटलोष्ठपुटम्, संस्कार अर्थात् सजावट के विना भी लाल ओष्ठ वाले। यह अर्थ तभी उचित हो सकता था, यदि वह विरहिणी न होती। विरहिणी, दुःखिता और कृश कलेवर शकुन्तला को देखकर भी उसके ओष्ठों की लाली की प्रशंसा करना राजा

के लिए अनुचित था, अतः प्रथम अर्थ ही यहाँ उचित है। पाटलोष्ठ—पाटल+ओष्ठ। यहाँ पर "ओत्वोष्ठयोः समासे वा" (वार्तिक ७९) से विकल्प से पररूप। अतः दोनों रूप बनते हैं, पाटलोष्ठ और पाटलौष्ठ। इसी प्रकार बिम्बोष्ठ और बिम्बौष्ठ दोनों रूप होते हैं। (४) यहाँ पर जयशब्द के रोक लिए जाने पर भी जय होने से विरोधाभास है। जय के लिए उत्तरार्ध कारण है, अतः काव्यलिंग है।

**९५. बालः—मातः, क एषः ?** [अज्जुए, को एसो ? ]

**बालक—माँ, ये कौन हैं ?**

**९६. शकुन्तला—वत्स, ते भागधेयानि पृच्छ।** [वच्छ, दे भाअहेआइं पुच्छेहि।]

**शकुन्तला—पुत्र, अपने भाग्य से पूछो।**

**९७. राजा—(शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य।)**

**सुतनु हृदयात प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते**
**किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।**
**प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः**
**स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥२४॥**

**अन्वय**—हे सुतनु, ते हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकम् अपैतु। तदा मे किमपि बलवान् मनसः संमोहः अभूत्। हि शुभेषु प्रबलतमसां वृत्तयः एवंप्रायाः। अन्धः शिरसि क्षिप्तां स्रजम् अपि अहिशङ्कया धुनोति।

**राजा—(शकुन्तला के पैरों पर गिरकर) हे सुन्दरी, तेरे हृदय से मेरे द्वारा परित्याग का दुःख दूर हो। उस समय मेरे मन में कुछ प्रबल अज्ञान उत्पन्न हो गया था, क्योंकि कल्याण की वस्तुओं के प्रति प्रवल तमोगुण वालों की प्रवृत्तियाँ प्रायः ऐसी ही होती हैं। अन्धा आदमी शिर पर डाली हुई फूलों की माला को भी साँप समझकर फेंक देता है ॥२४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—हे सुतनु—हे सुन्दरि, ते—शकुन्तलायाः, हृदयात्—मनसः, प्रत्यादेश०—प्रत्यादेशेन मत्कृतेन निराकरणेन यद् व्यलीकं दुःखं तत्, अपैतु—दूरीभवतु। तदा—निराकरणकाले, मे—मम दुष्यन्तस्य, किमपि—अनिवर्चनीयम्, वलवान्—प्रवलः, मनसः—चेतसः, संमोहः—अज्ञानम्, अभूत्। हि—यतो हि, शुभेषु—मङ्गलेषु विषयेषु, प्रबल०—प्रवलं घोरं तमः अन्धकारो मोहश्च येषां

---

पाठभेद—९७. नि० प्रवृत्तयः (प्रवृत्तियाँ)।

तेषाम्, वृत्तयः—व्यापाराः, एवंप्रायाः—एवंविधा भवन्ति। अन्धः—नेत्रहीनः, शिरसि—मूर्धनि, क्षिप्तां—केनापि अर्पिताम्, स्रजमपि—पुष्पमालामपि, अहिशङ्कया—सर्पभ्रान्त्या, धुनोति—दूरं क्षिपति। अत्रार्थान्तरन्यासः काव्यलिङ्गं भ्रान्तिमान् चालंकाराः। हरिणी वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **वत्स**—पुत्र। साधारण परम्परा यह है कि ज्येष्ठ पुत्र, स्त्री, पति, गुरु आदि का नाम न ले। कहा भी है—आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः ॥ ( २ ) **भागधेयानि०**—अपने भाग्य से पूछो—ये कौन हैं? यदि भाग्य अनुकूल है और ये तुम्हें अपना पुत्र मान लेते हैं तो तुम चक्रवर्ती पिता के पुत्र हो और राज्य के उत्तराधिकारी होगे। यदि ऐसा नहीं है तो हम दोनों यहीं तपोवन में रहेंगे और ये एक सामान्य राजा के रूप में तुम्हारे लिए होंगे। इसका यह भी भाव हो सकता है कि—तुम अपने भाग्य को पूछो, अर्थात् तुम्हारा यह अहोभाग्य है कि तुम अपने पिता के दर्शन कर रहे हो। ( ३ ) **सुतनु**—सुन्दरी। शोभना तनूः यस्याः सा सुतनूः, इसका संबोधन होने से ऊ को ह्रस्व। यहाँ दीर्घ ऊकारान्त तनू शब्द है। समासान्त विधि के अनित्य होने से क प्रत्यय नहीं हुआ। तनु शब्द लेने पर सुतनो रूप बनेगा। ( ४ ) **प्रत्यादेश०**—परित्याग का दुःख। व्यलीक—दुःख, कष्ट, पीड़ा। ( ५ ) **अपैतु**—दूर हो। उसको तुम मन से निकाल दो। ( ६ ) **किमपि**—कुछ, अनिर्वचनीय। मनसः संमोहः—मन में अज्ञान का उदय हो गया था। ( ७) **प्रबल०**—जिनमें तमोगुण प्रबल होता है। तम—अन्धकार और अज्ञान। ( ८ ) **एवंप्रायाः**—इसी ढंग की होती हैं। (९) **वृत्तयः**—व्यवहार या प्रवृत्तियाँ। (१०) **स्रजमपि०**—फूलों की माला को भी साँप समझकर फेंक देता है। इसी प्रकार अन्धे के तुल्य मैंने फूलमाला के तुल्य तुमको साँप समझ कर छोड़ दिया था। यह सुन्दर उपमा है। (११) तृतीय चरण में सामान्य के द्वारा विशेष के समर्थन से अर्थान्तरन्यास है। द्वितीय चरण प्रथम चरण का कारण है, अतः काव्यलिंग है। अहिशंका में भ्रान्तिमान् है।

**९८. शकुन्तला—उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखमासीद् येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।** [उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे सुअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणामाहिमुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो।] **(राजोत्तिष्ठति।)**

---

पाठभेद—९८. नि० परिणाममुखम् [परिणाममुहं] (परिणाम की ओर उन्मुख)

**शकुन्तला**—आर्यपुत्र, उठिए। अवश्य ही शुभफल में विघ्नकारी मेरा पूर्वजन्म का किया हुआ कोई पाप उन दिनों उदय हो गया था, जिससे दयालु होते हुए भी आप मुझपर उस समय ऐसे निर्दयी हो गए थे। (राजा उठता है।)

**९९. शकुन्तला——अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्ययं जनः ?** [अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो ?]

**शकुन्तला**——अच्छा, आपने इस दुःखिता को कैसे याद किया ?

**१००. राजा——उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि ।**

**मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते**
**यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः ।**
**तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य**
**बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ।।२५।।**
**(इति यथोक्तमनुतिष्ठति ।)**

**अन्वय**—हे सुतनु, यः बाष्पबिन्दुः ते अधरं परिबाधमानः मया मोहात् पूर्वम् उपेक्षितः, आकुटिलपक्ष्मविलग्नं तं बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयः भवेयं तावत् ।

**राजा**——दुःखरूपी बाण के निकल जाने पर मैं (सब बातें) बताऊँगा।

हे सुन्दरी, जो आँसू की बूँदें तेरे अधर को पीड़ित कर रही थीं और जिनकी मैंने अज्ञानवश उस समय उपेक्षा कर दी थी, कुछ तिरछी पलकों में लगे हुए उस आँसू को अब पोंछकर मैं पश्चात्ताप से रहित होना चाहता हूँ ।।२५।।

(यह कहकर आँसू पोंछता है।)

**संस्कृत-व्याख्या**—हे सुतनु—हे सुन्दरि, यः बाष्पबिन्दुः—नेत्रजलबिन्दुः, ते—तव, अधरम्—अधरोष्ठम्, परिबाधमानः—परितः पीडयन्, मया—दुष्यन्तेन, मोहात्—अज्ञानात्, पूर्वं—प्रत्याख्यानसमये, उपेक्षितः—न गणितः, आकुटिल०—आकुटिलेषु ईषद्वक्रेषु पक्ष्मसु नेत्रलोमसु विलग्नं संसक्तम्, तं बाष्पं—तत् नेत्रजलम्, प्रमृज्य—अपनीय, विगतानुशयः—पश्चात्तापरहितः, भवेयं तावत्—यथा भवेयं तथेच्छामि। वसंततिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **सुचरित०**—मेरे शुभ फल में विघ्न डालने वाला कोई पाप उदय

**पाठभेद**—१००. का० बद्धबिन्दु० (बूंद के रूप में लग्न)।

हो गया था । इससे प्रकट होता है कि एक साध्वी स्त्री के तुल्य शकुन्तला राजा पर दोष नहीं डालती, अपितु पूर्वजन्म में किए अपने पापों को ही परित्याग का कारण बताती है । ( २ ) **परिणामा०**—फल देने वाला था । पाप फल देने को था, अर्थात् वह पाप उस समय उदय हो गया था । ( ३ ) **सानुक्रोशः**—दयालु । अनुक्रोश—दया, अनुग्रह । ( ४ ) **विरसः**—नीरस, उदासीन, उपेक्षाभाव से युक्त । ( ५ ) **दुःखभागी**—दुःखित । ( ६ ) **उद्धृत०**—अपने हृदय से दुःखरूपी वाण के निकल जाने पर । अभी मैं वहुत दुःखित हूँ, कुछ कह नहीं सकता । ( ७ ) **पूर्वम्**—पहले अर्थात् परित्याग के समय । ( ८ ) **बाष्पम्**—आँसू को । इस श्लोक में दो वार बाष्प शब्द आया है, अतः वह खटकता है । दूसरे बाष्प के स्थान पर 'कान्ते' पाठ अपनाना उचित है । ( ९ ) **विगतानुशयः**—पश्चात्ताप से रहित होना चाहता हूँ । अनुशय का अर्थ पश्चात्ताप है ।

**१०१. शकुन्तला—(नाममुद्रां दृष्ट्वा) आर्यपुत्र, इदं तदङ्गुलीयकम् ।** [अज्जउत्त, एदं तं अंगुलीअअं ।]

**शकुन्तला—(नामांकित अँगूठी देखकर) आर्यपुत्र, यही वह अँगूठी है।**

**१०२. राजा—अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात् खलु स्मृतिरुपलब्धा ।**

**राजा—इस अँगूठी के मिलने से ही वस्तुतः मुझे तुम्हारी याद आई ।**

**१०३. शकुन्तला—विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत् ।** [विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि ।]

**शकुन्तला—इसने बहुत ही बुरा किया था कि तब आपको विश्वास दिलाने के समय यह दुर्लभ हो गई थी।**

**१०४. राजा—तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम् ।**

**राजा—तो (वसन्त) ऋतु (दुष्यन्त) से मिलन के चिह्नस्वरूप इस पुष्प (अँगूठी) को लता (शकुन्तला) धारण करे ।**

**१०५. शकुन्तला—नास्य विश्वसिमि । आर्यपुत्र एवैतद् धारयतु ।** [ण से विस्ससामि । अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु ।]

---

पाठभेद—१०१. नि० ते (ते) (तुम्हारी)।

शकुन्तला--मुझे इसका विश्वास नहीं है। आप ही इसको धारण कीजिए।

(ततः प्रविशति मातलिः।)

१०६. मातलिः--दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते।

(मातलि का प्रवेश)

मातलि--सौभाग्य से धर्मपत्नी से मिलन और पुत्र का मुंह देखने से आपका अभ्युदय हो रहा है, (आपको बधाई है)।

१०७. राजा--अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्?

राजा--मेरे मनोरथ ने स्वादिष्ट फल प्राप्त किया है। मातलि, यह समाचार इन्द्र को विदित तो नहीं हुआ होगा?

१०८. मातलिः--(सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्? एत्वायुष्मान्। भगवान् मारीचस्ते दर्शनं वितरति।

मातलि--(मुस्कराकर) ऐश्वर्यशालियों के लिए कौन-सी बात परोक्ष (छिपी हुई) है? आइए। भगवान् मारीच ने आपको दर्शन देना स्वीकार किया है।

१०९. राजा--शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि।

राजा--शकुन्तला, बच्चा सँभालो। मैं तुमको आगे करके भगवान् (मारीच) का दर्शन करना चाहता हूँ।

११०. शकुन्तला--जिह्लेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्। [हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं। ]

शकुन्तला--आपके साथ गुरुजनों के समीप जाने में मुझे लज्जा अनुभव हो रही है।

१११. राजा--अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि।

(सर्वे परिक्रामन्ति।)

राजा--अभ्युदय के समय ऐसा करना ही चाहिए। आओ, आओ।

(सब चल पड़ते हैं।)

Funding by IKS-MoE

## टिप्पणी

( १ ) **नाममुद्राम्०**—राजा के नाम से अंकित अँगूठी। ( २ ) **इदं तत्०**—यही वह अँगूठी है, जो उस समय नहीं मिली थी। ( ३ ) **अस्मात्०**—इस अँगूठी के मिलने से। अस्य अङ्गुलीयस्य उपलम्भात्। ( ४ ) **विषमं०**—इसने बुरा किया था, अनुचित किया था कि उस समय नहीं मिली थी। ( ५ ) **प्रत्यय०**—विश्वास दिलाने के समय। ( ६ ) **ऋतुसमवाय०**—ऋतु अर्थात् वसन्त ऋतु से मिलन के चिह्नस्वरूप। यह बहुत सुन्दर उक्ति है। लिग-साम्य द्रष्टव्य है। राजा वसन्त ऋतु है, अँगूठी फूल है और शकुन्तला लता है। लता पर फूल होना चाहिए, अतः अँगूठी शकुन्तला के पास होनी चाहिए। समवाय—मिलन, संयोग। ( ७ ) **विश्वसिमि**—मैं धोखा खा चुकी हूँ, अतः इसे मैं नहीं पहनूंगी। ( ८ ) **वर्धते**—अभ्युदय हो रहा है। आपको बधाई है। ( ९ ) **आखण्डल**—इन्द्र। आखण्डयति शत्रून् पर्वतान् वा, शत्रुओं या पर्वतों का नाशक। (१०) **परोक्षम्**—ऐश्वर्यशालियों, सिद्धों, महात्माओं से कोई बात छिपी नहीं रहती।

**(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः।)**

**११२. मारीचः—(राजानमवलोक्य) दाक्षायणि,**

**पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी**
**दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।**
**चापेन यस्य विनिर्वर्तितकर्म जातं**
**तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः ॥२६॥**

**अन्वय**—अयं दुष्यन्त इति अभिहितः भुवनस्य भर्ता, ते पुत्रस्य रणशिरसि अग्रयायी। यस्य चापेन विनिर्वर्तितकर्म कोटिमत् तत् कुलिशं मघोनः आभरणं जातम्।

**(तदनन्तर अदिति के साथ आसन पर बैठे हुए मारीच का प्रवेश।)**

**मारीच—(राजा को देखकर) दाक्षायणी,**

**इसका नाम दुष्यन्त है, यह संसार का रक्षक है, तेरे पुत्र (इन्द्र) के युद्धों में यह सबसे आगे चलता है। इसके धनुष से जिसका सब काम पूरा हो गया है, ऐसा तीक्ष्ण वज्र अब इन्द्र के लिए केवल आभूषणमात्र रह गया है ॥२६॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—अयं—पुरो दृश्यमानो जनः, दुष्यन्त इति, अभिहितः—विख्यातः, भुवनस्य—भुवः, भर्ता—रक्षकः, ते—तव, पुत्रस्य—इन्द्रस्य, रणशिरसि—समरमूर्ध्नि, अग्रयायी—पुरोगामी वर्तते। यस्य—दुष्यन्तस्य, चापेन—धनुषा, विनिर्वर्तित०—विनिर्वर्तितं सुसम्पादितं कर्म दानवहननरूपं यस्य यत्, कोटिमत्—

तीक्ष्णाग्रम्, तत्—सुप्रसिद्धम्, कुलिशं—वज्रम्, मघोनः—इन्द्रस्य, आभरणम्—आभूषणमात्रम्, जातं—सम्पन्नम्। उदात्तं काव्यलिङ्गं चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **अदिति**—मारीच की पत्नी का नाम अदिति है। ऋग्वेद में अदिति इन्द्र तथा अन्य देवताओं की माता मानी गई है। अदिति के पुत्रों को आदित्य कहा जाता है। ( २ ) **दाक्षायणि**—दक्ष की पुत्री। दक्षस्यापत्यं स्त्री, दक्ष शब्द को "वा नामधेयस्य०" वार्तिक (१-१-७५) से वृद्धसंज्ञा होने से "उदीचां वृद्धाद०" (४-१-१५७) से फिञ् (आयनि) प्रत्यय और "षिद्गौरादिभ्यश्च" (४-१-४१) से ङीष् (ई)। दक्ष+फिञ्+ङीष्। (३) **पुत्रस्य ते**—यह कहने से अदिति की उत्सुकता बढ़ेगी, क्योंकि वह उसके पुत्र का मित्र और साथी है। ( ४ ) **रणशिरसि**—युद्ध के अग्रभाग में। ( ५ ) **विनिर्वातित०**—विनिर्वातितं कर्म यस्य तत्, बहु०। जिसका सब काम दुष्यन्त के धनुष ने ही पूरा कर दिया है। इसका धनुष ही दानवों का वध कर देता है। ( ६ ) **तत्**—वह विख्यात वज्र। ( ७ ) **कोटिमत्**—तेज नोंक वाला, तीक्ष्ण। ( ८) **आभरणम्०**—वह इन्द्र के लिए आभूषणमात्र रह गया है, क्योंकि उसके प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। ( ९ ) **कुलिशम्**—वज्र। कुलि का अर्थ है हाथ। (कुलिर्हस्तः, त्रिकाण्डशेषः)। कुलौ शेते इति कुलिशः, हाथ में लिया जाने वाला। कुलि+शी+ड (अ)। अन्येष्वपि दृश्यते (३-२-१०१) से ड। अथवा कुलिनः पर्वतान् श्यति नाशयति इति कुलिशः। कुलि+शो+क (अ)। आतोऽनुपसर्गे कः (३-२-३) से क। (१०) लोकातिशयवीर्यसम्पत्ति के वर्णन से उदात्त अलंकार है। विनिर्वातितकर्म आभरणत्व का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

११३. **अदितिः**—संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः। [संभावणीआणुभावा से आकिदी।]

**अदिति**—इसकी आकृति से इसके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

११४. **मातलिः**—आयुष्मन्, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प।

**मातलि**—आयुष्मान्, ये देवताओं के माता-पिता पुत्र-प्रेम-सूचक दृष्टि से आपको देख रहे हैं, उनके पास चलिए।

११५. **राजा**—मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं

---

पाठभेद—११५. नि० मातले, एतौ (हे मातलि, ये दोनों)।

भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम् ॥२७॥

**अन्वय**—मुनयः यत् द्वादशधा स्थितस्य तेजसः कारणं प्राहुः, यत् भुवनत्रयस्य भर्तारं यज्ञभागेश्वरं सुषुवे, यस्मिन् आत्मभवः परः पुरुषः अपि भवाय आस्पदं चक्रे, दक्षमरीचिसंभवं स्रष्टुः एकान्तरं तत् इदं द्वन्द्वम् ।

**राजा**—मातलि, मुनि लोग जिस (जोड़े) को बारह रूपों में विद्यमान तेज (सूर्य) का कारण कहते हैं, जिसने तीनों लोकों के पालक और यज्ञभाग के अधिकारी देवों के स्वामी (इन्द्र) को जन्म दिया है, स्वयंभू विष्णु ने भी (वामनरूप में) जन्म लेने के लिए जिसको आश्रय बनाया, दक्ष और मरीचि से उत्पन्न तथा ब्रह्मा से केवल एक पुरुष के व्यवधान वाला यह जोड़ा है ॥२७॥

**संस्कृत-व्याख्या**—मुनयः—व्यासादयः ऋषयः, यत्—द्वन्द्वम्, द्वादशधा—द्वादशरूपेण, स्थितस्य—विद्यमानस्य, तेजसः—तेजोमयसूर्यस्य, कारणम्—उत्पत्तिस्थानम्, प्राहुः—वदन्ति । यत्—द्वन्द्वम्, भुवनत्रयस्य—भूर्भुवःस्वःसंज्ञकस्य लोकत्रयस्य, भर्तारं—पालकम्, यज्ञभागे०—यज्ञे भागो येषां ते यज्ञभागाः देवाः तेषाम् ईश्वरं स्वामिनम्, सुषुवे—उत्पादयामास । यस्मिन्—द्वन्द्वे, आत्मभवः—स्वयंभूः, परः पुरुषोऽपि—विष्णुरपि, भवाय—वामनरूपेण जन्मने, आस्पदं—स्थानम्, चक्रे—व्यधात् । दक्षमरीचि०—दक्षः मरीचिश्च संभवः उत्पत्तिस्थानं यस्य तत्, स्रष्टुः—ब्रह्मणः, एकान्तरम्—एकमात्रम् अन्तरं व्यवधानं यस्य तत्, तत् इदं द्वन्द्वं—युगलं वर्तते । उदात्तं विरोधाभासश्चालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

## टिप्पणी

(१) **संभावनीया०**—संभावनीयः अनुभावः यस्याः सा, बहु० । जिसके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है, ऐसी यह आकृति है । संभावनीय—अनुमान के योग्य, अनुभाव—प्रभाव । (२) **पुत्रप्रीति०**—पुत्रे प्रीतिः तस्याः पिशुनं सूचकम्, तत्पुरुष । पुत्रप्रेम की सूचक । पिशुन—सूचक, सूचना देने वाला । पिशुन का अर्थ चुगलखोर भी होता है । (३) **द्वादशधा**—१२ मासों के पृथक्-पृथक् सूर्य माने जाते हैं, अतः १२ सूर्य होते हैं । विष्णुपुराण और महाभारत में उनके नाम इस प्रकार दिए हैं—(क) तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि । अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च । विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च । अंशुर्भगश्चादितिजा आदित्या द्वादश स्मृताः । (विष्णुपुराण) । (ख) अदित्यां द्वादशादित्याः संभूता भुवनेश्वराः । धाता मित्रो-

र्यमा शक्रो वरुणस्त्वंशुरेव च । भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा । एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते । '(महाभारत) । सूर्य की १२ कलाएँ मानी जाती हैं। उनके आधार पर भी द्वादशधा कह सकते हैं। १२ कलाओं के नाम हैं——तपिनी तापनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः । सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ।। (४) **तेजसः**——तेज का, अर्थात् तेजोमय सूर्य का। (५) **भुवनत्रय**——तीन लोक। उनके नाम हैं——भूः, भुवः, स्वः। (६) **यज्ञ०**——यज्ञे भागः येषां ते यज्ञभागाः, तेषामीश्वरः, तम्, तत्पुरुष। देवताओं को यज्ञभाग कहते हैं, क्योंकि उनका यज्ञ के हव्य में हिस्सा होता है। इन्द्र उनका स्वामी है। (७) **सुषुवे**——जन्म दिया। (८) **आत्मभवः**——विष्णु स्वयंभू और परमपुरुष हैं। कश्यप और अदिति से ही वामन अवतार का जन्म हुआ है। अतः ये दोनों विष्णु के भी माता-पिता हैं। विष्णुपुराण का कथन है कि——मन्वन्तरे च संप्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज । वामनः कश्यपाद् विष्णुरदित्यां संबभूव ह ।। मारीच का नाम कश्यप भी है। (९) **पुरुषः**——इसकी दो व्युत्पत्ति हैं——(क) पुरि शेते इति, शरीररूपी नगर में रहने वाला, जीवात्मा। (ख) पूरयति विश्वं तस्मिन् शेते इति, जो संसार में व्याप्त है। (१०) **एकान्तरम्**——ब्रह्मा और इनके बीच में एक का ही व्यवधान है, अर्थात् ब्रह्मा से दक्ष और मरीचि हैं। उनकी सन्तान ये दोनों हैं। (११) **द्वन्द्वम्**——जोड़ा। द्वौ द्वौ इति द्वन्द्वम्। द्वन्द्वं रहस्य० (८-१-१५) से द्वन्द्व निपातन। (१२) महापुरुष के चरित के वर्णन के कारण उदात्त अलंकार है। आत्मभवः भवाय में विरोधाभास है।

**११६. मातलिः——अथ किम् ?**

**मातलि——आपका कथन सत्य है।**

**११७. राजा——(उपगम्य) उभाभ्यामपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति ।**

**राजा——(पास जाकर) इन्द्र का सेवक दुष्यन्त आप दोनों को प्रणाम करता है।**

**११८. मारीचः——वत्स, चिरं जीव । पृथिवीं पालय ।**

**मारीच——पुत्र, चिरंजीवी हो और पृथ्वी का पालन करो।**

**११९. अदितिः——वत्स, अप्रतिरथो भव ।** [वच्छ अप्पडिरहो होहि ।]

**अदिति——पुत्र, अद्वितीय महारथी हो।**

**१२०. शकुन्तला——दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि।** [दारअसहिदा वो पादवन्दणं करेमि । ]

शकुन्तला—पुत्र के सहित मैं आप दोनों के चरणों की वन्दना करती हूं।

**१२१. मारीचः—वत्से,**

**आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।**
**आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥२८॥**

**अन्वय**—भर्ता आखण्डलसमः, सुतः जयन्तप्रतिमः, पौलोमीसदृशी भव, अन्या आशीः ते योग्या न ।

**मारीच—पुत्री, तेरा पति इन्द्र के तुल्य है, तेरा पुत्र जयन्त के समान है, तू इन्द्राणी के समान होना, इसके अतिरिक्त और कोई आशीर्वाद तेरे योग्य नहीं है ॥२८॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—भर्ता—तव पतिः दुष्यन्तः, आखण्डलसमः—इन्द्रतुल्योऽस्ति, सुतः—तव पुत्रः सर्वदमनः, जयन्तप्रतिमः—इन्द्रपुत्रेण जयन्तेन समो वर्तते। पौलोमी०—पौलोम्या इन्द्राण्या सदृशी तुल्या, भव । अन्या आशीः—आशीर्वादः, ते—तव, योग्या—अनुरूपा, न—नास्ति । श्लोको वृत्तम् ।

### टिप्पणी

(१) **अथ किम्**—और क्या, अर्थात् आपका कथन सत्य है । (२) **वासव०**—इन्द्र का सेवक । नियोज्य—आज्ञाकारी, सेवक । यह राजा की नम्रता को सूचित करता है । (३) **अप्रतिरथः**—अद्वितीय महारथी, जिसका प्रतिद्वन्द्वी कोई योद्धा नहीं है । प्रतिकूलो रथः प्रतिरथः उपचारात् प्रतिद्वन्द्वी । न प्रतिरथः यस्य सः, बहु० । जिसका प्रतिरथ अर्थात् प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । (४) **आखण्डल०**—तुम्हारा पति इन्द्र के तुल्य सर्व गुणों से सम्पन्न है । (५) **जयन्त०**—तुम्हारा पुत्र इन्द्र के पुत्र के समान धीर, वीर, पराक्रमी आदि है । जयन्तेन तुल्यः-जयन्तप्रतिमः, नित्य समास । या जयन्तस्य प्रतिमः सदृशः, तत्पुरुष । (६) **पौलोमी**—तुम इन्द्राणी के तुल्य सदा सौभाग्यवती हो । जिस प्रकार इन्द्राणी सदा सौभाग्यवती है, उसी प्रकार तुम भी हो । अब तुम दोनों में कभी वियोग नहीं होगा । पौलोमी पुलोमन् नामक राक्षस की पुत्री थी । इन्द्र ने पुलोमन् का वध किया था । हरिवंशपुराण (२०-१३३) का कथन है कि—कृत्वा संबन्धकं चापि विश्वसेत् शत्रुणा नहि । पुलोमानं जघानासौ जामाता सन् शतक्रतुः । ऐसा ही वर्णन रामायण ७-२८-१९, २० में भी आता है ।

**१२२. अदितिः—जाते, भर्तुर्बहुमता भव । अयं च दीर्घायुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु । उपविशत । [जादे,**

---

पाठभेद—१२२. नि[illegible]मता [अभिमदा] (प्रिय) । अवश्यं [अवस्सं] (अवश्य) । वत्स (बालक) ।

भत्तुणो बहुमदा होहि। अअं च दीहाऊ वच्छओ उहअकुल-णन्दणो होदु। उवविसह।] **(सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति)**

**अदिति**—पुत्री, तुम पति के द्वारा बहुत अधिक संमानित होना और यह चिरंजीवी बालक दोनों कुलों को आनन्दित करने वाला होवे। तुम सब बैठ जाओ। (सब प्रजापति के चारों ओर बैठ जाते हैं।)

**१२३. मारीचः—(एकैकं निर्दिशन्)**

**दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।**
**श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् ॥२९॥**

**अन्वय**—साध्वी शकुन्तला, इदं सद् अपत्यम्, भवान्। दिष्ट्या श्रद्धा वित्तं विधिः च इति तत् त्रितयं समागतम्।

**मारीच—(प्रत्येक को निर्देश करके)** यह साध्वी शकुन्तला है, यह सद्गुणों से युक्त सुपुत्र है, यह आप हैं। सौभाग्य से श्रद्धा, धन और विधि ये तीनों चीजें यहाँ एकत्र हो गई हैं ॥२९॥

**संस्कृत-व्याख्या**—साध्वी—सच्चरित्रा, शकुन्तला। इदं सत्—उत्कृष्टं सद्गुणोपेतं च, अपत्यं—पुत्रः, भवान्—दुष्यन्तः। दिष्ट्या—भाग्येन, श्रद्धा—आस्तिक्यबुद्धिः, वित्तं—धनसंग्रहः, विधिः—शास्त्रोक्तकर्मानुष्ठानम्, च इति तत्, त्रितयं—वस्तुत्रयम्, समागतं—सम्मिलितम्। निदर्शना यथासंख्यं चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

### टिप्पणी

( १ ) **बहुमता**—बहुत संमान से युक्त। ( २ ) **उभयकुल०**—पिता और माता दोनों के कुलों को आनन्दित करे। ( ३ ) **दिष्ट्या**—भाग्य से। इसका सम्बन्ध समागतम् के साथ है। बड़े भाग्य से ये तीनों चीजें एकत्र हो गई हैं। ( ४ ) **साध्वी**—सच्चरित्र, पतिव्रता। ( ५ ) **सत्**—उत्कृष्ट या सद्गुणों से युक्त। ( ६ ) **श्रद्धा**—आस्तिकता, शास्त्रों आदि पर दृढ़ विश्वास। ( ७ ) **वित्तम्**—धन का भरपूर होना। ( ८ ) **विधिः**—यज्ञ आदि को शास्त्रीय विधिपूर्वक करना। ( ९ ) **त्रितयम्०**—ये तीनों चीजें एकत्र हो गई हैं। त्रितय—त्रि+तयप्, संख्याया अवयवे तयप् (५-२-४२) से तयप् (तय) प्रत्यय। (१०) कालिदास ने यहाँ बहुत सुन्दर साम्य प्रस्तुत किया है—शकुन्तला श्रद्धा के तुल्य है, पुत्र धन के तुल्य है और दुष्यन्त विधि के तुल्य है। तीनों शब्दों का लिंग-साम्य विशेष द्रष्टव्य है। यज्ञ आदि शुभ कार्यों के लिए इन तीन बातों की आवश्यकता होती है—(क) उसका यज्ञ आदि के प्रति श्रद्धा हो, (ख) यज्ञादि के लिए पर्याप्त धन हो, (ग) वह यज्ञ आदि शास्त्रीय विधि के साथ किया जाए,

तभी पूर्ण सफल होता है। इस श्लोक से ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय हुआ था, जब यज्ञ का महत्त्व बहुत अधिक माना जाता था। (११) यहाँ पर श्रद्धा आदि के साथ कल्पित औपम्य के कारण निदर्शना है। शकुन्तला का श्रद्धा से, पुत्र का धन से और राजा का विधि से क्रमशः अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार है।

**१२४. राजा—भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः। पश्चाद् दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः—**

**उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं**
**घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।**
**निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम-**
**स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः ॥३०॥**

**अन्वय**—पूर्वं कुसुमम् उदेति ततः फलम्। प्राक् घनोदयः तदनन्तरं पयः। निमित्तनैमित्तिकयोः अयं क्रमः। तव प्रसादस्य तु पुरः सम्पदः।

**राजा—भगवन्, पहले अभीष्ट वस्तु की सिद्धि हुई, तत्पश्चात् आपका दर्शन हुआ। इसलिए आपकी कृपा अनुपम है। क्योंकि—**

**पहले फूल आते हैं, फिर फल होते हैं। पहले बादल आते हैं, तत्पश्चात् वर्षा होती है। कारण और कार्य का यह क्रम है, किन्तु आपकी कृपा के आगे-आगे सम्पत्ति चलती है ॥३०॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—पूर्वं—प्रथमम्, कुसुमं—पुष्पम्, उदेति—उद्गच्छति, ततः—तदनन्तरम्, फलं—तत्कार्यभूतम् आम्रादिफलं जायते। प्राक्—पूर्वम्, घनोदयः—मेघानाम् आगमो भवति, तदनन्तरं—तत्पश्चात्, पयः—वृष्टिर्भवति। निमित्त०—निमित्तस्य कारणस्य नैमित्तिकस्य कार्यस्य च, अयम्—एषः, क्रमः—नियमः आनुपूर्वी वा भवति। तव—मारीचस्य, प्रसादस्य—अनुग्रहस्य तु पुरः—पूर्वमेव, सम्पदः—सर्वविधश्रियो भवन्ति। काव्यलिङ्गमतिशयोक्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकाराः। वंशस्थं वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **अभिप्रेत०**—इष्ट वस्तु की प्राप्ति, अर्थात् शकुन्तला की प्राप्ति। (२) **अपूर्वः**—अनुपम, असाधारण। (३) **पयः**—जल। यहाँ वर्षा से अभिप्राय है। (४) **निमित्त०**—निमित्तं च नैमित्तिकं च तयोः, द्वन्द्व। कारण और कार्य। निमित्त का अर्थ है कारण और नैमित्तिक—कार्य। निमित्तेन संसृष्टं नैमित्तिकम्, निमित्त+ठक् (इक)। कारण और कार्य का क्रम यह है

कि पहले कारण होता है और बाद में कार्य। परन्तु तुम्हारी कृपा का फल यह है कि नियम उलटा हो गया है। कार्य पहले हो गया है और कारण बाद में। (५) **सम्पदः**—अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति। (६) यहाँ पर तृतीय पाद के लिए पूर्व वाक्य कारण है, अतः काव्यलिंग है। कार्य-कारण के पूर्वापर-नियम के विपर्यय के कारण अतिशयोक्ति है। शकुन्तला और पुत्र न कहकर संपत्ति कहने से अप्रस्तुतप्रशंसा है। विश्वनाथ ने यह श्लोक प्रियोक्ति नामक नाटकीय लक्षण का उदाहरण दिया है। यहाँ पर पूज्य की प्रामाणिकता के लिए प्रियवचन है। इसका लक्षण है—स्यात् प्रमाणयितुं पूज्यं प्रियोक्तिर्हर्षभाषणम्। (सा० दर्पण ६-१६४)।

**१२५. मातलिः—एवं विधातारः प्रसीदन्ति।**

**मातलि—भाग्य-निर्माता लोग इसी प्रकार कृपा करते हैं।**

**१२६. राजा—भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति।**

**यथा गजो नेति समक्षरूपे**
**तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात्।**
**पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीति-**
**स्तथाविधो मे मनसो विकारः ॥३१॥**

**अन्वय**—यथा समक्षरूपे गजः न इति, तस्मिन् अपक्रामति संशयः स्यात्, पदानि दृष्ट्वा तु प्रतीतिः भवेत्, तथाविधः मे मनसः विकारः।

**राजा—भगवन्, आपकी आज्ञाकारिणी इस (शकुन्तला) के साथ मैंने गान्धर्व-विधि से विवाह किया था और कुछ समय बाद जब इसके सम्बन्धी इसे मेरे पास लाए तो स्मरणशक्ति की दुर्बलता के कारण इसका परित्याग करके मैं आपके वंशज पूजनीय कण्व ऋषि का अपराधी हूँ। बाद में अँगूठी के मिलने पर मुझे ज्ञान हुआ कि मैंने उनकी पुत्री से विवाह किया था। यह सब बात मुझे आश्चर्यजनक-सी प्रतीत होती है।**

**जैसे प्रत्यक्ष रूप से सामने होने पर यह विश्वास हो कि यह हाथी नहीं है, जब वह चला जाय तो उसके विषय में सन्देह हो और उसके पैर के चिह्नों को देखकर उसका विश्वास हो जाए, उसी प्रकार मेरे मन का विकार था ॥३१॥**

Funding by IKS-MoE

**संस्कृत-व्याख्या**—यथा—येन प्रकारेण, समक्ष०—समक्षं प्रत्यक्षं रूपं स्वरूपं यस्य तादृशे गजे सति, गजो न इति—अयं हस्तो नास्तीति विश्वासो भवेत्। तस्मिन्—गजे, अपक्रामति—दूरं गते सति, संशयः—सन्देहः, स्यात्—भवेत्, पदानि—भूमौ तस्य पदचिह्नानि, दृष्ट्वा तु—निरीक्ष्य तु, प्रतीतिः—विश्वासः, भवेत्—स्यात् यत् स गज एवासीदिति। तथाविधः—तादृश एव, मे—दुष्यन्तस्य, मनसः—चेतसः, विकारः—विभ्रम आसीत्। निदर्शनाऽलंकारः। उपजातिर्वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **विधातारः**—भाग्य के निर्माता, भाग्य को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने वाले। यह मारीच के लिए है। ( २ ) **आज्ञाकरीम्**—आज्ञाकारिणी सेविका को। यह विनयोक्ति है। आज्ञां करोतीति, आज्ञा+कृ+ट (अ)+ङीप्। यहाँ पर तच्छील अर्थ में कृञो हेतुताच्छील्या० (३—२–२०) से ट प्रत्यय। ( ३ ) **उपयम्य**—विवाह करके। उप+यम् का अर्थ विवाह करना है। ( ४ ) **कस्यचित्०**—कुछ समय बाद। ( ५ ) **अपराद्धः**—अपराधी हूँ। अप+राध्+क्त। ( ६ ) **युष्मत्**—आपके ही गोत्र के। महाभारत (१–६७) में कण्व को काश्यप कहा गया है। समानं गोत्रं यस्य सः सगोत्रः, एक गोत्र वाले। गोत्र का अर्थ है वंश का प्रवर्तक। यह विग्रह मानने में कठिनाई यह है कि कश्यप अर्थात् मारीच स्वयं गोत्रप्रवर्तक हैं, अतः उनका गोत्र क्या होगा? सगोत्र उनके वंशज होंगे। अतः यह विग्रह उचित है—गोत्रेण सहितः सगोत्रः, त्वं सगोत्रः यस्य सः युष्मत्सगोत्रः, आप जिसके वंशप्रवर्तक हैं। ( ७ ) **यथा गजो न०**—इस श्लोक में बुद्धि की तीन अवस्थाओं का वर्णन है, वे तीनों बातें राजा के साथ घटी हैं—(क) हाथी सामने होने पर उसे हाथी नहीं है, मान लेना। इसी प्रकार शकुन्तला सामने थी, फिर भी राजा ने नहीं पहचाना। चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणम्० (अंक ५)। (ख) हाथी के चले जाने पर सन्देह हो। इसी प्रकार शकुन्तला के चले जाने पर उसे सन्देह हुआ। सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्०, मूढः स्यामहमेषा वा० (५-२९), बलवत्तु दूयमानम्० (५-३१)। (ग) पैर के चिह्न देखकर विश्वास हो। अँगूठी को देखकर याद आई। अंगुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन०। ( ८ ) **समक्ष०**—सामने विद्यमान होने पर। समक्षं रूपं यस्य तस्मिन्, बहु०। ( ९ ) **अपक्रामति**—चले जाने पर। (१०) यहाँ पर असंभवद्वस्तुसंबन्धा निदर्शना है। उपमा में समाप्ति होती है।

**१२७. मारीचः—वत्स, अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः। श्रूयताम्।**

**मारीच**—पुत्र, तुम अपने अपराध की शंका न करो। चित्तविकार भी तुममें संभव नहीं है। सुनो।

१२८. राजा—अवहितोऽस्मि ।

राजा—मैं सावधान हूँ ।

१२९. मारीचः—यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति । स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः ।

मारीच—ज्योंही अप्सरस्तीर्थ घाट से अत्यधिक विकल शकुन्तला को लेकर मेनका दाक्षायणी के पास आई, उसी समय मैंने ध्यान से जान लिया था कि दुर्वासा के शाप के कारण इस तपस्विनी और सहधर्मचारिणी का तुमने परित्याग किया है, अन्यथा नहीं । वह शाप अँगूठी के दीखते ही समाप्त हो जाने वाला था ।

१३०. राजा (सोच्छ्वासम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि ।

राजा—(ठंडी साँस लेकर) अब मैं निन्दा से मुक्त हुआ हूँ ।

१३१. शकुन्तला—(स्वगतम्) दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः । न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः । अतः सखीभ्यां सन्दिष्टास्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति । [दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो । ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि । अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो । अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अंगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति ।]

शकुन्तला—(मन में) यह सौभाग्य की बात है कि आर्यपुत्र ने बिना कारण ही मेरा परित्याग नहीं किया । मुझे वस्तुतः स्मरण नहीं है कि मुझे शाप दिया गया था । अथवा मुझे यह शाप दिया गया था, किन्तु विरह के कारण मैं शून्य-हृदय थी, अतएव उसे जान नहीं पाई थी । इसीलिए मेरी दोनों

---

पाठभेद—१३१. का० पुनः [उण] (फिर या तथापि) ।

**सखियों ने मुझसे विशेष रूप से कहा था कि (आवश्यकता पड़े तो) पति को अपनी अंगूठी दिखा देना।**

### टिप्पणी

(१) **आत्मापराध०**—तुम अपने आपको अपराधी न समझो। (२) **अनुपपन्नः**—चित्तविकार भी तुममें होना संभव नहीं है। उपपन्न का अर्थ है उचित है, संभव है। अतः अनुपपन्न—असम्भव। तुम्हारे भूलने में चित्त-विकार नहीं, अपितु और कोई कारण था। पाठभेद—उपपन्नः—उचित ही था। (३) **अप्सरस्तीर्था०**—अप्सरस्तीर्थ घाट से। अवतरण और अवतार दोनों का अर्थ घाट है। (४) **प्रत्यक्ष०**—जिसकी विकलता प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रही थी। प्रत्यक्षं वैक्लव्यं यस्याः ताम्, वहु०। (५) **दाक्षायणीम्०**—अदिति के पास आई। (६) **ध्यानात्०**—ध्यान लगाकर मैंने जान लिया था। शकुन्तला की सारी कथा में दुर्वासा का शाप वहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। इससे राजा के चरित्र पर कोई दोष नहीं आता। शकुन्तला भी उसे निर्दोष मानती है। भावी प्रेम के लिए आवश्यक था कि दोनों एक दूसरे को निर्दोष समझें, तभी प्रेम चिरस्थायी होता है। (७) **तपस्विनी**—वेचारी, दयनीय। (८) **सहधर्म०**—साथ रहकर धर्म करने वाली। प्रत्येक धार्मिक काम में साथ रहने वाली। (९) **अङ्गुलीयक०**—अँगूठी का दीखना ही शाप की समाप्ति थी। अङ्गुलीयकदर्शनम् अवसानं यस्य सः, वहु०। (१०) **वचनीयात्**—निन्दा से। (११) **दिष्टया**—शकुन्तला को यह जानकर हार्दिक सन्तोष हुआ कि राजा ने उसे विना कारण ही नहीं छोड़ा था। उसमें शाप का दोष था, न कि राजा का। (१२) **सन्दिष्टा०**—सन्देश दिया था, विशेषरूप से कहा था।

**१३२. मारीचः—वत्से, चरितार्थासि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। पश्य—**

**शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे**
**भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।**
**छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे**
**शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥३२॥**

**अन्वय**—शापात् स्मृतिरोधरूक्षे भर्तरि प्रतिहता असि, अपेततमसि तवैव प्रभुता। मलोपहतप्रसादे दर्पणतले छाया न मूर्च्छति, शुद्धे तु सुलभावकाशा।

**मारीच—पुत्री, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया है। अब तुम अपने पति के प्रति क्रोध न करना। देखो—**

---

पाठभेद—१३२. नि० तदिदानीम्, इति नास्ति।

शाप के कारण तुम्हारे पति की स्मरण-शक्ति रुक गई थी, अतएव वे रूखे हो गए थे और उनके द्वारा तुम्हारा तिरस्कार हुआ था। अब उनका अज्ञान दूर हो गया है। उन पर तुम्हारी ही प्रभुता रहेगी। मैल के कारण जिसकी स्वच्छता नष्ट हो गई, ऐसे शीशे पर प्रतिबिम्ब साफ दिखाई नहीं देता, किन्तु वह स्वच्छ हो तो प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देगा ।।३२।।

**संस्कृत-व्याख्या**—शापात्—दुर्वाससा दत्तात् शापात्, स्मृति०—स्मृतेः स्मरण-शक्तेः रोधात् व्याहतत्वात् रूक्षे निष्ठुरे, भर्तरि—पत्यौ सति, प्रतिहता असि—त्वं तिरस्कृता असि। अपेत०—अपेतं नष्टं तमः अज्ञानं यस्मात् तादृशे, भर्तरि—पत्यौ, तवैव—शकुन्तलाया एव, प्रभुता—आधिपत्यं भविष्यति। मलोप०—मलेन धूल्यादिना उपहतः नष्टः प्रसादो निर्मलता यस्य तस्मिन्, दर्पणतले—मुकुरतले, छाया—प्रतिबिम्बम्, न मूर्च्छति—न प्रसरति, शुद्धे तु—निर्मले तु दर्पणे, सुलभा०—सुलभः सुकरः अवकाशः स्थानं यस्य तादृशी भवति। उपमाऽलकारः। वसन्त-तिलका वृत्तम्।

### टिप्पणी

(१) **चरितार्था०**—तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया है। चरितः प्राप्तः अर्थो मनोरथः यया सा, बहु०। (२) **मन्युः०**—क्रोध न करना। (३) **शापात्०**—शाप के कारण ही। (४) **प्रतिहता**—तुम तिरस्कृत हुई थीं। (५) **स्मृति०**—स्मृतेः रोधात् रूक्षे, तत्पुरुष। दुष्यन्त शाप के कारण स्मरणशक्ति के रुक जाने से रूखे हो गए थे। (६) **अपेत०**—अब उनका अज्ञान दूर हो गया है। तम—अन्धकार, अज्ञान, मोह। (७) **प्रभुता०**—अब तुम उनकी स्वामिनी रहोगी। तुम ही महारानी बनोगी और ये तुम्हारे कथनानुसार चलेंगे। (८) **छाया०**—प्रतिबिम्ब साफ नहीं दिखाई देता है। मूर्च्छति—प्रतिफलित होता है। (९) **मलोपहत०**—मलेन उपहतः प्रसादः यस्य तस्मिन्, बहु०। शीशे पर मैल जमा हुआ हो तो। (१०) **सुलभावकाशा**—प्रतिविम्ब को स्थान सरलता से मिलेगा अर्थात् प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देगा। (११) इसमें उपमा है। इन चीजों की तुलना की गई है—(क) त्वम् और छाया, (ख) भर्ता और दर्पणतल, (ग) स्मृतिरोधरूक्ष और मलोपहतप्रसाद, (घ) प्रतिहता और न मूर्च्छति, (ङ) अपेततमस् और शुद्ध, (च) प्रभुता और सुलभावकाशा।

**१३३. राजा—यथाह भगवान्।**

राजा—आपका कथन सत्य है।

**१३४. मारीचः—वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः?**

मारीच—पुत्र, हमने शकुन्तला के इस पुत्र का विधिवत् जातकर्म संस्कार किया है। क्या तुमने इसका अभिनन्दन कर लिया है?

**१३५. राजा—भगवान्, अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। (इति बालं हस्तेन गृह्णाति।)**

राजा—भगवन्, इसी पर मेरे वंश की प्रतिष्ठा निर्भर है। (बालक का हाथ पकड़ता है।)

**१३६. मारीचः—तथाभाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। पश्य—**

**रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः**
**पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।**
**इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः**
**पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥३३॥**

अन्वय—अप्रतिरथः अयम् अनुद्घातस्तिमितगतिना रथेन तीर्णजलधिः पुरा सप्तद्वीपां वसुधां जयति। इह सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः, पुनः लोकस्य भरणात् भरत इति आख्यां यास्यति।

मारीच—आप इसको उसी प्रकार का होने वाला (अर्थात् वंशप्रतिष्ठास्वरूप) चक्रवर्ती सम्राट् समझें। देखिए—अद्वितीय महारथी यह अस्खलित और शान्त गति वाले रथ (विमान) से समुद्रों को पार करके भविष्य में सात द्वीपों से युक्त इस पृथ्वी की विजय करेगा। यहाँ पर जीवों को बलात् वश में करने के कारण इसका नाम सर्वदमन था। भविष्य में यह संसार का पालन करेगा, अतः इसका 'भरत' यह नाम पड़ेगा॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या—अप्रतिरथः—अविद्यमानः प्रतिरथः प्रतियोद्धा यस्य सः, अयं—ते पुत्रः, अनुद्घात०—अनुद्घाता अस्खलिता स्तिमिता निश्चला च गतिः गमनं यस्य तेन, रथेन—स्यन्दनेन विमानेन वा, तीर्ण०—तीर्णाः उत्तीर्णाः जलधयः समुद्राः येन सः, पुरा—आगामिनि काले, सप्तद्वीपां—जम्बुप्लक्षादिसप्तद्वीपयुक्ताम्, वसुधां—पृथिवीम्, जयति—जेष्यति। इह—अस्मिन् तपोवने, सत्त्वानां—प्राणिनाम्, प्रसभ०—प्रसभं बलात् दमनात् शासनात्, सर्वदमनः—इति नामधेयोऽस्ति। पुनः—भूयः, लोकस्य—संसारस्य, भरणात्—पालनात्,

---

पाठभेद—१३५. नि० इति बालं हस्तेन गृह्णाति, इति नास्ति।

भरत इति, **आख्यां**—नाम, **यास्यति**—प्राप्स्यति। भाविकं काव्यलिङ्गं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **कच्चित्**—क्या ? यह प्रश्नवाचक अव्यय है। (२) **अभिनन्दितः**—स्वागत किया। ( ३ ) **शाकुन्तलेयः**—शकुन्तला का पुत्र। शकुन्तलायाः अपत्यं पुमान्। शकुन्तला+ढक् (एय)। स्त्रीभ्यो ढक् (४-१-१२०) से पुत्र अर्थ में ढक् प्रत्यय। ( ४ ) **वंशप्रतिष्ठा**—कुल की प्रतिष्ठा इसी पर निर्भर है। ( ५ ) **तथा-भाविनम्**—वैसा ही होगा अर्थात् कुल का प्रतिष्ठास्वरूप होगा। ( ६ ) **चक्र-वर्तिनम्**—सार्वभौम सम्राट्। ( ७ ) **रथेन**—यहाँ पर रथ का अर्थ विमान समझना चाहिए, क्योंकि उससे ही समुद्रों और पर्वतों के पार जा सकते हैं। रघुवंश ५–२७ में रथ के द्वारा विमान का ही भाव है—वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात् प्रभावाद् उदन्वदाकाशमहीधरेषु। मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य॥ यह रथ विमान के तुल्य ही होगा। (८) **अनुद्घात०**—उद्घात अर्थात् झटके से रहित और स्तिमित अर्थात् शान्त। देखो—रघु० २-७२, शिशुपाल० १२–२। अनुद्घातश्चासौ स्तिमितगतिः च, तेन। इसका यह भी अर्थ हो सकता है—शत्रुरूपी विघ्नों के अभाव के कारण शान्त गति वाले। ( ९ ) **तीर्णजलधिः**—समुद्रों को पार करके। तीर्णाः जलधयः येन सः, बहु०। (१०) **पुरा जयति**—जीतेगा। पुरा के कारण यावत्पुरा० (३-३-४) से भविष्यत् अर्थ में लट्। (११) **सप्तद्वीपाम्०**—हिन्दू परम्परा के अनुसार पृथ्वी सात द्वीपों में विभक्त थी। एक द्वीप के बाद एक समुद्र था। जम्बुद्वीप मुख्य था। यह मध्य में था। इसके मध्य में मेरु या सुमेरु पर्वत था। सात द्वीपों के नाम हैं—जम्बु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। विष्णुपुराण का कथन है—जम्बुप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥ कूर्मपुराण का कथन है—जम्बुद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च। कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥ एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः। कई स्थानों पर ९ और १८ भी द्वीप माने हैं। अष्टादशद्वीपनिखातयूपः (रघु० ६-३८)। (१२) **प्रसभ०**—प्रसभं दमनात्। बलात् दबा लेने से। (१३) **भरतः**—कालिदास ने यहाँ भृ धातु से भरत माना है। भरति इति या बिभर्ति इति। इस भरत के नाम से ही भारत या भारतवर्ष नाम पड़ा है। यद्यपि वायुपुराण (४५–७५, ७६), ब्रह्माण्डपुराण (४९) में मनु को भी भरत कहा है, परन्तु इस भरत से ही भारत नाम मानना उचित है। वायु० का कथन है—वर्षं तद् भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा। भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते॥ (१४) भावी विजय के उल्लेख के कारण भाविक अलंकार है।

**१३७. राजा—भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशास्महे।**

राजा—आपने इसका संस्कार किया है, अतः इसमें हम सभी बातों की आशा करते हैं।

१३८. अदितिः—भगवन्, अस्या दुहितृमनोरथसम्पत्तेः कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति। [भअवं, इमाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचरन्ती चिट्ठदि ]

अदिति—भगवन्, पुत्री की इस इच्छा-पूर्ति के विस्तृत समाचार से कण्व को भी विदित करा देना चाहिए। पुत्री-वत्सला मेनका तो हम लोगों की सेवा करती हुई यहीं है।

१३९. शकुन्तला—(आत्मगतम्) मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या। मणोरहो क्खु मे भणिदो भअवदीए।]

शकुन्तला—(मन में) भगवती अदिति ने वस्तुतः मेरे मन की बात कह दी है।

१४०. मारीचः—तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः।

मारीच—तप के प्रभाव से माननीय (कण्व) को सभी बातें प्रत्यक्ष हैं।

१४१. राजा—अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः।

राजा—अतएव मुनि मुझपर विशेष क्रुद्ध नहीं हुए थे।

१४२. मारीचः—तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः ?

मारीच—फिर भी यह शुभ समाचार हमें उनको सुनना ही चाहिए। यहाँ कौन है ?

१४३. शिष्यः—भगवन्, अयमस्मि। (प्रविश्य)

(शिष्य का प्रवेश) शिष्य—भगवन्, यह मैं हूँ।

१४४. मारीचः—गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात् तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा—पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति।

---

पाठभेद—१३८. नि० अनया (इस)। ०सम्पत्त्या (०इच्छा-पूर्ति से)। १४२. ० प्रष्टव्यः (बताना चाहिए)।

Funding by IKS-MoE

मारीच--गालव, अभी आकाशमार्ग से जाकर मेरी ओर से माननीय कण्व को यह शुभ समाचार सुनाना कि--पुत्रवती शकुन्तला को, उसका शाप समाप्त हो जाने पर, स्मरणयुक्त दुष्यन्त ने पुनः स्वीकार कर लिया है।

**१४५. शिष्यः--यदाज्ञापयति भगवान् ।(इति निष्क्रान्तः।)**

शिष्य--जैसी आपकी आज्ञा। (प्रस्थान।)

**१४६. मारीचः--वत्स, त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व।**

मारीच--पुत्र, तुम भी अपने पुत्र और स्त्री के साथ अपने मित्र इन्द्र के रथ पर चढ़कर अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान करो।

**१४७. राजा--यदाज्ञापयति भगवान् ।**

राजा--जो आपकी आज्ञा।

### टिप्पणी

( १ ) आशास्महे--सभी बातों की इसमें आशा करते हैं। (२) **दुहितृ०**--कण्व की पुत्री का मनोरथ सिद्ध हो गया, इस समाचार को। **मनोरथसम्पत्ति**--मनोरथ की सिद्धि। ( ३ ) श्रुतविस्तारः--श्रुतः विस्तारः येन सः, वहु०। इसका विस्तृत विवरण उन्हें ज्ञात हो जाए। ( ४ ) **दुहितृ०**--दुहितरि वत्सला, तत्पुरुष। पुत्री पर प्रेम करने वाली। मेनका यहीं है, उसे समाचार ज्ञात हो ही गया है। ( ५ ) **मनोरथः खलु०**--मन की वात कह दी। ( ६ ) **प्रत्यक्षम्०**--कण्व को सव वातें प्रत्यक्ष हैं। ( ७ ) **श्रावयितव्यः**--सुनाना चाहिए, बताना ही चाहिए। श्रु+णिच्+तव्यत्। ( ८ ) **विहायसा०**--आकाशमार्ग से जाकर। विमान से जाकर या सिद्धि के द्वारा वे लोग आकाश में उड़ सकते थे। ( ९ ) तच्छाप०--दुर्वासा का शाप समाप्त हो गया है।

**१४८. मारीचः--अपि च--**

**तव भवतु विडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु**
**त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं प्रीणयस्व।**
**युगशतपरिवर्तानेवमन्योन्यकृत्यै-**
**र्नयतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः ॥३४॥**

अन्वय--विडौजाः तव प्रजासु प्राज्यवृष्टिः भवतु। त्वम् अपि विततयज्ञः

---

पाठभेद--१४८. नि० मारीचः--अपि च--तव भवतु……श्लाघनीयैः इति सर्वं नास्ति।

Funding by IKS-MoE

वज्रिणं प्रीणयस्व। एवम् उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः अन्योन्यकृत्यैः युगशत-परिवर्तान् नयतम् ।

**मारीच—और भी—इन्द्र तुम्हारी प्रजा (के हित) के लिए प्रचुर वृष्टि करे। तुम भी विस्तृत यज्ञों के द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करना। इस प्रकार (स्वर्ग और मर्त्य) दोनों लोकों के उपकार के कारण प्रशंसनीय पारस्परिक कृत्यों से तुम दोनों सैकड़ों युगों को बिताओ ॥३४॥**

**संस्कृत-व्याख्या**—विडौजाः—विट् व्यापकम् ओजः प्रतापो यस्य स इन्द्रः, तव—दुष्यन्तस्य, प्रजासु—प्रकृतिषु, प्राज्य०—प्राज्या प्रभूता वृष्टिः वर्षणं यस्य तादृशः, भवतु। त्वमपि विततयज्ञः—वितताः विस्तीर्णाः यज्ञाः इष्टयः येन तादृशः, वज्रिणं—इन्द्रम्, प्रीणयस्व—प्रसादय। एवम्—अनेन प्रकारेण, उभय०—उभयोः लोकयोः देवमर्त्यलोकयोः अनुग्रहेण उपकारेण श्लाघनीयैः प्रशंसनीयैः, अन्योन्य०—अन्योन्यस्य परस्परस्य कृत्यैः कार्यैः, युगशत०—युगानां सत्यत्रेतादीनां शतपरिवर्तान् शतावर्तनानि, नयतम्—अतिवाहयतम्। परिवृत्तिरलंकारः। मालिनी वृत्तम्।

## टिप्पणी

(१) **विडौजाः**—इन्द्र। यह शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) वेवेष्टि इति विट्, विट् ओजः यस्य सः। जिसका तेज सर्वत्र व्यापक है। विट् अर्थात् व्यापक। (ख) विडति भिनत्ति रिपून् इति विडम्, विडम् ओजः यस्य सः। (२) **प्राज्यवृष्टिः**—अधिक या पर्याप्त वृष्टि करने वाला। प्राज्या वृष्टिः यस्य सः, बहु०। प्राज्य शब्द दो प्रकार से बन सकता है—(क) प्रकर्षेण अज्यते काम्यते इति, अञ्ज् धातु से। जिसको अधिक रूप में चाहते हैं। (ख) प्रकृष्टम् आज्यं घृतं यस्मिन्, जिसमें घी या जल अधिक है। (३) **वितत०**—वितताः यज्ञाः येन सः, बहु०। विस्तृत यज्ञों के द्वारा। (४) **युगशत०**—सैकड़ों युगों तक। युगानां शतपरिवर्तान्, तत्पुरुष। चार युग हैं—कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि। मारीच के कथन का भाव है कि तुम और तुम्हारे वंशज सदा यज्ञ करते रहें और इस प्रकार दोनों लोकों का कल्याण होता रहे। (५) **अन्योन्यकृत्यैः**—एक दूसरे के हितकर कार्यों से। (६) **उभयलोका०**—उभयोः लोकयोः अनुग्रहेण श्लाघनीयैः, तत्पुरुष। दोनों लोकों के उपकार के कारण प्रशंसनीय। (७) गीता में भी इस भाव को स्पष्ट किया गया है कि यज्ञ के द्वारा देवता प्रसन्न होते हैं और उचित समय पर वर्षा होती है। देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ (गीता ३-११)। यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। (गीता ३-१४)। दण्डनीति में कहा है—राजा त्वर्थान् समाहृत्य कुर्यादिन्द्रमहोत्सवम्। प्रीणितो मेघवाहस्तु महतीं वृष्टिमावहेत् ॥ (८) यहाँ पर पारस्परिक आदान-प्रदान का भाव होने से परिवृत्ति अलंकार है। उसका लक्षण है—परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत् (सा० दर्पण १०-८०)।

**१४९. राजा—भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये ।**

**राजा**—भगवन्, मैं यथाशक्ति (ऐसे) कल्याण के लिए यत्न करूँगा।

**१५०. मारीचः—वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ?**

**मारीच**—पुत्र, इससे अधिक मैं और क्या तुम्हारा प्रिय उपकार करूँ ?

**१५१. राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति । यदीह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु । (भरतवाक्यम्)**

**प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः**
**सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम् ।**
**ममापि च क्षपयतु नीललोहितः**
**पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥३५॥**

**(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)**

**इति सप्तमोऽङ्कः ।**

**समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम् ।**

**अन्वय**—पार्थिवः प्रकृतिहिताय प्रवर्तताम्, श्रुतमहतां सरस्वती महीयताम्, परिगतशक्तिः आत्मभूः नीललोहितः ममापि पुनर्भवं क्षपयतु ।

**राजा**—क्या इससे भी अधिक कुछ और प्रिय हो सकता है ? यदि आप और प्रिय करना चाहते हैं तो यह हो जाए—(अन्तिम आशीर्वादात्मक वाक्य)

राजा प्रजा के हित के लिए प्रयत्नशील हों। ज्ञान-गरिष्ठ कवियों की वाणी (कृति) का पूर्ण सत्कार हो। सर्वशक्तिमान् स्वयंभू शिव मेरे पुनर्जन्म को निवृत्त कर दें ॥३५॥ (सब का प्रस्थान ।)

**सप्तम अंक समाप्त। अभिज्ञान-शाकुन्तल नामक नाटक समाप्त ।**

**संस्कृत-व्याख्या**—पार्थिवः—नृपः, प्रकृतिहिताय—प्रजाहितसम्पादनाय, प्रवर्ततां—प्रवृत्तो भवतु। श्रुत०—श्रुतेन शास्त्रश्रवणेन महतां गरिष्ठानाम्, सरस्वती—वाणी, महीयतां—पूजां लभताम्। परिगतशक्तिः—परितः गताः सर्वतो व्याप्ताः शक्तयः यस्य सः सर्वशक्तिमान्, आत्मभूः—स्वयंभूः, नीललोहितः—

---

पाठभेद—१४९. नि० राजा⋯यतिष्ये, इदं वाक्यं नास्ति। १५१. नि० गहीयसाम् (उत्कृष्टों को)। का० इति, इति नास्ति।

शिवः, ममापि—कालिदासस्यापि, पुनर्भवं—पुनर्जन्म, क्षपयतु—नाशयतु। तत्त्वज्ञानं प्रदाय मुक्ति प्रापयतु। रुचिरा वृत्तम्।

## टिप्पणी

( १ ) **भरतवाक्यम्**—यह नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। भरत का अर्थ नट या अभिनेता है। भरतानां वाक्यम्। नाटकीय पात्रों की ओर से जनता के लिए जो आशीर्वादात्मक श्लोक होता है, वह भरतवाक्य है। नाटक के अन्त में अभिनेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सूत्रधार या कई अभिनेता मिलकर इस श्लोक को बोलते हैं। अथवा भरतवाक्य यह नाम नाट्यशास्त्र के जन्मदाता और नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के रचयिता भरत मुनि की स्मृति के लिए रखा गया है। तब इसका अर्थ होगा—भरत मुनि द्वारा आदिष्ट आशीर्वादात्मक वाक्य। ( २ ) **प्रवर्तताम्**—लग जाएँ, प्रयत्नशील हों। ( ३ ) **प्रकृति०**—राजा प्रजा के हितचिन्तक हों। ( ४ ) **सरस्वती**—वाणी, विद्या, ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता। ( ५ ) **श्रुतमहताम्०**—श्रुतेन महताम्, तत्पुरुष। ज्ञान के द्वारा महान् या गौरवयुक्त कवि लोग अथवा वेदज्ञान के द्वारा गौरवयुक्त वैदिक विद्वान्। पाठभेद—श्रुतिमहती—वेदों में जिसका महत्त्व वर्णित है, ऐसी संस्कृत विद्या का गौरव बढ़े। ( ६ ) **महीयताम्**—गौरव बढ़े। कवियों की कृतियों का तथा वेदज्ञों का गौरव बढ़े, संमान बढ़े। ( ७ ) **क्षपयतु**—नष्ट करे। तत्त्वज्ञान देकर मुक्ति प्रदान करे। यह कालिदास की अपने लिए उक्ति है। ( ८ ) **नीललोहितः**—शिव। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास शिवभक्त थे। ( ९ ) **पुनर्भवम्**—पुनर्जन्म को। (१०) **परिगतशक्तिः**—परिगता शक्तिः यस्य सः, बहु०। जिसकी शक्तियाँ चारों ओर फैली हुई हैं। सर्वशक्तिमान् शिव। शिव की ये आठ शक्तियाँ मानी जाती हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका अथवा ज्ञान, इच्छा और प्रयत्नरूपी तीन शक्तियाँ। (११) **आत्मभूः**—स्वयंभू। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों के लिए यह विशेषण आता है। इनकी अपनी शक्ति के आधार पर सत्ता है।

**इत्युत्तरप्रदेशान्तर्गतगाजीपुरमण्डलान्तर्गतगहमर-ग्रामवास्तव्यस्य वैश्यवंशोद्भवस्य श्रीमतश्छेदीलालमहोदयस्य पौत्रस्य श्रीमतो बलरामदासमहोदयस्य श्रीमत्या वसुमतीदेव्याश्च पुत्रस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिनः कृतावभिज्ञानशाकुन्तलस्य भारती-व्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः।**

# परिशिष्ट (१)

## श्लोकानुक्रमणिका

(सूचना—इस सूची में संख्याओं के द्वारा क्रमशः
अंक और श्लोक-संख्या का निर्देश है।
कोष्ठ में छन्दों के नाम दिए हैं।)

अक्लिष्टबालतरु० (वस०) ६–२०
अतः परीक्ष्य कर्तव्यं (श्लोक) ५–२४
अद्यापि नूनं हर० (उप०) पृष्ठ १४४
अधरः किसलयरागः (आर्या) १–२१
अध्याक्रान्ता वसति० (मन्दा०) २–१४
अनवरतधनुर्ज्या० (मालिनी) २–४
अनाघ्रातं पुष्पं (शिख०) २–१०
अनिशमपि मकर० (आर्या) पृ० १३८
अनुकारिणि पूर्वेषां (श्लोक) २–१६
अनुमतगमना (अपर०) ४–१०
अनुयास्यन् मुनि० (आर्या) १–२९
अनेन कस्यापि (उप०) ७–१९
अन्तगतप्रार्थन० (उप०) ७–२
अन्तर्हिते शशिनि (वस०) ४–३
अपरिक्षतकोमलस्य (माल०) ३–२१
अभिजनवतो भर्तुः (हरिणी) ४–१९
अभिमुखे मयि संहृत० (द्रुत०) २–११
अभ्यक्तमिव स्नातः (आर्या) ५–११
अभ्युन्नता पुरस्ताद० (आर्या) ३–५
अमी वेदिं परितः (त्रिष्टुप्) ४–८
अगं स ते तिष्ठति (वंशस्थ) ३–११
अयमरविवरेभ्यः (मालिनी) ७–७
अर्थो हि कन्या (इन्द्र०) ४–२२
अर्धपीतस्तनं मातुः (श्लोक) ७–१४
असंशयं क्षत्रपरिग्रह० (वंश०) १–२२
अस्मात्परं वत (वस०) ६–२५
अस्मान् साधु (शार्दू०) ४–१७
अहन्यहन्यात्मन (उप०) ६–२६
अहिणवमहुलोलुवो (अपर०) ५–१
आखण्डलसमो (श्लोक) ७–२८
आचार इत्यवहितेन (वस०) ५–३
आजन्मनः शाठ्य० (उप०) ५–२५
आतम्महरिअ० (आर्या) ६–२
आ परितोषाद् (आर्या) १–२
आलक्ष्यदन्तमुकुलान् (वस०) ७–१७
इतः प्रत्यादेशात् (शिख०) ६–९
इदं किलाव्याजमनो० (वंश०) १–१८
इदमनन्यपरायण० (द्रुत०) ३–१६
इदमशिशिरै० (हरिणी) ३–१०
इदमुपनतमेवं (मालिनी) ५–१९
इदमुपहितसूक्ष्म० (मालिनी) १–१९
ईसीसिचुम्बिआइं (उद्गाथा) १–४

उग्गलिअदब्भकवला (आर्या) ४–१२
उत्पक्ष्मणोर्नयनयो० (वस०) ४–१५
उत्सृज्य कुसुम० (आर्या) ३–१९
उदेति पूर्वं कुसुमं० (वंशस्थ) ७–३०
उन्नमितैकभ्रूलत० (आर्या) ३–१२
उपोढशब्दा न (वंश०) ७–१०
एकैकमत्र दिवसे (वस०) ६–१२
एवमाश्रमविरुद्ध० (रथो०) ७–१८
एष त्वामभिनव० (प्रह०) ६–२७
एषा कुसुमनिषण्णा (आर्या) ६–१९
एसा वि पिएण (आर्या) ४–१६
औत्सुक्यमात्रमव० (वस०) ५–६
कः पौरवे वसुमतीं (आर्या) १–२५
कथं नु तं बन्धुर० (वंश०) ६–१३
कर्कन्धूनामुपरि (मन्दा०) पृ० १९३
का कथा बाण० (श्लोक) ३–१
कामं प्रत्यादिष्टां (आर्या) ५–३१
कामं प्रिया न (आर्या) २–१
कार्या सैकतलीन० (शार्दू०) ६–१७
कास्विदवगुण्ठन० (आर्या) ५–१३
किं कृतकार्यद्वेषो (आर्या) ५–१८
किं तावद् व्रतिना० (शार्दू०) ५–९
किं शीतलैः क्लम० (वस०) ३–१८
कुतो धर्मक्रियाविघ्नः (श्लोक) ५–१४
कुमुदान्येव शशाङ्कः (आर्या) ५–२८
कुल्याम्भोभिः पवन० (मन्दा०) १–१५
कृतं न कर्णार्पित० (वंश०) ६–१८
कृताः शरव्यं हरिणा (वंश०) ६–२९
कृताभिमर्शामनु० (उप०) ५–२०
कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् (श्लोक) २–१७
कृष्णसारे ददच्चक्षुः (श्लोक) १–६
क्व वयं क्व परोक्ष० (वियो०) २–१८
क्षणात् प्रबोध० (श्लोक) पृ० २४८
क्षामक्षाकपोल० (शार्दू०) ३–७
क्षौमं केनचिदिन्दु० (शार्दू०) ४–५
गच्छति पुरः शरीरं (आर्या) १–३४
गान्धर्वेण विवाहेन (श्लोक) ३–२०
गाहन्तां महिषा (शार्दू०) २–६
ग्रीवाभङ्गाभिरामं (स्रग्०) १–७
चलापाङ्गां दृष्टिं (शिख०) १–२४
चित्रे निवेश्य (वस०) २–९
चूतानां चिरनिर्गता (शार्दू०) ६–४
जन्म यस्य पुरोर्वंशे (श्लोक) १–१२
जाने तपसो वीर्यं (आर्या) ३–२
ज्वलति चलितेन्धनो (आर्या) ६–३१
णावेक्खिओ गुरुअणो (आर्या) ५–१६
तत्साधुकृतसन्धानं (श्लोक) १–११
तदेषा भवतः कान्ता (श्लोक) ५–२६
तपति तनुगात्रि (आर्या) ३–१४
तव कुसुमशरत्वं (मालिनी) ३–३
तव भवतु (मालिनी) ७–३४
तव सुचरितम० (पुष्पि०) ६–११
तवास्मि गीतरागेण (श्लोक) १–५
तस्याः पुष्पमयी (शार्दू०) ३–२३
तीव्राघातप्रतिहत० (मन्दा०) १–३३
तुज्झ ण आणे (उद्०) ३–१३
तुमं सि मए (आर्या) ६–३
तुरगखुरहतस्तथा (पुष्पि०) १–३२

त्रिस्रोतसं वहति (वस०) ७–६
त्वन्मतिः केवला (श्लोक) ६–३२
त्वमर्हतां प्राग्रसरः (वंश०) ५–१५
दर्भाङ्कुरेण चरणः (वस०) २–१२
दर्शनसुखमनुभवतः (आर्या) ६–२१
दिष्ट्या शकुन्तला (श्लोक) ७–२९
दुष्यन्तेनाहितं (श्लोक) ४–४
न खलु न खलु (मालिनी) १–१०
न नमयितुमधिज्य० (पुष्पि०) २–३
नियमयसि विमार्ग० (मालिनी) ५–८
नीवाराः शुकगर्भ० (शार्दू०) १–१४
नैतच्चित्रं यदय० (मन्दा०) २–१५
परिग्रहबहुत्वेऽपि (श्लोक) ३–१७
पातुं न प्रथमं (शार्दू०) ४–९
पादन्यासं० (मन्दा०) पृ० १९३
पुत्रस्य ते रणशिर० (वस०) ७–२६
पृष्टा जनेन सम० (वस०) ३–८
प्रजाः प्रजाः स्वा इव (उप०) ५–५
प्रजागरात् (पथ्या०) ६–२२
प्रत्यादिष्टविशेष० (शार्दू०) ६–६
प्रथमं सारङ्गाक्ष्या (आर्या) ६–७
प्रथमोपकृतं मरुत्वतः (वियो०) ७–१
प्रलोभ्यवस्तुप्रणय० (वंश०) ७–१६
प्रवर्ततां प्रकृति० (रुचिरा) ७–३५
प्राणानामनिलेन (शार्दू०) ७–१२
प्राहुर्द्वादशधा (शार्दू०) ७–२७
बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि (श्लोक) ७–२३
भवनेषु रसाधिकेषु (माल०) ७–२०
भवन्ति नम्रास्तरवः (वंश०) ५–१२
भव हृदय साभिलाषं (आर्या) १–२८
भानुः सकृद्युक्त० (इन्द्र०) ५–४
भूत्वा चिराय (वस०) ४–२०
मनोरथाय नाशंसे (श्लोक) ७–१३
मय्येव विस्मरण० (वस०) ५–२३
महतस्तेजसो (श्लोक) ७–१५
महाभागः कामं (शिख०) ५–१०
मानुषीषु कथं वा (श्लोक) १–२६
मुक्तेषु रश्मिषु० (वस०) १–८
मुनिसुताप्रणय० (द्रुत०) ६–८
मुहुरङ्गुलिसंवृता० (माल०) ३–२२
मूढः स्यामहमेषा वा (श्लोक) ५–२९
मेदश्छेदकृशोदरं (शार्दू०) २–५
मोहान्मया सुतनु (वस०) ७–२५
यतो यतः षट्चरणो० (वंश०) १–२३
यथा गजो नेति (उप०) ७–३१
यदालोके सूक्ष्मं (शिख०) १–९
यदि यथा वदति (द्रुत०) ५–२७
यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो (श्लोक०) २–२३
यद्यत् साधु न (पथ्या०) ६–१४
ययातेरिव शर्मिष्ठा (श्लोक) ४–७
यस्य त्वया व्रण० (वस०) ४–१४
यात्येकतोऽस्तशिखरं (वस०) ४–२
या सृष्टिः स्रष्टुराद्या (स्रग्०) १–१
यास्यत्यद्य शकुन्तलेति (शार्दू०) ४–६
येन येन वियुज्यते (श्लोक) ६–२३
यो हनिष्यति (श्लोक) ६–२८
रथेनानुद्घात० (शिख०) ७–३३
रम्यं द्वेष्टि यथा (शार्दू०) ६–५

रम्याणि वीक्ष्य (वस०) ५-२
रम्यान्तरः कमलिनी० (वस०) ४-११
रम्यास्तपोधनानां (आर्या) १-१३
वल्मीकार्धनिमग्न० (शार्दू०) ७-११
वसने परिधूसरे (माल०) ७-२१
वाचं न मिश्रयति (वस०) १-३१
विचिन्तयन्ती यमनन्य० (वंश०) ४-१
विच्छित्तिशेषैः (उप०) ७-५
वृथैव संकल्पशतै० (उप०) पृ० १३८
वैखानसं किमनया (वस०) १-२७
व्यपदेशमाविलयितुं (आर्या) ५-२१
शक्यमरविन्दसुरभिः (आर्या) ३-४
शमप्रधानेषु तपोधनेषु (उप०) २-७
शममेष्यति मम (आर्या) ४-२१
शहजे किल जे (वियो०) ६-१
शान्तमिदमाश्रमपदं (आर्या) १-१६
शापादसि प्रतिहता (वस०) ७-३२
शुद्धान्तदुर्लभमिदं (आर्या) १-१७
शुश्रूषस्व गुरून् (शार्दू०) ४-१८
शैलानामवरोहतीव (शार्दू०) ७-८
संकल्पितं प्रथममेव (वस०) ४-१३
संदष्टकुसुमशयना० (आर्या) ३-१५
संमीलन्ति न तावद् (आर्या) पृ० १४०
संरोपितेऽप्यात्मनि (उप०) ६-२४
सख्युस्ते स किल (प्रह०) ६-९
सतीमपि ज्ञाति० (वंश०) ५-१७
सरसिजमनुविद्धं (मालिनी) १-२०
साक्षात् प्रियामुप० (वस०) ६-१६
सा निन्दन्ती (शालिनी) ५-३०
सायन्तने सवनकर्मणि (वस०) ३-२४
सिध्यन्ति कर्मसु (वस०) ७-४
सुखपरस्य हरे० (द्रुत०) ७-३
सुतनु हृदयात् (हरिणी) ७-२४
सुभगसलिला० (आर्या) १-३
सुरयुवतिसंभवं (आर्या) २-८
स्तनन्यस्तोशीरं (शिख०) ३-६
स्त्रीणामशिक्षित० (वस०) ५-२२
स्निग्धं वीक्षित० (शार्दू०) २-२
स्मर एव तापहेतुः (आर्या) ३-९
स्मृतिभिन्नमोह० (आर्या) ७-२२
स्रस्तांसावतिमात्र० (शार्दू०) १-३०
स्वप्नो नु माया (उप०) ६-१०
स्वसुखनिरभिलाषः (मालिनी) ५-७
स्वायंभुवान्मरीचेर्यः (श्लोक) ७-९
स्विन्नाङ्गुलि० (आर्या) ६-१५

# परिशिष्ट (२)

## पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

(१) **नाटक**—(क) वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ।।

जिसमें वीर और श्रृंगार में से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण हों और प्रसिद्ध नायक हो, उसे 'नाटक' कहते हैं।

(ख) नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ।।
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।
(सा० दर्पण ६.७–१०)

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो, जिसमें मुख प्रतिमुख आदि पाँचों सन्धियाँ हों। इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश का, धीरोदात्त, प्रतापी, राजर्षि होता है। वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित हो तथा गुणवान् हो। इसमें श्रृंगार या वीर में से एक रस मुख्य होता है, अन्य रस उसके सहायक तथा गौण होते हैं। इसमें अन्त में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

(२) **नायक**— त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ।।
(सा० द० ३-३०)

त्यागी, वीर, कुलीन, समृद्ध, सुरूप, युवा, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी, पटु एवं सुशील पुरुष नेता होता है अर्थात् नायक में ये गुण होने चाहिए।

(३) **धीरोदात्त नायक**——महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।।
(दशरूपक २.४-५)

Funding by IKS-MoE

महाबली, अतिगम्भीर, क्षमाशील, स्वयं स्वप्रशंसा न करने वाला, स्थिर-प्रकृति, अहंकारहीन तथा दृढ़ निश्चय वाले व्यक्ति को धीरोदात्त नायक कहते हैं।

(४) नायिका—अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ।।
(सा० द० ३-५६)

नायक के सामान्य गुणों से युक्त नायिका होती है। वह तीन प्रकार की होती है—स्वकीय, अन्य और साधारण।

(५) पूर्वरङ्ग—यन्नाटचवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ।।
(सा० द० ६-२२)

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रङ्गमंच के विघ्नों को दूर करने के लिए अभिनेता जो मंगलाचारण आदि करते हैं, उसे पूर्वरंग कहते हैं।

(६) नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।
(सा० द० ६-२४)

नान्दी उसे कहते हैं, जो नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति करता है।

(७) सूत्रधार—नाटचस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ।।

बीजसहित नाटक के अनुष्ठान को 'सूत्र' कहते हैं, जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

(८) नेपथ्य—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

अभिनेतागण जहाँ पर नाटक के उपयुक्त वेषभूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं।

(९) प्रस्तावना—सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।।
(दशरूपक ३.७-८)

आमुख या प्रस्तावना उसे कहते हैं, जहाँ सूत्रधार नटी, मार्ष (पारिपार्श्विक) या विदूषक के साथ इस प्रकार की बात करता है, जिससे प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश हो जाए। आमुख को प्रस्तावना भी कहते हैं।

(१०) **कंचुकी**--अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ।। (नाट्यशास्त्र)

अन्तःपुर में जाने वाले, वृद्ध, गुणवान् ब्राह्मण को, जो सब कार्यों के करने में कुशल होता है, कंचुकी कहते हैं।

(११) **विदूषक**--कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ।।
(सा० द० ३-४२)

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक जानता है, उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं।

(१२) **अङ्क**--अङ्क इति रूढिशब्दो भावैं रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ।।
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ।।
(नाट्यशास्त्र अ० २०. १४-१६)

जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुरित करता है, जहाँ पर अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः बिन्दु का संबन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं। (१. बीज--उसे कहते हैं, जो प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाता है और आगे चलकर विस्तृत हो जाता है। २. बिन्दु--बीच की कथा के समाप्त होने पर भी प्रधान कथा को आगे अविच्छिन्न रखने के कारण को बिन्दु कहते हैं।)

(१३) **स्वगत**--अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।
(सा० द० ६--१३७)

जो बात सुनाने योग्य नहीं होती है, उसे 'स्वगत' (मन में) कहते हैं। इसको 'आत्मगत' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें।

**(१४) प्रकाश**—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। (सा० द० ६–१३८)

जो बात सबको सुनाने के लिए कही जाती है, उसे 'प्रकाश' (स्पष्ट) कहते हैं।

**(१५) अपवारित**—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम्।
(दशरूपक १–६६)

जहाँ मुंह दूसरी ओर करके कोई पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात कहता है, उसे 'अपवारित' (**एक ओर होकर**) कहते हैं।

**(१६) जनान्तिक**—त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥
(सा० द० ६–१३९)

जहाँ दूसरे पात्रों के होते हुए भी दो पात्र परस्पर इस प्रकार मंत्रणा करें कि उसे दूसरे पात्रों को सुनाना अभीष्ट न हो तथा दूसरे पात्रों की ओर त्रिपताका वाले हाथ से संकेत किया जाए कि उसका वारण किया जा रहा है, उसे 'जनान्तिक' कहते हैं। (**हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना।**) त्रिपताका हाथ उसे कहते हैं, जब सारी अंगुलियाँ सीधी ऊपर की ओर खड़ी हों और अनामिका अंगुलि टेढ़ी कर ली जाए।

**(१७) आकाशभाषित**—किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्॥
(सा० द० ६–१४०)

जहाँ कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना ही बातचीत करता है, तथा अन्य पात्र के कथन के बिना भी बात को सुनने का अभिनय करके वार्तालाप करता है, उसे 'आकाशभाषित' कहते हैं। इसके लिए ही 'आकाशे' (**आकाश में**) भी प्रयुक्त होता है।

**(१८) विष्कम्भक**—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥
(सा० द० ६–५५,५६)

विष्कम्भ या विष्कम्भक भूत और भावी घटनाओं की सूचना के लिए होता है। इसका प्रयोग नाटक में संक्षेप के उद्देश्य से किया जाता है। यह अंक के आदि

रखा जाता है। जहाँ पर विष्कम्भ में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र आते उसे 'शुद्ध' विष्कम्भक' कहते हैं। यदि उसमें नीच और मध्यम दोनों कोटि के त्र हैं तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं।

(१९) **प्रवेशक—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।**
**अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥**
(सा० द० ६-५७)

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्र ही रहते हैं। यह अंकों के बीच में आता है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के तुल्य हैं। ह नाटक के प्रारम्भ में नहीं आ सकता है।

(क) विष्कम्भक और प्रवेशक की समता और भिन्नता इस प्रकार समझनी ाहिए—

| विष्कम्भक | प्रवेशक |
|---|---|
| १—यह भूत और भावी घटना ा सूचक है। | १—यह भी भूत और भावी घटना का सूचक है। |
| २—इसमें एक या दो मध्यम ात्र होते हैं। | २—इसमें सारे पात्र निम्न कोटि के होते हैं। |
| ३—इसकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होगी। | ३—इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होगी। इसमें केवल प्राकृत होगी, वह भी निम्न कोटि की। |
| ४—इसका प्रयोग नाटक के प्रथम ंक के प्रारम्भ में भी हो सकता है ौर दो अंकों के बीच में भी। | ४—इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में ही होगा। प्रथम अंक के प्रारम्भ में कभी नहीं। |

(ख) **शुद्ध विष्कम्भक, मिश्र विष्कम्भक और प्रवेशक में ये अन्तर हैं—**

| नाम | पात्र | भाषा |
|---|---|---|
| १—शुद्ध विष्कम्भक | मध्यम (१ या २) | संस्कृत |
| २—मिश्र विष्कम्भक | मध्यम और नीच | संस्कृत और प्राकृत |
| ३—प्रवेसक | नीच | प्राकृत |

# परिशिष्ट (३)

## छन्दः–परिचय

## (शाकुन्तल में प्रयुक्त छन्दों के लक्षणादि)

( १ ) संस्कृत में प्रत्येक श्लोक में ४ पाद या चरण होते हैं। श्लोक के चतुर्थांश को पाद या चरण कहते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं—(क) वर्णवृत्त, (ख) मात्रिक। (क) वणवृत्तों में प्रत्येक पाद के वर्णों की गणना की जाती है। (ख) मात्रिकों में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। वर्णवृत्तों को 'वृत्त' कहते हैं, जैसे—इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि। मात्रिक छन्दों को 'जाति' कहते हैं, जैसे—आर्या। वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—(क) समवृत्त—जिसमें चारों पदों में वर्णों की संख्या बराबर होती है। जैसे—इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि। अधिकांश छन्द इसी कोटि में आते हैं। (ख) अर्धसमवृत्त—जहाँ पर प्रथम और तृतीय चरण में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ही समता होती है। जैसे—पुष्पिताग्रा, वियोगिनी। (ग) विषमवृत्त—जहाँ पर चरणों में समानता नहीं होती है। जैसे—आर्या।

( २ ) दोनों प्रकार के छन्दों में स्वरों पर ध्यान दिया जाता है। अ, इ, उ, ऋ और लृ ये 'लघु' (ह्रस्व) स्वर हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये 'गुरु' (दीर्घ) स्वर कहे जाते हैं। अनुस्वार, विसर्ग तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व यदि लघु स्वर भी होता है तो वह गुरु माना जाता है। पाद का अन्तिम लघु अक्षर कभी गुरु भी माना जाता है।

**सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।**
**वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥**

( ३ ) संस्कृत में वर्णवृत्तों की गणना के लिए 'गण' का उपयोग किया जाता है। एक 'गण' में तीन अक्षर होते हैं। छन्दों के लक्षण में इन गणों का ही प्रयोग होता है, अतः इनको स्मरण करना अनिवार्य है। लघु वर्ण के लिए '।' सीधी लकीर चिह्न है और गुरुवर्ण के लिए 'ऽ' चिह्न है। अँग्रेजी छन्द-विचार के अनुसार क्रमशः—˘–चिह्न हैं। गण ८ हैं। इनके नाम और लक्षण के लिए निम्नलिखित श्लोक स्मरण कर लेना चाहिए।

**मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।**
**जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः, सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥**

**मगण ऽऽऽ, नगण ।।।, भगण ऽ।।, यगण।ऽऽ**
**जगण ।ऽ।, रगण ऽ।ऽ, सगण ।।ऽ, तगण ऽऽ।**

दूसरा लक्षण निम्नलिखित है—

**आदिमध्यावसानेषु य-र-ता यान्ति लाघवम् ।**
**भ-ज-सा गौरवं यान्ति म-नौ तु गुरुलाघवम् ॥**

जैसे—म या मगण कहने पर अर्थ होगा—तीन गुरु अक्षर, न का अर्थ होगा तीनों लघु अक्षर, भ का अर्थ होगा प्रथम गुरु अक्षर तथा शेष दो लघु अक्षर।

(४) (क) लक्षणों में जहाँ पर 'ल' आता है, उसका अर्थ होगा 'लघु' और 'ग' का अर्थ 'गुरु' अक्षर। यदि 'लौ' या 'गौ' हो तो दो लघु या दो गुरु अर्थ होगा।

(ख) 'यति' का अर्थ है विराम या विश्राम। जहाँ पर एक पद के बीच में उच्चारण करते समय थोड़ा रुकना होता है, उसे 'यति' कहते हैं। लक्षणों में इसका निर्देश किया गया है कि कितने वर्णों के बाद यति आती है। इसका आगे कोष्ठों में निर्देश किया गया है।

(ग) 'गति' का अर्थ है प्रवाह। श्लोक का अस्खलित गति से धाराप्रवाह पढ़ा जाना।

अभिज्ञानशाकुन्तल में २४ छन्दों का प्रयोग हुआ है। अकारादि-क्रम से उनका विवेचन यहाँ किया गया है। उनके लक्षणादि निम्नलिखित हैं—

**(१) अनुष्टुप् या श्लोक—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।**
**द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥**

अनुष्टुप् या श्लोक में प्रत्येक पाद में ८ अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

श्लोक—शाकुन्तल १—५,६,११,१२,२६; २—१३,१६,१७; ३—१,१७,२०; ४—४,७; ५—१४,२४,२६,२९; ६—२३,२८,३२; ७—९,१३,१४,१५,२३,२८,२९। (योग २७)

**(२) अपरवक्त्र—अयुजि ननरला गुरुः समे, तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।**
अपरवक्त्र के प्रथम और तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं—२ नगण,

१ रगण, १ लघु, १ गुरु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १२ वर्ण होते हैं:— १ नगण, २ जगण, १ रगण। यह अर्धसम वृत्त है। शाकु० ४—१०; ५-१। (२)

**( ३ ) आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।**
**अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥**

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम पाद में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८, तृतीय में १२ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ। इसका प्रयोग शाकुन्तल में बहुत हुआ है। शाकु०—१—२,३,१३,१६,१७,२१,२५,२८,२६,३४; २—१,८; ३—२,४,५,६,१२,१४,१५,१६; ४—१२,१६,२१; ५—११,१३,१६,१८,२१,२८,३१; ६—२,३,७,१५,१६,२१,३१; ७—२२। (३८)

**( ४ ) इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।**

इन्द्रवज्रा में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। २ तगण, १ जगण, २ गुरु अक्षर। शाकु० ४—२२; ५—४। (२)

**( ५ ) उद्गाथा या गीति—**

यह आर्या छन्द का ही एक भेद है। इसके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में ३०, ३० मात्राएँ होती हैं। पूरे श्लोक में ६० मात्राएँ होती हैं। पूर्वार्ध में १२+१८=३० मात्राएँ तथा उत्तरार्ध में भी १२+१८=३० मात्राएँ होती हैं। शाकु० १—४; ३—१३। (२)

**( ६ ) उपजाति—**

**स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।**
**अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।**
**इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।**

उपजाति में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु। शाकु० २—७; ५—५, २०, २५; ६—१०,२४, २६; ७—२,५, १६,३१। (११)

**( ७ ) त्रिष्टुप्**—यह वैदिक छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते

Funding by IKS-MoE

हैं। कालिदास ने इस वैदिक छन्द का प्रयोग अंक ४ श्लोक ८ में किया है। इसमें चतुर्थ या पंचम वर्ण पर यति होती है। शाकु० ४—८। (१)

**(८) द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।**

द्रुतविलम्बित में प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं। १ नगण, २ भगण, १ रगण। शाकु० २—११; ३—१६; ५—२७; ६—८; ७—३। (५)

**(९) पथ्यावक्त्र—युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।**

यह अनुष्टुप् का एक भेद है। अनुष्टुप् के द्वितीय और चतुर्थ पाद में चतुर्थ अक्षर के बाद जगण आता है तो पथ्यावक्त्र छन्द होता है। शाकु० ६–१४, २२। (२)

**(१०) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो।**
**युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥**

पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं—१ नगण, २ जगण, १ रगण, १ गुरु। यह अर्धसम वृत्त है। शाकु० १—३२; २—३; ६—११। (३)

**(११) प्रहर्षिणी—(३,१०) त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।**

प्रहर्षिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु। इसमें ३–१० पर यति होती है। शाकु० ६—२७, ३०। (२)

**(१२) मन्दाक्रान्ता—(४, ६, ७)**
**मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।**

मन्दाक्रान्ता में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ भगण, १ नगण, २ तगण, २ गुरु। इसमें ४–६–७ पर यति होती है। शाकु० १—१५,३३; २—१४,१५। (४)

**(१३) मालभारिणी—विषमे ससजा गुरू समे चेत्**
**सभरा येन तु मालभारिणीयम्।**

मालभारिणी में प्रथम और तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं—२ सगण, १ जगण, २ गुरु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ यगण। इसको ही औपच्छन्दसिक भी कहते हैं। यह अर्धसमवृत्त है। शाकु० ३—२१, २२; ७—२०, २१। (४)

Funding by IKS-MoE

**(१४) मालिनी—(८,७) ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।**

मालिनी छन्द में प्रत्येक पाद में १५ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ मगण, २ यगण। इसमें ८–७ पर यति होती है। शाकु०— १—१०,१९,२०; २—४; ३—३; ५—७,८,१९; ७—७, ३४। (१०)

**(१५) रथोद्धता—रान्नराविह रथोद्धता लगौ।**

रथोद्धता में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ रगण, १ नगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु। शाकु० ७—१८। (१)

**(१६) रुचिरा—(४, ९) जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।**

रुचिरा में प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ भगण, १ सगण, १ जगण, १ गुरु। इसमें ४–९ पर यति होती है। शाकु० ७–३५। (१)

**(१७) वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।**

वंशस्थ में प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण। शाकु० १—१८,२२,२३; ३—११; ४—१; ५—१२, १५, १७; ६—१३,१८,२९; ७—१०,१६,३०। (१४)

**(१८) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।**

वसन्ततिलका छन्द में प्रत्येक पाद में १४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु। शाकु० १—८,२७,३१; २—९,१२; ३—८,१८,२४; ४—२,३,११,१३,१४,१५,२०; ५—२, ३,६,२२,२३; ६—१२,१६,२०,२५; ७—४,६,१७,२५,२६,३२। (३०)

**(१९) वियोगिनी—विषमे ससजा गुरुः समे**
**सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।**

वियोगिनी में प्रथम और तृतीय पाद में १० वर्ण होते हैं—२ सगण, १ जगण १ गुरु। द्वितीय और चतुर्थ पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु। यह अर्धसमवृत्त है। शाकु०, २–१८; ६–१; ७–१। (३)

**(२०) शार्दूलविक्रीडित—(१२,७)**
**सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।**

शार्दूलविक्रीडित छन्द में प्रत्येक पाद में १९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण, १ गुरु। इसमें १२-७ पर यति होती है। शाकु०

१—१४,३०; २—२,५,६; ३—७,२३; ४—५,६,९,१७,१८; ५—९; ६—४,५,६,१७; ७—८,११,१२,२७। (२१)

**(२१) शालिनी—(४, ७) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।**

शालिनी में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण, २ गुरु। इसमें ४—७ पर यति होती है। शाकु० ५—३०। (१)

**(२२) शिखरिणी—(६,११)**

**रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।**

शिखरिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ६-११ पर यति होती है। शाकु० १—९, २४; २—१०; ३—६; ५—१०; ६—९; ७—३३। (७)

**(२३) स्रग्धरा—(७,७,७)**

**म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।**

स्रग्धरा छन्द में प्रत्येक पाद में २१ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण। इसमें ७-७-७ पर यति होती है। शाकु० १—१, ७। (२)

**(२४) हरिणी—(६, ४, ७) नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।**

हरिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ६-४-७ पर यति होती है। शाकु० ३—१०; ४—१९; ७—२४। (३)

---

# परिशिष्ट (४)

## (क) सुभाषित-वाक्य

| | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| १—अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते। | ९४ |
| २—अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्०। | ३५० |
| ३—अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम०। | २५७ |
| ४—अतिस्नेहः पापशङ्की। | २३५ |
| ५—अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा। | १९४ |
| ६—अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। | ४०१ |
| ७—अनार्यः परदारव्यवहारः। | ४२१ |

| | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| ८—अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम । | ७४ |
| ९—अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् । | २६७ |
| १०—अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम् । | ३३२ |
| ११—अरण्ये मया रुदितम् । | १०० |
| १२—अर्थो हि कन्या परकीय एव । | २४० |
| १३—अवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति । | ३४६ |
| १४—अवसरोपसर्पणीया राजानः । | ३१२ |
| १५—अस्त्येतद् अन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम् । | ७२ |
| १६—अहो कामी स्वतां पश्यति । | ९५ |
| १७—अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः । | ७८ |
| १८—अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः । | १७५ |
| १९—अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् । | ३३० |
| २०—आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः । | १२६ |
| २१—आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् | १६२ |
| २२—आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् । | ७७ |
| २३—इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते । | २८४ |
| २४—इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि । | १९२ |
| २५—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना । | ४०६ |
| २६—उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः । | ३२६ |
| २७—उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी । | २९४ |
| २८—एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते । | ९४ |
| २९—एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः । | २८६ |
| ३०—ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः । | २२५ |
| ३१—क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति । | १५६ |
| ३२—क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते । | १५१ |
| ३३—कदापि सत्पुरुषाः शोकवास्तव्या न भवन्ति । | ३४० |
| ३४—कष्टं खल्वनपत्यता । | ३६९ |
| ३५—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते । | १५२ |

| | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| ३६—किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। | ४६ |
| ३७—किमीश्वराणां परोक्षम्। | ४३५ |
| ३८—को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति। | १९० |
| ३९—कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। | १८५ |
| ४०—गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृत्तः। | ९१ |
| ४१—गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति। | २२५ |
| ४२—ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः। | १६० |
| ४३—छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा। | ४४६ |
| ४४—तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः। | १२० |
| ४५—तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति। | २६८ |
| ४६—तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु। | १९० |
| ४७—त्रिशङ्कुरिवान्तरा तिष्ठ। | १३० |
| ४८—दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः। | ३९ |
| ४९—न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम। | २२९ |
| ५०—ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः। | ३४० |
| ५१—न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्। | ७३ |
| ५२—पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते। | ४०७ |
| ५३—वलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः। | ८ |
| ५४—वहुवल्लभा राजानः। | १६५ |
| ५५—भवितव्यता खलु बलवती। | ३४० |
| ५६—भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। | ३८ |
| ५७—भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः। | २२७ |
| ५८—मनोरथा नाम तटप्रपाताः। | ३४४ |
| ५९—मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति। | ४६ |
| ६०—मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु। | २७५ |
| ६१—रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः। | ३३५ |
| ६२—राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम। | ६१ |
| ६३—राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव। | २५३ |

पृष्ठ संख्या
६४—लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् । १५५
६५—वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती । ५७
६६—वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः । २९७
६७—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य । १४४
६८—विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम । ३७
६९—विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति । १६२
७०—सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः । ५४
७१—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् । ४६
७२—सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति । १११
७३—सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः । २५३
७४—सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति । २८५
७५—सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति । १५१
७६—स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति । १४७
७७—स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया । ४३१
७८—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । २६९

## (ख) सुभाषित श्लोक

अंक—श्लोक संख्या

**१—अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।**
**अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।।** ५-२४

**२—आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।**
**अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ।।** ७-१७

**३—औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ।**
**नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ।।** ५-६

**४—ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।**
**प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ।।** ६-३१

**५—भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।**
**अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।** ५-१२

६—भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ।। ५-४

७—मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ।। २-५

८—रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।। ५-२

९—शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।। २-७

१०—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।। ४-१८

११—सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।।५-१७

१२—सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ।। ६-१

१३—सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।। ७-४

१४—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।। ५-२२

Funding by IKS-MoE

# परिशिष्ट (५)

## शाकुन्तल से साम्य वाले अन्य कालिदास के श्लोक

| शाकुन्तल | कालिदास के अन्य ग्रन्थ |
|---|---|
| १—या सृष्टिः···। प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ (१-१) | एकैश्वर्यस्थितोऽपि····। अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः, सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स नस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥ (मालविका० १-१) |
| २—मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः,<br>सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।<br>उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले,<br>मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः ॥ (२-५) | परिचयं चललक्ष्यनिपातने<br>भयरुषोश्च तदिङ्गितबोधनम् ।<br>श्रमजयात् प्रगुणा च करोत्यसौ<br>तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥<br>(रघु० ९-४९) |
| ३—उद्गलितदर्भकवला मृग्यः,<br>परित्यक्तनर्तना मयूराः ।<br>अपसृतपाण्डुपत्रा<br>मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥ (४-१२) | नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा<br>दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः ।<br>तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव-<br>मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि ॥<br>(रघु० १४-६९) |

Funding by IKS-MoE

| | |
|---|---|
| ४—रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्.....।<br>तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं<br>भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ (५-२) | रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां.....।<br>गतेयमात्मप्रतिरूपमेव,<br>मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् ॥<br>(रघु० ७-१५) |
| ५—किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं,<br>धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।<br>आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-<br>मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ (५-९) | (क) राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।<br>तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती ॥<br>(रघु० १५-४७)<br>(ख) कायेन वाचा मनसापि शश्वद्<br>यत्संभृतं वासवधैर्यलोपि ।<br>आपाद्यते न व्ययमन्तरायैः<br>कच्चिन्महर्षेस्त्रिविधं तपस्तत् ॥<br>(रघु० ५-५) |
| ६—प्रजागरात् खिलीभूत-<br>स्तस्याः स्वप्ने समागमः ।<br>बाष्पस्तु न ददात्येनां<br>द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥ (६-२२) | (क) त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्.....। अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे, क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ (मेघ० २-४४)<br>(ख) कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् । न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियां समवाप्य तां, मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति । (विक्रमो० २-१०) |

| | |
|---|---|
| ७—मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिष्यन्दी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते। (७-६) | अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा<br>हिमालयो नाम नगाधिराजः।<br>पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य<br>स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥<br>(कुमार० १-१) |
| ८—अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि<br>को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति।<br>नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं<br>धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति॥<br>(६-२५) | नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः,<br>न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासंग्रहतत्पराः॥<br>मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।<br>पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते।<br>(रघु० १-६६, ६७) |
| ९—वसने परिधूसरे वसाना<br>नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः। (७-२१) | आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा……।<br>गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण॥<br>(मेघ० २-२९) |
| १०—दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी<br>सदपत्यमिदं भवान्।<br>श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति<br>त्रितयं तत्समागतम्॥ (७-२९) | बभौ च सा तेन सतां मतेन<br>श्रद्धेव साक्षाद् विधिनोपपन्ना॥<br>(रघु० २-१६) |

# परिशिष्ट (६)

## कालिदास-विषयक सूक्तियाँ

(१) उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।। कस्यापि

(२) उपमा कालिदासस्य नोत्कृष्टेति मतं मम ।
अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते ।। कस्यापि

(३) काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।। कस्यापि

(४) कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम् ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्को यत्र याति शकुन्तला ।। कस्यापि

(५) शाकुन्तलचतुर्थोऽङ्कः सर्वोत्कृष्ट इति प्रथा ।
न सर्वसंमता यस्मात् पञ्चमोऽस्ति ततोऽधिकः ।। कस्यापि

(६) पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती वभूव ।। कस्यापि

(७) निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।।

बाण, हर्षचरित भूमिका श्लोक १६

(८) साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रसलीलाकालिदासोक्तिः ।।

गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती भूमिका श्लोक ३६

(९) यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ।।

जयदेव, प्रसन्नराघव १-२२

(१०) भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कविः
मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्दः सुबन्धुश्च यः ।

दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ॥
राजशेखर, शार्ङ्गधरपद्धति श्लोक १८८

(११) एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥
राजशेखर, सूक्तिमुक्तावलि

(१२) माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याह्वयो भोजराजः ।
श्रीदण्डी दिण्डिमाख्यः श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लवो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ॥
विश्वगुणादर्शचम्पू श्लोक ५४९

(१३) धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥
ज्योतिर्विदाभरण २२-१०

१४) येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स जयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ॥
ऐहोल शिलालेख (पुलकेशी द्वितीय) शक संवत् ५५६ (=६३४ ईसवीय)

१५) श्रीकालिदासकविवर्यसरस्वतीयं
किं वर्णयाम्यतितरां रसवाहिनीति ।
यत् कालिका भगवती शुचिभावयोगाद्
यस्यामहो मुहुरनुग्रहमादधाति ॥
बिठोबाअण्णा, सुश्लोकलाघव ४१७-१८

१६) लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥
दण्डी, अवन्तिसुन्दरीकथा, भूमिका श्लोक १५

१७) कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥ मल्लिनाथ

(१८) अनघा गुणसम्पूर्णा समुचितविच्छित्तिवृत्तिरीतिरसौ ।
प्रस्तुतरससन्दोहा सरस्वती जयति कालिदासस्य ॥

(१९) वाल्मीकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम् ।
याऽसूतामरसिंहमाघधनिकान् सेयं जरानीरसा
शून्यालंकरणा स्खलन्मृदुपदा कं वा जनं नाश्रिता ॥ कस्यापि

(२०) कालिदासकविता नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः ।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गसौख्यमुपभुञ्जते नराः ॥ कस्यापि

(२१) कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ।
पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम् ॥ कस्यापि

(२२) कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयश्चापलमात्रं परं दधति ॥ कस्यापि

(२३) वयमपि कवयः कवयः कवयोऽपि च कालिदासाद्याः ।
दृषदो भवन्ति दृषदश्चिन्तामणयोऽपि हा दृषदः ॥ कस्यापि

(२४) वदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ॥ कस्यापि

(२५) सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।
सदश्वदमकस्येव काम्बोजतुरगाङ्गना ॥ कस्यापि

(२६) श्रीकालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्यकाव्ये रमते मतिर्मे ।
किं पारिजातं परिहृत्य हन्त भृङ्गालिरानन्दति सिन्दुवारे ॥ कस्यापि

(२७) रसभारभरोद्भिन्नां भारतीममरादृते ।
श्रीमतः कालिदासस्य विज्ञातुं कः क्षमः पुमान् ॥ स्थिरदेव

(२८) अपशब्दशतं माघे भारवौ च शतत्रयम् ।
कालिदासे न गण्यन्ते कविरेको धनञ्जयः ॥ कस्यापि

(२९) पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची, नदीषु गङ्गा कवि-कालिदासः ।

(३०) अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हारावलीव प्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाङ्कपालीव प्रकामहृद्या, न कालिदासादपरस्य वाणी ॥ श्रीकृष्ण

(३१) भासयत्यपि भासादौ कविवर्गे जगत्त्रयम् ।
के न यान्ति निबन्धारः कालिदासस्य दासताम् ॥

(३२) अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते ।।

(३३) ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः, शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः ।।सोड्ढल

---

# परिशिष्ट (७)

## संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण

[शाकुन्तल में शौरसेनी, माहाराष्ट्री और मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है, अतः प्राकृत के अंश को ठीक ढंग से समझने के लिए संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण दिया जा रहा है। इस परिशिष्ट के लिखने में A. C. Woolner की पुस्तक Introduction to Prakrit से विशष सहायता ली गई है। संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—शौ०=शौरसेनी, मा०= माहाराष्ट्री, माग०=मागधी,>=का यह रूप बनता है।]

### अध्याय १

## प्राकृत-परिचय

(१) प्राकृत को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(क) प्राचीन प्राकृत या पाली, (ख) मध्यकालीन प्राकृत, (ग) परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश। (क) प्राचीन प्राकृत में इनका संग्रह है—३य शताब्दी ई० पू० से २य शताब्दी ई० तक के शिलालेख. पाली, बौद्धग्रन्थ महावंश जातक आदि, प्राचीन जैनसूत्रों की भाषा। (ख) मध्यकालीन प्राकृत में इन प्राकृतों का संग्रह होता है—माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, परकालीन जैनग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी, जैन माहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी, पैशाची। (ग) परकालीन प्राकृत में अपभ्रंश है।

(२) **प्राकृत का अर्थ**—प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से बना है। प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृति के यहाँ पर दो अर्थ लिए गए हैं। (१) प्रकृति अर्थात् मूलभाषा संस्कृत। वैदिक भाषा को भी संस्कृत में लेने पर यह अर्थ उचित और शुद्ध प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा संस्कृत से निकली है। यहाँ पर यह विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिए कि जनसाधारण की भाषा का आधार शिष्ट जनों द्वारा व्यवहृत भाषा ही होती है। शिष्ट-जन-व्यवहृत भाषा को जनसाधारण प्रयत्नलाघव

आदि के कारण विकृत बना लेते हैं। वही शुद्ध भाषा का प्राकृत रूप हो जाता है। प्रारम्भ में प्रयुक्त भाषा संस्कृत ही थी। उसका ही विकृत रूप प्राकृत है। जनसाधारण में प्रयुक्त प्राकृत भाषा को परिष्कृत करके संस्कृत भाषा बनी है, यह समझना भूल है। ( २ ) प्रकृति अर्थात् प्रजा, जनसाधारण। जनसाधारण में प्रयुक्त भाषा। यहाँ पर प्रथम अर्थ लेना उचित है।

( ३ ) **माहाराष्ट्री**—प्राकृत के वैयाकरणों ने माहाराष्ट्री को सर्वोत्तम प्राकृत माना है और मुख्यतः उसके लिए ही नियम दिए हैं। केवल अन्तर वाले स्थलों पर अन्य प्राकृतों का नामोल्लेख किया है। अतएव दण्डी ने काव्यादर्श (१-३५) में कहा है—महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः। माहाराष्ट्री प्राकृत का मुख्यतः प्रयोग महाराष्ट्र में होता था। नाटकों में स्त्रियाँ, जो कि शौरसेनी प्राकृत बोलती थीं, पद्य-रचना माहाराष्ट्री में ही करती थीं। प्राकृत पद्यों की भाषा माहाराष्ट्री ही थी। गउडवहो आदि काव्य माहाराष्ट्री में ही हैं।

( ४ ) **शौरसेनी**—वर्तमान मथुरा के चारों ओर के स्थान को 'शूरसेन' प्रदेश कहते थे। वहाँ पर प्रयुक्त भाषा को शौरसेनी कहते थे। नाटकों में स्त्रियाँ विदूषक आदि शौरसेनी का ही प्रयोग करते थे। यह प्राकृत संस्कृत के बहुत निकट है। इससे ही वर्तमान 'हिन्दी' निकली है।

( ५ ) **मागधी**—प्राचीन मगध (पूर्वी बिहार) में प्रयुक्त भाषा को मागधी कहते थे। नाटकों म निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते थे। इसकी मुख्य विशेषताएँ अध्याय ६ में दी गई हैं। इसमें स के स्थान पर श का प्रयोग होता है; र के स्थान पर ल, ज के स्थान पर य, अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में ए लगता है।

### अध्याय २

## प्राकृत की मुख्य विशेषताएँ

प्राकृत भाषा की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—( १ ) प्राकृत संयोगात्मक भाषा है, अर्थात् सुप् तिङ् आदि शब्द और धातु के साथ संयुक्त रहते हैं। ( २ ) प्राचीन व्याकरण को सरल बनाया गया है। ( ३ ) शब्दरूपों और धातुरूपों की संख्या कम होने लगी। ( ४ ) शब्दों के विभिन्न रूप संक्षिप्त होकर तीन या चार प्रकार के ही रह गए अर्थात् तीन चार प्रकार से ही केवल शब्दरूप चलने लगे। धाधुरूप भी प्रायः एक या दो प्रकार से चलने लगे। ( ५ ) संक्षेप

के कारण उत्पन्न अस्पष्टता के निवारणार्थ परसर्गों (कारक-चिह्न आदि) की सृष्टि प्रारम्भ हुई। उससे ही वर्तमान वियोगात्मक भाषाओं का जन्म हुआ। (६) संक्षेप होने पर भी संस्कृत-व्याकरण के तुल्य प्राकृत-व्याकरण चला। सभी शब्दों के रूप प्रायः अकारान्त शब्द के तुल्य चलने लगे और सभी धातुओं के रूप प्रायः भ्वादिगणी धातु के तुल्य चलने लगे। (७) चतुर्थी विभक्ति का अभाव हो गया। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन प्रायः एक हो गए। (८) लङ, लिट् और लुङ लकारों का अभाव हो गया। (९) द्विवचन का अभाव हो गया। (१०) आत्मनेपद का भी प्रायः अभाव हो गया। (११) परसर्गों और सहायक क्रियाओं का अभी विशेष उपयोग नहीं हुआ। (१२) ध्वनि-परिवर्तन मुख्य रूप से हुआ। संयुक्ताक्षरों में प्रायः परसवर्ण या पूर्वसवर्ण का नियम लगा। (१३) कुछ प्राचीन स्वरों और वर्णों का अभाव हो गया। जैसे—ऋ, ऐ, औ, य, श (मागधी में य और श हैं, उसमें स नहीं हैं), ष और विसर्ग। (१४) संस्कृत में अप्राप्त ह्रस्व ए और ओ दो नए स्वर हो गए। (१५) साधारणतया अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। (१६) ह्रस्व स्वर के बाद दो से अधिक व्यञ्जन नहीं रह सकते और दीर्घ स्वर के बाद एक से अधिक नहीं। (१७) इन परिवर्तनों से कई स्थलों पर शब्द का स्वरूप ही पहचान में नहीं आता। जैसे—वाक्पतिराज का वप्पइराअ, अवतीर्ण का ओइण्ण। (१८) कुछ शब्द संस्कृत के तत्सम ही हैं और अधिकांश शब्द अपने संस्कृत के स्वरूप को सफलता से प्रकट करते हैं।

प्राकृत में परिवर्तन के निम्नलिखित कारण माने गए हैं—(१) प्रयत्न-लाघव, (२) संस्कृति का विकास, (३) जलवायु का प्रभाव, (४) आर्येतरों की भाषा और भाषणशैली का प्रभाव।

## अध्याय ३

# ध्वनि-विचार

१—(क) **प्रारम्भिक अक्षर**—सामान्य नियम यह है कि न, य, श, ष को छोड़कर अन्य एकाकी प्रारम्भिक व्यञ्जन उसी रूप में रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। न को ण होता है, य को ज और श ष को स।

२—समस्त-पद में उत्तरपद का प्रथमाक्षर मध्यगत शब्द समझा जाता है, अतः उसका लोप हो जाता है। किन्तु धातुरूप का प्रथमाक्षर प्रायः शेष रहता है। जैसे—आर्यपुत्र>अज्जउत्त, किन्तु आगतम्>आगदं।

Funding by IKS-MoE

३—अनुदात्त अव्ययों के प्रथमाक्षर का लोप हो जाता है। किं पुनः>किं उण, अपि>वि, च>अ।

४—कुछ प्राकृतों में भू धातु के भ को ह हो जाता है। भवति>होइ।

५—समस्त-पद के उत्तरार्ध का प्रथमाक्षर फ शेष रहता है। चित्रफलक> चित्तफलअ।

६—क और प को क्रमशः ख और फ महाप्राण हो जाता है। क्रीड्> खेल, पनस>फणस।

७—उच्चारणस्थानपरिवर्तन हो जाता है। दन्त्य को तालव्य, त्>च्। तिष्ठति>चिट्ठदि। दन्त्य को मूर्धन्य, न् को ण्। नयन>णअण, नूनं>णूणं।

८—श ष स को स हो जाता है। (मागधी में केवल श रहता है)

९—(ख) **मध्यगत अक्षर**—मध्यगत क ग च ज त द का प्रायः लोप हो जाता है। प ब व का कभी-कभी लोप होता है। मध्यगत य का सदा लोप होता है। लोक>लोअ, हृदय>हिअअ, दिवस>दिअह, प्रिय>पिअ।

१०—मध्यगत क त प को क्रमशः ग द ब हो जाते हैं। अतिथि>अदिधि, कृत>किद।

११—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में एक मुख्य अन्तर यह है कि संस्कृत का मध्यगत त शौ० में द हो जाता है, पर मा० में उसका लोप हो जाता है। जैसे—जानाति>शौ० जाणादि, मा० जाणाइ; शत>शौ० सद, मा० सअ।

१२—मध्यगत महाप्राण अक्षर ख घ थ ध फ भ को ह हो जाता है। मुख>मुह।

१३—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में दूसरा अन्तर यह है कि संस्कृत का मध्यगत थ शौ० में ध हो जाता है, पर मा० में ह रहता है। मागधी आदि में भी थ को ध होता है। जैसे—अथ>शौ० अध, मा० अह; कथं>शौ० कधं, मा० कहं।

१४—कभी-कभी स्वरों के मध्यगत व्यंजन का लोप न होकर द्वित्व हो जाता है। एक>एक्क, यौवन>जोव्वण, प्रेमन्>पेम्म।

१५—स्वरों के मध्यगत ट ठ को क्रमशः ड ढ हो जाते हैं। कुटुम्ब>कुडुम्ब।

१६—मध्यगत प को व हो जाता है। दीप>दीव, (इसी से हिन्दी दिवाली)।

१७—ब को व होता है। शबर>सवर।

१८—क को महाप्राण ख होकर ह शेष रहता है। निकष>निहस। ट को ठ>ढ, वट>वढ। त को थ होकर ह। वसति>वसहि।

१९—उच्चारणस्थानपरिवर्तन। दन्त्य को मूर्धन्य। प्रति>पडि। न को ण। नूनं>णूणं।

२०—श ष स को स होता है। मागधी में श। केशेषु>केसेसु।

२१—ड को प्रायः ल होता है। क्रीडा>कीला।

२२—त द को ल होता है। दोहद>दोहल।

२३—दृश्, दृश, दृक्ष के समासों में द को र होता है। ईदृश>एरिस।

२४—११ से १८ संख्याओं में द को र। एकादश>एक्कारस। हिन्दी ग्यारह, बारह आदि।

२५—म को व होता है। मन्मथ>मा० वम्मह। इसी से ग्राम>गाँव।

२६—मागधी में र को सदा ल होता है। दरिद्र>दलिद्द।

२७—कभी-कभी श ष स को ह होता है। पाषाण>पाहाण।

२८—(ग) **अन्तिम अक्षर**—सभी अन्तिम स्पर्श वर्णों का लोप हो जाता है। अनुनासिकों को अनुस्वार होता है, अः को ओ होता है या उसका लोप होता है।

## अध्याय ४

# संयुक्ताक्षर-विचार

२९—शब्द के प्रारम्भ में एक ही व्यंजन रह सकता है।

३०—शब्द के मध्य में दो व्यंजनों से अधिक नहीं रह सकते। ये भी वर्ण के द्वित्व के रूप में होंगे। जैसे—क्क, क्ख आदि, या अनुनासिक के बाद स्पर्श, जैसे—ङ्क, ण्ड।

३१—अतएव संयुक्ताक्षरों को पूर्वसवर्ण या परसवर्ण होता है या मध्य में कोई स्वरभक्ति का स्वर आता है।

३२—पूर्वसवर्ण और परसवर्ण का सामान्य नियम यह है कि समबल वाले वर्णों में परवर्ण प्रवल होता है और असमबल वालों में अधिक बल वाला। व्यंजनों को निम्नलिखित क्रम से रखा जा सकता है। इसमें बाद वाले कम बल वाले हैं। (१) स्पर्श (क से म तक, पंचम वर्ण छोड़कर), (२) वर्गों के पंचम वर्ण, (३) ल स व य र।

Funding by IKS-MoE

३३—पूर्व नियमानुसार क्+त=त्त, ग्+ध=द्ध, द्+ग=ग्ग, प्+त=त्त। दो स्पर्श वर्णों में परसवर्ण होगा। युक्त>जुत्त, दुग्ध>दुद्ध, उद्गम>उग्गम, सप्त>सत्त।

३४—अनुनासिक के बाद उसी वर्ग का स्पर्श होगा तो अनुनासिक उसी रूप में रहेगा, अन्यथा अनुस्वार हो जायगा। क्रौञ्च>कोञ्च, दिङ्मुख>दिंमुह।

३५—स्पर्श के बाद अनुनासिक होगा तो पूर्वसवर्ण होगा। अग्नि>अग्गि।

३६—ल् के बाद स्पर्श होगा तो परसवर्ण होगा। वल्कल>वक्कल।

३७—श ष स के बाद स्पर्श (क से म तक) होगा तो परसवर्ण होगा और स्पर्श महाप्राण हो जायगा। जैसे—स्त>त्थ, श्च>च्छ, पश्चात्>पच्छा। इनके स्थान पर ये होते हैं—ष्क और ष्ख>क्ख; ष्ट और ष्ठ>ट्ठ; ष्प और ष्फ>प्फ; स्त और स्थ>त्थ; स्प और स्फ>प्फ।

३८—स्पर्श के बाद ऊष्म (श ष स) हो तो च्छ होता है। अक्षि>अच्छि।

३९—क्ष को साधारणतया क्ख होता है। दक्षिण>दक्खिण, अक्षि>अक्खि।

४०—त्श या त्स को स्स होता है या पूर्वस्वर को दीर्घ और स। पर्युत्सुक>पज्जुस्सुअ, उत्सव>ऊसव।

४१—स्पर्श के बाद व हो तो पूर्वसवर्ण। पक्व>पक्क।

४२—स्पर्श के बाद य हो तो पूर्वसवर्ण। योग्य>जोग्ग।

४३—यदि दन्त्य और य हो तो दन्त्य को तालव्य और पूर्वसवर्ण। सत्य>सच्च, अद्य>अज्ज, सन्ध्या>संझा।

४४—र् और स्पर्श हो तो र् को स्पर्श का सवर्ण अक्षर हो जाएगा। चक्र>चक्क, मार्ग>मग्ग, चित्र>चित्त।

४५—ङ और ण् के बाद म हो तो दोनों को अनुस्वार। न्+म्=म्म्, म्+न्=ण्ण। दिङ्मुख>दिंमुह, उन्मुख>उम्मुह, निम्न>णिण्ण।

४६—अनुनासिक के बाद ऊष्म हो तो अनुनासिक को अनुस्वार। यदि ऊष्म के बाद अनुनासिक हो तो ऊष्म को ह होता है और स्थानपरिवर्तन होता है। श्न>ण्ह, श्म>म्ह, ष्ण>ण्ह, ष्म>म्ह, स्न>ण्ह, स्म>म्ह। स्नान>ण्हाण, कृष्ण>कण्ह।

४७—अनुनासिक के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ अनुनासिक का सवर्ण हो जाएगा। पुण्य>पुण्ण, अन्य>अण्ण।

४८—ऊष्म के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ ऊष्म का सवर्ण होगा। पार्श्व>पास, मनुष्य>मणुस्स।

Funding by IKS-MoE

४९—दो अन्तःस्थ हों तो बलवान् अन्तःस्थ प्रबल होगा। इनका क्रम है——लं, व, र, य। मूल्य>मुल्ल, काव्य>कव्व।

५०—क ख प फ से पूर्व विसर्ग ऊष्म के तुल्य माना जाता है। दुःख>दुक्ख।

### अध्याय ५

## स्वर-विचार

५१—प्राकृत में ऋ लृ स्वर नहीं हैं।

५२—संस्कृत के ऋ के स्थान पर ये आदेश होते हैं। (क) रि, ऋषि>रिसि, (ख) अ, कृत>कद, (ग) इ, दृष्टि>दिट्ठि, (घ) उ, पृच्छति>पुच्छदि।

५३—ऐ औ के स्थान पर क्रमशः ए ओ होते हैं। कौमुदी>कोमुदी।

५४—दीर्घ स्वर के बाद एक व्यंजन ही हो सकता है, अतः संयुक्ताक्षरों से पूर्व ह्रस्व स्वर ही होगा।

५५—ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है, यदि बाद में र्+व्यंजन हो या ऊष्म य र व या ऊष्म हो। कर्तुम्>कादुं, कर्तव्य>कादव्व, अश्व>आस।

५६—कहीं पर दीर्घ न करके स्वर को सानुस्वार कर देते हैं। दर्शन>दंसण।

५७—कहीं पर सानुस्वार न करके दीर्घ कर देते हैं। सिंह>सीह।

५८—स्वर-परिवर्तन। अ के स्थान पर ये स्वर होते हैं। (क) अ को इ, पक्क>पिक्क, (ख) अ को उ, प्रलोकयति>पुलोएदि, (ग) आ को इ या ए, मात्र>मेत्त।

५९—इ को उ। इक्षु>उच्छू। ई को ए, ईदृश>एरिस।

६०—उ को अ। मुकुल>मउल। उ को इ, पुरुष>पुरिस। उ को ओ, पुस्तक>पोत्थअ। ऊ को ओ, मूल्य>मोल्ल।

६१—ए को इ। वेदना>विअणा, एतेन>एदिणा।

६२—ओ को उ। अन्योन्य>अण्णुण्ण।

६३—स्वरलोप। अनुदात्त स्वर का लोप होता है। अनुस्वार के बाद अपि>पि, स्वर के बाद वि। अनुस्वार के बाद इति>ति, स्वर के बाद ति। खलु>खु।

६४—सम्प्रसारण। य् को इ, व् को उ होता है। अय अव को क्रमशः ए ओ होते हैं। कथयतु>कधेदु, नवमालिका>णोमालिआ, लवण>लोण।

### अध्याय ६

## सन्धि-विचार

### ( क ) व्यञ्जनसन्धि

६५—प्राकृत में अन्तिम व्यंजन का लोप हो जाता है, अतः व्यंजन-सन्धि भी बहुत कम शेष रही है। स्वर से पूर्व कुछ व्यंजन पुनर्जीवित हो जाते हैं। यदस्ति>जदत्थि। दुर् और निर् का र् शेष रहता है। म् भी कुछ स्थलों पर शेष रहता है। एकैकम्>एक्कमेक्कं।

६६—म् शेष वाले शब्दों के रूप चलते हैं। एक्कमेक्के। अङ्गे-अङ्गे>अंगमंगे।

६७—समस्त-पदों में पूर्वपद के अन्तिम वर्ण को उत्तरपद के साथ परसवर्ण हो जाता है। कभी-कभी दोनों पदों को पृथक् भी माना जाता है। दुर्लभ>दुल्लह।

### (ख) स्वरसन्धि

६८—प्राकृत में प्रकृतिवद्भाव (सन्धि का अभाव) सामान्यतया होता है, किन्तु समस्त-पदों में पूर्व और उत्तर पद के स्वरों में सन्धि होती है। राजर्षि> राएसि, जन्मान्तरे>जम्मन्तरे।

६९—यदि समस्त-पद का उत्तरपद इ या उ से प्रारम्भ होता हो और उसके बाद संयुक्ताक्षर हों, या ई ऊ हों तो पूर्वपद के अन्तिम अ या आ का लोप हो जाता है। गजेन्द्र>गइन्द, वसन्तोत्सव>वसन्तूसव।

७०—मध्यगत वर्णों के लोप होने पर सन्धि नहीं होती। वाक्य में भी शब्दों में सन्धि नहीं होती।

### अध्याय ७

## शब्दरूप-विचार

७१—संस्कृत के शब्दरूपों से प्राकृत के शब्दरूपों में दो कारणों से ही मुख्य अन्तर है—(क) पूर्वोक्त ध्वनि-सम्बन्धी नियम तथा अन्य नियम, जिनसे शब्द-रूपों पर प्रभाव पड़ता है, (ख) साम्य के आधार पर शब्दरूपों का सरलीकरण तथा शब्द को एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित करना। प्राकृत में शब्द-रूपों को सरल बनाना ही मुख्य कार्य है।

७२—द्विवचन का अभाव हो गया है। चतुर्थी का षष्ठी विभक्ति में ही समावेश हो गया है। प्राकृत के नियमों के कारण व्यंजनान्त शब्द प्रायः नहीं रहे हैं। अधिकांश शब्दों के रूप निम्नलिखित रूप से चलते हैं:—

Funding by IKS-MoE

१. पुंलिग या नपुंसक लिंग शब्द अकारान्त।
२. पुं० या नपुं० शब्द इ या उ अन्त वाले।
३. स्त्रीलिंग शब्द आ, इ, ई, उ, ऊ अन्त वाले।

७३—अकारान्त पुंलिग पुत्त=पुत्र शब्द के रूप।

| शौरसेनी | | | महाराष्ट्री | |
|---|---|---|---|---|
| एक० | बहु० | | एक० | बहु० |
| पुत्तो | पुत्ता | प्रथमा | पुत्तो | पुत्ता |
| पुत्तं | पुत्ते | द्वितीया | पुत्तं | पुत्ता, पुत्ते |
| पुत्तेण | पुत्तेहिं | तृतीया | पुत्तेण | पुत्तेहि (हिं) |
| पुत्तादो | पुत्तेहिंतो | पंचमी | पुत्ताओ | पुत्तेहि |
| पुत्तस्स | पुत्ताणं | षष्ठी | पुत्तस्स | पुत्ताण (णं) |
| पुत्ते | पुत्तेसु (सुं) | सप्तमी | पुत्ते, पुत्तम्मि | पुत्तेसु (सुं) |

माहाराष्ट्री में चतुर्थी एक० में पुत्ताअ रूप भी मिलता है।

७४—अकारान्त नपुंसक फल शब्द। इसके रूप पुत्त के तुल्य चलते हैं, केवल प्र० द्वि० म एक० में फलं और प्र० द्वि के बहु० में फलाइं रूप बनेगा।

७५—इकारान्त पुंलिग अग्गि=अग्नि शब्द के रूप।

| एक० | बहु० |
|---|---|
| प्र० अग्गी | अग्गीओ, अग्गीणो (मा० अग्गी, अग्गीणो) |
| द्वि० अग्गिं | अंग्गीणो |
| तृ० अग्गिणा | अग्गीहिं (मा० अग्गीहि) |
| ष० अग्गिणो (मा० अग्गिस्स) | अग्गीणं (मा० अग्गीण) |
| स० अग्गिम्मि | अग्गीसु (सुं) |

चतुर्थी और पंचमी का साधारणतया प्रयोग नहीं होता।

७६—इकारान्त नपुंसक दहि=दधि शब्द। अग्गि के तुल्य रूप चलेंगे, केवल प्र० द्वि० एक० में दहिं या दहि और बहु० में दहीइं।

७७—उकारान्त पुं० और नपुं० के रूप इकारान्त के तुल्य ही चलते हैं। उकारान्त पुं० वाउ=वायु शब्द। एक० और बहु० में रूप :—प्र० वाऊ, वाउणो (मा० वाऊ); द्वि० वाउं, वाउणो; तृ० वाउणा, वाऊहि (हिं); ष० वाउणो (मा० वाउस्स), वाऊण (णं); स० वाउम्मि, वाउसु (सुं)।

नपुं० महु=मधु शब्द। प्र० द्वि० एक० महु (हुं), बहु० महूइं।

७८—स्त्रीलिंग शब्दों के रूप। तृ० ष० और स० एक० में एक ही रूप होता है। आ ई ऊ अन्त वाले शब्दों के रूप समान होते हैं।

| | **माला** | | **देवी** | | **वहू=वधू** | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| प्र० | माला | मालाओ, माला | देवी | देवीओ | वहू | वहूओ |
| द्वि० | मालं | मालाओ, माला | देविं | देवीओ | वहुं | वहूओ |
| तृ० | मालाए | मालाहि (हिं) | देवीए | देवीहि (हिं) | वहूए | वहूहि (हिं) |
| पं० | मालादो<br>(मा० मालाओ) | मालाहिंतो | देवीदो<br>(मा० देवीओ) | देवीहिंतो | वहूदो<br>(मा० वहूओ) | वहूहिंतो |
| ष० | मालाए | मालाण (णं) | देवीए | देवीण (णं) | वहूए | वहूण (णं) |
| स० | मालाए | मालासु (सुं) | देवीए | देवीसु (सुं) | वहूए | वहूसु (सुं) |
| सं० | माले | —— | देवि | —— | वहु | —— |

| | **७९—भत्तु=भर्तृ** | | **पिउ=पितृ** | |
|---|---|---|---|---|
| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
| प्र० | भत्ता | भत्तारो | शौ० पिदा, मा० पिआ | शौ० पिदरो, मा० पिअरो |
| द्वि० | भत्तारं | —— | पिदरं, मा० पिअरं | पिदरो, पिअरो, पिउणो |
| तृ० | भत्तुणा | भत्तारेहिं | पिदुणा, मा० पिउणा | पिऊहिं |
| ष० | भत्तुणो | भत्ताराण (णं) | पिदुणो, मा० पिउणो | पिऊणं |
| स० | शौ० भत्तारे | भत्तारेसु | —— —— | पिऊसु (सुं) |

८०—अन्नन्त शब्द न् का लोप होने से अकारान्त हो जाते हैं।

| | **राअ=राजन्** | | **शौ० माग० अत्त, मा० अप्प=आत्मन्** | |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | राआ | राआणो | अत्ता | अप्पा |
| द्वि० | राआणं | राआणो | अत्ताणअं | अप्पाणं |
| तृ० | रण्णा | राईहिं | —— | अप्पणा |
| ष० | रण्णो | राईणं | अत्तणो | अप्पणो |
| स० | राइम्मि, राए | —— | —— | —— |
| सं० | राअं | —— | —— | —— |

८१—इन् अन्त वाले शब्द कुछ अंश में इकारान्त हो जाते हैं और कुछ अंश में संस्कृत के तुल्य इन्नन्त रहते हैं।

८२—अत् अन्त वाले अत मत वत अकारान्त होकर अन्त मन्त वन्त हो जाते हैं। पुत्त के तुल्य रूप चलेंगे।

८३—स् अन्त वाले अस् इस् उस् स् लोप होने से अ इ उ अन्त वाले हो जाते हैं। उसी प्रकार इनके रूप चलेंगे।

८४—**अस्मद्** **युष्मद्**

| | एक० | बहु० | एक० | बहु० |
|---|---|---|---|---|
| प्र० | अहं, हं | अम्हे | तुमं, मा० तं | तुम्हे |
| द्वि० | मं, मा० ममं | अम्हे, णो | तुमं, ते | तुम्हे, वो |
| तृ० | मए | अम्हेहिं | तए, तुए | तुम्हेहिं |
| पं० | (ममाओ) | (अम्हेहिंतो) | (तुमाहिंतो) | (तुमाहितो) |
| ष० | मम, मे, मह | अम्हाणं, णो | तुह, ते | तुम्हाणं |
| स० | मइ | अम्हेसु | तइ | (तुम्हेसु) |

८५—तत् (स या त) शब्द के रूप।

| | **पुंलिंग** | | **नपुं०** | | **स्त्रीलिंग** | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्र० | सो | ते | तं | ताइं | सा | ताओ, ता |
| द्वि० | तं | ते | तं | ताइं | तं | ताओ, ता |
| तृ० | तेण (णं) | तेहि (हिं) | तेण (णं) | तेहि (हिं) | ताए, तीए | ताहि (हिं) |
| ष० | तस्य | तेसिं, ताणं | तस्स | तेसिं, ताणं | ताए, तीए | तासिं, ताणं |
| स० | तस्सि, तम्मि | तेसु | तस्सिं, तम्मि | तेसु | ताए, तीए | तासु |

## अध्याय ८

# धातुरूप-विचार

८६—प्राकृत में शब्दरूपों की अपेक्षा धातुरूपों में अधिक अन्तर हुआ है। ध्वनि-नियमों के कारण व्यंजनान्त धातुएँ प्रायः समाप्त हो गई हैं। धातुरूप भी प्रायः एक ही ढंग से चलते हैं। रूपों की संख्या भी कम हो गई है। द्विवचन का अभाव हो गया है। आत्मनेपद प्रायः समाप्त हो गया है। लिट्, लङ्, लुङ् भी प्रायः नष्ट हो गये हैं। भूतकाल का बोध कृदन्त प्रत्ययों से कराया जाता है। उसके साथ सहायक धातु कभी रहती है, कभी नहीं। संस्कृत के धातुरूपों में से केवल ये शेष रहे हैं—लट्, लोट्, विधिलिङ्, लृट्, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, कृत् प्रत्यय—क्त, तुम्, क्त्वा, ल्यप्, शतृ, शानच्।

१० गणों के स्थान पर दो गण ही शेष रहे हैं—(१) भ्वादिगण, (२) चुरादिगण। दोनों गणों के रूप समान ही चलते हैं।

**८७—भ्वादिगण (लट्)** **चुरादिगण (लट्)**

शौ० पुच्छदि, मा० पुच्छइ पुच्छन्ति शौ० मा० शौ० मा०

पूच्छसि शौ० पुच्छध, कधेदि कहेइ कधेन्ति कहेन्ति

मा० पुच्छह कधेसि कहेसि कधेध कहेह

पुच्छामि पुच्छामो कधेमि कहेमि कधेमो कहेमो

**८८—भ्वादिगण (लोट्)** **चुरादिगण (लोट्)**

शौ० पुच्छदु, मा० पुच्छउ पुच्छन्तु कहेदु कहेन्तु

पुच्छ, पुच्छसु शौ० पुच्छध, मा० पुच्छह कहेहि, कहेसु कहेह

(पुच्छामु) पुच्छाम्ह (कहेमु) कहेम्ह

८९—विधिलिङ का प्रयोग अर्धमागधी और जैन माहाराष्ट्री में अधिक प्रचलित है, अन्य प्राकृतों में इसका प्रयोग बहुत कम है।

९०—लृट् में भ्वादिगण और चुरादिगण के रूप समान ही चलेंगे।

शौ० पुच्छिस्सदि मा० पुच्छिस्सइ पुच्छिस्सन्ति

शौ० पुच्छिस्ससि मा० पुच्छिहिसि शौ० पुच्छिस्सध, मा० पुच्छिस्सह

पुच्छिस्सं पुच्छिस्सामो

९१—कर्मवाच्य में संस्कृत य का ज्ज होता है या य रहता ही नहीं है। कभी-कभी लट् के तुल्य रूप चलते हैं। भ्वादिगण परस्मैपद के ही तिङ अन्त में लगते हैं।

| शौ० | मा० |
|---|---|
| पुच्छीअदि | पुच्छिज्जइ |
| पुच्छीअसि | पुच्छिज्जसि |
| पुच्छीआमि | पुच्छिज्जामि (इसी प्रकार बहु० में) |

९२—प्रेरणार्थक णिजन्तरूप। इसमें संस्कृत अय का ए रूप शेष रहता है। जैसे—हासयति>हासेइ, निर्वापयति>णिव्वावेदि।

९३—शतृ और शानच् प्रत्यय। (क) शतृ प्रत्यय—

वर्तमान—पुं० पुच्छन्तो, स्त्री० पुच्छन्ता, नपुं० पुच्छन्तं

भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्सन्तो, स्त्री० पुच्छिस्सन्ता, नपुं० पुच्छिस्सन्तं।

(ख) शानच्—वर्तमान—पुं० पुच्छमाणो, स्त्री०—माणा—माणी, नपुं०—माणं।

भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्समाणो, स्त्री०—माणा, नपुं०—माणं।

९४—तुमुन् प्रत्यय। संस्कृत का तुम् शौरसेनी और मागधी में दुं हो जाता है और माहाराष्ट्री में उं। धातु के बाद तुम् लगता है, सेट् धातु में बीच में इ लगेगा। कर्तुम्>शौ० कादुं, मा काउं: प्रष्टुम्>शौ० पुच्छिदुं, मा० पुच्छिउं।

९५—क्त्वा प्रत्यय। कृत्वा>कदुअ, गत्वा>गदुअ, पृष्ट्वा>शौ० पुच्छिअ, मा० पुच्छिऊण, नीत्वा>णइअ।

९६—क्त प्रत्यय। संस्कृत तः का दो या ओ प्राकृत शेष रहता है। गतः> गदो, गओ; कृतः>किदो, कओ। इसके बहुत से अनियमित रूप भी हैं। जैसे—आज्ञप्त>आणत्त, उक्त>उत्त, गृहीत>शौ० गहिद, मा० गहिअ, दृष्ट>दिट्ठ, दत्त>दिण्ण, भूत>हुअ।

९७—तव्य, अनीय, य प्रत्यय। तव्य का दव्व शेष रहता है। प्रष्टव्य> पुच्छिदव्व, गन्तव्य>गच्छिदव्व। अनीय का अणीय रहता है। करणीय> शौ० मागधी करणीअ, मा० करणिज्ज। य>ज। कार्य>कज्ज।

## अध्याय ९

# मागधी की विशेषताएँ

९८—पहले जो उदाहरणादि दिए गए हैं, वे शौरसेनी और माहाराष्ट्री के रूप से हैं। मागधी की मुख्य विशेषताएँ ये हैं।

(१) स के स्थान पर श का प्रयोग। शौ० भविस्सदि>भविश्शदि, पुत्तस्स>पुत्तश्श। (२) र के स्थान पर ल का प्रयोग, मुख्यतः शब्द के प्रारम्भ में। राज्ञः>लाआणो, शौ० पुरिसो>पुलिशे,समरे>शमले। (३) य शेष रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। सं० यथा>यधा, जानाति>याणादि, जायते>यायदे। (४) द्य, र्ज, र्य के स्थान पर य्य होता है। शौरसेनी में इन स्थानों पर ज्ज् होता है। अद्य और आर्य>अय्य, मद्य> मय्य। (५) ण्य, न्य, ज्ञ, ञ्ज को ञ्ञ हो जाता है। पुण्य>पुञ्ञ, अन्य> अञ्ञ, राज्ञः>लाञ्ञो, अञ्जलि>अञ्ञलि। (६) मध्यगत च्छ को श्च होत है। गच्छ>गश्च, इच्छति>इश्चीअदि। (७) ष्क>स्क या श्क, ष्ट>स्ट या श्ट, ष्प, ष्फ>स्प, स्फ, शुष्क>शुस्क, कष्ट>कस्ट। (८) र्थ को स्त होता है। तीर्थ>तिस्त, अर्थः>अस्ते।

Funding by IKS-MoE

Mahavidyalaya Vidya
1335

Mahavidyalaya

Funding by IKS-MoE